बी.एड. प्रथम वर्ष

हिंदी शिक्षण

GEDE-11

मध्यप्रदेश भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय – भोपाल

MADHYA PRADESH BHOJ (OPEN) UNIVERSITY – BHOPAL

Reviewer Committee

1. Dr. Chitra Sharma
   Principal
   Ever Green Education Society, Bhopal (M.P.)
2. Dr. Meena Barse
   Assistant Professor
   Sant Hirdaram Girls College, Bhopal (M.P.)
3. Dr. Pravini Pandaagle
   Professor
   NRI Group Of Institutions, Bhopal (M.P.)

Advisory Committee

1. Dr. Jayant Sonwalkar
   Hon'ble Vice Chancellor
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (M.P.)
2. Dr. L.S.Solanki
   Registrar
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (M.P.)
3. Dr. Jyoti S. Parashar
   Assistant Professor
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (M.P.)
4. Dr. Chitra Sharma
   Principal
   Ever Green Education Society, Bhopal (M.P.)
5. Dr. Meena Barse
   Assistant Professor
   Sant Hirdaram Girls College, Bhopal (M.P.)
6. Dr. Pravini Pandaagle
   Professor
   NRI Group Of Institutions, Bhopal (M.P.)

COURSE WRITERS

Dr. Laxmi Panday, D.Lit, Assistant Professor of Hindi, Dr. Hari Singh Gaur University, Sagar, M.P.
Units (1.0-1.1, 1.2-1.2.2, 1.2.4, 1.3.2, 1.4, 1.5, 1.6-1.10, 2.0-2.1, 2.2-2.3.2, 2.4-2.5.1, 2.6-2.10, 3.0-3.2.1, 3.2.2, 3.3-3.3.1, 3.3.4, 3.4-3.4.1, 3.4.2, 3.5-3.5.1, 3.6-3.10, 4.0-4.2, 4.3.1-4.3.2, 4.3.4, 4.3.6, 4.4, 4.6-4.10)
Dr Kamini Taneja, Assistant Professor (Adhoc), Vivekananda College, University of Delhi
Units (1.2.3, 1.2.5)
Dr Seema Sharma, Lecturer, Department of Hindi, Ginni Devi Modi Girls (PG) College, Modinagar, Ghaziabad (UP)
Units (1.3.3, 2.3.3, 3.5.2-3.5.3)
Dr. Pratibha Sharma, Associate Professor, Department of Teacher Education, Bareilly College, Bareilly
Dr Amita Gupta, Lecturer in M.Ed. Deptt. Bareilly College, Bareilly
Units (2.5.2, 4.3, 4.3.3, 4.3.5)
Dr. Laxmi Panday, D.Lit, Assistant Professor of Hindi, Dr. Hari Singh Gaur University, Sagar, M.P.
Dr Seema Sharma, Lecturer, Department of Hindi, Ginni Devi Modi Girls (PG) College, Modinagar, Ghaziabad (UP)
Units (3.3.2)
Dr. Ashutosh Kumar Mishra, Assistant Professor, Department of Hindi, Dr. Hari Singh Gaur Vishwavidhyalaya, Sagar, (MP)
Dr. Amrendra Tripathi, Associate Professor, Department of Hindi, Mahatma Gandhi Kendriya Vishwavidhyalaya, Motihari, Bihar
Units (3.3.3)
Dr. Sitesh Saraswat, Reader, Department of Education, Bhagwati College of Education, Meerut
Units (4.5)

Copyright © Reserved, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Registrar, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal.

Information contained in this book has been published by VIKAS® Publishing House Pvt. Ltd. and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, the Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal, Publisher and its Authors shall in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use.

Published by Registrar, MP Bhoj (Open) University, Bhopal in 2020

VIKAS®

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.

VIKAS® PUBLISHING HOUSE PVT. LTD.
E-28, Sector-8, Noida - 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 • Fax: 0120-4078999
Regd. Office: A-27, 2nd Floor, Mohan Co-operative Industrial Estate, New Delhi 1100 44
• Website: www.vikaspublishing.com • Email: helpline@vikaspublishing.com

SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

हिंदी शिक्षण

	Syllabi	Mapping in Book
इकाई–1 :	भाषा का अर्थ एवं हिंदी भाषा की उत्पत्ति – भाषा का अर्थ, परिभाषाएं एवं प्रकृति व प्रकार्य – हिंदी भाषा की उत्पति एवं प्रगति – भाषा परिवार – वर्णमाला – स्रोत (ध्वनियां); हिंदी भाषा शिक्षण का महत्व, उपयोग, चुनौतियां एवं समाधान – महत्व (राष्ट्रभाषा, राजभाषा, संपर्क भाषा, मानक भाषा और बोली) – उपयोग (शैक्षिक, बोलचाल, कार्यालय, बाजार एवं राजनैतिक स्तर पर) – चुनौतियां एवं समाधान : संचार माध्यम एवं प्रिंट माध्यम; हिंदी भाषा शिक्षण का सामान्य इतिहास – प्राथमिक पाठ्यक्रम के संबंध में – माध्यमिक पाठ्यक्रम के संबंध में; विद्यालयीन पाठ्यचर्या में हिंदी : एक सामान्य परिचय – श्रवण कौशल – वाचन (मौखिक) कौशल – पठन कौशल – लेखन कौशल	**इकाई 1 :** हिंदी शिक्षण : प्रकृति एवं इतिहास **(पृष्ठ 3–157)**
इकाई–2 :	प्रारंभिक शिक्षा स्तर पर हिंदी शिक्षण के उद्देश्य – ज्ञानात्मक : ध्वनि, शब्द, वाक्य एवं अर्थ ज्ञान – कौशलात्मक : सुनना, बोलना, पढ़ना एवं लिखना तथा सुनकर, बोलकर, पढ़कर एवं लिखकर अर्थ ग्रहण करना; उच्चतर माध्यमिक स्तर पर हिंदी शिक्षण के उद्देश्य – ज्ञानात्मक : गद्य एवं पद्य विधाओं का संक्षिप्त परिचय (कविता, कहानी, नाटक, एकांकी एवं अन्य), हिंदी के विविध रूपों (राष्ट्रभाषा, राजभाषा, संपर्क भाषा, विश्व भाषा) का ज्ञान – कौशलात्मक : (हिंदी को मानक ढंग से बोलना, विभिन्न विधाओं के पठन में उपयुक्त तरीके का प्रयोग, विराम चिह्नों का प्रयोग, श्रुत लेखन : शिरोरेखा) – संरचनात्मक (कविता, कहानी, व्यंग्य, पत्र, निबंध लेखन आदि विधाओं में रुचि उत्पन्न करना); प्रारंभिक शिक्षा में प्रयुक्त उपागम : संप्रेषण, चार्ट, चित्र, भाषा, खेल आदि – उच्चतर माध्यमिक स्तर पर प्रयुक्त उपागम – चार्ट एवं मॉड्यूल – भाषा प्रयोगशाला आदि	**इकाई 2 :** हिंदी शिक्षण के उद्देश्य एवं उपागम **(पृष्ठ 159–258)**
इकाई–3 :	हिंदी शिक्षण का अन्य विषयों एवं समाज में प्रचलित बोलियों से सहसंबंध – हिंदी शिक्षण का विज्ञान, भूगोल, इतिहास, राजनीति, संगीत, दर्शन, समाजशास्त्र, पर्यावरण से संबंध – स्थानीय बोलियों के साथ हिंदी भाषा का सहसंबंध; हिंदी शिक्षण द्वारा ज्ञानात्मक संरचना का विकास – व्याकरणिक इकाइयों का अध्ययन– उपसर्ग, प्रत्यय, संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, विशेषण, कारक एवं समास – रस, छंद एवं अलंकार – पर्यायवाची, विलोम शब्द, मुहावरे एवं लोकोक्ति – चित्र आधारित कविता–कहानी की संरचना एवं वाक्य रचना; हिंदी शिक्षण अनुप्रयोग (समस्त व्याकरणिक इकाइयों का वर्गीकरण/विश्लेषण, प्रयोग एवं प्रश्नावली निर्माण) – समस्त व्याकरणिक इकाईयों वर्गीकरण/विश्लेषण व प्रयोग – प्रश्नावली निर्माण; हिंदी शिक्षण में सहायक शिक्षण सामग्री (TLM) का प्रयोग – चित्र, चार्ट्स एवं मॉडल्स – दृश्य–श्रव्य सामग्री आदि – दृश्य एवं श्रव्य सामग्री का सामंजस्य	**इकाई 3 :** सामाजिक परिवेश में हिंदी की संरचना **(पृष्ठ 259–427)**

इकाई–4 : भाषा शिक्षण के प्रचलित सिद्धांतों का अध्ययन – भारतीय शिक्षाशास्त्रियों द्वारा प्रदत्त सिद्धांत – पाश्चात्य शिक्षाशास्त्रियों द्वारा प्रदत्त सिद्धांत; नवीन शिक्षाशास्त्रीय सिद्धांतों का अध्ययन एवं विश्लेषण – अवलोकन – अन्वेषण – प्रोजेक्ट कार्य – अवधारणात्मक विकास – गतिविधि आधारित अधिगम (ABL) – सक्रिय अधिगम प्रविधि (ALM); पाठ योजना : 5E मॉडल एवं हिंदी विधाओं का शिक्षण – पाठ योजना : 5E मॉडल – कविता – कहानी – नाटक – पत्र – आलेख – व्यंग्य – चित्रकथा / कॉमिक्स / कार्टून – जीवनी – आत्मकथा – संस्मरण – यात्रावृत्त – उपन्यास; हिंदी भाषा शिक्षण का मूल्यांकन – शिक्षण और मूल्यांकन के आधारभूत उद्देश्य – ज्ञानात्मक एवं भावनात्मक या क्रियात्मक पक्ष – शैक्षिक मूल्यांकनः अवधारणा– मानक एवं कसौटी संदर्भित परीक्षण, निर्माणात्मक और संकलनात्मक मूल्यांकन	**इकाई 4** : हिंदी भाषा शिक्षण में शिक्षाशास्त्रीय अध्ययन **(पृष्ठ 429–508)**

विषय–सूची

परिचय 1

इकाई 1 हिंदी शिक्षण : प्रकृति एवं इतिहास 3–157

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 भाषा का अर्थ एवं हिंदी भाषा की उत्पत्ति
1.2.1 भाषा का अर्थ, परिभाषाएं एवं प्रकृति व प्रकार्य
1.2.2 हिंदी भाषा की उत्पति एवं प्रगति
1.2.3 भाषा परिवार
1.2.4 वर्णमाला
1.2.5 स्रोत (ध्वनियां)
1.3 हिंदी भाषा शिक्षण का महत्व, उपयोग, चुनौतियां एवं समाधान
1.3.1 महत्व (राष्ट्रभाषा, राजभाषा, संपर्क भाषा, मानक भाषा और बोली)
1.3.2 उपयोग (शैक्षिक, बोलचाल, कार्यालय, बाजार एवं राजनैतिक स्तर पर)
1.3.3 चुनौतियां एवं समाधान : संचार माध्यम एवं प्रिंट माध्यम
1.4 हिंदी भाषा शिक्षण का सामान्य इतिहास
1.4.1 प्राथमिक पाठ्यक्रम के संबंध में
1.4.2 माध्यमिक पाठ्यक्रम के संबंध में
1.5 विद्यालयीन पाठ्यचर्या में हिंदी : एक सामान्य परिचय
1.5.1 श्रवण कौशल
1.5.2 वाचन (मौखिक) कौशल
1.5.3 पठन कौशल
1.5.4 लेखन कौशल
1.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.7 सारांश
1.8 मुख्य शब्दावली
1.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.10 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 2 हिंदी शिक्षण के उद्देश्य एवं उपागम 159–258

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 प्रारंभिक शिक्षा स्तर पर हिंदी शिक्षण के उद्देश्य
2.2.1 ज्ञानात्मक : ध्वनि, शब्द, वाक्य एवं अर्थ ज्ञान
2.2.2 कौशलात्मक : सुनना, बोलना, पढ़ना एवं लिखना तथा सुनकर, बोलकर, पढ़कर एवं लिखकर अर्थ ग्रहण करना
2.3 उच्चतर माध्यमिक स्तर पर हिंदी शिक्षण के उद्देश्य
2.3.1 ज्ञानात्मक : गद्य एवं पद्य विधाओं का संक्षिप्त परिचय (कविता, कहानी, नाटक, एकांकी एवं अन्य), हिंदी के विविध रूपों (राष्ट्रभाषा, राजभाषा, संपर्क भाषा, विश्व भाषा) का ज्ञान
2.3.2 कौशलात्मक : (हिंदी को मानक ढंग से बोलना, विभिन्न विधाओं के पठन में उपयुक्त तरीके का प्रयोग, विराम चिह्नों का प्रयोग, श्रुत लेखन : शिरोरेखा)
2.3.3 संरचनात्मक (कविता, कहानी, व्यंग्य, पत्र, निबंध लेखन आदि विधाओं में रुचि उत्पन्न करना)
2.4 प्रारंभिक शिक्षा में प्रयुक्त उपागम
2.4.1 सम्प्रेषण, चार्ट एवं चित्र
2.4.2 भाषा, खेल आदि

2.5 उच्चतर माध्यमिक स्तर पर प्रयुक्त उपागम
2.5.1 चार्ट एवं मॉड्यूल
2.5.2 भाषा प्रयोगशाला आदि
2.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.7 सारांश
2.8 मुख्य शब्दावली
2.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.10 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 3 सामाजिक परिवेश में हिंदी की संरचना 259–427

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 हिंदी शिक्षण का अन्य विषयों एवं समाज में प्रचलित बोलियों से सहसंबंध
3.2.1 हिंदी शिक्षण का विज्ञान, भूगोल, इतिहास, राजनीति, संगीत, दर्शन, समाजशास्त्र, पर्यावरण से संबंध
3.2.2 स्थानीय बोलियों के साथ हिंदी भाषा का सहसंबंध
3.3 हिंदी शिक्षण द्वारा ज्ञानात्मक संरचना का विकास
3.3.1 व्याकरणिक इकाइयों का अध्ययन– उपसर्ग, प्रत्यय, संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, विशेषण, कारक एवं समास
3.3.2 रस, छंद एवं अलंकार
3.3.3 पर्यायवाची, विलोम शब्द, मुहावरे एवं लोकोक्ति
3.3.4 चित्र आधारित कविता–कहानी की संरचना एवं वाक्य रचना
3.4 हिंदी शिक्षण अनुप्रयोग (समस्त व्याकरणिक इकाइयों का वर्गीकरण/विश्लेषण, प्रयोग एवं प्रश्नावली निर्माण)
3.4.1 समस्त व्याकरणिक इकाइयों वर्गीकरण/विश्लेषण व प्रयोग
3.4.2 प्रश्नावली निर्माण
3.5 हिंदी शिक्षण में सहायक शिक्षण सामग्री (TLM) का प्रयोग
3.5.1 चित्र, चार्ट्स एवं मॉडल्स
3.5.2 दृश्य–श्रव्य सामग्री आदि
3.5.3 दृश्य एवं श्रव्य सामग्री का सामंजस्य
3.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.7 सारांश
3.8 मुख्य शब्दावली
3.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.10 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 4 हिंदी भाषा शिक्षण में शिक्षाशास्त्रीय अध्ययन 429–508

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 भाषा शिक्षण के प्रचलित सिद्धांतों का अध्ययन
4.2.1 भारतीय शिक्षाशास्त्रियों द्वारा प्रदत्त सिद्धांत
4.2.2 पाश्चात्य शिक्षाशास्त्रियों द्वारा प्रदत्त सिद्धांत
4.3 नवीन शिक्षाशास्त्रीय सिद्धांतों का अध्ययन एवं विश्लेषण
4.3.1 अवलोकन
4.3.2 अन्वेषण
4.3.3 प्रोजेक्ट कार्य
4.3.4 अवधारणात्मक विकास
4.3.5 गतिविधि आधारित अधिगम (ABL)
4.3.6 सक्रिय अधिगम प्रविधि (ALM)

4.4 पाठ योजना : 5E मॉडल एवं हिंदी विधाओं का शिक्षण
- 4.4.1 पाठ योजना : 5E मॉडल
- 4.4.2 कविता
- 4.4.3 कहानी
- 4.4.4 नाटक
- 4.4.5 पत्र
- 4.4.6 आलेख
- 4.4.7 व्यंग्य
- 4.4.8 चित्र कथा/कॉमिक्स/कार्टून
- 4.4.9 जीवनी
- 4.4.10 आत्मकथा
- 4.4.11 संस्मरण
- 4.4.12 यात्रावृत्त
- 4.4.13 उपन्यास

4.5 हिंदी भाषा शिक्षण का मूल्यांकन
- 4.5.1 शिक्षण और मूल्यांकन के आधारभूत उद्देश्य
- 4.5.2 ज्ञानात्मक एवं भावनात्मक या क्रियात्मक पक्ष
- 4.5.3 शैक्षिक मूल्यांकनः अवधारणा– मानक एवं कसौटी संदर्भित परीक्षण, निर्माणात्मक और संकलनात्मक मूल्यांकन

4.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

4.7 सारांश

4.8 मुख्य शब्दावली

4.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

4.10 सहायक पाठ्य सामग्री

परिचय

टिप्पणी

प्रस्तुत पुस्तक 'हिंदी शिक्षण' का लेखन विश्वविद्यालय के बी.एड. पाठ्यक्रम के अनुसार किया गया है।

हिंदी एक जनभाषा, साहित्यिक भाषा और भारत की राजभाषा भी है। भाषा का उपयोग हम जीवन–जगत को समझने के लिए, उससे जुड़कर प्रगति के शिखर तक पहुंचने के लिए करते हैं। इन सबके लिए जांच–पड़ताल, संप्रेषण, तर्क, सरीखे कौशलों की आवश्यकता पड़ती है। इसके अध्यापन में मनोवैज्ञानिकता एवं कलात्मकता अपरिहार्य अनिवार्यता है। इसके लिए विद्यालयी शिक्षा के आरंभिक वर्षों में शिक्षक 'भाषा–कौशल' को विकसित करने पर अपना ध्यान केंद्रित रखता है और आगे चलकर भाषा के साहित्यिक परिचय, सृजन, समीक्षा आदि तमाम पहलुओं को विस्तार देता है।

इस पुस्तक में हिंदी शिक्षण के विविध आयामों, प्रविधियों, बारीकियों, कौशलों आदि का व्यवस्थित अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। प्रत्येक इकाई के प्रारंभ में विषय–विश्लेषण से पूर्व उसके निहित उद्देश्यों को स्पष्ट कर दिया गया है। इकाई के बीच–बीच में विद्यार्थियों की योग्यता को परखने के लिए 'अपनी प्रगति जांचिए' के माध्यम से प्रश्न भी दिए गए हैं। अध्ययन की सुविधा के लिए पुस्तक को चार इकाइयों में बांटा गया है, जिनका विवरण इस प्रकार है–

पहली इकाई हिंदी शिक्षण की प्रकृति एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित है। इसमें भाषा का अर्थ, हिंदी भाषा शिक्षण का महत्व, उपयोग, हिंदी भाषा शिक्षण का सामान्य इतिहास, विद्यालयीन पाठ्यचर्या में हिंदी की पृष्ठभूमि आदि आधारभूत विषयों को स्पष्ट किया गया है।

दूसरी इकाई हिंदी शिक्षण के उद्देश्यों एवं उपागमों से हमारा परिचय कराती है। इसमें प्राथमिक और उच्चतर माध्यमिक शिक्षा स्तर पर हिंदी शिक्षण के उद्देश्य–उपागम रेखांकित किए गए हैं।

तीसरी इकाई में हम सामाजिक परिवेश में हिंदी की संरचनागत अवस्थिति से अवगत होते हैं। इसमें हिंदी शिक्षण का अन्यान्य विषयों एवं विविध बोलियों से सहसंबंध स्पष्ट किया गया है। हिंदी शिक्षण द्वारा ज्ञानात्मक संरचना का विकास हिंदी शिक्षण अनुप्रयोग एवं हिंदी शिक्षण में सहायक सामग्री का प्रयोग भी इस इकाई के पाठ्य विषय हैं।

चौथी इकाई हिंदी भाषा शिक्षण के शिक्षाशास्त्री अध्ययन पर आधारित है। इसमें भारतीय एवं पाश्चात्य शिक्षाशास्त्रियों द्वारा अस्तित्व में लाए गए शिक्षाशास्त्रीय सिद्धांत अंकित करते नवीन सिद्धांतों पर भी दृष्टिपात किया गया है। हिंदी की विविध विधाओं के शिक्षण और हिंदी भाषा–शिक्षण व मूल्यांकन पर भी इस इकाई में सामग्री दी गई है।

यह पुस्तक हिंदी शिक्षण के विविध स्वरूपों का सांगोपांग अध्ययन प्रस्तुत करती है। इन इकाइयों के अध्ययन से छात्र संबंधित विषयों से भली–भांति अवगत हो सकेंगे। हमें पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक छात्र–छात्राओं की जिज्ञासा को शांत कर, उनका ज्ञानवर्द्धन करेगी।

इकाई 1 हिंदी शिक्षण : प्रकृति एवं इतिहास

टिप्पणी

संरचना

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 भाषा का अर्थ एवं हिंदी भाषा की उत्पत्ति
1.2.1 भाषा का अर्थ, परिभाषाएं एवं प्रकृति व प्रकार्य
1.2.2 हिंदी भाषा की उत्पति एवं प्रगति
1.2.3 भाषा परिवार
1.2.4 वर्णमाला
1.2.5 स्रोत (ध्वनियां)
1.3 हिंदी भाषा शिक्षण का महत्व, उपयोग, चुनौतियां एवं समाधान
1.3.1 महत्व (राष्ट्रभाषा, राजभाषा, संपर्क भाषा, मानक भाषा और बोली)
1.3.2 उपयोग (शैक्षिक, बोलचाल, कार्यालय, बाजार एवं राजनैतिक स्तर पर)
1.3.3 चुनौतियां एवं समाधान : संचार माध्यम एवं प्रिंट माध्यम
1.4 हिंदी भाषा शिक्षण का सामान्य इतिहास
1.4.1 प्राथमिक पाठ्यक्रम के संबंध में
1.4.2 माध्यमिक पाठ्यक्रम के संबंध में
1.5 विद्यालयीन पाठ्यचर्या में हिंदी : एक सामान्य परिचय
1.5.1 श्रवण कौशल
1.5.2 वाचन (मौखिक) कौशल
1.5.3 पठन कौशल
1.5.4 लेखन कौशल
1.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.7 सारांश
1.8 मुख्य शब्दावली
1.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.10 सहायक पाठ्य सामग्री

1.0 परिचय

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। प्राणी भी ऐसा जो अपने विचारों, भावों और अनुभवों को बोलकर व्यक्त कर सकता है। अन्य प्राणी इस रूप में स्वयं के विचारों, भावों को प्रकट नहीं कर सकते। भाषा मनुष्य के लिए ईश्वर का दिया गया अनमोल वरदान है। ईश्वर ने यह शक्ति मनुष्य को प्रदान की है इसलिए मनुष्य सर्वश्रेष्ठ प्राणी है।

अपने भावों को हम हाथ, आंख, पैर तथा शारीरिक क्रियाओं के माध्यम से प्रकट कर सकते हैं। वस्तु प्रदर्शन, चित्र प्रदर्शन एवं भिन्न–भिन्न क्रियाओं द्वारा, भिन्न ध्वनि संकेतों द्वारा व्यापक अर्थ में भाव प्रदर्शन के इन सभी सिद्धांतों को भाषा कहते हैं। परंतु केवल अंग–प्रत्यंगों के संचालन और अन्य संकेतों के माध्यम से भावों की अभिव्यक्ति में वैसी पूर्णता नहीं आ पाती जैसी ध्वनि संकेतों के द्वारा व्यक्त होती है। इसलिए अधिकांश विद्वान, विचार और अनुभवों को व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त होने वाले ध्वनि संकेतों को ही भाषा की संज्ञा देते हैं। वैसे तो संसार के सभी प्राणी किसी न किसी रूप में अपने

भावों को व्यक्त करते हैं, परंतु इन सभी ध्वनि संकेतों को हम भाषा नहीं कह सकते। भाषा का संबंध हमारे विचारों से होता है, यह विचार शक्ति केवल मनुष्य को ही प्रदान है।

इस इकाई में हम भाषा के अर्थ एवं हिंदी भाषा की उत्पत्ति; हिंदी भाषा शिक्षण के महत्व, उपयोग, चुनौतियां एवं समाधान; हिंदी भाषा शिक्षण के सामान्य इतिहास एवं विद्यालयी पाठ्यचर्या में हिंदी का अध्ययन करेंगे।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- भाषा का अर्थ एवं हिंदी भाषा की उत्पत्ति को समझ पाएंगे;
- हिंदी भाषा के शिक्षण का महत्व, उपयोग, चुनौतियां एवं समाधान रेखांकित कर पाएंगे;
- हिंदी भाषा शिक्षण के सामान्य इतिहास से अवगत हो पाएंगे;
- विद्यालयी पाठ्यचर्या में हिंदी से परिचित हो पाएंगे।

1.2 भाषा का अर्थ एवं हिंदी भाषा की उत्पत्ति

सामान्यतः भाषा मनुष्य की सार्थक व्यक्त वाणी को कहते हैं। 'भाषा' शब्द संस्कृत की 'भाष्' धातु से बना है। इसका अर्थ है 'बोलना'। इस तरह भाषा का सामान्य अर्थ हुआ अपने विचारों या भावों को बोलकर प्रकट करना। जिन ध्वनि संकेतों से हम अपने विचारों एवं भावों को प्रकट करते हैं उनका यादृच्छिक रूप ही लिपि है अर्थात ध्वनि संकेतों की लिपि भाषा का लिखित रूप है।

1.2.1 भाषा का अर्थ, परिभाषाएं एवं प्रकृति व प्रकार्य

सामान्य अर्थ में भाषा विचारों, भावों के आदान–प्रदान का साधन है। भाषा की परिभाषा देना एक कठिन कार्य है परंतु भाषा वैज्ञानिकों ने इसकी अनेक परिभाषाएं दी हैं–

डॉ. भोलानाथ तिवारी कहते हैं– "भाषा उच्चारण अवयवों से उच्चरित मूलतः यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की वह व्यवस्था है जिसके द्वारा समाज के लोग आपस में विचारों का आदान–प्रदान करते हैं।"

डॉ. बाबूराम सक्सेना ने कहा है– "भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम है और एक ऐसी शक्ति है जो मनुष्य के विचारों, अनुभवों और संदर्भों को व्यक्त करती है। अर्थात जिन ध्वनि चिह्नों के द्वारा मनुष्य परस्पर विचार–विनिमय करता है, उनकी समष्टि ही भाषा है।"

डॉ. सुकुमार सेन– "अर्थवान् कंठोदगीर्ण ध्वनि–समष्टि ही भाषा है।"

डॉ. श्यामसुंदर दास– "मनुष्य और मनुष्य के बीच, वस्तुओं के विषय में अपनी इच्छा और मति का आदान–प्रदान करने के लिए व्यक्त ध्वनि–संकेतों का जो व्यवहार होता है, उसे भाषा कहते हैं।"

टिप्पणी

संघटनात्मक दृष्टि से भाषाशास्त्रियों ने भाषा की जो परिभाषा दी है, उसे इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है– "भाषा यादृच्छिक वाचिक ध्वनि–संकेतों की वह पद्धति है, जिसके द्वारा मानव परस्पर विचारों का आदान–प्रदान करता है।"

भाषा की परिभाषा के संबंध में डॉ भोलानाथ तिवारी ने निम्नलिखित विचार प्रस्तुत किए हैं–

1. भाषा बोलने वाले के विचारों को श्रोता तक पहुंचाती है, अर्थात भाषा विचार–विनिमय का माध्यम है।
2. भाषा निश्चित प्रयत्न के फलस्वरूप मनुष्य के उच्चारण अवयवों से निकली हुई ध्वनि–समष्टि होती है।
3. भाषा एक व्यवस्था है। उसके अपने नियम होते हैं, जिससे उस भाषा के बोलने वाले लोग परिचित होते हैं। इसी लिए वक्ता जो कुछ कहना चाहता है, श्रोता वह समझ लेता है।
4. भाषा में प्रयुक्त ध्वनि–समूह सार्थक तो होते हैं किंतु उनका भावों या विचारों से कोई संबंध नहीं होता है।
5. भाषा का प्रयोग समाज–विशेष में होता है, इसी में वह बोली समझी जाती है।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर संक्षेप में कहा जा सकता है कि भाषा एक व्यवस्थित पद्धति है, इसमें ध्वनि संकेतों के आधार पर अपने भावों की अभिव्यक्ति की जा सकती है। ये संकेत वागिन्द्रिय द्वारा उत्पन्न होने चाहिए। भाषा का मौलिक स्वरूप तभी समझ में आता है, जब उसके संकेतों का ज्ञान प्राप्त हो।

भाषा की प्रकृति

भाषा मनुष्यों द्वारा प्रयुक्त ध्वनि संकेतों का ऐसा रूप है जो विश्व के अलग–अलग क्षेत्रों में अलग–अलग रूपों में बोली जाती है फिर भी भाषा की अपनी प्रकृति है जिसे जानकर ही भाषा सीखी जा सकती है। भाषा वैज्ञानिकों ने भाषा की प्रकृति के बारे में निम्नलिखित प्रमुख बिंदु बताए हैं–

1. **भाषा अभिव्यक्ति का एक सांकेतिक साधन है**– विचारों और भावों के प्रकाशन के लिए भाषा को एक सांकेतिक साधन के रूप में काम में लाया जाता है। भाषा के रूप में प्रयुक्त संकेतों द्वारा आपसी विचार–विनिमय और भाव प्रकाशन में उपयुक्त सहायता प्रदान करने का कार्य किया जाता है।
2. **भाषा अर्जित संपत्ति है**– भाषा परंपरागत है। हम अपने पूर्वजों से चली आ रही भाषा को परिवार तथा वातावरण से सीखते हैं। भाषा अर्जित की जाती

टिप्पणी

है। हम अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त भी अन्य भाषा सीख सकते हैं। इस प्रकार भाषा अर्जित संपत्ति है।

3. **भाषा में समाज द्वारा स्वीकृत ध्वन्यात्मक संकेतों का प्रयोग होता है**– भाषा का स्वरूप चित्रात्मक और आंगिक आदि क्रियात्मक अभिव्यक्ति तक ही सीमित नहीं रहता। इसमें सार्थक ध्वन्यात्मक संकेतों का प्रयोग अनिवार्य होता है। इन संकेतों की सार्थकता इस बात पर निर्भर करती है कि इसे जिस समाज में प्रयुक्त किया जा रहा है उसकी मान्यता प्राप्त हो। समाज के सदस्यों द्वारा उसके मौखिक एवं लिखित रूप को आपस में अच्छी तरह बोला, पढ़ा, लिखा व समझा जा सकता हो।
4. **भाषा का विचारों से गहरा संबंध है**– भाषा विचारों की जननी है और विचारों का सही संप्रेषण भाषा के माध्यम से ही होता है। इसलिए भाषा और विचारों का आपस में अटूट संबंध है। इन्हें एक–दूसरे से अलग करके देखा और समझा ही नहीं जा सकता। विचार के बिना भाषा मूल्यहीन और निरर्थक है। मनुष्य के विचारों और भाषा दोनों का ही मूल्य और महत्व है। इसका कारण इसमें निहित पारस्परिक अंतःनिर्भरता ही है। मनुष्य के अलावा शेष प्राणियों में उनकी अपनी भाषा तो होती है परंतु विचारों के अभाव में उसका उतना मूल्य नहीं होता। इस तरह मानव–भाषा की अपनी एक अनूठी विशेषता होती है कि वह विचार शून्य न होकर विचार युक्त होती है।
5. **भाषा परिवर्तशील होती है**– भाषा स्थान बदलने के साथ ही बदल जाती है। क्योंकि भाषा पर समय, स्थान और व्यवहार का प्रभाव पड़ता है। सामान्य रूप से कोई भी भाषा–भाषी अपनी भाषा में विशेष परिवर्तन नहीं आने देना चाहता परंतु फिर भी भाषा में परिवर्तन होता रहता है। ईसापूर्व 1500 से 900 के बीच, जिस समय वेदों की रचना हुई, उस समय संस्कृत भाषा आज की तुलना में काफी कठिन थी। आज जो हिंदी बोली जाती है। उसका स्वरूप भी प्राचीन हिंदी से काफी पृथक है। आज की हिंदी में अरबी, फारसी, अंग्रेजी और उर्दू के शब्दों का समावेश होने के कारण इसके स्वरूप में परिवर्तन आया है।
6. **भाषा का अर्जन अनुकरण द्वारा होता है**– भाषा सीखने की प्रक्रिया अनुकरण द्वारा होती है। अपने वातावरण में बालक जिस प्रकार की भाषा दूसरों के मुख से सुनता है या लिखता हुआ देखता है उसे ही वह अनुकरण द्वारा सीखने का प्रयास करता है।

   भाषा अनुकरणशील होती है। जिस प्रकार मानव मस्तिष्क किसी भी घटना तथा परिवर्तन को तुरंत ग्रहण करने की क्षमता रखता है, उसी प्रकार भाषा भी नवीन शब्दों, लोकोक्तियों, मुहावरों अथवा अभिव्यक्ति शैली को ग्रहण कर लेती है। भाषा की इस ग्रहणशीलता के कारण ही साहित्य में युग परिवर्तन होते चलते हैं।

7. **भाषा का संबंध परंपरा से है**— भाषा की प्रकृति परंपरागत होती है। यह सदियों से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में चली आ रही है। जिसके कारण भाषा के परिवर्तित रूप में भी उसके मूलरूप के दर्शन होते हैं। हम और हमारी पीढ़ी वर्तमान में इसके रूप में थोड़ा बहुत परिवर्तन भी लाती है। इसलिए इसमें थोड़ा—बहुत परिमार्जन और परिवर्तन तो हम करते हैं परंतु इसमें आमूल—चूल परिवर्तन करने या पहले से चली आ रही भाषा के स्थान पर बिल्कुल नई भाषा का सृजन करने का कार्य एक साथ नहीं हो सकता। इस प्रकार भाषा का संबंध परंपरा से है। भाषा में परंपरा से शब्द, वाक्य रचना, अभिव्यक्ति शैली तथा लोकोक्ति—मुहावरे प्रविष्ट होते हैं। व्यक्ति तो परंपरा से चली आ रही भाषा को अनुकरण द्वारा ग्रहण करता है। जो कुछ भी परिवर्तन भाषा के स्वरूप में लाया जाता है वह समाज के द्वारा ही लाया जाता है और परंपरा द्वारा उसे आगे की पीढ़ियों को सौंपा जाता है।
8. **प्रत्येक भाषा की अपनी भौगोलिक सीमा होती है**— प्रत्येक भाषा का अपना एक क्षेत्र विशेष होता है तथा भौगोलिक सीमाएं होती हैं जिनके भीतर ही उसे अच्छी तरह बोला, लिखा, पढ़ा व समझा जाता है। उस क्षेत्र या सीमा से बाहर निकलते ही उसके स्वरूप में थोड़ा—बहुत परिवर्तन आना आरंभ हो जाता है अथवा उससे पूर्णतया भिन्न किसी अन्य भाषा की सीमाएं और क्षेत्र आरंभ हो जाता है।
9. **प्रत्येक भाषा की अपनी एक संरचना होती है**— प्रत्येक भाषा का अपना अलग से एक निश्चित स्वरूप और संरचना होती है जो उसमें निहित ध्वनियों, शब्दों और वाक्य—रचनाओं व संबंधित अर्थों में स्पष्ट रूप से झलकता है। कोई भी दो अलग—अलग भाषाएं, संरचना और ढांचे के स्वरूप से कभी भी एक जैसी नहीं हो सकतीं और यही बात उन दोनों को एक—दूसरे से अलग करती है।
10. **भाषा कठिनता से सरलता के नियमानुसार होती है**— मनुष्य का स्वभाव जन्मजात से यह है कि वह कठिनाईपूर्ण रास्ते को छोड़कर सरल पथ से ही आगे बढ़ना चाहता है। कम से कम प्रयास करके वह अपना काम चलाना चाहता है। उसके इस स्वभाव के कारण ही उसके द्वारा प्रयुक्त भाषा में भी परिवर्तन आते रहते हैं। उसकी भाषा कठिन से सरल की ओर प्रवाहित होती रहती है। जैसे— 'जितेन्द्र' का 'जितेन्दर' और 'जितू' बन जाना, इसे कम से कम प्रयास और सरलता की ओर बहने का परिणाम कहा जा सकता है।
11. **भाषा में अनेकरूपता और विभिन्नता होती है**— भाषा अनुकरण से सीखी जाती है और अनुकरण में पूर्णता की आशा करना व्यर्थ है। व्यक्तियों के मानसिक, संवेगात्मक और शारीरिक अंतरों के कारण उनके भाषा सीखने और उसे व्यवहार में लाने के ढंगों में भी अंतर आ जाता है। इस प्रकार वे जो भाषा व्यवहार में लाते हैं उसका स्वरूप अन्य के द्वारा व्यवहार में प्रयोग की

टिप्पणी

गई भाषा से थोड़ा–बहुत भिन्न अवश्य होता है। उनके संपर्क में आकर जो भी उनका अनुकरण कर भाषा सीखते हैं उनकी भाषा इस तरह दूसरों का अनुकरण कर सीखने वाले व्यक्तियों से स्वाभाविक रूप से भिन्न होती है। धीरे–धीरे इस तरह की भिन्नता भाषा के कई रूपों को जन्म देने का कारण बन सकती है। आज हिंदी भाषा के जो रूप उसकी विभाषाओं और बोलियों में हमें दिखते हैं वे इसी बात का परिणाम हैं।

12. **भाषा संश्लेषणात्मकता से विश्लेषणात्मकता की ओर जाती है**– भाषा संश्लेषणात्मकता या संयोगावस्था से विश्लेषणात्मकता या वियोगावस्था की ओर जाती हुई दिखाई देती है। जुड़े हुए अक्षरों, शब्दों और वाक्यों के स्थान पर इनके अलग–अलग रूपों का प्रचलन होने लगा है। जैसे संस्कृत भाषा में 'बालकः पुस्तकम् पठति' के उपयोग के स्थान पर अब हिंदी में 'बालक पुस्तक को पढ़ता है' कहा जाता है। 'पुस्तकम्' के संयुक्त रूप के स्थान पर अब 'पुस्तक को' और 'पठति' के संयुक्त रूप के स्थान पर 'पढ़ता है' जैसे वियुक्त रूपों का प्रयोग किया जाता है।

13. **भाषा संस्कृति और सभ्यता से जुड़ी है**– भाषा का अपने प्रयोग करने वाले व्यक्तियों और समाज की सभ्यता और संस्कृति से अटूट संबंध रहता है। भाषा के कारण ही समाज के सदस्य आपस में विचारों और भावनाओं का आदान–प्रदान करते हैं। उनके समस्त आचरण और व्यवहार को भाषा ही वहन करती है और उसे समाज का आचरण और व्यवहार बनाती है। इसलिए किसी भी समाज की संस्कृति और सभ्यता की झलक उसकी भाषा में मिल जाती है। भाषा, आम बोलचाल और साहित्य के रूप में समाज और संस्कृति को उजागर करती हुई दिखाई देती है, वहीं सभ्यता और संस्कृति में जो भी उपस्थित रहता है उसको ध्यान में रखते हुए अपने स्वभाव और स्वरूप को उसी के अनुरूप ढालने का भी प्रयत्न करती हुई दिखाई देती है।

14. **भाषा उच्चारित एवं लिखित दोनों है**– मानव के पास ध्वनियों के उच्चारण के अवयव हैं। अतः वह अपने भावों को ध्वनि संकेतों के माध्यम से व्यक्त करता है। इसके साथ–साथ भाषा के विकास के साथ ही मनुष्य ने लिपि के क्षेत्र में भी अनुसंधान किया। अब मनुष्य अपने विचारों को लिपि में आबद्ध करता है। हड़प्पा संस्कृति के लोग चित्रलिपि का प्रयोग करते थे।

15. **भाषा का उपयोग संप्रेषण एवं अन्योय क्रिया के लिए होता है**– संप्रेषण या अन्योन्य क्रिया की सफलता पर ही भाषा की उपयोगिता निर्भर करती है। अतः उसका उपयोग करने वाले उसके उपयोग में अधिक से अधिक एकरूपता रखने के लिए बाध्य होते हैं। दूसरे शब्दों में, जिन व्यक्तियों में आपस में संप्रेषण के अवसर जितने अधिक होंगे उनकी भाषा में एकरूपता उतनी अधिक होगी और अवसर जितने कम होंगे एकरूपता उतनी ही कम होने की संभावना होती है। यही कारण है कि एक स्थान से दूसरे स्थान की

दूरी जितनी अधिक होगी उनके भाषाई प्रयोगों में एकरूपता उतनी ही कम होती है और जब यह एकरूपता की कमी स्पष्ट दिखाई देती है तो भाषा वैज्ञानिक उनको दो भिन्न बोलियों के रूप में स्वीकार करते हैं।

16. **भाषाई योग्यता अन्य संज्ञानात्मक योग्याताओं से प्रकारात्मक रूप से भिन्न है**– चार से छः वर्ष की आयु में बालक की भाषा अर्जन की योग्यता अपने चरम पर होती है जबकि अन्य संज्ञानात्मक योग्यताएं अपने प्रारंभिक स्तर पर होती हैं। भाषा अर्जन के क्षेत्र में हुए शोध के अनुसार भाषाई क्षमता छः–सात वर्ष की आयु के बाद कम होने लगती है और पंद्रह–सोलह वर्ष की आयु तक पहुंचते–पहुंचते अत्यंत कम हो जाती है। परंतु अन्य योग्यताएं उस आयु में अपने चरम पर पहुंचती हैं। इसलिए भाषाई योग्यता और अन्य संज्ञानात्मक योग्यताएं आपस में प्रकारात्मक रूप से भिन्न हैं।
17. **भाषाई योग्यता सभी व्यक्तियों में गुणात्मक रूप से समान होती है**– भाषाई योग्यता अन्य संज्ञानात्मक योग्यताओं से एक और तरह से भिन्न है। जहां संज्ञानात्मक योग्यता कुछ लोगों में कम कुछ में ज्यादा होती है, भाषाई योग्यता सभी व्यक्तियों में समान होती है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी आवश्यकता के अनुसार भाषा का उपयोग करने में सक्षम होता है। भाषा साध्य नहीं साधन है। वह साधन है चिंतन–मनन का, विचारों, भावनाओं और संवेगों की अभिव्यक्ति का, ज्ञान–विज्ञान की अवधारणाओं के अर्जन का।

भाषा के प्रकार्य

भाषा वैज्ञानिकों के अनुसार भाषा का अध्ययन दो दृष्टिकोण से संभव है–

1. संरचनात्मक पक्ष
2. प्रकार्यात्मक पक्ष

संरचनात्मक पक्ष से भाषा अध्ययन में भाषा की रूपरेखा अर्थात् संरचना का विश्लेषण किया जाता है। इसमें भाषा की प्रकृति को उसकी इकाइयों की संरचना, ध्वनि, शब्द, वाक्यों की अर्थ संगतता आदि के आधार पर स्पष्ट किया जाता है। अर्थात् भाषा के संरचनात्मक पक्ष से यह प्रश्न जुड़ा है– 'भाषा क्या है?' जबकि 'भाषा क्या करती है?' यह प्रश्न भाषा के प्रकार्यात्मक पक्ष से जुड़ा है।

भाषा के प्रकार्यात्मक रूप का अध्ययन प्राग स्कूल की देन है। इस स्कूल की स्थापना 1926 ई. में हुई थी। इसके संस्थापक विलेम मथेसिउस थे जो कैरोलाइन विश्वविद्यालय में प्राध्यापक थे। प्राग स्कूल की सर्वप्रमुख विशेषता यह थी कि उन्होंने भाषा का प्रकार्य के आधार पर विश्लेषण किया। इसमें यह दिखाया गया कि प्रत्येक संरचना अवयव का समस्त भाषा के प्रयोग के संदर्भ में क्या प्रकार्य है। इसीलिए इस सिद्धांत को प्रकार्यात्मक भाषा विज्ञान का नाम दिया गया। प्राग संप्रदाय में भाषा के प्रकार्य पर कार्य करने वाले प्रमुख भाषा वैज्ञानिक निकोलायी सेर्गेयेविच त्रुवेत्स्कॉय, आंद्रे मार्टिने तथा रोमन याकोब्सन हैं। इस संप्रदाय के भाषा वैज्ञानिक भाषा की संदर्भाश्रित

शैलियों को भी महत्वपूर्ण मानते हैं क्योंकि अलग–अलग सामाजिक संदर्भों में वक्ता अलग–अलग शैलियों का प्रयोग करता है। निकोलायी ने प्रकार्य सिद्धांतों को स्वनिम के क्षेत्र में प्रयोग किया। आंद्रे ने ध्वनि–परिवर्तन पर और परस्पर स्वनिमों की प्रकार्यात्मक उपयोगिता पर विचार किया।

इसी काल में आस्ट्रिया में एक मनोवैज्ञानिक कार्ल ब्रुल्हर हुए। उन्होंने भाषा के प्रकार्यात्मक सिद्धांतों को लेकर महत्वपूर्ण बात कही। उनका मानना है कि भाषा एक सांकेतिक व्यवस्था है, किंतु यह संप्रेषण का एक मुख्य उपकरण है। इसी उपकरण के माध्यम से वक्ता श्रोता से कुछ कहता है।

प्रकार्यात्मक पक्ष के अंतर्गत यह प्रश्न आता है कि 'भाषा क्या करती है?' भाषा के अनेक कार्य हैं जिनमें सर्वप्रमुख है– विचारों का आदान–प्रदान। भाषा का प्रकार्यात्मक पक्ष वक्ता और श्रोता के बीच संप्रेषण–व्यापार अथवा वार्तालाप से जुड़ा है। इसका संबंध संप्रेषण के अंतर्गत विभिन्न उपादानों के आधार पर भाषा की विभिन्न भूमिकाओं से जुड़ा है।

समाज भाषा विज्ञान के अंतर्गत भाषा का लक्ष्य केवल अभिव्यक्ति न होकर विचारों का आदान–प्रदान या संप्रेषण है। इसीलिए भाषा को विभिन्न प्रकार्यों के संप्रेषण व्यवस्था के संदर्भ में देखा जाता है। भाषा को विचारों के आदान–प्रदान का साधन मानते ही, इस व्यवस्था के तीन पक्ष या उपादान हमारे सामने दृष्टिगोचर होते हैं– (1) वक्ता, (2) श्रोता, (3) कथन।

1. **वक्ता**– अपने विचारों को बोलकर संप्रेषित करने वाला।
2. **श्रोता**– दूसरों के विचारों को सुनकर ग्रहण करने वाला।
3. **कथन**– वह विचार जो बोलकर संप्रेषित व सुनकर ग्रहण किया जाता है।

भाषा संप्रेषण की द्विध्रुवीय प्रक्रिया है। इसमें एक ओर अपनी बात कहने वाला वक्ता होता है तो दूसरी ओर उस बात को सुनने वाला श्रोता होता है। इस संप्रेषण प्रक्रिया को बनाये रखने के लिए वक्ता और श्रोता की भूमिका बदलना आवश्यक होता है। एक समय जो श्रोता है, वही अगली बार वक्ता हो जाता है, इस प्रकार विचारों का आदान–प्रदान संभव हो पाता है। जैसे–

वक्ता ⟶ कथन ⟶ श्रोता
↑ ↓
श्रोता ⟵ कथन ⟵ वक्ता

संप्रेषण के अंतर्गत वक्ता और श्रोता की क्रिया विपरीत रूप से कार्य करती है। सबसे पहले वक्ता के मन में कोई विचार या अर्थ आता है तब वह इसकी अभिव्यक्ति के लिए वाक्य का निर्माण करता है। वाक्य के लिए शब्दों का और शब्दों के लिए ध्वनि का चयन किया जाता है। परंतु जब श्रोता सुनता है तो वह ध्वनि–गुच्छ से प्रारंभ करता है, फिर अर्थ पर पहुंचता है। इस बिंदु को इस प्रकार समझा जा सकता है–

वक्ता = अर्थ/विचार → वाक्य → शब्द → ध्वनियां

श्रोता = ध्वनियां → शब्द → वाक्य → अर्थ/विचार

वक्ता और श्रोता के बीच की यह प्रक्रिया बहुत तेजी से घटती है। भाषायी संप्रेषण में वक्ता श्रोता की और श्रोता वक्ता की भूमिका निभाता है। अर्थात बातचीत करते समय दोनों की भूमिकाएं लगातार बदलती रहती हैं। भाषा के इस अभिलक्षण को अंतर्विनिमयता कहा जाता है।

भाषा में एक प्रकार की संरचनात्मक अधीनता होती है। प्रत्येक भाषा की अपनी एक विशिष्ट संरचना होती है। उसमें ध्वनि, शब्द, वाक्य या अर्थ इत्यादि में किसी भी स्तर पर एक या एक से अधिक स्तरों पर संरचना या ढांचे में अंतर अवश्य होता है। इसी अंतर की वजह से भाषाओं या भाषा की अपनी अलग स्वतंत्र सत्ता बनती है। संरचना सापेक्ष होते हुए भी भाषा में यह गुण मौजूद होता है कि एक ही अर्थ या विचार को एक से अधिक संरचनाओं के माध्यम से अभिव्यक्त किया जा सकता है, जैसे–

'सूखे हुए कपड़े उतार लाओ।'

'जो कपड़े सूख गए हैं, उन्हें उतार लाओ।'

दोनों वाक्यों का कथ्य, विचार या अर्थ एक ही है परंतु उनकी अभिव्यक्ति अलग वाक्य संरचनाओं द्वारा हुई है।

संप्रेषण प्रक्रिया के अंतर्गत एक समय में जो वक्ता होता है, वही अगली बार श्रोता हो जाता है। विचारों का आदान–प्रदान इसी प्रकार संभव हो पाता है। इस आदान–प्रदान से संबंधित संदेश सही रूप में संप्रेषित हो इसके लिए आवश्यक है कि दोनों के बीच नियम संहिता विद्यमान हो। इस नियम संहिता को कोड कहते हैं। जिस कोड के माध्यम से वक्ता अपनी बात कहता है, श्रोता को उस कोड की जानकारी होनी चाहिए। यदि श्रोता को उस कोड की जानकारी नहीं होगी तो संप्रेषित कथन को श्रोता ग्रहण नहीं कर पाएगा। इस तरह कोड का तात्पर्य यह है कि कथ्य को कथन रूप में बांधने के भाषिक नियम। यदि वक्ता अपने कथन को संप्रेषित करने के लिए तमिल भाषा के कोड का सहारा ले और श्रोता को उस भाषा के कोड की जानकारी न हो वह हिंदी भाषा भाषी हो तो वह संदेश श्रोता ग्रहण ही नहीं कर पाएगा। संदेश को समझने के लिए वक्ता श्रोता के मध्य एक समान कोड का होना जरूरी है। वक्ता मूर्त संदेश को श्रोता तक पहुंचाने के लिए कोडीकरण का उपयोग करता है। जबकि श्रोता उस संदेश की अर्थ प्राप्ति के लिए विकोडीकरण करता है, जो कोड की समानता होने पर ही संभव होता है।

यह संदेश किसी न किसी संदर्भ से युक्त होता है। वक्ता और श्रोता जो विचारों का आदान–प्रदान करते हैं, उसका उनके जगत के संदर्भों से संबंध होता है। इसको 'संदेश की विषयवस्तु' भी कहा जाता है।

वक्ता और श्रोता के बीच मानसिक और भौतिक स्तर पर निरंतर संबंध बना रहना आवश्यक होता है। संबंध बनाए रखने का यह कार्य चैनल या सारणी द्वारा संपन्न होता है। इस तरह भाषा की प्रकार्यात्मक प्रकृति को निर्धारित करने वाले छः उपादान हैं, जो इस प्रकार हैं–

1. वक्ता
2. श्रोता
3. संदर्भ
4. कथन
5. कोड
6. सरणी

प्रकार्यात्मक प्रकृति को निर्धारित करने वाले इन छः उपादानों के आधार पर भाषा के छः प्रकार्य माने गए हैं–

उपादान	**प्रकार्य**
वक्ता	अभिव्यक्तिपरक (भावात्मक)
श्रोता	निदेशपरक (क्रियात्मक)
संदर्भ	संकेतपरक (विषयात्मक)
कथन	काव्यपरक (कलात्मक)
कोड	तर्कपरक (निरूपात्मक)
सरणी	संपर्कपरक (संबंधात्मक)

1. **अभिव्यक्तिपरक प्रकार्य**– यह प्रकार्य वक्ता उपादान से संबंधित होने के कारण, इसकी प्रकृति भावात्मक होती है। इसमें विषयवस्तु के प्रति वक्ता अपने जुड़ाव, दृष्टिकोण और संबंध को व्यक्त करता है। कोई बात सुनकर या दृश्य देखकर वक्ता कभी उस पर साधारण प्रतिक्रिया व्यक्त करता है तो कभी विस्मयबोधक शब्दों, पद्यबंधों या वाक्यों को कभी बल बोधक शब्दों, जैसे ही, तो, भी आदि शब्दों द्वारा व्यक्त करता है। उदाहरण के लिए– 'वाह, कितना सुंदर इंद्रधनुष है'– में हर्ष मिश्रित विस्मय है। इसी तरह अरे! अहा! ओह! इत्यादि इसी प्रकार की अभिव्यक्तियां हैं। भाषा के प्रयोग में विस्मयादिबोधक अभिव्यक्तियों का प्रयोग इसी प्रकार्य से संबंधित है। साहित्यिक विधाओं के अंतर्गत गीतिकाव्य को इसका उदाहरण माना जाता है। गीतिकाव्य में कवि के व्यक्तिगत भावों, व्यक्तिगत संवेदनाओं आदि की अभिव्यक्ति होती है। अतः इन सबका संबंध अभिव्यक्तिपरक प्रकार्य से है।
2. **निदेशपरक प्रकार्य**– यह प्रकार्य श्रोता उपादान से संबंधित होने के कारण अपनी प्रकृति में क्रियात्मक है। इसके अंतर्गत वार्तालाप या बातचीत के माध्यम से श्रोता को संबोधित किया जाता है। इसके साथ–साथ इसमें आज्ञा, अनुरोध, प्रश्न इत्यादि किए जाते हैं, जिन पर श्रोता के माध्यम से प्रतिक्रिया व्यक्त होती है। इसलिए इस प्रकार्य के अंतर्गत अनुरोध वाचक, संबंधवाचक, आज्ञावाचक, प्रश्नवाचक, अभिव्यक्तियां या व्याकरणिक इकाइयां आती हैं। साहित्यिक विधाओं में 'नाटक' को इस प्रकार्य का उदाहरण माना जाता है।

3. **संकेतपरक प्रकार्य**– यह प्रकार्य संदर्भ उपादान से संबंधित होने के कारण अपनी प्रकृति में विषयात्मक है। इस प्रकार्य के आधार पर प्राप्त सूचनाओं को वक्ता अपने अनुभवों के आधार पर प्रमाणित कर सकता है। साहित्यिक विधाओं में उपन्यास और महाकाव्य को इसका उदाहरण माना जाता है।
4. **काव्यपरक प्रकार्य**– यह प्रकार्य कथन उपादान से संबंधित होने के कारण अपनी प्रकृति में कलात्मक है। कलात्मक प्रकार्य का सीधा संबंध कथन के शैली पक्ष या कथन शैली से होता है। विषयवस्तु या कथ्य को काव्य वस्तु बनाने के लिए शैलीगत उपकरणों का आश्रय लिया जाता है। जैसे अलंकार, छंद, रस, बिंब, लय तथा अन्य लाक्षणिक प्रयोग इसके उपयुक्त उदाहरण हैं। अभिव्यक्ति की इन सभी शैलीगत विशिष्टताओं को भाषा के काव्यपरक प्रकार्य में माना जाता है।
5. **तर्कपरक प्रकार्य**– यह प्रकार्य कोड उपादान से संबंधित होने के कारण अपनी प्रकृति में निरूपात्मक है। शब्दों को परिभाषिक और कथन शैली को वैज्ञानिक और तार्किक बनाने वाले उपकरण इसके अंतर्गत आते हैं। शास्त्रीय लेखन और निबंध को इस प्रकार्य से संबंधित माना जाता है। साधारण वार्तालाप में भी इसका प्रयोग किया जाता है, जैसे– 'मेरे कहने का मतलब यह है' या 'जो मैंने कहा, क्या आप समझ गए?' आदि वाक्य तर्कपरक प्रकार्य के उदाहरण हैं।
6. **संपर्कपरक प्रकार्य**– यह प्रकार्य सरणी या चैनल उपादान से संबंधित होने के कारण अपनी प्रकृति में संबंधात्मक है। वक्ता या श्रोता के मध्य मानसिक स्तर और भौतिक स्तर पर बनने वाले संबंधों से यह जुड़ा है। बातचीत या वार्तालाप के आरंभ में वक्ता का अभिवादन या टेलीफोन पर 'हैलो' से अपनी बात को आरंभ करना और कहानी या बातचीत, वार्तालाप करते समय वक्ता का यह कहना– 'क्या आप मेरी बात सुन रहे हो' और श्रोता द्वारा 'हां', 'ठीक है', 'अच्छा' इत्यादि कहना संपर्कपरक प्रकार्य के ही उदाहरण हैं।

1.2.2 हिंदी भाषा की उत्पति एवं प्रगति

आज जिसे हम हिंदी कहते हैं, वह शौरसेनी का ही विकसित रूप है। इसका जन्म समय 1000 ई. के लगभग माना जा सकता है, क्योंकि चौदहवीं सदी तक साहित्य में अपभ्रंश का प्रयोग होता रहा है और वर्तमान आर्य भाषाओं का साहित्य में प्रयोग तेरहवीं शताब्दी के आदि से आरंभ हो गया था। साहित्यिक रूप लेने में किसी भी भाषा को कुछ समय तो लगता ही है। अतः इस आधार पर हिंदी का जन्म दसवीं शताब्दी में हुआ, ऐसा माना जा सकता है।

(अ) विकास का आदिकाल

हिंदी का विकास क्रमशः प्राकृत और अपभ्रंश के पश्चात हुआ है। हिंदी के विकास का स्पष्ट दर्शन हमें चंदवरदायी के समय से होने लगता है। यह समय बारहवीं सदी का

टिप्पणी

अंतिम अर्द्ध भाग है परंतु उस समय में भी इसकी भाषा हिंदी से बहुत भिन्न हो गई थी। प्रसिद्ध वैयाकरण हेमचंद्र का समय संवत् 1144 और संवत् 1229 के बीच है। हेमचंद्र ने अपने व्याकरण में अपभ्रंश के कुछ उदाहरण दिए हैं। इससे पूर्व, विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी के दूसरे भाग में वर्तमान महाराज भोज का पितृव्य द्वितीय वाकपति राजा परमार मुंज एक पराक्रमी राजा के साथ–साथ एक सहृदय कवि भी था। एक बार वह कल्याण के राजा तैलप के यहां बंदी हो गया। उसी समय मुंज ने कुछ दोहों की रचना की थी। उदाहरण रूप में एक प्रस्तुत है –

जा मति पच्छई संपज्जइ सा मति पहली होई।
मुंज भणइ मृणालपइ विघन न बेंठई कोई।

अर्थात, जो मति पीछे संपन्न होती है, वह यदि पहले हो तो मुंज कहता है, हे मृणालवती, कोई विघ्न न सतावे।

यह दोहा पढ़ते ही पता लग जाता है कि यह हिंदी के कितने पास पहुंचता है। भाषा साहित्यिक होने के कारण कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग किया गया है जिनका रूप प्राकृत है जैसे– संपज्जइ। इन्हें पृथक कर देने पर भाषा और भी स्पष्ट हो जाती है।

इस प्रकार यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि हिंदी का विकास हेमचंद्र से पूर्व ही होने लगा था तथा चंदवरदायी के समय उसका कुछ–कुछ रूप स्थिर हो गया था। अतः हिंदी का आदि काल हम संवत 1050 के लगभग मान सकते हैं।

हिंदी प्रदेश की भाषा के सबसे प्राचीन उदाहरण पृथ्वीराज तथा समर सिंह के दरबारों से संबंधित पत्रों के रूप में थे। इनका प्रकाशन नागरी प्रचारिणी सभा ने किया था।

नाथ पंथ तथा वज्रयानी सिद्ध साहित्य से संबंधित बहुत–सी नवीन सामग्री पीतांबर दत्त बड़थ्वाल व राहुल सांकृत्यायन जैसे विद्वान सर्वप्रथम प्रकाश में लाए थे। इस साहित्य के रचयिताओं के काल का अनुमान 700 ई. से 1300 ई. के मध्य लगाया जाता है। प्रारंभिक सिद्ध साहित्य की भाषा स्पष्ट रूप से अपभ्रंश (मागधी) है।

आदि काल की भाषा का तीसरा रूप चारण, धार्मिक तथा लौकिक काव्य ग्रंथों में मिलता है। इस प्रकार के लेखकों में नरपति नाल्ह, चंदवरदायी तथा रासो की भाषा राजस्थानी है, कहीं–कहीं खड़ी बोली के कुछ रूप पाए जाते हैं। 'पृथ्वीराज रासो' चंदवरदायी का प्रमुख ग्रंथ है। चंद की काव्य रचना का समय 1168 ई. से लेकर 1192 ई. तक माना जाता है। वर्तमान पृथ्वीराज रासो में ब्रजभाषा के साथ अपभ्रंश खड़ी बोली तथा राजस्थानी मिश्रण दिखाई पड़ता है।

जगनिक चंदवरदायी का समकालीन कवि था। वह बुंदेलखंड के राजा परमार के दरबार में था। उस कवि की मूल कृति का पता नहीं चलता है, पर यह माना जाता है कि उसके बनाए ग्रंथ के आधार पर ही प्रारंभ में आल्ह खंड की रचना हुई थी।

विद्यापति कवि के जिन पदों का संग्रह मिथिला में हुआ है, उनकी भाषा मैथिली है तथा बंगाल में संगृहीत पद समूह की भाषा बंगाली है। इनके किसी भी वर्तमान संग्रह की भाषा पंद्रहवीं शताब्दी के प्रारंभ की नहीं मानी जा सकती है। हिंदी अथवा दक्खनी उर्दू साहित्य का विकास दक्षिण भाषा में हुआ। इस साहित्य का आरंभ 1326 ई. में मुहम्मद तुगलक के दक्षिण आक्रमण के पश्चात हुआ। इस साहित्य की भाषा पुरानी खड़ी बोली है। इन लेखकों में सबसे प्रसिद्ध ख्वाजा बंदा नवाज थे। इनका समय 1121 ई. से 1452 ई. तक रहा।

आदि काल की हिंदी में अपभ्रंश की लगभग सभी ध्वनियां आ गई थीं पर साथ में कुछ नई ध्वनियों का भी विकास हुआ। अपभ्रंश में संयुक्त स्वर नहीं थे। हिंदी में 'ए' तथा 'ओ' दो संयुक्त स्वर इस काल में प्रयुक्त होने लगे। व्यंजनों में एक तो दंत्योष्ठ्य 'व' नया विकसित हो गया तथा दो उत्क्षिप्त ध्वनियां 'ड़', 'ढ़' भी प्रयुक्त होने लगीं।

इस काल का साहित्य जिस भाषा में लिखा गया उसके विशेषतया दो रूप थे – डिंगल तथा पिंगल। डिंगल तो वह भाषा थी जिसमें प्राकृत के प्राचीन शब्दों का बाहुल्य था। इस भाषा का ढांचा राजस्थानी या गुजराती था। पिंगल उस भाषा को कहते थे, जिसका ढांचा पुरानी ब्रजभाषा का होता था, जिसमें थोड़ा–बहुत खड़ी बोली या पंजाबी का भी पुट होता था। यह एक सामान्य साहित्यिक भाषा थी। वास्तव में हिंदी का संबंध इसी पिंगल भाषा से है। 'पृथ्वीराज रासो' इसी साहित्यिक सामान्य भाषा में लिखा गया है।

(ब) विकास का मध्यकाल

आदिकाल के पश्चात हिंदी के विकास का दूसरा चरण अर्थात मध्यकाल लगभग 525 वर्षों तक माना जाता है। इस काल को हम दो भागों में बांट सकते हैं। प्रथम भाग 1375 ई. से 1700 ई. तक मानते हैं। इस काल में हिंदी की पुरानी बोलियां परिवर्तित होकर ब्रज, अवधी तथा खड़ी बोली का रूप धारण करती हैं।

दूसरा भाग 1700 ई. से लेकर 1900 ई. तक माना जाता है। इसमें ब्रज, अवधी, खड़ी बोलियां परिष्कृत होती हैं, परिमार्जित होती हैं और उनमें प्रौढ़ता आती है। वे मात्र बोलियां न रहकर भाषा का रूप ले लेती हैं।

अवधी तथा ब्रज, इन दो बोलियों का साहित्यिक रूप में विकास सोलहवीं शताब्दी से प्रारंभ हुआ।

अवधी : मध्ययुग में भक्ति आंदोलन का विशेष स्थान है। इस काल में धर्म प्रचारकों ने जनमानस तक पहुंचने की आवश्यकता का अनुभव किया। जनमानस तक पहुंचने के लिए जनसाधारण की भाषा का ज्ञान तथा उसका उपयोग आवश्यक हो गया। इसी आवश्यकता के कारण निर्गुण पंथी संत कवियों ने जनसाधारण की भाषा को अपनाया, उसमें कविता की परंतु इन कवियों की भाषा एक विचित्र प्रकार की खिचड़ी है–

टिप्पणी

1. संत कवि कबीर के प्रभाव से इस प्रकार की खिचड़ी भाषा में विशेषकर पूरबी भाषा (अवधी) की बहुलता रही है।
2. आगे चलकर जब यही अवधी प्रेमाख्यानक मुसलमान कवियों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनी तो इसमें किंचित परिमार्जन हुआ, जैसे– जायसी के 'पद्मावत' की अवधी।

अंत में राम भक्ति शाखा के प्रमुख कवि तुलसीदास ने उसका परिमार्जन कर उसे प्रौढ़ता प्रदान की तथा उसे साहित्यिक आसन पर सुशोभित किया। मध्य काल में अवधी में लिखे गए ग्रंथों में दो मुख्य हैं – जायसी कृत 'पद्मावत' (1540 ई.) तथा तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस (1585 ई.)।

ब्रजभाषा : सोलहवीं सदी के पूर्वार्द्ध में पुष्टि मार्ग के प्रमुख आचार्य वल्लभाचार्य से साहित्यिक सृजन को विशेष प्रोत्साहन मिला। इसका विवेचन निम्न प्रकार से है–

1. ब्रजभाषा का विकास, एक प्रकार से चिर प्रतिष्ठित प्राचीन काव्य भाषा से हुआ। 'पृथ्वीराज रासो' में इसके स्वरूप का कुछ आभास मिल जाता है। रासो की यह पंक्ति – 'तिहि रिपुजय पुरहन को भए प्रथिराज नारिंद' इसका उदाहरण है।
2. ब्रजभाषा को साहित्यिक भाषा के रूप में यशस्वी करने का श्रेय सूरदास को है। सूरदास के रचना काल के समय तक अर्थात 1550 ई. तक ब्रजभाषा संपूर्ण रूप में काव्य का माध्यम बन चुकी थी। ब्रजभाषा का रूप दिन–प्रतिदिन साहित्यिक, परिमार्जित, प्रौढ़ तथा सुसंस्कृत होता चला गया। जिस प्रकार अवधी भाषा ने तुलसी के 'रामचरितमानस' में प्रौढ़ता प्राप्त की है, उसी प्रकार अष्टछाप के कवियों की पदावली में ब्रजभाषा भी विकसित हुई।
3. घनानंद, नंददास, बिहारी, पद्माकर की कविता में तो उसका पूर्ण परिपाक हुआ। मध्यकाल के दूसरे चरण की प्रमुख विशेषता है ब्रजभाषा की विशुद्धता। वर्तमान युग में इस विशुद्धता के प्रतिनिधि के रूप में बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर का नाम लिया जा सकता है।

ध्वनियों की दृष्टि से देखा जाए तो इस काल में पढ़े–लिखे लोगों की हिंदी में क, ख, ग, ज, फ में पांच व्यंजन ध्वनियां सम्मिलित हो गईं। इस काल में लोगों की धर्म के प्रति आस्था थी, इसी कारण इस युग के पूर्वार्द्ध तक धार्मिक साहित्य अधिक लिखा गया। धर्म की प्रमुखता के कारण संस्कृत के धार्मिक ग्रंथों का प्रचार हुआ। फलतः आदि काल की अपेक्षा बहुत अधिक तत्सम् शब्द साहित्यिक भाषा में प्रयुक्त होने लगे।

(स) विकास का आधुनिक काल

आधुनिक काल खड़ी बोली का युग है। खड़ी बोली अवधी तथा ब्रज बोलियों की भांति प्राचीन है। प्राचीन तथा मध्यकाल के ग्रंथों में यत्र–तत्र खड़ी बोली के प्रयोग देखने में

आते हैं, यह बात और है कि साहित्य के माध्यम के रूप में वह इतनी शीघ्र स्वीकृत नहीं हुई। मराठा भक्त कवि नामदेव की कविता में पहले शुद्ध खड़ी बोली के दर्शन होते हैं—

पांडे तुम्हारी गायत्री लोधे का खेत खाती थी।
लैकरि ढेंगाटंगरी तोड़ी लंगत—लंगत जाती थी।।

टिप्पणी

नामदेव का जन्म 1192 ई. में हुआ था, अतः खड़ी बोली की प्राचीनता का अनुमान लगाया जा सकता है। रासो, कबीर, भूषण आदि के द्वारा खड़ी बोली का प्रयोग यह स्पष्ट करता है कि खड़ी बोली का अस्तित्व प्रारंभ से ही था यद्यपि साहित्य का माध्यम वह नहीं बनी थी। अतएव हिंदी भाषा अपने मध्यकालीन विकास में तीन रूपों में दिखाई पड़ती है— अवधी, ब्रज तथा खड़ी बोली। आधुनिक काल तक आते—आते साहित्य की माध्यम भाषा के रूप में अवधी तथा ब्रज का प्रयोग घटता गया और खड़ी बोली का प्रयोग बढ़ता गया। अठारहवीं शताब्दी में ब्रज भाषा की शक्ति क्षीण हो चुकी थी और इधर मुसलिमों के मध्य खड़ी बोली (उर्दू) जोर पकड़ चुकी थी। उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ में अंग्रेजों की प्रेरणा से हिंदुओं ने खड़ी बोली गद्य के संबंध में कुछ प्रयोग किए। फलस्वरूप फोर्ट विलियम कॉलेज के लल्लूलाल ने 'प्रेमसागर' तथा सदल मिश्र ने 'नासिकेतोपाख्यान' की रचना की। खड़ी बोली के प्रारंभिक ग्रंथों पर ब्रजभाषा का प्रवाह है, जो स्वाभाविक ही है।

खड़ी बोली हिंदी के विकसित रूप के गद्य साहित्य में प्रचार का प्रमुख श्रेय भारतेंदु हरिश्चंद्र को जाता है। उनके काल में भाषा में राष्ट्रीयता की एक लहर उठी। हिंदी को उर्दू—फारसी के प्रवाह से मुक्त करने का प्रयास प्रारंभ हुआ। भाषा की समृद्धि के लिए संस्कृत के शब्द लिए जाने लगे। हिंदी भाषा के परिष्कार का कार्य प्रारंभ हुआ। भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा दिखाए गए मार्ग पर हिंदी सिर ऊंचा कर आगे बढ़ती रही। इधर उसने अपने रूप को इतना विकसित कर लिया है कि समस्त गद्य साहित्य में ही नहीं वरन् पद्य साहित्य में भी खड़ी बोली का बहुलता से प्रयोग हो रहा है। इस प्रकार आधुनिक काल में खड़ी बोली हिंदी भाषा का रूप ले चुकी है।

भारतेंदु युगीन लेखकों में व्याकरण संबंधी बहुरूपता, लिंग, वचन, कारक प्रयोगों में अस्थिरता आदि दोष मिलते हैं। कालांतर में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भाषागत दोषों को दूर करने का प्रशंसनीय प्रयास किया। छायावादी कवियों को यह श्रेय दिया जा सकता है कि उन्होंने खड़ी बोली को एक उच्च साहित्यिक भाषा का रूप प्रदान किया। बाद में वह उन्मुक्त होकर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विचरने लगी। भारतेंदु, महावीर प्रसाद द्विवेदी, रामचंद्र शुक्ल, प्रेमचंद, प्रसाद, पंत, निराला, यशपाल, डॉ. रांगेय राघव, मुक्तिबोध, हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि इस काल के समर्थ साहित्यकार हैं। साहित्य की समस्त विधाओं का इस युग में पर्याप्त विकास हुआ है।

आज हिंदी भारत की राष्ट्रभाषा एवं राजभाषा है किंतु किंचित राजनीतिक एवं भौगोलिक कारणों से उसका समग्र भारत में उतना प्रचार—प्रसार नहीं हो पा रहा है, जितना कि एक स्वतंत्र राष्ट्र में होना चाहिए। किंतु आशा है, भविष्य में हिंदी समग्र भारतीयों का कंठहार बन कर विश्व की भाषाओं में समादृत स्थान पर प्रतिष्ठित होगी।

साहित्यिक हिंदी के रूप में खड़ी बोली का उद्भव एवं विकास

खड़ी बोली को अनेक नामों से अभिहित किया जाता है, जैसे – हिंदुस्तानी, नागरी हिंदी, सरहिंदी, कौरवी आदि। खड़ी बोली इसका सबसे नवीन नाम है। 'खड़ी बोली' शब्द का प्रथम प्रयोग 1800 ई. के लगभग मिलता है। 1805 ई. में लल्लूलाल ने अपने 'प्रेम–सागर' में इस शब्द का प्रयोग किया है। जैसे– 'प्रेम–सागर' से उद्धृत यह वाक्य देखिए– 'जॉन गिलक्रिइस्ट महाशय की आज्ञा से सन् 1806 में लल्लूलाल कवि ब्राह्मण, गुजराती, सहस, अवदीच आगरे वाले ने इसका सार ले यामनी भाषा छोड़ दिल्ली, आगरे की खड़ी बोली में कह 'प्रेम–सागर' नाम रखा।'

इससे भी पहले 1803 ई. में गिलक्रिस्ट ने इस शब्द का प्रयोग अपनी पुस्तक 'The Hindee Story Teller' में किया –

'उन कहानियों में से कोई–कोई कहानी खड़ी बोली अथवा हिंदुस्तानी की शुद्ध हिंदवी शैली में है।'

खड़ी बोली के अर्थ व व्युत्पत्ति के संबंध में 8 मत प्रचलित हैं –

1. **खड़ी का अर्थ खरी या विशुद्ध भाषा** : अरबी–फारसी के शब्दों से रहित, विशुद्ध भारतीय। समर्थक– जॉन गिलक्रिस्ट, गार्सा द–तासी, केलॉग (हिंदी व्याकरण), इस्टविक प्लैटस (A Dictionary of Urdu Classical Hindi and English), सुधाकर बेदी (सीधी बोली की राम कहानी)। इन्होंने 'र' व 'ड़' को पर्याय माना है, इसलिए खड़ी बोली को खरी बोली के नाम से पुकारा। इन्होंने इसका नाम 'ठेठ हिंदी' भी दिया है। बद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन ने भी इसको 'ठेठ हिंदी' कहा है। चंद्रबली पाण्डेय ('उर्दू का रहस्य') ने इसे प्राकृत, शुद्ध या खरी बोली माना है।
2. **खड़ी या उठी हुई** : जो पड़ी हुई न हो (पड़ी = गिरी–पड़ी)। इसके समर्थकों ने ब्रज या पूर्वी बैसवाड़ी, अवधी, राजस्थानी और गुजराती को गिरी–पड़ी भाषाएं माना है। इन सब भाषाओं का विरोध करने वाली भाषा खड़ी बोली कहलाई। इसके समर्थक श्री चंद्रधर शर्मा गुलेरी, डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी हैं।
3. **खड़ी और खरी बोली दोनों का समन्वित रूप** : इन्होंने गिरी–पड़ी भाषाओं में रेख्ता को गिरी–पड़ी माना तथा इसके विरोध में उत्पन्न भाषा को खड़ी बोली माना। विदेशी शब्दों का बहिष्कार होने से इन्होंने इसे खरी बोली भी कहा। अतः यह दोनों का समन्वित रूप है। समर्थक – ब्रजरत्नदास (भारतेंदुकालीन विद्वान)।
4. **खड़ी या कर्कश बोली** : अवधी की अपेक्षा कर्कश भाषा होने के कारण इसको कर्कश कहा गया है। इस मत के समर्थक कामता प्रसाद गुरु (हिंदी व्याकरण) और डॉ. धीरेंद्र वर्मा हैं। मारवाड़ के लोग इस भाषा को 'ठेठ बोली' (कठोर–बोली) भी कहते हैं।

टिप्पणी

5. **खड़ी पाई वाली** : जिसमें 'अ' ध्वनि की मात्रा अधिक हो। खड़ी पाई के कारण इसे खड़ी बोली कहा गया। इसके समर्थक आचार्य किशोरीदास वाजपेयी हैं। इन्होंने कुछ हद तक इसका वैज्ञानिक विवेचन भी किया है।
6. **गंवारू बोली** : गांव की असंस्कृत भाषा खड़ी बोली है। एक मुसलिम लेखक अब्दुल हक ने औरंगाबाद से प्रकाशित होने वाली उर्दू पत्रिका में सन् 1904 में लिखा–

   'खड़ी बोली के मायने हिंदुस्तान में आमतौर पर गंवारू बोली के हैं, जिसे हिंदुस्तान का बच्चा–बच्चा जानता है। वह न कोई खास जबान है और न जबान की कोई शाख।'
7. **प्रचलित या चलती बोली** : इन्होंने इसे बहुत अच्छी व पूर्ण स्थापित प्रचलित बोली माना है। समर्थक – टीग्राह्य बोली।
8. **टकसाली या स्टैंडर्ड बोली** : अंग्रेजी की Stand धातु से Standard बना और धीरे–धीरे इस खड़ी बोली को Standard Speech नाम दिया गया, जिसका एक निश्चित मापदंड है क्योंकि Standard= निश्चित मापदंड। समर्थक – आ. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र एवं हरदेव बाहरी।

Hindoostani Philology part-I में Standard का अर्थ खरा किया गया है, इसलिए इसका नाम खरी बोली Standard Speech बना।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि खड़ी बोली के नामकरण के संबंध में अनेक मत प्रचलित हैं, किंतु मत संख्या 1, 3, 5 अधिक मान्य है।

क्षेत्र : डॉ. ग्रियर्सन ने इसका क्षेत्र बहुत विस्तृत माना है। यद्यपि इसको बोली के रूप में लिखा जाता है, लेकिन आज यह समृद्ध, संपन्न, साहित्यिक भाषा है। इसको 'राष्ट्रभाषा' का गौरव प्राप्त हो चुका है, अतः इसको बोली के रूप में मानना, इसके साथ अन्याय करना होगा।

इसका शुद्ध क्षेत्र गंगा–यमुना का उत्तरी दोआब अर्थात देहरादून का मैदानी भाग, सहारनपुर, मुज्जफरनगर और मेरठ के पूरे ज़िले। यह पश्चिम में यमुना के समीपवर्ती अंबाला, दक्षिण पूर्व में बिजनौर और मुरादाबाद तथा रामपुर जिलों में बोली जाती है।

विकास : खड़ी बोली का स्वतंत्र अस्तित्व बहुत प्राचीन समय से ही मिलता है। ग्यारहवीं शताब्दी में अपभ्रंश मिश्रित लोकभाषा में खड़ी बोली के बीज दिखाई देते हैं। तत्कालीन जैन धर्म–ग्रंथों में खड़ी बोली का आदि रूप उपलब्ध होता है। महापंडित राहुल सांकृत्यायन खड़ी बोली का विकास इससे भी पूर्व का मानते हैं अर्थात आठवीं शताब्दी में सिद्ध कवियों की रचनाओं में इन्होंने खड़ी बोली को माना है। लेकिन वास्तविक खड़ी बोली चौदहवीं शताब्दी में उत्पन्न हुई। प्रथम रचना अमीर खुसरो की पहेलियां–मुकरियां आदि मानी जा सकती हैं।

दुर्भाग्यवश बीच में यह विकास रुक गया, लेकिन धीरे–धीरे इसका विकास पुनः भारतेंदु काल में हुआ और आज यह पूर्ण यौवन पर है।

बोलने वालों की संख्या : इसके बोलने वालों की संख्या लगभग 1 करोड़ से अधिक है।

विशेषताएं : अवधी अकारांत या व्यंजनांत, ब्रजभाषा ओकारांत और खड़ी बोली आकारांत है जैसे–

अवधी : करत, होत, जात, होब, घोर, बड़, छोट, खोट आदि।

ब्रजभाषा : करतो, होतो, घोरो, बड़ो, छोटो, खोटो, छोरो, करैबो, करनो, लीनो आदि।

खड़ी बोली : करता, होता, जाता, किया, करना, होना, जाना, बड़ा, छोटा, घोड़ा, खोटा आदि।

1.2.3 भाषा परिवार

भारोपीय भाषा परिवार संसार के अन्य भाषा परिवारों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है। यह संसार की प्राचीनतम साहित्यिक निधियों एवं संस्कृतियों का क्षेत्र रहा है। इसका विस्तार बहुत बड़े क्षेत्र में है। यह यूरोप से भारतवर्ष तक विस्तृत है। इस भाषा परिवार की भाषाओं का अध्ययन तथा विवेचन अन्य परिवारों की तुलना में अधिक हुआ है।

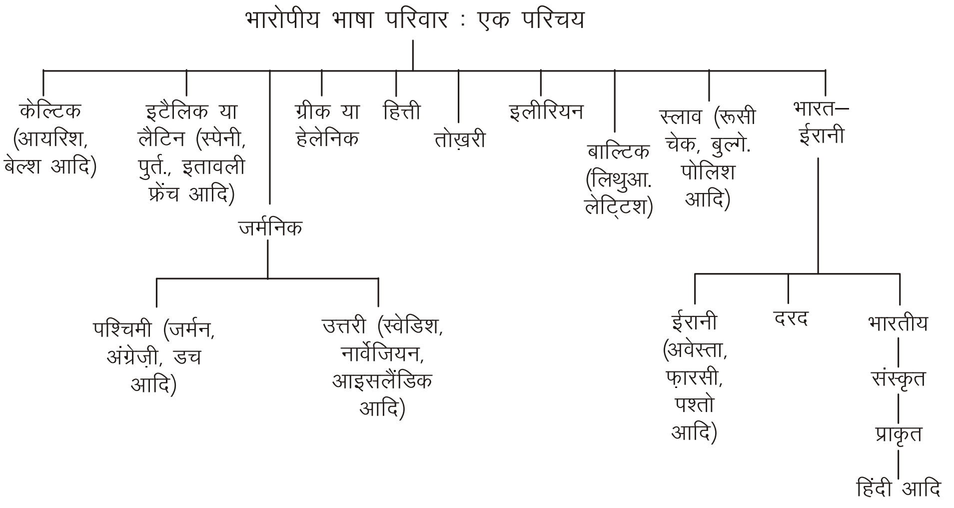

भारोपीय भाषा का नामकरण–यूरोशिया खंड में सबसे महत्वपूर्ण इस भाषा परिवार के नामकरण की समस्या रही है। अनेक विद्वानों ने इसे अलग–अलग नामों से संबोधित किया है–

1. इस भाषा परिवार को पहले इंडो जर्मनिक नाम दिया गया, क्योंकि यह यूरोप में जर्मन भाषाओं से एशिया में भारत की भाषाओं तक फैला है। परंतु यूरोप

टिप्पणी

में जर्मन भाषा की पश्चिम केल्टिक भाषा भी इसी परिवार की भाषा है इसलिए आगे चलकर जर्मनी से बाहर के देशों ने इस नाम को त्याग–सा दिया।

2. इस परिवार का दूसरा नाम **इंडो केल्टिक** भाषा परिवार रखा गया, किंतु इसका भी अधिक प्रचलन नहीं हो सका है।
3. 'संस्कृत' भाषा से यूरोपीय विद्वानों का परिचय होने पर कुछ विद्वानों ने इस भाषा परिवार को संस्कृत भाषा परिवार नाम दिया, क्योंकि उनका मत था कि इस परिवार की भाषाएं संस्कृत भाषा से निकली हैं किंतु यह नाम भी सर्वमान्य नहीं हो पाया।
4. भारोपीय परिवार को **आर्य–परिवार** भी नाम दिया गया, क्योंकि विश्वास किया जाता था कि इस परिवार के बोलने वाले आर्य जाति के हैं। किंतु सभी व्यक्ति आर्य नहीं हैं, इसलिए यह नाम भी बाद में त्याग दिया गया।
5. कुछ विद्वानों ने इस भाषा परिवार के लिए **काकेशियन भाषा परिवार** नाम दिया, किंतु यह भी अधिक ग्राह्य नहीं हो सका।
6. इस भाषा परिवार को हजरत के तीसरे बेटे जैफ के नाम पर '**जैफाइट**' या '**जफेटिक भाषा परिवार**' नाम दिया गया। यह नामकरण बहुत कुछ सेमेटिक या हैमेटिक नाम की समानता पर दिया गया था, किंतु अब यह नाम भी अप्रचलित है।

   इस परिवार को **इंडो हिताइड** नाम भी दिया गया तथा भारोपीय भाषा परिवार को इसका एक भाग माना गया है।
7. मूल भारोपीय भाषा के बोलने वाले लोगों को विरोस नाम दिया गया है। इसलिए इस भाषा परिवार को **विरोस भाषा परिवार** भी कहा गया है। 'विरोस' शब्द को संस्कृत आदि भाषाओं के 'वीर' शब्द का मूल माना गया है, जैसे संस्कृत में वीर, लेटिन में Vir या Uir प्राचीन आइरी में Fer तथा जर्मन भाषाओं में Wer शब्द पाया जाता है।

   ई. पू. 2400 में इंडो–हिट्टाइट भाषा की दो शाखाएं हो गई थीं– 'एनाटोलियन' तथा 'भारोपीय'। अतः इन दोनों भाषाओं के नाम से इस परिवार को भारोपीय एनाटोलियन नाम दिया जा सकता है।
8. इस परिवार के लिए सबसे अधिक प्रचलित नाम **भारोपीय भाषा परिवार** है। यद्यपि इस नामकरण का आधार भौगोलिक है, फिर भी इस परिवार की भाषाएं इस क्षेत्र (यूरोप से भारत तक) के बाहर अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, अफ्रीका में भी बोली जाती हैं। अभी तक 'भारोपीय भाषा परिवार' नाम ही सर्वाधिक मान्य है। वैसे बहुत से विद्वान इसके 'इंडो–हिट्टाइट' नाम के समर्थक हैं।

टिप्पणी

भारोपीय भाषा परिवार की प्रमुख विशेषताएं

भारोपीय भाषा परिवार की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं—

1. इस परिवार की भाषाएं श्लिष्ट—योगात्मक हैं।
2. इस परिवार की भाषाओं में अर्थतत्व से संबंध तत्व का संयोग बहिर्मुखी होता है।
3. इसकी भाषाएं वियोगावस्था की ओर बढ़ रही हैं।
4. धातुएं एकाक्षरी होती हैं।
5. धातुओं में कृत् तथा तद्धित प्रत्यय लगाकर शब्द बनाए जाते हैं।
6. उपसर्ग आदि का प्रयोग करने से धातुओं का अर्थ बदल जाता है।
7. इस परिवार की भाषाओं में समास रचना की जाती है। समास बनाते समय विभक्तियों का लोप हो जाता है।
8. इन भाषाओं में स्वर परिवर्तन से संबंध तत्व का परिवर्तन हो जाता है।
9. इनमें प्रत्यय पहले स्वतंत्र अर्थ प्रकट करते थे परंतु बाद में इनकी स्वतंत्रता समाप्त हो गई।
10. इस परिवार की भाषाओं के बोलने वाले जनसंख्या में सबसे अधिक हैं।
11. इसकी भाषाएं संसार के बहुत बड़े क्षेत्र में फैली हैं तथा व्यापक हैं।
12. इसमें संसार का प्राचीनतम तथा श्रेष्ठ साहित्य पाया जाता है।
13. इसमें विश्व की उन्नत सभ्यताओं का विकास हुआ है।
14. इस भाषा परिवार में अत्यंत विकसित वैज्ञानिक साहित्य पाया जाता है।
15. इसे बोलने वाले विश्व के राजनीतिक क्षेत्र में सबसे आगे हैं।
16. इसकी भाषाओं का अन्य भाषा परिवारों की अपेक्षा अधिक अध्ययन किया गया है।
17. इस भाषा परिवार के अनुशीलन के परिणामस्वरूप ही 'भाषा विज्ञान' का विकास हुआ है।

भारोपीय परिवार का भाषाई ढांचा

भारोपीय परिवार में कुछ ऐसी भाषाएं हैं, जिनमें अर्थ मात्र और रूप मात्र सर्वथा पृथक नहीं किये जा सकते। एक ही शब्द में अर्थ और रूप दोनों का ज्ञान हो जाता है। रूप मात्रवाली भाषाओं में यद्यपि कुछ भाषाओं में रूप मात्र स्वतंत्र देखे जाते हैं पर व्यवहार के बिल्कुल उपयोगी नहीं होते, क्योंकि आगम और विभक्ति को हम प्रकृति से पृथक नहीं कर सकते। प्रायः प्राचीन भारोपीय भाषाओं के शब्दों में अर्थ मात्र और रूप मात्र का ऐसा ही संबंध दिखाई पड़ता है।

भारोपीय भाषाएं सविभक्तिक होती हैं। इनमें प्रमुख रूप से रूपसाधक प्रत्यय, शब्द साधक प्रत्यय पाए जाते हैं। ब्रुगमान के कथनानुसार मूल भारोपीय भाषा में लगभग बत्तीस से अधिक ऐसे विशेषक प्रत्यय थे।

टिप्पणी

भारोपीय भाषाओं की संज्ञाओं में लिंग, वचन और कारक की उपस्थिति आवश्यक मानी जाती है और इन्हीं के कारण संज्ञा में रूपांतर होता है। पर, इन तीनों का किसी एक ही संज्ञा में विद्यमान होना आवश्यक नहीं है। भारोपीय परिवार की प्रायः सभी प्राचीन भाषाओं में पुल्लिग, स्त्रीलिंग और नपुंसक लिंग तीनों लिंग पाए जाते हैं। पर लिंग–निर्णय के लिए किसी भाषा में कोई निश्चित नियम नहीं हैं। कुछ नामों का लिंग नैसर्गिक है। अर्थात वे पुरुष व स्त्री के नाम होने के कारण पुल्लिग व स्त्रीलिंग माने जाते हैं। पर, कुछ नाम ऐसे हैं, जिनका नैसर्गिक लिंग निश्चित नहीं है। ऐसे नामों को नपुंसक लिंग नाम देना उचित माना गया है। पर, सर्वत्र यह नियम नहीं लगता। ऐसे शब्दों के लिंग को हम कृत्रिम लिंग कह सकते हैं। अतएव नामों के अर्थों और उनके लिंगों में कोई विशेष संबंध नहीं जान पड़ता।

आदिम भारोपीय भाषा में एकवचन, द्विवचन और बहुवचन तीनों वचन थे। पहले द्विवचन का प्रयोग केवल उन वस्तुओं में होता था, जिनका नैसर्गिक युग्म है, जैसे आंख, कान, हाथ, पांव आदि। जिन वस्तुओं का कृत्रिम युग्म है, उनके लिए भी द्विवचन का प्रयोग होता है। जैसे रथ के घोड़े, मुद्गर, जूते इत्यादि। परंतु कालांतर में किन्हीं दो वस्तुओं के लिए द्विवचन का प्रयोग होने लगा, और व्याकरण में एकवचन और बहुवचन के साथ–साथ द्विवचन के द्वारा भी रूपांतर होने लगा।

संस्कृत, यूनानी, लेटिन आदि भाषाओं की तुलना करने पर अनुमान लगाया जा सकता है कि आदि भारोपीय भाषा में कम से कम सात कारक रहे होंगे। साधारणतः कारकों के द्वारा जितने प्रकार के संबंध प्रदर्शित किये जाते हैं, वास्तव में उनसे अधिक संबंध होते हैं। इसीलिए किसी भाषा में कारकों की संख्या बहुत अधिक हो गई है और कहीं–कहीं स्पष्टता न होने से कारकों के स्थान में क्रमशः क्रिया–विशेषणों तथा संबंधसूचक अव्ययों का अधिकता से प्रयोग आरंभ हो गया।

मूल भारोपीय भाषा की गणना दशमलवात्मक थी। कहीं–कहीं द्वादशमलवात्मक गणना के भी चिह्न मिलते हैं। जैसे अंग्रेजी दर्जन और ग्रौस (12 दर्जन) में।

मूल भारोपीय भाषा में वर्तमान (Present), अपूर्णभूत (Imperfect), भविष्य (Future), पूर्णभूत (Perfect) और सामान्यभूत (Aorist) विद्यमान थे। पर प्लूपरफेक्ट (pluperfect) पीछे का जान पड़ता है। हेतुहेतुमद् (Subjunctive) और विध्यर्थ (Optative) भी रहे होंगे। पर इन सभी का प्रयोग जिन अर्थों में आजकल होता है, उन अर्थों में उस समय नहीं होता था। केवल इनके रूप विद्यमान थे। संस्कृत में यद्यपि तीन वाच्य पाए जाते हैं, पर यूरोपीय विद्वानों का विचार है कि मूल भारोपीय भाषा में केवल दो ही वाच्य थे– कर्तृवाच्य और भाववाच्य।

विभिन्न भारोपीय भाषाओं की क्रियाओं में परस्पर इतना अंतर है कि उनकी तुलना करके मूलभाषा के रूपों तक पहुंचना इस समय असंभव सा दिखता है। अभी इस दिशा में खोज जारी है।

टिप्पणी

1.2.4 वर्णमाला

भाषा वर्णमाला से निर्मित होती है और वर्ण ध्वनि से।
प्रत्येक भाषा का अपना ध्वनि गठन होता है जो अन्य भाषाओं से भिन्न होता है।

हिंदी भाषा की समस्त ध्वनियों या वर्णों को दो वर्गों में विभाजित किया जाता है– स्वर और व्यंजन।

मानक हिंदी वर्णमाला

(क) स्वर

जिन वर्णों का स्वतंत्र उच्चारण किया जा सकता है, अर्थात जिनके उच्चारण में किसी अन्य वर्ण की सहायता नहीं ली जाती है तथा ध्वनि बिना किसी रुकावट के निकलती है उन्हें स्वर कहते हैं।

स्वरों की संख्या को लेकर हिंदी–संस्कृत विद्वानों में मतभेद है। मानक हिंदी भाषा में ग्यारह (11) स्वरों को स्वीकारा गया है।

स्वर– अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ औ। अब हिंदी स्वरों में 'ऑ' को भी अपना लिया गया है यह आगत स्वर है, यह अंगेजी भाषा से आया है।

स्वर भेद

उच्चारण में लगने वाले समय के आधार पर स्वर के तीन भेद हैं– 1. ह्रस्व, 2. दीर्घ और 3. प्लुत।

1. **ह्रस्व स्वर**– इन वर्णों के उच्चारण में सबसे कम समय लगता है। इनकी संख्या चार (4) चार है– अ, इ, उ, ऋ। इन चार स्वरों को मूल स्वर भी कहते हैं।
2. **दीर्घ स्वर**– इन वर्णों के उच्चारण में ह्रस्व वर्णों से दुगुना समय लगता है। जब ह्रस्व वर्णों को दो मात्राओं के समय तक उच्चारित किया जाता है तो वह दीर्घ रूप ले लेता है। जैसे– इ (।) : इ (।) = ई (2 मात्राओं का समय)।

   दीर्घस्वर– आ, ई, ऊ, ए, ऐ ओ, औ (सात हैं)।
3. **प्लुत स्वर**– इनके उच्चारण में ह्रस्व से तीन गुना समय लगता है। स्वर वर्णमाला में कोई प्लुत स्वर नहीं होता। इनका प्रयोग किसी को पुकारने, दूर से बुलाने के लिए किया जाता है। प्लुत को 'ऽ' अंक से प्रकट किया जाता है।

   नोट– इनका प्रयोग संस्कृत में ज्यादा होता है। उदाहरण– रामऽ, ओऽम्, हेऽ, सुनोऽ।

संध्यक्षर स्वर– अ, इ, उ, ऋ इन चार मूल स्वरों के अलावा सारे स्वर ह्रस्व स्वरों की संधि का परिणाम हैं।

आ, ई, उ इन तीन वर्णों को केवल स्वर कहते हैं क्योंकि ये मूल स्वरों के ही दीर्घ रूप हैं। तथा ए, ऐ, ओ, औ वर्ण अलग–अलग स्वरों की संधि से बने हैं और इनका रूप पूरी तरह बदल जाता है इसलिए ये संध्यक्षर स्वर अथवा संयुक्त स्वर भी कहे जाते हैं।

टिप्पणी

होठों की आकृति के आधार पर स्वर भेद

होठों की आकृति के आधार पर भी स्वर के दो भेद हैं–

1. वृत्ताकार
2. अवृत्ताकार।

1. **वृत्ताकार**– जिन स्वरों के उच्चारण में होंठ वृत्ताकार अर्थात गोल हो जाते हैं। जैसे– उ, ऊ, ओ, औ।
2. **अवृत्ताकार**– जिन स्वरों के उच्चारण में होंठ वृत्ताकार नहीं होते अपितु फैले रहते हैं। जैसे– अ, आ, इ, ई, ए, ऐ।

उपरोक्त के अतिरिक्त अं और अः का विभाजन इस प्रकार है–

अनुसार = अं

विसर्ग = अः

–'अं' और 'अः' को व्यंजनों की तरह स्वर की सहायता से बोला जाता है, जैसे– अंक, प्रातः आदि। संस्कृत में इन्हें 'आयोगवाह' कहते हैं। देवनागरी लिपि में इन्हें स्वरों के पश्चात और व्यंजनों से पहले लिखा जाता है।

(ख) व्यंजन

भोलानाथ तिवारी ने व्यंजन की परिभाषा इस प्रकार दी है– व्यंजन वह ध्वनि है जिसके उच्चारण में हवा अबाध गति से नहीं निकलती या तो इसे पूर्ण अवरुद्ध होकर फिर आगे बढ़ना पड़ता है या संकीर्ण मार्ग से घर्षण करते हुए निकलना पड़ता है। हिंदी में 47 व्यंजन ध्वनियां हैं जिनका विवरण निम्नलिखित है–

1. क, ख, ग, घ, ङ, – क वर्ग
2. च, छ, ज, झ, ञ, – च वर्ग
3. ट, ठ, ड, ढ, ण, – ट वर्ग
4. त थ द ध, न, – त वर्ग
5. प, फ, ब, भ, म, – प वर्ग
6. य, र, ल, व, – वर्गहीन – अन्तस्थ
7. श, ष, स, ह, – वर्गहीन – ऊष्मा
8. अं (अनुस्वार), अः (विसर्ग)
9. ँ (चंद्रबिंदु) अनुनासिक स्वर
10. क़, ख़, ग़, ज़, फ़ – फारसी और अरबी से आई ध्वनियां

11. ड़, ढ़, त, – विकसित ध्वनियां
12. क्ष, त्र, ज्ञ – संयुक्त व्यंजन ध्वनियां।

टिप्पणी

इस प्रकार 47 व्यंजन ध्वनियां प्रयोग की जाती हैं। अनुनासिक व्यंजनों की ध्वनि मुख विवर से न निकलकर नासिक विवर से निकलती है–

ङ – अनुनासिक कण्ठ्य

ञ – अनुनासिक तालव्य

ण – अनुनासिक मूर्धन्य

न – अनुनासिक वर्त्स्य

म – अनुनासिक ओष्ठ्य

व्यंजनों का वर्गीकरण

1. प्रयत्न के आधार पर व्यंजनों का विभाजन

ध्वनि के उच्चारण के लिए हम अंदरूनी तौर पर जो प्रयास करते हैं उसे व्याकरण की भाषा में प्रयत्न कहते हैं। प्रयत्न के आधार पर व्यंजनों को निम्न विभागों में बांटा गया है–

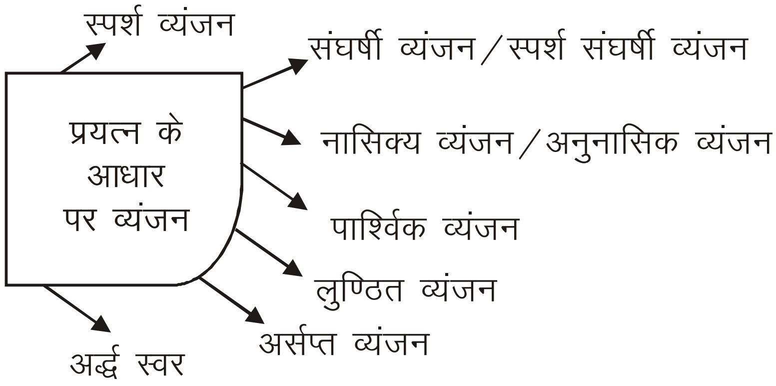

1. **स्पर्श व्यंजन**– उच्चारण स्थान वर्ग स्पर्श मात्र– क, ख, ग, घ, ट, ठ, ढ, त, थ, द, ध, प, फ, ब, म।
2. **स्पर्श संघर्षी**– उच्चारण स्थान पर रगड़– च, छ, ज, झ, भ।
3. **संघर्षी व्यंजन**– उच्चारण स्थान पर रगड़– स, श, ह।
4. **अनुनासिक व्यंजन**– नासिर विवर से उच्चरित– ङ, ञ, ण, न, भ में होने वाली ध्वनियां।
5. **पार्श्विक व्यंजन**– मुख द्वार बंद होने के कारण हवा– के दोनों ओर से निकली ध्वनि।
6. **लुण्ठित व्यंजन**– जीभ की नोक को बेलन की तरह लपेट कर तालु के स्पर्श से उच्चारित ध्वनि।

7. **अर्सप्त व्यंजन**– जीभ की नोक को उलटकर निकली ध्वनि।

8. **अर्द्ध स्वर**– स्वर और व्यंजन के बीच की ध्वनियां– य, व।

2. स्वरतंत्रियों के आधार पर वर्गीकरण

जिन व्यंजनों के उच्चारण के दौरान स्वरतंत्रियों में कंपन होता है, उन्हें 'संघोष व्यंजन' कहा जाता है। जबकि अन्य जिनकी उच्चारण प्रक्रिया में स्वरतंत्रियां सामान्य स्थिति में रहती हैं– अघोष व्यंजन कहलाते हैं। हिंदी व्यंजन–माला में वर्गों के प्रथम और द्वितीय वर्ण अघोष व्यंजन हैं जबकि तृतीय और चतुर्थ वर्ण संघोष व्यंजनों की श्रेणी में आते हैं।

	अघोष व्यंजन	**संघोष व्यंजन**
क वर्ग	क ख	ग घ
च वर्ग	च छ	ज झ
ट वर्ग	ट ठ	ड ढ़
त वर्ग	त थ	द ध
प वर्ग	प फ	ब भ

3. प्राण की मात्रा के आधार पर व्यंजनों का विभाजन

ध्वनियों का उच्चारण फेफड़ों से निकलने वाली हवा से होता है। इस हवा को व्याकरण की शब्दावली में प्राणवायु कहा जाता है। जिन वर्णों के उच्चारण में अपेक्षाकृत कम वायु या प्राण का प्रयोग होता है उन्हें अल्पप्राण और जिनके उच्चारण में अधिक मात्रा में प्राण या वायु–दबाव का प्रयोग होता है उन्हें महाप्राण व्यंजन कहा जाता है। वर्गों के पहले व तीसरे वर्ण को अल्पप्राण और दूसरे व चौथे वर्ण महाप्राण व्यंजनों की श्रेणी में आते हैं। इनका विभाजन इस प्रकार है–

	अल्पप्राण व्यंजन	**महाप्राण व्यंजन**
क वर्ग	क ग	ख घ
च वर्ग	च ज	छ झ
ट वर्ग	ट ड	ठ ढ़
त वर्ग	त द	थ ध
प वर्ग	प ब	फ भ

4. उच्चारण के स्थानों के आधार पर वर्गीकरण

जिस स्थान से जिस ध्वनि का उच्चारण किया जाता है उसी के आधार पर वर्णों का वर्गीकरण किया जाता है तथा उसका नाम भी रखा जाता है ताकि विद्यार्थी उचित ध्वनि निर्गम से परिचित हो सकें व उच्चारण संबंधी अशुद्धियां न करें।

टिप्पणी

	उच्चारण स्थान	वर्ग / नाम
1.	कण्ठ	अ, आ, ऑ, क, ख, ग, घ ड ह तथा विसर्ग (कण्ठ्य व्यंजन)
2.	तालु (कोमल तालु)	इ, ई, च, छ, ज, झ, ञ, य, ष (तालव्य व्यंजन)
3.	मूर्धा (कठोर तालु)	ऋ, ट, ठ, ड, ढ, ण, र, श (मूर्धन्य व्यंजन)
4.	जीभ	ड़ तथा ढ़ (जिह्वामूलीय व्यंजन)
5.	दन्त	त, थ, द, ध तथा ञ (दन्तय व्यंजन)
6.	वर्त्स (मसूढ़ों)	न, ल, स तथा ज (वत्स्र्य व्यंजन)
7.	ओष्ठ	उ, ऊ, प, ब, भ, म (ओष्ठ्य व्यंजन)
8.	कण्ठ तथा तालु	ए, ऐ तथा क्ष (कण्ठतालव्य व्यंजन)
9.	दन्त और ओष्ठ	ङ्ग, ञ, ण, न, म, अनुस्वार तथा चंद्रबिंदु (दंतोष्ठ व्यंजन)
10.	कण्ठ तथा ओष्ठ	ओ और औ (कण्ठ–ओष्ठ्य व्यंजन)

5. संयुक्त–असंयुक्त के आधार पर वर्गीकरण

इस आधार पर व्यंजन के तीन भेद किये जा सकते हैं–

1. **संयुक्त**– ध्व, म्प।
2. **असंयुक्त** – धव, मप।
3. **द्वित्व**– च्च, प्प।

संयुक्त–असंयुक्त आधारित व्यंजन के स्वरूप को इस प्रकार समझा जा सकता है–

(क) **बलाघात**– बोलने में उच्चरित अंश के हर भाग पर बराबर बल नहीं दिया जाता। वाक्य में कभी एक शब्द पर अधिक बल होता है तो कभी दूसरे पर। इसी तरह शब्द में भी कभी एक अक्षर पर अधिक बल देते हैं तो कभी दूसरे पर। उच्चारण के उस बल को ही 'बलाघात' कहते हैं। बलाघात से अभिप्राय उच्चारण में लगने वाली शक्ति से है। यह शक्ति मूलतः दो बातों पर आधारित है– (1) उच्चारण में फेफड़ों से हवा कितनी शक्ति से आ रही है, (2) उच्चारण अवयवों में कितना तनाव है।

हिंदी में बलाघात की यह प्रक्रिया अक्षर, शब्द, वाक्यांश व वाक्य सभी स्तरों पर होती है।

(1) **अक्षर बलाघात**– अक्षर बलाघात प्रायः स्वर पर होता है, जैसे– 'घास' शब्द में 'आ' बलाघात युक्त है। यदि किसी शब्द में एक से अधिक अक्षर हों तो उनमें कोई एक बलाघात युक्त होता है, शेष अंशों में बलाघात तो होता है परंतु उसका स्तर क्रमशः द्वितीय, तृतीय आदि होता है। जैसा 'मुसलमान' शब्द में 'मान' शब्द पर प्रथम, 'सल' पर द्वितीय तथा 'मु' पर तृतीय बलाघात है।

टिप्पणी

(2) **शब्द बलाघात**– वाक्य में अर्थ संबंधी विशेषता लाने के लिए कभी–कभी एक शब्द पर अधिक बल दिया जाता है जिसे 'शब्द बलाघात' कहते हैं, जैसे– (क) "मुझे एक जेब वाली कमीज चाहिए"। इस वाक्य में एक शब्द पर बल देने से अर्थ होगा कि ऐसी कमीज जिसमें एक ही जेब हो। (ख) इसी वाक्य में जेब पर बल देने से अर्थ होगा कि ऐसी कमीज जिसमें जेब हो।

(3) **वाक्यांश बलाघात**– कभी–कभी वाक्य के एक अंश पर भी बल दिया जाता है। यह बलाघात भी वाक्य के अर्थ को प्रभावित करता है, जैसे– "क्या मैं यहां इसलिए आया हूं कि तुम्हारी बकर–बकर सुनूं।"

यहां यदि प्रथम वाक्यांश पर बल दिया जाए तो अर्थ होगा कि यहां मैं बक–बक सुनने नहीं अपितु किसी और काम से आया हूं। यदि दूसरे वाक्यांश पर बल दिया जाए तो अर्थ होगा कि मैं यहां आया तो बक–बक सुनने ही हूं परंतु तुम्हारी नहीं किसी और की। यह वक्ता पर निर्भर करेगा कि वह किस पर बल दे।

(4) **वाक्य बलाघात**– कभी–कभी दो से अधिक वाक्यों के एक साथ होने पर किसी एक वाक्य पर बल दे दिया जाता है, जैसे– तुमने चोरी भी की है और सीनाजोरी भी, दूर हो जाओ मेरी नजरों से। इन वाक्यों में अंतिम वाक्य पर अधिक बल है। ध्वनि तथा अक्षर बलाघात का संबंध प्रायः अर्थ से नहीं होता। यह केवल शब्द को उच्चारण की दृष्टि से अस्वाभाविक बना देता है। इसलिए सहज प्रवाह से बोलने के लिए यह जरूरी है कि वक्ता को अक्षर बलाघात का ज्ञान हो। शेष स्तरों पर बलाघात अर्थ को प्रभावित करता है।

(ख) **अनुतान (सुरलहर)**– जब हम बोलते हैं तो प्रायः हमारे वाक्य आदि से अंत तक एक रूप में नहीं होते, कहीं उतार होता है तो कहीं चढ़ाव। बोलने में सुर के उतार–चढ़ाव, आरोह, अवरोह को 'अनुतान' कहते हैं। इसे सुरलहर भी कहा जाता है। एक ही वाक्य, जब भिन्न–भिन्न अनुतानों में बोला जाता है तो वह भिन्न–भिन्न अर्थ देता है। अनुतान के द्वारा एक ही शब्द से हम कभी आश्चर्य प्रकट करते हैं, कभी इच्छा, या अनिच्छा प्रकट करते हैं तथा कभी बोलने वाले के कथन के संदर्भ में व्यंग्य करते हैं। आमतौर पर लिखित भाषा में अनुतान को विराम चिह्नों द्वारा प्रदर्शित किया जाता है, जैसे– श्याम गया। श्याम ग़या? श्याम गया!

(ग) **अनुनासिक**– हिंदी भाषा की यह विशेषता है कि सभी स्वरों के अनुनासिक व निरनुनासिक दो रूप हैं। अनुनासिकता स्वरों का विशेष गुण है जो यह बताता है कि स्वर का उच्चारण नासिका से वायु निकालकर भी किया जा सकता है। अनुनासिक स्वरों को उनके ऊपर चंद्रबिंदु लगाकर लिखा जाता है, जैसे– आँख, ऊँट आदि। हिंदी स्वरों के अनुनासिक रूप– अँ, आँ, ईं, उँ,

टिप्पणी

ऊँ, एँ, ऐं, ओं, औं। हिंदी स्वरों के निरनुनासिक रूप– अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ।

कुछ स्थानों पर अनुनासिक व अनुस्वार को समान रूप से लिखा जाता है। इसे हम अपनी लिपि की कमी कह सकते हैं। जब मात्रा शिरो–रेखा से ऊपर लगी हो तो वहां चंद्रबिंदु अनुस्वार की भांति ही लिखा जाएगा, जैसे– गेंद, सौंफ। इ, ई, ए, ऐ, ओ, औ की मात्राओं के साथ चंद्रबिंदु का प्रयोग नहीं होगा। ई, ऐ, ओ, औ इन चार स्वरों के साथ चंद्रबिंदु अनुस्वार की भांति ही लिखा जाएगा। यह लिपि संकेत में नहीं है तथा 'ऋ' के प्रयोग से निर्मित सभी शब्द संस्कृत के हैं, अतः 'ऋ' के साथ उसका प्रयोग नहीं मिलता।

अनुस्वार (ं) व अनुनासिक (ँ) में अंतर– अनुस्वार में श्वास केवल नाक से निकलता है जबकि अनुनासिक में मुख और नाक दोनों से। अनुस्वार तीव्र व अनुनासिक धीमी ध्वनि है। दोनों के उच्चारण में पूर्ववर्ती स्वर की आवश्यकता होती है। अनुस्वार को स्वर से अलग किया जा सकता है। चंद्रबिंदु स्वर के साथ बोला जाता है। अनुस्वार का प्रयोग सभी शब्दों में होता है। चंद्रबिंदु का प्रयोग तत्सम शब्दों में नहीं होता।

(घ) **दीर्घता**– दीर्घता का तात्पर्य है जब शब्द को दीर्घ रूप में बोला जाए और उस दीर्घता के कारण शब्द के अर्थ में परिवर्तन हो, जैसे– बला – बल्ला, आसन – आसन्न, बचा – बच्चा, लगी – लग्गी।

(ङ) **संहिता**– जब शब्द देखने में एक जैसे प्रतीत हों परंतु अर्थ में भिन्नता हो तो वहां संहिता या संगम होता है। जैसे– सिरका – सिर का, तुम्हारे – तुम हारे, होली – हो ली।

1.2.5 स्रोत (ध्वनियां)

'स्वर' और 'व्यंजन' के भेद से ध्वनियां दो प्रकार की पाई जाती हैं। इनमें 'स्वर' वे ध्वनियां हैं, जिनका उच्चारण करते समय निःश्वास में कहीं कोई अवरोध नहीं उत्पन्न होता, जबकि व्यंजनों के उच्चारण में निःश्वास में कहीं न कहीं अवरोध पाया जाता है।

भाषा विज्ञान में ध्वनि शब्द को सामान्य ध्वनियों से भिन्न बताने के लिए भाषा ध्वनि (Speech-sound) कहा जाता है। विभिन्न विद्वानों ने इस ध्वनि की परिभाषाएं इस प्रकार की हैं–

डॉ. भोलानाथ तिवारी कहते हैं–"भाषा ध्वनि वह ध्वनि है, जिसे मनुष्य अपने मुख के नियत स्थान से निश्चित प्रयत्न द्वारा किसी ध्येय को स्पष्ट करने के लिए उच्चरित करे और श्रोता जिसे उसी अर्थ में ग्रहण करे।"

प्रो. डेनियल जोन्स के शब्दों में–"ध्वनि मनुष्य के विकल्प परिहीन नियत स्थान और निश्चित प्रयत्न द्वारा उत्पादित और श्रोत्रेंद्रिय द्वारा अविकल्प रूप से गृहीत शब्द

लहरी है।" इस प्रकार ध्वनि शब्द से भाषा-विज्ञान में मानव मुख से निस्सृत ध्वनियों को ही ग्रहण किया जाता है; अन्य अव्यक्त, अस्पष्ट ध्वनियों को नहीं। इस ध्वनि में वर्ण, शब्द और भाषा का अंतर्भाव हो जाता है।

टिप्पणी

स्वर स्वनों का वर्गीकरण

स्वर-स्वनों (ध्वनियों) के मुख्यत: चार आधार दृष्टिगोचर होते हैं– (1) जिह्वा की ऊंचाई की दृष्टि से, (2) जिह्वा के उत्थापित भाग की दृष्टि से (3) ओष्ठों की स्थिति के आधार पर, (4) मात्रा की दृष्टि से।

1. **जिह्वा की ऊंचाई के अनुसार**–प्रत्येक स्वर के उच्चारण में, जिह्वा एक निश्चित सीमा तक उठकर नि:श्वास के निर्गम-मार्ग को कुछ संकीर्ण कर देती है, जो कहीं कम व कहीं ज्यादा होता है। इस दृष्टि से स्वरों के चार विभाग हो जाते हैं–विवृत (खुला हुआ), अर्धविवृत (आधा खुला हुआ), संवृत (अत्यंत संकीर्ण) तथा अर्धसंवृत (कम संकीर्ण)। उदाहरणार्थ–आ–विवृत स्वर, ऐ-औ–अर्धविवृत, इ-ई- उ-ऊ–संवृत, ए-ओ–अर्धसंवृत।
2. **जिह्वा के उत्थापित भाग की दृष्टि से**–जिह्वा के अग्र, मध्य व पश्च भागों की सक्रियता के आधार पर मुख्यत: तीन स्थितियां उत्पन्न होती हैं–

   (क) **अग्रस्वर**–जिह्वा के अग्रभाग को उठाकर इन स्वरों का उच्चारण किया जाता है। जैसे–इ, ई, ए, तथा ऐ।

   (ख) **मध्यस्वर**–जिह्वा के मध्य या केंद्रीय भाग से उच्चरित स्वर, जैसे–'अ'।

   (ग) **पश्चस्वर**–वे स्वर, जो जिह्वा के पश्चभाग के सहयोग से उच्चरित होते हैं। जैसे–उ, ऊ, ओ, औ तथा आ।
3. **ओष्ठों की स्थिति के अनुसार**–विभिन्न स्वरों के उच्चारण में ओष्ठों की स्थिति का भी अपना विशेष महत्व है। ओष्ठों की यह स्थिति मुख्यतया तीन प्रकार की होती है–

   (क) **प्रसृत**–इस स्थिति में ओष्ठ, स्वाभाविक रूप में स्थिर रहते हुए खुले रहते हैं। उदाहरणतया–इ, ई, ए तथा ऐ के उच्चारण के समय की स्थिति।

   (ख) **वर्तुल**–ओष्ठों को थोड़ा आगे निकालकर जब गोलाकार कर देते हैं, तो यह वर्तुल स्थिति होती है और उ, ऊ, ओ तथा औ वर्णो का उच्चारण होता है।

   (ग) **अर्धवर्तुल**–जब ओष्ठ पूर्ण गोलाकार न होकर आधे गोलाकार हो जाते हैं, जैसे दीर्घ आकार के उच्चारण की स्थिति।
4. **मात्रा की दृष्टि से**–स्वरों के उच्चारण में लगने वाले समय को मात्रा कहते हैं। एकमात्रिक स्वर को ह्रस्व, द्विमात्रिक को दीर्घ तथा त्रिमात्रिक को प्लुत कहा जाता है–'एकमात्रो भवेद्ह्रस्वो, द्विमात्रो दीर्घ उच्यते। त्रिमात्रस्तु तु प्लुतो ज्ञेयो'।

व्यंजन स्वनों का वर्गीकरण

स्थान एवं प्रयत्न भेद से व्यंजनों के वर्गीकरण के दो प्रमुख आधार हैं। इनमें स्थान के आधार पर पूर्वकथित काकल्य, कंठ्य, तालव्य आदि भेद से व्यंजन ध्वनियों के आठ प्रकार हैं तथा प्रयत्न के आधार पर बाह्य प्रयत्न भेद से विवार, संवार, श्वास, नाद, अघोष, घोष, अल्पप्राण, महाप्राण हैं। आभ्यंतर प्रयत्न के आधार पर व्यंजन आठ प्रकार के हैं। ये निम्नलिखित हैं–

1. **स्पर्श**–जिन व्यंजनों के उच्चारण में जिह्वा कंठ से लेकर ओष्ठ संबंधित स्थानों का स्पर्श करती है, उन्हें स्पर्श व्यंजन कहते हैं। इस दृष्टि से कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग तथा पवर्ग स्पर्श व्यंजन ध्वनियां हैं।
2. **स्पर्श-संघर्षी**–जिन व्यंजनों के उच्चारण में स्पर्श के साथ-साथ निःश्वास के निकालने में हल्का सा संघर्षण भी होता है, उन्हें स्पर्श संघर्षी व्यंजन कहते हैं। जैसे–च, छ, ज, झ स्पर्श संघर्षी व्यंजन ध्वनियां हैं।
3. **संघर्षी**–'संघर्षी' ध्वनियों में निःश्वास वायु के निर्गम का मार्ग जिह्वा के द्वारा अत्यंत संकीर्ण कर दिया जाता है और वायु रगड़ खाती हुई बाहर की ओर निकलती है। रगड़ या संघर्ष की प्रधानता के कारण ही इन ध्वनियों को संघर्षी कहा जाता है। जैसे–श, ष, स, ज इत्यादि।
4. **पार्श्विक**–पार्श्विक ध्वनि के उच्चारण में जिह्वा की नोक मूर्धा का स्पर्श करती है और निःश्वास वायु दोनों पार्श्वों से बाहर निकलती है। जैसे–'ल'।
5. **लुंठित या लोड़ित**–जिन व्यंजनों के उच्चारण में जिह्वा की नोक बेलन की तरह लपेट खाकर तालु का स्पर्श करती है और वर्त्स पर बार-बार ठोकर मारती है, वे लुंठित कहलाते हैं। जैसे–'र'।
6. **उत्क्षिप्त**–जिन व्यंजनों के उच्चारण में जिह्वा, तालु के किसी भाग को झटके से छूकर हट जाती है, उन्हें 'उत्क्षिप्त व्यंजन' कहते हैं। जैसे–'ड़' और 'ढ़' उत्क्षिप्त व्यंजन हैं।
7. **अंतस्थ या अर्धस्वर**–इन वर्णों के उच्चारण में जिह्वा से न तो पूरी तरह स्पर्श ही होता है और न स्वरों के उच्चारण के समान पार्थक्य ही रहता है। जैसे–य, व, इन दोनों वर्णों में स्वर व व्यंजन दोनों का वैशिष्ट्य रहने से इन्हें अंतस्थ या अर्धस्वर कहते हैं।
8. **अनुनासिक**–जिन व्यंजनों के उच्चारण में निःश्वास वायु मुखविवर के साथ-साथ नासिकाविवर से भी निकला करती है, उन्हें अनुनासिक व्यंजन कहते हैं। जैसे–ङ, ञ, ण, न तथा म।

स्वन गुण एवं नियम

ध्वनियों के उच्चारण में अनेक विविधताएं पाई जाती हैं। किसी ध्वनि का उच्चारण कम समय में तथा किसी ध्वनि का उच्चारण अधिक समय में होता है। किसी ध्वनि पर बोलते समय अधिक बल दिया जाता है तथा किसी ध्वनि पर कम। किसी ध्वनि को ऊंचे स्वर

में बोलते हैं तो किसी ध्वनि को निम्न स्वर में। इस प्रकार ध्वनियों में भिन्नता पाई जाती है। इन्हें ध्वनियों के गुण कहते हैं। ये गुण होते हैं–मात्रा या परिमाण, सुर तथा बलाघात।

टिप्पणी

मात्रा (परिणाम)–ध्वनि उच्चारण में लगने वाली कालावधि (समय) को ध्वनि की मात्रा कहते हैं। इस गुण का संबंध काल से है। जहां काल कम लगता है, वहां ह्रस्व और जहां काल अधिक लगता है वहां दीर्घ मात्रा मानी जाती है। संस्कृत व्याकरण के अनुसार मात्रा काल तीन प्रकार के होते हैं–ह्रस्व, दीर्घ एवं प्लुत। 'उ' के उच्चारण में जितना समय लगता है, उसे उसकी एक मात्रा अथवा ह्रस्व कहते हैं। उ + उ = ऊ के उच्चारण में जितना समय लगता है, उसे उसकी दो मात्रा अर्थात दीर्घ तथा उ + उ + उ = ऊ तीन उ के उच्चारण के बराबर जिसमें समय लगता है, उसे प्लुत ध्वनि कहते हैं। इस प्रकार ह्रस्व, दीर्घ तथा प्लुत का आधार उच्चारण का समय ही है। ह्रस्व मात्रा का चिह्न "।" दीर्घ मात्रा का चिह्न "ऽ" एवं प्लुत का चिह्न "३" होता है। प्लुत ध्वनियों का प्रयोग किसी को दूर से पुकारने में किया जाता है। 'ओ३म' में 'ओ' की ध्वनि प्लुत है। ए, औ, ऐ, औ–ये संयुक्त ध्वनियां हैं। ये मात्रा वाली ध्वनियां हैं।

संगीत में मात्राओं की गणना संभव नहीं है। गायक आवश्यकतानुसार एक मात्रा को छह, सात, दस, बारह और बीस तक अपने आलाप में प्रस्तुत कर सकता है। वैदिक मंत्रों में तो 1/4, 1/2, 3/4 आदि मात्राओं की ध्वनियां भी पाई जाती हैं और सामवेद में वामदेव्यगान में तो किसी-किसी ध्वनि में 4, 5, 6 मात्राओं का भी समय लगता है। इस प्रकार हमारी ध्वनियां ह्रस्व, दीर्घ तथा प्लुत के भेद से भिन्न-भिन्न हो जाती हैं। वैदिक मंत्रों का गान इन्हीं उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित सुरों में होता है। महाभाष्यकार ने सुर या वर्ण के द्वारा दुष्ट शब्द को उच्चारण करने वाले का दुष्ट शब्द ही संहार करता है, ऐसा भी कहा है–

"दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग् वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्।।

बलाघात–किसी ध्वनि पर शक्ति या बल देकर उच्चारण करना बलाघात कहलाता है। बलाघात युक्त ध्वनि का उच्चारण ऊंचे सुर से किया जाता है। वायु फेफड़ों से अधिक तेजी से निकलती है। ध्वनि पर बल पड़ने से उच्चारण ऊंचे सुर से होता है। बलाघात ध्वनि बोलते समय प्रयोग की जाती है। लिखते समय इसका प्रयोग नहीं होता है। मात्रा एवं बलाघात में सामान्य अंतर यह है कि मात्रा में समय अधिक लगता है, उसमें जोर से बोलने का प्रश्न ही नहीं उठता। बलाघात में समय उतना ही लगता है, किंतु ध्वनि पर जोर पड़ने से आवाज कुछ ऊंची हो जाती है। बलाघात तीन प्रकार का होता है– सबल (Strong), संबल (Medium), निर्बल (Weak)। बोलते समय जब सबसे अधिक शक्ति लगाई जाए, तो उसे सबल बलाघात कहते हैं। जब बोलते समय सबल से कम बल लगाया जाए, तो उसे संबल तथा जब सबसे कम शक्ति का प्रयोग किया जाए, तो उसे निर्बल बलाघात कहते हैं। बलाघात शब्दों पर या वाक्यों में पाए जाते हैं।

टिप्पणी

बलाघात वाली ध्वनि की यही स्थिति होती है एवं उसके पास की दीर्घ ध्वनि ह्रस्व हो जाती है या निर्बल होकर समाप्त हो जाती है। अघोष ध्वनियों पर बलाघात अधिक पाया जाता है, क्योंकि वायु बिना अवरुद्ध हुए तेजी से बाहर निकलती है। किंतु सघोष ध्वनियों पर बलाघात कम होता है, क्योंकि वायु अवरुद्ध होकर धीरे-धीरे बाहर निकलती है। हिंदी भाषा में शब्दों की उपांत ध्वनि पर बलाघात होता है, जिसके कारण अकारांत शब्दों के अंतिम अक्षरों का रूप हलंत जैसा हो जाता है; जैसे आम् (आम), कल् (कल), कमल् (कमल) आदि।

संगीतात्मक स्वराघात (Pitchaccent)–सुर स्वरतंत्रियों से संबंध रखते हैं। स्वरतंत्रियों में खिंचाव आने से अनेक सुर उत्पन्न होते हैं। स्वरतंत्रियों में कंपन होने से इनकी उत्पत्ति सघोष ध्वनियों में ही होती है, अघोष में नहीं। संगीतात्मक स्वराघात पर ही संगीत के सातों स्वर–सा, रे, गा, मा, प, ध, नि, एवं तीन सप्तक मंद्र, मध्य तथा तार आधारित होते हैं। वैदिक काल में तीन सुर थे–उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित। उदात्त ऊंचे सुर (Tone) को, अनुदात्त नीचे सुर को तथा दोनों गुणों से समन्वित सुर को स्वरित कहते थे। उदात्त सुर को अचिह्नित रखा जाता था। अनुदात्त के नीचे लेटी रेखा (–) तथा स्वरित स्वर के नीचे खड़ी रेखा (।) का प्रयोग किया जाता था। संसार की अनेक भाषाओं में सुरों की संख्या भिन्न-भिन्न है। चीनी भाषा की मंदारिन बोली में चार सुर होते हैं। चीनी भाषा के कुछ शब्दों के अर्थ सुर भेद के कारण अट्ठानवे तक हो सकते हैं। अफ्रीका की दुआला तथा होटंटाट भाषाओं में भी तीन सुर पाए जाते हैं।

रूपात्मक स्वराघात– प्राय: प्रत्येक व्यक्ति के स्वर की अपनी विशिष्टता होती है। कभी-कभी बिना देखे व्यक्ति की बोली सुनकर ही हम पहचान लेते हैं कि वह अमुक व्यक्ति है। यह व्यक्ति की ध्वनि उच्चारण विशिष्टता के कारण संभव होता है। प्रत्येक व्यक्ति के कंठस्वरों में कुछ न कुछ सूक्ष्म अंतर विद्यमान रहता है। व्यक्तिगत कंठस्वरों की विशेषता को ही रूपात्मक स्वराघात कहते हैं। व्यक्तियों की ध्वनियों की विशेषता स्वरतंत्रियों की रचना के आधार पर होती है। भाषा विज्ञान में कुछ विद्वान रूपात्मक स्वराघात के भेद को स्वीकार नहीं करते और न कोई महत्व प्रदान करते हैं। इसका कोई निश्चित आधार नहीं है।

ध्वनि गुण के वस्तुत: तीन ही प्रमुख भेद हैं–मात्रा, बलाघात तथा सुर। ये ध्वनिगुण संसार की विभिन्न भाषाओं में न्यूनाधिक रूप में अवश्य पाए जाते हैं।

ध्वनि नियम

जहां विशेष परिस्थितियों में पड़कर कोई एक क्रिया समय और स्थान की सीमा का अतिक्रमण कर सर्वथा एक ही रूप में घटित हुआ करती है, तो उसे नियम की संज्ञा दी जाती है। जिस प्रकार प्रकृति के अनेक कार्यों को देखकर कुछ सामान्य एवं कुछ विशेष नियमों का निर्माण कर लिया जाता है, उसी प्रकार ध्वनियों में विकार के कार्यों को देखकर ध्वनि-नियम निर्धारित कर लिए जाते हैं। भिन्न-भिन्न भाषाओं में एक ही काल में और एक ही भाषा में विभिन्न कालों में उत्पन्न होने वाले इन ध्वनि-विकारों का यथाविधि तुलनात्मक अध्ययन करने पर यह निश्चित हो जाता है कि ध्वनियों में ये विकार

कुछ निश्चित नियमों के अनुसार होते हैं और यदि वही परिस्थितियां उसी भाषा में वैसे ही अवसर पर पुनः उत्पन्न हों, तो उसका परिणाम पूर्वानुसार ही होगा।

यह प्रश्न सदा ही विवादास्पद रहा है कि प्राकृतिक नियमों की भांति क्या भाषा विज्ञान के नियम भी शाश्वत हैं? प्राचीन विद्वानों ने अपने अध्ययन एवं मनन का यह निष्कर्ष निकाला है कि ध्वनि-परिवर्तन के नियम नितांत वैज्ञानिक एवं शाश्वत नहीं हो सकते। जेस्पर्सन का कथन है कि "परंतु मैं इस तथ्य का संकेत कर देना चाहता हूं कि मैंने इस बात को स्वीकार करने का कभी भी कारण नहीं पाया कि ध्वनि-परिवर्तन सदैव कड़े नियमों के अनुसार होते हैं और उनमें अपवाद नहीं होता।"

I want to point out the fact that now here have I found any reason to accept the theory that sound changes always take place according to rigorous or bling laws admitting. No exception….

ब्लूमफील्ड के अनुसार नियम शब्द का यहां कोई यथार्थ अर्थ नहीं है, क्योंकि ध्वनि परिवर्तन किसी भी प्रकार का नियम नहीं है, अपितु वह ऐतिहासिक घटना मात्र है।

• प्राकृतिक नियम व ध्वनि-नियमों में अंतर

1. प्राकृतिक नियम किसी काल-विशेष के आग्रह को स्वीकार नहीं करते हैं। वे शाश्वत होते हैं, किंतु ध्वनि-नियमों में ऐसा नहीं है। वे काल के प्रतिबंध को स्वीकार करते हैं। चार और चार जोड़ने से सर्वदा आठ होते हैं। किंतु भारतीय आर्य-भाषाओं के इतिहास में प्राचीन काल से मध्य में तथा मध्यकाल से आधुनिक काल में आने वाली भाषा में समान परिवर्तन घटित नहीं हुए हैं।
2. प्राकृतिक नियम अवस्था या स्थान की अपेक्षा नहीं रखते हैं। न्यूटन का नियम सार्वदेशिक है, किंतु विभिन्न भाषाओं के ध्वनि-नियम अपनी सीमाओं में आबद्ध रहते हैं। वे परिस्थितियों के दास हैं।
3. प्राकृतिक नियम अपना अपवाद नहीं छोड़ते हैं। किंतु ध्वनि-नियम सापवाद हैं। 'कर्म का विकसित रूप काम हो गया है, किंतु 'धर्म' का धाम न होकर 'धरम' हुआ है।

• क्या ध्वनि नियम के अपवाद वास्तविक हैं?

ध्वनि-नियमों के अपवाद सकारण होते हैं–

1. ध्वनि-नियमों के अपवाद का प्रधान तथा महत्वपूर्ण कारण 'सादृश्य' है। सादृश्य के कारण भ्रमवश अर्थ का अनर्थ हो जाता है।
2. दूसरा अपवाद का कारण है, दूसरी भाषाओं से शब्दों को ऋण रूप में ग्रहण करना। आज हिंदी में फारसी, अरबी व अंग्रेजी के अनेक शब्दों के आ जाने के कारण एक ही नियम प्रत्येक शब्द पर घटित नहीं हो सकता।
3. कभी-कभी हम स्वयं अपनी ही भाषा के उस काल के शब्द को ग्रहण कर लेते हैं, जिस काल में निर्दिष्ट नियम कार्य नहीं करता है।

4. कभी-कभी अन्य भाषा का समानाकार शब्द भाषा में ग्रहण कर लिया जाता है जो कि नियम की कसौटी पर घटित न होने पर अपवाद के रूप में स्वीकार कर लिया जाता है।
5. ध्वनि विकार में रुचि का भी महत्व नहीं होता है। अत: ध्वनि-नियम का विवेचन करते समय हमें इन तथ्यों का विशेष ध्यान रखना चाहिए–
   (क) वह नियम किस काल से संबंध रखता है?
   (ख) वह नियम किन-किन भाषाओं से संबंध रखता है?
   (ग) उस नियम की सीमाएं क्या हैं?

आचार्य टंकर के अनुसार, "किसी विशिष्ट भाषा की कुछ विशिष्ट ध्वनियों में किसी विशिष्ट काल और कुछ विशिष्ट दशाओं में हुए नियमित परिवर्तन को उस भाषा का ध्वनि-नियम कहते हैं।"

"A Phonetic law of a language is a statement of the regular practice of that language at a particular time in regard to the treatment of particular sound or group or sounds in a particular setting."

इस परिभाषा के आधार पर ध्वनि-नियमों की विशेषताओं का इस प्रकार निर्देश किया जा सकता है–

1. ध्वनि नियम किसी भाषा विशेष का होता है या किसी एक भाषा परिवार का। एक ध्वनि नियम संसार की समस्त भाषाओं पर लागू नहीं होता है।
2. यह नियम एक भाषा की समस्त ध्वनियों पर लागू न होकर कुछ विशिष्ट ध्वनियों पर लागू होता है।
3. ध्वनि नियम सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक नहीं होते हैं। वे निश्चित सीमा में ही सीमित रहते हैं।
4. ध्वनि-नियमों के लिए विशिष्ट अवस्था एवं परिस्थिति की अपेक्षा रहती है।
5. ध्वनि नियम सर्वथा अपवाद रहित नहीं होते हैं।

ध्वनि-नियमों संबंधी अपवादों के कारण

1. सादृश्य एवं भ्रममूलक शब्द हैं।
2. अन्य भाषाओं से ऋण रूप में गृहीत शब्दों के कारण भी अपवाद मिलते हैं।
3. बोलियों का मिश्रण।
4. शब्दों की नकल।
5. काव्य में अनुप्रास आदि के लिए तोड़-मरोड़ शब्द भी अपवाद के कारण हैं।

निष्कर्ष यह है कि ध्वनि-नियम सापवाद, शिथिल (Flexible) होते हैं। इनके लिए विशिष्ट भाषा, विशिष्ट ध्वनि तथा विशिष्ट दशा का होना अपरिहार्य है।

वस्तुतः किसी भाषा-विशेष में किसी काल-विशेष में कुछ विशेष परिस्थितियों के अंतर्गत हुए विशेष प्रकार के ध्वनि-परिवर्तनों को ध्वनि-नियम कहते हैं।

टिप्पणी

● विशिष्ट ध्वनि नियम

यहां कतिपय विशिष्ट ध्वनि-नियमों का ही वर्णन किया जा रहा है– ग्रिम-नियम, ग्रासमान-नियम, वर्नर-नियम

'मूलभाषा-सुसंबद्धाः ग्रिम ग्रासमान-वर्नराः।
वर्णानां परिवृत्त्यैव, प्रसिद्धिं परमां गताः॥

1. **ग्रिम-नियम**

यह ध्वनि-नियम प्रो. याकोब ग्रिम के नाम से प्रसिद्ध है। इस नियम को 'ध्वनि-परिवर्तन', साउंड ध्वनि भी कहते हैं। जर्मन भाषा के मूर्धन्य पंडित तथा प्रसिद्ध भाषा-वैज्ञानिक आचार्य ग्रिम ने जिस नियम का प्रतिपादन किया है, उस नियम को 'ग्रिम नियम' के नाम से अभिहित किया जाता है। यद्यपि इस नियम के प्रथम विचारक इहरे तथा रैज्मस रैस्क थे परंतु इसकी सम्यक् विवेचना ग्रिम महोदय ने की। अतएव यह 'ग्रिम नियम' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। प्रो. मैक्समूलर ने इसे 'ग्रिम नियम' नाम दिया है। अतः इस नियम को दो भागों में विभक्त किया गया है– ग्रिम नियम का संबंध नौ स्पर्श ध्वनियों से है। 'क' से लेकर 'म' तक समस्त ध्वनि स्पर्श कहलाती हैं (कादयो मावसानाः स्पर्शाः)। इसे जर्मन भाषा का वर्ण परिवर्तन कहते हैं। जर्मन भाषा का यह परिवर्तन दो बार हुआ है। प्रथम वर्ण परिवर्तन ईसा के कई सदी पूर्व में हुआ है तथा द्वितीय वर्ण परिवर्तन लगभग सातवीं शताब्दी में हुआ।

प्रथम वर्ण परिवर्तन–यह वर्ण परिवर्तन ईसा के जन्म से पूर्व हो चुका था। इसका प्रभाव गाथिक, निम्न जर्मन और अंग्रेजी, डच आदि भाषाओं पर पड़ा है। भारोपीय मूलभाषा की व्यंजन ध्वनियां संस्कृत, लैटिन, ग्रीक आदि में सुरक्षित हैं। अंग्रेजी का उद्‌भव निम्न जर्मन से हुआ है, अतः इसके द्वारा संस्कृत और अंग्रेजी की तुलना से यह परिवर्तन स्पष्ट हो जाता है। इस वर्ण-परिवर्तन में एक ओर संस्कृत, लैटिन, ग्रीक, स्लावोनिक भाषाएं हैं, जिनमें मूल ध्वनि सुरक्षित है, तो दूसरी ओर गाथिक, निम्न जर्मन, अंग्रेजी, डच आदि भाषाएं हैं, इनमें यह परिवर्तन हुआ है।

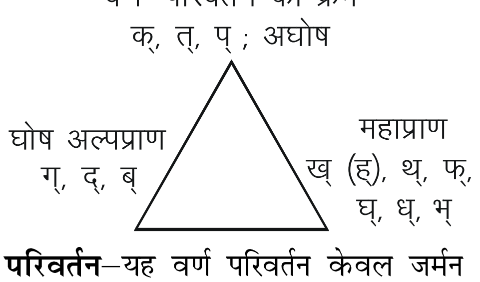

द्वितीय वर्ण परिवर्तन–यह वर्ण परिवर्तन केवल जर्मन भाषा के ही दो रूपों उच्च और निम्न में हुआ है। निम्न जर्मन की प्रतिनिधि भाषा अंग्रेजी है। यह

टिप्पणी

परिवर्तन निम्न जर्मन और अंग्रेजी से उच्च जर्मन में हुआ है। निम्न जर्मन की कुछ ध्वनियां उच्च जर्मन में भिन्न हो गई हैं।

क-तपा ह-थ-फाः संतु, घ-ध-भा-ग-द-बास्तथा।

ग-द-बाः क-त-पा संतु, ग्रिमाख्ये नियमे सति॥

प्रथम वर्ण-परिवर्तन

ध्वनि-परिवर्तन	**संस्कृत**	**अंग्रेजी**	**अर्थ**
क् > ह् h, wh	कः	who	कौन
त् > थ् th	त्रि	three	तीन
	तनु	thin	दुबला
प् > फ् f	पितर	Father	पिता
	पाद	foot	पाद
घ् (ह) > ग् g	हंस	goose	हंय
	दुहितर	Daughter	पुत्री
भ् > ब् b	भ्रातर	Bother	भाई
	भू	be	होना
	भर (भृ)	Bear	धारण करना
ग् > क् k	गो	cow	गाय
	युग	yoke	जुआ
द् > त् t	दशन्	ten	दस
	द्वौ	two	दो
	अद्	eat	खाना

द्वितीय वर्ण परिवर्तन

ध्वनि-परिवर्तन	**अंग्रेजी**	**जर्मन**	**अर्थ**
k – ch, ख	Book	Buch, बुख	पुस्तक
	Cook	Coch, कोख	रसोइया
t- s, ss, स्	Out	ous, आउस	बाहर
t-z, त्स	Ten	Zehn, त्सेन	दस
P-f, pf प्फ	Up	Auf, आउफ	ऊपर
	Apple	Apfel आफेल	सेब
	Open	offen ओफ्फेन	खोलना
h-g ग्	Hostis	Gast – गास्ट	अतिथि
th-d, द्	Three	Drei – द्राई	तीन
	Thick	Dick – डिक	मोटा
v-fb, ब्	Wife	Weib, वाइब	पत्नी
	Give	Geben, गेबेन	देना
g-CK क्	Bridge	Brucke, ब्रयूक	पुल

d-t त्	God	Gott, गोट्ट	ईश्वर
	Do	Tun तुन	करना
	Drink	Triken तृकन	पीना
b-P, प्	Double	Doppel, डोप्पेल	दुगुना

टिप्पणी

2. **ग्रासमान नियम**

महाप्राण द्वयी युक्ताः, द्वयक्षरा मूलधातवः।
महाप्राणाद्यनाशः स्याद्, ग्रासमान विधौ स्मृते॥

हेर्मान ग्रासमान भी जर्मन विद्वान हैं। इन्होंने ग्रिम नियम को संशोधित किया है और उसकी त्रुटियों का निराकरण किया है। ग्रासमान को मुख्य रूप से ग्रिम नियम में जो कमी दृष्टिगोचर हुई, वह यह थी कि जर्मनिक व भारोपीय भाषाओं में कुछ ध्वनि परिवर्तन उस प्रकार से नहीं हो रहे थे, जिस प्रकार वे याकोब ग्रिम नियम के अनुसार होने चाहिए थे। उदाहरण के लिए ग्रीक किंग्स्वो, तुप्तोस, पिथास का अंग्रेजी में Go, dumb, body शब्द बनते हैं, किंतु ग्रिम नियम के अनुसार ho, thumb, body होने चाहिए थे। इसी प्रकार ग्रिम नियमानुसार ब् को प् और द को त होना चाहिए था, किंतु गथिक में भी ब् व द् ही मिलते हैं–

संस्कृत	**गथिक**
बोधति	Biudan बिउदान
दभ्	Daubs दाउब्स

ग्रासमान ने इसमें दो संशोधन किए। पहला संशोधन यह था कि 'भारोपीय मूल भाषा में यदि शब्द या धातु के आदि और अंत में दोनों स्थानों पर महाप्राण हो, तो संस्कृत, ग्रीक आदि में एक अल्पप्राण हो जाता है। दूसरा संशोधन यह था कि यदि संस्कृत आदि के कुछ शब्दों का परिवर्तन जर्मनिक में उस प्रकार दृष्टिगोचर नहीं होता, जिस प्रकार से ग्रिम नियम के अनुसार होना चाहिए, तो उसके आधार पर यह अनुमान लगा लेना चाहिए कि भारोपीय से संस्कृत तक आते-आते एक बार ग्रिम नियम के अनुसार परिवर्तन हो चुका है, इसलिए पुनः परिवर्तन होने की संभावना नहीं हो सकती। अतः यदि बोधति- बिउदान, दभ्–दाउब्स में ब्-द् का क्रमशः प् और त् नहीं हुआ है, तो इसका कारण यह है कि मूल भारोपीय भोधति और धर्भ से संस्कृत तक आते-आते बोधति और दर्भ में पहले से ही 'भ्' और 'ध्' वर्णों का परिवर्तन ग्रिम नियम के अनुसार 'ब्' और 'द्' में हो चुका है। इसलिए पुनः इसका नियमानुसार परिवर्तन कैसे हो सकता है।'

3. **वर्नर नियम**

पूर्वमुदात्तयोगे तु ग्रिमाख्यो नियमो भवेत्।
अन्यथा द्विपदा वृत्तिः, वर्नरे नियमे सति॥

कार्ल वर्नर भी जर्मन भाषाशास्त्री हैं। इन्होंने भी ग्रिम नियम का संशोधन किया है। ग्रिम नियम के जो अपवाद रह गए थे, उनके विषय में वर्नर ने ज्ञात किया है कि ग्रिम नियम का आधार उदात्त स्वर था।

टिप्पणी

मूल भारोपीय भाषा के शब्दों के क्, त्, प् का जर्मनिक भाषाओं में ह्, थ, फ तभी होता है, जब मूल भाषा में अव्यवहित पूर्व कोई उदात्त स्वर होता है। यदि उदात्त स्वर क्, त्, प् के बाद हो, तो इनके स्थान पर क्रमशः ग्, द्, ब् होते हैं।

संस्कृत	**लैटिन**	**गथिक**	**अंग्रेजी**	**ध्वनि-परिवर्तन**
युवक्	Juvencus	Juggs	young	क > ग
शतम्	Centum	Hund	Hundred	त > द
सप्तम्	Septem	Sibun	Seven	प > ब
लिम्पामि	Lippus	Bileiba	Belife	

इनमें क्, त्, प् के बाद उदात्त स्वर हैं, अतः इनके ह्, थ, फ् न होकर ग्, द्, ब् हुए हैं। भ्रातर में 'त्' से पहले उदात्त है, अतः गथिक व अंग्रेजी में Brother में त् को थ् लिखा जाता है। ब्राथर को ब्रदर बोला जाता है। ग्रिम नियम का प्रभाव 'स्' पर नहीं पड़ता, परंतु कुछ उदाहरणों में 'स्' के स्थान पर 'र्' का प्रयोग मिलता है। वर्नर ने इसका समाधान भी बलाघात में खोज निकाला। उनके अनुसार यदि बलाघात 'स्' से पूर्व होगा तो परिवर्तन नहीं होगा, परंतु यदि बलाघात् 'स्' के बाद होगा तो 'स्' का 'र्' हो जाएगा।

- **तालव्यभाव नियम**

तालव्यभाव का नियम कब और कैसे बना, निश्चित रूप से इसके विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। इस विषय पर विविध विद्वान स्वतंत्र रूप से कार्य करते हैं, जिनमें विल्हेन, थामसन, स्मिथ, एशाम, तेंगार, कालिन्ज देशे शोर तथा वर्नर आदि विद्वानों के नाम उल्लेखनीय हैं।

इस नियम के निर्माण से पूर्व अन्य सगोत्रीय भाषाओं की अपेक्षा संस्कृत अधिकतर भारोपीय है, यह धारणा थी। मूल भारोपीय भाषा में दन्त्य एवं ओष्ठ्य व्यंजन के अतिरिक्त तीन प्रकार के कंठ्य स्पर्श थे–शुद्ध कंठ्य, मध्य कंठ्य एवं तालव्य। इनका विकास परवर्ती भाषाओं में भिन्न-भिन्न ढंगों से हुआ है। पश्चिमी भारोपीय भाषाओं (ग्रीक, इटली, जर्मन, कैल्टिक) में मध्यम कंठ्य तथा तालव्य का एक तालव्य वर्ग बन गया एवं कंठ्य स्पर्शों में एक ओष्ठ्य (व) ध्वनि सुनाई पड़ने लगी। पूर्वी भाषाओं आर्मेनियन, बोल्टो, स्लावोनिक आर्य में कंठ्य ध्वनियों में ओष्ठ्य भाव नहीं आया, पर कंठ्य ध्वनियों के साथ मिलकर एक वर्ण बन गया। इन्हीं पूर्वी भाषाओं में मूल तालव्य आकर घर्ष बन गए।

जिन संस्कृत शब्दों में 'अ' ग्रीक या लैटिन के ओ (O) की भांति है, उनके पूर्व 'क' या 'ग' ही पाया जाता है। परंतु यदि वही 'अ' ग्रीक या लैटिन के पूर्व ई E की भांति है, तो उससे पूर्व कंठ्य 'क' या 'ग' न मिलकर तालव्य च और ज मिलते हैं।

संस्कृत	अस्ति	जनूः	अ	अपः	ददर्श	अस्थि
ग्रीक	Esti	Genos	इ–O	–	Dedorka	Osteon

लैटिन Aste Genus ई-Uopus – – Os

इसी प्रकार पच् धातु से निष्पन्न 'पचति' तथा 'पकस' में यही तथ्य है। अत: यह निष्कर्ष निकला कि संस्कृत 'अ' ध्वनि के स्थान पर इ या ओ ध्वनियां मूल भाषा में थीं। अग्र स्वर ई के पूर्व का तृतीय कंठ वर्ग 'अकुहविसर्जनीयानां कंठ:' मूल भाषा का अन्य भाषाओं में तालव्य 'इचुयशानां तालु' व्यंजन में परिवर्तित हो जाता है। कंठ्य ध्वनियों के तालव्य ध्वनियों में परिवर्तित होने के कारण इसे तालव्य नियम कहते हैं।

टिप्पणी

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि उपर्युक्त ध्वनि-नियमों के माध्यम से ध्वनियों में हुए परिवर्तन को सरलतापूर्वक जाना जा सकता है। वस्तुत: ध्वनि-नियम भाषा विज्ञान में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

स्वन परिवर्तन की दिशाएं

स्वन परिवर्तन की दिशाओं और इसके कारणों को पृथक-पृथक इस प्रकार समझा जा सकता है–

ध्वनि परिवर्तन के प्रयत्न-लाघव आदि विभिन्न कारणों का विश्लेषण करने पर हम देखते हैं कि विशिष्ट भाषाओं में इसके विशिष्ट रूप मिलते हैं। इन कारणों की कुछ दिशाएं इस प्रकार निर्दिष्ट की जा सकती हैं। प्राचीन संस्कृत वैयाकरणों ने भी इन दिशाओं का निर्देश किया है। उनके अनुसार ध्वनि (वर्ण) परिवर्तन के कारण वर्ण-व्यत्यय, वर्णापाय, वर्णोपजन तथा वर्णविकार हैं–

वर्णव्यत्ययापायोपजन विकारेषु...।

वर्णव्यत्यते कृतेस्तर्क: कसे: सिकता:, हिंसे: सिंह:...।

अपायोलोप: घ्नन्ति, घ्नन्तु, अघ्नन।...

उपजन-आगम:। लविता लवितुम्।

विकार: आदेश:। घातयति घातक:।

महाभाष्यकार पतञ्जलि ने वर्णव्यत्यय के उदाहरणस्वरूप–'कृते' से तर्क:, 'कसे:' से सिकता:, 'हिंस' से 'सिंह'। लोप के उदाहरणस्वरूप घ्वन्ति, घ्नन्तु और अघ्नन्, आगम के उदाहरण में 'लविता' से लवितुम, आदेश के उदाहरण के रूप में घातयति से घातक: प्रस्तुत किए हैं। काशिका में "वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च द्वौ चापरौ वर्णविकारनाशौ" के रूप में वर्ण-परिवर्तन के नियमों का उल्लेख किया गया है। पतञ्जलि के पूर्ववर्ती (संभवत: ईसा पूर्व सप्तमशतक) निरुक्तकार यास्क ने भी इन वर्णध्वनि परिवर्तन की दिशाओं का इन शब्दों में सोदाहरण उल्लेख किया है–

"अथाप्यस्तेर्निवृत्तिस्थानेषु आदि लोपो भवति स्त: संतीतित्यथाप्यन्तलोपी भवति गत्वा गतमित्यथाप्युपधालोपो भवति जग्मतुर्जग्मुरितयथाप्युपधाविकारो भवति राजा दण्डीत्यथापि वर्णलोपो भवति तत्वा यामित्यथापि द्विवर्णलोपस्तृच इत्यथाप्यादि विपर्य्ययो भवति ज्योतिर्घनो विन्दुवाटय इत्यथाप्याद्यन्त विपर्य्ययो भवति स्तोका रज्जु: सिकता स्तविवत्यथाप्यन्त व्यापत्तिर्भवति।'।

टिप्पणी

इस प्रकार निरुक्तकार ने आदिलोप, अंतलोप, उपधालोप, आदिविपर्यय, अंत विपर्यय, वर्णोपजन (आगम) आदि वर्ण परिवर्तन की दिशाओं का उल्लेख किया है। संस्कृत वैयाकरण जिसे उपधालोप कहते हैं, आधुनिक भाषा-वैज्ञानिक उसे Syncope कहते हैं। संस्कृत वैयाकरण जिसे आदिविपर्यय कहते हैं, भाषा वैज्ञानिकों के मत में वह अंशत: Assimilation और Dissimilation है। संस्कृत वैयाकरणों का आद्यन्त-विपर्यय ही भाषा-वैज्ञानिकों का Anaptyxis है। आशय यह है कि 700 ई.पू. भाषा के संबंध में जो अध्ययन हो रहा था, उसका विकसित रूप आधुनिक भाषा विज्ञान में सुरक्षित है।

परस्पर विनिमय, वर्ण विपर्यय, वर्ण व्यत्यय (Metathesis)–वर्णविपर्यय Metathesis के हिंदी में कई नामांतर परस्पर विनिमय, वर्ण-व्यत्यय आदि मिलते हैं। किसी शब्द के स्वर-व्यंजन या ध्वनियां जब एक स्थान से दूसरे स्थान पर चली जाती हैं और उस स्थान से प्रथम स्थान पर आ जाती हैं, तो इस पारस्परिक परिवर्तन को विपर्यय कहा जाता है–Transposition in words or letter डॉ. पी.डी. गुणे वर्णव्यत्यय पर विचार करते हुए लिखते हैं–"ध्वनि परिवर्तन में विपर्यय अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य करता है।"

विपर्यय वहां होता है, जहां शब्द की दो ध्वनियां स्थान परिवर्तन करती हैं। यह किसी शब्द की ध्वनियों अथवा उसके वर्णों का क्रम परिवर्तन है– Metathesis plays a considerable part in phonetic change. This is when two sounds in a word change places. It's transposition of sounds or letters in word. आधुनिक भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन करते समय इस Metathesis का सर्वप्रथम निर्देश पिशेल ने सन् 1871 में किया था। यद्यपि इसके अनेक उदाहरणों का निर्देश संस्कृत वैयाकरणों ने भी किया है। उदाहरण के लिए–'निरुक्त' में 'स्तोक', 'रज्जु', 'सिकता'।

तुर्क शब्दों को इसी प्रकार वर्णों के आद्यंत विपर्यय द्वारा क्रमश: श्च्युतिर क्षरणे (च्युत), "सृजविसर्गे" 'कसविकसने' और 'कृतिछेदने' (=कृत्) इन धातुओं से बनाया गया है। ऐतरेय ब्राह्मण (2.14) आदि वैदिक ग्रंथों में 'शल्क' शब्द टुकड़े के अर्थ में आता है। पीछे से वर्ण-व्यत्यय और स्वरभक्ति से इसी का दूसरा रूप 'शक्ल' हो गया, जो संस्कृत में बराबर प्रयुक्त होता है।

हिंदी में वर्ण-व्यत्यय के अनेक उदाहरण उपलब्ध होते हैं। वर्ण व्यत्यय के दो भेद किए जा सकते हैं–

(1) स्वर विनिमय–अग्लिका से इमली अ और इ का परस्पर विनिमय हुआ है।

(2) व्यंजन विनिमय–चाकू से काचू में च और क का व्यंजन विपर्यय हुआ है।

इसके भी पार्श्ववर्ती तथा दूरवर्ती दो भेद और किए जा सकते हैं–

पार्श्ववर्ती विपर्यय–बिल्कुल निकट के या पार्श्व में होने वाला विपर्यय; जैसे जलेबी से जबेली, यहां पर 'ल' और 'ब' दोनों समीप व्यंजनों में परिवर्तन हुआ है।

दूरवर्ती विपर्यय–दूर की ध्वनियों में जो विपर्यय होता है, उसे दूरवर्ती विपर्यय कहते हैं; जैसे लखनऊ का नखलऊ, अमरूद का अरमूद।

स्वर विपर्यय–कुछ = कछु, जानवर = जनावर, खुजली = खजुली, बिंदु = बूंदि इत्यादि।

दूरवर्ती स्वर-विपर्यय–फाटक = फटका, टाटक = टटका।

पाश्र्ववर्ती व्यंजन विपर्यय–चिन्ह = चिह्न, ब्राह्मण = ब्राम्हन, डूबना = बूड़ना, वाराणसी = बनारस, जलेबी = जबेली।

दूरवर्ती व्यंजन विपर्यय–नरिकेल = नालिकेर, लखनऊ = नखलऊ, मुकलचा = मुचलका।

कभी-कभी इस प्रकार के विपर्यय भी दृष्टिगत होते हैं, जिनमें स्वर, व्यंजन या अक्षर अपना स्थान तो छोड़ देते हैं, किंतु उनके स्थान पर दूसरी ध्वनि, वर्ण आदि नहीं आते हैं। उदाहरण के लिए पुर्तगाली शब्द Festra = Fersta। वेंद्रिये ने इस प्रकार के परिवर्तन को विपर्यय मानते हुए इसे 'एकांगी विपर्यय कहा है। कभी-कभी शब्दांश विपर्यय के उदाहरण भी मिलते हैं। इस शब्दांश विपर्यय में कभी-कभी दो साथ के शब्दों के आरंभ के अंशों में विपर्यय हो जाता है; जैसे–घोड़ा गाड़ी = गाड़ी घोड़ा।

ऑक्सफोर्ड के डॉ. स्पूनर साहब से ऐसी त्रुटियां प्रायः हो जाती थीं। अतः उन्हीं के नाम पर इस विपर्यय को स्पूनरिज्म भी कहा जाता है।

It is called spoonerism, when occurring in a phrase or sentence, boiled icicle for oiled bicycle is given of Oxford Dictionary.

आधुनिक भाषा विज्ञान विशारदों के विचार से सामान्यतः ध्वनि-परिवर्तन की दिशाएं इस प्रकार हैं–

लोप अभिनिधान (Elision)–कभी-कभी ध्वनियों का उच्चारण करते समय प्रयत्नलाघव, मुख-सुख या स्वराघात के कारण कुछ ध्वनियां लुप्त हो जाती हैं।

लोप के स्वर, व्यंजन तथा अक्षर से संबंधित होने के कारण इसे तीन प्रकार का माना गया है– (1) स्वरलोप (2) आदि व्यंजनलोप और (3) आदि अक्षरलोप। उपर्युक्त तीनों के आदि, मध्य और अंत्य ये तीन भेद किए गए हैं–

1. **स्वरलोप** (Syncope)–शब्दों में दो व्यंजनों के मध्य आने वाले स्वर का प्रायः लोप हो जाता है; जैसे – राजन् + अस् = राज्ञः आदि स्वर लोप=

अनाज	= नाज	अहाता	= हाता		
आभ्यंतर	= भीतर	अरण्य	= रण्य		

मध्य स्वर लोप

अरथी	= अर्थी	बरतन	= बर्तन	उलटा	= उल्टा
गलती	= गल्ती	Do not	= Don't	नरक	= नर्क

टिप्पणी

अंत्य स्वर लोप

आम्र	=	आम	बाहु	=	बांह
पार्श्व	=	पास	भगिनी	=	बहन
परीक्षा	=	परख	वार्ता	=	बात

स्वर लोप की भांति व्यंजन लोप भी दृष्टिगत होते हैं, इनके भी आदि, मध्य व अंत्य तीन भेद प्राप्त होते हैं।

2. **आदि व्यंजनलोप**–उच्चारण की कठिनाई के कारण अंग्रेजी आदि भाषाओं में आदि व्यंजनों का लोप हो जाता है। यह लोप लिखित अवस्था में भी पाया जाता है; जैसे–

Knife	=	nife	write	=	Rite
Know	=	now	स्थान	=	थान
Knight	=	night	प्रिय	=	पिय
श्मशान	=	मसान	स्थाली	=	थाली

मध्य व्यंजनलोप–संस्कृत शब्दों के मध्य आने वाले क, ग, च, ज, त, द, न, प, फ, य, र, ल, व, ष तथा विसर्ग (:) का प्राय: हिंदी में लोप हो जाता है।

उष्ट्र	=	उंट	अर्द्ध	=	आधा	दुग्ध	=	दूध
कोकिल	=	कोईल	पिप्पल	=	पीपल	सूची	=	सुई
लज्जा	=	लाज	फाल्गुन	=	फागुन	कुक्कुर	=	कूकर
उत्पत्ति	=	उपज	दु:ख	=	दुख	श्रृगाल	=	सियार

प्राकृत भाषा में इसके अनेक उदाहरण दृष्टि में आते हैं–

सागर	=	साअर	भोजन	=	भोअण	प्रिय	=	पिय

हिंदी की बोलियों में भी इस तरह की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। जैसे–

ज्वार	=	जर	ब्राह्मण	=	बाम्हन
बुद्ध	=	बुध	कार्तिक	=	कातिक
कायस्थ	=	कायथ	उपवास	=	उपास

इसी प्रकार अंग्रेजी में तो उच्चारण का लोप हो गया है, यद्यपि लिखितावस्था में वे अभी मिलते हैं–

Talk	=	टाक	Walk	=	वाक
Right	=	राइट	Daughter	=	डॉटर

अंत्य व्यंजनलोप

सत्य	=	सच	निम्ब	=	नीम	पश्चात्	=	पश्चा (प्राकृत)
चरित्र	=	चरित	कुंकुम	=	कुम्मो	आम्र	=	आम

उष्ट्र = ऊंट	यावत् = जाव		

3. **आदि अक्षरलोप**-इसके चार भेद किए जाते हैं–

(क) आदि अक्षरलोप (ख) मध्य अक्षरलोप

(ग) अंत्य अक्षरलोप (घ) समाक्षरलोप

टिप्पणी

आदि अक्षरलोप (apheresis)

University = versity	त्रिशूल = शूल	शहतूत = तूत
Defence = fence	अध्यापक = झा	
Necktie = Tie	व्याकुल = आकुल	

मध्य अक्षरलोप

भंडागार = भंडार	दस्तखत = दस्खत	वरुजीवी = वरई
राज्यकुल = राउर	गेहूं जव = गोजई	

अंत्य अक्षरलोप

माता = मां	निम्बुक = नींबू	दीपवर्तिका = दीवट
यज्ञोपवीत = जनेऊ	भ्रातृजाया = भावज	मौक्तिक = मोती
सपाद = सवा	जीव = जी	

समाक्षर लोप (Haplology)–जब किसी एक ही शब्द में अक्षर या अक्षर समूह साथ-साथ दो बार प्रयुक्त किए जाते हैं, तो उच्चारण की सुविधा के कारण उनमें से एक का लोप हो जाता है, तब उसे समाक्षर लोप कहा जाता है। समाक्षर लोप के लिए यह आवश्यक है कि एक साथ आने वाले दो अक्षरों में एक ध्वनि समान हो। हेप्लोलॉजी शब्द का प्रयोग ब्लूमफील्ड ने किया है–

Haplology is a name given by Bloomfield to the Phenomenon where of too similar syllables following each other, one is dropped. The condition for haplology is that one sound, at any rate on the two consecutive syllables must be common.

उदाहरण के लिए संस्कृत में हा धातु के लोट् लकार पुरुष के एक-वचन में 'जहीहि' और 'जहि' में आज 'जहि' अवशिष्ट है। इसी प्रकार वैदिक शब्द शेवृध (प्रिय-अमूल्य) भी शेव + वृध से शेष रह जाता है।

खरीददार = खरीदार	त्रि + ऋच + अ: = तृच:
नाककटा = नकटा	
Part-time = Partime	

कभी-कभी ध्वनि या अक्षर पूर्णत: एक ही न होकर उच्चारण में मिलते-जुलते हैं, उस स्थिति में भी एक का लोप हो जाता है–

आदत्त	=	अत्त
कृष्णनगर	=	कृष्णगर

टिप्पणी

आगम-प्रागुपजन (Prothesis-Coming)–उच्चारण करते समय कभी-कभी मुख-सुख के लिए कुछ व्यंजनों, विशेषतया संयुक्त व्यंजनों के आदि, मध्य तथा अंत्य में स्वरों तथा व्यंजनों का आगम हो जाता है। प्रारंभ में आने वाले स्वर को प्रागुपजन कहा गया है। "We find that in some languages certain vowels are developed before certain consonants." अर्थात कुछ भाषाओं में कुछ व्यंजनों से पूर्ण कुछ स्वरों का आगम हो जाता है। यह भी आदि, मध्य एवं अंत्य भेद से तीन प्रकार का होता है।

1. **आदि स्वरागम**

स्नान	=	इस्नान	स्कूल	=	इस्कूल
स्त्री	=	इस्त्री	स्तुति	=	इस्तुति

2. **मध्य स्वरागम**

प्रसाद	=	परसाद	कर्म	=	करम	ब्रह्मा	=	बरहमा
पूर्व	=	पूरब	मिश्र	=	मिसुर	मर्म	=	मरम
बक	=	बगुला	धर्म	=	धरम	भ्रम	=	भरम
प्रकार	=	परकार	अर्थ	=	अरथ	पृथ्वी	=	पृथिवी
स्वर्ण	=	सुवर्ण	स्टेशन	=	सटेशन			

3. **अंत्य स्वरागम**

स्वप्न	=	सपना	चतुरता	=	चतुराई	निपुणता	=	निपुनाई
दवा	=	दवाई	गल	=	गला	हरीतिमा	=	हरियाई

व्यंजनागम

आदि व्यंजनागम के उदाहरण बहुत कम संख्या में प्राप्त होते हैं–

उल्लास	=	हुल्लास	ओष्ठ	=	होंठ	अस्थि	=	हड्डी

मध्य व्यंजनागम–शब्द के मध्य भाग के उच्चारण में अधिक कठिनता का अनुभव होता है, जिसे दूर करने के लिए आगम एवं लोप का आश्रय लिया जाता है; यथा–

समुद्र	=	समुंदर	तक	=	तलक	लाश	=	लहास
आलसी	=	आलकसी	शाप	=	श्राप	Panel	=	Pannel
वानर	=	बंदर	सुख	=	सुक्ख	Avantage	=	Advantage (फ्रेंच में)

अंत्य व्यंजनागम

रंग	=	रंगत (अरबी)	Cautio	=	Caution (अंग्रेजी)
देह	=	देहात (फारसी)			

परवा	= परवाह	चील	=	चील्ह	
भौं	= भौंह	Coc	=	Cock	

टिप्पणी

स्वरागम–अक्षरागम के भी आदि, मध्य व अंत्य तीन भेद दृष्टिगोचर होते हैं–

आदि अक्षरागम

स्फोट = विस्फोट, गुंजा = घुंघुची

मध्य अक्षरागम

खल = खरल गरीब निवाज = गरीबुलनिवाज

आलस = आलकस

अंत्य अक्षरागम

डफ	= डफली	मन	=	मनका
तावे	= तावेदार	वधू	=	वधूटि

स्वरभक्ति अथवा विप्रकर्ष (Anaptyxis or Diaeresis)

संयुक्त व्यंजनों के उच्चारण में होने वाली असुविधा को दूर करने के लिए उनके बीच किसी स्वर या स्वर भाग के आगम को स्वर-भक्ति या विप्रकर्ष कहते हैं। पी.डी. गुणे स्वरभक्ति पर विचार करते हुए कहते हैं–"इस प्रकार की एक अन्य प्रक्रिया है, जिसमें ऐसी ध्वनियों के मध्य में, जिनका उच्चारण करना कठिन होता है, स्वर का आगम हो जाता है।" (Another similar phenomenon is the insertion of a vowel between combination of sounds, which are difficult to–pronounce. This is called स्वरभक्ति or anaptyxis.) कुछ ऋग्वेदीय सूक्तों में इंद्र का उच्चारण इंदर, दर्शन का दरशन किया जाता है। Variety of the same phenomenon is seen in the insertion of a consonant between two consonants belonging to different places of articulation. This new comer helps the tongue in passing from one place to another and is in fact a transitional sound.

अर्थात "इसी प्रक्रिया का एक प्रकार वह है, जिसमें भिन्न उच्चारण स्थानों वाले दो व्यंजनों के मध्य में किसी व्यंजन का आगम हो जाता है। यह नया व्यंजन वस्तुत: एक संक्रमणकालीन ध्वनि होता है, जो जिह्वा को एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने में सहायता देता है।"

वैदिक शब्दों में स्वर के अनंतर तथा व्यंजन के पूर्व आने वाले 'र' के आगे स्वरभक्ति का प्रयोग किया जाता है। परिणामस्वरूप 'कर्हि' या 'अर्चन्ति' में 'र' के बाद इकार या 'स्मृ' का स्वर के रूप में उच्चारण किया जाता है। वैदिक शब्दों में जैसी स्वर-भक्ति का उच्चारण होता था, वह आधी मात्रा या उससे भी कम मात्रा की होती थी। इसलिए वह लिखी नहीं जाती थी। यहां तक कि उसके बोले जाने पर भी व्यंजनों के संयोग को 'संयोग' ही माना जाता था। अवेस्तन भाषा में भी यह प्रवृत्ति देखी जाती है।

टिप्पणी

प्राकृत तथा हिंदी में स्वर-भक्ति के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं– संस्कृत के भक्ति, युक्ति, पंक्ति, प्रसाद के स्थान पर हिंदी में भगति, जुगति, पंगत, परसाद हो जाते हैं।

चंद्र	=	चंदर	श्री	=	सिरी	इंद्र	=	इंदर
पृथ्वी	=	पृथिवी	स्वर्ण	=	सुवर्ण			

अपिनिहित-समस्वरागम (Epenthesis)

कुछ भाषा वैज्ञानिक अपिनिहित और स्वरभक्ति को एक ही मानते हैं। उनके अनुसार इन दोनों में केवल इतना ही अंतर है कि स्वर-भक्ति मिश्र ध्वनियों से पूर्व आती है और अपिनिहित अमिश्र से पूर्व। इस प्रकार स्वरभक्ति का उदाहरण स्कूल = इस्कूल है तथा अपिनिहित का उदाहरण सवारी = असवारी है। किंतु अन्य विद्वान ऐसा स्वीकार नहीं करते। उनके अनुसार ये दोनों ही उदाहरण स्वरभक्ति के हैं।

मुख-सुख के लिए कुछ शब्दों के मध्य या आरंभ में ऐसे स्वर की आवश्यकता होती है, जो बाद में आया हो, किंतु आने वाला स्वर वही होगा, जिसकी सत्ता पूर्व से ही वहां विद्यमान हो। इसे समस्वरागम कहते हैं–

संस्कृत	अवेस्ता
भवति (Bhavati)	Bav<u>a</u>iti
अरुषः (Arusah)	Aur<u>u</u>so
तरुणः (Taruna)	T<u>a</u>uruna

उपर्युक्त उदाहरणों में आगत स्वर रेखांकित हैं। इन उदाहरणों को देखकर स्पष्ट हो जाता है कि यहां उन्हीं स्वरों का आगम हुआ है, जो पूर्व से ही उन शब्दों में विद्यमान हैं। अंग्रेजी में भी यह प्रवृत्ति पाई जाती है। कभी-कभी वही स्वर न होकर उसी प्रकृति का स्वर आ जाता है। उदाहरणार्थ–

स्टेशन	=	इस्टेशन	सवारी	=	असवारी
स्तर	=	अस्तर	स्तबल	=	अस्तबल
स्तंभ	=	अस्तंभ			

आदि स्वरागम एवं अपिनिहित में भी कुछ अंतर है–

1. आदि स्वरागम में कोई भी स्वर आ सकता है, किंतु अपिनिहित में केवल उसी स्वर का आगम हो जाता है, जो या तो पहले से ही विद्यमान हो या उसी प्रकृति का अग्र या पश्च हो।
2. आदि स्वरागम में जो स्वर आता है, वह शब्द के आदि में ही होगा, किंतु अपिनिहित में इस प्रकार का कोई प्रतिबंध नहीं है।

अपिनिहित एवं स्वर भक्ति–इसी प्रकार स्वर भक्ति और अपिनिहित दोनों एक-दूसरे से भिन्न हैं। साथ ही, स्वर भक्ति में स्वर का आगम किसी व्यंजन को अक्षर बनाता है, किंतु अपिनिहित में स्वर भक्ति की तरह आधा को पूरा बनाने की प्रवृत्ति नहीं होती है।

अभिश्रुति (Umlaut of Vowel Mutation)– स्वर, अर्ध स्वर तथा कभी-कभी व्यंजन से प्रभावित होकर यदि अपिनिहित (Epenthesis) के कारण आया हुआ स्वर परिवर्तित हो जाता है तो उसे अभिश्रुति कहते हैं। अपिनिहित से हमारा अभिप्राय शब्द के मध्य किसी ध्वनि या अक्षर के आगम से है। ग्रिम महोदय ने जर्मनिक भाषाओं के अध्ययन के अवसर पर स्वर-परिवर्तन की ओर विशेष ध्यान देकर इसका उल्लेख किया था। उदाहरणार्थ–

Mani = Maini = Men

इस उदाहरण में Maini में प्रथम I अपिनिहित के फलस्वरूप है, फिर उसका परिवर्तन men में हो गया है।

डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी ने अपश्रुति का कारण स्वर को माना है। उनके अनुसार, यह प्रवृत्ति भारोपीय, सेमिटिक एवं हैमिटिक भाषाओं में पाई जाती है। अंग्रेजी में स्वर परिवर्तन के द्वारा अनेक शब्दों के बहुवचन बनाए जाते हैं; जैसे–Man = men, Foot = Feet, Mouse = Mice.

भोलानाथ तिवारी बंगला भाषा के करिआ = केरिया, Koria = कोरे = Kora को भी अभिश्रुति का उदाहरण मानते हुए लिखते हैं कि–

"Umlaut नाम ग्रिम महोदय का दिया हुआ है। उनके अनुसार किसी स्वर के अभाव से पहले आए स्वर के परिवर्तन को ही "umlaut" कहते हैं। इसमें प्रभावित करने वाला स्वर बहुधा I होता है।

अपश्रुति-अक्षरावस्थान : नियमित स्वर क्रमबद्धता

ध्वनि परिवर्तन के प्रमुख कारण स्वर परिवर्तनजन्य होते हैं। उदात्तानुदात्त स्वरों का आधार लेकर ही इस नियम का निर्माण हुआ है। अपश्रुति में व्यंजनों के ज्यों के त्यों रहने पर भी केवल स्वर परिवर्तन से ही अर्थ में अंतर हो जाता है। इसमें स्वरों का परिवर्तन ह्रस्व का दीर्घ और दीर्घ का ह्रस्व में होता है। ईरानी भाषा में इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं। आशय यह है कि स्वर तत्व का परिवर्तन ही अपश्रुति है। यह स्वर परिवर्तन एक ही शब्द के अंग में होता है। स्वर परिवर्तन दो प्रकार का होता है, जिन्हें क्रम से गुणीय परिवर्तन (Qualitative change) तथा परिमाणीय परिवर्तन (Quantitative change) कहते हैं। एक में शब्द का रूप पूर्णतः परिवर्तित हो जाता है, दूसरे में ह्रस्व का दीर्घ और दीर्घ का ह्रस्व होता है।

1. **गुणीय अपश्रुति**–इसमें गुण की दृष्टि से स्वर मात्रा में परिवर्तन हो जाता है। इससे अर्थ में भेद हो जाता है; जैसे अग्र स्वरों के स्थान पर पश्च स्वर या अन्य स्वर परिवर्तन। यथा–अंग्रेजी में एकवचन से बहुवचन बनाने में स्वर भेद–Man

टिप्पणी

= men, mouse = mice, Foot = Feet, Goose = Geese. **धातु रूप में**–Sing = Sang = Sung = Song. **जर्मन में**– Gehen (जाना) = Ging (गया) = Gegangen (गया हुआ)। **रूसी भाषा में**– दार (दान), दरीत्य् (उपहार में देना), त्येच (बहना), तिचेनिये (प्रवाह, धारा)। **अरबी में** - क्तुल (मारना), कातिल (मारने वाला), मकतूल (मरने वाला) कत्ताल (बहुतों को मारने वाला), (युद्ध) कत्ताल। **संस्कृत में** - सूत = सौति (सूतपुत्र), दशरथ = दाशरथि (दशरथ का पुत्र)।

2. **मात्रिक अपश्रुति**–(परिमाणीय) = मात्रिक अपश्रुति में ह्रस्व-दीर्घ आदि मात्राओं में परिवर्तन होता है। स्वर की प्रकृति वही रहती है, उसमें दीर्घ, गुण या वृद्धि आदि हो जाती है। इसका कारण उदात्त का होना या न होना माना जाता है। धातु आदि पर उदात्त स्वर होने पर गुण या वृद्धि होगी। उदात्त स्वर न होने पर वहां गुण या वृद्धि नहीं होगी, अपितु कुछ स्थानों पर संप्रसारण हो जाता है। इसके आधार पर तीन श्रेणियां मानी जाती हैं–

(क) **निर्बल श्रेणी**–गुण वृद्धि नहीं, प्रत्युत संप्रसारण होगा। संप्रसारण के अंतर्गत य, व, र क्रमशः इ, उ, ऋ में परिवर्तित हो जाएंगे; यथा–

यष्टवे, यज्ञ	= इष्ट	वष्टि	= उष्मसि
वक्तवे	= उक्त	चत्वारः	= चतुरः
ग्रभे	= गृभे, गृहीत	श्वन्	= शुनः

(ख) **सबल श्रेणी**–इसमें गुण होगा। जैसे– भृतः = भरति

(ग) **दीर्घीकृत श्रेणी**–इसमें वृद्धि होने के कारण ए, ओ, अर्, अल् क्रमशः ऐ, औ, आर्, आल् में परिवर्तित हो जाते हैं।

इनके संस्कृत में उदाहरण निम्न प्रकार से हैं–

क्र.सं.	ध्वनि	धातु	निर्बल	सबल	दीर्घीकृत
1.	अ	पत्	पित्सति	पतति	पातयति
2.	अय्, ए	नी (नय्)	नीतः	नयति	नायकः
3.	अव्, ओ	(श्रु) (श्रव्)	श्रुतः	श्रोता	श्रावयति
4.	अर्	कृ (कर्)	कृतः	करोति	कारकः
5.	अल्	क्लृप् (कल्प्)	क्लृप्तः	कल्पना	काल्पनिकः
6.	अन्	हन्	हतः	हन्ति	घातकः
7.	अम्	गम्	गतः	गमनम्	जगाम
8.	आ	स्था	स्थितिः	स्थानम्	–
9.	आय्, ऐ	गै (गाय)	गीतम्	गायति	–
10.	आव्, औ	(पू) (पाव्)	पूतः	पावकः	–

समीकरण (Assimilation)

समीप स्थित दो वर्ण जब परस्पर प्रभावित होकर वर्णों में से एक रूप परिवर्तित कर दूसरे का स्वरूप ग्रहण करता है, तो उसे समीकरण कहते हैं। संस्कृत वैयाकरण समीकरण को 'सवर्णीकरण' संज्ञा से अभिहित करते हैं। समीकरण का संस्कृत में उदाहरण है– धर्म से प्राकृत में धम्म। यह प्रवृत्ति मूलतः प्रत्यत्नलाघवजन्य है। इसके दो भेद प्राप्त होते हैं–

(1) पुरोगामी (Progressive)

(2) पश्चगामी (Regressive)

इनके पार्श्ववर्ती Contact तथा दूरवर्ती Incontact दो प्रकार के अन्य भेद भी होते हैं। स्वर एवं व्यंजन के आधार पर इनके उदाहरण इस प्रकार द्रष्टव्य हैं–

स्वर

1. पुरोगामी – दूरवर्ती = जुल्म = जुलुम, पिपीलिका = पिपिलिका
   पार्श्ववर्ती – आइए = आइइ
2. पश्चगामी – दूरवर्ती = असूया = उसूया
   इक्षु = उकूरवू

व्यंजन

1. पुरोगामी – दूरवर्ती = विलपना = विलंबना
   पार्श्ववर्ती – वक्र = वक्क, यस्य = जस्स, चक्र = चक्क
2. पश्चगामी–दूरवर्ती – नीला = लीला
   पार्श्ववर्ती – कर्म = कम्म, सर्प = सप्प
   भक्त = भत्त, धर्म = धम्म

समीकरण में यह आवश्यक नहीं कि परस्पर प्रभावित करने वाले वर्ण अव्यवहित रूप में समीप में हों। साथ ही समीकरण में या परवर्ती में पूर्ववर्ती वर्ण का प्रभाव दूसरे पर पड़ेगा। इसका आधार वर्णों के आपेक्षिक बल पर होता है। साधारण नियम यह है कि समान बलवान वर्णों पर परवर्ती का और असमान बल वालों पर अधिक बल वाले का प्रभाव पड़ता है। इस दृष्टि से हम व्यंजनों का क्रम इस प्रकार निर्दिष्ट कर सकते हैं–

1. स्पर्श वर्ग पंचम अक्षरों को छोड़कर सबसे अधिक बल वाले हैं।
2. वर्ग के पंचम अनुनासिक उपर्युक्त स्पर्शों से कम बल वाले हैं तथा ल्, स्, व्, य्, र क्रमशः सबसे कम बल वाले हैं।

डॉ. पी.डी. गुणे समीकरण की प्रक्रिया तथा उसका रहस्य आदि स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि–"इस तथ्य की व्याख्या में कोई कठिनाई नहीं है। यद्यपि कोई शब्द अथवा वाक्य उच्चारण चेष्टाओं के अनुक्तम से उत्पन्न किया जाता है, तो भी जहां तक बोलने वाले का संबंध है, ज्यों ही शब्द अथवा वाक्य के उच्चारण का आरंभ करता है, उसकी

टिप्पणी

चेतना में समग्र आ जाता है। उसका संबंध ध्वनि एवं उसके अर्थ, दोनों का बोध एक साथ घटित होने वाली क्रिया के रूप में होता है। इसी कारण समीकरण के समय कुछ प्रक्रिया इस प्रकार की होती है। कोई विशिष्ट ध्वनि-विचार, जो किसी अन्य ध्वनि-विचार से कुछ उत्कृष्ट होता है, उसका स्थान ग्रहण कर लेता है। इस प्रकार उच्चारण संबंध चेष्टा जो पहले वाले के अनुरूप है, उस दूसरे का स्थान ले लेती है।"

विषमीकरण (Dissimilation)

यह समीकरण के विपरीत होता है। इसमें दो समान समीपस्थ ध्वनियों में से एक अपने स्वरूप का परित्याग कर विषम या असम बन जाती है, इसलिए इसे विषमीकरण कहा जाता है। विषमीकरण के स्वर-व्यंजन के पुरोगामी-पश्चगामी नामक भेद किए जा सकते हैं।

- **पुरोगामी विषमीकरण**–जब प्रथम व्यंजन या स्वर पूर्वस्थिति में रहता है और दूसरा परिवर्तित होकर विषम हो जाता है, तो उसे पुरोगामी विषमीकरण कहते हैं। जैसे–लांगूल = लंगूर, काक = काग, कंकण = कंगन, पुरुष = पुरिष।

  संस्कृत में 'अभ्यासे चर्च' सूत्र से नियमित तिष्ठासति, बुभूषति आदि रूप भी विषमीकरण के उदाहरण हैं।

- **पश्चगामी विषमीकरण**–इसमें प्रथम वर्ण में परिवर्तन होता है। जैसे–नवनीत = नयनू, मुकुट = मउर = मोर, नूपुर = नेउर, मुकुल = मउल, लांगल = नांगल।

- **सादृश्य या मिथ्या सादृश्य** (Analogy of False Analogy)–समानता के कारण भी ध्वनियां परिवर्तित हो जाती हैं। जब कुछ शब्दों में दूसरे शब्दों के सादृश्य से ध्वनि परिवर्तन हो जाता है, तो इसे सादृश्य या मिथ्या सादृश्य कहा जाता है। इसे औपम्य या उपमान भी कहा जाता है। जैसे 'सर्प' शब्द से नरक के सादृश्य सरप। भोलानाथ तिवारी के शब्दों में संस्कृत में द्वादश के सादृश्य पर एकदश भी एकादश हो गया है।

- **संधि**–संस्कृत भाषा में संधियों का महत्वपूर्ण स्थान है। संस्कृत के वैयाकरणों द्वारा निर्दिष्ट संधि नियम यद्यपि केवल संस्कृत भाषा तक ही सीमित हैं, किंतु विश्व की अन्यन्य भाषाओं में भी संधि की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। संधि का सामान्य अर्थ है–जुड़ना अर्थात दो ध्वनियों का मिलकर एक हो जाना। जैसे – रत्न + आकर = रत्नाकर। किंतु कभी-कभी तो संधियों के माध्यम से इतना परिवर्तन हो जाता है कि संपूर्ण ध्वनियों को समझना ही कठिन हो जाता है। जैसे–तद् + श्लोकेन = तच्छ्लोकेन, वाक् + हरि: = वाग्घरि:। नयन = नइन = नैन, सपत्नी = सवत = सौत।

- **अनुनासिकता** (Nasalization)–अनुनासिक (न, म, ञ, ङ, ण) ध्वनियों का अनुनासिक रूप में परिवर्तित होना ही अनुनासिकता है। जैसे–सर्प = सांप, उष्ट्र = ऊंट, सत्य = सांच, कूप = कुंआ, वक्र = बांका इत्यादि।

ऊष्मीकरण (Assibilation)

विशिष्ट ध्वनियों का ऊष्म श्, ष्, स् आदि में परिवर्तित हो जाना ऊष्मीकरण कहलाता है। भारोपीय भाषाओं को इसी ऊष्मीकरण प्रवृत्ति के कारण दो वर्गों में विभक्त किया गया है। एक वर्ग उन भाषाओं का है जिनमें ऊष्मीकरण की प्रवृत्ति नहीं मिलती है, दूसरा वर्ग उन भाषाओं का है, जिनमें ऊष्मीकरण की प्रवृत्ति मिलती है। दोनों वर्गों को क्रमशः 'केन्टुम' और 'शतम्' वर्ग कहते हैं।

- **मात्रा भेद**–उच्चारण में कभी दीर्घ का ह्रस्व तथा कभी ह्रस्व का दीर्घ हो जाता है। जैसे–अक्षत = आखत, हस्त = हाथ, सत्य = सांच।
- **घोषीकरण**–जब अघोष (विवार) ध्वनियां घोष (संवार) ध्वनियों में परिवर्तित हो जाती हैं, तो उसे घोषीकरण कहा जाता है। जैसे–

  मकर = मगर   सकल = सगल   काक = काग

  प्रकट = प्रगट
- **अघोषीकरण–**इसमें सघोष ध्वनि अघोष के रूप में परिवर्तित हो जाती है। जैसे–

  नगर = नकर   अदद = अदत   मेघ = मेख

  सघोष ध्वनि द, ग् तथा घ् क्रमशः त्, क्, ख् में रूपांतरित हुई है।
- **महाप्राणीकरण**–जब अल्पप्राण ध्वनियां महाप्राण ध्वनियों में परिवर्तित हो जाती हैं, तो उसे 'महाप्राणीकरण' कहा जाता है। जैसे-

  बाष्प = भाप   गृह = घर   हस्त = हाथ

  अल्प प्राण प्, ग्, त् क्रमशः फ्, घ्, एवं थ् में परिवर्तित हुए है।
- **अल्पप्राणीकरण**–जब महाप्राण ध्वनियां अल्पप्राण में बदल जाती हैं, तो उसे अल्पप्राणीकरण कहा जाता है। जैसे–

  धधामि = दधामि   सिंधू = हिंदू

  भोधामि = बोधामि   धाधामि = दधामि

संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि ध्वनियों के उच्चारण में शरीरावयवों का महत्वपूर्ण स्थान है। इनके विकृत हो जाने से ध्वनियों का उच्चारण करना संभव नहीं है। इस प्रकार ध्वनि परिर्वतन की कुछ दिशाओं का भी उल्लेख यहां किया गया है। केवल यही ध्वनि परिवर्तन की दिशाएं हों, ऐसा नहीं है। इस प्रकार अन्य अनेक ध्वनि परिवर्तन की दिशाएं हो सकती हैं।

स्वन परिवर्तन के कारण

परिवर्तन सृष्टि का नियम है। विश्व की प्रत्येक वस्तु में निरंतर परिवर्तन होता रहा है, हो रहा है और होता रहेगा। इसे ही वैदिक ऋषियों ने **'यत् किं च जगत्यां जगत्' (यजु. 40.1)** कहा है। संसार की प्रत्येक वस्तु संसरणशील, परिवर्तनशील है। प्रत्येक भाषा की

टिप्पणी

ध्वनियों में भी निरंतर परिवर्तन होता रहा है। इसी परिवर्तन के कारण एक-एक शब्द के अनेक अपभ्रंश हो जाते हैं। जैसे–मनुष्य, मानुष, मानस, मनुस आदि। अतएव महाभाष्यकार पतञ्जलि ने कहा है–

"एकैकस्य हि शब्दस्य बहवोऽपभ्रंशा'। (महा.-प्रथम आह्निक)

भाषा का प्रमुख तत्व 'ध्वनि' है। वक्ता इसका उच्चारण करता है और श्रोता इसे सुनता है। वक्ता की ध्वनियों पर दो प्रकार का प्रभाव पड़ता है–आभ्यंतर और बाह्य। वक्ता और श्रोता से संबद्ध कारणों को आभ्यंतर कारण कहते हैं। जैसे–प्रयत्नलाघव, अज्ञान, शीघ्र भाषण, नवीनीकरण की प्रवृत्ति आदि। इसके अतिरिक्त अन्य कारणों को बाह्य कारण कहते हैं। ये कारण बाहर अर्थात आसपास के वातावरण से 'ध्वनि' को प्रभावित करते हैं। जैसे– सामाजिक, राजनीतिक, भौगोलिक आदि।

इस प्रकार ध्वनि-परिवर्तन के कारणों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है–आभ्यंतर कारण एवं बाह्य कारण।

आभ्यंतर कारण

1. **प्रयत्नलाघव या मुखसुख**–इसे उच्चारण सुविधा या उच्चारण-सौकार्य भी कहते हैं। यह ध्वनि-परिवर्तन का सबसे प्रमुख कारण है। मनुष्य स्वभाव से ही कम प्रयत्न करके अधिक लाभ उठाना चाहता है। कम प्रयत्न से ही अपने भावों को स्पष्ट करने की चेष्टा करता है। मुख की सुविधा के कारण इसे मुख-सुख और उच्चारण की सरलता के कारण उच्चारण सुविधा आदि कहते हैं। मुख-सुख के लिए कठिन शब्द को सरल बनाया जाता है और क्लिष्ट उच्चारणों को आदि स्वरागम, मध्य स्वरागम आदि के द्वारा सरल बनाया जाता है। जैसे–सत्य > सच, कर्म > काम, चक्र > चक्कर, प्रचार > परचार, स्टेशन > इस्टेशन, हॉस्पिटल > अस्पताल, टेलिफोन > फोन, पोस्टकार्ड > कार्ड इत्यादि।

   प्राचीन संस्कृत साहित्य में भी यह प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। शिलालेखों में शुक्लपक्ष दिवस को शुदि > सुदी, बहुल पक्ष दिवस को बदि > बदी लिखा गया है। इससे सुदी और बदी शब्द प्रचलित हुए हैं।

   संस्कृत व्याकरण में प्रत्याहार इसी प्रक्रिया के परिचायक हैं; जैसे अच् – पूरे स्वरों का, हल् – संपूर्ण व्यंजनों का, अल् – पूरी वर्णमाला। इसी प्रकार इक्, यण्, एच्, खर्, जश् आदि जानने चाहिए।

   प्रयत्नलाघव के कारण अनेक प्रकार के ध्वनिपरिवर्तन होते हैं; जैसे समीकरण, विषमीकरण, आगम, लोप वर्णविकार, वर्ण-विपर्यय, मध्याक्षर लोप, स्वरभक्ति आदि।

2. **अशिक्षा**–शिक्षा के अभाव के कारण ग्रामीणजन एवं अशिक्षित व्यक्ति ध्वनियों का शुद्ध उच्चारण नहीं कर पाते। उनका उच्चारण सदा अस्पष्ट एवं दोषयुक्त होता है। इससे ध्वनियों में परिवर्तन आना स्वाभाविक है। अशिक्षा के कारण ब

टिप्पणी

को व, व को ब, श को स, ष को स, क्ष को च्छ, ण को न आदि उच्चारण किया जाता है; जैसे देश > देस, शरीर > सरीर, कृष्ण > किसन, कक्षा > कच्छा, क्षत्रिय > छत्रिय, गुण > गुन, सगुण > सगुन, निर्गुण > निरगुन आदि। विदेशी भाषा के शब्दों के अनुकरण में अशिक्षा के कारण असाधारण परिवर्तन हो जाते हैं, लार्ड > लाट, गार्ड > गाड, टाइम > टेम, आर्ट्स कॉलेज > आठ कॉलेज, पोस्टकार्ड > पोसकाड, लाइन > लैन, रिपोर्ट > रपट आदि।

3. **लिपि की अपूर्णता**–प्रत्येक भाषा में कुछ विशिष्ट ध्वनियां हैं, जिनका शुद्ध और स्पष्ट लेखन दूसरी भाषा में संभव नहीं है। फलस्वरूप संस्कृत की टवर्ग ध्वनियां, अंग्रेजी जेड (z), अरबी की काकल्य ध्वनियां, जर्मन, फ्रेंच और रूसी भाषा की विभिन्न ध्वनियां अन्य भाषाओं में सम्यक् रूप से नहीं लिखी जा सकती हैं। विभिन्न संस्कृतियों के मिलने पर मूल भाषा की ध्वनियों में बहुत अंतर आ जाता है। अंग्रेजी में शुद्ध राम, कृष्ण, आर्य, शुक्ल, मिश्र, गुप्त आदि शब्द Rama, Krishna, Arya, Shukla, Mishra, Gupta आदि लिखे जाने के कारण अब रामा, कृष्णा, आर्या, शुक्ला, मिश्रा, गुप्ता आदि प्रचलित हो गए हैं।
4. **शीघ्र भाषण**–शीघ्र बोलने के कारण भी ध्वनियों में परिवर्तन हो जाता है। इसमें मध्यगत ध्वनियों का प्रायः लोप हो जाता है। इसके साथ लघुकरण की प्रवृत्ति भी देखी जाती है; जैसे–उन्होंने > उन्ने, किसने > किन्ने, अब ही > अभी, तब ही > तभी, किस ही > किसी अंग्रेजी में Don not > Don't, will not > won't, I am > I'm, Cannot > Can't आदि इसके उदाहरण हैं।
5. **भावावेश**–प्रेम, क्रोध, शोक आदि भावों के अतिरेक के कारण भी ध्वनियों में परिवर्तन आ जाता है। जैसे–अधिक प्रेम प्रदर्शनार्थ भाई > भइया, बाबू > बबुआ, बच्चा > बाचा या बचवा, राजेंद्र > रज्जु, दादा > दादू, जीजा > जीजू हो जाता है। क्रोधावेश में राम > रामू या रमुआ, चमार > चमरवा हो जाता है। शोकावेग में कर्म > करमवा फूट गइल (कर्म नष्ट हो गए), पुत्र > पुतवा का मुंह देख लेती (पुत्र का मुख देख लेती) आदि।
6. **बलाघात**–ध्वनि परिवर्तन में बलाघात का महत्वपूर्ण स्थान है। जिस ध्वनि पर बल दिया जाता है, वह शेष रहती है, अन्य निर्बल ध्वनियां क्षीण हो जाती हैं। प्राकृत, अपभ्रंश आदि के काल में निर्बल ध्वनियों का लोप हो जाता है। संस्कृत में जिन स्वरों पर उदात्त होता है, उनमें गुण या वृद्धि होती है। यदि उन पर उदात्त नहीं होता, तो उनमें गुण नहीं होता है; जैसे कृ > कारक, करण, कृति। प्रथम में दो वृद्धि या गुण है और तृतीय में गुण का अभाव है। चतुर् + ईय = तुरीय। य का 'अ' उदात्त होने से 'च' निर्बल हो गया है, अतः उसका लोप होकर तुरीय रूप बनता है। इसी प्रकार आभ्यंतर > भीतर, उपरि > पर, एकादश > ग्यारह, द्वादश > बारह, स्वर्णकार > सुनार, चर्मकार > चमार आदि।

7. **काव्यात्मकता**–छन्द के नियमों के अनुसार आरोह-अवरोह का ध्यान रखते हुए कहीं ह्रस्व को दीर्घ, कहीं दीर्घ को ह्रस्व, कहीं वर्णलोप किया जाता है। संस्कृत छन्द शास्त्र का नियम है कि **'अपि माषं मषं कुर्यात्, छन्दोभङ्गं न कारयेत्'**–माष को मष कर दें, पर छन्दोभङ्ग न करें। जैसे–रामायण के एक दोहे में–

   बिनु गुरु होइ कि ग्यान, ग्यान कि होइ विराग बिनु।
   गावहिं वेद पुरान, सुख कि लहिअ हरि भगति बिनु।।

   (रामचरितमानस–उत्तरकांड)

   इसमें छन्द की आवश्यकता की पूर्ति के लिए बिना > बिनु, गुरू > गुरु, क्या > कि, ज्ञान > ग्यान, वैराग्य > विराग, पुराण > पुरान, भक्ति > भगति, स्वरात्मक लय के लिए भक्त > भगत, योग्य > जोग, युक्ति > जुगति, मे > मुंह हो जाते हैं।

8. **नवीनीकरण की प्रवृत्ति**–मनुष्य की प्रवृत्ति है कि वह प्रत्येक वस्तु में नयापन लाना चाहता है, अत: जान-बूझकर अन्य भाषाओं के शब्दों को संस्कृतनिष्ठ या हिंदीनिष्ठ आदि कर दिया जाता है। यह प्रवृत्ति अधिकांशत: प्रबुद्ध वर्ग में पाई जाती है। जैसे–मैक्समूलर को > मोक्षमूलर, ऑक्सीजन > ओषजन, नाइट्रोजन > नत्रजन, एकेडमी > अकादमी, तुर्क > तुरक, चश्मा > चक्ष्मा, अलेक्जेंडर > अलक्षेंद्र आदि।

9. **अनुकरण की अपूर्णता**–जब कोई व्यक्ति किसी ध्वनि का उच्चारण करता है, तो दूसरा व्यक्ति उसका अनुकरण करके उसे सीख लेता है। परंतु अनुकरण में त्रुटियां हो जाती हैं। सही अनुकरण नहीं हो पाता या उच्चारण में कुछ न कुछ कमी रह जाती है। इस प्रकार अनुकरण अपूर्ण रह जाता है। अत: ध्वनियों में परिवर्तन आता जाता है जिनका शनै:-शनै: समाज में प्रचलन हो जाता है। 'बन्द्योपाध्याय' से 'बनर्जी', 'ओम नम: सिद्धम्' का 'ओनामासीधम' बनना अनुकरण की अपूर्णता के सूचक हैं। बच्चों की बोली में अनुकरण की अपूर्णता स्पष्ट दिखाई पड़ती है; जैसे रोटी को 'लोटी', रुपया को 'लुपया' सुना जा सकता है परंतु बाद में वे दोष दूर हो जाते हैं। ब्राह्मण का 'ब्राह्मन' आदि अनुकरण की अपूर्णता से हो जाते हैं।

10. **भ्रामक व्युत्पत्ति**–जब व्यक्ति किसी अपरिचित शब्द के संसर्ग में आते हैं तथा उस शब्द से साम्य रखता हुआ कोई शब्द भाषा में पहले से ही होता है, तब वे अपरिचित शब्द के स्थान पर अपनी भाषा के पूर्व परिचित शब्द का प्रयोग करने लगते हैं। इस प्रकार ध्वनि परिवर्तन की क्रिया चलने लगती है। जैसे अंग्रेजी शब्द 'लाइब्रेरी' को अशिक्षित लोग भ्रमवश 'रायबरेली' तथा अरबी शब्द 'इंतकाल' को 'अंतकाल' कह देते हैं। इसी प्रकार 'चार्ज शीट' को 'चारसीट', 'क्वार्टर' को 'कातल' या 'काटर', 'गार्ड' को 'गारद', 'कोर्ट' को 'कोरट', 'कार्ड' को 'कारड' जैसे शब्द भ्रमवश प्रयोग किए जाने लगते हैं।

टिप्पणी

11. **वाग्यंत्र की विभिन्नता**—हर व्यक्ति के वाग्यंत्र की बनावट पूर्णत: एक सी नहीं होती है, इसलिए प्रत्येक व्यक्ति का ध्वनि उच्चारण भी समान नहीं होता है। वाग्यंत्र की भिन्नता के कारण ध्वनि उच्चारण में भिन्नता आ जाती है जैसे कि हर व्यक्ति अब श, ष, स इन तीनों ध्वनियों का सही उच्चारण नहीं कर सकता है। संस्कृत की 'स' ध्वनि 'फारसी' में 'ह' बन जाती है जैसे 'सिंधु' का 'हिंदु', 'सप्त' का 'हफ्त' आदि। 'ऋ' ध्वनि का उच्चारण भी अब 'रि' या 'रु' किया जाता है। सही उच्चारण संभव नहीं है।

12. **यदृच्छा शब्द**—बोलते समय लोग अपने आप शब्द बनाकर बोलते हैं, जिन्हें यदृच्छा शब्द कहते हैं। कभी-कभी एक शब्द की समानता पर जोड़ा शब्दों का निर्माण कर लिया जाता है। खाना-बाना, रोटी-ओटी, पानी-बानी आदि इसी प्रकार के शब्द हैं। युग्मक रूप बनाते समय ध्वनि परिवर्तन कर लिया जाता है।

13. **आत्मप्रदर्शन**—आत्मप्रदर्शन के कारण भी लोग बोलते समय ध्वनि परिवर्तन कर लेते हैं; जैसे 'खालिस' (शुद्ध) को निखालिस (अशुद्ध), 'इच्छा' को 'इक्षा', 'छात्र' को 'क्षात्र', 'क्षत्रिय' को 'छत्रिय', 'सेवक' को 'शेवक' आदि प्रकार से परिवर्तित कर लिया जाता है। इसी प्रकार 'उपर्युक्त' को 'उपरोक्त' तथा 'अंतराष्ट्रिय' को 'अंतर्राष्ट्रीय' बनाकर प्रयोग किया जाता है। इन शब्दों का प्रचलन अत्यधिक हो चुका है तथा भाषा में ये रूप स्वीकृत हो चुके हैं।

बाह्य कारण

1. **भौगोलिक कारण**—भौगोलिक कारणों से ध्वनियों में परिवर्तन हो जाता है। फारसी में 'स' का 'ह' हो जाता है। जैसे—सिंधु > हिंदु, सप्ताह > हफ्ता, पहाड़ी क्षेत्रों में स को श बोलते हैं। समाचार > शमाचार, संदेश > शन्देश, सीट > शीट, सिर > शिर। उच्च जर्मन और निम्न जर्मन में भौगोलिक कारणों से ही ध्वनि परिवर्तन हुआ है। जैसे उच्च जर्मन में—

ध्वनि परिवर्तन	**अंग्रेजी शब्द (निम्न जर्मन)**	**उच्च जर्मन शब्द**
द् को त्	Drink	Trinken
थ् को द्	North	Nord
प् को फ्	Up	Auf
फ् को ब्	Wife	weib
ट् को त्स्	Two	Zwei
क् को ख्	Book	Buch

2. **सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियां**—सामाजिक या राजनीतिक उन्नति या अवनति के कारण शब्दों में ध्वनि-परिवर्तन हो जाता है। उन्नति की अवस्था में शब्दों के शुद्ध रूप पर बल दिया जाता है और अवनति के समय अपभ्रंश रूपों

की अधिकता होती है; जैसे पंडित > पंडा, यजमान > जजमान, दिल्ली > देहली, मुंबई > बंबई, रिपोर्ट > रपट, गुरु > गुरू, सत्य > सच, घृत > घी, वाराणसी > बनारस, कर्म > करम आदि।

3. **अन्य भाषाओं का प्रभाव**–अन्य भाषाओं के प्रभाव के कारण ध्वनियों में परिवर्तन देखा जाता है। फारसी और अरबी के प्रभाव के कारण हिंदी में भी क़ ग़ ज़ आदि ध्वनियां फारसी और उर्दू के शब्दों में लिखी और बोली जाती हैं। द्रविड़ परिवार की भाषाओं के संपर्क से संस्कृत आदि में टवर्ग ध्वनियां आई हैं; जैसे प्रकृत > प्रकट, संस्कृत > संकट, विकृत > विकट आदि।

4. **सादृश्य**–समानता के आधार पर कुछ ध्वनियों में परिवर्तन हो जाता है; जैसे द्वादश के सादृश्य पर एकादश, करिणा के सादृश्य पर अग्निना, भानुना आदि शब्द प्रयुक्त होने लगे हैं। मालीय, शालीय, भवदीय आदि के साम्य पर राष्ट्र > राष्ट्रीय शब्द का प्रचलन है, जबकि शुद्ध शब्द 'राष्ट्रिय' है। पंचम्, सप्तम्, अष्टम् के स्थान पर 'षष्ठम्' भी प्रयुक्त होने लगा है।

5. **विदेशी ध्वनियों का प्रभाव**–विदेशी ध्वनियां भी किसी भाषा के जीवन में ध्वनि विकार का कारण बनती हैं, क्योंकि किसी भी भाषा में दूसरी भाषा की ध्वनियां उसी रूप में स्वीकार नहीं की जाती हैं। परिणामस्वरूप ध्वनि परिवर्तन स्वाभाविक है। भारतीय भाषाओं में अरबी, फारसी ध्वनियां फ़, ज़, क़, ख़, ग़ आदि के नीचे नुक्ते का प्रयोग होता है, जबकि हिंदी में ऐसा नहीं होता है। इसी प्रकार अंग्रेजी की अनेक ध्वनियां भी हिंदी में परिवर्तित कर ली गई हैं अथवा ध्वनियों के प्रभाव से हिंदी ध्वनियों के उच्चारण में अंतर कर लिया गया है।

इस प्रकार उपर्युक्त अनेक कारणों से ध्वनियों में परिवर्तन होता है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. हिंदी का विकास किसके बाद हुआ?
   (क) संस्कृत (ख) प्राकृत
   (ग) पालि (घ) अपभ्रंश
2. भाषा को विचारों के आदान–प्रदान का साधन मानते ही दृष्टिगोचर होने वाले तीन पक्षों में; इनमें से क्या शामिल नहीं है?
   (क) अध्ययन (ख) कथन
   (ग) वक्ता (घ) श्रोता

1.3 हिंदी भाषा शिक्षण का महत्व, उपयोग, चुनौतियां एवं समाधान

हिंदी भाषा शिक्षण की महत्ता, उपयोग, चुनौतियां एवं तत्संदर्भित समाधान को पृथक–पृथक इस प्रकार विवेचित किया जा सकता है–

1.3.1 महत्व (राष्ट्रभाषा, राजभाषा, संपर्क भाषा, मानक भाषा और बोली)

(क) राष्ट्रभाषा

भारत में अधिकतर लोग हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में ही जानते हैं, भारत में सबसे अधिक हिंदी भाषा का प्रयोग किया जाता है, परन्तु यह एक सत्य है, कि हिंदी को समग्रतः राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार नहीं किया गया है। भारत के संविधान में अनुच्छेद 343 के अंतर्गत हिंदी भाषा को भारत की 'राजभाषा' के रूप में मान्यता दी गयी है, इसका अर्थ है, कि हिंदी का प्रयोग राजकीय कार्य में किया जा सकता है, सभी राज्यों के लिए इसके प्रयोग की अनिवार्यता नहीं होगी।

किसी भी देश की संस्कृति का महत्वपूर्ण हिस्सा उसकी राष्ट्रभाषा होती है, जिसका प्रयोग लिखने, पढ़ने और वार्तालाप करने में किया जाता है। राष्ट्रभाषा वह भाषा होती है, जिसमें देश के सभी कार्यों का निष्पादन किया किया जाता है। देश के सभी सरकारी कार्य इसी भाषा में किये जाते हैं। उदाहरण स्वरूप हमारे पड़ोसी देश बांग्लादेश में बंगाली भाषा को राष्ट्रभाषा के रूप में मान्यता दी गयी है और देश में सभी कार्य इसी भाषा में किये जाते हैं।

बिना राष्ट्रभाषा के राष्ट्र में कोई भी कार्य सुनियोजित रूप से नहीं हो सकता तथा भाषा के क्षेत्र में सदैव अराजकता की स्थिति बनी रहती है। हम कह सकते हैं कि बिना राष्ट्रभाषा के राष्ट्र का सर्वांगीण विकास संभव नहीं है क्योंकि परस्पर विचार विनिमय, संवाद पत्राचार, आपसी समझ में भाषा ही हमारी मदद करती है।

भारतेन्दु हरिशचन्द्र कहते हैं–

''निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।

बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को शूल।''

भाषा ही है जो संपूर्ण राष्ट्र को एकता के सूत्र में बाँधकर रखती है। उनमें राष्ट्रीयता का भाव जागृत करती है। अतः राष्ट्र के लिए उसकी अपनी एक निर्धारित व सर्वमान्य भाषा होना अनिवार्य है। यही राष्ट्र की सपर्क भाषा होती है।

प्रत्येक राष्ट्र के कुछ अपने मानक होते हैं, जैसे, राष्ट्रीय पुष्प, राष्ट्रीय, पशु, पक्षी, फल। उसी तरह राष्ट्र की अपनी भाषा भी होती है। यह भाषा राष्ट्रभाषा कहलाती है। डॉ. द्वारिकाप्रसाद सक्सैना के अनुसार –''जो भाषा किसी राष्ट्र के भिन्न–भिन्न भाषियों के पारस्परिक विचार विनिमय का साधन बनती हुई समूचे राष्ट्र को मानात्मक एकता के सूत्र में बाँधती है, उसे राष्ट्रभाषा कहते हैं।''

राष्ट्र के इतिहास साहित्य, संस्कृति, उस राष्ट्र की विज्ञान, चिकित्सा, तकनीकी विकास आदि के क्षेत्र में निहित उपलब्धियों को संग्रहित करने में राष्ट्रभाषा की महती

टिप्पणी

भूमिका है। राष्ट्र भाषा किसी भी राष्ट्र की एकता को सुदृढ़ बनाने में उपयोगी होती है किसी भी प्रांत का व्यक्ति देश के किसी भी कोने में चला जाए उसे अपने विचार विनिमय में किसी प्रकार की कोई कठिनाई नहीं होगी क्योंकि उस भाषा को बोलने वाले लोग संपूर्ण देश के विद्यमान रहते हैं। प्रत्येक राष्ट्र की कोई एक भाषा ही राष्ट्र भाषा बनती है।

इस दृष्टि से यह देश भर के लोगों को परस्पर जोड़े रहती है। विद्वानों ने कहा भी है कि युवा पीढ़ी की भाषा को बिगाड़ दीजिए वह देश अपने आप पतन के गर्त में चला जाएगा। इसी से अंदाजा लगाया जा सकता है कि राष्ट्रभाषा किसी राष्ट्र के विकास के लिए क्या मायने रखती है। क्योंकि भाषा का प्रभाव संस्कृति पर और संस्कृति से जुड़ा होता है। समाज और राष्ट्र भाषा के प्रभावित होने पर ये सभी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते।

(ख) राजभाषा

विश्व के प्रत्येक राष्ट्र में वहां के राजकार्य हेतु एक निश्चित/नियमित भाषा की आवश्यकता होती है; अतः जिस भाषा में प्रदेश या देश का राज–काज होता है उसे 'राजभाषा' कहते हैं। सामान्यतः देश की राष्ट्रभाषा होती है क्योंकि जनसामान्य के व्यवहार से बड़ी होने के कारण राष्ट्रभाषा को राजभाषा का दर्जा देने से उसका प्रचार–प्रसार और प्रयोग सरल ढंग से किया जा सकता है। यह भाषा का नवीनतम उभरकर सामने आने वाला रूप है। आचार्य नरेंद्रनाथ शर्मा इसके विषय में लिखते हैं कि ''सरकार के शासन–विधानपालिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका जैसे क्षेत्रों में जिस भाषा का प्रयोग किया जाता है, उसे राजभाषा कहते हैं और यही 'कार्यालयी भाषा' भी कहलाती है।''

भारत की स्वाधीनता से पहले हिंदी में राजभाषा शब्द का प्रयोग प्रायः नहीं मिलता। सबसे पहले सन् 1949 ई. में भारत के महान नेता श्री राज गोपालाचार्य ने भारतीय संविधान सभा में 'नेशनल लैंग्वेज' और 'राजभाषा' में अंतर और दोनों के स्वरूप को अलग करने वाली विभेदक रेखा को स्पष्ट किया। संविधान–सभा की कार्यवाही का हिंदी–प्रारूप तैयार करते समय 'स्टेट लैंग्वेज' के स्थान पर 'ऑफिशियल लैंग्वेज' शब्द का प्रयोग अधिक उपयुक्त समझा गया और 'ऑफिशियल लैंग्वेज' का हिंदी अनुवाद 'राजभाषा' ही किया गया सरकारी या कार्यालयी भाषा नहीं। इस परिप्रेक्ष्य में, राजभाषा शब्द का तात्पर्य है– ''राजा (शासक) अथवा राज्य (सरकार) द्वारा प्राधिकृत भाषा''। भारतीय लोकतंत्र में शासन या सरकार का गठन संविधान की प्रक्रिया के अंतर्गत होता है, अतः राजभाषा का तात्पर्य है– ''संविधान द्वारा सरकारी कामकाज, प्रशासन, संसद और विधान–मंडलीय तथा न्यायिक कार्यकलाप के लिए स्वीकृत भाषा।''

हमारे देश की सरकारी कामकाज की भाषा तथा आम बोल–चाल की भाषा में हमेशा से अंतर रहा है। मुसलमानों के शासनकाल में राज–काज की भाषा अरबी–फारसी शैली प्रधान उर्दू थी तथा सामान्य बोलचाल के रूप में विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं एवं बोलियों का चलन था। अंग्रेजों के शासनकाल में राजकाज की दो भाषाएं थीं– उच्च स्तर पर अंग्रेजी तथा निचले स्तर पर उर्दू प्रधान हिंदी, परंतु दोनों ही कालों में संपर्क

भाषा हिंदी ही रही। संपर्क भाषा के साथ इन भाषाओं के शब्द भी प्रयोग में रहे और हिंदी की गोद में समा गए और कुछ इस तरह से हमारे जन–जीवन में घुल–मिल गए कि अब उन्हें छोड़ना भी कठिन है।

टिप्पणी

व्यापक प्रयोग वाली संपर्क भाषा 'हिंदी' के इसी रूप को स्वतंत्र भारत की सरकार ने राजभाषा के रूप में अपना लिया। अपने इसी शब्द–भंडार के साथ देवनागरी लिपि में लिखित हिंदी राजकीय प्रयोजन के लिए प्रयुक्त होने लगी। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सरकार ने विभाग, निगम तथा वैज्ञानिक आधार वाले संस्थान स्थापित करने शुरू कर दिए। इस प्रकार के अनेक कार्यालयों में कार्यों को राजभाषा के द्वारा निष्पादित करने के लिए हिंदी को इनके स्तर तक सुगम्य करना अनिवार्य हो गया।

राजभाषा के संबंध में संविधान के प्रावधान

संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों में राजभाषा के विषय में उल्लिखित महत्वपूर्ण तथ्य निम्नलिखित हैं–

अनुच्छेद 120; संसद में प्रयोग की जाने वाली भाषा

1. संसद का कार्य हिंदी में या अंग्रेजी में किया जायेगा परंतु, यथास्थिति, राज्यसभा का सभापति या लोकसभा का अध्यक्ष अथवा उस रूप में कार्य करने वाला व्यक्ति किसी सदस्य को, जो हिंदी में या अंग्रेजी में अपनी पर्याप्त अभिव्यक्ति नहीं कर सकता है, अपनी मातृभाषा में सदन को संबोधित करने की अनुज्ञा दे सकेगा।
2. जब तक संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबंध न करे तब तक इस संविधान के प्रारंभ से पंद्रह वर्ष की अवधि की समाप्ति के पश्चात् यह अनुच्छेद ऐसे ही प्रभावी रहेगा।

अनुच्छेद 210; विधानमंडल में प्रयोग की जाने वाली भाषा

1. राज्य के विधानमंडल में कार्य राज्य की राजभाषा या राज्यभाषाओं में या हिंदी या अंग्रेजी में किया जायेगा।

   परंतु यथास्थिति विधानसभा का अध्यक्ष या विधान परिषद् का सभापति अथवा उस रूप में कार्य करने वाला व्यक्ति किसी सदस्य को जो हिंदी या अंग्रेजी में अपनी पर्याप्त अभिव्यक्ति नहीं कर सकता है, अपनी मातृभाषा में सदन को संबोधित करने की अनुज्ञा दे सकेगा।
2. जब तक राज्य विधि द्वारा अन्यथा उपबंध न करे तब तक संविधान के प्रारंभ से पंद्रह वर्ष की अवधि की समाप्ति के पश्चात् तक यह अनुच्छेद ऐसे ही प्रभावी रहेगा।

अनुच्छेद 343; संघ की राजभाषा

1. संघ की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी होगी। संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अंतर्राष्ट्रीय रूप होगा।

टिप्पणी

2. इस संविधान के प्रारंभ से पंद्रह वर्ष की अवधि तक संघ के उन सभी शासकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया जाता रहेगा जिसके लिए उसका ऐसे प्रारंभ से ठीक पहले प्रयोग किया जा रहा था।

   परंतु राष्ट्रपति उक्त अवधि के दौरान आदेश द्वारा, संघ के शासकीय प्रयोजनों में से किसी के लिए अंग्रेजी भाषा के अतिरिक्त हिंदी भाषा का और भारतीय अंकों के अंतर्राष्ट्रीय रूप के अतिरिक्त देवनागरी रूप का प्रयोग प्राधिकृत कर सकेगा।

3. संसद उक्त पंद्रह वर्ष की अवधि के पश्चात् विधि द्वारा–

   क. अंग्रेजी भाषा का या

   ख. अंकों के देवनागरी रूप का

   ऐसे प्रयोजनों के लिए प्रयोग उपबंधित कर सकेगी जो ऐसी विधि में विनिर्दिष्ट किए जाएं।

अनुच्छेद 344; राजभाषा के संबंध में आयोग और संसद की समिति

1. आयोग इस संविधान के प्रारंभ से पांच वर्ष की समाप्ति पर और तत्पश्चात् ऐसे प्रारंभ से दस वर्ष की समाप्ति पर, आदेश द्वारा एक अध्यक्ष और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट विभिन्न भाषाओं का प्रतिनिधित्व करने वाले ऐसे अन्य सदस्यों से मिलकर बनेगा जिसकी नियुक्ति राष्ट्रपति करे और आदेश में आयोग द्वारा अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया परिनिश्चित की जाएगी।
2. आयोग का यह कर्तव्य होगा कि वह राष्ट्रपति को संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए हिंदी भाषा का अधिकाधिक प्रयोग, संघ के सभी या किन्हीं शासकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा के प्रयोग पर निर्बन्धों, संघ के हिंदी प्रयोजनों के लिए प्रयोग की जाने वाली भाषा, संघ के किसी एक या अधिक विनिर्दिष्ट प्रयोजनों के लिए प्रयोग किए जाने वाले अंकों के रूप, संघ की राजभाषा एवं संघ और किसी राज्य के बीच या एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच पत्रादि की भाषा और उसके प्रयोग के संबंध में राष्ट्रपति द्वारा आयोग को निर्देशित किए गए किसी अन्य विषय के बारे में सिफारिश करे।
3. आयोग भारत की औद्योगिक, सांस्कृतिक और वैज्ञानिक उन्नति का और लोक सेवाओं के संबंध में, अहिंदी भाषा क्षेत्रों के व्यक्तियों के न्यास संगत दावों और हितों का सम्यक् ध्यान रखेगा।
4. एक समिति गठित की जाएगी जो तीस सदस्यों से मिलकर बनेगी जिसमें बीस लोकसभा के सदस्य होंगे और दस राज्यसभा के सदस्य जो क्रमशः लोकसभा के सदस्यों और राज्यसभा के सदस्यों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा निर्वाचित होंगे।

5. समिति का यह कर्तव्य होगा कि वह आयोग की सिफारिशों की परीक्षा करे और राष्ट्रपति को उन पर अपनी राय के बारे में प्रतिवेदन दे।
6. राष्ट्रपति प्रतिवेदन पर विचार करने के पश्चात् उस संपूर्ण प्रतिवेदन के या उसके किसी भाग के अनुसार निर्देश दे सकेगा।

अनुच्छेद 351; हिंदी भाषा के विकास के लिए निर्देश

संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिंदी भाषा का प्रसार करे, उसका विकास करे जिससे वह भारत की सामाजिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके और उसकी प्रकृति में हस्तक्षेप किए बिना हिंदुस्तानी में और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात् करते हुए जहां आवश्यक या वांछनीय हो वहां उसके शब्द भंडार के लिए मुख्यतः संस्कृत से और अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करे।

संविधान की आठवीं अनुसूची में बाइस भाषाएं शामिल की गई हैं–

(1) हिंदी (2) कश्मीरी (3) गुजराती (4) बांग्ला (5) असमिया (6) मणिपुरी (7) नेपाली (8) मराठी (9) कोंकणी (10) मलयालम (11) उड़िया (12) तेलुगु (13) उर्दू (14) सिंधी (15) पंजाबी (16) संस्कृत (17) तमिल (18) कन्नड़ (19) बोडो (20) मैथिली (21) डोगरी (22) संथाली।

राजभाषा के प्रयोग की प्रगति हेतु किए गए कार्य

हमारे देश का संविधान 26 जनवरी, 1950 को लागू हुआ। संविधान में यह व्यवस्था थी कि राजभाषा के रूप में हिंदी को 1965 तक प्रतिष्ठित कर दिया जायेगा। इसके बाद राष्ट्रपति, राजभाषा आयोग तथा केंद्र सरकार के गृह मंत्रालय आदि ने समय–समय पर सुझाव, नियम, अनुदेश निर्धारित किए।

वर्ष 1955 में राष्ट्रपति ने यह आदेश जारी किया कि जनता के साथ पत्र व्यवहार में प्रशासकीय रिपोर्टों, प्रस्तावों, संसदीय विधियों, अंतर्राज्यीय कार्यों में हिंदी के प्रयोग को अंग्रेजी के साथ बढ़ावा दिया जाए। राष्ट्रपति ने एक राजभाषा आयोग का गठन किया। इस आयोग में 21 सदस्य थे। इसने कई सुझाव दिए जिसमें मुख्य सुझाव इस प्रकार हैं–

1. सार्वजनिक क्षेत्र में विदेशी भाषा का प्रयोग उचित नहीं है।
2. हिंदी सर्वाधिक बोली और समझी जाने वाली भाषा है।
3. हिंदी की पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण होना चाहिए।
4. प्रशासनिक कर्मचारियों को हिंदी का कार्यसाधक ज्ञान होना चाहिए।
5. चौदह वर्ष की उम्र तक भारत के प्रत्येक विद्यार्थी को हिंदी का ज्ञान करा देना चाहिए।
6. संसद विधानमंडल और उच्च न्यायालयों में हिंदी तथा प्रादेशिक भाषाओं का व्यवहार होना चाहिए।

7. प्रतियोगिता परीक्षाओं में हिंदी का एक अनिवार्य प्रश्नपत्र होना चाहिए।
8. भारत की भाषाओं में निकटता लाने की व्यवस्था होनी चाहिए।

टिप्पणी

संसद की राजभाषा समिति ने आयोग की सिफारिशों पर विचार करने के पश्चात् वर्ष 1959 में कुछ सुझाव दिए—

1. हिंदी का ज्ञान प्राप्त करने तक अधिकारी अंग्रेजी में कार्य करते रहें।
2. पैंतालीस से अधिक की उम्र वाले कर्मचारियों को हिंदी के प्रशिक्षण से छूट दी जाए।
3. हिंदी के शब्द सामर्थ्य की स्थिति तक सरकारी उपक्रमों में अंग्रेजी का ही प्रयोग हो।
4. केंद्रीय सेवाओं में परीक्षा का माध्यम अंग्रेजी ही रहे।
5. 1965 के बाद हिंदी को प्रधान भाषा और अंग्रेजी को सहभाषा का स्थान दिया जाए।

समिति ने सामान्य रूप से राजभाषा आयोग की सिफारिशों को मानने का सुझाव दिया। इन दोनों सिफारिशों के बाद राष्ट्रपति ने आदेश जारी किए जिसके मुख्य बिंदु इस प्रकार हैं—

1. अखिल भारतीय सेवाओं में भर्ती के लिए परीक्षा का माध्यम अंग्रेजी बनी रहे और कुछ समय बाद हिंदी और अन्य प्रादेशिक भाषाओं का प्रयोग करने की व्यवस्था की जाए।
2. 45 वर्ष के कम उम्र के कर्मचारियों के लिए हिंदी प्रशिक्षण अनिवार्य बनाया जाए।
3. हिंदी में वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली के निर्माण के लिए एक स्थायी आयोग बनाया जाए।
4. प्रशासनिक साहित्य का अनुवाद किया जाए।
5. कानून संबंधी साहित्य का हिंदी अनुवाद किया जाए।
6. टंकणों तथा आशुलिपिकों को हिंदी में कार्य करने का प्रशिक्षण दिया जाए।
7. शिक्षा मंत्रालय हिंदी प्रचार की व्यवस्था करे तथा इस कार्य में गैर सरकारी संस्थानों की भी सहायता ली जाए।
8. राजकाज में हिंदी के प्रयोग के लिए मंत्रालय योजना तैयार करे।

राष्ट्रपति के इस आदेश के अनुमान में दो आयोग स्थापित किए गए तथा अनुवाद कार्य एवं कर्मचारियों के प्रशिक्षण कार्यक्रम शुरू किए गए।

संविधान में यह कहा गया था कि वर्ष 1965 से सरकार का सारा काम—काज हिंदी में होने लगेगा, परंतु सरकार की कमजोर नीतियों के कारण ऐसा संभव नहीं हो सका। अहिंदी भाषी क्षेत्रों, विशेषकर तमिलनाडु और बंगाल में हिंदी का विरोध शुरू हो

गया। तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने आश्वासन दिया कि हिंदी को एकमात्र सरकारी कामकाज की भाषा स्वीकार करने से पहले अहिंदी भाषी क्षेत्रों की सहमति प्राप्त की जायेगी और तब तक अंग्रेजी में कामकाज होता रहेगा। राजभाषा अधिनियम और 1967 के संशोधित अधिनियम द्वारा इस आश्वासन को कानूनी रूप प्रदान कर दिया गया। राजभाषा हिंदी संबंधी राष्ट्रपति के आदेशों, संसद की सिफारिशों और राजभाषा अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने का उत्तरदायित्व भारत सरकार के गृह मंत्रालय को सौंपा गया। आज भी इन्हीं नियमों के अनुसार सरकार की भाषा नीति का अनुपालन हो रहा है।

आज राजभाषा विभाग की ओर से समय–समय पर ज्ञापन निकाले जाते हैं जिसमें सरकारी काम–काज में हिंदी के प्रयोग को बढ़ाने का लक्ष्य निर्धारित किया जाता है। जो केंद्रीय सरकार के मंत्रालयों, निदेशालयों, विभागों, राष्ट्रीयकृत बैंकों, कंपनियों और उद्यमों पर लागू होते हैं। राजभाषा विभाग प्रतिवर्ष राजभाषा के विकास के लिए कार्यक्रम निर्धारित करता है। हिंदी शिक्षण योजना के अंतर्गत, हिंदी की कक्षाएं राजभाषा विभाग द्वारा चलायी जाती हैं; इसके लिए प्रबोध, प्रवीण और प्राक्ष तीन पाठ्यक्रम निर्धारित किए गए हैं। इसी प्रकार साविधिक साहित्य अर्थात् केंद्रीय अधिनियमों, नियमों आदि का हिंदी अनुवाद विधि मंत्रालय का विधायी विभाग करता है। केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय तथा उसका हिंदी निदेशालय, राजसभा के प्रचार तथा राष्ट्रभाषा हिंदी की प्रगति के कार्य में जुटा हुआ है।

उपरोक्त उपायों के बावजूद राजभाषा हिंदी की समुचित प्रगति नहीं हो पा रही है। इसके लिए क्षेत्रीय राजनीतिक संकीर्णता, अधिकारियों की उदासीनता, दृढ़ इच्छाशक्ति का अभाव, अंग्रेजी के प्रति मोह मुख्य रूप से जिम्मेदार है। राजभाषा हिंदी को समुचित स्थान दिलाने के लिए जन सामान्य में हिंदी के प्रति प्रेम पैदा करना होगा तथा संकीर्णताओं से ऊपर उठकर राष्ट्रीय हित को ध्यान में रखते हुए भाषा नीति पर विचार करना होगा।

(ग) संपर्क भाषा (माध्यम भाषा)

भाषा के संदर्भ में 'संपर्क भाषा' का अर्थ होता है, जोड़ने वाली भाषा, एक ऐसी भाषा जो अलग–अलग भाषाओं के बोलने वाले लोगों को जोड़ती है। जब दो अलग–अलग भाषा बोलने वाले व्यक्ति आपस में बातचीत करना चाहते हैं तो उन्हें किसी ऐसी भाषा की आवश्यकता होती है जिसे वे दोनों समझ सकें। ऐसी भाषा उन दोनों में से किसी एक की भाषा हो सकती है अथवा कोई तीसरी भाषा भी हो सकती है। यह संपर्क भाषा केवल बातचीत के स्तर तक ही सीमित न होकर व्यवहार के सभी क्षेत्रों तक विस्तृत होती है जैसे– शिक्षा का क्षेत्र, व्यापार का क्षेत्र आदि।

संपर्क भाषा का अत्यधिक महत्व होता है। राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न भाषाओं को बोलने वाले लोगों के बीच संपर्क के लिए एक भाषा का होना आवश्यक है। भारत में अनेक भाषाएं प्रयोग में लाई जाती हैं। कश्मीर से कन्याकुमारी तक और गुजरात से उत्तर–पूर्व तक अनेक भाषाएं और बोलियां बोलने वाले लोग रहते हैं। ये लोग देश के

टिप्पणी

एक भाग से दूसरे भाग की यात्रा, भ्रमण के लिये नहीं, बल्कि व्यापार, व्यवसाय, शिक्षा, सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक कार्यों के लिए भी करते हैं। अतः ऐसी भाषा की जरूरत स्वाभाविक है, जिसमें बंगला बोलने वाले, पंजाबी, गुजराती, उड़िया या तेलुगु बोलने वालों से विचारों का आदान–प्रदान कर सकें। इस प्रयोजन को सिद्ध करने वाली भाषा ही संपर्क भाषा कहलाती है। भारत जैसे देश जिसमें अनेक भाषा–भाषी लोग रहते हैं, संपर्क के लिए एक भाषा का प्रयोग करते हैं, वह 'हिंदी' ही है। पूर्व सोवियत संघ में भी अनेक भाषाएं बोली जाती थीं, किंतु रूसी वहां संपर्क भाषा थी।

समाज की कोई सुगठित इकाई होगी तो उसकी अपनी एक संपर्क भाषा अवश्य होती है। छोटी–से–छोटी इकाई अर्थात परिवार से लेकर गांव या नगर, जिला, प्रदेश, देश या राष्ट्र तक एक इकाई हो सकती है जबकि हम (भारतवासी) तो ''वसुधैव कुटुम्बकम'' मानने वाले हैं। सब इकाइयों में विचार–विनियम, भावाभिव्यक्ति, लेन–देन, आचार–व्यवहार के लिए एक भाषा अवश्य होती है, अन्यथा उस इकाई का दैनिक कार्य नहीं चलता। यह भाषा उस इकाई के स्तर के अनुसार शब्दों और वाक्यों की अभिव्यक्तियों में लघु, सीमित या बड़ी और विस्तृत हो सकती है पर उससे उस सामाजिक इकाई का सारा काम संपन्न होता है। उस भाषा (संपर्क भाषा) के बिना वह समाज, समाज ही नहीं बनता।

संपर्क भाषा की महत्वपूर्ण विशेषता उसकी बोलचाल की प्रयुक्ति एवं सरलता होती है। इसमें पारिभाषिक, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली का प्रयोग अपेक्षाकृत कम होता है।

सन् 1965 के बाद हिंदी की संपर्क भाषा के रूप में अधिक मान्यता हुई। 1991 की जनगणनाओं के आंकड़ों के अनुसार भी हिंदी ही एकमात्र ऐसी भाषा है जिसे भारत के अधिक–से–अधिक लोग लिख–पढ़–समझ तथा बोल सकते हैं। सरकारी कामकाज, सक्रिय राजनीति तथा वाणिज्यिक प्रचार–प्रसार के अतिरिक्त देश भर के विभिन्न राज्यों, वर्गों एवं बहुभाषा भाषिक लोगों में सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, साहित्यिक, आदान–प्रदान व व्यवहार के लिए हिंदी ही संपर्क सूत्र के रूप में प्रयोग में लाई जाती है।

प्राचीन युग में संस्कृत संपर्क भाषा की भूमिका निभाती रही, लेकिन धीरे–धीरे वह स्थान हिंदी ने ले लिया। कभी–कभी एक से अधिक भाषाएं भी संपर्क भाषा के रूप में प्रयोग में आने लगती हैं लेकिन यह निश्चित सत्य है कि आज संपूर्ण देश (भारत) में संपर्क भाषा हिंदी है और विश्व परिदृश्य पर अंग्रेजी।

(घ) मानक भाषा

मानक शब्द संस्कृत 'मान' शब्द में 'क' प्रत्यय के योग से बना है। डॉ. रामचंद्र वर्मा द्वारा संपादित संक्षिप्त हिंदी 'शब्द–सागर' में मानक शब्द इस प्रकार परिभाषित किया गया है– ''किसी वस्तु का वह निश्चित रूप या माप जिसके अनुसार उस वर्ग की और चीजों के गुण–दोष का माप होता है।''

मानक भाषा का सामान्य अर्थ भाषा, आदर्श भाषा या परिनिष्ठित भाषा लगाया जाता है। 'मानक भाषा' को अंग्रेजी में 'Standard Language' के पर्यायी रूप में स्वीकार किया गया है।

मानक भाषा पर चिंतन करते हुए रॉबिंस ने कहा है कि "सामाजिक दृष्टि से महत्वपूर्ण लोगों की बोली ही मानक भाषा है।"

डॉ. भोलानाथ तिवारी ने मानक भाषा को इस प्रकार परिभाषित किया है– ''मानक भाषा किसी भाषा के उस रूप को कहते हैं जो उस भाषा के पूरे क्षेत्र में शुद्ध माना जाता है तथा जिसे उस प्रदेश का शिक्षित और शिष्ट समाज अपनी भाषा का आदर्श रूप मानता है और प्रायः सभी औपचारिक परिस्थितियों में, लेखन में, प्रशासन और शिक्षा के माध्यम के रूप में यथासाध्य उसी का प्रयोग करने का प्रयत्न करता है।''

मानक भाषा को सरल रूप में इस प्रकार परिभाषित कर सकते हैं–

"मानक भाषा किसी भाषा के उस व्याकरण सम्मत, आदर्श और परिनिष्ठित रूप को कहते हैं, जो उस भाषा–क्षेत्र के सभी लोगों के लिए बोधगम्य हो और जिसका प्रयोग वहां के शैक्षिक, साहित्यिक, प्रशासनिक, वैज्ञानिक आदि कार्यों में किया जाए।''

जब कोई बोली विकसित होकर व्याकरण सम्मत हो जाती है और उसे राजनीतिक, सांस्कृतिक संरक्षण मिलने के साथ सामाजिक प्रतिष्ठा मिल जाती है, तो उसमें भाषा का मानक रूप मिल सकता है। भाषा–विकास के क्रम को देखें तो, इस प्रकार का ज्ञान होता है– निम्न स्तर की बोली > सामान्य स्तर की बोली > मानक स्तर की बोली > परिनिष्ठित भाषा का मानक रूप। यहां यह ध्यातव्य है कि सभी बोलियों को सामाजिक और राजनीतिक प्रतिष्ठा नहीं मिल पाती है इसलिए सभी बोलियां परवर्ती काल में मानक भाषा के रूप में विकसित नहीं हो पाती हैं। जिस प्रकार एक भाषा–क्षेत्र के अंतर्गत कई बोलियां आती हैं, उसी प्रकार एक मानक भाषा क्षेत्र के अंतर्गत कई बोलियां प्रयुक्त होती हैं।

मानक भाषा के विकास में उसके साहित्यिक, सामाजिक और सांस्कृतिक आदि पक्षों के प्रयोग की विशेष भूमिका होती है। इसके विकास के साथ इसका प्रयोग–क्षेत्र भी विस्तृत होता जाता है।

मानक भाषा से उस क्षेत्र की विभिन्न बोलियां प्रभावित होती हैं, तो मानक भाषा पर बोलियों का भी प्रभाव पड़ता है; यथा– हरियाणा क्षेत्र में प्रयुक्त होने वाली मानक हिंदी पर हरियाणवी का भी प्रभाव देख सकते हैं, तो हरियाणवी पर मानक हिंदी का भी प्रभाव होना स्वाभाविक है।

मानक भाषा का प्रयोग–क्षेत्र जितना ही विस्तृत होता जाएगा उसकी मौखिक एकरूपता उतनी ही शिथिल हो सकती है। मानक भाषा का लिखित रूप व्याकरण सम्मत होने के कारण अपेक्षाकृत अधिक नियंत्रित और व्यवस्थित होता है जबकि उच्चरित रूप में पर्याप्त शिथिलता होती है। मानक भाषा के उच्चरित रूप पर क्षेत्रीय भाषाओं/बोलियों का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है जबकि उसका लिखित रूप सीमित रूप में प्रभावित होता है।

टिप्पणी

मानक भाषा की विशेषताएं

सामाजिक संदर्भ में मानक भाषा की कुछ विशेषताएं इस प्रकार हैं–

1. **सामाजिक–स्वीकृति**– मानक भाषा की एक विशेष संकल्पना है जिसकी सामाजिक स्वीकृति आवश्यक है। एक समाज विशेष के लोग भाषा के जिस व्याकरण सम्मत रूप को स्वीकार कर लें, वही मानक भाषा बन जाएगी।
2. **एकरूपता**– मानक भाषा की प्रमुख विशेषता उसकी एकरूपता होती है। किसी भाषा के विभिन्न विकल्पों में से किसी एक को स्वीकार करना ही मानकीकरण का प्रमुख आधार है, सामान्य भाषा और मानक भाषा दोनों की ही अपनी–अपनी संरचना होती है। इस प्रकार दोनों की संरचनात्मक संकल्पना निश्चित है। समाज इनमें से जिस संरचनात्मक संकल्पना को स्वीकृति प्रदान करेगा, वही मानकीकरण में स्थान पा लेगी।
3. **सामाजिक प्रतिष्ठा**– भाषा के विभिन्न विकल्पों में से समाज में जिस रूप को ग्रहण किया जाता है वह मानक भाषा बनकर प्रतिष्ठा प्राप्त करती है। भाषा के इस विकल्प को ही आदर्श रूप मानते हैं। मानक भाषा के लिखित तथा उच्चरित दोनों ही रूपों को महत्व मिलता है जबकि बोली और सामान्य भाषा में मुख्यतः वाक्–प्रयोग को ही महत्व मिलता है।
4. **राजनीतिक प्रतिष्ठा**– मानक भाषा को देश या राज्य के शासन में प्रयोग करते हैं, जिससे उसे राजभाषा का पद प्राप्त होता है। शासन के काम–काज की माध्यम–भाषा होने के कारण इसे राजनीतिक प्रतिष्ठा मिल जाती है; यथा–मानक हिंदी को भारत देश की राजभाषा होने का गौरव प्राप्त है।
5. **साहित्यिक आधार**– मानक भाषा में साहित्य–सृजन अनिवार्य रूप से होता है। जिस मानक भाषा में साहित्य–सृजन की प्रक्रिया जितनी तीव्र होगी उसका विकास भी उतना ही तीव्र गति से होगा। आधुनिक हिंदी साहित्य के सृजन का आधार मानक भाषा है इसलिए मानक हिंदी का रूप विकसित होता जा रहा है।
6. **शिष्ट लोगों द्वारा व्यवहृत**– मानक भाषा का प्रयोग मुख्यतः सुशिक्षित और शिष्ट लोगों के द्वारा किया जाता है। समाज के सभी सदस्य शिष्ट बनना चाहते हैं इसलिए ऐसी भाषा के प्रयोग के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। इस प्रकार मानक भाषा समाज के मानक लोगों द्वारा प्रयोग की जाने वाली भाषा है। इसके आधार पर समाज का भी मानकीकरण होता है।
7. **धार्मिक प्रतिष्ठा**– मानक भाषा को एक अथवा एकाधिक धार्मिक समाज के द्वारा सम्मान प्राप्त हो सकता है। धर्म–प्रधान देश में मानक भाषा की यह प्रतिष्ठा रेखांकन योग्य होती है। अरबी यदि मुसलमानों की धर्म भाषा है, तो मानक हिंदी को भारत के विभिन्न धर्मों में गौरव प्राप्त है। भारत के विभिन्न धर्मों के धर्मग्रंथ मानक हिंदी में प्रकाशित हो चुके हैं। हिंदू धर्म के अतिरिक्त मुस्लिम धर्मग्रंथ 'कुरान', ईसाई धर्मग्रंथ 'बाइबिल' हिंदी में प्रकाशित हो चुके हैं।

8. **प्रयोग क्षेत्र**– मानक भाषा का क्षेत्र बोली और सामान्य भाषा के क्षेत्र से अधिक विस्तृत होता है। मानक भाषा के प्रयोग का क्षेत्र अपेक्षाकृत अधिक तीव्रता से विस्तार पाता है अर्थात् इसकी विकास गति अधिक तीव्र होती है। मानक भाषा का प्रयोग उसकी विभिन्न बोलियों के क्षेत्र में होता है जबकि बोलियों का प्रयोग अपने क्षेत्र तक ही सीमित होता है।

मानक भाषा का परिनिष्ठित और व्याकरण सम्मत रूप सदा एक जैसा नहीं रहता। भाषा की परिवर्तनशील प्रवृत्ति के आधार पर इसमें भी लचीलापन होना स्वाभाविक है। यह सुनिश्चित तथ्य है कि देश की उन्नति उससे संबंधित मानक भाषा के विकास पर आधारित होती है।

हिंदी के मानकीकरण का विकास

हिंदी के मानकीकरण की लंबी और ऐतिहासिक प्रक्रिया है। इसकी पृष्ठभूमि में शुद्ध बोलने की इच्छा कार्य करती रही है। भाषा– व्याकरण इसी दृष्टि से बनता है। व्याकरण को परिभाषित करते हुए कहा जाता है– ''व्याकरण वह ज्ञान है जिसके माध्यम से भाषा का शुद्ध लेखन और उच्चारण संभव हो।'' भाषा सीखने और उसकी मानकीकरण की प्रारंभिक प्रक्रिया में शिष्टजनों का अनुकरणीय योगदान रहा है। सत्रहवीं शताब्दी तक हिंदी की मानकीकरण प्रक्रिया दूर–दूर तक संपर्क भाषा के रूप में प्रयुक्त होती रही है। भारतवर्ष के विस्तृत क्षेत्र में प्रयुक्त होने के कारण भी इस प्रक्रिया को गति मिली।

मुसलमानी शासन से लेकर अंग्रेजी शासन तक हिंदी अपनी शक्ति के बल पर बढ़ती रही है। हिंदी की यह शक्ति थी– संपर्क भाषा के रूप में प्रयोग। हिंदी की विविध क्षेत्रीय बोलियां इस कार्य को परम उत्तम रूप से पूरा कर रही थीं। मध्यकाल के समृद्ध साहित्य में प्रयुक्त हिंदी की ब्रज और अवधी बोलियां इसका सबल प्रमाण हैं। इसे हिंदी के मानकीकरण की पृष्ठभूमि मान सकते हैं।

हिंदी भाषा का सहज मानकीकरण उसके लिखित व्याकरण में शुरू हुआ है। इस विषय में डॉ. भोलानाथ तिवारी ने 'मानक हिंदी और उसका स्वरूप' में लिखा है– ''बाद में जैसे–जैसे हिंदी के व्याकरण बनते गए हिंदी का मानकीकरण कुछ उनमें भी होता गया। वस्तुतः किसी भाषा का लिखित व्याकरण भी उसके मानकीकरण में सहज रूप से सहायक होता है।''

हिंदी भाषा में हिंदी का प्रथम व्याकरण श्री लाल ने 'भाषा चंद्रोदय' लिखा। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से हिंदी के मानकीकरण की प्रक्रिया गतिशील हुई है। उस समय के साहित्यकार और पत्रकार भारतेंदु हरिश्चंद्र और प्रतापनारायण मिश्र ने पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से इस दिशा में कार्य किया। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने हिंदी के लिखित रूप के मानकीकरण पर विशेष ध्यान दिया। 1884 में छत्रधारी सिंह ने 'लेख–नियम' नामक एक पुस्तक की रचना की। इसमें उन्होंने शब्द, पद और वाक्य के शुद्ध लेखन पर उपयोगी विचार प्रस्तुत किया; यथा– उस्का > उसका, लिखे गा > लिखेगा आदि।

टिप्पणी

बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में महावीर प्रसाद द्विवेदी 'सरस्वती' पत्रिका के संपादक बने। विभिन्न लेखों की वर्तनी आदि सुधार कर उसे मानक रूप देने के लिए प्रयत्नशील रहे। 'भारत–मित्र' के संपादक बालमुकुंद गुप्त भी इसी प्रकार प्रयासरत रहे। भारतेंदु युग में हिंदी को मानक रूप देने के लिए उच्चारणानुसार लेखन का प्रयास चल रहा था। इसमें एकरूपता की संभावना न होने के कारण व्याकरण सम्मत लेखन पर बल दिया जाने लगा। इस दिशा में गति लाने के लिए नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा आचार्य किशोरीदास वाजपेयी से 'हिंदी–व्याकरण' और डॉ. रामचंद्र वर्मा से 'हिंदी–शब्द सागर' बनवाने का सराहनीय कार्य किया गया। 1919 में जगन्नाथ चतुर्वेदी ने 'हिंदी लिंग–विचार' पुस्तक की रचना की। उन्होंने विभिन्न क्षेत्रों में लिंग प्रयोग की भिन्नता को विस्तृत रूप में रेखांकित किया है। लिंग–प्रयोग के मानकीकरण के लिए उन्होंने दिल्ली–आगरा के मध्य के लिंग–प्रयोग के अनुकरण पर बल दिया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् हिंदी के मानकीकरण के लिए केंद्रीय हिंदी निदेशालय की स्थापना की गई। इस संस्था द्वारा हिंदी–वर्तनी और पारिभाषिक शब्दावली आदि पर महत्वपूर्ण कार्य हो रहे हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् अनेक भाषाविदों और विद्वानों ने हिंदी वर्तनी, अच्छी हिंदी, हिंदी–व्याकरण संदर्भों से शोध कार्य किए और उपयोगी पुस्तकें लिखी हैं।

मानक हिंदी का प्रयोग क्षेत्र

आज मानक हिंदी ही राष्ट्रभाषा और राजभाषा के रूप में सम्मान प्राप्त कर चुकी है। विशाल भारत देश की संपर्क भाषा के रूप में प्रयोग होने से इसके विकास को दिशा और गति मिली है। मानक हिंदी से उसकी उपभाषाएं–पश्चिमी हिंदी, पूर्वी हिंदी, राजस्थानी, बिहारी और पहाड़ी, साथ ही उन उपभाषाओं से उनकी बोलियां संबंधित हैं। हिंदी भाषी क्षेत्र में इसके मानक रूप का सहज प्रयोग होता है।

आज साहित्य–सृजन, धार्मिक, राजनीतिक और सामाजिक अभियानों में मानक हिंदी को सम्मानजनक स्थान प्राप्त हो चुका है। इस प्रकार हिंदी के मानकीकरण का स्वरूप स्पष्ट हो रहा है, तो इसके प्रयोग–क्षेत्र में सराहनीय विकास हो रहा है। मानक हिंदी के वर्तमान स्वरूप में उसका उज्ज्वल और समुन्नत भविष्य दिखाई देता है।

मानक हिंदी से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण तथ्य

1. मानक हिंदी के संदर्भ में सबसे महत्वपूर्ण तथ्य है कि वह व्याकरण सम्मत या एकरूप होती है।
2. इसमें स्वरों की प्रधानता है।

   व्यंजनों की आक्षरिकता से भी स्वर प्रधानता की बात चरितार्थ होती है अर्थात् व्यंजन वर्ण–संरचना में 'अ' स्वर की अनिवार्य और रेखांकन योग्य भूमिका होती है; यथा–

   क = क्+अ ट = ट्+अ

टिप्पणी

3. सभी स्वर मौखिक और अनुनासिक दोनों रूपों में प्रयुक्त होते हैं; यथा

   आ – आम (मौखिक) आंख (अनुनासिक)

   ऊ – पूछना (मौखिक) पूंछ (अनुनासिक)

   जिन अक्षरों में मात्रा शिरोरेखा के ऊपर होती है उनमें अनुनासिक चिह्न अनुस्वार के समरूपी बनते हैं।

4. नागरी लिपि में कुछ ध्वनियों– अ, झ, ण, ल, श के लिए प्रचलित दो रूपों में से एक अ, झ, ण, ल, श के प्रयोग पर बल दिया गया है।

5. स्वरों के ह्रस्व और दीर्घ रूपों से भाषा में स्पष्ट और उपयोगी अभिव्यक्ति होती है; यथा–

   अ–आ > कम, काम, कमा, कामा

   कमल, कमला, कमाल, कामल, कामाल,

   कामाला, कामला,

6. मानक हिंदी में दो लिंग (पुल्लिग–स्त्रीलिंग), दो वचन (एकवचन– बहुवचन), तीन पुरुष (उत्तम, मध्यम, अन्य पुरुष), तीन काल (वर्तमान, भूत, भविष्यत्काल) का सरलीकृत और स्पष्ट प्रयोग होता है।

7. मानक हिंदी की धातुओं में 'ना' लगाकर क्रिया शब्द का मूल रूप बनाया जाता है; यथा–

   जा – जाना

   खा – खाना

   क्रिया शब्दों से दो प्रकार के प्रेरणात्मक रूप बनते हैं। प्रथम प्रेरणात्मक में 'आ' और द्वितीय प्रेरणात्मक रूप में 'वाना' जोड़ते हैं; यथा–

मूल क्रिया	प्रथम प्रेरणा	द्वितीय प्रेरणा
पढ़ना	पढ़ाना	पढ़वाना
लिखना	लिखाना	लिखवाना

8. मानक हिंदी में तत्सम, तद्भव, अनुकरणात्मक, विदेशी, देशी, संकर और पारिभाषिक आदि सभी वर्गों के शब्दों का समुचित रूप में प्रयोग होता है। मानक हिंदी के शब्दों में सरलीकरण या हिंदीकरण की विशेष प्रवृत्ति मिलती है; यथा–

   लैन्टर्न (Lantern) – लालटेन

   डॅजन (Dozen) – दर्जन

   लॉर्ड (Lord) – लाट

9. मानक हिंदी के अकारांत शब्द उच्चारण में प्रायः व्यंजनांत हो जाते हैं अर्थात लेखन में शब्दांत 'अ' को व्यक्त करते हैं, किंतु उच्चारण में 'अ' स्वर ध्वनि लुप्त हो जाती है, यथा–

टिप्पणी

लेखन	उच्चारण
राम	राम्
पान	पान्
कल	कल्

(ङ) बोली

भारत के मध्यदेश एवं अंतर्वेद में शौरसेनी अपभ्रंश से हिंदी भाषा का विकास हुआ है। इस विकास का आभास 1000 ई. के आसपास भली प्रकार से मिलने लगता है। वैसे बोलचाल के रूप में इसका विकास और भी पहले हो चुका होगा परंतु प्रमाणों के अभाव में कोई निश्चित तिथि देना सर्वथा कठिन कार्य है। जो प्रमाण मिलते हैं उनके संदर्भ में, वह साहित्य–रचना तभी किसी भाषा में आरंभ होती है जब उसका यथेष्ट विकास हो जाता है और वह भावों का वहन करने में पूर्ण समर्थ हो जाती है। अतएव ईसा की दसवीं शताब्दी से ही हिंदी–साहित्य के जब दर्शन होने लगते हैं, तब इससे पूर्व ही हिंदी की उत्पत्ति हो जाना नितांत स्वाभाविक है।

हिंदी के आरंभिक रूपों का आभास हमें सर्वप्रथम 'हेमचंद्र शब्दानुशासन' में उद्धृत उदाहरणों में मिल जाते हैं। उनसे ज्ञात होता है कि हिंदी में वे सभी ध्वनियां विकसित हो गईं थीं, जो तत्कालीन पश्चिमी अपभ्रंश में विद्यमान थीं, जैसे, संस्कृत के 'श, ष' के स्थान पर तत्कालीन हिंदी में 'स' ध्वनि का प्रचार था। स्वरों में से '.ए, ऋ, लृ, ल' का सर्वथा लोप हो गया था और इनके स्थान पर क्रमशः 'इ', 'उ', 'ए' तथा 'ल' ध्वनियों का प्रयोग होता था।

सबसे महत्वपूर्ण बात यह है उस समय हिंदी में ह्रस्व 'ए' और ह्रस्व 'ओ' का प्रचार था, जो ध्वनियां कालांतर में लुप्त हो गयीं इनकी ओर हेमचंद्र ने भी संकेत किये हैं। यद्यपि इन ध्वनियों के लिए देवनागरी लिपि में चिह्न नहीं थे, तथापि इनका प्रयोग पर्याप्त मात्रा में होता था और इनके उच्चारण का पता छंद–शास्त्र की दृष्टि से सुगमता से चल जाता था, जैसे, 'एकादश' में छः मात्राएं न मानकर पांच मात्राएं इसलिये मानी गयी हैं क्योंकि यहां 'ए' ह्रस्व है; ऐसे ही 'दोउ' शब्द में तीन मात्राएं न मानकर दो मात्राएं ही मानी गयी हैं क्योंकि यहां 'ओ' ह्रस्व है। इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग तत्कालीन छंदों में पर्याप्त मात्रा में होता था। इसके साथ ही हिंदी में समीपवर्ती स्वरों में संधि होने लगी थी, जैसे, 'रक्खइ' का 'राखै' या 'करउ' का 'करौ' आदि होना। साथ ही द्वित्व वर्णों का लोप होकर द्वित्व से पूर्ववर्ती स्वर दीर्घ होने लग गया था, जैसे, 'निस्सास' का 'नीसास', 'दिस्सइ' का 'दीसइ', 'दिज्जइ' का 'दीजइ' या 'दीजीये'। उस समय हिंदी में सानुनासिकता की प्रवृत्ति भी बढ़ गयी थी जैसे, 'चंद्र' का 'चांद', 'स्कंघ' का 'कांध', 'खम्भ' का 'खांभ' होना। इसके साथ ही हिंदी में विभक्तिहीन पदों का प्रयोग बड़ी तीव्रता के साथ होने लगा था।

आदिकाल, मध्य काल एवं आधुनिक काल में हिंदी भाषा व बोलियों का विकास सतत् गति से होता गया। आदिकाल में हिंदी की प्रवृत्ति उस समय तद्भव शब्दों को ग्रहण करने की ओर अधिक थी। साथ ही देशज शब्दों की संख्या भी कम न थी जिन्हें

ग्रहण करके हिंदी आगे बढ़ रही थी। इस काल की भाषा में मुख्य रूप से डिंगल, मैथिली, ब्रज, खड़ी बोली, पंजाबी, अवधी, दक्षिणी बोलियों का पर्याप्त सम्मिश्रण मिलता है।

टिप्पणी

मध्य काल में आते–आते हिंदी के रूप में पर्याप्त निखार आने लगा। एक ओर तो हिंदी बोलियां विकसित होने लगी थीं और उनमें स्वतंत्र रूप से साहित्य की रचना होने लगी, दूसरी ओर हिंदी पर से अपभ्रंश का भी प्रभाव नष्ट होने लगा था तथा हिंदी अपने निर्मित पथ पर स्वयं अग्रसर होने लगी थी। इस समय क, ख, ग, ज, फ आदि विदेशी ध्वनियां हिंदी के व्यंजनों में सम्मिलित हो गईं थीं, बहुत से अरबी–फारसी के शब्दों का प्रयोग खुलकर होने लगा था और ये सभी विदेशी शब्द हिंदी के ढांचे में ढलकर प्रकृति के अनुकूल बोले और लिखे जाने लगे थे।

आधुनिक काल में आकर हिंदी पूर्णतया विकसित हो गयी। इस काल में आते ही एक ओर तो हिंदी की बोलियों में पर्याप्त समृद्ध साहित्य लिखा जाने लगा, दूसरी ओर उसकी ये बोलियां इतनी विकसित हो गयीं कि वे बोली न रहकर उपभाषा के पद पर आसीन हो गयीं। सबसे बड़ी बात यह है कि इस काल में आकर हिंदी की एक 'खड़ी बोली' ने इतना अधिक विकास किया कि वह पहले तो मेरठ, मुजफ्फरनगर आदि जिलों की केवल बोलचाल की ही भाषा थी, परंतु अब उपभाषा बनकर सर्वप्रथम पद्य एवं गद्य की एक समृद्ध भाषा बनी जिसमें संस्कृत के तत्सम शब्द पर्याप्त मात्रा में आ गये और इनमें अरबी–फारसी के साथ–साथ अंग्रेजी के शब्द भी प्रचुर मात्रा में अपना लिये गये। इस प्रकार कुछ ही वर्षों में खड़ी बोली ने एक 'परिनिष्ठित हिंदी' का रूप धारण कर लिया।

हिंदी की बोलियां

संपूर्ण हिंदी–क्षेत्र दो भागों में विभक्त है– पश्चिमी हिंदी का क्षेत्र और पूर्वी हिंदी का क्षेत्र। पश्चिमी हिंदी का क्षेत्र पश्चिमी उत्तर प्रदेश, मेवाती और अहीर–वाटी क्षेत्र को छोड़कर संपूर्ण हरियाणा प्रदेश, दिल्ली और पूर्वी राजस्थान तक फैला हुआ है। पूर्वी हिंदी का क्षेत्र पूर्वी उत्तर प्रदेश, बघेलखंड, छोटा नागपुर तथा मध्य प्रदेश तक फैला हुआ है।

हिंदी क्षेत्र की संपूर्ण बोलियां तो बहुत हैं, जैसे, हिंदी के पूर्व खंड में पूर्वी हिंदी की तीन बोलियां हैं– अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी तथा बिहारी हिंदी की तीन बोलियां हैं– भोजपुरी, मगही और मैथिली। इस प्रकार हिंदी के पश्चिमी खंड में से पश्चिमी हिंदी की छः बोलियां हैं– कौरवी, बांगरू या हरियाणवी, दक्खिनी, ब्रज, बुंदेली और कन्नौजी। राजस्थानी हिंदी की चार बोलियां हैं– मारवाड़ी, जयपुरी, मेवाती और मालवी। तीसरी पहाड़ी हिंदी की दो बोलियां हैं– कुमाऊंनी और गढ़वाली। इस प्रकार हिंदी क्षेत्र में 18 बोलियां प्रचलित हैं परंतु इनमें से केवल 9 बोलियां प्रमुख हैं– बांगरू या हरियाणवी, खड़ी बोली, ब्रजभाषा, बुंदेली, कन्नौजी, अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी और भोजपुरी।

1. **बांगरू**– इसे हरियाणवी बोली भी कहते हैं। यह बोली दिल्ली प्रदेश, रोहतक और करनाल के संपूर्ण जिले, जींद, हिसार का पूर्वी भाग, नाभा और पटियाला

के दक्षिणी भाग में बोली जाती है। इसे बोलने वालों की संख्या लगभग 40–45 लाख है। रोहतक के आस–पास इस बोली को हरियाणवी कहते हैं और दादरी के आस–पास यह 'अहीरों की बोली' कहलाती है।

टिप्पणी

2. **खड़ी बोली**– इसे 'हिंदुस्तानी', 'नागरी', 'सरहिंद', 'कौरवी' आदि कई नामों से पुकारा जाता है किंतु सर्वाधिक प्रचलित नाम 'खड़ी बोली' ही है। यह बोली गंगा और यमुना के उत्तरी दोआब अर्थात् देहरादून के मैदानी भाग, सहारनपुर, मुजफ्फर– नगर और मेरठ आदि संपूर्ण जिलों तथा बुलंदशहर जिले के उत्तरी भाग में बोली जाती है। पश्चिम में यमुना नदी के पार अंबाला तक, दक्षिण–पूर्व में बिजनौर, मुरादाबाद और रामपुर जिलों के उत्तर भाग में भी यही बोली प्रचलित है। इसके बोलने वालों की संख्या लगभग 1 करोड़ है।

3. **ब्रजभाषा**– यह संपूर्ण ब्रज प्रदेश की बोली है। ब्रज प्रदेश के अंतर्गत मथुरा, अलीगढ़, आगरा, बुलंदशहर, एटा, मैनपुरी, बदायूं तथा बरेली जिले आते हैं। हरियाणा प्रांत के गुड़गांव जिले का पूर्वी भाग, राजस्थान के धौलपुर, भरतपुर, करौली और जयपुर जिले का पूर्वी भाग तथा मध्य प्रदेश के ग्वालियर जिले का पश्चिमी भाग भी ब्रज प्रदेश में ही आता है।

4. **बुंदेली**– यह बोली संपूर्ण बुंदेलखंड में बोली जाती है। बुंदेली के पूर्व में बघेली, उत्तर–पश्चिम में ब्रजभाषा और कन्नौजी, दक्षिण में मराठी और दक्षिण–पश्चिम में राजस्थानी का क्षेत्र आता है। यह बोली शुद्ध रूप में झांसी, बांदा, जालौन, हमीरपुर, ग्वालियर, भोपाल, ओरछा, सागर, नरसिंहपुर, सिवनी तथा होशंगाबाद में बोली जाती है। इसके मिश्रित रूप दतिया, पन्ना, चरखानी, दमोह, बालाघाट, नागपुर आदि में प्रचलित हैं। इसका परिनिष्ठित रूप ओरछा और सागर के आसपास पाया जाता है। इसके बोलने वालों की संख्या लगभग एक करोड़ है।

5. **कन्नौजी**– यह प्राचीन कान्यकुब्ज प्रदेश की बोली है। डॉ. ग्रियर्सन तथा डॉ. धीरेंद्र वर्मा इसे कोई स्वतंत्र बोली नहीं मानते और ब्रजभाषा का ही एकरूप मानते हैं। यह बोली पूर्व में कानपुर, दक्षिण में यमुना नदी, उत्तर में गंगा नदी के पार हरदोई, शाहजहांपुर तथा पीलीभीत और पश्चिम में मथुरा मंडल तक फैली हुई है। इस बोली के पूर्व में अवधी, उत्तर– पश्चिम में ब्रजभाषा और दक्षिण में बुंदेली बोली जाती है। कन्नौजी का क्षेत्र इटावा, फर्रुखाबाद, शाहजहांपुर, कानपुर का कुछ भाग, हरदोई और पीलीभीत है। शुद्धरूप में यह बोली इटावा और फर्रुखाबाद के दुआबे में तथा शाहजहांपुर के अंतर्गत गंगा के उत्तर में बोली जाती है। इसे बोलने वालों की संख्या लगभग 65 लाख है।

6. **अवधी**– इसे कुछ विद्वान 'कोशली' एवं 'बैसवाड़ी' बोली भी कहते हैं। यह प्राचीन अवध या कोशल जनपद की बोली है। यह बोली हरदोई जिले को छोड़ कर संपूर्ण अवध क्षेत्र में प्रचलित है अर्थात् लखीमपुर खीरी, बहराइच, गोंडा, बाराबंकी, लखनऊ, सीतापुर, उन्नाव, फैजाबाद, सुलतानपुर और रायबरेली के इलाकों में अवधी ही बोली जाती है। जौनपुर तथा मिर्जापुर के पश्चिमी भाग तथा

फतेहपुर और इलाहाबाद में भी अवधी बोली जाती है। इस बोली के उत्तर में पहाड़ी भाषाएं, दक्षिण में मराठी, पूर्व में भोजपुरी तथा पश्चिम में बुंदेली और कन्नौजी बोली जाती है। डॉ. बाबूराम सक्सेना के मत के अनुसार अवधी के तीन रूप मिलते हैं– (क) पूर्वी, (ख) केंद्रीय और (ग) पश्चिमी। पूर्वी रूप गोंडा, फैजाबाद, सुलतानपुर, इलाहाबाद, जौनपुर और मिर्जापुर में प्रचलित है, केंद्रीय रूप बहराइच, बाराबंकी तथा रायबरेली में मिलता है और पश्चिमी रूप खीरी, सीतापुर, लखनऊ, उन्नाव और फतेहपुर में विद्यमान है। यह बोली बोलने वालों की संख्या लगभग दो करोड़ है।

7. **बघेली**– यह बोली प्राचीन बघेलखंड में बोली जाती है। कहा जाता है कि प्राचीन राजा व्याघ्रदेव के नाम पर इस प्रदेश का नाम बघेलखंड पड़ा था। इस बोली का केंद्र रीवां है। इसके अतिरिक्त दमोह, जबलपुर, मांडवा, बालाघाट, बांदा, फतेहपुर, हमीरपुर आदि जिलों में भी यह बोली प्रचलित है। इसके उत्तर में मध्य प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश की सीमाएं, दक्षिण में बालाघाट, पश्चिम में दमोह और बांदा की पूर्वी सीमा तथा पूर्व में मिर्जापुर, बिलासपुर व छोटा नागपुर की पश्चिमी सीमाएं आती हैं। इस प्रकार बघेली बोली अवधी, भोजपुरी, छत्तीसगढ़ी, मराठी और बुंदेली के मध्यवर्ती क्षेत्र में बाली जाती है। इसे बोलने वालों की संख्या लगभग 70 लाख है।

8. **छत्तीसगढ़ी**– यह बोली मध्य प्रदेश के प्राचीन छत्तीसगढ़ क्षेत्र की बोली है। कहा जाता है कि इस क्षेत्र में कभी छत्तीसगढ़ विद्यमान थे इसलिए इसे 'छत्तीसगढ़' कहा जाता है। कुछ विद्वानों का विचार है कि यहां पर पहले चेदि राजाओं के गढ़ थे अतएव उन्हें 'चेदिशगढ़' कहा जाता था। उसी का अपभ्रंश रूप 'छत्तीसगढ़' है। कुछ विद्वानों का यह भी विचार है कि यहां पर कभी निम्न जातियों के छत्तीस घर बिहार से आकर बस गये थे। वह 'छत्तीसघर' ही कालांतर में 'छत्तीसगढ़' हो गया। यह बोली रायपुर, विलासपुर, संबलपुर के पश्चिमी भाग; कांकेर, नंदगांव, सरगुजा, उदयपुर, बस्तर और बिहार के कुछ भागों में बोली जाती है। इस बोली के उत्तर में पलामू, दक्षिण में बस्तर, पश्चिम में बघेलखंड और पूर्व में उड़ीसा प्रदेश आते हैं। इस तरह इसके उत्तर में भोजपुरी, पूर्व में उड़िया, पश्चिम में बघेली और दक्षिण में हलबी बोली आती है। इसे बोलने वालों की संख्या लगभग 80 लाख है।

9. **भोजपुरी**– प्राचीनकाल में भोजपुर एक राज्य था जिसकी राजधानी जिला शाहबाद के 'भोजपुर' कस्बे में थी। इसी आधार पर यहां की बोली का नाम 'भोजपुरी' पड़ा। इसे 'भोजपुरिया' भी कहते हैं। यह बोली उत्तर में नेपाल के दक्षिणी भाग से लेकर दक्षिण में छोटा नागपुर तथा पश्चिम में पूर्वी मिर्जापुर, वाराणसी एवं पूर्वी फैजाबाद से लेकर पूर्व में रांची और पटना तक बोली जाती है। यह बोली बस्ती, गोरखपुर, देवरिया, सरन, मिर्जापुर, वाराणसी, जौनपुर, गाजीपुर, बलिया, शाहबाद, पलामू तथा रांची तक प्रचलित है। भोजपुर कस्बे के

आसपास ही इसका परिनिष्ठित रूप प्रचलित है। शेष स्थानों पर यह मिश्रित रूप में बोली जाती है। इसे बोलने वालों की संख्या लगभग दो करोड़ चार लाख है।

टिप्पणी

इस प्रकार हिंदी की चार प्रमुख बोलियां हैं– मेरठ–बिजनौर की 'खड़ी बोली', मथुरा–आगरा की 'ब्रजभाषा', लखनऊ–फैजाबाद की 'अवधी', और वाराणसी–गोरखपुर की 'भोजपुरी'। उत्तर प्रदेश में ये चारों बोलियां ही सबसे अधिक बोली जाती हैं। इनमें से ब्रज और अवधी में उच्च कोटि का पुराना साहित्य मिलता है। भोजपुरी में अब साहित्य रचना की जाने लगी है। प्राचीन साहित्य तनिक भी नहीं मिलता और केवल लोकगीत मिलते हैं। खड़ीबोली ने उत्तरोत्तर विकास करते हुए आज परिनिष्ठित हिंदी का रूप ग्रहण करके राष्ट्रभाषा का पद प्राप्त कर लिया है और ईसा की उन्नीसवीं शताब्दी से लेकर अब तक इसमें पर्याप्त समृद्ध एवं उच्चकोटि का साहित्य लिखा जा चुका है। 'प्रियप्रवास', 'साकेत', 'कामायनी', 'उर्वशी' आदि इसके श्रेष्ठ काव्य हैं। प्रेमचंद, जैनेंद्र, यशपाल आदि के समुन्नत उपन्यासों की रचना इसी में हुई है और इसी में आजकल उच्चकोटि के नाटक, कहानी, जीवनी, रेखाचित्र, यात्रा, रिपोर्ताज, एकांकी आदि का निर्माण हो रहा है। इस प्रकार खड़ीबोली ने महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है।

बोलचाल की भाषा

भाषा का प्रयोग प्रत्येक मनुष्य की आवश्यकता है। भाषा वैसे भी सभ्यता के विकास से संबद्ध है जो समाज जितना उन्नत या विकसित होगा, उसकी भाषा भी उतनी ही विकसित होगी। भाषा का स्तर सर्वत्र अनेक स्तरों पर होता है लेकिन यहां हमारा प्रतिपाद्य बोल–चाल या व्यावहारिक भाषा से ही है, इसी को मातृभाषा भी कह सकते हैं।

> **''हिंदी का वह स्परूप जो प्रायः सामान्य जनता द्वारा विचार–विनियम के लिए प्रयुक्त किया जाता है उसे बोलचाल की भाषा, जनभाषा या व्यावहारिक भाषा कहते हैं।''**

जनभाषा का प्रयोक्ता आम नागरिक होता है, अतः वह अपनी योग्यता, ज्ञान, शिक्षा, संस्कार, परिवेश के अनुसार भाषा और शब्दों का प्रयोग करता है। इसमें स्थानीय पुट प्रमुख रहता है और कुछ विशेष अभिव्यक्तियों का समावेश अवश्य रहता है। यदि प्रयोक्ता की मातृभाषा और जनभाषा, दोनों अलग–अलग हैं तो उसकी मातृभाषा की कुछ ध्वनियों का समावेश भी उसके द्वारा प्रयुक्त बोलचाल की भाषा में हो जाता है। प्रयोक्ता इसमें लक्षित, व्यक्ति के स्तर, दर्जे, प्रयोक्ता से उसके संबंध, आयु, मनोभाव आदि के अनुसार परिवर्तन कर लेता है। अपने से छोटों, बड़ों, अजनबियों आदि के साथ बात करते हुए हम अपने बोलने का ढंग, शब्दावली, भाव भंगिमा आदि बदल सकते हैं।

भाषा का यह रूप राष्ट्रभाषा वाला रूप ही होता है, जो राजभाषा के रूप में कुछ भिन्नता लिए होता है; इसमें राजभाषा वाले शब्दों का अभाव होता है (जो शब्द प्रशासनिक कार्यों के कारण भाषा वाले रूप में समाहित हो जाते हैं)। बोलचाल की भाषा की संरचना में उसकी बोलियों का अधिक योगदान रहता है। सामान्य जन ही नहीं,

विशिष्ट जन भी व्यावहारिक हिंदी का ही प्रयोग करते दिखाई देते हैं। हिंदी भाषी राज्यों में बोलचाल में इसी का प्रयोग होता है। सिनेमा, रेडियो, दूरदर्शन, कारखानों आदि में व्यावहारिक हिंदी का ही प्रयोग होता है।

टिप्पणी

वस्तुतः व्यावहारिक हिंदी में लोक–प्रचलित शब्दावली को ग्रहण करने की ओर झुकाव अधिक रहता है। इसमें विदेशी शब्दों के प्रयोग आवश्यक रूप से रहते हैं तथा यह विदेशी प्रयोगों के सरल और अतिप्रचलित शब्दों के प्रयोग से युक्त होती है।

भारत के विशाल जन–समाज के लिए बोलचाल या व्यावहारिक भाषा के रूप में 'हिंदी' बहुत बड़ी आवश्यकता है। हमारे यहां के दो प्रतिशत लोग अंग्रेजी समझते–बोलते हैं। शेष हिंदी तथा अन्य भाषाओं का ही प्रयोग करते हैं। अन्य भारतीय भाषाओं की अपेक्षा हिंदी बोलने वालों की संख्या अधिक है। हिंदी, भारतीय–भाषाओं में सबसे आगे है।

वस्तुतः इस प्रकार हिंदी एक व्यापक भाषा है, जो हमें भारत के सभी प्रांतों से ही नहीं, विश्व से जोड़ सकती है। यदि इस समय अंतर्राष्ट्रीय दृष्टि से विचार करें तो हम समूचे भारतवर्ष, पाकिस्तान, बांग्लादेश में तो व्यावहारिक हिंदी के आधार पर अपने भाषा संबंधी काम हर दृष्टि से आसानी से निकाल सकते हैं। देश की भावात्मक एकता को बनाने वाली और जनता के बीच प्रगाढ़ संबंध स्थापित करने वाली भाषा बोलचाल की हिंदी या व्यावहारिक हिंदी ही है।

रचनात्मक भाषा

रचनात्मक भाषा का उद्‌भव बोलचाल की भाषा से होता है। कुछ प्रमुख विद्वानों का मत है कि भाषा में होने वाले नये प्रयोग या परिवर्तन को रचनात्मक या सृजनात्मक कहा जाता है। देश का प्रत्येक नागरिक इससे प्रभावित होता है। भाषा प्रतीकों की व्यवस्था है, जिसके अंगों–उपांगों में नियमबद्ध संबंध है। भाषा का प्रयोजन संप्रेषण व विचारों का आदान–प्रदान होता है। जो व्यक्ति संप्रेषण के प्रयोजन से भाषा का प्रयोग करता है, उसे भाषा के सभी नियमों का पालन करना होता है। वक्ता भाषा का प्रयोग कर अपनी बात कहता है, लेखक लिखकर पाठक को पहुंचाता है। इसके लिए आवश्यक है कि वक्ता और लेखक तथा श्रोता और पाठक को भाषा के नियमों का ज्ञान हो। ये प्रयोग सामान्य भाषा के प्रयोग कहे जाते हैं। इसके विपरीत जब भाषा के नियमों का प्रयोग नहीं किया जाता तो उसे हम असामान्य प्रयोग कहते हैं। असामान्य प्रयोग में लेखक जो बात, जिस प्रकार से जितनी मात्रा में प्रेषित करता है वह बात उसी प्रकार से श्रोता तक पहुंचती है। नियमों का ज्ञान न होने से संदेश का गुणात्मक ह्रास हो जाता है, क्योंकि श्रोता को बात समझने में बाधा आती है। दूसरी ओर यदि लेखक को नियमों का पूर्ण ज्ञान है लेकिन वह किसी विशेष कारण से नियमों का उल्लंघन कर अपनी बात इस प्रकार कहता है कि श्रोता कही गई बात से अधिक ग्रहण करता है तो इस अतिरिक्त को 'सर्जना' कहा जाता है। इस प्रकार लेखक द्वारा नियमों का अनायास उल्लंघन और अपने संदेश में अतिरिक्त अर्थ की संभावना का उद्‌घाटन 'रचनात्मकता' है।

इसके लिए उपलब्ध शब्द से हटकर नये शब्दों का निर्माण, शब्दों में नये अर्थों को भरना, शब्दों का नया प्रयोग करना तथा शब्दों को नये ढंग से प्रस्तुत करना आदि सम्मिलित है। सृजनात्मक भाषा में लिखे संदेशों के रचयिता अपनी रचनाओं को बार–बार परिष्कृत करते हैं। यह संभव है भाषा के नियमों विशेषकर, व्याकरण के नियमों के उल्लंघन से। यह प्रत्येक सृजनात्मक प्रयास में नहीं होता।

भाषा का रचनात्मक प्रयोग कई रूपों में होता है। कहानी, कविता, उपन्यास, नाटक, संस्मरण, निबंध आदि इसके उदाहरण हैं। इस तरह के प्रयोगों में यह महत्वपूर्ण नहीं होता कि क्या कहा जाता है। अपितु, महत्वपूर्ण यह होता है कि संदेश कैसे दिया जा रहा है। काव्य की जो पंक्तियां ऊपर से सामान्य प्रतीत होती हैं वे भी कई अर्थ लिए होती हैं, जैसे–

''कहत, नटन, रिझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।

भरे भोन में करत है, नैनन हु सो बात।''

उपर्युक्त पंक्तियों में यह नहीं देखा गया है कि इनका अर्थ क्या है, अपितु यह देखा गया है कि कवि ने सृजनात्मक भाषा के प्रयोग द्वारा एक चित्र खींच दिया है जो एक सौंदर्य लिए हुए है।

डॉ. भोलानाथ तिवारी ने ऐसी भाषा के विषय में लिखा है– ''साहित्यकारों ने साहित्य में सामान्य भाषा का प्रयोग करते–करते साहित्यिक भाषा के रूप में नये नूतन रूप का सर्जन किया और सामान्य भाषा और साहित्यिक भाषा में आदान–प्रदान के बावजूद सामान्य भाषा से गलत साहित्यिक भाषा की सत्ता को स्वीकृति मिल गई''

1.3.2 उपयोग (शैक्षिक, बोलचाल, कार्यालय, बाजार एवं राजनैतिक स्तर पर)

एक बच्चे के रूप में हमारे संवाद की शुरुआत 'घर की भाषा' में होती है। घर की यही भाषा हमारे सपनों की भाषा भी होती है। विद्यालय में जाने और अन्य लोगों के साथ संपर्क में आने के बाद एक बच्चे के शब्द भण्डार में वृद्धि होती है। वह किसी बात को अभिव्यक्त करने के अनगिनत तरीकों से रूबरू होता है। इसके साथ ही बच्चा नई भाषा भी सीखता है और घर की भाषा के नियमों का इस्तेमाल नई भाषा को सीखने के लिए स्वाभाविक ढंग से करना सीखता है।

विद्यालय में हिंदी भाषा शिक्षण की प्रक्रियाओं से उसे भाषा मे दक्ष बनाया जाता है। दक्षता का उपयोग वह शैक्षिक स्तर पर तो करता ही है, जीवन के अन्यान्य विविध पहलुओं यथा– बोलचाल, कार्यालय, बाजार एवं राजनीतिक स्तर आदि पर भी करता है। भाषा अधिगम जीवन के हर पहलू पर सहायक बनता है। अन्ततः वह 'भाषिक सार्वभौम' के स्तर पर पहुंच जता है।

सभी मानव भाषाओं की सामान्य विशेषताओं को 'भाषिक सार्वभौम' के नाम से जाना जाता है। जैसे सभी भाषाओं में अभिव्यक्ति की मूल इकाई वाक्य होते हैं। इन्हीं विशेषताओं के कारण किसी एक भाषा की समझ से दूसरी भाषाओं को सीखने में मदद मिलती है। एक भाषा का दूसरी भाषा में अनुवाद करने में मदद मिलती है।

टिप्पणी

भाषाओं की अपनी ध्वनि और प्रतीक होते हैं, जो वस्तुओं, घटनाओं, विश्वासों, इच्छाओं, रुझानों से जुड़े होते हैं। ये प्रतीक अर्थ को दूसरों तक पहुंचाते हैं। हालांकि इन प्रतीकों तथा इसके अर्थों के बीच अनिवार्य रूप से जुड़ाव हो, यह भी जरूरी नहीं है। समय और परिस्थिति के अनुरूप इसमें बदलाव होते रहते हैं।

भाषा एक सृजनशील प्रक्रिया है। भाषा की इस सृजनात्मकता को अनंत उत्पादनशीलता कहा जाता है। यह व्यक्ति की उस योग्यता को व्यक्त करती है, जिससे वह सीमित नियमों एवं शब्दों की सहायता से असीमित अर्थवान वाक्यों का सृजन कर सकता है और इनका तमाम क्षेत्रों मे उपयोग कर सकता है।

(क) शैक्षिक स्तर पर

शिक्षा का और मातृभाषा के संदर्भ में हिंदी भाषा शिक्षण का उद्देश्य अन्योन्याश्रित है। मानव विकास का आधाररभूत साधन शिक्षा है और शिक्षा का मूलभूत साधन मातृभाषा शिक्षण है।

शिक्षा अंग्रेजी के एजुकेशन शब्द का पर्याय है, जिसका अर्थ है–– शिक्षार्थी की आंतरिक क्षमताओं को व्यवहारिक जीवन में उपयोग के लिए बाहर लाना। बालक का समग्र विकास शिक्षा का लक्ष्य है और एक अर्थ में यही लक्ष्य भाषा शिक्षण का भी है। यही कारण है कि शैक्षिक स्तर पर भाषा शिक्षण की आवश्यकता निरंतर अनुभव की जाती है।

विद्यालयी स्तर पर सम्प्रेषणीयता के लिये हिंदी भाषा शिक्षण की प्रक्रिया मे समरूपता बनाये रखने का प्रयास किया जाता है। समुदाय– समाज में पारस्परिक संवाद के लिए भाषागत एकरूपता अपरिहार्य होती है। इसलिए विद्यालयी स्तर पर हिंदी भाषा के शिक्षण– शिक्षार्जन, उपयोग–व्यवहार में इस बात का ध्यान रखा जाता है।

(ख) बोलचाल के स्तर पर

बोलचाल का संबंध बोली से होता है। अमूमन हम सामान्य बोलचाल की भाषा का ही आपस मे उपयोग करते हैं।

भावाभिव्यक्ति भाषा के ज़रिए होती होती है, और भाव मन में उत्पन्न होने वाले विचार होते हैं। इस तथ्य से सभी सहमत हैं कि बोली ही विकसित और व्यापक होकर भाषा का रूप ले ती है।

बोली भाषा का रूप किन कारणों से धारण करती है? यह प्रश्न विचारणीय होने के बाद भी कोई सुनिश्चित उत्तर नहीं पा सकता। ऐसा इसलिए कि यह आवश्यक नहीं कि किसी एक कारण विशेष से ही बोली भाषा बनती है। बोली के भाषा बनने की प्रक्रिया में अनेक कारण कार्य करते हैं। सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक, आर्थिक, राजनैतिक, सैनिक और वैज्ञानिक कारण इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

यद्यपि ये सभी कारण ऐसे है जिनमें एक का संबंध दूसरे से है, तथापि इनकी पृथकता को उपेक्षित नहीं किया जा सकता है।

हिंदी भाषा शिक्षण बोली के मर्यादित–सुसंस्कृत प्रयोग की पृष्ठभूमि निर्मित करता है। यह किसी भाषा के क्षेत्रीय वाचन का बेहतर रूप होता है।

टिप्पणी

(ग) कार्यालय के स्तर पर

कार्यालयों में विविध भाषा–भाषी लोग होते हैं। वे परस्पर अपनी बोली का उपयोग भी करते हैं। आधुनिक युग में शासकीय अर्द्धशासकीय व निजी कार्यालयों में भाषा का उपयोग विभिन्न कार्य क्षेत्रों के लिए किया जाता है। हिंदी के महत्ववर्धन के लिए हिन्दी पखवाड़ों का आयोजन किया जाता है।

'भाषा' भावों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम तो है ही, यह जीवन की अभिव्यक्ति भी है। सम्प्रेषणीयता का संकट खड़ा नहीं हो, इसलिए जीवन की संवेदना के अनुरूप इसका परिवर्तन परिवर्धन आवश्यक हो जाता है।

जीवन में संचार और जनसंचार का विशिष्ट महत्व होता है। यही वह लक्ष्य है जिसकी प्राप्ति के लिए भाषा का अविष्कार और विकास भी अपरिहार्य होता है। इसलिए जीवन के विकास के साथ–साथ भाषा का विकास भी चलता रहता है।

भाषा जहां अपने प्रारंभिक रूप में अभिव्यक्ति का साधन बनकर आती है, वहीं यह विकसित अवस्था में आकर साधन से परे साध्य तक पहुंच जाती है।

भाषा शिक्षण से ही कार्यालय का विस्तार भी होता है। इस प्रकार एक ओर जहाँ भाषा हमारे जीवन के अनुरूप परिवर्तित होती रहती है, वहीं दूसरी ओर जीवन को संचालित और प्रेरित करने में भी यह महती भूमिका निभाती है। प्रत्येक देश, संस्कृति और समाज की भाषा के शब्द कुछ विशिष्ट तेवर, विशेष भंगिमाएँ और जीवन–संस्कृति–संस्कार से जुड़े हुए अर्थों को लिए होते हैं।

(घ) बाजार के स्तर पर

बाजार हमारे जीवन का महत्पूर्ण हिस्सा है। इसके क्षेत्र व इसकी परिस्थितियों का ज्ञान भाषा के व्यापक स्तर से ही होता है।

बीते 10–15 वर्षों के आलोक में देखें तो हम पाएंगे कि बाजार में जबरदस्त बदलाव आया है। बाजारीकरण, वैश्वीकरण उदारीकरण से युक्त परिवेश और नई प्रौद्योगिकी की अभिनव अवधारणा आज के समय के नए यथार्थ हैं। इसमें भाषा शिक्षण की महती भूमिका होती है।

सूचना क्रान्ति ने संचार के समस्त साधनों को प्रभावित किया है। इसलिए भाषा को अस्मिता से नहीं जोड़कर, इसे अभिव्यक्ति का माध्यम मानने पर जोर दिया जा रहा है।

यही कारण है कि 'बाजारू भाषा' जैसे शब्द अस्तित्व में आते हैं। बाजार की भाषा साहित्यिक नहीं हो सकती। इसे कामकाजी स्वरूप धारण करना ही होता है।

(ङ) राजनैतिक स्तर पर

हिंदी आज क्षेत्रविशेष की भाषा नहीं रही। संचार माध्यमों ने इसे व्यापक दायरा दिया है। इस संदर्भ में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, खासकर हिंदी फिल्मों का योगदान अहम

है। हिंदी भाषी लोग आज देश भर में हैं। राजनीतिक स्तर पर इसके उपयोग की अनिवार्यता स्वयंसिद्ध है।

हिंदी भाषा भारत में सर्वव्याप्त है। ऐसे में राजनीति का क्षेत्र भी भाषा से अछूता कदापि नहीं रह सकता है। हिन्दी भाषा शिक्षण का उपयोग राजनैतिक स्तर पर बहुतायत में किया जाता है। भाषा के राजनैतिक स्तर के बारे में अनेकानेक विचार आज हमारे सामने आते रहते हैं, जिनका माध्यम हिंदी भाषा बनती है।

राजनैतिक फलक पर भाषा जीवंत भी होती है और मृत भी। उसकी नैतिक सत्ता भी होती है। राजनीतिक स्तर पर भाषाएं खूबसूरत होती हैं तो, कुरूप भी होती हैं, भद्दी होती है तो उन्नत भी होती हैं और यसोन्मुख आदि भी होती हैं।

सियासत सत्ता का विषय है और सत्ता नियंत्रण तो करती है लेकिन अमूमन स्वयं किसी के नियंत्रण मे नहीं रहती। कई बार सत्तालोलुप और सत्तासीन बेलगाम और अमर्यादित भी हो जाते हैं। इसका असर उनकी भाषा पर नहीं पड़े– असंभव है। इसलिए राजनैतिक स्तर पर हिंदी भाषा शिक्षण का प्रभाव विशुद्ध स्वरूप में कम ही देखने को मिलता है।

भाषा के विविधपक्षीय उपयोग के स्वरूप पर भाषाविदों की चिंता

वर्तमान दौर में भाषा का संप्रेषण जिस तीव्र गति से हम तक पहुँच रहा है, उसमें भाषा का अपनी मूलकता को खोने का सबसे बड़ा संकट है। भाषा संचार माध्यमों के प्रभाव के कारण अपना स्वरूप बिगाड़ रही है। उसका व्याकरणिक पक्ष नष्टप्रायः हो रहा है। वह अपनी नहीं, पराई लग रही है। ऐसे में भाषाविदों का चिंतित होना अस्वाभाविक नहीं है।

समीक्षक गिरधर राठी के शब्दों के कहें तो, "हमारे यहां प्रसारण की भाषा बोली और बोली से ठिठोली हो गई है। वैसे भाषा के सार्वभौमीकरण की नई वैज्ञानिक प्रक्रिया, आभास दे सकती है कि हम एक विश्व भाषा की ओर बढ़ रहे हैं।"

भाषाविदों का मानना है कि भाषा शीघ्र ही लोकभाषा भी हो जाएगी। वह एक रूखा संगीत हो जाएगी जिसमें शब्द नहीं सीधे वाक्य होंगे। शब्द न्यूनतम उपयोग के रह जाएंगे। समाज व संस्कृतिविहीन मनुष्य बहुराष्ट्रीय हो जाएगा। पिछड़े रह जाएँगे तो वे जो राष्ट्रभक्त होगे और अहिन्दी में काम करेंगे। अंग्रेजी मिश्रित हिन्दी सर्वप्रधान होगी।

प्रसारण भाषा द्वारा नई भाषा संरचना का जन्म होगा, क्योंकि आने वाले दिनों में सम्प्रेषित भाषा मूलभाषा का स्थान लेगी।

भाषाविदों की चिंता सर्वथा आधारहीन नहीं है, लेकिन परिवर्तन का प्रभाव विधायी भी होगा। प्रसारित भाषा में आम सरल शब्दावली का संचार–प्रचार–प्रसार होगा जो एक तरह से भाषा को नए मानवीय तथा गंभीर सामाजिक सरोकारों के साथ बाँधेगा। यह इस प्रसारित भाषा की सबसे बड़ी उपलब्धि होगी।

1.3.3 चुनौतियां एवं समाधान : संचार माध्यम एवं प्रिंट माध्यम

जनसंचार माध्यम अर्थात "Mass Media" में "Media" शब्द का अर्थ है माध्यम जो कि "Medium" का बहुवचन है। माध्यम शब्द का सामान्य अर्थ है- वह साधन जिससे कुछ

अभिव्यक्त या संप्रेषित किया जाए। साधारण शब्दों में कहा जाए तो "वे साधन, जिनके द्वारा जनसंचार का कार्य संपन्न किया जाए, जनसंचार माध्यम कहलाते हैं।"

टिप्पणी

वर्तमान समय में प्रचलित प्रमुख जनसंचार माध्यम जैसे मुद्रण, दृश्य-श्रव्य आदि संचार प्रौद्योगिकी के मुख्य उपकरण हैं। इस समय तकनीक की उन्नति के फलस्वरूप जनसंचार की उन्नति भी निरंतर हो रही है। मुद्रण के आधुनिक रूप, जैसे समाचार-पत्रों का इंटरनेट अथवा मोबाइल के माध्यम से प्रयोगकर्ता तक पहुंचना, रेडियो और टेलीविजन का मोबाइल रूप धारण कर लेना अर्थात कहीं पर भी उपलब्ध होना सूचना प्रौद्योगिकी के निरंतर विकास का सूचक है।

(क) विभिन्न जनसंचार माध्यमों का स्वरूप

जनसंचार के अनेक माध्यम हैं जिन्हें अनेक रूपों में रखा जा सकता है–

1. **मुद्रण माध्यम**-इसमें समाचार-पत्र, पत्रिकाएं और पुस्तकों आदि का समावेश होता है।
2. **श्रव्य संचार माध्यम**-इसका संबंध रेडियो, ऑडियो कैसेट, टेप-रिकॉर्डर से होता है।
3. **दृश्य-श्रव्य संचार माध्यम**-इसमें टेलीविजन, वीडियो कैसेट, फिल्म, सीडी सभी का समावेश है।
4. **इंटरनेट**-यह कम्प्यूटर पर संचालित होने वाला नेटवर्क है और कम्प्यूटर तथा इंटरनेट सभी संचार माध्यमों का कार्य कर सकते हैं।

1. मुद्रण माध्यम (दृश्य माध्यम)

इसमें मुद्रित समाचार-पत्र, पत्रिकाएं, पुस्तकें, जर्नल, पोस्टर आदि अनेक प्रकार के मुद्रित माध्यम आते हैं, समाचार-पत्रों को प्रकाशित करने की जब से परंपरा पड़ी, पत्रकारिता के उद्देश्य स्वत: ही प्रकट हुए। सबसे अधिक यदि कोई बात भयभीत करती है तो वह लोकनिंदा करती है। लोकनिंदा या यश से जनमत का निर्माण होता है इसी कारण सरकारें भी यही चाहती हैं कि उन्हें लोकप्रियता प्राप्त हो। विशेष रूप से आजकल जबकि सरकारें लोकमत का प्रतिनिधित्व पाकर ही गठित होती हैं। अखबारों ने भी लोकमत निर्माण की अपनी शक्ति की हर तरह से परीक्षा करने के प्रयोग प्रारंभ किए हैं इसके अतिरिक्त प्रशासन यह भी नहीं चाह सकता कि प्रेस मनमाने ढंग से स्वच्छंद होकर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के नाम पर कुछ भी छापती रहे इस कारण राष्ट्र में उसके लिए भी समाचार तंत्र को अनुशासित रखना आवश्यक रहा है।

आज अनेक समाचार-पत्र व्यावसायिक और साहित्यिक पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित हो रही हैं। इलेक्ट्रानिक मीडिया की सारी चुनौतियों के बाद भी प्रिंट मीडिया के प्रभाव में कोई कमी नहीं आई है।

समाचार-पत्र–प्रेस का प्रमुख जनसंचार माध्यम समाचार-पत्र है। विश्व के प्राय: सभी विकसित एवं विकासशील देशों में लगभग प्रत्येक पढ़ा-लिखा व्यक्ति दैनिक

समाचार-पत्र पढ़ता है। यहां तक कि ऐसा व्यक्ति, जिसने कायदे से कभी कोई पूरी किताब नहीं पढ़ी हो वह भी समाचार-पत्र पढ़ने में पूरी रुचि लेता है।

समाचार-पत्र के कार्य–किसी प्रकार की सूचना, घटना, दुर्घटना की जानकारी, खोज, रहस्य आदि को उजागर कर उसे जनसामान्य के बीच प्रस्तुत करना समाचार-पत्र का मुख्य कार्य होता है। इसके अलावा समाज की एकता, समता, आचरण, व्यवहार व सूक्ष्म दृष्टि को बनाए रखने में भी समाचार-पत्र अहम भूमिका का निर्वाह करता है। वर्तमान परिवेश में समाचार-पत्र के बगैर मनुष्य जीवन की कल्पना ही नहीं कर सकता। समाचार-पत्र की अर्थ, वित्त व नौकरी-पेशों की खबरों पर करोड़ों लोगों का भविष्य व व्यवसाय टिका हुआ है। प्राचीन समय में जिन सूचनाओं व जानकारियों को हम महीनों बाद पाते थे, अब उनको कुछ ही क्षणों में समाचार-पत्रों के माध्यम से प्राप्त कर लेते हैं।

समाचार-पत्र की परिभाषा–इस संबंध में अनेक मत और परिभाषाएं हो सकती हैं, पर संक्षेप में समाचार-पत्र को इस प्रकार पारिभाषित किया जा सकता है- "वह लिखित सामग्री, जो निर्धारित समय पर प्रकाशित होकर सार्वजनिक रूप से जनसामान्य को दुनिया या देश की हलचलों, घटनाओं व सरकार से लेकर जनता तक की खबर पहुंचाती है, समाचार-पत्र कहलाती है।"

समाचार-पत्र की शुरुआत- समाचारों के प्रसार के लिए समाचार-पत्रों के वितरण करने की कोई निश्चित तिथि तो इतिहास में वर्णित नहीं है, किंतु ज्यादातर विद्वान इस बात से सहमत हैं कि दुनिया में समाचार-पत्रों का चलन पुनर्जागरण काल से हुआ। जैसे–जैसे शहरों का विकास हुआ और यूरोप में व्यापार का फैलाव हुआ, वैसे-वैसे वहां के व्यापारियों को यह जानने की आवश्यकता महसूस होने लगी कि दुनिया के सुदूर स्थानों पर क्या हो रहा है। प्राचीन समय में वहां के व्यापारी यात्रियों के माध्यम से अपने ग्राहकों का 'समाचार चौपन्ने' (News Pamphlets) भिजवाते थे। ये समाचार चौपन्ने अनियतकालीन थे और कभी-कभी ही ग्राहकों तक पहुंचते थे। सन् 1622 में लन्दन से सर्वप्रथम समाचार-पत्र का उदय हुआ। इस अवधि में वहां लगभग एक दर्जन मुद्रक थे। प्रारंभ में लन्दन से विदेशी समाचारों से ही युक्त साप्ताहिक पत्रों का प्रचलन आरम्भ हुआ। सन् 1702 में लंदन का पहला दैनिक 'डेली करंट' अस्तित्त्व में आया। सन् 1815 में लंदन का ही 'दि टाइम्स ऑफ लंदन', जिसकी लगभग 5,000 प्रतियां प्रतिदिन छपती थीं, पूरी दुनिया में अद्वितीय था। लंदन के पश्चात अमेरिका और अन्य देशों में भी समाचार-पत्र छपने लगे। जैसे-जैसे अन्य देशों से समाचार-पत्र निकलने लगे, वैसे-वैसे समाचार-पत्रों की कीमत भी कम होने लगी तथा उन पर सरकार का अंकुश भी कम होता गया। 19वीं शताब्दी के मध्य में 'प्रेस' से टैक्स हटा लिए गए। जनसामान्य तक भी पत्रों का प्रचार प्रसार होने लगा।

भारत में प्रेस और समाचार-पत्र- भारत में प्रेस अंग्रेजों के आगमन के पश्चात आई। इसकी शुरुआत सर्वप्रथम पुरानी राजधानी कलकत्ता से हुई। कलकत्ता के उपनगर श्रीरामपुर में धर्म प्रचार के उद्देश्य से मुद्रणालय खोला गया और पहला समाचार-पत्र 'बंगाल गजेट या कलकत्ता जर्नल एडवरटाइजर' था जोकि अंग्रेजी भाषा का था। यह 29

टिप्पणी

जनवरी, सन् 1780 को प्रकाशित हुआ। इसके संपादक थे जेम्स आगस्टस हिकी। इसके पश्चात कलकत्ता से ही 'इंडियन वर्ल्ड' और 'बंगाल जर्नल' पत्र भी प्रकाशित हुए।

हिंदी समाचार-पत्रों का श्रीगणेश- अंग्रेजी पत्रकारिता के श्रीगणेश की तरह ही हिंदी पत्रकारिता का उदय भी कलकत्ता से हुआ। 30 मई, सन् 1826 को सर्वप्रथम 'उदंत मार्तंड' नामक साप्ताहिक समाचार-पत्र कलकत्ता की कोलूटीला जगह से प्रकाशित होना शुरू हुआ। इस पत्र के संपादक थे पं. युगलकिशोर शुक्ल। इसके पश्चात शुक्लजी ने सन् 1850 में 'सामदंड मार्तंड' नामक पत्र भी निकाला। हिंदी के पत्रों से पूर्व सन् 1820 में भवानीकरण बनर्जी के द्वारा बंगला भाषा में 'संवाद कौमुदी' नाम का एक पत्र निकाला गया। इसी समयावधि में फारसी पत्र 'मिरात-उल-अखबार' भी निकला।

हिंदी भाषी क्षेत्र से पहला हिंदी समाचार-पत्र 'बनारस अखबार' निकला। इसके संपादक थे मराठी भाषी गोविंद रघुनाथ। यह एक दैनिक समाचार-पत्र था। इसके पश्चात इंदौर से 'मालवा अखबार', आगरा से 'बुद्धिप्रकाश' बनारस से 'सुधाकर' आदि समाचार-पत्रों के अलावा देश भर के विभिन्न स्थानों से सैकड़ों पत्रों की शुरुआत होने लगी।

भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में भी प्रेस की महती भूमिका रही। साहित्यिक और राजनीतिक पत्रकारिता उस समय अलग-अलग मार्गों पर चलने लगी थी। 'प्रताप', 'कर्मवीर', 'वीणा', 'चांद', 'माधुरी', 'मतवाला', 'सुधा', 'जागरण', 'हंस', 'विशाल भारत', 'हिंदू पंच' आदि पत्र-पत्रिकाएं जनता में साहित्यिक चेतना और गांधीवादी विचारधारा प्रसारित करने में अग्रणी रहीं। इस समय के दैनिक पत्रों में 'आज', 'भारत', 'स्वतंत्र' और 'आर्यावर्त' की भी भूमिका सराहनीय रही।

आज हमारे देश में अनेक दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक व मासिक समाचार-पत्र निकल रहे हैं। सभी का यहां उल्लेख भी नहीं किया जा सकता है। विश्व के सबसे बड़े लोकतांत्रिक देश भारत में समाचार-पत्रों की भूमिका बड़ी ही निर्णायक है। आज समाचार-पत्र आम जनता के बीच की महती आवश्यकता बन गए हैं। मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में समाचार-पत्र (प्रेस) अपना रंग बरकरार रखे हुए हैं। वर्तमान समय में प्रेस सरकारी नीतियों और हलचलों पर जितना ध्यान देता है, आम जनता से भी उसे उसी तरह सरोकार है। भारत में 'प्रेस' को लोकतंत्र का चौथा स्तंभ कहा जाता है। प्रेस के संदर्भ में प्रसिद्ध पत्रकार बी. के. नेहरू का यह कथन दृष्टव्य है- "सरकार किसी भी तरीके से बनी हो, उसमें प्रेस की भूमिका निःसंदेह बहुत महत्वपूर्ण है। तानाशाही सरकारें भी किसी न किसी तरह के लोक समर्थन के बिना नहीं चल पातीं।"

प्रेस के प्रभाव- हमारे देश में अभी तक शिक्षा का प्रसार नहीं हो पाया है। इस कारण भी प्रेस का महत्व बरकरार है। 'प्रेस' जो छापता है उसका लिखित सबूत होता है। रेडियो या टी.वी. पर प्रसारित खबर का कोई प्रमाण सुरक्षित नहीं रह पाता। कभी-कभी यह चिंता भी उत्पन्न होती है कि रेडियो तथा टी.वी. जैसे जनसंचार माध्यम आ जाने से 'प्रेस' पिछड़ गया है या भविष्य में 'प्रेस' पिछड़ जाएगा। लेकिन यह चिंता निर्मूल है। 'प्रेस' का प्रभाव और प्रसार कभी भी कम नहीं हुआ है और न ही कभी कम होगा। जिन स्थानों/घरों

में इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों की मौजूदगी रहती है, वहां भी समाचार-पत्रों का अस्तित्त्व बखूबी देखने को मिलता है।

टिप्पणी

मुद्रण के प्रकार निम्नलिखित हैं–

1. **लेटर प्रेस प्रिंटिंग**- लेटर प्रेस प्रिंटर तथा अक्षर मुद्रण को रिलीफ प्रिंटिंग, रेज्ड सरफेस प्रिंटिंग या टाइपो-ग्राफिक प्रिंटिंग भी कहते हैं। इसमें मुद्रण तल, उप मुद्रण तल से ऊपर उठा हुआ होता है। स्याही लगाने के उपरांत उस पर कागज रखकर मशीन द्वारा दबाव दिया जाता है इससे मुद्रण तल का प्रतिरूप कागज पर उठ जाता है।
2. **लिथोग्राफी तथा प्लेनोग्राफिक प्रिंटिंग**- जब मुद्रण तल और अमुद्रण तल दोनों एक समान अर्थात समतल रहते हैं तो इसे प्लेनोग्राफिक प्रिंटिंग कहा जाता है। इस विधि में मुद्रण एवं अमुद्रण दोनों तल रासायनिक क्रिया द्वारा अलग किए जाते हैं। ग्रीज तथा पानी एक-दूसरे से अलग रहते हैं। मुद्रण तल चिकनी स्याही का बना होता है तथा अ-मुद्रण तल पर चिकनाई नहीं होती। मुद्रण स्याही को अपेक्षित भाग की ओर खींचने तथा मुद्रण स्याही को शेष भागों से दूर करने का कार्य रासायनिक प्रक्रिया के द्वारा होता है। स्टोन के स्थान पर जस्ते अथवा एल्यूमीनियम की प्लेट का भी प्रयोग किया जाता है। मुद्रण तल पर इमेज उल्टी रहती है तो कागज पर उतरने के पश्चात सीधी हो जाती है इसमें कई रंगों की छपाई एक साथ हो जाती है।
3. **इंटेग्लियो प्रिंटिंग**- जब मुद्रण तल, मुद्रण तल से नीचे खुदा हुआ होता है और ऐसे खुदे हुए तल या निम्न तल से मुद्रण कार्य संपन्न होता है तब इसे इंटेग्लियो प्रिंटिंग कहते हैं। इसमें प्लेट पर खोदकर कार्य किया जाता है। समूचे प्लेट पर स्याही निचली स्थिति में मुद्रण तल में भर दी जाती है। इसके उपरांत समूचे प्लेट से स्याही पोंछी जाती है। गैर प्लेट पर कागज रखकर दबाव दिया जाता है जिससे खुदे हुए तल में भरी स्याही कागज पर उठ जाती है। इसे कापर प्लेट प्रिंटिंग, स्टील प्लेट प्रिंटिंग, रिसेस प्रिंटिंग आदि नामों से भी संबोधित किया जाता है।
4. **स्टेंसिल प्रिंटिंग**- स्टेंसिल को जाली फटा तल भी कह सकते हैं। इस मुद्रण प्रकार में मुद्रण तेज काटा जाता है। इसमें कागज की शीट लेकर उसमें छपने वाला क्षेत्र काटा जाता है। इसे स्टेंसिल कहते हैं। इस फटे भाग पर स्याही लगाई जाती है जो स्लिक स्क्रीन में से पार होकर कागज या अन्य पदार्थ पर छप जाती है।
5. **जिरोग्राफी या शुष्क मुद्रण**- इस मुद्रण विधि में किसी भी अधातु प्लेट पर मुद्रण किए जाने वाला चित्र या अक्षर धनात्मक चार्ज्ड किया जाता है। उस पर ऋणात्मक चार्ज्ड पाउडर छिड़का जाता है। यह पाउडर वस्तु से चिपक जाता है फिर इसे पोंछ दिया जाता है और वस्तु का प्रतिरूप कागज पर छप जाता है।

टिप्पणी

6. **फोटोग्राफी प्रिंटिंग**- इसमें निगेटिव फिल्म मुद्रण क्षेत्र होता है। इसमें कागज पर प्रकाश किरणों को छोड़कर मुद्रण कार्य संपन्न किया जाता है।
7. **ग्रेवियोर मुद्रण**- यह लेटर प्रेस पद्धति के ठीक विपरीत है। जहां लेटर प्रेस में उभरे हुऐ अक्षर होते हैं, वहीं ग्रेवियोर में नीचे की सतह की तरफ दबे हुए होते हैं। इन नीचे दबे हुए भागों में ज्यादा स्याही भरी जाती है। सन् 1907 से पहले तक यह विधि गोपनीय थी फिर सन् 1910 में एक बेब रोटरी लेटर प्रेस मशीन में ग्रेवियार सिलिंडर की सहायता से द साउथएंड स्टेंडर्ड नामक अखबार में कुछ चित्र छपे। इसमें एक सिलिंडर होता है जिस पर सामान्य सतह से नीचे की तरफ मुद्रण सतह होती है और जब यह स्याही जो काफी पतली होती है इस पात्र में घूमती है तो यह स्याही दबे हुए भागों में प्रवेश करती है। फिर इस स्याही को ब्लेड की सहायता से साफ कर दिया जाता है और यह फिर पात्र से बाहर निकाल दी जाती है। इसके बाद इसमें गर्म हवा को प्रवाहित किया जाता है ताकि स्याही सूख सके। ये मशीनें आजकल प्लास्टिक सतह पर मुद्रण के लिए प्रयोग में लाई जाती हैं।

2. श्रव्य माध्यम

इलेक्ट्रानिक माध्यम में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका श्रव्य संचार माध्यम की है मुद्रित माध्यमों के बाद आधुनिक संचार माध्यमों में श्रव्य माध्यम के रूप में रेडियो का बहुत महत्व है। रेडियो पर बहुत सारे कार्यक्रम प्रसारित होते हैं। रेडियो का माध्यम ध्वनि तरंगों से जुड़ा है जिसमें समय और दूरी की कोई सीमा नहीं होती यह एक स्थान से दूसरे स्थान पर आसानी से पहुंच जाता है रेडियो को बिना कागज का ऐसा समाचार-पत्र कहा गया है जिसमें दूरी का आभास नहीं होता।

रेडियो का प्रारंभिक विकास- रेडियो का आविष्कार 19वीं शताब्दी में हुआ। वैसे रेडियो की कहानी सन् 1815 से ही शुरु हो जाती है। इस वर्ष इटली में एक इंजीनियर गुग्लियो मार्कोनी ने रेडियो टेलीग्राफी के जरिए पहला संदेश प्रसारित किया। रेडियो पर मनुष्य की आवाज पहली बार सन् 1906 में सुनाई दी। सर्वप्रथम सन् 1916 में सार्वजनिक तौर पर संयुक्त राष्ट्र में राष्ट्रपति चुनाव के परिणाम की रिपोर्ट रेडियो पर प्रसारित की गई। सन् 1920 के पश्चात तो अमेरिका और ब्रिटेन के अलावा विश्व के अन्य कई देशों में भी रेडियो ने धूम मचा दी।

भारत में रेडियो- भारत में रेडियो प्रसारण का इतिहास सन् 1926 से शुरु होता है। तत्कालीन समय में कलकत्ता, बंबई तथा मद्रास में व्यक्तिगत रेडियो क्लब स्थापित किए गए थे। इन क्लबों के व्यावसायियों ने एक प्रसारण कंपनी का गठन कर रेडियो की निजी प्रसारण सेवा का प्रारंभ किया था। सन् 1926 में ही सरकार ने इस कंपनी को देश में निजी प्रसारण केंद्र स्थापित करने के लिए लाईसेंस प्रदान किया। इस कम्पनी की ओर से रेडियो का पहला प्रसारण 23 जुलाई सन् 1927 को बंबई से हुआ। इसे प्रसारित करने वाली कंपनी का नाम था 'इंडिया ब्रॉडकास्टिंग कंपनी'। उस समय वायसराय लॉर्ड इरविन का कार्यकाल था। कलकत्ता केंद्र का उदघाटन 'बंगला समाचार बुलेटिन' के साथ 26

अगस्त सन् 1927 को हुआ। इस प्रकार प्रादेशिक भाषाओं को सर्वप्रथम रेडियो पर प्रसारित होने का श्रेय प्राप्त है। कुछ ही समय पश्चात 'इंडिया ब्रॉडकॉस्टिंग कंपनी' घाटे के कारण बंद हो गई। इसी अवधि में सन् 1930 में भारत सरकार ने प्रसारण सेवा का प्रबंध अपने अधिकार में ले लिया। तभी से 'इंडियन ब्रॉडकॉस्टिंग सर्विस' के नाम से एक नये सरकारी उपक्रम के तहत रेडियो के बंबई और कलकत्ता केंद्र कार्य करने लगे। अब इस उपक्रम का नाम 'इंडियन स्टेट ब्रॉडकॉस्टिंग सर्विस' (आई.एस.बी.एस.) हो गया। इस सर्विस के प्रथम महा निदेशक थे लियोनेल फील्डेन। यह रेडियो उपक्रम आगे कार्य करता रहा और बाद में इसका नाम 'ऑल इंडिया रेडियो' हो गया। सन् 1936 में रेडियो प्रसारण सेवा का नाम 'ऑल इडिंया रेडियो' पड़ा।

सन् 1935 में तत्कालीन देशी रियासत मैसूर में एक स्वतंत्र रेडियो स्टेशन की शुरुआत हुई। इस रियासत ने इस स्टेशन को 'आकाशवाणी' नाम दिया। देश की आजादी के पश्चात सन् 1957 में भारत सरकार ने इस संगठन का नाम 'आकाशवाणी' घोषित किया, जो मैसूर रियासत के रेडियो स्टेशन का नाम था। लेकिन 'आकाशवाणी' नाम का प्रयोग केवल हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के लिए ही हो रहा है। अंग्रेजी प्रसारणों और विदेशी सेवा के प्रसारणों में अभी भी 'ऑल इण्डिया रेडियो' नाम ही प्रसारित होता है।

स्वतंत्रता के पश्चात 'आकाशवाणी' या 'ऑल इंडिया रेडियो' का व्यापक प्रसार हुआ है। सन् 1947 में जहां पूरे देश में मात्र 6 प्रसारण केंद्र, एक दर्जन ट्रांसमीटर और मात्र दो-ढाई लाख रेडियो सेट थे, वहीं आज हमारे पास 100 से अधिक रेडियो स्टेशन हैं, जो देश के तीन-चौथाई से अधिक भौगोलिक क्षेत्र तथा 90 प्रतिशत के लगभग जनसंख्या को अपनी प्रसारण सीमा में लिए हुए हैं। आज देश-भर में तीन करोड़ से भी अधिक रेडियो सेट घरों में बज रहे हैं।

रेडियो प्रसारण- भारत में ही नही दुनिया के प्राय: सभी देशों में रेडियो प्रसारण सेवा स्थिति में आशातीत प्रगति हुई है और इस जनमाध्यम को एक व्यापक समाज रुचिपूर्वक अपना चुका है। रेडियो की लोकप्रियता का सबसे बड़ा प्रमाण है कि इस जनमाध्यम की क्षमता के कारण दुनिया-भर में रेडियो सेटों की संख्या सन् 1950 से सन् 1960 के बीच चार गुना बढ़ चुकी थी। इसी प्रकार सन् 1960 से सन् 1975 के बीच प्रति हजार जनसंख्या के पीछे रेडियो सेटों की संख्या में 95 प्रतिशत की वृद्धि हुई। नए-नए देशों में रेडियो स्टेशनों की स्थापना और उनका विस्तार हुआ। सन् 1973 में 187 देशों में किए गए सर्वेक्षण के अनुसार केवल तीन देशों में कोई रेडियो स्टेशन नहीं था। माना जाता है कि विश्व के हर चौथे व्यक्ति को रेडियो प्रसारण सुनने की सुविधा उपलब्ध है।

विदेश प्रसारण सेवा- रेडियो के व्यापक प्रभाव को देखते हुए दुनिया के कई देशों ने अपनी विदेश प्रसारण सेवा शुरू की है। इनमें अमेरिका तथा पूर्व सोवियत संघ प्रमुख हैं। विदेश प्रसारण सेवा में ब्रिटेन की बी. बी. सी (ब्रिटिश ब्रॉडकॉस्टिग कॉरपोरेशन) अभी तक अग्रणी बनी हुई है। यह लन्दन से एक साथ विश्व के 22 देशों में रेडियो कार्यक्रम प्रसारित करती है। इसकी क्षमता भी अत्यधिक है। भारत ने भी विदेश प्रसारण सेवा की शुरुआत की है, लेकिन इसकी क्षमता कम है। एक अध्ययन के अनुसार सन् 1978 में अमेरिका और पूर्व सोवियत संघ क्रमश: 1,813 और 2,010 घंटे प्रतिवर्ष प्रसारण विदेशी

श्रोताओं के लिए करते थे। चीन द्वारा प्रतिवर्ष 1,400 घण्टे के विदेशी कार्यक्रम प्रसारित किए जाते थे, जबकि पश्चिमी जर्मनी, ब्रिटेन, उत्तरी कोरिया, अल्बानिया और मिस्र प्रतिवर्ष मात्र 500 घंटे से अधिक के कार्यक्रम प्रसारित करते थे। इसके अलावा 26 देश 100 घंटे से अधिक के कार्यक्रम प्रसारित करते थे। कुल मिलाकर 80 से अधिक देश अंतर्राष्ट्रीय प्रसारण के क्षेत्र में सक्रिय थे। इनकी संख्या वर्तमान में और भी बढ़ी है।

भारत में रेडियो प्रसारण- अन्य देशों में रेडियो प्रसारण के समय और गुणवत्ता में तेजी से सुधार जारी हैं। भारत भी इस मामले में किसी अन्य देश से कम नहीं है। सन् 1939-40 तक ऑल इंडिया रेडियो 27 बुलेटिन प्रसारित करने लगा था।

वर्तमान समय में आकाशवाणी से 24 घंटे में अनगिनत समाचार बुलेटिन प्रसारित किए जाते हैं। एक छोटा समाचार बुलेटिन पांच मिनट का और बड़ा समाचार बुलेटिन 15 मिनट का होता है। सामान्य समाचार बुलेटिनों के अलावा समाचार-पत्रों से टिप्पणियां, करंट अफेयर्स, लोकरुचि के समाचार जैसे बुलेटिन भी प्रसारित होते हैं। इसके अलावा मार्निंग न्यूज, साप्ताहिकी, संसद की कार्यवाही, न्यूज रील, चुनाव और उसके परिणामों को जन-जन तक पहुंचाने के लिए विशेष समाचार बुलेटिन आदि कार्यक्रम भी समय-समय पर प्रसारित किए जाते हैं।

प्रादेशिक प्रसारण- राष्ट्रीय प्रसारणों के साथ ही आकाशवाणी ने प्रादेशिक सेवाओं को भी महत्व दिया है। विभिन्न प्रदेशों की राजधानियों एवं प्रमुख नगरों में आकाशवाणी के 42 एकांश हैं जहां से 131 समाचार बुलेटिन प्रसारित होते हैं। ये बुलेटिन उनके अतिरिक्त हैं जो दिल्ली से प्रादेशिक भाषाओं में ब्रॉडकास्ट किए जाते हैं। दिल्ली से प्रसारित होने वाले प्रादेशिक भाषाओं के बुलेटिन असमिया, नेपाली, कन्नड़, कश्मीरी, डोगरी, बंगला, मलयालम, उड़िया, तमिल, तेलुगु, पंजाबी, मराठी, गुजराती, सिंधी, उर्दू तथा संस्कृत भाषाओं के होते हैं। आकाशवाणी के सूचनापरक कार्यक्रमों के अलावा बीसियों तरह के अन्य कार्यक्रम भी समय-समय पर रेडियो स्टेशनों के द्वारा प्रसारित किए जाते हैं।

वर्तमान में रेडियो पर प्रसारित की जा रही नई विधाओं में फीचर, प्रहसन, वार्ता, साक्षात्कार, डॉक्यूमेंटरी, विचारगोष्ठी, आंखों देखा हाल, नाटक, कहानी, काव्य पाठ, कवि सम्मेलन, विशेष प्रसारण, न्यूज रील, रेडियो रिपोर्ट, बच्चों का कार्यक्रम, महिला कार्यक्रम, युवा कार्यक्रम, कृषकों के लिए, खेल जगत, पर्व और जयंतियों के कार्यक्रम, विज्ञान कार्यक्रम, स्वास्थ्य संबंधी कार्यक्रम, बुजुर्गों के लिए तथा परिवार कल्याण के कार्यक्रम आदि भी सम्मिलित हैं।

रेडियो का महत्व- जनसंचार माध्यमों में रेडियो का अपना खासा महत्व है। यह साधारण व्यक्ति की पहुंच वाला माध्यम है। निर्धन से लेकर रईस तक सभी व्यक्ति इस माध्यम का प्रयोग आसानी से कर सकते हैं क्योंकि इसकी कीमत बहुत कम होती है। घर के बेडरूम से लेकर खेतों, सड़कों और पहाड़ों की दुर्गम चोटियों तक श्रोता हर समय अपनी जेब में रखे रेडियो के श्रवण का लुत्फ उठा सकते हैं। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए ज्वेरीमल पारीख ने ठीक ही लिखा है- "रेडियो निरक्षरों के लिए भी एक वरदान है,

जिसके द्वारा वे सिर्फ सुनकर अधिक से अधिक सूचना, ज्ञान और मनोरंजन हासिल कर लेते हैं। कम कीमत और अधिक से अधिक जनता के लिए सुलभ होने के कारण भी, टी. वी. के व्यापक प्रसार के बावजूद तीसरी दुनिया के देशों में रेडियो का अपना महत्व आज भी कायम है।"

3. दृश्य-श्रव्य संचार माध्यम

(i) **टेलीविजन**- 'टेलीविजन' शब्द 'दूरदर्शन' शब्द का पर्याय है। 'टेलीविजन' को हिंदी में 'दूरदर्शन' लिखना उचित है। 'टेलीविजन' शब्द ग्रीक तथा लैटिन भाषा के दो शब्दों से मिलकर बना हैं। इनमें 'टेली' ग्रीक शब्द है, जिसका शाब्दिक अर्थ है- दूरी पर जबकि 'विजन' लैटिन शब्द है, जिसका आशय है- 'देखना'। इस प्रकार 'दूरदर्शन' का सामान्य अर्थ हुआ- 'दूर से देखना' या 'दूर के दर्शन'। कुछ लोग टेलीविजन के लिए 'रेडियो-वीक्षण' शब्द का प्रयोग करने का भी सुझाव देते हैं, लेकिन ज्यादा सटीक शब्द 'दूरदर्शन' ही है।

जनसंचार माध्यमों में फिल्म और टेलीविजन की लोकप्रियता सबसे अधिक है। बल्कि फिल्म माध्यम भी अब टेलीविजन के साथ सांठ-गांठ करके दुनिया का चेहरा बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। सच तो यह है कि इन इलेक्ट्रॉनिक संचार माध्यमों ने जहां मनुष्य को घर बैठे सारी दुनिया से जोड़ दिया है, वहीं वह शिक्षित होते हुए भी अशिक्षा के अंधकार की ओर लौट रहा है। टी. वी. ने हमारी पढ़ने की आदत बिगाड़ दी है और कम्प्यूटर ने हमारी गणित की क्षमता को बांध दिया है। यह एक कटु सत्य है इसके बावजूद फिल्म, दूरदर्शन (टी. वी.) और कम्प्यूटर की उपयोगिता एवं लोकप्रियता में कोई कमी नहीं आई है।

उपयोगिता- जहां तक पत्रकारिता के संदर्भ में इन माध्यमों की उपयोगिता का सवाल है, तो फिल्म की अपेक्षा दूरदर्शन (टी. वी.) बहुत महत्वपूर्ण हो चला है। इसने पत्रकारिता को पूरे विश्व में एक नया आयाम दिया है। इसका सबसे अच्छा प्रमाण है अभी कुछ वर्ष पूर्व हुए खाड़ी युद्ध का सी.एन.एन. चैनल द्वारा उपग्रह के जरिए पूरे विश्व में जीवंत (सीधा) प्रसारण। इस प्रसारण से सारी दुनिया ने अपने शयनकक्ष या ड्राइंगरूम में बैठकर उस युद्ध के सजीव दृश्य देखे थे। दूरदर्शन से पूर्व श्रोताओं को केवल रेडियो की आवाज ही सुनाई देती थी, लेकिन टी. वी. से आवाज के साथ-साथ चित्र भी देखने को मिले। इससे दूरदर्शन ने लोगों को चित्र दिखाकर उनका विश्वास ही नहीं जीता बल्कि दर्शकों के सामने मनोरंजन का भरपूर खजाना भी परोस दिया।

टेलीविजन का विकास- दुनिया में टेलीविजन यानी दूरदर्शन का आविष्कार बहुत पुराना नहीं है। तस्वीरों को प्रसारित करने की युक्ति सन् 1890 में ही ब्रिटेन में ज्ञात हो गई थी। आगे चलकर सन् 1930 में टेलीविजन ब्रिटेन में एक लोकप्रिय घरेलू शब्द बन चुका था। संसार का पहला सार्वजनिक नियमित प्रसारण सन् 1936 में जे. एल. बेयर्ड ने बनाया और उसका प्रदर्शन किया। इसके दो वर्ष पश्चात 'बेल टेलीफोन कंपनी' में काम करने वाले एक इंजीनियर सी. एफ. जेकिंस ने पहली बार अमेरिका में प्रसारित तस्वीर दिखाई। वे आरंभिक टेलीविजन यांत्रिक थे, इलेक्ट्रॉनिक नहीं।

टिप्पणी

टेलीविजन के विकास का दूसरा चरण सन् 1930 में शुरू हुआ। इस काल में यांत्रिक प्रणाली का स्थान इलेक्ट्रॉनिक प्रणाली ने ले लिया। नए इलेक्ट्रॉनिक कैमरे एवं रिसीविंग ट्यूब ने न केवल पुरानी यांत्रिक समस्याओं को दूर किया, अपितु तस्वीर की गुणवत्ता को भी बढ़ा दिया। इस प्रकार निरंतर सुधार प्रक्रिया में चल रहे टेलीविजन (आवाज वाले) का प्रथम सार्वजनिक प्रसारण ब्रिटेन में सन् 1930 में हुआ। उस समय ब्रिटेन में मात्र 300 व्यक्तिगत रिसीवर थे, जो बाद में सन् 1930 से सन् 1938 के बीच बढ़कर 4000 तक हो गए फ्रांस मे नियमित प्रसारण सन् 1938 में शुरु हुआ। अमेरिका में नियमित प्रसारण सन् 1941 में शुरू हुआ। सन् 1955 में 'यूरोविजन' नेटवर्क विधिवत् देखा गया, जिसमें ब्रिटेन, फ्रांस, इटली, डेनमार्क, स्विट्जरलैंड, पश्चिम जर्मनी, बेल्जियम तथा नीदरलैंड को जोड़ा गया। सन् 1962 में सेटेलाइट के जरिए पहले जीवंत (लाइव) कार्यक्रम का आदान-प्रदान यूरोप तथा अमेरिका के बीच शुरू हुआ।

भारत में टेलीविजन और इसके कार्यक्रम- भारत में प्रायोगिक टी.वी. केंद्र का उद्घाटन 15 सितम्बर, सन् 1959 को देश के तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद के हाथों हुआ। उन दिनों भारत में यूनेस्को का सम्मेलन आयोजित हुआ था। इस सम्मेलन का टेलीविजन से प्रसारण करने के लिए यूनेस्को ने भारत को 20000 डॉलर का अनुदान दिया था। उस समय संयुक्त राज्य अमेरिका की सरकार व यूनेस्को के सहयोग से आकाशवाणी भवन में एक लघु टेलीविजन स्टूडियो की स्थापना की गई। सन् 1961 में उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में एक नियमित 'स्कूल टी.वी. कार्यक्रम' की शुरुआत की गई। उस समय टी.वी. आम आदमी से बहुत दूर था। सन् 1965 में जनता की मांग और अनुकूल परिणामों से उत्साहित होकर सरकार इस बात पर सहमत हुई कि शिक्षा के साथ-साथ मनोरंजन तथा सूचना कार्यक्रम शुरू किए जाएं। इस प्रकार धीरे-धीरे टेलीविजन के कार्यक्रम दिन-प्रतिदिन रोचक होते चले गए

भारत में सबसे पहले टेलीविजन से समाचार बुलेटिन 15 अगस्त सन् 1965 को प्रसारित हुआ। 1 अप्रैल, सन् 1976 से देश में टेलीविजन 'दूरदर्शन' नाम से आकाशवाणी से पृथक होकर स्वतंत्र अस्तित्त्व में आ गया है। वर्तमान में इसके 8 चैनल हैं। दूरदर्शन के अलावा सेटेलाइट के जरिए स्टार टी.वी., जी.टी.वी., एम.टी.वी., वी.टी.वी., बी.बी. सी, एल.टी.वी., जी सिनेमा, पी. टी.वी., स्टार मूवीज, सोनी टी.वी., ए.टी.एन. आदि सैकड़ों प्रकार के टी.वी. नेटवर्क का जाल भारत और दुनिया के अन्य देशों में तेजी से फैल रहा है।

आज इन टी.वी. चैनलों के प्रसार के चलते देश भर के दर्शक अपने घरों को संगीत, फिल्म, समाचार, धारावाहिक, नाटक, ज्ञान वर्धक वृत्तचित्रों आदि से गुंजा रहे हैं। रंग बिरंगे देशी विदेशी दृश्यों, बिंब और संगीत लहरों से बहुत बड़ी जनसंख्या अपने आप को आनंदित कर चुकी है। आजकल दूरदर्शन के प्रमुख कार्यक्रमों में समाचार, वार्त्ता, साक्षात्कार, रिपोर्ट, नाटक, परिचर्चा, रूपक या फीचर, कमेंटरी, खेल, वृत्तचित्र, आखों देखा प्रसारण, कवि सम्मेलन, मुशायरा, यू.जी.सी. व इग्नू के कार्यक्रम प्रथम वर्ग के कार्यक्रमों के अंतर्गत आते हैं। द्वितीय वर्ग के कार्यक्रमों में फीचर फिल्म, फिल्मी गीत व संगीत, लोकगीत व संगीत,

पारंपरिक संगीत, सुगम संगीत, शास्त्रीय संगीत, गायन, वाद्य संगीत आदि समिलित हैं, जो 24 घंटे दूरदर्शन के विभिन्न चैनलों से प्रसारित होते रहते हैं।

टिप्पणी

(ii) **फिल्म**

फिल्म भी जनसंचार का एक प्रमुख माध्यम है। फिल्मों का असर जनसाधारण पर ही नहीं, बच्चों व महिलाओं (अनपढ़) पर भी बहुत तेजी से होता है। आजकल फिल्म का आशय वीडियो फिल्म, सी.डी. फिल्म आदि से भी लगाया जाता है। जिनका प्रयोग सरकारी संगठन ही नहीं, गैर-सरकारी संगठन भी अपने प्रचार-प्रसार के लिए कर रहे हैं। इतना ही नहीं, व्यक्तिगत तौर पर भी फिल्म का प्रयोग बढ़ गया है।

यह देश के नागरिकों का दुर्भाग्य ही है कि फिल्म का ज्यादातर प्रयोग मनोरंजन के लिए ही हो रहा है। फिर भी, अब शिक्षा, साहित्य, देशभक्ति, संगीत आदि समस्त विषयों पर फिल्म निर्माण जारी है।

भारत में फिल्म निर्माण- देश में सर्वप्रथम सन् 1913 में दादा साहेब फाल्के ने पहली बार मूक फिल्म 'राजा हरिश्चंद्र' का निर्माण किया। देश की पहली बोलती फिल्म 'आलमआरा' थी। सन् 1959 में गुरुदत्त द्वारा बनी 'कागज के फूल' पहली सिनेमास्कोप फिल्म थी। प्रारम्भ में भले ही 'बॉलीवुड' की फिल्में 'हॉलीवुड' की तर्ज पर बनीं, पर वर्तमान दौर में भारतीय फिल्म उद्योग तेज गति से फल-फूल रहा है। प्रतिवर्ष यहां विभिन्न भाषाओं की 800 से अधिक फिल्में बन रही हैं। देश की एक अरब से अधिक की आबादी का मनोरंजन करने में फिल्मों का व्यापक योगदान है। खासतौर से हिंदी भाषी राज्यों, जैसे दिल्ली, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश, बिहार, हिमाचल प्रदेश आदि में तो हिंदी फिल्मों का सामान्य जनजीवन पर व्यापक असर होता है।

(iii) **वीडियो टेक्स्ट**

वीडियो टेक्स्ट भी संचार का एक अत्याधुनिक साधन है। सूचनाओं के इलेक्ट्रॉनिक भंडारण की पद्धति, इलेक्ट्रॉनिक डाटा बेस के नाम से जानी जाती है। इलेक्ट्रॉनिक डाटा बेस में कई प्रणालियां शामिल की जा सकती हैं। वीडियो टेक्स्ट, केबल टेक्स्ट, ऑन लाइन, डाटा बेसेज, इलेक्ट्रॉनिक बुलेटिन बोर्ड, टेली टेक्स्ट, ऑडियो टेक्स्ट जैसी प्रणालियां इलेक्ट्रॉनिक डाटा बेस के ही अंग हैं।

वीडियो टेक्स्ट प्रणाली; वीडियो और टेक्स्ट (पाठ) से मिलकर बनी है। इसमें मुद्रित सूचना का पाठ टेलीविजन के पर्दे पर पढ़ा जा सकता है। इस प्रणाली में एक मेनफ्रेम कम्प्यूटर रहता है जिसमें मनचाही सूचनाएं एकत्र रहती हैं।

वीडियो टेक्स्ट प्रणाली में दुतरफा संवाद की सुविधा रहती है। इलेक्ट्रॉनिक संवाद प्रेषण पद्धति से उपभोक्ता अपने संदेश टाइप करके दूसरे उपभोक्ता तक आसानी से भेज सकते हैं।

'वीडियो टेक्स्ट सेवा' चलाने वालों में 'कंपूसर्व इंफार्मेशन सर्विसेज' और 'प्रोडिजी' अग्रणी हैं। इनके 6 लाख से अधिक उपभोक्ता हैं।

(iv) इंटरनेट

इंटरनेट दुनियाभर में अलग-अलग जगहों पर लगे कम्प्यूटरों को जोड़कर सूचना की आवाजाही के लिए बनाई गई एक विशेष प्रणाली है। इसकी स्थापना अमेरिका में एक विशेष परियोजना के तहत हुई थी। उस समय संचार की इस सेवा का उद्देश्य था- परमाणु हमले की स्थिति में संचार का नेटवर्क बनाए रखना। लेकिन जल्दी ही यह सुविधा रक्षा शोध केंद्रों से निकलकर व्यावसायिक क्षेत्रों मे पहुंच गई।

आज इंटरनेट पर कई सेवाएं उपलब्ध हैं; जैसे- ई-मेल (इलेक्ट्रॉनिक मेल) जिसके माध्यम से कोई भी सूचना, संदेश, पत्र, पता दुनिया के किसी भी कोने में तत्काल पहुंचाया जा सकता है। डब्ल्यू डब्ल्यू डब्ल्यू (वर्ल्ड वाइड वेब) डाटा बेस के द्वारा कोई भी उपभोक्ता इच्छित सूचना प्राप्त कर सकता है। शुरू-शुरू मे इंटरनेट पर केवल लिखित सामग्री उपलब्ध थी। लेकिन अब इस पर चित्र, ध्वनि, कार्टून आदि सभी प्रकार की सामग्री उपलब्ध हो जाती है। इसके अलावा इंटरनेट की अन्य सुविधाओं में 'होमपेज' है। इसमें कोई भी व्यक्ति, कंपनी या संस्था अपने बारे में विवरण देकर एक तरह से विज्ञापन कर सकती है। 'होमपेज' की जानकारी लेने को 'हिट' कहा जाता है। 'नेट' में सूचना भंडार, विश्वकोश, पुरानी-नई लोकप्रिय पुस्तकें, विशेष लेख, शोध-पत्र, अखबारों की कतरनें, पूरे अखबार व पत्रिकाएं, कोर्ट के फैसले आदि के विशाल सूचना भंडार में से कोई भी उपभोक्ता मनचाही सूचना ले सकता है। इसके अतिरिक्त खेल बुलेटिन तथा फाइल ट्रांसफर प्रोटोकॉल (एफ.टी.पी.) है जिसके जरिए हम दूर बैठे किसी व्यक्ति से जानकारी अपनी फाइल में ले सकते हैं और अपनी जानकारी दे सकते हैं यहां तक कि ऐतिहासिक महत्व के दस्तावेज, गीत, कविताएं, टी.वी. कार्यक्रमों के सार संक्षेप आदि भी हम अपनी फाइल में ले सकते हैं।

'इंटरनेट' को संक्षेप मे 'नेट' कहने का चलन भी हो गया है यह एक ऐसा विश्वव्यापी कम्प्यूटर नेटवर्क है, जिस पर दुनियाभर में फैले रहने के बावजूद किसी का नियंत्रण नहीं है। यह किसी कानून के दायरे में भी नहीं आता। 'इंटरनेट' से कोई भी व्यक्ति जानकारी ले सकता है और किसी भी प्रकार की सामग्री व जानकारी, अपना कोई पता या कोड देकर नेट पर छोड़ सकता है, जो कुछ ही क्षणों में दुनियाभर में फैले उसके चिरपरिचितों को कम्प्यूटर पर क्लिक करते ही उपलब्ध हो जाएगी। इंटरनेट का नकारात्मक पहलू यह है कि इसको निजी तौर पर इस्तेमाल करने वालों के नाम-पते का कोई रिकॉर्ड नहीं होता है। अत: किसने कब और क्या जानकारी किस उद्देश्य को लेकर नेट पर डाली, इसका पता लगाया जाना मुश्किल है। इस कारण ही आजकल 'इंटरनेट' के दुरुपयोग की घटनाएं दिन-प्रतिदिन बढ़ रही हैं।

बढ़ता प्रयोग- छापेखाने के आविष्कर्ता ने सन् 1455 में यह कभी नहीं सोचा होगा कि एक दिन उसकी मुद्रण मशीन मानव के अत्याधुनिक कम्प्यूटर से पिछड़ जाएगी। हमारे देश में भले ही समाचार-पत्रों के इंटरनेट पर प्रकाशित होने की अभी शुरुआत ही हो रही है, पर विकसित देशों मे काफी पहले से 'इलेक्ट्रॉनिक न्यूजपेपर' की शुरुआत हो चुकी है। डिजिटल टेक्नालॉजी की सहायता से 'इलेक्ट्रॉनिक समाचार-पत्र' अब घर-घर

टिप्पणी

पहुंचने लगे हैं। आज हमारे देश में अनेक समाचार-पत्र एवं पत्रिकाएं मुद्रण माध्यम (प्रेस) से प्रकाशित होने के साथ-साथ इंटरनेट पर भी उपलब्ध हैं। इस शृंखला में सर्वप्रथम 'दि हिंदू' और 'इंडिया टुडे' इस सेवा से जुडे, इसके बाद 'दि टाइम्स ऑफ इंडिया', 'दि इंडियन एक्सप्रेस', 'बिजनेस स्टैंडर्ड', 'आउटलुक', 'नवभारत टाइम्स', 'डेकन हेरल्ड', 'दि हिंदुस्तान टाइम्स', 'हिंदुस्तान', 'अमर उजाला', 'दैनिक जागरण', 'दैनिक भास्कर' आदि समाचार-पत्र भी इंटरनेट से जुड़ गए हैं। इंटरनेट पर उपलब्ध समाचार-पत्रों का मुख्य उद्देश्य यही होता है कि देश-विदेश में बैठे अपने पाठकों से संवाद स्थापित किया जा सके। इससे उनको विज्ञापन भी मिलता है।

देश में कुछ समाचार-पत्र केवल इंटरनेट पर ही प्रकाशित हो रहे हैं। इनमें 'तहलका डॉट काम' भी एक ऐसा प्रसारण है जो मात्र इंटरनेट पर किसी खास विषय पर जानकारी और रहस्य उजागर करता है।

इंटरनेट दुनिया भर में फैले करोड़ों कम्प्यूटरों का एक महाजाल है। इंटरनेट वास्तव में कोई संस्था अथवा यंत्र न होकर एक कार्य प्रणाली है। यह कम्प्यूटरों का विश्वव्यापी नेटवर्क है। यह जनसंचार का सबसे सशक्त माध्यम है। इसे साइबर माध्यम भी कहा जा सकता है। अनेक वेबसाइट बन रही हैं और इस समाचार माध्यम से एक क्रांतिकारी परिवर्तन हो रहा है। इसमें मुद्रित, श्रव्य और दृश्य-श्रव्य सभी माध्यमों का एक ही साथ प्रयोग होने लगा है। इंटरनेट के बारे में श्री एन.सी. पंत लिखते हैं, "इंटरनेट कार्य प्रणाली का संक्षिप्त नाम है। यहां भिन्न-भिन्न प्रकार की अनेक नेटवर्क प्रणालियां (जो लगभग 40 हजार से अधिक हैं) उपलब्ध हैं, जिनका लाभ इंटरनेट के माध्यम से आसानी से उठाया जा सकता है। यह एक ऐसी प्रौद्योगिकी है जिसमें करोड़ों कम्प्यूटर एक नेटवर्क से जुड़े होते हैं तथा यह डिजिटल स्रोत और रिसीवर को जोड़ने की प्रक्रिया है।'' आज दुनिया भर के शैक्षणिक संस्थान भी इंटरनेट से जुड़ते जा रहे हैं। आज हम कहीं से भी विश्व के किसी भी शैक्षणिक संस्थान के पुस्तकालयों का सदुपयोग कर सकते हैं। महत्वपूर्ण अंशों का प्रिंट आउट ले सकते हैं। इंटरनेट पर हजारों पन्ने खुले हैं। इन पन्नों पर उद्योग, व्यापार से लेकर पर्यावरण तक हर संभव विषय पर सूचना का आदान-प्रदान लगातार हो रहा है साथ ही इन पन्नों और विषयों में लगातार इजाफा होता जा रहा है। आधुनिक युग में मनुष्य के जीवन में इंटरनेट का महत्व तेजी से प्रगति के पथ पर अग्रसर है।

ब्रजमोहन गुप्त ने इलेक्ट्रॉनिक अखबार के विषय में अपने एक लेख में लिखा है कि "दरअसल इलेक्ट्रॉनिक समाचार-पत्र की कल्पना नई नहीं है। टेली-टेक्स्ट सेवा की तरह से इलेक्ट्रॉनिक समाचार-पत्र अद्यतन रूप में उपलब्ध होते रहते हैं। नेत्रहीनों के लिए निकलने वाले 'दि गार्जियन' का संस्करण भी इलेक्ट्रॉनिक पद्धति से प्रसारित होता है और अपने पाठकों को कम्प्यूटर की आवाज में जोर-जोर से पढ़कर सुनाया जाता है। कुछ मीडिया विशेषज्ञों का मानना है कि परंपरागत अखबार की तुलना में इलेक्ट्रॉनिक समाचार-पत्र काफी सस्ता होता है।"

टिप्पणी

एन.सी. पंत लिखते हैं-''वर्तमान युग में संचार माध्यम सबसे बड़ा माध्यम है जिसके द्वारा आज मानवीय संवेदनाएं एकदम एक कोने से दूसरे कोने में प्रकट हो जाती हैं और भावनाओं के इस समुद्र को उजागर करने में आज का सबसे बड़ा और सशक्त माध्यम दूरदर्शन है।''

पहले प्रेस, फिर रेडियो और फिर दूरदर्शन हर माध्यम की अपनी-अपनी सीमाएं होती हैं।

समाधान इन सीमाओं के अनुरूप पाठ्यक्रम एवं शिक्षण प्रबंध में है।

(ख) चुनौतियां एवं समाधान

अनादि काल से पृथ्वी के जन्म के साथ-साथ उसकी सबसे महत्वपूर्ण कला संचार रही है। संचार के विकास की अवधारणा के बारे में अगर हम अनुमान लगाएं तो इसके बारे में निश्चित प्रमाण मिलना मुश्किल ही नहीं लगभग नामुमकिन है। विकास हुआ, जन संपर्कों का दायरा बढ़ा उसे जनसंचार का रूप दिया गया। प्राचीन काल में जिस समय पर जैसा संचार उपक्रम विकसित हुआ उसी के माध्यम से जन समुदायों को संबोधित किया जाने लगा। धीरे-धीरे विकास और मनुष्य की सोच के अनुरूप गठित संचार माध्यमों से जन संचार किया जाने लगा। रेडियो, टेलीफोन, इंटरनेट, टी.वी. आदि सभी उपकरणों का संचार के लिए उपयोग किया जाने लगा। इन्हीं के समुदायों को आधुनिक नाम मीडिया से पुकारते हैं।

आज यह बताने की जरूरत नहीं है कि मीडिया की किसी भी देश की प्रगति में क्या भूमिका रहती है और इसी भूमिका की एक जड़ हमारे भारत देश में विद्यमान है। परंतु विकास के साथ-साथ हमारे भारत देश की कुछ महत्वपूर्ण पृष्ठभूमियों को भी ध्यान में रखा जाता है। इसी कारण आज मीडिया से जहां एक ओर जन समुदायों को सूचनाएं आसानी से उपलब्ध करायी जाती हैं वहीं मीडिया के कुछ सांस्कृतिक विरोधी पहलुओं पर आये दिन जन-आक्रोश देखने को मिल जाता है। जन संचार की प्रक्रिया में बहुत सी चुनौतियों का भी सामना करना पड़ता है।

यह बात अलग है कि आज औद्योगिक विकास एंव राष्ट्र के अंतर्राष्ट्रीय सामुदायिक विकास के लिए आई.टी. डेवलपमेंट (IT-Development) की महत्वपूर्ण भूमिका है। मीडिया के माध्यम से प्राप्त होनी वाली पलपल की सूचनाओं से हमें अपने व्यावसायिक, एवं निजी समझौतों एवं निर्णयों में आकस्मिक बदलाव के लिए भी पर्याप्त अवसर मिलते हैं। देश-विदेश में होने वाली प्रत्येक घटनाओं को हम प्रतिपल प्राप्त करते रहते हैं। परंतु सब आज व्यवसाय के पहलुओं के मद्देनजर जनता के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है और यह व्यवसाय का पहलू भी बहुत हद तक सही है क्योंकि अगर व्यवसाय ही नहीं होगा तो हम तक खबरें पहुंचाने के लिए कोई भी न्यूज चैनल शायद हमारे बीच ही न हो फिर संभवत: सरकार बजट का एक बड़ा भाग खर्च करके दूरदर्शन के माध्यम से हम तक खबरें पहुंचाए।

अब बात आती है व्यवसाय के साथ-साथ प्रत्येक मीडिया प्रबंधक की जो कि भारत की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखकर अपने कुछ व्यक्तिगत आदर्शों को अपनाकर

अथवा कुछ नियम बनाकर भारतीय संस्कृति पर प्रहार करने वाले कुछ विज्ञापनों एवं सूचनाओं आदि पर रोक लगाने अथवा उन्हें बंद करने के लिए अग्रसर हो।

टिप्पणी

आज प्रत्येक चैनल विज्ञापनों के आधार पर बाजार में नं. 1 और नं. 2 की श्रेणी पर विद्यमान है। क्योंकि जितना ज्यादा पैसा उन्हें मिलता है वे उतना ही माल परोसते हैं और लोगों को आशानुरूप अपनी ओर आकर्षित करते हैं। आज सकारात्मक समाचार को कम अहमियत देकर उसकी अपेक्षा नकारात्मक समाचार को प्राथमिकता देते हैं क्योंकि लोगों का रुझान हमेशा से ही नकारात्मक शक्ति से ज्यादा भरा रहता है। मनुष्य जन्म के साथ अपने 84 लाख योनियों के स्वभाव के कुछ अंशों को लेकर पृथ्वी पर जन्म लेता है जिसे संस्कारों को परिवेश के माध्यम से ठगने की बातों को अक्सर कई महापुरुषों द्वारा कहा जाता है कि सौ प्रतिशत सत्य है। उसी क्रम में अगर उसका विकास नकारात्मक परिवेश के बीच होगा तो परिस्थितिवश उसका चिंतन नकारात्मक और हिंसा वाला होगा। अत: हमें चाहिए कि उसको सकारात्मक परिवेश मिले जो कि आज के मीडिया परिवेश को देखते असंभव नहीं हो कम से कम बहुत मुश्किल तो जरूर मालूम होता है।

अगर हम भारत को वर्तमान मीडिया स्वरूप का केंद्र बिंदु मानकर अवलोकन करें तो मीडिया का वर्तमान स्वरूप हमारे भारत की छवि एवं उसके आशानुरूप आध्यात्मिक विकास के लिए घातक सिद्ध होता जा रहा है। किसी भी राष्ट्र की लंबी उम्र एवं विकास यात्रा का आधार उसका आध्यात्मिक विकास होता है। यही कारण है कि भारत एक मात्र आध्यात्मिक देश है जिसका इतिहास कई लाखों वर्ष पुराना है। बाकी सभी देश क्षणिक समय से खोजे गए हैं एवं शायद कुछ समय बाद आध्यात्मिक क्षितिज से लुप्त हो जाएंगे।

भारत के भविष्य की दिशा धारा में हमारा वर्तमान मीडिया के द्वारा किए गए कार्यों का अवलोकन सकारात्मक प्रतीत होने की स्थिति में नहीं है। उसका कारण, मर्डर, बलात्कार, लूट, आदि की घटनाओं को मुख्य बिंदु बनाकर लोगों के सामने प्रस्तुत किया जाता है जबकि आवश्यकता इस बात की है कि अच्छी और धर्मक्षेत्र संबंधी एवं आध्यात्मिक खबरों को मुख्य बिंदु बनाकर बाकी खबरों को द्वितीय प्राथमिकता देकर पहुंचाएं क्योंकि दोनों ही खबरें महत्वपूर्ण की श्रेणी में आती हैं लेकिन विभाजन का आधार सकारात्मक ऊर्जा देने वाला होना चाहिए।

उदाहरण के तौर पर प्रात: काल कोई अखबार में हमेशा नकारात्मक खबरें पढ़ता है तो उसका पूरा दिन लगभग समाज की वही घिसी-पिटी घटनाओं एवं कलह क्लेश के बीच बीतता है। धीरे-धीरे उसका दिमाग भी नकारात्मक की श्रेणी में आ जाता है, जबकि सकारात्मक खबरें पढ़कर पूरा दिन सकारात्मकता के साथ बीतता है।

वर्तमान में मीडिया का उद्देश्य केवल पैसा कमाना है लेकिन इसके विपरीत कुछ संशोधनों के साथ-साथ भारतीय पृष्ठभूमि को ध्यान में रखकर जनसमुदायों के बीच काम करें। जैसे अश्लील विज्ञापनों को न दिखाएं। अगर अति आवश्यक विज्ञापन है तो उसका एक समय सुनिश्चित हो ताकि बाकी समय अपने परिवार के साथ टी.वी. देखने में किसी को भी असुविधा (आपत्ति) महसूस न हो व नकारात्मक खबरों को प्राथमिकता न देकर सकारात्मक खबरों को प्रसारित करें।

टिप्पणी

अब बात आती है कि सकारात्मक खबरों में क्या करें? संसार में होने वाली प्रत्येक अच्छी घटना को मुख्य खबर बनाएं। समाज में जहां जागरूकता की आवश्यकता है वहां जागरूकता फैलाएं। चाहे जनता के लिए अपील सरकार से हो या सरकार के हित के लिए अपील जनता से हो। उदाहरण के लिए कुछ आंकड़े और खबरों को प्रस्तुत कर रहे हैं-

- 26 करोड़ भारतीय अभी भी प्रतिदिन 50 रुपये से भी कम में गुजारा करते हैं। इसके संदर्भ में जनता के माध्यम से अपील सरकार से की जाए।
- दूसरा भारत में कुल श्रमिकों में 28.3% महिलाएं हैं और इनमें से 36.1% महिलाएं 15 से 64 वर्ष के बीच की हैं। इसमें जनता एवं सरकार दोनों से अपील की जाए कि इस दिशा में सुधार के प्रयासों को बल दिया जाए।
- 1991 से 2001 के बीच भारत की जनसंख्या में अत्यधिक वृद्धि हुई। इसके मद्देनजर कोई क्रांतिकारी कदम उठाया जाए।
- 57 लाख लोग भारत में एच.आई.वी. पॉजीटिव से ग्रसित हैं। उनके लिए नियमित दिशा-निर्देश एवं क्रिया कलापों को अंजाम दिया जाए।

आज भारत में औसतन प्रत्येक व्यक्ति 2 घंटे रोज टी.वी. देखता है व 9.7 करोड़ युवा लोग क्षेत्रीय अखबार पढ़ते हैं एवं 1.2 करोड़ लोग अंग्रेजी अखबार पढ़ते हैं। भारतीय सिनेमा के हर साल लगभग 4 अरब टिकट बिकते हैं। भारत में 12500 सिनेमाघर हैं एवं 250 मल्टीप्लैक्स हैं। 18.57 करोड़ लोग सप्ताह में कम से कम एक बार रेडियो सुनते हैं, 10.8 करोड़ घरों में टी.वी. है, 2.30 करोड़ लोग भारत में हर रोज सिनेमा देखते हैं, सन् 2005 तक 300 टेलीविजन चैनल भारत में थे।

उपरोक्त आंकड़े यह साबित करते हैं कि भारत में मीडिया अच्छी पत्रकारिता एवं मीडिया की नई-नई तकनीकें अपनाकर पाठकों की संख्या बढ़ाने में सफल रहा है। इससे उसे अपना यौवन फिर से प्राप्त करने में सहायता मिली है। आज रेडियो पर एफ. एम. का माध्यम भी लोगों तक महत्वपूर्ण खबरें पहुंचाने का साधन है व लोग इसकी नकल भी करते नजर आते हैं। देश में आज कितने ही एफ. एम. स्टेशन हैं।

माना कि मीडिया आज प्रोद्यौगिकी की मदद से कुलांचें भरता हुआ आगे बढ़ रहा है। आप लोगों के रुझान का अनुमान इस बात से लगा सकते हैं कि स्टार प्लस पर प्रसारित होने वाला धारावाहिक 'क्योंकि सास भी कभी बहू थी' 190 बार टी. आर. पी. में अव्वल रहा। और तो और 26 जुलाई, 2006 तक के 258 हफ्तों में तो इस धारावाहिक की एक अदाकारा (बा) तकनीकी तौर पर 104 साल की हो चुकी थीं।

लोगों के इसी रुझान को सही दिशा में प्रेरित करने के लिए कुछ ऐसे परिवर्तन करने की जरूरत है जो हमारी भारतीय संस्कृति एवं अखंडता को कायम रख सकें।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

3. राजभाषा शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम कब किया गया?

   (क) 1857 (ख) 1947

   (ग) 1949 (घ) 1950

4. संपूर्ण हिंदी क्षेत्र किन दो भागों में विभक्त है?

   (क) पश्चिमी–पूर्वी (ख) उत्तरी–दक्षिणी

   (ग) पूर्वी–उत्तरी (घ) पश्चिमी–दक्षिणी

1.4 हिंदी भाषा शिक्षण का सामान्य इतिहास

हिंदी भाषा शिक्षण की व्यवस्थित शुरुआत बंगाल (कलकत्ता) की रॉयल एशियाटिक सोसाइटी से हुई। बाद में इसी की शाखाएं बनारस, इलाहाबाद, दिल्ली, पटना, सागर, अलीगढ़ आदि जगहों में पुष्पित–पल्लवित हुईं।

जार्ज ग्रियर्सन के भारतीय भाषाओं के सर्वेक्षण ने इसी आधार पर हिंदी भाषा शिक्षण के भव्य भवन की नींव तैयार की।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल, बाबू श्याम सुंदर दास, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, धीरेंद्र वर्मा, रामकुमार वर्मा, नलिन विलोचन शर्मा, देवेंद्रनाथ शर्मा, लाला भगवान दीन, रमाशंकर शुक्ल रसाल, नगेंद्र, हरवंशलाल शर्मा जैसे दिग्गजों और उनकी शिष्य मंडली ने संस्कृत भाषा और साहित्य की समृद्ध परंपरा और पृष्ठभूमि में हिंदी भाषा और हिंदी साहित्य के अध्ययन–अध्यापन की नींव रखी।

व्यास और समास शैली में साहित्य के इतिहास, काव्यशास्त्र, भाषा विज्ञान, काव्य और गद्य के पाठ्यक्रम की आधारभूत संरचना तैयार हुई।

वर्तमान में यह सोच कर और जान कर अजीब लग सकता है कि पहले हिंदी और संस्कृत साहित्य की उच्च शिक्षा का माध्यम अंगरेजी था।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के हिंदी साहित्य का इतिहास, रस मीमांसा और निबंधों की ऐतिहासिक भूमिका के बिना हिंदी के अध्ययन–अध्यापन की कोई चर्चा नहीं हो सकती।

'त्रिवेणी' की वृहद भूमिका ने मध्यकालीन साहित्य के श्रेणीकरण और गुणवत्ता के जो 'मानक' तैयार किए, उन पर आज भी गहन विमर्श जारी है।

लोकमंगल का उनका प्रतिमान आज भी किसी न किसी रूप में कायम है। रीतिवाद का प्रतिरोध आज भी प्रासंगिक है। यही कारण है कि केवल कलावाद साहित्य का एकमात्र लक्ष्य नहीं बन पाया।

उर्दू भाषा और साहित्य के साथ पश्चिम की साहित्यिक–दार्शनिक बहसों ने इसे और अधिक समृद्ध और संपन्न बनाने में मदद की है।

टिप्पणी

जहां तक हिंदी, संस्कृत की उच्च शिक्षा का संबंध है तो इसकी ओर गांव–देहात के गरीब लोग ज्यादा आकर्षित होते हैं। अंगरेजी चूंकि प्रारंभ से ही उच्च और अभिजात वर्ग की भाषा रही है, जो ज्यादातर शहरों में केंद्रित है, लेकिन वर्तमान में भूमंडलीकरण के प्रभाव से अंगरेजी सत्ता और अधिकार प्राप्ति की ललक में देहातों में भी अंगरेजी माध्यम के स्कूलों में बच्चों को पढ़ाना फैशन और मजबूरी दोनों है।

हालांकि भारतीय प्रशासनिक सेवाओं में हिंदी माध्यम स्वीकृत है, लेकिन फिर भी लाभ के लिहाज से अंगरेजी का आकर्षण विशेष है। सीसैट के विवाद से भी यह जाहिर हो चुका है कि भारत में अब भी वर्चस्व अंगरेजी का ही रहना है।

हिंदीभाषी जनता की देश और विदेश की भाषाओं और साहित्य के प्रति सीमित सोच से बेहद नुकसान होता है। हिंदी उपेक्षित होती है, इसलिए उसके शुद्ध, मानक उच्चारण और वर्तनी पर खास ध्यान देने की जरूरत ही महसूस नहीं होती।

हालांकि बदलते परिदृश्य में भाषा की शुद्धता और व्याकरण से कोई फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि अब जोर इनके बजाय संप्रेषण पर होता है। अमेरिकी अंगरेजी ने जैसे विक्टोरियन अंगरेजी की ऐसी तैसी कर दी है, ठीक वही हाल हिंदी का हिंग्रेजी ने कर दिया है। मगर शिक्षा और व्यवस्था के क्षेत्र में यह अराजकता त्याज्य है।

हिंदी की जटिल पारिभाषिक शब्दावली और वर्तनी के कारण हिंदी के बजाय अंगरेजी आसान लगती है। इसीलिए हिंदी लिखित रूप में निरंतर प्रचलन से बाहर होती जा रही है। यह चिंता की बात है।

विज्ञान और टेक्नोलॉजी के वर्तमान युग में विचारणीय विषय यह है कि क्या साहित्य के अध्ययन और अध्यापन की पारंपरिक गुरु–शिष्य परंपरा प्रासंगिक रह गई है या भूमंडलीकरण के विश्वव्यापी प्रसार के नाते उसमें किसी खास विशेषज्ञता की जरूरत है। क्या सूरदास के श्याम की चोटी आज भी ज्यों की त्यों है या उसमें कोई बदलाव हुआ है। टीका और व्याख्याओं के अलावा भी क्या ऐसा कुछ नया है, जिसकी जरूरत है।

1.4.1 प्राथमिक पाठ्यक्रम के संबंध में

विद्यार्थी की भाषा में हो पढ़ाई, मीडियम और मैसेज की लड़ाई। प्रारंभिक स्तर पर हिंदी भाषा शिक्षण के संदर्भ में यह एक चर्चित विषय बना रहता है।

भारत में प्राथमिक शिक्षा पहली से पांचवी तक की कक्षाओं में भाषा शिक्षण पाठ्यचर्या में एक केंद्रीय स्थान प्राप्त करता है। भाषा के द्वारा प्राप्त आधारभूत कौशल दूसरे क्षेत्रों के संप्रत्ययों को समझने में सहायक होता है।

किसी बच्चे के व्यक्तित्व निर्माण में और लोगों के साथ संवाद में भाषा के नौ आधारभूत कौशल महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं; जो क्रमशः सुनना, बोलना, पढ़ना, लिखना, विचारों को समझना (सुन कर और पढ़ कर), जरूरी व्याकरण की जानकारी, खुद से सीखना, भाषा का उपयोग और शब्दकोश पर पकड़ इत्यादि हैं ।

भाषा का सबसे महत्वपूर्ण कौशल सुनना है। अगर किसी भाषा को हम सीखना चाहते हैं तो उसे सुनने और बोलने का मौका मिलने पर हम आसानी से उस भाषा को सीख सकते हैं। उदाहरण के तौर पर राजस्थान के किसी आदिवासी अंचल में गरासिया या बागड़ी बोली बच्चे के घर की भाषा है।

टिप्पणी

स्कूल में बच्चे की पढ़ाई हिंदी माध्यम में होती है तो बच्चे को पहली क्लास से ही हिंदी भाषा सुनने का ज्यादा से मौका मिलता है। इससे बच्चे इस भाषा में सहज बने रहते हैं। इसके लिए बच्चे को कहानी सुनने और बालगीत सुनने और बोलने का मौका दिया जा सकता है।

इससे बच्चे के मन में हिंदी भाषा का व्याकरण अपने आप बनता जाता है।

इसके लिए क्लासरूम में बच्चे के घर की भाषा को भी जगह देनी एक अपरिहार्यता है ताकि बच्चे अपने अनुभवों को क्लासरूम में व्यक्त करने में किसी तरह की झिझक या संकोच का अनुभव न करें।

बच्चे के घर की भाषा (होम लैंग्वेज) नई भाषा सीखने में बाधक नहीं बल्कि सहायक है। संदर्भ के माध्यम से किसी भाषा को सीखने में काफी आसानी होती है।

चित्रों पर चर्चा है जरूरी किताबों में छपे चित्रों पर होने वाली चर्चा बच्चों को भाषा का इस्तेमाल करने का एक सुंदर मौका देती है। इस तरह के पाठ्यक्रम निर्धारित किये जाते हैं। अपने दोस्तों के साथ वे चित्रों के ऊपर बच्चे खुद आपस में बात करते हैं।

इस प्रक्रिया में वे ढेर सारी नई बातें सीखते जाते हैं। मसलन किताब सीधी कैसे पकड़नी है? किसी दिशा से किस दिशा में पढ़ना है? किताब में छपे चित्रों का लिखी हुई सामग्री से क्या रिश्ता है? कौन से चित्र हैं जो अपने आसपास के परिवेश से मेल खाते हैं। उदाहरण स्वरूप लायब्रेरी में एक किताब में छपे चित्र को दिखाने के लिए बच्चा भाषा शिक्षक के पास लेकर गया और बोला ये देखिए ऑटो।

इस बच्चे के गाँव में ऑटो चलते हैं। जबकि वह चित्र शहरी परिवेश का था। लेकिन अज़नबी परिवेश में भी बच्चा पहचानी सी चीज़ों से खुद को जोड़कर देख पा रहा है। भाषा का यही कमाल होता है। वह अपने आसपास की दुनिया को शब्दों के सहारे समझने और अनुभवों के रूप में उसे भविष्य में फिर से देखने के लिए सुरक्षित कर देती है।

मगर व्यवहारिक तौर पर प्राथमिक कक्षाओं को किताबें देने में शिक्षक संकोच करते हैं। दूसरी तरफ पढ़ने का कौशल जो बच्चे सीख रहे हैं या सीख चुके हैं उसे इस्तेमाल करने का मौका लायब्रेरी की किताबों के माध्यम से बच्चों को मिलता है।

इससे बच्चे ज्यादा रुचि के साथ अपने भाषाई कौशलों को इस्तेमाल करने के लिए प्रेरित होते हैं। आदिवासी इलाकों में जहाँ बच्चों के लिए हिंदी एक अज़नबी भाषा है। मारवाड़ी से उनका सामना अपनी आदिवासी भाषा के साथ होता है।

पहली क्लास में अगर बच्चे सहजता के साथ बातचीत करने के लिए तैयार हैं तो इसका श्रेय शिक्षक द्वारा हिंदी में संवाद करने की कोशिश, बच्चों को हिंदी में निर्देश देने का प्रयास, कहानी के माध्यम से उन तक पहुंचने की कोशिश, इन सारे पहलुओं को इसका श्रेय दिया जा सकता है। इसमें उन बच्चों को किताबों के साथ एक रिश्ता बनाने का मौका देना भी शामिल है। इस पहलू पर प्राथमिक शिक्षालय सक्रिय भी रहते हैं।

प्राथमिक स्तर पर हिंदी भाषा शिक्षण का प्रमुख लक्ष्य यह है कि बच्चे किसी बात को सुनकर समझ पाएं। औपचारिक और अनौपचारिक दोनों तरह के माहौल में

प्रभावशाली ढंग से अपनी बात रख पाएं। किसी किताब को समझते हुए पढ़ सकें और उससे अपनी समझ का निर्माण कर सकें। सुनी हुई बातों को लिख सकें। लिखावट अच्छी हो ताकि जो लिखा गया है उसे समझते हुए पढ़ा जा सके।

भाषा का विभिन्न संदर्भों में इस्तेमाल करते समय व्याकरण का उपयोग बच्चे आसानी से कर पाएं भाषा शिक्षण का एक लक्ष्य यह भी होता है। किताबों को पढ़ने में रुचि का विकास करना और अपने पसंद की किताबों का चुनाव खुद से करने की योग्यता का विकास करना भी प्राथमिक स्तर पर भाषा शिक्षण का लक्ष्य है।

भाषा की चार आधारभूत क्षमताएं हैं– सुनना, बोलना, पढ़ना और लिखना। सुनने, बोलने और पढ़ने में समझना शामिल है। लिखने में किसी भाषा के व्याकरण को समझते हुए अपनी बात को लिखित रूप में व्यक्त करना शामिल है। लिखने में डायरी लेखन, किसी सवाल का जवाब लिखना, नोट्स लिखना व अन्य किसी तरीके से लेखन कौशल का इस्तेमाल करना शामिल है।

इसमें छोटी–छोटी कहानी, कविता या किसी सुनी हुई बात को लिखने का कौशल शामिल है। भाषा की यह सारी क्षमताएं एक–दूसरे से जुड़ी हुई हैं। एक क्षमता के विकास के साथ अन्य क्षमताएं स्वतः विकसित होती रहती हैं।

प्राथमिक स्तर पर भाषा शिक्षण की सुरुचिपूर्ण गतिविधियां

किसी घटना का वर्णन,क्लास के दोस्तों के साथ बातचीत (चिट–चैट),कहानी कहना,नाटक आयोजित करना,बातचीत (संवाद), सवाल–जवाब सत्र, शब्दों का खेल, डिबेट प्रतिस्पर्धा,गीत व संगीत के कार्यक्रमों का आयोजन कतिपय उपादान हैं।

खुद से सीखने की गतिविधि को बढ़ावा देने के लिए बच्चों को उनकी रुचि की किताबें पढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है। चित्रों वाली किताबों का उपयोग किया जा सकता है।

ऐसे खेल भी आयोजित किए जा सकते हैं, जो संवाद और बातचीत पर आधारित हों। ऐसी गतिविधियां बच्चों के भाषाई कौशल विकास के लिए बहुत उपयोगी साबित हो सकती हैं।

1.4.2 माध्यमिक पाठ्यक्रम के संबंध में

प्राथमिक स्तर और माध्यमिक स्तर के मध्य एक और स्तर होता है, जिसे उच्च प्राथमिक स्तर कहा जाता है। इसलिए माध्यमिक स्तरीय हिंदी भाषा शिक्षण पर विचार से पूर्व उच्च प्राथमिक स्तर पर हिंदी भाषा सीखने की संप्राप्ति पर दृष्टिपात करना समीचीन होगा।

प्राथमिक कक्षाओं में समझते हुए पढ़ना– लिखना सीख लेने के बाद उच्च प्राथमिक स्तर तक पहुँचकर अब शिक्षार्थी पढ़ते समय किसी रचना से भावनात्मक रूप से जुड़ भी सकें और कोई नयी किताब या रचना सामने आने पर उसे उठाकर पलटने और पढ़ने की उत्सुकता उनमें पैदा हो, मुख्य रूप से यह अपेक्षा रहती है।

यह अपेक्षा भी रहती है कि उन्हें इस बात की जानकारी और समझ हो कि समाचार – पत्र के विभिन्न पन्नों पर क्या छपता है, समाचार–पत्र में छपी किसी खबर,

लेख या कही गई किसी बात का निर्हितार्थ क्या है? इस स्तर तक आते – आते शिक्षार्थियों के पढ़ने– लिखने में अंतर होता है।

टिप्पणी

हमारे पढ़ने का तरीका इस बात पर भी निर्भर करता है कि हमारे पढ़ने का उद्देश्य क्या है। एक विज्ञापन को पढना और एक सूचना लिखकर लगानी है तो इसके पाठक विद्यालय के बच्चे, शिक्षक और अन्य कर्मचारीगण हैं। लेकिन अगर यही सूचना समुदाय और अभिभावकों को देनी है तो इसके पाठकों में अभिभावक और समुदाय के व्यक्ति भी शामिल हो जाएंगे।

दोनों स्थितियों में हमारे लिखने के तरीके और भाषा में बदलाव आना स्वाभाविक है। उच्च प्राथमिक स्तर पर विभिन्न स्थितियों के संदर्भ में अपने आप को लिखित रूप में अभिव्यक्त और अपेक्षित है और लेखन का उद्देश्य भी यही है।

उच्च प्राथमिक स्तर पर यह अपेक्षा भी रहती है कि शिक्षार्थी विभिन्न रचनाओं को पढ़कर उसमें झलकने वाली सोच, पूर्वाग्रह और सरोकार आदि को पहचान पाएँ। कुल मिलाकर प्रयास यह होना चाहिए कि इस चरण के पूरा होने तक शिक्षार्थी किसी भाषा, व्यक्ति, वस्तु, स्थान, रचना आदि का विश्लेषण करने, उसकी व्याख्या करने और उस व्याख्या को आत्मविश्वास व स्पष्टता के साथ अभिव्यक्त करने के अभ्यस्त हो जाएँ।

वे रचनात्मक और सृजनात्मक ढंग से भाषा को बरतना सीख जाएं। इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए यहाँ पाठ्यचर्या संबंधी अपेक्षाएं, सीखने – सिखाने की प्रक्रिया तथा सीखने संबंधी संप्राप्ति को दर्शाने वाले बिन्दु दिए गये हैं उनमें परस्पर जुड़ाव है और एक से अधिक भाषायी क्षमताओं की झलक उनमें मिलती है।

किसी रचना को सुनकर अथवा पढ़कर उस पर गहन चर्चा करना, अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करना, प्रश्न पूछना पढ़ने की क्षमता से भी जुड़ा है और सुनने – बोलने की क्षमता से भी। प्रतिक्रिया, प्रश्न और टिप्पणी को लिखकर भी अभिव्यक्त किया जा सकता है। इस तरह से भाषा की कक्षा में एक साथ सुनना, बोलना, पढ़ना और लिखना जुड़ा है। पाठ्यचर्या संबंधी अपेक्षाओं को पूरा करने में सीखने में उपयुक्त प्रक्रियाओं की बड़ी भूमिका होती है।

सीखने की उपयुक्त प्रक्रियाओं के बगैर सीखने संबंधी अपेक्षित संप्राप्ति नहीं की जा सकेगी।

हमारे देश में पाठ्यचर्या संबंधी अपेक्षाओं को पूरे देश के बच्चों को ध्यान में रखकर (प्रथम भाषा के रूप में हिंदी पढ़ने वाले और द्वितीय भाषा के रूप में हिंदी पढ़ने वाले दोनों) तैयार किया गया है।

इसका लक्ष्यपरक स्वरूप इस तरह है–

- किसी भी नई रचना/किताब को पढ़ने/समझने की जिज्ञासा व्यक्त करना।
- समाचार–पत्रों/पत्रिकाओं में दी गई खबरों/बातों को जानना – समझना।
- विभिन्न सामाजिक – सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति अपने रुझानों को अभिव्यक्त करना। पढ़ी – सूनी रचनाओं को जानना, समझना,व्याख्या करना, अभिव्यक्त करना।
- अपने व दूसरों के अनुभवों को कहना सुनना – पढ़ना लिखना। (मौखिक – लिखित – सांकेतिक रूप में)।

- अपने स्तरानुकूल दृश्य–श्रव्य माध्यमों की सामग्री (जैसे–बाल साहित्य, पत्र–पत्रिकाएँ, टेलीविज़न, कम्प्यूटर – इन्टरनेट, नाटक, सिनेमा आदि) पर अपनी राय व्यक्त करना।

टिप्पणी

- साहित्य की विभिन्न विधाओं (जैसे – कविता, कहानी, निबन्ध, एकांकी, संस्मरण, डायरी आदि) की समझ बनाना और उनका आनंद उठाना।
- दैनिक जीवन में औपचारिक – अनौपचारिक अवसरों पर उपयोग की जा रही भाषा की समझ बनाना।
- भाषा – साहित्य की विविध सृजनात्मक अभिव्यक्तियों को समझना और सराहना करना।
- हिंदी भाषा में अभिव्यक्त बातों की तार्किक समझ बनाना।
- पाठ विशेष को समझना और उससे जुड़े मुद्दों पर अपनी राय देना।
- विभिन्न संदर्भों में प्रयुक्त भाषा की बारीकियों, भाषा की लय, तुक को समझना।
- भाषा की नियमबद्ध प्रकृति को पहचानना और विश्लेषण करना।
- भाषा के नये संदर्भों/परिस्थितियों में प्रयोग करना।

  अन्य विषयों, जैसे – विज्ञान, गणित, सामाजिक विज्ञान आदि में प्रयुक्त भाषा की समुचित समझ बनाना व उसका प्रयोग करना।
- हिंदी भाषा – साहित्य को समझते हुए सामाजिक परिवेश के प्रति जागरूक होना।
- दैनिक जीवन में तार्किक एवं वैज्ञानिक समझ की ओर बढ़ना।

  पढ़ी – लिखी – सुनी – देखी – समझी गई भाषा का सृजनशील प्रयोग।

सभी शिक्षार्थियों (भिन्न रूप में सक्षम बच्चों सहित) को व्यक्तिगत, सामूहिक रूप से कार्य करने के अवसर और प्रोत्साहन दिया जाना आवश्यक माना जाता ताकि उन्हें – 'अपनी भाषा में बातचीत तथा चर्चा करने के अवसर हों।

'प्रयोग की जाने वाली भाषा की बारीकियों पर चर्चा के अवसर हों। सक्रिय और जागरूक बनाने वाली रचनाएँ, अख़बार, पत्रिकाएँ, फिल्म और ऑडियो – वीडियो सामग्री को देखने, सुनने, पढ़ने, लिखने और चर्चा करने के अवसर उपलब्ध हों।

'समूह में कार्य करने और एक – दूसरे कार्यों पर चर्चा करने, राय लेने–देने, प्रश्न करने की स्वतंत्रता हो। 'हिंदी के साथ – साथ अपनी भाषा की सामग्री पढ़ने – लिखने की सुविधा (ब्रेल/संकेतिक रूप में भी) और उन पर बातचीत की आजादी हो।

अपने परिवेश, समय और समाज से संबंधित रचनाओं को पढ़ने और उन पर चर्चा करने के अवसर हों। अपनी भाषा गढ़ते हुए लिखने संबंधी गतिविधियाँ आयोजित हों, जैसे – शब्द खेल।

हिंदी भाषा में सन्दर्भ के अनुसार भाषा विश्लेषण (व्याकरण, वाक्य संरचना, विराम चिन्ह आदि) करने के अवसर हों।

कल्पनाशीलता और सृजनशीलता को विकसित करने वाली गतिविधियों, जैसे – अभिनय, रोल – प्ले, कविता, पाठ, सृजनात्मक लेखन, विभिन्न स्थितियों में संवाद आदि

आयोजन हों और उनकी तैयारी से संबंधित स्क्रिप्ट लेखन और रिपोर्ट लेखन के अवसर हों। साहित्य और साहित्यिक तत्वों की समझ बढ़ाने के अवसर हों।

शब्दकोश का प्रयोग करने के लिए प्रोत्साहन एवं सुलभ परिवेश हो।

टिप्पणी

'सांस्कृतिक महत्त्व के अवसरों पर अवसरानुकूल लोक गीतों का संग्रह करने, उनकी गीतमय प्रस्तुति देने के अवसर हों।

इस स्तर पर विद्यार्थी विभिन्न प्रकार की ध्वनियों (जैसे – बारिश, हवा, रेल, बस, फेरीवाला आदि) को सुनने के अनुभव, किसी वस्तु के स्वाद आदि के अनुभव को अपने ढंग से मौखिक / संकेतिक भाषा में प्रस्तुत करते हैं। सुनी देखी गई बातों, जैसे स्थानीय सामाजिक घटनाओं, कार्यक्रमों और गतिविधियों पर बेझिझक बात करते हैं और प्रश्न करते हैं। देखी, सुनी रचनाओं / घटनाओं / मुद्दों पर बातचीत को ढंग से आगे बढ़ाते हैं, जैसे – किसी कहानी को आगे बढ़ाना।

रेडियो, टी.वी., अखबार, इन्टरनेट में देखी / सुनी गई खबरों को अपने शब्दों में कहते हैं। विभिन्न अवसरों / संदर्भों में कही जा रही दूसरों की बातों को अपने ढंग से बताते हैं, जैसे – आँखों से न देख पाने वाले साथी का यात्रा – अनुभव। अपने परिवेश में मौजूद लोककथाओं और लोकगीतों के बारे में जानते हुए चर्चा करते हैं। अपने से भिन्न भाषा, खान – पान, रहन – सहन संबंधी विविधताओं पर बातचीत करते हैं।

सरसरी तौर पर किसी पाठ्यवस्तु को पढ़कर उसकी विषयवस्तु का अनुमान लगाते हैं।

किसी पाठ्यवस्तु की बारीकी से जाँच करते हुए उसमें किसी विशेष बिन्दु को खोजते हैं, अनुमान लगाते हैं, निष्कर्ष निकालते हैं। हिंदी भाषा में विभिन्न प्रकार की सामग्री (समाचार–पत्र, पत्रिका, कहानी, जानकारीपरक सामग्री, इन्टरनेट पर प्रकाशित होने वाली सामग्री आदि) को समझकर पढ़ते हैं और उसमें अपनी पसंद – नापसंद, राय टिप्पणी देते हैं। भाषा की बारीकियों / व्यवस्था / ढंग पर ध्यान देते हुए उसकी सराहना करते हैं, जैसे – कविता में तुक, वर्ण आवृत्ति (छंद) तथा कहानी, निबन्ध में मुहावरे, लोकोक्ति आदि। विभिन्न विधाओं में लिखी गई साहित्यिक सामग्री को उपयुक्त उतार – चढ़ाव और सही गति के साथ पढ़ते हैं। हिंदी भाषा में विविध प्रकार की रचनाओं को पढ़ते हैं।

नये शब्दों के प्रति जिज्ञासा व्यक्त करते हैं और उनके अर्थ समझने के लिए शब्दकोश का प्रयोग करते हैं। विविध कलाओं, जैसे – हस्तकला, वास्तुकला, खेती–बाड़ी, नृत्यकला आदी से जुड़ी सामग्री में प्रयुक्त भाषा के प्रति जिज्ञासा व्यक्त करते हुए उसकी सराहना करते हैं। दूसरों के द्वारा अभिव्यक्त अनुभवों को जरूरत के अनुसार लिखना, जैसे – सार्वजनिक स्थानों (जैसे – चौराहों, नलों, बस अड्डे आदि) पर सुनी गई बातों को लिखना।

अपने अनुभवों को अपनी भाषा शैली में लिखते हैं। विभिन्न विषयों, उद्देश्यों के लिए लिखते समय उपयुक्त शब्दों, वक्या संरचनाओं, मुहावरों, लोकोक्तियों, विराम – चिन्हों एवं अन्य व्याकरणिक इकाइयों जैसे – काल, क्रिया विशेषण, शब्द युग्म आदि का प्रयोग करते हैं। विभिन्न अवसरों / संदर्भों में कही जा रही दूसरों की बातों को अपने

ढंग से लिखते हैं। विभिन्न संदर्भों में विभिन्न उद्देश्यों के लिए लिखते समय शब्दों, वाक्य संरचनाओं, मुहावरे आदि का उचित प्रयोग करते हैं।

टिप्पणी

उच्च प्राथमिक स्तर पर सभी शिक्षार्थियों (भिन्न रूप में सक्षम बच्चों सहित) को व्यक्तिगत, सामूहिक रूप से कार्य करने के अवसर और प्रोत्साहन दिया जाना इसलिए आवश्यक माना जाता है, ताकि उन्हें अपनी भाषा में बातचीत तथा चर्चा करने के अवसर हों।

प्रयोग की जाने वाले भाषा की बारीकियों पर चर्चा के अवसर हों।

समूह में कार्य करने और एक – दूसरे के कार्यों पर चर्चा करने, राय लेने – देने प्रश्न करने की स्वतंत्रता हो।

हिंदी के साथ–साथ अपनी भाषा की सामग्री पढ़ने–लिखने की सुविधा (ब्रेल/संकेतिक रूप में भी) और उन पर बातचीत की आजादी हो।

अपने परिवेश, समय और समाज से संबंधित रचनाओं को पढ़ने और उन पर चर्चा करने के अवसर हों।

अपनी भाषा गढ़ते हुए लिखने संबंधी गतिविधियाँ हों, जैसे– शब्द खेल, अनौपचारिक पत्र, तुकबंदियां, पहेलियाँ, संस्मरण आदि।

सक्रिय और जागरूक बनाने वाली रचनाएँ, अख़बार, पत्रिकाएँ, फिल्म और ऑडियो–वीडियो सामग्री को देखने, सुनने, पढ़ने और लिखकर अभिव्यक्त करने की गतिविधियाँ हों।

कल्पनाशीलता और सृजनशीलता को विकसित करने वाली गतिविधियों, जैसे – अभिनय, रोल प्ले, कविता पाठ, सृजनात्मक लेखन, विभिन्न स्थितियों में संवाद आदि के आयोजन हों और उनकी तैयारी से संबंधित स्क्रिप्ट लेखन और रिपोर्ट लेखन के अवसर हों।

विद्यालय/विभाग/कक्षा की पत्रिका/भित्ति पत्रिका निकालने के लिए प्रोत्साहन हो।

विद्यार्थी विविध प्रकार की रचनाओं को पढ़कर समूह में चर्चा करते हैं। किसी सामग्री को पढ़ते हुए लेखक द्वारा रचना के परिप्रेक्ष्य में कहे गये विचार को समझकर और अपने अनुभवों के साथ उसकी संगति, सहमति या असहमति के संदर्भ में अपने विचार अभिव्यक्त करते हैं। किसी चित्र या दृश्य को देखने के अनुभव को अपने ढंग से मौखिक/संकेतिक भाषा में व्यक्त करते हैं। पढ़ी गई सामग्री पर चिंतन करते हुए बेहतर समझ के लिए प्रश्न पूछते हैं/परिचर्चा करते हैं। अपने परिवेश में मौजूद लोककथाओं और लोकगीतों के बारे में चर्चा करते हैं और उनकी सराहना करते हैं।

विविध कलाओं, जैसे– हस्तकला, वस्तुकला, खेती–बाड़ी, नृत्यकला और इनमें प्रयोग होने वाली भाषा के बारे में जिज्ञासा व्यक्त करते हैं, उन्हें समझने का प्रयास करते हैं। विभिन्न स्थानीय सामाजिक एवं प्राकृतिक मुद्दों/घटनाओं के प्रति अपनी तार्किक प्रतिक्रिया देते हैं, जैसे– बरसात के दिनों में हरा – भरा होना? विषय पर चर्चा। विभिन्न संवेदनशील मुद्दों/विषयों, जैसे– जाति धर्म, रंग, जेंडर, रीति–रिवाजों के बारे में

मौखिक रूप से अपनी तार्किक समझ अभिव्यक्त करते हैं। सरसरी तौर पर किसी पाठ्यवस्तु को पढ़कर उसकी उपयोगिता के बारे में बताते हैं।

किसी पाठ्यवस्तु की बारीकी से जाँच करते हुए उसमें किसी बिशेष बिन्दु को खोजते हैं। पढ़ी गई सामग्री पर चिन्तन करते हुए बेहतर समझ के लिए प्रश्न पूछते हैं। विभिन्न पठन सामग्रियों में प्रयुक्त शब्दों. मुहावरों, लोकोक्तियों को समझते हुए उनकी सराहना करते हैं।

कहानी, कविता आदि पढ़कर लेखन के विविध तरीकों और शैलियों को पहचानते हैं, जैसे– वर्णनात्मक, भावनात्मक प्रकृति चित्रण आदि।

विद्यार्थी किसी पाठ्यवस्तु को पढ़ने के दौरान समझने के लिए जरूरत पड़ने पर अपनी किसी सहपाठी या शिक्षक की मदद लेकर उपयुक्त संदर्भ सामग्री, जैसे– शब्दकोश, मानचित्र, इंटरनेट या अन्य पुस्तकों की मदद लेते हैं।

विविध कलाओं जैसे– हस्तकला, वास्तुकला खेती नृत्यकला आदि से जुड़ी सामग्री में प्रयुक्त भाषा के प्रति जिज्ञासा व्यक्त करते हुए उसकी सराहना करते हैं।

भाषा की बारीकियों/व्यवस्था तथा नये शब्दों का प्रयोग करते हैं, जैसे– किसी कविता में प्रयुक्त शब्द विशेष पदबंध का प्रयोग– आप बढ़ते हैं तो बढ़ते ही चले जाते हैं या जल–रेल जैसे प्रयोग। विभिन्न अवसरों–संदर्भों में कही जा रही दूसरों की बातों को अपने ढंग से लिखते हैं जैसे– अपने गाँव के चौपाल की बातचीत या अपने मोहल्ले के लिए तरह–तरह के कार्य करने वालों की बातचीत।

माध्यमिक स्तर पर हिंदी भाषा शिक्षण का लक्ष्यगत स्वरूप

भाषा हमारे चिंतन का आधार है। किसी भी जनतंत्र की सफलता उसके नागरिकों के चिंतन पर निर्भर करती है। यही कारण है कि किसी भी राष्ट्र के पुनर्निर्माण के कार्य में भाषा की शिक्षा का अपना विशिष्ट महत्व होता है। जीवन के प्रति परस्पर व्यक्ति भाषा का ही सहारा लेकर जीवित रहता है और ज्ञान विज्ञान के अनेक विषयों का अध्ययन करता है।

किसी कवि की भावना भाषा का संबल पाकर ही अनुपम कृति के रूप में संसार के सक्षम अवतरित हो जाती है।

माध्यमिक स्तर पर हिंदी शिक्षण के लक्ष्य को तीन रूपों में देखा जा सकता है–

1) भाव प्रकाशन का उद्देश्य

2) भाव ग्रहण का उद्देश्य

3) सृजनात्मक उद्देश्य

प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में भाव सुसुप्त अवस्था में विद्यमान रहते हैं और किसी भी प्रकार की उत्तेजना पाकर उद्वेलित हो उठते हैं। फिर वह उन्हें बिना कहे और बिना लिखे रह नहीं सकता। भावाभिव्यक्ति वही श्रेष्ठ होगी जिसे सुनने वाला कवि या लेखक के भावों को वैसा ही ग्रहण कर ले।

इसके लिये आवश्यक होता है छात्रों को इस योग्य बनाना कि वे उचित भाव–भंगिमाओं के साथ वाचन कर के काव्य आनंद की अनुभूति प्राप्त कर सकें। छात्रों को अपने भावों को सरल स्पष्ट और प्रभावपूर्ण ढंग से लिखने में प्रवीण बनाना। लेखन में

टिप्पणी

शब्दों वाक्यों एवं अनुच्छेदों की कुशलता पर विशेष ध्यान देना चाहिए। निबंध एवं पत्र लेखन के विविध रूपों का भी व्यापक ध्यान रखना चाहिए। शुद्ध सरल स्पष्ट एवं प्रभावशाली भाषा में छात्र अपने भावों विचारों एवं अनुभूतियों को अभिव्यक्त कर सकें (अहिंदी भाषी प्रदेशों के छात्रों के उच्चारण की शुद्धता पर भी भाषा शिक्षक को विशेष ध्यान देना होगा ।)

एक व्यक्ति जो भाव अभिव्यक्त करता है उसे दूसरा व्यक्ति उसी भावना से ग्रहण करे यह भी आवश्यक है अन्यथा अर्थ का अनर्थ होने की संभावना रहती है। इसके लिए आवश्यक होता है– साहित्य में अभिव्यक्त विचारों को पढ़कर समझने की क्षमता प्रदान करना, लक्ष्यार्थ को समझने की क्षमता का विकास करना, बालक के शब्द भंडार में वृद्धि करना जिससे कि पाठ में आए शब्दों एवं विचारों को वह भली–भांति समझ सके, बालकों में ऐसी क्षमता उत्पन्न करना कि वे दूसरों द्वारा कही हुई बात को यथा विधि समझ सकें।

भाषा शिक्षण का एक मुख्य लक्ष्य साहित्य सृजन की प्रेरणा प्रदान करना भी है। इस हेतु जरूरी है–

साहित्य के विस्तृत अध्ययन द्वारा रसास्वादन की अपरिमित क्षमता प्रदान करना। साहित्य लेखन की प्रेरणा प्रदान करना अर्थात साहित्य सृजन की प्रेरणा प्रदान करना। भाषा पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करके साहित्य लेखन के प्रति उसमें रुचि उत्पन्न करना।

माध्यमिक स्तरीय हिंदी भाषा शिक्षण में विद्यार्थी विकास की अवस्थाएं:

1) मानसिक विकास–

मातृभाषा के द्वारा बालक अपने विचारों को प्रकट करता है। विचार कल्पनाओं पर आधारित होते हैं। ये संकल्पनाएं सर्वप्रथम मातृभाषा में ही घटित होती हैं। इन के आधार पर बालक की विचार शक्ति का विकास होता है। इस प्रकार बालक की समस्त मानसिक शक्तियां चिंतन, कल्पना, ध्यान, स्मृति आदि मातृभाषा के माध्यम से ही विकसित होती हैं। भाषा के अभाव में अन्य शारीरिक क्रियाएं तो संभव है परंतु मानसिक विकास संदिग्ध है। मातृभाषा के द्वारा ही बालक का मस्तिष्क विशेष रूप से क्रियाशील होता है। इस प्रकार समस्त मानसिक विकास का आधार मातृभाषा ही है।

2) संवेगात्मक विकास–

प्रत्येक बालक के मन में हर्ष क्रोध भय ग्रहण आदि भाव होते हैं। मन के भावों तथा संवेग को व्यक्त करने का प्राथमिक एवं प्रमुख माध्यम मातृभाषा ही है। इसीलिए मातृभाषा को बालक के संवेगात्मक विकास का आधार माना जाता है। यदि बालक का संवेगात्मक विकास समुचित रूप से नहीं हो पाता है तो उसके व्यक्तित्व में कमी रह जाती है। अतः मातृभाषा के द्वारा बालक के संवेग को न केवल समुचित अभिव्यक्ति का अवसर मिलता है बल्कि उसका उदारीकरण भी होता है।

3) सामाजिक विकास–

मानव सामाजिक प्राणी है। वह समाज में ही जन्म लेता है, समाज के बीच पलता है और विकसित होता है। बालक परिवार तथा पड़ोस में दूसरे बच्चों के साथ खेलता है

लड़ता–झगड़ता है और फिर उन्हीं के साथ मिलकर रहना भी सीखता है। इन सब का माध्यम उसकी मातृभाषा होती है। इस प्रकार बालक में सामाजिक गुणों का विकास सामाजिक व्यवहार कुशलता मातृभाषा के द्वारा ही विकसित होती है। स्पष्ट है कि उसके व्यक्तित्व के विकास का सामाजिक पक्ष मातृभाषा के द्वारा ही संभव है।

4) नैतिक तथा चारित्रिक विकास–

बालक परिवार में छोटों के प्रति आदर तथा स्नेह का व्यवहार, सच बोलने तथा अच्छे आचरण की शिक्षा प्राप्त करता है। इस प्रारंभिक सदाचरण की शिक्षा को वह मातृभाषा में ही ग्रहण करता है। आगे चलकर बालक जीवन के आदर्शों तथा जीवन मूल्यों का पाठ भी परिवार तथा समुदाय में मातृभाषा के माध्यम से ही सीखता है। इस प्रकार मातृभाषा उसके नैतिक तथा चारित्रिक विकास का आधार बनाती है।

5) नागरिकता संबंधी गुणों का विकास–

नागरिक में जिन गुणों का होना आवश्यक है उनका सहज और स्वाभाविक विकास मातृभाषा के द्वारा ही संभव है। कुशल नागरिक बनने के लिए स्पष्ट चिंतन, विचारों की गंभीरता, स्पष्ट एवं तर्कसंगत, अभिव्यक्ति, कर्तव्य तथा अधिकारों के प्रति जागरूकता मानसिक संवेगात्मक तथा नैतिक विकास आवश्यक है। मातृभाषा की समुचित शिक्षा के द्वारा उपयुक्त गुणों का विकास सहज रूप से संभव है अतः मातृभाषा की शिक्षा का उद्देश्य बालक में नागरिकता के गुणों का विकास करना है।

6) भावी जीवन का विकास–

मातृभाषा की शिक्षा का उद्देश्य विभिन्न गुणों के विकास के द्वारा छात्र को भावी जीवन के विकास के लिए तैयार करना है। मातृभाषा की शिक्षा उसमें ऐसी व्यावहारिक कुशलता उत्पन्न करती है जिससे वह जीविकोपार्जन कर सके, रोजी रोटी कमा सके। समाज में जीवित रहने के लिए अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए यह एक अनिवार्य आवश्यकता है। इस कुशलता के बिना व्यक्ति समाज के लिए तथा स्वयं के लिए भार स्वरूप बन जाता है। अन्य भाषा के माध्यम से जीविकोपार्जन का अवसर कुछ ही लोगों को मिलता है। सामान्य जनता के लिए यह कठिन है। कृषि व्यापार एवं अन्य व्यवसायों में मातृभाषा का ही प्रयोग होता है।

7) सांस्कृतिक चेतना संबंधी विकास–

मातृभाषा की शिक्षा का उद्देश्य समाज विशेष की सांस्कृतिक विचारधारा तथा जीवन मूल्यों से छात्रों को परिचित कराना है। मातृभाषा में बालक शब्दों का अर्थ उनके प्रयोग, विविध संदर्भ तथा उनमें निहित अंतर को पहचानना सीख जाता है। मातृभाषा के माध्यम से ही वह सांस्कृतिक मान्यताओं और परंपराओं से परिचित होता है। उसमें अपनी भाषा व संस्कृति के प्रति आस्था का भाव जागृत होता है।

8) सौंदर्य अनुभूति एवं रस अनुभूति की क्षमता संबंधी विकास–

सौंदर्य के प्रति आकर्षण तथा रस की अनुभूति मानव का सहज स्वभाव है। किसी सुंदर दृश्य को देखकर हम सहज ही आनंदित होते हैं उसी प्रकार किसी भावपूर्ण कविता को पढ़कर भाव विभोर होना भी स्वाभाविक है। इस सौंदर्य अनुभूति तथा रसानुभूति का

माध्यम मातृभाषा ही होती है। बालक अपने मनोभावों की अभिव्यक्ति मातृभाषा के द्वारा ही करता है। अतः मातृभाषा पर सहज अधिकार होने के कारण छात्र विविध प्रकार की वाचक सामग्री से परिचित होता है। भाषाई कौशलों पर पर्याप्त अधिकार होने के कारण छात्र विविध प्रकार की वाचक सामग्री से परिचित होता है। भाषाई कौशलों पर पर्याप्त अधिकार होने के फलस्वरूप वह साहित्य की विभिन्न विधाओं तथा उनमें निहित भाव सौंदर्य को पहचानने में समर्थ होता है।

9) सर्जनात्मक प्रतिभा संबंधी विकास–

मातृभाषा की शिक्षा का मुख्य उद्देश्य छात्रों की रचनात्मक प्रतिभा को विकसित करना है। मातृभाषा के माध्यम से ही छात्र अपने विचारों एवं मनोभावों को स्पष्टता तथा प्रभावोत्पादकता से व्यक्त करता है। भाषा का यह सफल आधार उसे मौलिक सर्जनात्मक अभिव्यक्ति की कुशलता प्रदान करता है। इस प्रकार मातृभाषा उसकी रचनात्मक प्रवृत्ति को जागृत एवं विकसित करने में समर्थ होती है।

अपनी प्रगति जांचिए

5. हिंदी भाषा शिक्षण की व्यवस्थित शुरुआत कहां से हुई?
   (क) दिल्ली (ख) बंगाल (कलकत्ता)
   (ग) गुजरात (घ) उत्तर प्रदेश
6. माध्यमिक स्तर पर हिंदी शिक्षण के लक्ष्य को किस रूप में देखा जा सकता है?
   (क) भाव प्रकाशन (ख) भाव ग्रहण
   (ग) सृजनात्मक (घ) उपरोक्त सभी

1.5 विद्यालयीन पाठ्यचर्या में हिंदी : एक सामान्य परिचय

सुनना, बोलना, पढ़ना एवं लिखना – इन सभी क्रियाओं द्वारा पाठ्यचर्या में हिंदी को समझना – इस समूचे अभिक्रम को श्रवण, वाचन (मौखिक), पठन एवं लेखन कौशल के रूप में व्यवस्थित रूप से इस प्रकार समझा जा सकता है–

1.5.1 श्रवण कौशल

मनुष्य भाषा के आधार पर विचारों का आदान–प्रदान करता है। भाषा के दो रूप हैं– मौखिक एवं लिखित।

मौखिक रूप का प्रयोग करने के लिए वह सुनने व बोलने की क्रिया करता है।

लिखित रूप का प्रयोग हम पढ़ने व लिखने के लिए करते हैं।

'श्रवण' शब्द 'श्रु' धातु से बना है जिसका अर्थ है– 'सुनना'। श्रवणेन्द्रिय द्वारा वक्ता की वाणी से उच्चरित ध्वनियों को स्वीकार कर मस्तिष्क द्वारा उसकी अनुभूति करने को

टिप्पणी

'श्रवण' कहा जाता है। श्रवण में मनुष्य कही गई बातों को समझता है व जो बात वह सुनता है उस पर चिंतन – मनन करता है व चिंतन के बाद उस पर मंतव्य स्थिर करने आदि का कार्य करता है। इसमें श्रुत सामग्री का अर्थ, सारांश व भाव ग्रहण करना, सामग्री के उपयोगी व रुचिकर अंशों का चयन कर सकना, आवश्यकतानुसार उनका प्रयोग कर सकना, विचारों, भावों एवं तथ्यों का मूल्यांकन कर सकना, श्रुत सामग्री के विषय की गंभीरता तथा उसके परस्पर संबंध को समझना, उच्चारण के सूक्ष्म अंतर को समझना, शब्द शक्तियों एवं हास्य–व्यंग्य आदि को समझना शामिल है।

भाषा सीखने का प्रथम चरण 'श्रवण' है। यह भाषा के चारों कौशलों में से पहला कौशल होता है। यह हमारे बाकी कौशलों को विकसित करता है। किसी बात को सुनने से ही हमारे मानसिक व शारीरिक कार्य संपन्न होते हैं। श्रवण सीखने में सहायक होता है जो सुन नहीं सकता, वह गूंगा रह जाता है।

श्रवण का महत्व

श्रवण एक बुनियादी कौशल है जो बालक की समग्र शिक्षा को प्रभावित करता है। अन्य कौशलों में प्रवीण होने के लिए श्रवण कौशल की अनिवार्यता निर्विवाद है। श्रवण कौशल अभिव्यक्ति कौशल विकसित करने का प्रवेश द्वार है। एक अच्छा श्रोता ही एक अच्छा वक्ता बन सकता है। जो शांत रहकर दूसरों की बात सुनते हैं वे ही अपने विचारों को व्यक्त करते हुए ठोस तर्क प्रस्तुत कर सकते हैं। शिक्षक के आदर्श वाचन को सुनकर ही छात्र अनुकरण वाचन करके पढ़ना सीखते हैं। जो ध्यानपूर्वक नहीं सुनता वह लिखने में भी पिछड़ जाता है। बालक श्रुतलेख के माध्यम से शुद्ध वर्तनी का ज्ञान प्राप्त करता है।

कौशलात्मक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ही नहीं बल्कि ज्ञानात्मक, सृजनात्मक, सौंदर्यात्मक एवं अभिवृत्यात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति में भी श्रवण कौशल महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। साहित्य की विभिन्न विधाओं के रसास्वादन के लिए श्रवण कौशल का विकास होना आवश्यक है। कविता का रसास्वादन जितना सुनकर होता है, उतना पढ़कर नहीं!

बच्चा जन्मोपरांत ही सुनने लग जाता है। ये ध्वनियां उसके मन–मस्तिष्क पर अंकित हो जाती हैं। ये अंकित ध्वनियां ही बच्चे के भाषा ज्ञान का आधार बनती हैं। अच्छी प्रकार से सुनने के कारण ही बालक ध्वनियों के सूक्ष्म अंतर को समझ पाता है। निम्न श्रवण कौशलों को विकसित करने का प्रमुख आधार बनता है–

1. ध्वनियों के सूक्ष्म अंतर को पहचानना।
2. अध्ययन की आधारशिला।
3. भाषा शिक्षण के उद्देश्यों की प्राप्ति।
4. वाचन कौशल का विकास।
5. लेखन कौशल का विकास।
6. व्यक्तित्व का विकास।
7. विभिन्न साहित्यिक व सांस्कृतिक कार्यक्रमों की प्राप्ति में सहायक।

श्रवण कौशल शिक्षण के उद्देश्य

1. सुनकर अर्थ ग्रहण करने की योग्यता का विकास करना।
2. किसी भी श्रुत सामग्री को मनोयोग पूर्वक सुनने की प्रेरणा प्रदान करना।
3. वक्ता में मनोभावों की निपुणता पैदा करना।
4. श्रुत सामग्री के विषय को भली–भांति समझने की योग्यता उत्पन्न करना।
5. श्रुत सामग्री के विषय के महत्वपूर्ण एवं मर्मस्पर्शी विचारों, भावों एवं तथ्यों का चयन करने की क्षमता प्रदान करना।
6. विद्यार्थियों में ध्वनियों, शब्दों का शुद्ध उच्चारण तथा स्वर, गति, लय और प्रवाह के साथ पढ़ने की योग्यता विकसित करना।
7. छात्रों की मौलिकता में वृद्धि करना।
8. छात्रों का मानसिक एवं बौद्धिक विकास करना।
9. छात्रों में भाषा व साहित्य के प्रति रुचि पैदा करना।
10. छात्रों को साहित्यिक गतिविधियों में भाग लेने व सुनने के लिए प्रेरित करना।
11. श्रुत सामग्री का सारांश ग्रहण करने की योग्यता विकसित करना।
12. मातृभाषा की सभी ध्वनियों को सुनकर उनमें भेद कर सकना।
13. सुनने के शिष्टाचार का पालन करना।
14. वक्ता के मनोभावों– हर्ष, शोक, क्रोध, आश्चर्य, घृणा आदि को समझना।
15. शुद्ध और अशुद्ध उच्चारण में भेद कर सकना।

श्रवण के प्रकार

श्रवण प्रक्रिया के मुख्य तीन प्रकार हैं– 1. अवधानात्मक श्रवण, 2. रसात्मक श्रवण, 3. विश्लेषणात्मक श्रवण।

1. **अवधानात्मक श्रवण**– अवधानात्मक श्रवण का अर्थ है कि विद्यार्थी जो भी विषय सुने उसे अच्छी तरह समझ सके। इसके लिए, विद्यार्थी से श्रुत सामग्री के मुख्य विचार सुनने चाहिए एवं उन्हें श्यामपट्ट या कापियों पर लिखने के लिए कहना चाहिए। अवधानात्मक श्रवण शेष दो श्रवण के प्रकारों का आधार है।
2. **रसात्मक श्रवण**– श्रोता द्वारा आनंद की अनुभूति करना, जो कि उचित भावभंगिमा एवं लहजे में सुनाई गई विषय–वस्तु द्वारा उत्पन्न होती है, रसात्मक श्रवण कहलाता है। कविता ही इसका सर्वश्रेष्ठ साधन है। कविता द्वारा ही इस कौशल का विकास किया जा सकता है।
3. **विश्लेषणात्मक श्रवण**– इसमें श्रोता सुने हुए विषय पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार करता है तथा उसका मूल्यांकन करके निष्कर्ष निकालता है। हिंदी शिक्षक को इस शक्ति के विकास का अवसर बच्चों को देना चाहिए।

कुछ शिक्षाशास्त्रियों का मानना है कि अवधानात्मक श्रवण एवं रसात्मक श्रवण के समय श्रोता व वाचक के बीच कोई व्यवधान न हो जिससे विद्यार्थी वाचक की बात को सुन सकें। विश्लेषणात्मक श्रवण में यह आवश्यक है कि विद्यार्थी वाचक के साथ–साथ स्वयं भी पुस्तक पढ़ता रहे, तभी वह विषय–वस्तु का तुलनात्मक विश्लेषण कर सकता है।

अच्छे श्रोता/श्रवण के गुण

भाषा सीखने का मनोवैज्ञानिक क्रम– सुनना, बोलना, पढ़ना व लिखना है। बालक में भाषा को सीखने की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। जब वह अपने बड़ों या वयस्कों को बोलते हुए सुनता है, उनके संपर्क में आता है तब अनुकरण द्वारा बालक सहजभाव से भाषा सीखता है। भाषा, संपर्क, अनुकरण और अभ्यास द्वारा अर्जित की जाती है। सुनने की योग्यता का मूलाधार सावधानी है। प्रसन्नतापूर्वक सुनने वाले को सुश्रवा कहते हैं। एक अच्छा सुनने वाला व्यक्ति श्रेष्ठ होता है, वह बुद्धिमान भी होता है। सुनने में कमी के कारण भाषा को सीखने में रुकावट आती है। एक अच्छा सुनने वाला सभी सुनने के दोषों से मुक्त होता है। एक अच्छा सुनने वाले व्यक्ति या बालक में निम्नलिखित गुण होने चाहिए–

- अच्छा श्रोता सुनने के प्रति रुचि रखता है। वह वक्ता के प्रति अभिमुख होता है और अपलक रहकर उसकी बात ध्यानपूर्वक सुनता है।
- अच्छा श्रोता वक्ता की बात को सुनकर अनसुनी नहीं करता है अर्थात बात को एक कान से सुनकर दूसरे कान से निकालता नहीं है। सुनने वाला वक्ता के वक्तव्य से उन तमाम सूचनाओं को ग्रहण कर लेता है जिनके आधार पर वक्ता वक्तव्य देता है। सूचना के कई रूप हो सकते हैं जैसे कही बात सुनकर तथ्य, आंकड़े तथा जानकारी ग्रहण करना। ये सभी सुनी गई बातों के प्रति संवेदनशीलता को ही दर्शाने वाले तत्व हैं।
- वह सुनने के प्रति शिष्टाचार का पालन करता है तथा सुनने के नियमों का पालन करता है।
- वह ध्यानपूर्वक व धैर्यपूर्वक, पूर्ण मनोयोग से वक्ता की बात को सुनता है। वह हर स्थिति में चित्तवृत्तियों का निरोध कर एकाग्रता को बनाए रखता है। वह सावधान, अनुभासिक व जागरूक रहता है। वह अनावश्यक चंचलता का त्याग करता है तथा ग्रहणशीलता को बनाए रखता है।
- वह वक्ता के सभी कथनों की क्रमबद्धता को समझता है।
- वह स्वराघात, बलाघात व स्वर के उतार–चढ़ाव के अनुसार अर्थग्रहण करता है।
- वह वक्ता की बात को सुनकर सही अर्थ ग्रहण करने की क्षमता रखता है।
- वह पूर्व ज्ञान का लाभ उठाकर नए ज्ञान को ग्रहण करता है तथा उससे दूसरों को लाभ पहुंचाता है।

टिप्पणी

- वह सभी प्रकार के सुनने व बोलने में आने वाले दोषों से मुक्त होता है।
- एक अच्छा सुनने वाला व्यक्ति अल्पप्राण–महाप्राण, श, ष, स, ह्रस्व–दीर्घ, अनुस्वार– अनुनासिक, ड, ढ़, क़, ख़, ग़, ज़, फ़, विसर्ग, ह आदि ध्वनियों के सूक्ष्म अंतर को समझता है।
- एक अच्छा सुनने वाला व्यक्ति श्रवणेन्द्रिय को व्यवस्थित व प्रशिक्षित कर अभ्यास द्वारा उसका दृढ़ीकरण करता है।
- वह कहानी, कविता सुनकर मनोरंजन व रसास्वादन कर सकता है।
- वह लक्षणा व व्यंजना शब्द शक्तियों को समझकर उनके अनुरूप अर्थ ग्रहण करता है।
- वह वक्ता के औपचारिक व अनौपचारिक कथनों में अंतर कर सकता है।
- वह वक्ता के मनोभाव, उद्देश्य व आशय को प्रसंगानुकूल समझ सकता है।
- वह श्रुत सामग्री के विषय की गंभीरता को समझता है।
- वह सुनकर शुद्ध श्रुतलेख लिख सकता है।
- वह दिए गए आदेशों–निर्देशों को समझकर उनका पालन करने हेतु प्रवृत होता है।
- वह सार को ग्रहण करने व अनावश्यक को त्यागने की योग्यता रखता है।
- वह वक्ता के प्रति आवेग आदि को त्यागकर विनम्रता प्रदर्शित करता है।
- वह श्रुत विचारों, भावों, तथ्यों का परस्पर संबंध समझता है।

शिक्षक कक्षा की दुनिया का महत्वपूर्ण संवाहक होता है। उसका दायित्व है कि वह विद्यार्थियों में अच्छे श्रोता के गुणों का समावेश करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करे और कक्षा में कही गई बातों के प्रति संवेदनशील एवं ग्रहणशील बनने में उनकी मदद करे। तभी सुनने अथवा श्रवण कौशल का सार्थक विकास विद्यार्थियों में हो सकेगा।

श्रवण कौशल के विकास की विधियां

भाषा शिक्षण के लिए किसी भी विधि को अपनाया जाए उसमें श्रवण कौशल शिक्षण प्रमुख होता है। शिक्षकों द्वारा समय–समय पर दिए गए निर्देशों को सुनकर विद्यार्थियों के श्रवण कौशल का विकास होता है। शिक्षण की प्रत्येक गतिविधि, जिसमें अध्यापक या अन्य कोई बोले और छात्र जिसे सुने, श्रवण शिक्षण विधि के अंतर्गत आती है। इन गतिविधियों में श्रवण कौशल विकास मुख्य उद्देश्य न होकर सामान्य उद्देश्य होता है। यहां केवल वे विधियां विचारणीय हैं जिनका मुख्य उद्देश्य सुनने की क्षमता/कौशल का विकास करना होता है। छात्रों के सुनने के कौशल का विकास करने के लिए श्रुत सामग्री उपलब्ध कराने हेतु शिक्षक निम्नलिखित विधियां अपना सकता है, जिन्हें श्रवण शिक्षण की विधियां कहा जाता है–

• वाचन

गद्य या पद्य का पाठ पढ़ाते समय अध्यापक पाठ का सस्वर आदर्श वाचन करते हैं। अध्यापक शुद्ध उच्चारण, उतार–चढ़ाव, बलाघात, अनुतान, हाव–भाव आदि को ध्यान में रखकर पाठ का सस्वर वाचन करते हैं तथा सभी छात्रों से बारी–बारी से सस्वर अनुकरण वाचन कराते हैं। वाचन के समय अध्यापक या कोई एक छात्र पढ़ता है शेष उसे ध्यानपूर्वक सुनते हैं। अध्यापक के सस्वर वाचन के बाद विद्यार्थी भी पाठ का सस्वर वाचन, जैसा कि अध्यापक ने किया था उसको ध्यान में रखकर करते हैं। इससे बालकों में श्रवण कौशल का विकास होता है। साथ–साथ वे शुद्ध उच्चारण, बलाघात, अनुतान आदि का ज्ञान भी प्राप्त करते हैं। इसके अंतर्गत यदि शिक्षक विद्यार्थियों से वाचन से संबंधित प्रश्न पूछता है, तब विद्यार्थी और भी सचेत हो कर वाचन सुनते हैं जिससे सुनने की शक्ति का विकास होता है।

• श्रुतलेख

श्रुतलेख को लेखन कौशल विकसित करने के साधन के रूप में प्रयोग में लाया जाता है लेकिन इसकी सहायता से श्रवण कौशल को भी विकसित किया जा सकता है। श्रुतलेख में विद्यार्थी को सुनकर लिखना होता है। जो विद्यार्थी ध्यान से नहीं सुनेगा वह शुद्ध रूप में लिख भी नहीं सकेगा। ध्यान से सुनने पर ही सही रूप में लिखा जा सकता है। श्रुतलेख में विद्यार्थी ध्यान से सुनने के लिए बाध्य होता है जिससे बालकों में सुनने के कौशल का विकास होता है।

• प्रश्न पूछकर

अध्यापक शिक्षण के साथ–साथ विद्यार्थियों से विभिन्न प्रकार के प्रश्न पूछकर उनके सुनने के कौशल का विकास कर सकता है। जब विद्यार्थी को प्रश्न का उत्तर देना होता है तो प्रश्न को बहुत ध्यानपूर्वक सुनता है। जैसे यदि अध्यापक को 10–15 वाक्यों के एक निबंध की रचना करानी है तो अध्यापक को प्रत्येक वाक्य पर ऐसे प्रश्नों की रचना करनी चाहिए जिसका वही उत्तर हो जो अध्यापक चाहता है। छात्रों से बारी–बारी उत्तर पूछकर श्यामपट्ट पर लिखें। इससे छात्रों के रचना कौशल व मौखिक अभिव्यक्ति के विकास के साथ–साथ सुनने के कौशल का भी विकास होगा। सुनने के कौशल में वाचन कौशल अपने आप ही समाहित हो जाता है। यदि विद्यार्थी उचित रूप से प्रश्नों को नहीं सुनेंगे तो उत्तर बताने में भी कठिनाई उत्पन्न होगी।

• भाषण

भाषण, मौखिक अभिव्यक्ति को विकसित करने की विधि है परंतु इसके माध्यम से सुनने के कौशल को भी विकसित किया जा सकता है। भाषण में कोई एक, अध्यापक या विद्यार्थी बोलता है। शेष विद्यार्थी उसे सुनते हैं। सुनने के कौशल के विकास हेतु भाषण का प्रयोग करने के लिए विद्यार्थी को भाषण से पहले यह बता देना जरूरी है कि भाषण के बाद उनसे कुछ प्रश्न पूछे जाएंगे। ऐसा करने से विद्यार्थी भाषण को ध्यानपूर्वक

सुनेंगे। भाषण के लिए समय–समय पर बाहर से विषय–विशेषज्ञों को आमंत्रित करके सुनने के कौशल का विकास किया जा सकता है।

- **साहित्यिक व सांस्कृतिक गतिविधियां**

विद्यालयों में विभिन्न साहित्यिक व सांस्कृतिक गतिविधियों का आयोजन करके भी छात्रों के सुनने के कौशलों का विकास किया जा सकता है। उपयुक्त भाषण, वाद–विवाद आदि के अतिरिक्त नाटक–मंचन, गीत व कविता पाठ, अंत्याक्षरी, समाचार वाचन आदि पर आयोजित प्रतियोगिताओं एवं विभिन्न दिवसों, पर्वों आदि के अवसर पर आयोजित विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से भी सुनने के कौशल का विकास किया जा सकता है। इसके अंतर्गत विभिन्न गतिविधियां आ जाती हैं, जैसे– बातचीत/वार्तालाप/सुनो–कहो आदि।

वार्तालाप या बातचीत सुनने के कौशल का सही लोकतांत्रिक माध्यम है जिसके अंतर्गत सुनने वाले की भूमिका लगातार बदलती रहती है। सुनने वाले की बदलती भूमिका ही सुनने के कौशल को अधिक विकसित करती है। सुनने के कौशल के अंतर्गत 'सुने हुए के प्रति' प्रतिक्रिया व्यक्त करना भी सम्मिलित हैं। वार्तालाप एवं बातचीत में हम यही करते हैं। विद्यार्थियों के लिए बातचीत उनके अपने अनुभवों की समूहगत स्वीकृति भी है। आपसी बातचीत में ही विद्यार्थी अपनी सोच की सामाजिक परख करता है। विद्यार्थियों के अपने अस्तित्व को समझने के लिए भी बातचीत बड़ी भूमिका अदा करती है।

विद्यार्थियों की दृष्टि से वार्तालाप भाषा को जानने–परखने का साधन है। वार्तालाप के दौरान विद्यार्थियों में निम्नांकित प्रकार के परिवर्तन दिखाई देते हैं–

(क) बातचीत सुनकर विद्यार्थी अपने अनुभव, कल्पना और अनुमान के द्वारा उत्तर देते हैं।

(ख) तुरंत प्रतिक्रिया देने की प्रवृत्ति का भी बातचीत द्वारा विकास होता है।

(ग) बातचीत के द्वारा विद्यार्थी अपने साथी के हाव–भाव तथा भावनाओं को भी समझना सीखते हैं।

(घ) सबसे महत्वपूर्ण है– बातचीत द्वारा विद्यार्थी को भाषा पर अधिकार की संतुष्टि और आनंद की प्राप्ति होती है।

(ङ) विद्यार्थी स्वतंत्र निर्णय लेने की क्षमताओं का विकास करते हैं।

(च) वे भाषा की महत्वपूर्ण क्षमताएं–तर्क और विश्लेषण करना भी बातचीत के माध्यम से सीखते हैं।

बातचीत के विषय

(क) विद्यार्थियों के अपने अनुभव

(ख) विद्यालयी अनुभव

(ग) आस–पड़ोस के अनुभव

(घ) आदतें, इच्छाएं, व्यवहार के अनुभव

टिप्पणी

- **आदेश–निर्देश**

शिक्षक समय–समय पर विद्यार्थी को आदेश देते हैं। आदेश महत्वपूर्ण होते हैं। इन्हें ध्यान पूर्वक न सुनने से विद्यार्थी को समस्या का सामना करना पड़ सकता है। अतः आदेशों को ध्यान से सुनना छात्रों के लिए अनिवार्य हो जाता है। आदेशों की तरह अध्यापक विद्यार्थी को निर्देश भी देते हैं। जैसे– किसी भी प्रयोग या खेल खेलने से पहले अध्यापक द्वारा विद्यार्थी को निर्देश दिए जाते हैं कि पहले यह करना, उसके बाद यह करना है, फिर यह आदि। यदि विद्यार्थी अध्यापक द्वारा दिए गए निर्देशों को ध्यान से नहीं सुनेगा तो वह गलतियां करेगा। गतिविधि को नहीं समझ पाएगा। इसीलिए छात्रों के लिए आदेश–निर्देश सुनने जरूरी होते हैं जिसके माध्यम से श्रवण कौशल का विकास किया जा सकता है।

- **कहानी कहना व सुनना**

कहानी में बच्चों की अधिक रुचि होती है। कहानी के माध्यम से बच्चों में सुनने के कौशल का विकास किया जा सकता है। अध्यापक सर्वप्रथम कहानी सुनाए फिर विद्यार्थियों से एक–एक करके कहानी सुने। अध्यापक या अन्य छात्रों द्वारा सुनाई गई कहानी को सुनकर छात्रों के सुनने के कौशल का विकास होना तय है। अध्यापक द्वारा कहानी कहने के बाद विद्यार्थियों से पुनः वही कहानी सुनने से उनके श्रवण कौशल का मूल्यांकन भी किया जा सकता है। इससे उनमें मौखिक अभिव्यक्ति का भी विकास होगा। सुनने के कौशल को बढ़ाने के लिए यह विधि काफी रोचक है। इसके माध्यम से छात्र कहानी को पूर्ण रुचि एवं मनोयोग से सुनेंगे।

कहानी सुनना, सीखने की दुनिया का एक रोचक अनुभव है जिसके अंतर्गत शैक्षिक जरूरतों को पूरा करने की काफी संभावनाएं निहित हैं। इस पद्धति के प्रयोग से–

- विद्यार्थी अपने अनुभवों से साथ कल्पना और अनुमानों को जोड़कर देखते एवं सीखते हैं।
- विद्यार्थी घटनाओं और उनसे उत्पन्न परिणामों के प्रति सचेत होने का भाव विकसित करते हैं।
- भाषा के कुशल प्रयोग के प्रति सचेत होते हैं।
- विद्यार्थी में प्रतिक्रिया व्यक्त करने के कौशल का विकास होता है।
- विद्यार्थी कहानी की घटनाओं के साथ स्वयं काल्पनिक प्रयोग करता है।
- विद्यार्थी पात्रों के विषय में अलग–अलग कल्पनाएं करता है और कई बार उन पात्रों को यथार्थ के धरातल पर उतार कर अपने इर्द–गिर्द महसूस भी करता है।

- **वाद–विवाद**

भाषण की तरह वाद–विवाद भी श्रवण कौशल की उपयोगी विधि है। किसी विषय पर वाद–विवाद कराकर विद्यार्थियों के सुनने के कौशल को विकसित किया जा सकता है। वाद–विवाद में भाग लेने वाले विद्यार्थियों को तो हर बात ध्यान से सुननी ही होगी क्योंकि उसके बिना न तो वे प्रश्नों के उत्तर दे सकते हैं और न ही तर्क कर सकते हैं। वाद–विवाद के प्रति समूची कक्षा को सावधान करना चाहिए जिससे न केवल वाद–विवाद में भाग लेने वाले अपितु सभी छात्रों के सुनने के कौशल का विकास हो। इसके अंतर्गत एक विद्यार्थी विषय के पक्ष में तर्क प्रस्तुत करता है तथा दूसरा विद्यार्थी विपक्ष में तर्क प्रस्तुत करता है। जब तक विद्यार्थी एक–दूसरे के विचारों को पूर्ण मनोयोग से नहीं सुनेंगे तब तक अपने विचारों को तर्क सहित प्रस्तुत नहीं कर सकेंगे। इसलिए वाद–विवाद में सुनने के कौशल का पूर्ण रूप से विकास किया जा सकता है।

कक्षा के अंतर्गत एक शिक्षक वाद–विवाद के माध्यम से विद्यार्थियों में विभिन्न कौशलों का विकास कर सकता है। इसमें सुनने के साथ–साथ बोलने, तर्क करने इत्यादि का विकास होता है। कक्षा के अंतर्गत इस प्रकार की प्रतियोगिताओं का आयोजन कर एक शिक्षक कक्षा के सभी विद्यार्थियों के सुनने के कौशल का विकास कर सकता है।

श्रवण कौशल को विकसित करने के साधन

शिक्षक विद्यार्थियों के श्रवण कौशल को विकसित करने के लिए इन विधियों को भी साधन के रूप में प्रयोग कर सकता है। ये श्रवण कौशल का विकास करने के साधन के रूप में प्रयोग की जा सकती हैं। दृश्य–श्रव्य उपकरणों के माध्यम से श्रवण कौशल का विकास विद्यार्थियों में भली–भांति किया जा सकता है। प्रमुख श्रव्य–दृश्य उपकरण हैं–

1. ग्रामोफोन एवं टेपरिकॉर्डर

ग्रामोफोन एवं टेपरिकॉर्डर सामान्य रूप से मनोरंजन के साधन के रूप में प्रयुक्त होते हैं परंतु इनका प्रयोग श्रवण कौशल को विकसित करने के लिए भी किया जा सकता है। इन साधनों द्वारा छात्रों को गीत, कहानी, कविता, संवाद आदि सुनाकर उनके श्रवण कौशल का विकास किया जा सकता है। भाषा शिक्षण में इनका विशेष महत्व है इसीलिए भाषा शिक्षण में इनका उपयोग लाभकारी सिद्ध हो सकता है। विभिन्न भाषणों व उपदेशों के रिकॉर्ड सुनाकर छात्रों के श्रवण कौशल के विकास के साथ–साथ उनको नैतिक शिक्षा व साहित्य का ज्ञान प्रदान किया जा सकता है। इन उपकरणों की सहायता से शुद्ध उच्चारण, अभिव्यक्ति की विभिन्न शैलियां, शब्द भंडार में वृद्धि और साहित्य के प्रति रुचि भी उत्पन्न की जा सकती है। ज्यादातर बच्चों को गीत, कहानी, कविता इत्यादि सुनना अच्छा लगता है। इसलिए एक शिक्षक को विद्यार्थियों की रुचि के अनुरूप ये सुनाकर भाषा शिक्षण के उद्देश्यों की पूर्ति करनी चाहिए।

ग्रामोफोन एवं टेपरिकॉर्डर द्वारा श्रवण कौशल वृद्धि

- कक्षा में विद्याथियों को अलग–अलग आवाजें, टेपरिकॉर्डर की मदद से सुनाई जा सकती हैं। विद्यार्थियों को उन आवाजों को ध्यानपूर्वक सुनने के लिए कहें फिर विद्यार्थियों से पूछें कि ये आवाजें किसकी हैं?
- अच्छी–अच्छी कहानियों को टेपरिकॉर्डर की मदद से विद्यार्थियों को सुनवाएं जिससे शिक्षण में एक नयापन आएगा साथ ही विद्यार्थियों में मनोयोग से सुनने की कला भी विकसित होगी।
- अनुभव एवं परीक्षण यह पुष्टि करते हैं कि विद्यार्थियों को अपनी तथा अपने आस–पास के लोगों की आवाजें अधिक पसंद होती हैं इसलिए टेपरिकॉर्डर की मदद से शिक्षक विद्यार्थियों की आवाजों में कहानियां, घटनाएं, कविताएं आदि भर कर कक्षा में सुना सकते हैं। इस प्रकार वे टेप की गई अपनी आवाजों को ध्यानपूर्वक एवं कौतूहल के साथ सुनेंगे।
- शिक्षक विद्यार्थियों की आवाजें, उन्हें बिना बताए भी टेप कर सकते हैं जिन्हें सुनना उनके लिए आनंददायक तो होगा ही साथ ही उन बहुत–सी आवाजों के बीच स्वयं की आवाज के प्रति उनकी संवेदनशीलता भी बढ़ेगी। यह विधि विद्यार्थियों में सुनने के प्रति एकाग्रता उत्पन्न करेगी।
- टेपरिकॉर्डर द्वारा विभिन्न विचारकों, साहित्यकारों आदि की आवाजें एवं जीवनियां भी विद्यार्थियों को सुनाई जा सकती हैं।

2. रेडियो

रेडियो का भाषा शिक्षण में विशेष महत्व है। श्रव्य–साधन स्वरूप रेडियो श्रवण कौशलों के विकास का अत्यंत महत्वपूर्ण साधन है। एकाग्रचित्त होकर सुनने का जितना अभ्यास रेडियो द्वारा किया जा सकता है उतना किसी अन्य साधन द्वारा संभव नहीं है। इसमें हमें एक बात बस एक ही बार सुनाई जाती है और श्रोता को इसीलिए ध्यानपूर्वक सुनना पड़ता है। रेडियो के कार्यक्रमों को सुनते समय केवल कान और मस्तिष्क सक्रिय रहते हैं इसीलिए एकाग्रचित्त होना अपेक्षाकृत आसान हो जाता है। आकाशवाणी से कभी–कभी भाषा सिखाने के कार्यक्रम भी प्रसारित होते हैं जो कि विद्यार्थियों के लिए अत्यंत उपयोगी हैं। आकाशवाणी के विभिन्न केंद्रों से कई प्रकार के कार्यक्रम– भाषण, समाचार, नाटक, कविता पाठ, वाद–विवाद, कहानी आदि समय–समय पर प्रसारित होते रहते हैं। शिक्षक को विभिन्न आयु–वर्ग के बच्चों को उनके लिए उपयोगी कार्यक्रमों के संबंध में बताना चाहिए और विद्यार्थियों को उन कार्यक्रमों को सुनने के लिए प्रेरित करना चाहिए। इसके लिए अध्यापक को स्वयं भी इन कार्यक्रमों के प्रति रुचि प्रकट करनी चाहिए। उसे पहले स्वयं ये कार्यक्रम सुनने चाहिए तथा इनके संबंध में विद्यार्थियों से विचार–विमर्श करना चाहिए ताकि विद्यार्थियों की भी इन कार्यक्रमों में अधिक से अधिक रुचि उत्पन्न हो सके।

टिप्पणी

रेडियो द्वारा प्रसारित कार्यक्रमों से जहां एक ओर विद्यार्थियों के ज्ञान में वृद्धि होती है, वहीं दूसरी ओर विद्यार्थी शुद्ध उच्चारण, शब्दों, मुहावरों और लोकोक्तियों का सही रूप में प्रयोग करना भी सीखते हैं। आकाशवाणी के प्रसारण का पूरा लाभ उठाने के लिए आकाशवाणी केंद्र के अधिकारियों एवं कर्मचारियों का विद्यालय के साथ सक्रिय रूप से संपर्क होना भी आवश्यक है। शिक्षक को रेडियो कार्यक्रमों की जानकारी होनी चाहिए जिससे वह उचित समय पर कार्यक्रम सुनाकर विद्यार्थियों के श्रवण कौशल का विकास कर सके।

3. दूरदर्शन तथा सिनेमा

दृश्य साधन के रूप में दूरदर्शन एवं सिनेमा भी श्रवण कौशल के प्रशिक्षण एवं अभ्यास के बहुत ही शक्तिशाली साधन हैं। यद्यपि ये मुख्य रूप से मनोरंजन के साधन हैं परंतु अध्यापकों के उचित मार्गदर्शन से इन्हें भाषा के विभिन्न कौशलों के शिक्षण के लिए भी प्रयोग में लाया जा सकता है। इनमें आवाज सुनाई देने के साथ–साथ दृश्य भी दिखाई देता है जिससे ऐसा ज्ञात होता है कि जो दिखाई दे रहा है वह पूर्ण रूप से सत्य है और घटित हो रहा है।

दूरदर्शन व चलचित्र आदि के माध्यम से प्रस्तुत नाटक व कार्यक्रमों से विद्यार्थी अपनी दृश्य इंद्रियों का उचित प्रयोग कर शुद्ध उच्चारण, विविध भावों तथा परिस्थितियों के लिए उचित शब्दावली तथा अभिव्यक्ति की विविध शैलियां सीख जाते हैं। इनके माध्यम से ध्यानपूर्वक और मनोयोग से सुनने तथा सुनकर समझने की क्षमता का विकास होता है। आज के इस दौर में बच्चों पर सबसे अधिक दूरदर्शन (टी.वी.) का प्रभाव पड़ रहा है। दूरदर्शन एक ऐसा माध्यम है जो कई माध्यमों को अपने अंदर समेटे हुए है, जैसे–

- **प्रभावी दृश्य माध्यम**– देखने का प्रभावशाली माध्यम, मन पर अनोखा असर डालने वाला।
- **श्रव्य माध्यम**– सुनी जाने वाली जादुई ध्वनियां प्रभाव क्षमता बढ़ाती हैं।
- **अन्य ऐंद्रिक प्रभाव**– आंख और कान के कौशलपूर्ण उपयोग के अतिरिक्त इस माध्यम की चल–चित्रात्मक विशेषताओं के कारण यह स्पर्श, गंध और स्वाद के काल्पनिक अनुभवों को बच्चे के मन–मस्तिष्क तक पहुंचाने में बहुत ही कामगार साबित हुआ है।

टी.वी. के दिखते–बोलते जादू के कारण इसका प्रभाव हमारी सुनने की क्षमता या कौशल पर जादुई रूप से पड़ता है। श्रवण कौशल शिक्षण के माध्यम से विद्यार्थियों में ध्यानपूर्वक सुनने, वक्ता के भावों को समझने, ध्वनियों में भेद करने आदि क्षमताओं को विकसित किया जा सकता है।

श्रवण कौशल में दूरदर्शन की उपयोगिता

श्रवण कौशल में दूरदर्शन का प्रभाव अन्य माध्यमों के प्रभाव से अधिक पड़ता है। इसके निम्नलिखित कारण हैं–

- वक्ता का आकर्षक व्यक्तित्व।
- वक्ता (जिसे सुना जा रहा है) को सुनने के साथ–साथ देखा भी जा सकता है।
- बोली जा रही सामग्री के साथ–साथ दृश्य सामग्री द्वारा पुष्टि की जा रही होती है।
- टी.वी. देखते समय विद्यार्थी इतने एकाग्रचित होते हैं कि वे सुनने की सभी महत्वपूर्ण शर्तों को पूरा करते हैं।

टिप्पणी

अध्यापक को भाषा कौशल पर आधारित एवं अन्य शिक्षण–सामग्री की सीडी विद्यार्थियों को दिखानी चाहिए। अध्यापक को विद्यार्थियों को ऐसे चैनलों तथा कार्यक्रमों की जानकारी देनी चाहिए जिनका शैक्षिक उपयोग संभव हो। अध्यापक को विद्यार्थियों की श्रवण क्षमताओं का विकास करने के लिए भरसक प्रयास करने चाहिए।

बच्चों को टी.वी. देखना बहुत अच्छा लगता है। इसीलिए शिक्षक को विद्यार्थियों को टी.वी. पर ऐसे–ऐसे कार्यक्रम दिखाने चाहिए व देखने के लिए प्रेरित करना चाहिए जिनसे उनकी श्रवण कौशल की क्षमताओं का अधिकाधिक विकास हो सके।

भाषा अध्यापक को चाहिए कि वह ऐसी स्थितियों को प्रोत्साहित करे जिससे सुनने की सक्रियता अधिक से अधिक बढ़े। विद्यार्थी भाषा की सभी संरचनाओं को पकड़ कर उनका प्रयोग कर सकें। ऐसा तभी संभव होगा जब कक्षा को जीवंत बनाने का प्रयास किया जाएगा। एक जीवंत कक्षा समृद्ध भाषा की संभावनाओं को पैदा करने की अपार क्षमताएं रखती है। श्रवण कौशल जैसे आधारभूत कौशल को हल्के से नहीं लेना चाहिए। आगे पढ़ाई और लिखाई जाने वाली भाषा पर इसका पूर्ण असर देखने को मिलता है। नई–नई रोचक विधियों द्वारा विद्यार्थियों में ऐसी दक्षताएं उभारी जा सकती हैं जिनसे उनकी सुनने की योग्यताओं में निखार आए। श्रवण कौशल के लिए कौन–सी विधि का उपयोग किया जाए, इस प्रश्न के उत्तर में किसी एक विधि का नाम नहीं लिया जा सकता। शिक्षक कई विधियों एवं साधनों का प्रयोग करके श्रवण कौशल को संवेदनशील बना सकते हैं।

1.5.2 वाचन (मौखिक) कौशल

वाचन कौशल का अर्थ– मनुष्य, सामाजिक प्राणी है। वह अपने विचारों का आदान–प्रदान करना चाहता है। इस कार्य के लिए वह भाषा के दो रूपों का प्रयोग करता है– मौखिक एवं लिखित रूप।

"जब व्यक्ति ध्वनियों के माध्यम से भाषा को उच्चरित करता है तो उसे मौखिक अभिव्यक्ति कहते हैं।" इसे बोलचाल भी कहते हैं। अतः मुख से व्यक्त होने वाली भाषा मौखिक भाषा है।

संस्कृत की 'भष्' (भाषा, बोलना, भाषण आदि की व्युत्पत्ति) 'पद्' 'वच्' से बोलना, वचन, वाणी आदि शब्दों की व्युत्पत्ति हुई जिनका संबंध मौखिक रूप से बोलने या भाषण कौशल या अभिव्यक्ति–कौशल से है।

व्यक्ति अधिकांश कार्य व्यापार मौखिक रूप से ही करता है। मौखिक भाषा अधिक सरल व सुविधाजनक होती है तथा वक्ता इसका प्रयोग करके दूसरों को अपनी ओर प्रभावित करता है।

टिप्पणी

मौखिक अभिव्यक्ति

इसके महत्व की दृष्टि से निम्नलिखित बिंदुओं को देखा जा सकता है–

1. दैनिक जीवन में सहायक

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज व परिवार के सदस्यों के साथ अपने विचारों का आदान–प्रदान करता है। मौखिक भाषा अभिव्यक्ति का सरलतम माध्यम है, अतः वह मौखिक रूप का प्रयोग अधिक करता है, लिखित भाषा का नहीं। अशिक्षित व्यक्ति के विचारों के आदान–प्रदान का साधन तो केवल मौखिक भाषा ही है। समाज में विशाल जन–समुदाय को एक साथ संबोधित करने के लिए मौखिक भाषा जरूरी है। आज मनुष्य जाति की कोई भी क्रिया मौखिक भाषा के बिना संभव नहीं है।

2. ज्ञानार्जन में सहायक

मौखिक भाषा ज्ञानार्जन का विशेष साधन है। ज्ञानार्जन के पीछे जो जिज्ञासा रहती है, वह प्रश्न के रूप में मौखिक अभिव्यक्ति से ही प्रकट होती है। मौखिक भाषा से ही बालक को नई–नई जानकारियां प्राप्त होती हैं और उसके ज्ञान में वृद्धि होती है। ज्ञान प्राप्त करने के लिए गुरु और ग्रंथों की आवश्यकता तो है ही, मौखिक अभिव्यक्ति की भी आवश्यकता है। एक अनपढ़ व्यक्ति भी बोलचाल के द्वारा पर्याप्त ज्ञान अर्जित कर सकता है।

3. व्यवसाय में सहायक

विभिन्न व्यावसायिक क्षेत्रों की उन्नति का रहस्य मौखिक अभिव्यक्ति में ही है। विभिन्न व्यवसायों की जानकारी किताबों द्वारा मिल तो जाती है परंतु मौखिक अभिव्यक्ति के द्वारा भी गोष्ठी, सम्मेलन आदि के रूप में भी मिलती है। किसी भी नौकरी के लिए किए गए साक्षात्कार में वे व्यक्ति ही सफल होते हैं जो अपने भावों को प्रभावशाली ढंग से प्रकट करते हैं।

4. मौखिक अभिव्यक्ति व्यवसाय के रूप में

मौखिक अभिव्यक्ति अपने आप में एक व्यवसाय भी है। आजकल क्रय–विक्रय के क्षेत्र में मौखिक अभिव्यक्ति एक व्यवसाय का रूप धारण कर चुकी है। रेलवे स्टेशनों, हवाई अड्डों के उद्घोषक, किसी भी पूछताछ खिड़की पर आसीन अधिकारी, रेडियो पर समाचार वाचक, रेडियो जॉकी आदि व्यवसायों के कर्मचारी मौखिक अभिव्यक्ति के माध्यम से अपनी जीविका अर्जित कर रहे हैं।

5. व्यक्तित्व विकास में सहायक

मौखिक अभिव्यक्ति व्यक्तित्व के विकास का सहज व सुविधापूर्ण साधन है। व्यक्ति का मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विकास तभी संभव है जब वह अपने मन की बात दूसरों के सामने प्रकट कर सके। राजनीतिज्ञों के व्यक्तित्व के विकास का तो आधार ही मौखिक

अभिव्यक्ति है। एक प्रजातांत्रिक राष्ट्र में वही नेता सफल होता है जिसकी अभिव्यक्ति अच्छी होती है। अतः व्यक्तित्व के विकास के लिए मौखिक अभिव्यक्ति उतनी ही आवश्यक है जितना स्वयं हमारा जीवन।

टिप्पणी

6. अध्यापन प्रक्रिया में सहायक

हर समय पढ़ने व लिखने में छात्र थकान अनुभव करने लगता है, जिससे कक्षा के वातावरण में नीरसता आ जाती है। ऐसी स्थिति में मौखिक अभिव्यक्ति कक्षा की नीरसता को दूर कर उसे सजीव बना देती है। अध्यापक अपने भाषण द्वारा छात्रों को कहानी, कविता, गीत आदि सुनाकर उनकी थकान दूर करता है। विद्यालय में पढ़ाए जाने वाले सभी विषयों की शिक्षा में मौखिक अभिव्यक्ति की महत्वपूर्ण भूमिका है।

मौखिक अभिव्यक्ति कौशल शिक्षण के उद्देश्य

मौखिक भाषा का शिक्षण निम्नलिखित उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायक है–

- हिंदी की सभी ध्वनियों व शब्दों का शुद्ध उच्चारण करना।
- भावों के अनुकूल स्वर में उतार–चढ़ाव।
- बोलने में उचित हाव–भाव, आरोह–अवरोह तथा नाटकीयता का निर्वाह करना।
- उचित बलाघात, अनुतान एवं प्रवाह पूर्वक बोल सकना।
- बोलने में हिंदी के मानक रूपों का प्रयोग करना।
- देखी व सुनी गई घटनाओं का वर्णन करना।
- हर्ष, शोक, क्रोध, आश्चर्य आदि अपने मनोभावों को भावपूर्ण ढंग से अभिव्यक्त करना।
- क्रमबद्ध ढंग से विचारों की अभिव्यक्ति करना।
- अपने विचारों को शुद्ध, स्पष्ट, रोचक तथा प्रभावपूर्ण ढंग से व्यक्त करना।
- अपने भाषण को स्थानीय बोली के प्रभाव से मुक्त करना।
- अन्य व्यक्तियों से असहमत होने पर अपनी असहमति विनम्रतापूर्वक प्रकट कर सकना।
- अवसर के अनुकूल भाषा का प्रयोग करना।
- मानक एवं औपचारिक भाषा में भावाभिव्यक्त करने की योग्यता का विकास करना।
- विद्यार्थियों के शब्द भंडार में उपयुक्त, यथाशक्ति एवं यथायोग्य वृद्धि करना।
- अपने साथियों तथा गुरुजनों से निःसंकोच बातचीत करने की योग्यता प्रदान करना।
- विचार एवं भावानुकूल शब्दावली का चयन करने की कला सिखाना।
- साहित्यिक, सामाजिक और वैज्ञानिक परिचर्चाओं में भाग लेना।

मौखिक अभिव्यक्ति के रूप

टिप्पणी

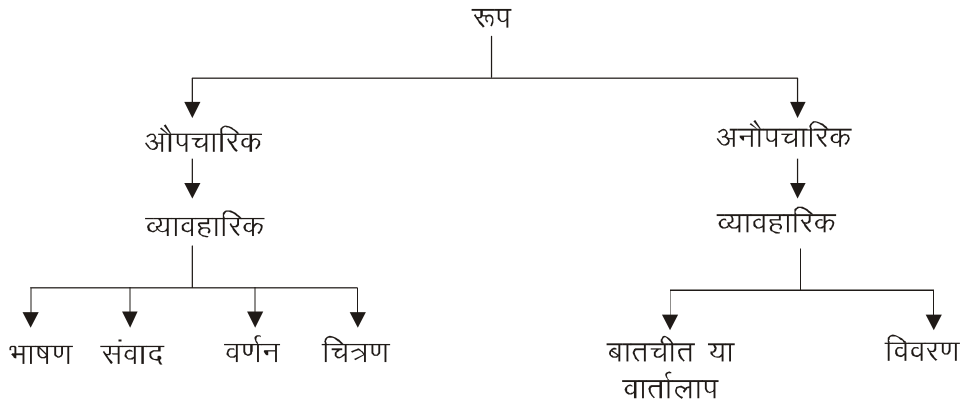

औपचारिक रूप

1. **औपचारिक मौखिक अभिव्यक्ति**– औपचारिक भाषा प्रायः शिक्षित वर्ग या विद्वानों की भाषा होती है, जिसमें शब्द–चयन, विचारों की क्रमबद्धता, शब्दावली तथा वाक्य विन्यास की व्याकरणिक नियमों की दृष्टि से शुद्धता पर अधिक बल दिया जाता है। इस औपचारिक भाषा का प्रयोग प्रायः सरकारी कान्फ्रेंस, सभा, कार्यालयों, कॉलेजों आदि में किया जाता है।
2. **साहित्यिक औपचारिक अभिव्यक्ति**– साहित्यिक अभिव्यक्ति में प्रायः औपचारिक तथा मान्य भाषा का अधिकतर प्रयोग होता है। साहित्यकार अपने साहित्यिक भाषण, कविता, पाठ, संवाद आदि में व्याकरणिक नियमों में आबद्ध, आरोह–अवरोह, उचित, गति, विरामों से युक्त प्रभावशाली ढंग से भावों एवं विचारों को गद्यात्मक या पद्यात्मक रूप में प्रकट करता है। वह भावानुकूल सूक्ति, मुहावरे तथा लोकोक्तियों का प्रयोग करता है।
3. **भाषण**– किसी विषय विशेष पर किसी जनसभा में अपने विचारों, भावों एवं अनुभूतियों की अभिव्यक्ति ही 'भाषण' कहलाती है।
4. **संवाद**– संवाद भी औपचारिक भाषा का ही अंग है। दो अभिनेता या संवादक परस्पर संवाद करते समय, विराम, भावानुकूल हाव–भावों का ध्यान रखते हैं, उपयुक्त शब्द चयन तथा बोलने के लहजे तथा शैली का ध्यान रखते हैं।
5. **वर्णन**– देखी, सुनी तथा अनुभूत घटनाओं का मौखिक रूप से अभिव्यक्तीकरण अथवा प्रस्तुतीकरण ही 'वर्णन' कहलाता है।
6. **चित्रण**– चित्रण किसी घटना, दृश्य, जीवन के किसी अंश का जीता–जागता चित्र होता है जो विषय को स्पष्ट रूप में हृदयपटल एवं नेत्र–पटलों पर चित्रित कर देता है।

अनौपचारिक भाषा रूप

1. **अनौपचारिक मौखिक अभिव्यक्ति**– अनौपचारिक भाषा सामान्यजन की भाषा, बोलचाल की भाषा होती है जो अत्यंत सरल तथा स्वाभाविक होती है।

अनौपचारिक भाषा आस–पास की मिली–जुली भाषा होती है। शब्द–चयन, व्याकरणिक नियमों, शुद्धता आदि की उसमें आवश्यकता नहीं है।

2. **व्यावहारिक रूप**– व्यावहारिक रूप का तात्पर्य है, जीवन में व्यावहारिक रूप से काम आने वाली भाषा अर्थात, घर, पड़ोस, बाजार में जाते समय, खाने–पीने, उठने–बैठने, घूमते समय आदि सभी व्यवहारों में बोली जाने वाली भाषा।
3. **बातचीत या वार्तालाप रूप**– बोलचाल की भाषा का तात्पर्य है बालक–बालिकाओं के प्रतिदिन के काम–काज में प्रयोग में आने वाली सामान्य बोलचाल की भाषा या बोली से है।
4. **विवरण**– विवरण का तात्पर्य निष्पक्ष रूप से किसी सुनी, देखी, कही गई घटना का निष्पक्ष रूप से प्रतिवेदन देना या विवरण प्रस्तुत करना होता है। विवरण में वस्तु या घटना के कारण से लेकर अंतिम रूप तक रिपोर्ट प्रस्तुत की जाती है।

टिप्पणी

मौखिक अभिव्यक्ति या वक्ता के गुण

- **स्पष्टता अथवा शुद्ध आचरण**– शुद्ध आचरण करना वक्ता का सर्वप्रथम गुण है, जिसके बिना श्रोता वक्ता के संदेश या भाव को स्पष्ट रूप से समझने में असमर्थ होगा। अतः भाषा का अशुद्ध उच्चारण वक्ता के प्रयोजन एवं उद्देश्य को व्यर्थ कर देता है।
- **भावानुकूल एवं अवसरानुकूल शब्द–चयन**– वक्ता में अपने भावों तथा संवेगों के अनुसार, दया, वीरता, करुणा, आदेश–निर्देश आदि के अनुसार भाषण में शब्द–चयन करने की योग्यता होनी चाहिए। मधुर तथा शिष्ट शब्दों का प्रयोग करना आना चाहिए। सभा में स्थित व्यक्तियों की स्थिति, पद, आयु, आदि के अनुसार भाषा का प्रयोग करना चाहिए ताकि श्रोता भाव को स्पष्ट रूप से समझकर वक्ता के प्रयोजन अथवा भावों का अनुभव कर सकें।
- **प्रवाहशीलता एवं गतिशीलता**– वक्ता को बोलते समय बीच–बीच में अटकना नहीं चाहिए। उसे एक दक्ष–भाषा–भाषी की तरह अबाध गति से बोलने की कला आनी चाहिए। प्रवाहपूर्ण तथा गतिशील भाषण ही श्रोताओं को अपनी ओर आकर्षित करने में समर्थ होता है।
- **विचारों की क्रमबद्धता**– जिस विषय शीर्षक पर वक्ता बोलना चाहता है, उस विषय के भाव बिखरे हुए नहीं होने चाहिए, न ही आगे–पीछे होने चाहिए अपितु एक निश्चित क्रम में होने चाहिए ताकि श्रोतागण श्रुत विषय–सामग्री को आदि से अंत तक पूर्ण रूप से समझ सकें।
- **प्रभावोत्पादकता**– बड़े–बड़े राजनेताओं और देशभक्तों ने स्वतंत्रता संग्राम में जनता को आजादी के लिए अपने भाषण की प्रभावोत्पादकता के द्वारा ही प्रोत्साहित किया था। जो वक्ता अपने विषय, अभिव्यक्त करने की कला तथा

टिप्पणी

श्रोता इन तीनों के विषय में जानने में जितना कुशल होगा उतना ही अधिक वह अपनी बात को श्रोताओं के हृदय पटल पर अंकित करने में सफल होगा।

- **सरलता**— अच्छे वक्ता की मौखिक अभिव्यक्ति इतनी सरल व सुबोध होनी चाहिए जिसे सब आसानी से समझ सकें। अच्छा वक्ता वही है जो सरल व सुबोध भाषा का प्रयोग प्रभावी ढंग से कर सके।
- **स्वाभाविकता**— अच्छा वक्ता वह है जिसके बोलने में स्वाभाविकता हो। अस्वाभाविक भाषा वक्ता को अविश्वसनीय बना देती है तथा उसका श्रोता पर अपेक्षित प्रभाव नहीं पड़ता। मौखिक अभिव्यक्ति जितनी स्वाभाविक होगी उतनी ही प्रामाणिक व विश्वसनीय समझी जाएगी।
- **सर्वमान्य भाषा**— एक अच्छा वक्ता मौखिक अभिव्यक्ति में सर्वमान्य भाषा का प्रयोग करता है। यदि आपके पिताजी के आने पर कोई कहे कि आपकी माताजी के पति आए हैं। इस प्रकार की भाषा व्याकरणिक दृष्टि से शुद्ध होने पर भी सर्वमान्य नहीं है।
- **मधुरता**— एक अच्छा वक्ता अपनी मौखिक अभिव्यक्ति में मधुर वाणी का प्रयोग करता है। वाणी की मधुरता व्यक्ति को मित्र बना देती है और कठोरता शत्रु। मधुरता में एक आकर्षण शक्ति होती है।

मौखिक अभिव्यक्ति कौशल के विकास की शिक्षण विधियां

मौखिक अभिव्यक्ति कौशल शिक्षण के लिए अध्यापक निम्नलिखित शिक्षण—विधियों व साधनों का प्रयोग कर सकता है—

1. **सस्वर वाचन**— सस्वर वाचन के माध्यम से शिक्षक विद्यार्थियों की मौखिक अभिव्यक्ति का विकास कर सकता है। शिक्षक पहले स्वयं अनुच्छेद का वाचन करता है, फिर कक्षा के विद्यार्थियों से सस्वर वाचन कराता है। इससे विद्यार्थियों का उच्चारण शुद्ध हो जाता है।
2. **कविता पाठ**— छोटे बच्चों की बाल गीतों व कविताओं में अधिक रुचि होती है। शिक्षक को चाहिए कि वह विद्यार्थियों को कविता याद करने के लिए उत्साहित करे तथा किसी समारोह आदि में उचित हाव—भाव, आरोह—अवरोह तथा अंग संचालन के साथ सुनाने का अवसर प्रदान करे जिससे उनकी मौखिक अभिव्यक्ति का विकास हो सके।
3. **कहानी सुनना**— कहानी कहना मौखिक अभिव्यक्ति शिक्षण काएक सशक्त साधन है। छोटे बच्चे कहानियां अधिक पसंद करते हैं। शिक्षक पहले विद्यार्थियों को कहानी सुनाए, फिर उसी कहानी को सुनाने के लिए विद्यार्थियों से कहे। कहानी के माध्यम से अभिव्यक्ति में स्वाभाविकता और प्रवाह उत्पन्न किया जा सकता है।

टिप्पणी

4. **चित्र वर्णन**– छोटे बच्चे चित्र देखने में रुचि लेते हैं। अतः चित्रों के माध्यम से भी उनकी मौखिक अभिव्यक्ति का विकास किया जा सकता है। इस विधि में शिक्षक विद्यार्थियों को चित्र दिखाकर उसके बारे में उनके भावों को सचेत करके उससे संबंधित वर्णन करा सकता है।
5. **प्रश्नोत्तर**– छात्रों के मौखिक अभिव्यक्ति कौशल का विकास करने के लिए प्रश्नोत्तर एक अच्छी विधि है। इसमें अध्यापक विद्यार्थियों से प्रश्न पूछकर उनसे प्राप्त उत्तरों द्वारा उनकी मौखिक अभिव्यक्ति को विकसित करता है।
6. **वार्तालाप**– शिक्षक छात्रों से औपचारिक व अनौपचारिक दोनों तरह का वार्तालाप करके उनके मौखिक अभिव्यक्ति कौशल का विकास कर सकता है। शिक्षक विद्यार्थियों को अलग–अलग भूमिकाएं देकर उनका परस्पर वार्तालाप करा सकता है। वार्तालाप कहीं भी करा सकते हैं।
7. **संवाद**– इस विधि के अंतर्गत नाटक आदि के पाठों का वाचन कराते समय शिक्षक विद्यार्थियों से सभी पात्रों के संवादों का उचित हाव–भाव एवं उचित अंग संचालन के साथ वाचन कराता है। शिक्षक नाटक मंचन भी करा सकता है। इसमें विद्यार्थी पात्रों के संवादों को याद करके नाटक को मंच पर प्रस्तुत करते हैं।
8. **वाद–विवाद**– वाद–विवाद में विद्यार्थी पूर्व–निर्धारित विषय पर विचारों को व्यक्त करते हैं। कुछ विद्यार्थी पक्ष व कुछ विपक्ष में विचार प्रस्तुत करते हैं। शिक्षक को वाद–विवाद का विषय पहले से निर्धारित करके विद्यार्थियों को सूचित करना चाहिए जिससे वे उसकी अच्छी तरह तैयारी कर सकें।
9. **भाषण**– भाषण मौखिक अभिव्यक्ति विकसित करने का एक सशक्त साधन है। अतः विद्यार्थियों को भाषण देने के प्रचुर अवसर दिए जाने चाहिए। इसमें शिक्षक पूर्व–निर्धारित किसी विषय पर विद्यार्थियों को भाषण देने का अवसर प्रदान कर सकता है।
10. **सार–कथन**– इस विधि में शिक्षक पाठ्यपुस्तक के किसी पाठ, किसी महापुरुष की जीवनी, नाटक के किसी पात्र का चरित्र चित्रण, किसी रचना व अनुच्छेद को पढ़वाकर छात्रों को उसका सार बताने के लिए कह सकता है। छात्र पाठ या रचना की मुख्य बातें संक्षेप में व्यक्त करते हैं।
11. **नाटक मंचन**– मौखिक अभिव्यक्ति के सभी गुणों को विकसित करने के लिए नाटक एक उपयोगी साधन है। इससे उचित हाव–भाव, उतार–चढ़ाव, प्रवाह, अवसर के अनुकूल भाषा आदि का अभ्यास कराया जा सकता है। इससे भावाभिव्यक्ति का अच्छा अभ्यास हो जाता है। बोलचाल सिखाने का लक्ष्य नाटक मंचन से पूरा हो सकता है।
12. **अंत्याक्षरी**– अंत्याक्षरी में विद्यार्थी गीत, कविता आदि कंठस्थ कर लेते हैं तथा वर्ण विशेष से प्रारंभ होने वाले विभिन्न गीत व कविताएं सुनाते हैं। इसे दो टीम बनाकर प्रतियोगिता के रूप में आयोजित किया जाता है।

13. **टेलीफोन**– विद्यार्थियों को टेलीफोन या मोबाइल पर बातचीत का अवसर देकर उनकी मौखिक अभिव्यक्ति को विकसित किया जा सकता है। इससे छात्रों की मौखिक अभिव्यक्ति में संक्षिप्तता, सार्थकता, शिष्टता, सुबोधता आदि गुणों को विकसित किया जा सकता है।

मौखिक अभिव्यक्ति संबंधी त्रुटियां

1. **ऐतिहासिक**– उच्चारण दोष का एक प्रमुख कारण ऐतिहासिक है। जब कोई विदेशी शासक किसी स्थान पर आकर शासन करता है तो उसकी भाषा का प्रभाव स्थानीय लोगों की अभिव्यक्ति को प्रभावित करता है तथा स्थानीय लोगों के उच्चारण को दूषित कर देता है। भारत में मुगलों एवं अंग्रेजों के आने से स्थानीय लोगों का उच्चारण प्रभावित हुआ।
2. **प्रांतीयता का प्रभाव**– प्रांतीय बोली व भाषा भी हिंदी भाषा के उच्चारण को प्रभावित करती है। छात्र जिस परिवेश से आते हैं वे उसी परिवेश की बोली का प्रयोग करते हैं, जो भाषा का मानक रूप नहीं होता। शिक्षक को पहले अपने उच्चारण को प्रांतीयता के प्रभाव से मुक्त करना चाहिए फिर छात्रों के उच्चारण को दोषमुक्त करने का प्रयास करना चाहिए।
3. **अध्यापकों की अपात्रता**– कुछ अध्यापकों का स्वयं का उच्चारण अशुद्ध होता है। वे आदर्शवाचन आदि में अशुद्धियां करते हैं जिसे बच्चे अनुकरण वाचन द्वारा ग्रहण करते हैं। अयोग्य अध्यापक छात्रों का उचित मार्गदर्शन नहीं कर पाता। अतः प्रत्येक अध्यापक का उच्चारण स्पष्ट होना चाहिए।
4. **अनियंत्रित शिक्षा विस्तार**– आजकल शिक्षा का अत्यधिक विस्तार हो रहा है जिस पर किसी का नियंत्रण नहीं है। विभिन्न भाषाओं के नए–नए शब्द हिंदी में स्थान पा रहे हैं। बहुत–से नए–नए विषय अस्तित्व में आते जा रहे हैं। इन सबको ग्रहण करने की ओर अधिक ध्यान देने के कारण उच्चारण जैसे पक्ष पिछड़ गए हैं। अतः शिक्षा के विस्तार के साथ–साथ उसकी गुणवत्ता पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है।
5. **सामाजिक प्रभाव**– बालक का सामाजिक परिवेश भी उसके उच्चारण को प्रभावित करता है। इस बात का बालक पर प्रभाव पड़ता है कि वह समाज के किस वर्ग से संबंध रखता है। बालक के माता–पिता अशिक्षित होंगे तो निश्चित रूप से वे कुछ शब्दों को अशुद्ध बोलेंगे जिससे बालक भी वैसा ही सीखेगा। अतः घर, परिवार व पास–पड़ोस का वातावरण भी बालक के उच्चारण को प्रभावित करता है।
6. **मनोवैज्ञानिक कारण**– भय, आतंक, चिंता, संकोच, हीन–भावना आदि मनोवैज्ञानिक कारण भी बच्चे के उच्चारण को प्रभावित करते हैं। कई बार बड़े लोग व शिक्षक भी बदली हुई स्थितियों में वह अभिव्यक्ति नहीं कर पाते जो

सामान्य स्थितियों में करते हैं। वे कहना कुछ चाहते हैं और उनके मुख से निकलता कुछ है।

टिप्पणी

7. **शारीरिक कारण**– कुछ बच्चे शारीरिक कारणों से शुद्ध उच्चारण नहीं कर पाते। कुछ बच्चे हकलाते हैं, कुछ तुतलाते हैं तथा कुछ नकियाते हैं। किसी बच्चे के ध्वनियंत्र में विकृति होती है। कुछ बच्चे ओष्ठ विकृति के कारण तथा कुछ दंतक्षय के कारण शुद्ध उच्चारण करने में असमर्थ होते हैं।
8. **प्रयत्न–लाघव**– व्यक्ति का स्वभाव रहा है कि परिश्रम से जितना बचा जाए, बचे। संस्कृत के तत्सम शब्दों के तद्भव बनाने के पीछे भी यही कारण प्रतीत होता है। उच्चारण में भी व्यक्ति मुख–सुख चाहता है।
9. **असावधानी**– वक्ता कई बार असावधानी व लापरवाही के कारण भी अशुद्ध उच्चारण करता है। इस स्थिति में उसके शुद्ध रूप को जानते हुए भी उच्चारण की ओर ध्यान नहीं देता। जैसे– शाहदरा को शहादरा, नरेला को ननेरा, सोनीपत को सनपत, सामान को समान आदि उच्चारित करता है।
10. **बनकर बोलने की आदत**– कुछ बच्चे बनकर बोलते हैं जिसके कारण उनका उच्चारण अशुद्ध हो जाता है। कभी–कभी किसी के गलत बोलने की नकल करने के प्रयास में भी बच्चे स्वयं गलत बोलने लगते हैं। शिक्षक माता–पिता का सहयोग लेकर इन अशुद्धियों को दूर कर सकता है।

मौखिक अभिव्यक्ति की त्रुटियों के निवारण के उपाय

1. **शारीरिक जांच**– शारीरिक दोषों के निवारण के लिए शिक्षक छात्रों की शारीरिक जांच करवा सकता है। बोलने में कठिनाई अनुभव करने वाले छात्रों को अधिक से अधिक अवसर प्रदान किए जा सकते हैं। शारीरिक विकृतियों की दशा में चिकित्सक से परामर्श लिया जाना चाहिए। यदि समय रहते शारीरिक विकृति को दूर कर दिया जाए तो बालक के उच्चारण की अशुद्धि का निवारण संभव हो सकता है।
2. **मानसिक उपचार**– भय, चिंता, संकोच, हीन–भावना आदि के कारण अशुद्ध बोलने वाले बच्चों के इन कारणों का निवारण करना शिक्षक का दायित्व है। शिक्षक प्रयास करे कि बच्चों में संकोच न आने पाए, कोई भी बच्चा हीन–भावना से ग्रस्त न हो। शिक्षक कक्षा में भय का वातावरण न बनाए।
3. **उत्तम अध्यापकों से अध्यापन**– यदि अध्यापक का अपना उच्चारण शुद्ध नहीं होगा तो वह छात्रों का उच्चारण किस प्रकार ठीक कर सकता है। अतः अयोग्य शिक्षकों से अध्यापन नहीं करवाना चाहिए। सरकार को चाहिए कि वह शिक्षक–शिक्षा की गुणवत्ता में वृद्धि करे तथा अच्छे शिक्षकों की नियुक्ति करे।
4. **शैक्षिक प्रौद्योगिकी का प्रयोग**– उच्चारण की शिक्षा देने की दृष्टि से टेप–रिकॉर्डर, रेडियो आदि का प्रयोग भी बहुत उपयोगी है। छात्रों के

टिप्पणी

उच्चारण को शुद्ध करने के लिए पहले शुद्ध उच्चारण वाला टेप छात्रों को सुनाया जाता है। बच्चे ध्यान से उसे सुनते हैं और उसी तरह का उच्चारण करने का प्रयास करते हैं। छात्रों के गीत, भाषण आदि को रिकॉर्ड करके बच्चों के सामने उसे सुनाकर, उनकी कमियों का पता लगाकर उन्हें दूर किया जा सकता है।

5. **वर्णों के उच्चारण स्थान का ज्ञान**– अध्यापक छात्रों में शुद्ध उच्चारण की आकांक्षा जाग्रत कर सकता है। शिक्षक को चाहिए कि वह छात्रों को हिंदी वर्णमाला के सभी वर्णों के उच्चारण स्थान की जानकारी दे। ध्वनियों के उच्चारण स्थान का ज्ञान शुद्ध उच्चारण सीखने में सहायक होता है।
6. **उच्चारण संबंधी अभ्यासों का निर्माण**– छात्रों का उच्चारण शुद्ध करने के लिए उच्चारण संबंधी कुछ अभ्यासों का निर्माण किया जा सकता है। बच्चों को उच्चारण के साधारण नियमों का ज्ञान दिया जा सकता है। साधारणतया अशुद्ध उच्चारण की जाने वाली ध्वनियों की सूची बनाकर उनका अभ्यास करवाया जा सकता है।

1.5.3 पठन कौशल

पठन या वाचन का अर्थ सामान्य रूप से साक्षरता, शिक्षा या अध्ययन है। पठन या वाचन को अंग्रेजी में रीडिंग कहते हैं। संस्कृत में 'वाचनम्' शब्द की व्युत्पत्ति 'वच्' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है पढ़ना, वाचन करना, बांचना, पाठ करना या उच्चारण करना। पठन या वाचन का अर्थ सिर्फ पढ़ने से नहीं है, बल्कि हम जो भी पढ़ रहे हैं, उसे समझने से है। पठन या वाचन का मतलब है, लिखे हुए वर्णों को पहचानना। वाचन का तात्पर्य उचित विराम, बलाघात, सुरलहर, आरोह–अवरोह के साथ उचित गति से शुद्ध उच्चारण करके अर्थ ग्रहण करना भी है। पठन या वाचन का अर्थ, लिखी हुई सामग्री को पढ़ते हुए उसका अर्थ ग्रहण करना। अर्थ ग्रहण करने के पश्चात उस पर अपना मंतव्य स्थिर करना और तदनुसार व्यवहार करना। वाचन कवि या लेखक के लिखित विचारों से तादात्म्य (मेल) स्थापित करने का साधन है। वाचन एक उद्देश्यपूर्ण, सार्थक एवं चिंतन प्रक्रिया है। पठन कौशल को विकसित करने के लिए पर्याप्त अभ्यास की जरूरत होती है। बिना अभ्यास किए कोई भी पठन कौशल को अपने अंदर उत्पन्न नहीं कर सकता।

श्री वमन बिहारी लाल ने पठन की परिभाषा इस प्रकार से दी है– "लिखित भाषा का अर्थ ग्रहण करते हुए पढ़ने से क्रिया को पठन कहते हैं।"

पठन एक सिर्फ साधारण मानसिक प्रक्रिया नहीं है, बल्कि यह मस्तिष्क का उच्च–स्तरीय व्यापार है, जिसमें पढ़ने, लिपि चिह्नों को पहचानने, समझने, कल्पना करने, तर्क करने, निर्णय लेने तथा मूल्यांकन करने आदि का व्यापार शामिल है।

पठन/वाचन का महत्व

टिप्पणी

पठन/वाचन के निम्नलिखित महत्व हैं–

1. **ज्ञान प्राप्ति का सरल साधन**– ज्ञान प्राप्ति के लिए पठन या वाचन एक सरल साधन है, यदि किसी विद्यार्थी को कोई चीज एक बार समझ नहीं आई तो वह उसे बार–बार पढ़ सकता है एवं ज्ञान प्राप्त कर सकता है। पुस्तकों को पढ़ने से ही विद्यार्थियों को मानव ज्ञान की विविध शाखाओं और उपशाखाओं का ज्ञान होता है।
2. **जीविकोपार्जन के लिए मार्गदर्शन**– शिक्षा प्राप्ति या विद्या प्राप्ति के बाद विद्यार्थी डॉक्टर, इंजीनियर, व्यापारी, प्राध्यापक बनकर अपना जीवन व्यतीत करेंगे।
3. **व्यक्तित्व के विकास का प्रेरणा स्रोत**– पठन से व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास भी होता है। जब कोई व्यक्ति किसी महानात्मा की पुस्तक पढ़ता है, तो कहीं न कहीं उसी के जैसा बनने की कोशिश करता है। पुस्तक पढ़ने के साथ ही उनमें सदाचार, प्रेम, अहिंसा, परोपकार, सहिष्णुता की भावना पैदा होती है।
4. **मनोरंजन के साधन**– पुस्तक मनोरंजन का साधन भी है। यदि हमारे पास खाली समय है, तो हम व्यंग्य, कविता, कहानी, नाटक, पहेलियां आदि पढ़कर आनंद उठा सकते हैं।
5. **समय के सदुपयोग का साधन**– आज के समय में हर व्यक्ति अपना समय बचाने की कोशिश करता है, अपने खाली समय को अच्छे से व्यतीत करना पसंद करता है। तो कुछ लोग ऐसे समय में पुस्तक पढ़ते हैं।
6. **शब्द भंडार में वृद्धि**– हम जितनी ज्यादा पुस्तक पढ़ते हैं, उतनी ही हम में शब्द भंडार एवं ज्ञान भंडार की वृद्धि होती है।

पठन के उद्देश्य

पठन एक कला है। इसे शुद्ध एवं प्रभावी होना चाहिए। विद्यार्थियों की पठन में रुचि होनी चाहिए एवं उनकी पठन की आदत भी होनी चाहिए।

पठन के निम्नलिखित उद्देश्य हैं–

- छात्रों को वाचन के माध्यम से सभी वर्णों तथा शब्दों से परिचित कराकर उन्हें शब्द ध्वनियों का पूर्ण ज्ञान करना।
- विद्यार्थियों को उचित गति, लय, आरोह–अवरोह, विराम चिह्नों का उचित ज्ञान कराकर पठित सामग्री का केंद्रीय भाव ग्रहण करवाना।
- शब्दों के बलाघात तथा अनुतान पर बल देना।
- वाणी में माधुर्य, ओज एवं सरसता का होना।

- प्रसन्नता, आश्चर्य, भय, शोक आदि भावों के अनुसार पढ़ना।
- वाचन करते समय शुद्ध तथा अशुद्ध वर्तनी/उच्चारण में भेद करना।
- मुहावरों, लोकोक्तियों व सूक्तियों के संदर्भ के अनुसार अर्थ समझना।
- स्पष्ट व शुद्ध उच्चारण के साथ पाठ करना।
- ध्यान केंद्रित करके विषयवस्तु को पढ़ना।
- हस्तलिखित सामग्री को प्रवाह के साथ पढ़ पाना।
- यति, गति, विराम–चिह्नों आदि को ध्यान में रखकर पढ़ सकना।
- पाठ्य–सामग्री के केंद्रीय भाव को समझना।
- आश्चर्य, भय, शोक, हर्ष आदि भावों के अनुसार पढ़ना।
- कविता का रसास्वादन करने के योग्य बनाना।
- उचित वाचन मुद्रा, हाव–भाव, आरोह–अवरोह व बल के साथ पढ़ सकना।

पठन/वाचन के प्रकार

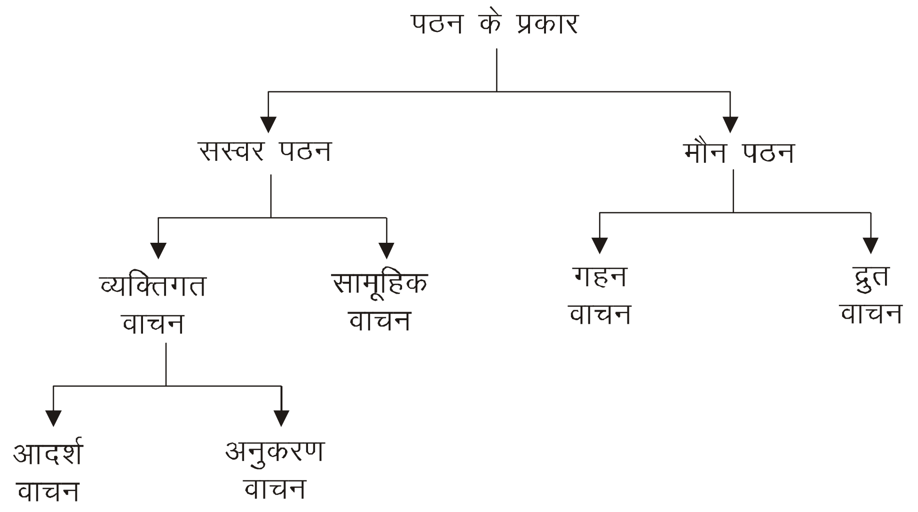

पठन/वाचन दो प्रकार के हैं– (1) सस्वर पठन, (2) मौन पठन।

1. सस्वर पठन/वाचन

सस्वर वाचन का अर्थ होता है, स्वर के साथ पढ़ना जो कि दूसरों को भी सुनाई दे। परंतु इसका मतलब सिर्फ स्वर के साथ पढ़ने से नहीं है, बल्कि सस्वर वाचन में शब्द का अर्थ गहराई से जाना जाता है तथा उचित गति, लय, आरोह–अवरोह, विराम, बलाघात, अनुतान, स्वर लहर आदि का ध्यान रखा जाता है। सस्वर वाचन में स्वर सहित पढ़ना तथा साथ में उसका अर्थ ग्रहण करना होता है। यह वाचन की प्रारंभिक अवस्था तथा मौखिक अभिव्यक्ति के निकट है। वर्णमाला के लिपिबद्ध वर्णों की पहचान इस वाचन के द्वारा ही कराई जाती है। यह पठन की प्रारंभिक अवस्था है। शुद्ध उच्चारण के साथ, सही गति के साथ पढ़ना सस्वर वाचन द्वारा सिखाया जा सकता है।

सस्वर पठन/वाचन के प्रकार– इसके दो भेद हैं– (क) व्यक्तिगत वाचन, (ख) सामूहिक वाचन।

(क) व्यक्तिगत पठन/वाचन– किसी एक व्यक्ति द्वारा आवाज के साथ पढ़ने को व्यक्तिगत वाचन कहते हैं। व्यक्तिगत वाचन भी दो प्रकार के होते हैं– आदर्श वाचन और अनुकरण वाचन।

आदर्श पठन/वाचन– अध्यापक द्वारा किया गया पाठ का वाचन आदर्श वाचन कहलाता है। अध्यापक को हमेशा आदर्श तरीके से ही पढ़ना चाहिए क्योंकि विद्यार्थी अध्यापक द्वारा किए गए वाचन को देखकर ही पढ़ते हैं।

अनुकरण पठन/वाचन– विद्यार्थियों द्वारा अध्यापक के आदर्श पाठ का वाचन अनुकरण वाचन कहलाता है। इस वाचन में विद्यार्थी अध्यापक का अनुसरण करते हुए पढ़ने का प्रयास करते हैं। अध्यापक को विद्यार्थियों पर ध्यान देना चाहिए कि वे उचित हाव–भाव, उचित गति तथा विराम चिह्नों आदि का सही उच्चारण कर रहे हैं या नहीं।

(ख) सामूहिक पठन/वाचन

दो या दो से अधिक विद्यार्थियों द्वारा आवाज सहित किया गया वाचन सामूहिक वाचन कहलाता है। इस वाचन के द्वारा विद्यार्थियों में आत्मविश्वास की भावना उत्पन्न होती है, साथ ही मौखिक अभिव्यक्ति भी विकसित होती है। इसे समवेत वाचन भी कहा जाता है। यह छोटी कक्षाओं में कराया जाता है। जैसे– हम छोटी कक्षाओं में चार या पांच बच्चों का समूह बनाते हैं और उनसे कविता का वाचन कराते हैं। इससे बच्चों में आत्मविश्वास की वृद्धि होती है, उनका उच्चारण भी सही होता है।

सस्वर पठन की विशेषताएं

सस्वर पठन की निम्न विशेषताएं हैं–

1. **कौशल**– सस्वर वाचन एक कौशल है। इस पठन या वाचन में शिष्टाचार के साथ विद्यार्थियों के खड़े होने के ढंग, पुस्तक पकड़ने का तरीका, शुद्ध बलाघात, विराम चिह्नों का प्रयोग तथा सामग्री की प्रकृति के अनुकूल भावपूर्ण वाचन होने से वाचन रोचक तथा प्रभावशाली बनता है।
2. **स्वर–माधुरी**– पढ़ते समय पाठक की वाणी में मधुरता होनी चाहिए। उसका बोला गया प्रत्येक वर्ण, शब्द व वाक्य स्पष्ट सुनाई देना चाहिए।
3. **औपचारिक विधि**– यह प्रायः दूसरों के लिए किया जाता है। इसके अंतर्गत अभिनंदन पत्र तथा लिखित भाषण आदि आते हैं।
4. **आत्मविश्वास**– सस्वर वाचन में आत्मविश्वास का होना बहुत जरूरी है। उच्चारण तथा स्वर में स्थानीय बोलियों का पुट नहीं आना चाहिए।
5. **प्रभावोत्पादक**– सस्वर वाचन एक कला है जो अभ्यास से प्राप्त होती है। सस्वर पठन करते समय पाठक को अपनी दृष्टि परिधि विस्तृत रखनी चाहिए। उसे अपनी दृष्टि पुस्तक तक ही सीमित नहीं रखनी चाहिए।

6. **स्पष्ट वाचन**– वाचन करते समय स्पष्टता का होना अति आवश्यक है। स्पष्ट स्वर, शब्दों का शुद्ध उच्चारण, शुद्ध बलाघात, विराम चिह्नों का प्रयोग तथा सामग्री की प्रकृति के अनुकूल भावपूर्ण वाचन होने से रोचक तथा प्रभावशाली बनता है।
7. **स्वाभाविकता**– पाठक को अलग स्वर से न पढ़कर अपने स्वाभाविक स्वर से ही पढ़ना चाहिए। वाचन धैर्य और आत्मविश्वास के साथ करना चाहिए। श्रोता के साथ–साथ पाठक की रुचि भी वाचन में होनी चाहिए।
8. **उचित हाव–भाव**– सस्वर वाचन करते समय पाठ्य सामग्री के भावों के अनुसार पाठक को हाव–भाव का प्रदर्शन करना चाहिए। प्रेम, क्रोध, वात्सल्य, वीरता आदि के अनुसार ही हाव–भाव परिवर्तित होने चाहिए।

सस्वर पठन के उद्देश्य

कुछ विद्यार्थियों का वाचन अच्छा नहीं होता अर्थात वे वाचन में रुचि न लेने के कारण वाचन में पिछड़ जाते हैं। वाचन संबंधित गतिविधियों द्वारा बच्चों में वाचन कौशल उत्पन्न किया जा सकता है।

सस्वर वाचन के निम्नलिखित उद्देश्य हैं–

1. विद्यार्थियों को वर्णमाला के लिपि–प्रतीकों का ज्ञान कराना।
2. विद्यार्थियों को उचित गति, लय, आरोह–अवरोह, बल तथा विराम चिह्नों का प्रयोग करके सस्वर वाचन के योग्य बनाना।
3. विद्यार्थियों को उचित वाचन मुद्रा के योग्य बनाना।
4. विद्यार्थियों के शब्द भंडार में वृद्धि करना।
5. विद्यार्थियों में मौखिक अभिव्यक्ति कौशल का विकास करना।
6. पाठ्य–सामग्री का अर्थ–ग्रहण करने योग्य बनाना।
7. विद्यार्थियों में अध्ययन के प्रति रुचि जाग्रत करना।
8. विद्यार्थियों को पाठ्यसामग्री के माध्यम से मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं से परिचित कराना।
9. नए–नए शब्दों, वाक्य–रचना एवं विभिन्न लेखन शैलियों से परिचित कराना।
10. श्रोताओं की संख्या एवं अवसर के अनुकूल वाणी को नियंत्रित करना।

2. मौन पठन

बिना आवाज किए या बिना होंठ हिलाए पढ़ने को मौन वाचन कहते हैं। यह तीसरी कक्षा के बाद कराया जाता है। इस वाचन में हम नेत्र तथा मस्तिष्क का सहारा लेते हुए वाचन करते हैं। मौन वाचन अर्थ ग्रहण करने पर जोर देता है। हम हर जगह सस्वर वाचन नहीं कर सकते तो ऐसी स्थिति में हम मौन वाचन करते हैं। इससे दूसरों

को भी परेशानी नहीं होती। अवकाश के समय का सदुपयोग करने में मौन वाचन सहायक है। विद्यार्थी के लिए मौन वाचन बहुत उपयोगी है।

उदाहरण— यदि विद्यार्थियों में हम मौन वाचन की आदत डालते हैं, तो उनमें स्वयं पढ़ने की आदत भी विकसित होती है।

बच्चों में ज्ञान की वृद्धि के लिए भी मौन वाचन जरूरी है।

मौन वाचन के भी दो प्रकार होते हैं— (क) गहन वाचन और (ख) द्रुत वाचन।

(क) गहन वाचन— गहन वाचन से तात्पर्य पाठ्यपुस्तक के ऐसे वाचन से है, जिसमें विषय—वस्तु का गहनता एवं सूक्ष्मता के साथ अध्ययन किया जाए, अर्थात मौन वाचन की विकसित अवस्था गहन अध्ययन कहलाती है। गहन अध्ययन तब किया जाता है जब हम किसी पाठ्य सामग्री की तह तक पहुंचना चाहते हैं। गहन अध्ययन छात्रों के ज्ञानार्जन में सहायक है। इससे अध्ययन में गंभीरता आती है, अतः इसे गंभीर वाचन भी कहा जाता है। इससे समालोचनात्मक दृष्टिकोण का विकास होता है। उच्च साहित्य एवं दर्शन जैसे विषयों के लिए इसकी अधिक आवश्यकता पड़ती है।

(ख) द्रुत वाचन— मौन रूप से तथा तीव्र गति से पढ़ने को द्रुत वाचन कहते हैं। द्रुत वाचन में गति इतनी अधिक होती है कि एक बैठक में संपूर्ण पुस्तक को पढ़कर उसका मुख्य भाव, उद्देश्य व संदेश ग्रहण किया जा सकता है। समाचार—पत्रों, पत्रिकाओं व मनोरंजक साहित्य के वाचन में इसका अधिक महत्व है। इसका उद्देश्य विद्यार्थियों में शीघ्र पढ़ने व समझने की आदत डालना, आनंद प्रदान करना, ज्ञान भंडार बढ़ाना व अवकाश का सदुपयोग करना होता है।

मौन पठन की विशेषताएं

- तीव्र गति से पढ़ने का अभ्यास।
- पाठ्य सामग्री को पढ़कर उसके केंद्रीय भाव को समझना।
- अवकाश के समय का सदुपयोग।
- छात्रों में स्वअध्ययन की आदत विकसित करना।
- जीवन में ऐसे अनेक अवसर आते हैं जब व्यक्ति सस्वर वाचन नहीं कर सकता। जैसे— अधिक संख्या में लोगों की उपस्थिति में आवाज करते हुए पढ़ना अच्छा नहीं लगता क्योंकि दूसरों को परेशानी हो सकती है। ऐसी स्थिति में मौन वाचन किया जाता है।
- पुस्तकालयों, वाचनालयों एवं सार्वजनिक स्थानों पर जहां सस्वर वाचन वर्जित होता है, मौन पठन करना पड़ता है।
- मौन वाचन में चित्त की एकाग्रता बनी रहती है जिसके कारण अर्थ ग्रहण में सुगमता होती है। इसमें पाठक विचारों की गहराई तक पहुंच जाता है तथा ग्रहण किया गया अर्थ अधिक स्थायी होता है।

टिप्पणी

- वही व्यक्ति गहन अध्ययन कर सकता है जिसे मौन वाचन का अभ्यास हो। मौन वाचन ही मन प्रतिक्रिया व्यक्त करता है और मानसिक रूप से तर्क–वितर्क करता है।
- मौन वाचन में बालक स्वावलंबी बनता है। यह अवकाश के समय का सदुपयोग करने में सहायक होता है। इससे स्वाध्याय की आदत का विकास होता है।

मौन पठन के उद्देश्य

- छात्रों में तीव्र गति से पढ़ने का अभ्यास कराना।
- छात्रों की शब्दावली में वृद्धि करना।
- मौनवाचन द्वारा अर्थग्रहण तथा पाठ के केंद्रीय भाव या विचार को समझना।
- पठित सामग्री के तथ्यों, भावों एवं विचारों का निष्कर्ष निकालना।
- मुहावरों व लोकोक्तियों से परिचित कराना।
- पठित सामग्री के अर्थ व भाव को समझने की योग्यता का विकास करना।
- अनावश्यक स्थलों को छोड़ते हुए, मुख्य सूचनाओं एवं भावों को ग्रहण करते हुए पढ़ना।
- तथ्यों, भावों एवं विचारों की क्रमबद्धता पहचान सकना तथा उनके कार्य कारण संबंध बता सकना।
- पठित अंश का उपयुक्त शीर्षक दे सकना।
- पठित सामग्री पर पूछे गए प्रश्नों के उत्तर दे सकना।
- सूचनाएं एकत्र कर सकना। अवकाश के समय का सदुपयोग कर सकना।
- स्वाध्याय की आदत का विकास करना।

पठन कौशल की शिक्षण विधियां

पठन कौशल की शिक्षण विधियां निम्न प्रकार हैं–

1. **वर्णोच्चारण विधि**– यह प्राचीन भारतीय विधि है। इसमें क् + अ, क् + आ, क् + इ, क् + ई, क् + उ, क् + ऊ, क् + ए, क + ऐ, क् + ओ, क् + औ, क् + अं, क् + अः का शुद्ध उच्चारण कराया जाता है। इस विधि में उच्चारण पर विशेष बल दिया जाता है। हिंदी भाषा में 13 स्वर हैं। इस विधि में विद्यार्थियों को बारह खड़ी रटवा दी जाती है।
2. **अक्षर बोध विधि**– अक्षर बोध विधि में वर्णों का क्रमानुसार ज्ञान दिया जाता है अर्थात उन्हें पहले स्वरों तथा व्यंजनों के बारे में बताया जाता है। इसके बाद छोटे–छोटे शब्द बनाने सिखाये जाते हैं। जैसे–

   म ग र – मगर

स ड़ क – सड़क

इसे वर्णमाला विधि भी कहते हैं।

टिप्पणी

3 **अनुकरण विधि**– बालक भाषा अनुकरण द्वारा सीखता है। इस विधि में अध्यापक शब्दों व वाक्यों का उच्चारण करते हैं एवं श्यामपट्ट पर लिखते हैं एवं विद्यार्थी उनका अनुकरण करते हैं, दोहराते हैं।

4. **साहचर्य विधि**– यह विधि श्रीमती मांटेसरी द्वारा आविष्कृत की गई है। इस विधि में बच्चे के अनुभव की परिधि में आने वाली वस्तुओं, खिलौनों आदि का चित्र बना दिया जाता है या चीजों को साक्षात सामने रख दिया जाता है। तत्पश्चात् अध्यापक कार्ड पर उन सभी चीजों के नाम लिखकर एक पेटी में मिलाकर डाल देता है। इसके बाद एक–एक छात्र को बुलाकर एक कार्ड उठाकर उस पर लिखे नाम को पढ़कर वह कार्ड उस वस्तु के सामने रखना होता है। वस्तुओं तथा कार्ड के साथ साहचर्य होने के कारण इसे साहचर्य विधि कहते हैं।

5. **भाषा शिक्षा यंत्र विधि**– इस विधि में शिक्षार्थी यंत्रों में रिकॉर्ड ध्वनि सुनते हैं और अध्यापक के निर्देशन में अनुकरण करके वाचन सीखते हैं। वाचन की यह नवीनतम विधि है।

6. **ध्वनि साम्य विधि**– इस विधि में शिक्षार्थियों को आरंभ में सरल ध्वनि साम्य वाले शब्द सिखाये जाते हैं, जो आसान एवं सहज ग्राह्य हों। जैसे– सीता, गीता, रीता, नीता आदि। धीरे–धीरे शिक्षार्थी को कठिन शब्दों से परिचित कराया जाता है।

7. **वाक्य शिक्षण विधि**– शिक्षाशास्त्रियों एवं मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि बालक पहले वाक्य बोलता है तो उसे वाक्यों के माध्यम से ही अक्षरों एवं वाचन का ज्ञान व्यावहारिक होगा। जैसे मामी रोटी, पापा पैसे आदि। इस विधि में अध्यापक द्वारा किसी वस्तु के बड़े चित्र के नीचे एक छोटा–सा वाक्य लिख दिया जाता है। चित्र को देखकर बच्चे एक ही वाक्य को अनेक प्रकार से पढ़ना सीख जाते हैं। जैसा आम मीठा है, मीठा है आम, आम मीठा होता है आदि।

8. **कहानी विधि**– बच्चे प्रारंभ से ही कहानी में रुचि लेते हैं। अतः इस विधि में अध्यापक छोटे–छोटे वाक्यों की एक कहानी चार्ट व चित्र के माध्यम से बच्चों के सामने प्रस्तुत करता है। फिर अध्यापक चित्र के नीचे लिखे हुए वाक्यों का उच्चारण करता है तथा शिक्षार्थी उसका अनुकरण करते हैं। इस विधि के माध्यम से विद्यार्थी उन शब्दों तथा वर्णों को धीरे–धीरे पहचानने लगते हैं।

9. **सामूहिक पठन विधि**– अध्यापक बालक–बालिकाओं के लघु समूह को हाव–भाव एवं अभिनय के साथ छोटे–छोटे पद या गीत सुनाते हैं, जिसका अनुसरण करते हुए बच्चे उच्चारण करने में रुचि लेते हैं।

पठन अभिरुचि का विकास

व्यक्ति उसी कार्य को मन लगाकर करता है जिसमें उसकी रुचि होती है, अतः 'पठन' के महत्व को देखते हुए विद्यार्थियों की पढ़ने में रुचि उत्पन्न करना आवश्यक है।

विभिन्न अनुसंधानों से यह ज्ञात हो चुका है कि विद्यार्थियों की अभिरुचियां उनके भौगोलिक वातावरण, पारिवारिक परिवेश, सांस्कृतिक परिवेश, उपलब्ध पठन सामग्री तथा शिक्षण विधि के अनुसार अलग–अलग होती हैं। जैसे– पर्वतीय प्रदेशों या समुद्र के किनारे रहने वाले विद्यार्थी अपने वातावरण से संबंधित साहित्य पढ़ना चाहते हैं।

इसी प्रकार उत्तर भारत एवं दक्षिण भारत के सांस्कृतिक परिवेश भिन्न–भिन्न हैं। अतः इन प्रांतों के रहने वाले विद्यार्थी अपनी संस्कृति से संबंधित साहित्य पढ़ना चाहते हैं।

पुस्तकों की कम उपलब्धि के कारण निम्न आर्थिक वर्ग के बच्चों की पठन–प्रवृत्ति कम विकसित होती है बजाय कि उच्च आर्थिक वर्ग के बच्चों से, जिन्हें हर तरह की पुस्तकें प्राप्त हैं। किंतु कभी–कभी इसके अपवाद भी पाए जाते हैं। जैसे– जो बच्चा अभाव में पलने के बावजूद अपनी दृढ़ इच्छा के कारण अपनी पठन रुचि विकसित करता है, यह इसका एक तर्कभेदी उदाहरण है।

यह भी सिद्ध हो चुका है कि प्रायः सभी बच्चे कथा–साहित्य एवं पशु–पक्षियों से संबंधित कहानियां पढ़ना पसंद करते हैं। उपन्यास पढ़ने में कक्षा के विद्यार्थी तनिक भी रुचि नहीं लेते हैं। बालकों की अपेक्षा बालिकाएं गंभीर साहित्य पढ़ने में अधिक रुचि लेती हैं।

किसी भी शिक्षक की भूमिका पठन रुचि बढ़ाने में बहुत महत्वपूर्ण होती है। पठन प्रेमी शिक्षक बच्चों की रुचि के अनुकूल पुस्तकें एवं पत्र–पत्रिकाएं पढ़ने के लिए उन्हें प्रोत्साहित करते हैं। विभिन्न उदाहरणों द्वारा एक शिक्षक बच्चों को दूसरे साहित्य पढ़ने के लिए भी प्रेरित कर सकता है। जैसे– तुलसी साहित्य में–

"ठुमुकि चलत रामचंद्र बाजति पैजनियाँ।" – तुलसीदास

"किलकत कान्ह घुटुरुवन आवत।" – सूर

का उदाहरण देकर शिक्षक 'तुलसी' के साथ–साथ 'सूर–साहित्य' पढ़ने की प्रेरणा भी विद्यार्थियों को दे सकता है। इसी प्रकार प्रेमचंद की कहानियां पढ़ाते समय अन्य लेखकों की कहानियां पढ़ने के लिए प्रोत्साहित कर सकता है।

एक अच्छे शिक्षक एवं प्रधानाचार्य का यह कर्तव्य है कि वे बच्चों को उनकी रुचि के अनुसार पुस्तकें उपलब्ध कराएं। पुस्तकालय में पुस्तक वितरण व्यवस्था भी उपयुक्त होनी चाहिए जिससे सभी विद्यार्थियों को समय पर पुस्तकें उपलब्ध हो सकें।

यह एक बहुत ही अच्छा कदम होगा यदि विद्यालय पुस्तकालय के साथ–साथ कक्षा पुस्तकालय भी हो जिसका संचालन विद्यार्थियों द्वारा ही हो। इसके साथ–साथ निम्न बिंदुओं द्वारा भी पठन अभिरुचि का विकास किया जा सकता है–

पठन रुचि का विकास

- **पठन का वातावरण**— छात्रों को पढ़ने का वातावरण देना अति आवश्यक है। चाहे शिक्षार्थी घर व परिवार में हो या विद्यालय में। जिन परिवारों में वाचन का वातावरण होता है वहां शिक्षार्थी स्वयं ही वाचन में रुचि लेने लगता है।
- **पठन की सुविधाएं**— वाचन योग्यता का विकास करने के लिए शिक्षार्थियों को पठन की सुविधा देना आवश्यक है, जैसे पुस्तकालय। पुस्तकालयों में विभिन्न आयु—वर्ग तथा उनके मानसिक स्तर के अनुरूप, उनकी रुचि तथा योग्यता के आधार पर पुस्तकों का होना आवश्यक है ताकि शिक्षार्थी अपनी रुचि के अनुसार भिन्न—भिन्न प्रकार की कथा—कहानियां पढ़कर उनका रसास्वाद कर सकें।
- **पठन संबंधी प्रतियोगिताओं का आयोजन**— शिक्षार्थियों में वाचन रुचि के विकास के लिए विद्यालयों में वाचन संबंधी प्रतियोगिताओं का आयोजन कराया जा सकता है। इसमें समाचार वाचन, रिपोर्ट प्रस्तुतीकरण, कविता, पाठ, द्रुत पाठ आदि शामिल किये जा सकते हैं। इससे वाचन के प्रति छात्रों की रुचि बढ़ेगी।
- **अध्यापकों में पठन के प्रति रुचि उत्पन्न करना**— शिक्षार्थियों में वाचन रुचि के विकास के लिए आवश्यक है कि अध्यापकों में भी वाचन रुचि हो। शिक्षकों को प्रतिमाह पत्र—पत्रिकाओं के लिए धनराशि दी जा सकती है। शिक्षकों को कुछ पुस्तकें प्रतिवर्ष निःशुल्क दी जा सकती है। इन पुस्तकों को शिक्षकों में वितरित करके शिक्षकों से उनकी समीक्षा करायी जा सकती है।
- **पठन संगठनों का निर्माण**— विभिन्न साहित्यिक, सांस्कृतिक संगठनों व क्लबों की भांति विद्यालय एवं समाज में पठन संबंधी क्लबों का निर्माण करके भी पठन के प्रति रुचि का विकास किया जा सकता है।
- **पाठ्यक्रम में पठन को उचित स्थान**— आजकल बच्चों पर पाठ्यक्रम का इतना दबाव है कि वे पाठ्यक्रम के अतिरिक्त कुछ करने को तैयार नहीं होते। यदि पठन में छात्रों की रुचि का विकास करना हो तो पठन को भी पाठ्यक्रम का अंग बनाना होगा। छात्रों द्वारा किए जाने वाले अतिरिक्त पठन को महत्व देना होगा। पठन को मूल्यांकन में शामिल करना होगा।

पठन अभ्यास

प्रत्येक व्यक्ति या विद्यार्थी की पढ़ने की अलग—अलग आदतें होती हैं। कोई सस्वर—पठन पसंद करता है तो कोई मौन—पठन। किसी को लेट कर पढ़ने की आदत होती है तो किसी को बैठकर। किसी को चलते हुए पढ़ने की आदत होती है तो किसी को रुककर। किसी को शोर अर्थात टी.वी. चलाकर पढ़ने की आदत होती है तो किसी को शांति में ही समझ आता है। कुछ विद्यार्थी पढ़ते समय मुख्य्य बिंदुओं को रेखांकित करते हैं, जबकि कुछ विद्यार्थी केवल 'कापी' पर 'नोट' करते हैं। कोई साहित्य की

पुस्तकें अधिक पढ़ता है तो कोई विज्ञान की। कुछ विद्यार्थी सरल एवं रोचक पुस्तकें पढ़ने में रुचि लेते हैं तो कुछ गंभीर साहित्य का अध्ययन करते हैं।

टिप्पणी

रुचियों के प्रकार

रुचियों की भिन्नता के प्रमुख चार निर्धारक निम्नलिखित हैं–

(क) **भौतिक परिस्थितियां**– पढ़ने के अभ्यास के लिए बच्चे के स्थान एवं वातावरण का भी महत्व होता है। शांत, एकांत, स्वच्छ तथा सुंदर वातावरण में मन एकाग्र होता है और अभ्यास भलीभांति हो सकता है, किंतु भीड़भाड़ भरे वातावरण में व्यक्ति एकाग्रचित होकर नहीं पढ़ सकता।

(ख) **व्यक्तिगत कारक**– विद्यार्थी की मनःस्थितियां व्यक्तिगत कारक के अंतर्गत आती हैं। अतः प्रसन्न होकर भी विद्यार्थी अध्ययन नहीं कर सकता। पढ़ने के लिए शांत मन एवं वातावरण होना आवश्यक है।

(ग) **पाठ्य–विषय**– यदि पाठ्य–विषय विद्यार्थी की रुचि के अनुसार न हो तो विद्यार्थी उसे पढ़ने में रुचि नहीं लेते। विद्यार्थी को पाठ्य एवं पठन से संबंधित दिया गया कार्य उसकी रुचि एवं योग्यता के अनुरूप होना चाहिए तभी विद्यार्थी उसे मन लगाकर कर सकता है।

(घ) **शिक्षक का प्रस्तुतीकरण**– शिक्षक का व्यक्तित्व एवं उसकी शिक्षण विधि भी विद्यार्थियों के पठन को प्रभावित करती हैं। इसका मतलब यदि शिक्षक किसी अरुचिपूर्ण विषय को बहुत ही उल्लासपूर्वक और मजेदार ढंग से पढ़ाता है तो बच्चों के दिमाग में हर चीज बहुत अच्छे ढंग से समझ आ जाती है और यदि आप बच्चों के दिमाग में एक अच्छी जगह बना लेते हैं, तो वह आपके विषय को मन लगाकर अवश्य पढ़ेगा।

पठन सूत्र के अंग या सोपान

शिक्षा के विशेषज्ञों ने पठन सूत्र के पांच अंग निर्धारित किए हैं जो निम्नलिखित है–

(क) सर्वेक्षण

(ख) प्रश्न

(ग) पठन

(घ) समीक्षा

(ङ) आवृत्ति।

इसको अंग्रेजी में sq^3R अर्थात (Survey, Question, Read, Review, Recite) कहते हैं। इस सूत्र के अनुसार पठन के पांच सोपान हैं–

(क) **सर्वेक्षण**– पहले पाठ्य–विषय पर एक विहंगम दृष्टि डालकर उसका सर्वेक्षण किया जाता है।

(ख) **प्रश्न**– पाठ्य विषय के सर्वेक्षण के पश्चात पाठ्य सामग्री के आधार पर ऐसे प्रश्नों की रचना की जाती है, जिनका उत्तर उस पाठ्यवस्तु में मिल सके।

(ग) **पठन**– किसी पुस्तक को आदि से अंत तक न पढ़कर उद्देश्य की पूर्ति तथा प्रश्नों के उत्तर की प्राप्ति हेतु चुने हुए पाठ्य–विषय का पठन किया जाता है।

टिप्पणी

(घ) **समीक्षा**– पठन के पश्चात पठन द्वारा गृहीत अंश की समालोचना विद्यार्थी करता है।

(ङ) **आवृत्ति**– पठन एवं समीक्षा के पश्चात पठन द्वारा अर्जित ज्ञान की पुनरावृत्ति की जाती है जिससे वह भविष्य में काम आए।

1.5.4 लेखन कौशल

कक्षा में प्रवेश करते ही बालक को वर्णमाला लिखवानी शुरू कर देना वास्तव में शिक्षक की गलत अथवा दूषित समझदारी का परिणाम है। बच्चों में लिखना तभी शुरू करवाना चाहिए, जबकि बच्चा मांसपेशियों पर नियंत्रण रखना सीख चुका हो। लिखने की प्रथम सीढ़ी चित्रकारी है। महात्मा गांधी ने भी इस मत का समर्थन किया है कि, "लिखना सिखाने से पूर्व बालकों को चित्रकला सिखाना चाहिए ताकि अक्षरों को चित्र समझकर लिखना सीखें क्योंकि अक्षर भी चित्र ही हैं।" इसलिए प्रारंभिक कक्षा में बच्चों के कद के अनुसार नीचे श्यामपट्ट लटका देना चाहिए जिस पर बच्चा अपनी इच्छा से मनमाने ढंग से लकीरें खींचता रहे ताकि उसकी भुजा की मांसपेशियों को अभ्यास की प्राप्ति हो। लिखना प्रारंभ करने से पूर्व बच्चे के स्नायुओं को अनुशासन में रहने का अभ्यास कराना अत्यंत आवश्यक है। लिखने के लिए तैयार करने के लिए बच्चों की कुछ शक्तियों का विकास शिक्षक को करना चाहिए, जैसे– निरीक्षण शक्ति का विकास, लिखने की ओर रुचि उत्पन्न करना, उंगलियों में लिखने की दृढ़ता उत्पन्न करना एवं उनकी क्रियात्मक शक्ति को बढ़ाना ताकि थोड़ा–सा ही काम करने से हाथ न थके।

लेखन की आवश्यकता

1. अपने विचारों को सुरक्षित रखने के लिए लिखित अभिव्यक्ति की आवश्यकता है। लिखकर विचारों को बहुत लंबी अवधि के लिए स्थायित्व प्रदान किया जा सकता है।
2. जीवन के सभी कार्य, व्यापार, पत्र–व्यवहार, घर का दैनिक हिसाब–किताब व रिकॉर्ड आदि रखने के लिए लेखन की आवश्यकता है। यह संदेशों व भावों को संप्रेषित करने का माध्यम है।
3. जब तक बालक को लिखना नहीं आता तब तक उसका भाषा पर पूर्ण अधिकार नहीं हो पाता।
4. जो व्यक्ति पढ़ना व लिखना जानता है, वही साक्षर अर्थात पढ़ा–लिखा कहा जाता है।
5. शिक्षा ग्रहण करने, पठित सामग्री को संग्रहित करने, प्रश्नों के उत्तर देने, पाठ का सार तैयार करने, कक्षा–कार्य करने, गृहकार्य करने आदि में लेखन

टिप्पणी

कौशल की आवश्यकता होती है। लेखन के बिना पाठ्यपुस्तक का कोई अस्तित्व ही नहीं है।

6. लेखन सभ्यता व संस्कृति को संरक्षण प्रदान करता है। उसके द्वारा ही वर्तमान पीढ़ी अपनी विचारधारा को आगामी पीढ़ी को सौंपती है। किसी भी राष्ट्र की सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक व आर्थिक परिस्थितियों की जानकारी के लिए लेखन कौशल आवश्यक है।
7. लिखित भाषा, मौखिक भाषा की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय मानी जाती है। इससे मौखिक विचारों को व्यवस्थित किया जा सकता है।
8. भाषा के रूप को स्थायित्व प्रदान करने व उसमें एकरूपता लाने की दृष्टि से लेखन की आवश्यकता निर्विवाद है।
9. लेखन कौशल संपूर्ण मानव जाति को एक सूत्र में बांधता है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सभी समझौते लिखित रूप में ही होते हैं।
10. साहित्य के सृजन व उसके भंडार में वृद्धि के लिए लेखन कौशल आवश्यक है।
11. देश–विदेश में विकसित हो रहे ज्ञान–विज्ञान आदि से परिचित कराने की दृष्टि से लेखन की अत्यधिक आवश्यकता है।
12. आधुनिक शिक्षा प्रणाली में परीक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है। लेखन कौशल के बिना परीक्षा की कल्पना करना भी संभव नहीं है। लेखन कौशल द्वारा ही बच्चों की योग्यता का मूल्यांकन किया जाता है।
13. आज तो लेखन एक स्वतंत्र व्यवसाय का रूप ले चुका है। पत्रकार, साहित्यकार आदि अनेक व्यक्ति लेखन कौशल के माध्यम से जीविका का उपार्जन कर रहे हैं।

अतः लेखन कौशल भाषा शिक्षण का अनिवार्य व अभिन्न अंग है।

लेखन कौशल शिक्षण के उद्देश्य

सुनना, बोलना, पढ़ना व लिखना इन चारों को भाषायी कौशल कहते हैं। सुनना और पढ़ना इन दो कौशलों के द्वारा हम ज्ञान को प्राप्त करते हैं, अतः इन्हें ग्रहणात्मक कौशल कहा जाता है। बोलना और लिखना कौशलों के माध्यम से हम अपने अनुभवों एवं विचारों को दूसरों के सामने प्रस्तुत करते हैं। अतः इन्हें अभिव्यक्त्यात्मक कौशल कहते हैं। जो व्यक्ति अपने विचारों को जितने प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करता है वह जीवन में उतनी ही सफलता प्राप्त करता है। बच्चा लिखकर प्रभावशाली ढंग से अपने विचार व्यक्त कर सके इसके लिए लेखन कौशल की शिक्षा देना आवश्यक है। लेखन कौशल की शिक्षा देने के लिए निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किए जा सकते हैं–

- विद्यार्थियों को लेखन का पूर्ण परिचय देना ताकि वे अपने भावों, विचारों एवं अनुभवों को मूर्तरूप दे सकें, दूसरों के भावों को लिपिबद्ध कर सकें।

टिप्पणी

- विद्यार्थियों को सुंदर व स्पष्ट लेखन की शिक्षा देना।
- विद्यार्थियों के शब्दकोष को सक्रिय रूप देना।
- मातृभाषा या हिंदी अक्षरों का वास्तविक स्वरूप चित्रित कर सकने की योग्यता का विकास करना।
- विद्यार्थियों को लिखने का इतना अभ्यास कराना कि वे तीव्र गति से लिख सकें।
- विभिन्न विराम चिह्नों का प्रयोग सिखाना।
- विद्यार्थियों को अपने विचार तथा अनुभवों को अनुच्छेदों में बांटकर लिखने का अभ्यास कराना।
- लेखन सामग्री का सही ढंग से रख–रखाव कर सकना।
- लिखते समय आंख तथा हाथ की गति का समन्वय होना।
- नवीन शब्दावली के प्रयोग की योग्यता का विकास करना।
- शुद्ध वर्तनी व वाक्य रचना की योग्यता उत्पन्न करना।
- अपने लेखन में मुहावरों व लोकोक्तियों का प्रयोग करना।
- व्याकरण के अनुरूप भाषा–प्रयोग करना।
- विचारों की क्रमबद्धता व सुसंबद्धता बनाए रखना।

इस प्रकार प्राथमिक शिक्षा से प्रारंभ होकर उच्च कक्षाओं तक लेखन कौशल शिक्षण चलता रहता है। उपर्युक्त लेखन कौशल के उद्देश्यों को ध्यान में रखकर ही शिक्षक को अपने लेखन शिक्षण कार्य की व्यवस्था करनी चाहिए।

लेखन के प्रकार

लिखने की तैयारी लेखन शिक्षण की प्रथम आवश्यकता है। द्वितीय अवस्था वर्ण रचना से संबंधित है। तृतीय अवस्था के अंतर्गत वाक्य रचना आती है।

लेखन कौशल शिक्षण की तीसरी अवस्था शब्दों तथा वाक्यों को लिखना सीखना है। लेखन शिक्षण की इस अवस्था में बच्चों पर बहुत ध्यान देने की आवश्यकता होती है। इस समय बच्चों को सुंदर–सुडौल व स्पष्ट रूप से लिखने का अभ्यास कराना चाहिए। इस समय शब्दों तथा वाक्यों को सुंदर–सुडौल व स्पष्ट रूप से लिखना सिखाने के लिए लेखन के निम्नलिखित प्रकारों का अभ्यास कराने की आवश्यकता होती है–

(1) सुलेख,

(2) अनुलेख,

(3) श्रुतलेख।

टिप्पणी

1. सुलेख

सुंदर लेख को ही सुलेख कहते हैं। सुलेख का लेखन कौशल शिक्षण में विशेष स्थान है। सुलेख शिक्षित व्यक्ति का आवश्यक लक्षण है। बच्चों की लिखावट अच्छी करने के लिए प्रारंभ से ही सतर्क रहना चाहिए व समय–समय पर नई–नई विधियां अपनानी चाहिए। बच्चों की लिखावट अगर प्रारंभ से सही दिशा में जाएगी फिर आगे वह और अधिक कोशिश करेगा अपनी लिखावट को सही और अच्छी करने की।

एक सुंदर लेख में निम्नलिखित गुण होने चाहिए–

1. **अनुपात**– परस्पर वर्णों में तथा वर्णों का मात्राओं के साथ आकार की दृष्टि से अनुपात हो। अगर वर्णों में अनुपात नहीं होगा तो वर्ण छोटे–बड़े आकार के होंगे और उनका आकार सही नहीं दिखेगा।
2. **पाई**– देवनागरी लिपि के वर्णों में पाई (ा) का चिह्न लेख को सुंदर बनाने में बहुत महत्व रखता है। यदि पाई सीधी होगी तो वर्ण सुंदर बनेंगे। पाई का कोण 90^0 अंश पर होना चाहिए। अगर 90^0 से छोटा या बड़ा हुआ तो वर्ण सुंदर नहीं दिख पाएंगे।
3. **शिरोरेखा**– देवनागरी लिपि के वर्णों पर शिरोरेखा लगाना अनिवार्य माना जाता है। अतः प्रत्येक शब्द पर शिरोरेखा अवश्य हो। शिरोरेखा बिल्कुल सीधी होनी चाहिए। शिरोरेखा के बिना कोई भी वर्ण व अक्षर पूरा नहीं लगता।
4. **मात्राओं का योग**– वर्णों में मात्राओं का योग ठीक से हो। विशेष रूप से 'इ' की मात्रा से पूर्व आधे व्यंजन के योग में तथा 'र' के साथ लगने वाली 'उ' व 'ऊ' की मात्राओं में विशेष सावधानी की आवश्यकता होती है।
5. **उचित दूरी**– वर्णों, शब्दों, वाक्यों तथा पंक्तियों की परस्पर एक–दूसरे से दूरी समुचित रूप से होनी चाहिए। यह दूरी न तो बहुत अधिक होनी चाहिए और न ही बहुत कम। दूरी एक सीमित मात्रा में होनी चाहिए।
6. **अनुच्छेदों में विभाजन**– लेख को समुचित अनुच्छेदों में विभाजित किया जाना चाहिए। अनुच्छेद निर्माण एक कला है। अलग–अलग विचार के लिए अलग–अलग अनुच्छेद की रचना की जानी चाहिए। और हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि न तो एक ही विचार के लिए कई अनुच्छेद बनाए जाएं और न ही एक अनुच्छेद में कई विचारों का समावेश हो।
7. **उचित हाशिया**– लिखते समय पृष्ठ के बायीं ओर उचित हाशिया छोड़ा जाना भी सुलेख के लिए अनिवार्य है।
8. **उचित गति**– लेख की सुंदरता के साथ–साथ लेखन में उचित गति होना भी आवश्यक है, अर्थात सुंदर लिखने के चक्कर में एक ही शब्द या वाक्य पर ही पूरा समय न लगा दिया जाए। अतः गति के साथ–साथ सुंदरता को बनाए रखना आवश्यक है।

लेख को सुंदर बनाने के लिए शिक्षक को उपर्युक्त बातों की ओर ध्यान देने के साथ–साथ निम्नलिखित सावधानियां भी बरतनी चाहिए–

1. **सतर्कता**– सतर्कता सुंदर हस्तलेख के लिए परमावश्यक है। प्रारंभिक कक्षाओं में स्याही के स्थान पर पेंसिल का प्रयोग ही ठीक है क्योंकि स्याही के प्रयोग से बालक साफ नहीं रह पाते। जब तक स्याही का प्रयोग सफाई के साथ करना न सीख सके तब तक पेंसिल से ही लिखना लाभदायक है। तीसरी कक्षा से स्याही और कलम का प्रयोग सिखाना चाहिए। निब से लिखना प्रारंभिक कक्षाओं में वर्जित होना चाहिए। उसके स्थान पर कलम से ही लिखवाना उचित है क्योंकि निब के प्रयोग से सुंदर हस्तलेख का अभ्यास नहीं होता व लिखाई बिगड़ जाती है। माध्यमिक कक्षाओं में ही शिक्षकों को बालकों द्वारा निब से लिखने का आदेश देना चाहिए। शिक्षकों को विद्यार्थियों के समक्ष अपने आदर्श हस्तलेख को प्रस्तुत करने का प्रयास करना चाहिए। शिक्षकों की ओर से उदासीनता के कारण दिन प्रतिदिन विद्यार्थियों का हस्तलेख घसीटोन्मुख होता जा रहा है।
2. **बैठने का ढंग**– लिखते समय रीढ़ की हड्डी सीधी रहनी चाहिए। झुकी हुई अवस्था में लिखने से अवयवों को हानि पहुंचती है। लेखन सामग्री नेत्रों से कम से कम एक फुट की दूरी पर हो और कापी, तख्ती या स्लेट सीधी रखी जानी चाहिए। विदेशों में तो विद्यार्थियों के लिए कुर्सी और मेज का ही प्रयोग होता है किंतु भारत में बालकों को जमीन पर टाट–पट्टी बिछा कर बैठाने की ही प्रथा प्रचलित है। कुछ शिक्षा संस्थाएं बच्चों के लिए चौकियों का प्रबंध कर देती हैं या ढलवां चैकियां लिखने के लिए अधिक सुविधाजनक होती हैं। जहां मेज, चौकी की व्यवस्था नहीं वहां दाहिना घुटना खड़ा करके उस पर पुस्तिका, स्लेट या तख्ती रखकर लिखने का ढंग अच्छा है। इसमें रीढ़ की हड्डी सीधी रहती है। झुकी हुई अवस्था में लिखना हानिकारक है। अध्यापक को यह बात सदैव ध्यान में रखनी चाहिए कि लिखना एक कला है। प्रायः छात्र अपना सिर मेज पर झुकाकर लिखते हैं। यह पूर्णतया अनुचित है। लिखित कार्य आरंभ करने से पूर्व छात्रों का शरीर संतुलित होना चाहिए। शिक्षक को चाहिए कि वह बच्चे के आसन का निरीक्षण करे। कुर्सी इतनी ऊंची हो कि बैठने पर बच्चे के पैर जमीन पर सीधे रखे हों। घुटने 90^0 का कोण बनाते हों और रीढ़ की हड्डी सीधी हो।
3. **कलम या लेखनी पकड़ने का ढंग**– प्रथम तथा द्वितीय उंगली के मध्य तथा अंगूठा रख कर कलम पकड़नी चाहिए। कलम को उसकी जीभ से लगभग एक इंच की दूरी से पकड़ना चाहिए। इससे लिखने में थकान कम होती है और स्याही से हाथ भी खराब नहीं होते। प्रारंभिक अवस्था में कलम की लेखनी इतनी मोटी बनानी चाहिए कि 1/5 इंच के सुडौल एवं सानुपात अक्षर लिखे जा सकें। कलम की जीभ 45^0 पर इस प्रकार कटी हुई हो कि

कागज या तख्ती पर सुंदर अक्षरों की रचना हो सके। लेखनी 54^0 के कोण पर पकड़ी जानी चाहिए। लेखनी को निब से दो सेंटीमीटर ऊपर से पकड़ना चाहिए।

4. **लेखन सामग्री**– स्पष्ट और सुडौल लिखने के लिए उचित लेखन सामग्री का होना आवश्यक है। प्रारंभिक स्तर पर तख्ती, स्लेट, पैंसिल का प्रयोग किया जाए तो अच्छा है। स्याही का उपयोग उस समय तक नहीं करना चाहिए जब तक छात्र उसका प्रयोग अच्छी तरह से न सीख जाएं। स्याही का प्रयोग करें भी तो यह देखें कि स्याही ठीक से घुली हो। लेखनी ठीक हो। यद्यपि आज बाल पैन के प्रयोग ने उसे बहुत सुगम बना दिया है।
5. **लेखन चक्र की अवधि**– छोटे बच्चे की लिखने की समयावधि को अधिक लंबा नहीं किया जाए। जब बालक लिखें तो वे प्रसन्न मुद्रा में रहें। अधिक लंबी अवधि होने पर बालक थक जाएंगे तथा उनमें लेखन के प्रति अरुचि हो जाएगी।
6. **लिखने का क्रम**– प्राथमिक अवस्था में बच्चों से वर्ण बड़े आकार में लिखाए जाने चाहिए। धीरे–धीरे उनके आकार को छोटा किया जाना चाहिए। पहले बच्चे से सरल शब्द लिखवाए जाएं। बाद में धीरे–धीरे कठिन शब्दों की ओर बढ़ें। जिन वर्णों को बच्चे थोड़े प्रयत्न से लिख सकते हैं, पहले उन वर्णों को ही चुना जाए। फिर सीखे गए वर्णों से ही अन्य वर्णों का निर्माण कराया जाए। बालक को पहले उसका नाम लिखना सिखाया जाए तो अति उत्तम है। ऐसा करने से बच्चे को प्रसन्नता होगी और वह लेखन में रुचि लेने लगेगा।
7. **सुडौल अक्षर बनाना**– अक्षर सुडौल हों, उनका प्रत्येक अंग सानुपात हो, अक्षर आकार में बड़े, स्पष्ट व सीधे लिखे जाएं। टेढ़े–मेढ़े अक्षर नेत्र रंजक नहीं होते। दो पंक्तियों के बीच एक पंक्ति का अंतर रखना बालकों को सिखाना चाहिए। पुस्तिका पर लिखते समय लगभग 1 इंच का हाशिया छोड़ना और नित्य कक्षा का लिखित कार्य करते समय पृष्ठ के ऊपर दिनांक सही स्थान पर डालना भी शिक्षक को सिखाना चाहिए। ये बातें बहुत छोटी–छोटी सी हैं किंतु लेखन की कुशलता के लिए निरंतर अभ्यास करते रहना अत्यंतावश्यक है।

2. अनुलेख

किसी आदर्श लिखाई का वैसा का वैसा अनुकरण करना अनुलेख या अनुलिपि कहलाता है।

इसमें छात्र शिक्षक के आदर्श लेख का बिल्कुल वैसा का वैसा अनुकरण करते हैं। शिक्षक तख्ती या कॉपी पर वर्ण या शब्द लिख देता है और बच्चे ठीक वैसा ही लिखने का अभ्यास करते हैं।

आजकल अनुलेख के लिए सुलेख माला पुस्तिकाएं मिलती हैं। इन कॉपियों के प्रत्येक पृष्ठ के ऊपर प्रथम पंक्ति में मोटे व सुंदर वर्ण, शब्द या वाक्य लिखे होते हैं और उनके नीचे की पंक्तियां खाली रहती हैं। छात्र खाली पंक्तियों में लिखने का अभ्यास करते हैं। आरंभ में नीचे की पंक्तियों में भी बिंदुओं के माध्यम से वर्णों की रूपरेखा बनी रहती है और छात्र उसी पर स्याही फेरते हैं। बाद के पृष्ठों में नीचे की पंक्तियां बिल्कुल खाली रहती हैं और छात्र स्वयं ऊपर के मुद्रित वर्ण के अनुसार लिखते हैं। अनुलेख का प्राथमिक कक्षाओं में विशेष महत्व है। कक्षा तीन तक अनुलेख का अभ्यास कराया जाना चाहिए। अनुलेख का लक्ष्य सुलेख ही है।

अनुलेख कराते समय अध्यापक को सक्रिय रूप से छात्रों की सहायता करनी चाहिए।

लिखते समय बच्चे के हाथ व अंगुलियों के संचालन की ओर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है।

लिखना प्रारंभ करने से पूर्व शिक्षक छात्रों की लेखन सामग्री का भली–भांति निरीक्षण करें। यदि कोई बच्चा गलत भी लिख रहा हो तो उसे हतोत्साहित न करें अपितु जब भी अवसर मिले बच्चों को प्रोत्साहित करते रहना चाहिए।

अनुलिपि की जांच का काम भी नियमित रूप से किया जाना चाहिए।

सुलेख मालाओं में अनुलेख का कुछ अभ्यास होने के बाद बच्चों से पुस्तक या पत्र–पत्रिकाओं का अनुकरण करके उनकी कॉपियों पर लिखवाया जाना चाहिए। इस स्थिति में छात्रों की वर्तनी की शुद्धता तथा विराम चिह्नों की ओर भी ध्यान दिया जा सकता है। कक्षा चार से छः तक यह अभ्यास अधिक उपयोगी है।

इसमें शिक्षक ध्यान रखें कि जिस अंश को छात्र लिखें वह उनके मानसिक स्तर व उनकी रुचियों के अनुरूप हो। इससे शिक्षक छात्रों में सावधानीपूर्वक लिखने व अशुद्धियों को दूर करने का प्रयास कर सकता है।

3. श्रुतलेख

श्रुतलेख में छात्र सुनी हुई ध्वनियों को लेखनीबद्ध करते हैं। अनुलेख में छात्र के सामने मुद्रित वर्ण होते हैं पर श्रुतलेख में इस चीज का अभाव होता है। श्रुतलेख में सुंदर लेख का इतना महत्व नहीं है, जितना भाषा की शुद्धता का।

- श्रुतलेख का उद्देश्य छात्रों की श्रवणेंद्रिय को पूर्ण शिक्षित करना भी है ताकि वह भाषा के शुद्ध रूप को सावधानी से सुन सके। इसमें बच्चे की लिखावट में सुडौलता, स्पष्टता व गति लाना भी उद्देश्य रहता है। इसके द्वारा बच्चे अपने हाथ, कान, आंख व मस्तिष्क की क्रियाओं में संतुलन स्थापित करने का अभ्यास करता है। इससे बालक की स्मरण–शक्ति विकसित होती है तथा उसे सुनकर भाव ग्रहण करने का अभ्यास हो जाता है। इसका एक उद्देश्य वर्तनी की शिक्षा देना भी है।
- श्रुतलेख के लिए किसी अंश के चयन में शिक्षक को बालकों के मानसिक स्तर का ध्यान रखना चाहिए। चुना गया अंश न तो अधिक कठिन हो और न ही अधिक सरल।

टिप्पणी

- उस अंश को शिक्षक पहले विराम–चिह्नों, आरोह–अवरोह का ध्यान रखते हुए स्वयं पढ़े।
- उसके बाद एक या दो शब्द धीरे–धीरे बोले और छात्रों को लिखने के लिए कहे।
- संपूर्ण अंश लिखा देने के पश्चात एक बार फिर शिक्षक उस अंश का वाचन करे ताकि कुछ छूट गया हो तो छात्र उसे लिख लें।

लेखन की प्रक्रिया

लिखित रचना के लिए बच्चों को तैयार करने के लिए हमेशा 'सरल से कठिन की ओर' नियम का पालन करना चाहिए।

जे. मैस्की एवं जे. मैनरो के अनुसार, बच्चों को पहले जमीन पर अंगुली से, श्यामपट्ट पर खड़िया से, स्लेट पर बत्ती (चाक) से, तख्ती पर कलम से तथा कागज पर स्याही एवं पैन से लिखने की शिक्षा दी जानी चाहिए। प्रारंभ में बच्चों को स्लेट, कॉपी या तख्ती पर अक्षर लिखने का अभ्यास कराया जाता है, तत्पश्चात सुलेख द्वारा वह सुंदर–सुडौल अक्षर लिखता है, ऐसे ही धीरे–धीरे वह शब्द, वाक्य रचना करना सीख जाता है, वाक्य रचना के पश्चात वह अनुच्छेद लिखना सीखता है और उसके साथ ही वह पत्र–लेखन भी सीख जाता है।

माध्यमिक स्तर पर निर्देशित रचनाओं पर बल दिया जाता है। इसमें पहले विद्यार्थी के साथ विषय पर चर्चा की जाती है फिर विद्यार्थियों को रूपरेखा दी जाती है। निर्दिष्ट रूपरेखा पर रचित रचना को 'निर्दिष्ट रचना' कहते हैं।

दूसरे प्रकार की रचना जिसमें बच्चे स्वेच्छानुसार शब्दों को चुनकर लेखन करते हैं, उसे 'स्वतंत्र रचना' कहते हैं। ऐसी रचना में बच्चों को अपने भावों/विचारों को लेखन के रूप में प्रत्यक्ष करने की पूर्ण स्वतंत्रता होती है। यात्रा वर्णन, जीवनी, प्रकृति वर्णन आदि स्वतंत्र लेखन के अंतर्गत आते हैं।

रचना शिक्षण के लिए निम्नलिखित प्रक्रियाएं अपनाई जाती हैं–

(क) विषय एवं विधा चुनना।

(ख) विषय की मौखिक विवेचना– चित्र द्वारा या प्रश्नोत्तर विधि से।

(ग) रूपरेखा।

(घ) लेखन कार्य।

(ङ) संशोधन कार्य।

लिखित रचना के प्रकार एवं उनका शिक्षण

प्राथमिक कक्षाओं में बच्चों का उतना स्तर तो होता नहीं है कि वे शुरुआत से ही श्रुतलेख लिखना सीख जाएं, इसलिए उन्हें पहले अनुलेख या नकल द्वारा लिखवाया जाता है, उसके बाद उन्हें सुलेख का अभ्यास कराते हैं। तत्पश्चात श्रुतलेख का अभ्यास कराया जाता है।

माध्यमिक कक्षाओं में विद्यार्थी से जिस प्रकार की रचनाएं करवाई जाती हैं वे निम्नलिखित हैं–

1. वर्णन– यात्रा वर्णन, प्रकृति वर्णन, चित्र वर्णन, ऐतिहासिक एवं भौगोलिक तथ्यों के आधार पर वर्णन, प्लेटफार्म, बाजार आदि का वर्णन।
2. पत्र–लेखन।
3. लेख तथा निबंध।
4. सारांश लेखन।
5. व्याख्या।
6. समीक्षा।
7. रिपोर्ट लेखन।
8. संवाद।
9. भाव–पल्लवन।
10. जीवनी, आत्मकथा।
11. कहानी

लिखित रचना शिक्षण की विधियां

इसके लिए निम्नलिखित विधियां अपनाई जाती हैं–

- **चित्र वर्णन विधि**– यह विधि कक्षा '6' तक के विद्यार्थियों के लिए अत्यंत उपयोगी है। इस विधि में पहले बच्चों को चित्र दिखाया जाता है, फिर उन्हीं से चित्र के बारे में सवाल पूछे जाते हैं, फिर उसी के आधार पर उन्हें रचना के लिए प्रेरित किया जाता है।
- **प्रश्नोत्तर विधि**– शिक्षक विद्यार्थियों से किसी निबंध पर या किसी और विषय पर प्रश्न कर सकता है, जैसे– कब, क्यों, कैसे, कहां आदि प्रश्न पूछ सकते हैं। उनके उत्तरों के आधार पर मुख्य बिंदु श्यामपट्ट पर लिख लिए जाते हैं, फिर उन्हें उन्हीं के आधार पर रचना के लिए प्रेरित किया जाता है।
- **उद्बोधन विधि**– जीवन–चरित्र, प्राकृतिक दृश्य तथा आत्मकथा लिखने के लिए चित्रों या प्रश्नों के माध्यम से बालकों की स्मरण–शक्ति को उद्बोधित किया जाता है। उनके आधार पर बच्चे रचना करते हैं।
- **रूपरेखा–विधि**– किसी भी निबंध, जीवनी आदि के विषय में शिक्षक पहले बच्चों को संकेत या रूपरेखा देते हैं, जिसके आधार वे निबंध लिखते हैं।
- **प्रवचन विधि**– इस विधि में शिक्षक स्वयं किसी विषय का वर्णन करता है और फिर बच्चे उसके आधार पर रचना करते हैं।
- **स्वाध्याय या मंत्रणा विधि**– इसमें शिक्षक विद्यार्थियों को विभिन्न पुस्तकों को पढ़ने का परामर्श देते हैं, जिसके आधार पर बच्चे रचना करते हैं।

- **विचार–विमर्श या परिचर्चा विधि**– इसमें विद्यार्थी समूह बनाते हैं और किसी विषय पर चर्चा करते हैं, तत्पश्चात जो मूल बिंदु प्राप्त होते हैं, उनसे रचना करते हैं।
- **आदर्श अनुकरण विधि**– किसी विशेष भाषा–शैली में लिखी रचना का अनुकरण करके रचना करना अनुकरण विधि कहलाता है।

लिखित रचना के प्रकार

लिखित रचना के निम्न प्रकार हैं–

- **वर्णन**– घर, विद्यालय, खेलकूद, पशु–पक्षी, उत्सव, प्रदर्शनी, यात्रा, घटना आदि विषयों पर विद्यार्थी अनुभव तथा बातचीत करके अपने शब्द चुनकर, अपने मनोनुकूल वर्णन विधि द्वारा रचना करते हैं।
- **पत्र**– छोटी कक्षाओं में अपना संदेश, स्थिति, कुशलता, परेशानी, आदान–प्रदान, विनती आदि के लिए पत्र लेखन करवाया जाता है। छोटी कक्षाओं में यह पत्र केवल माता–पिता, भाई–बहन तक ही सीमित रहते हैं, उसके बाद माध्यमिक स्तर पर सभी को पत्र लिखना सिखाया जाता है।

  पत्र प्रायः दो प्रकार के होते हैं–

  (क) **व्यक्तिगत या अनौपचारिक पत्र**– पारिवारिक पत्र, संपादक के नाम पत्र, निमंत्रण पत्र इस श्रेणी में आते हैं।

  ये पत्र सरल व सुबोध भाषा में होने चाहिए क्योंकि पारिवारिक पत्रों का मुख्य गुण अपनापन है। इसमें भावाभिव्यक्ति पर बल दिया जाता है। इस प्रकार के पत्र के आठ भाग होते हैं– (1) लिखने का स्थान, (2) दिनांक, (3) संबोधन, (4) अभिवादन, (5) पत्र के विषय का आरंभ, (6) पत्र का कलेवर, (7) उपसंहार, (8) पत्र पाने वाले का पता।

  (ख) **कार्यालयी या औपचारिक पत्र**– नौकरी, शिकायत, आवेदन, व्यवसाय आदि के लिए पत्र इस श्रेणी में आते हैं।

  कार्यालय संबंधी पत्र, व्यावसायिक–पत्र, आवेदन–पत्र, प्रार्थना पत्र औपचारिक पत्रों के अंतर्गत आते हैं। औपचारिक पत्र के मुख्य पांच अंग होते हैं–

  (1) पता एवं दिनांक, (2) संबोधन, (3) कही जाने वाली मुख्य बात, (4) पत्र की समाप्ति पर हस्ताक्षर, (5) पत्र प्राप्त करने वाले का पता।

  औपचारिक पत्रों में संबोधन 'महोदय' 'श्रीमान' आदि होता है। इसके बाद ही मुख्य विषय लिखा जाता है, इसमें अभिवादन का प्रयोग नहीं होता। अंत में 'धन्यवाद सहित' या 'भवदीय' लिखा जाता है तथा हस्ताक्षर किए जाते हैं। पत्र के लिफाफे पर पाने वाले का पता लिखा जाता है। पत्र भेजने वाले का पता लिफाफे में दाईं ओर नीचे कोने में लिखा जाता है।

- **निबंध लेखन**– निबंध एक ऐसी स्वतंत्र रचना है जिसमें कम समय में विद्यार्थी अपने विचारों को क्रमबद्ध रूप में प्रभावशाली ढंग से प्रकट कर सकता है। निबंध के तीन अंग होते हैं– (क) प्रारंभ या प्रस्तावना, (ख) मध्य, (ग) उपसंहार।

निबंध के प्रकार

(क) **विवरणात्मक**– इस प्रकार के निबंधों में यात्रा, घटना, संस्मरण आदि का वर्णन होता है।

(ख) **वर्णनात्मक**– इनमें प्राकृतिक दृश्यों, ऐतिहासिक या सांस्कृतिक नगरों, विभिन्न ऋतुओं, त्योहारों आदि का वर्णन किया जाता है।

(ग) **विचारात्मक**– ऐसे निबंध चिंतन प्रधान होते हैं। इनमें तर्क–वितर्क भी दिए जाते हैं, जैसे– 'विज्ञान से हानि–लाभ' या 'चलचित्र का समाज पर प्रभाव'।

(घ) **भावात्मक**– इस प्रकार के निबंध में काव्य की भांति भावाभिव्यक्ति की प्रधानता रहती है।

निबंध रचना–शिक्षण की प्रक्रिया– निबंध रचना में सर्वप्रथम विषय निश्चित करना चाहिए। विषय चयन में विद्यार्थियों की सहायता लेनी चाहिए तथा विषय उनकी रुचि के अनुकूल होना चाहिए।

कक्षा में निबंध के विषय में परिचर्चा कराई जाए तत्पश्चात् निबंध के विषय में विकासात्मक प्रश्न किये जाएं। परिचर्चा में गृहीत विचारों को क्रमबद्ध रूप से अनुच्छेद बनाकर विद्यार्थी लिखें। इस प्रकार निबंध का कलेवर विकसित होगा। निबंध रचना शुद्ध एवं परिष्कृत भाषा में होनी चाहिए। निबंध को और मजेदार बनाने के लिए उद्धरणों, सूक्तियों का सहारा लेना चाहिए।

- **सारांश लेखन**– किसी पाठ, विषय, घटना, कहानी, नाटक आदि के मुख्य विचारों को मूल विषय–वस्तु के 1/3 भाग में लिखना सारांश कहलाता है। इसको संक्षेपण भी कहते हैं। सारांश लेखन के अभ्यास से विद्यार्थी को रचना की सामासिक विधि का ज्ञान होता है तथा किसी विषय के मूलभाव को ग्रहण करने की क्षमता का विकास होता है।

सार लेखन में ध्यान देने योग्य बातें–

1. जिस लेख का सारांश लिखना हो पहले उसे विद्यार्थी बार–बार पढ़े।
2. जो अंश महत्वपूर्ण हो, पहले उन्हें रेखांकित किया जाए।
3. सारांश में मूल विषय की सभी महत्वपूर्ण बातें आ जानी चाहिए। कोई महत्वपूर्ण विचार छूटना नहीं चाहिए।
4. मुख्य विषय के अलंकारों, उदाहरणों आदि को छोड़ देना चाहिए किंतु केंद्रीय तत्व को नहीं छोड़ना चाहिए।
5. सारांश की भाषा सरल तथा मौलिक होनी चाहिए।
6. सारांश मुख्य लेख का 1/3 भाग होना चाहिए।

टिप्पणी

7. सारांश लेखन के प्रश्चात् 'सार' का शीर्षक देना चाहिए।
8. शीर्षक संक्षिप्त किंतु सशक्त होना चाहिए।

- **व्याख्या लेखन**– साहित्य के किसी गद्यांश या पद्यांश के विस्तृत विवेचन को व्याख्या कहते हैं। व्याख्या में सर्वप्रथम संदर्भ लिखते हैं जिसमें कवि या लेखक का नाम तथा रचना का शीर्षक लिखा जाता है। फिर उस अंश का प्रसंग लिखा जाता है। संदर्भ के पश्चात गद्यांश या पद्यांश की विस्तृत व्याख्या या भावार्थ लिखा जाता है।

  व्याख्या के अंत में गद्यांश या पद्यांश में प्रयुक्त भाषा, शैली, रस, छंद, अलंकार आदि का नाम भी लिखा जाता है।

- **समीक्षा लेखन**– किसी पुस्तक एवं लेख की समालोचना समीक्षा कहलाती है।
  1. इसमें किसी लेख के आंतरिक रूप की विशद विवेचना की जाती है।
  2. पुस्तक के विषय, उसकी प्रासंगिकता, उसका लेखन–कौशल, आदि सबकी समीक्षा की जाती है।
  3. लेखक के विचार कितने प्रामाणिक तथा औचित्यपूर्ण हैं, इसकी समालोचना भी की जाती है।
  4. लेखक की भाषा कितनी शुद्ध, परिष्कृत तथा प्रवाहमयी है इसका भी विवेचन किया जाता है।
  5. समाज में वे विषय या विचार कितने ग्राह्य हैं, इस पर टिप्पणी की जाती है।

  समीक्षा लेखन की प्रक्रिया

  1. समीक्षा लेखन सबसे पहले निबंध से प्रारंभ कराना चाहिए।
  2. सर्वप्रथम शिक्षक समीक्षा के विषय में विद्यार्थियों को बताएं फिर उन्हें आलोच्य निबंध को कई बार पढ़ने को कहें। पढ़ते समय समालोचना योग्य बातों को टिप्पणी के रूप में विद्यार्थी कॉपी में लिखें।
  3. विद्यार्थियों द्वारा लिखी हुई टीकाओं की शिक्षक जांच करें।
  4. विद्यार्थियों द्वारा एकत्रित टिप्पणियों पर शिक्षक कक्षा में परिचर्चा करें।
  5. विद्यार्थियों को निर्देश दिया जाए कि वे श्यामपट्ट पर लिखित बिंदुओं के आधार पर निबंध की समीक्षा घर से लिखकर लाएं।

- **रिपोर्ताज लेखन**– रिपोर्ट या रिपोर्ताज शब्द का अर्थ है– 'जैसा देखा वैसा बताना'। इसकी उपयोगिता विशेष रूप से पत्रकारिता में है किंतु साहित्य में भी यह लिखित अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है।

  सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय खेलों का विवरण रिपोर्ताज के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है।

  रिपोर्ताज लेखन शिक्षण– शिक्षक को विद्यार्थियों से उनके आसपास घटित घटनाओं का विवरण लेना चाहिए तथा मुख्य बिंदुओं को श्यामपट्ट पर

लिख देना चाहिए। उसके बाद विद्यार्थियों को रिपोर्ट तैयार करने के लिए कहना चाहिए तत्पश्चात् उस पर परिचर्चा करनी चाहिए।

टिप्पणी

- **संवाद लेखन**– संवाद किसी भी मनुष्य के विकास के लिए अति आवश्यक है। अच्छे संवाद के द्वारा मनुष्य अपने शत्रु को भी मित्र बना लेता है। इसका अभ्यास माध्यमिक कक्षाओं में कराना चाहिए। संवाद को लिखने के लिए कहानी से उपयुक्त कुछ नहीं हो सकता है। कुछ संवादात्मक कविताओं का भी गद्य में रूपांतरण करके उनके संवाद लिखवाने का अभ्यास कराना चाहिए।

संवाद लेखन में ध्यान देने योग्य बातें–

1. संवाद की भाषा सरल होनी चाहिए।
2. पात्रों की बातचीत संक्षेप में होनी चाहिए।
3. बातचीत के अंत में कोई निश्चित निष्कर्ष निकलना चाहिए।
4 संवादों के विचार परस्पर संबद्ध एवं स्वाभाविक होने चाहिए।
5. उचित स्थान पर मुहावरों का प्रयोग भी होना चाहिए।
6. संवाद में व्याकरण के नियमों का उल्लंघन नहीं होना चाहिए।

- **भाव पल्लवन**– किसी सूक्ति विचार या सारगर्भित वाक्य की विस्तृत व्याख्या को भाव पल्लवन कहते हैं। कभी–कभी छोटे से कथन में भी एक बड़ा भाव जुड़ा होता है, उस भाव को समझना तथा कथन की परतें खोलना ही भाव पल्लवन है। जैसे– "हानि–लाभ, जीवन–मरन, जस–अपजस, विधि–हाश" अथवा "पराधीन सपनेहु सुख नहीं" आदि उक्तियों की सप्रसंग विशद व्याख्या करना ही 'भाव–पल्लवन' है।
- **जीवनी एवं आत्मकथा**– किसी भी महापुरुष के जीवन की महत्वपूर्ण बातें, उनकी उपलब्धियों, उनके शौक आदि के बारे में लिखना ही जीवनी कहलाता है। ये सब जानकारी उस महापुरुष के पत्रों द्वारा, उनके संबंधियों द्वारा एकत्रित होती हैं।

आत्मकथा अर्थात स्वयं की कथा स्वयं द्वारा कथा, इसमें व्यक्ति स्वयं के बारे में लिखता है। उसमें वह अपने जीवन के संघर्षों, अनुभवों, अपने संपर्क में आए हुए व्यक्तियों आदि के विषय में लिखता है। अपने समय की सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक परिस्थितियों के विषय में लिखता है।

आत्मकथा प्रामाणिक होती है क्योंकि व्यक्ति अपने बारे में स्वयं लिखता है, जो कि पूर्णतया सत्य होता है, उसका प्रमाण होता है, परंतु जीवनी सुनी–सुनाई बातों पर आधारित होती है इसलिए उसकी प्रामाणिकता के बारे में कुछ नहीं कह सकते।

जीवनी तथा आत्मकथा लेखन–शिक्षण– शिक्षक विद्यार्थियों को स्वयं की आत्मकथा लिखने के लिए प्रेरित करें, जिनमें वे अपनी जन्मतिथि, जन्म स्थान, भावी जीवन की इच्छाओं आदि के बारे में लिखें।

टिप्पणी

- **कहानी लेखन**— कहानी लेखन के उद्देश्य—
  1. विद्यार्थियों की कल्पना, स्मरण—शक्ति तथा रचनात्मक शक्ति का विकास।
  2. सही शब्दों के द्वारा मानव चरित्र के वर्णन की योग्यता प्राप्त करना।
  3. लिखित अभिव्यक्ति कौशल का विकास।

  कहानी लेखन की शिक्षण विधियां— ये विधियां अनेक प्रकार की हैं, जो कि छात्रों के बौद्धिक स्तर पर निर्भर करती हैं, जैसे—
  1. यात्रा वृत्तांत
  2. चित्रकथा विधि
  3. रूपरेखा विधि
  4. सुनो और देखो विधि
  5. संकेतों के आधार पर कहानी लेखन
  6. किसी घटना का कहानी में रूपांतरण

  मनोवैज्ञानिकों के अनुसार अलग—अलग उम्र के बच्चों को अलग—अलग प्रकार की कहानियां पसंद आती हैं।

आयु वर्ग	कहानी के प्रकार
8 वर्ष से 11 वर्ष	परियों की कहानियां, वीरता भरी कहानियां, पशु—पक्षियों की कहानियां, साहसिक कहानियां।
12 से 14 वर्ष	महापुरुषों की जीवन गाथाएं, जासूसी कहानियां, खोजपूर्ण कहानियां।
15 से 18 वर्ष	आधुनिक जीवन की समस्याओं से पूर्ण कहानियां।

- **सृजनात्मक लेखन**— जब बच्चे अपनी स्वतंत्र इच्छा से अपनी कल्पनाओं के द्वारा अपने भावों, विचारों को लिखते हैं, तो वह सृजनात्मक विकास कहलाता है। सृजनात्मक लेखन के अंतर्गत अधिकतर विचारात्मक निबंध, भावात्मक निबंध, कहानी लेखन, संवाद लेखन, गद्य गीत, कविताएं आती हैं।

सृजनात्मक लेखन प्रक्रिया

1. सृजनात्मक लेख के विषय ऐतिहासिक, वैज्ञानिक, साहित्यिक, समीक्षात्मक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक आदि हो सकते हैं; किंतु इन विषयों का पूर्व ज्ञान विद्यार्थियों को होना चाहिए।
2. प्रस्तुत विषय से संबंधित शब्द रचना विद्यार्थियों से करवानी चाहिए। जैसे— बाल्यावस्था से वृद्धावस्था आदि इस प्रकार की शब्द रचना से शब्द भंडार की वृद्धि होती है।

टिप्पणी

लिखित कार्य का संशोधन

विद्यार्थी अपने लेखन कार्य में प्रायः निम्नलिखित अशुद्धियां करते हैं–

1. वर्तनी संबंधी
2. विराम चिह्न संबंधी
3. वाक्य रचना संबंधी
4. अनुच्छेद क्रम संबंधी
5. विषय प्रतिपादन संबंधी

उपर्युक्त दोषों को दूर करने के लिए शिक्षक विद्यार्थियों से अधिकाधिक भाषा–कार्य करवाए, इससे उनकी अशुद्धियां दूर होंगी।

संयुक्ताक्षर संबंधी या 'श', 'ष', 'स' संबंधी अशुद्धियां छात्र अधिक करते हैं अतः ऐसी अशुद्धियों पर शिक्षक संकेत चिह्न या गोला बना दें जिससे उस ओर उनका ध्यान स्वयं आकृष्ट हो।

अशुद्धियों को कम कराने के लिए सुधार कार्य बार–बार कराया जाए।

अनुच्छेद या विषय–सामग्री में प्रायः क्रमबद्धता संबंधी दोष पाया जाता है, जिसकी कक्षा में चर्चा करनी चाहिए।

इसके पश्चात शैली–संबंधी दोष आते हैं। प्रायः विद्यार्थी विषयानुकूल भाषा–शैली का प्रयोग नहीं करते।

संशोधन कार्य में छात्रों की सहभागिता आवश्यक है। शिक्षक कक्षा में सामान्य दोषों का सामूहिक संशोधन विद्यार्थियों द्वारा करवाए। विद्यार्थियों से एक–दूसरे की उत्तर पुस्तिकाएं बदलवा कर उनके द्वारा एक–दूसरे की अशुद्धियां संशोधित करवाई जा सकती हैं।

अंत में शिक्षक स्वयं व्यक्तिगत निरीक्षण करके संशोधन कार्य कर सकता है।

अपनी प्रगति जांचिए

7. भाषा सीखने का प्रथम चरण क्या है?
   - (क) वाचन
   - (ख) श्रवण
   - (ग) पठन
   - (घ) लेखन
8. पठन कौशल की प्राचीन भारतीय विधि क्या है?
   - (क) वर्णोच्चारण विधि
   - (ख) साहचर्य विधि
   - (ग) वाक्य शिक्षण विधि
   - (घ) सामूहिक पठन विधि

1.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (घ)
2. (क)
3. (ग)
4. (क)
5. (ख)
6. (घ)
7. (ख)
8. (क)

1.7 सारांश

हिंदी के विकास का स्पष्ट दर्शन हमें चंदवरदायी के समय से होने लगता है। यह समय बारहवीं सदी का अंतिम अर्द्ध भाग है परंतु उस समय में भी इसकी भाषा हिंदी से बहुत भिन्न हो गई थी। प्रसिद्ध वैयाकरण हेमचंद्र का समय संवत् 1144 और संवत् 1229 के बीच है। हेमचंद्र ने अपने व्याकरण में अपभ्रंश के कुछ उदाहरण दिए हैं। इससे पूर्व, विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी के दूसरे भाग में वर्तमान महाराज भोज का पितृव्य द्वितीय वाकपति राजा परमार मुंज एक पराक्रमी राजा के साथ–साथ एक सहृदय कवि भी था। एक बार वह कल्याण के राजा तैलप के यहां बंदी हो गया। उसी समय मुंज ने कुछ दोहों की रचना की थी।

खड़ी बोली का स्वतंत्र अस्तित्व बहुत प्राचीन समय से ही मिलता है। ग्यारहवीं शताब्दी में अपभ्रंश मिश्रित लोकभाषा में खड़ी बोली के बीज दिखाई देते हैं। तत्कालीन जैन धर्म–ग्रंथों में खड़ी बोली का आदि रूप उपलब्ध होता है। महापंडित राहुल सांकृत्यायन खड़ी बोली का विकास इससे भी पूर्व का मानते हैं अर्थात आठवीं शताब्दी में सिद्ध कवियों की रचनाओं में इन्होंने खड़ी बोली को माना है। लेकिन वास्तविक खड़ी बोली चौदहवीं शताब्दी में उत्पन्न हुई।

भारोपीय भाषाओं की संज्ञाओं में लिंग, वचन और कारक की उपस्थिति आवश्यक मानी जाती है और इन्हीं के कारण संज्ञा में रूपांतर होता है। पर, इन तीनों का किसी एक ही संज्ञा में विद्यमान होना आवश्यक नहीं है। भारोपीय परिवार की प्रायः सभी प्राचीन भाषाओं में पुल्लिग, स्त्रीलिंग और नपुंसक लिंग तीनों लिंग पाए जाते हैं। पर लिंग–निर्णय के लिए किसी भाषा में कोई निश्चित नियम नहीं हैं। कुछ नामों का लिंग नैसर्गिक है। अर्थात वे पुरुष व स्त्री के नाम होने के कारण पुल्लिग व स्त्रीलिंग माने जाते हैं। पर, कुछ नाम ऐसे हैं, जिनका नैसर्गिक लिंग निश्चित नहीं है। ऐसे नामों को

नपुंसक लिंग नाम देना उचित माना गया है। पर, सर्वत्र यह नियम नहीं लगता। ऐसे शब्दों के लिंग को हम कृत्रिम लिंग कह सकते हैं।

टिप्पणी

जिस प्रकार प्रकृति के अनेक कार्यों को देखकर वुफछ सामान्य एवं कुछ विशेष नियमों का निर्माण कर लिया जाता है, उसी प्रकार ध्वनियों में विकार के कार्यों को देखकर ध्वनि–नियम निर्धारित कर लिए जाते हैं। भिन्न–भिन्न भाषाओं में एक ही काल में और एक ही भाषा में विभिन्न कालों में उत्पन्न होने वाले इन ध्वनि–विकारों का यथाविधि तुलनात्मक अध्ययन करने पर यह निश्चित हो जाता है कि ध्वनियों में ये विकार कुछ निश्चित नियमों के अनुसार होते हैं और यदि वही परिस्थितियां उसी भाषा में वैसे ही अवसर पर पुनः उत्पन्न हों, तो उनका परिणाम पूर्वानुसार ही होगा।

भारत की स्वाधीनता से पहले हिंदी में राजभाषा शब्द का प्रयोग प्रायः नहीं मिलता। सबसे पहले सन् 1949 ई. में भारत के महान नेता श्री राज गोपालाचार्य ने भारतीय संविधान सभा में 'नेशनल लैंग्वेज' और 'राजभाषा' में अंतर और दोनों के स्वरूप को अलग करने वाली विभेदक रेखा को स्पष्ट किया। संविधान–सभा की कार्यवाही के हिंदी–प्रारूप तैयार करते समय 'स्टेट लैंग्वेज' के स्थान पर 'ऑफिशियल लैंग्वेज' शब्द का प्रयोग अधिक उपयुक्त समझा गया और 'ऑफिशियल लैंग्वेज' का हिंदी अनुवाद 'राजभाषा' ही किया गया सरकारी या कार्यालयी भाषा नहीं। इस परिप्रेक्ष्य में, राजभाषा शब्द का तात्पर्य है– ''राजा (शासक) अथवा राज्य (सरकार) द्वारा प्राधिकृत भाषा''।

आधुनिक काल में आकर हिंदी पूर्णतया विकसित हो गयी। इस काल में आते ही एक ओर तो हिंदी की बोलियों में पर्याप्त समृद्ध साहित्य लिखा जाने लगा, दूसरी ओर उसकी ये बोलियां इतनी विकसित हो गयीं कि वे बोली न रहकर उपभाषा के पद पर आसीन हो गयीं। सबसे बड़ी बात यह है कि इस काल में आकर हिंदी की एक 'खड़ी बोली' ने इतना अधिक विकास किया कि वह पहले तो मेरठ, मुजफ्फरनगर आदि जिलों की केवल बोलचाल की ही भाषा थी, परंतु अब उपभाषा बनकर सर्वप्रथम पद्य एवं गद्य की एक समृद्ध भाषा बनी जिसमें संस्कृत के तत्सम शब्द पर्याप्त मात्रा में आ गये और इनमें अरबी–फारसी के साथ–साथ अंग्रेजी के शब्द भी प्रचुर मात्रा में अपना लिये गये।

भाषा शिक्षण के लिए किसी भी विधि को अपनाया जाए उसमें श्रवण कौशल शिक्षण प्रमुख होता है। शिक्षकों द्वारा समय–समय पर दिए गए निर्देशों को सुनकर विद्यार्थियों के श्रवण कौशल का विकास होता है। शिक्षण की प्रत्येक गतिविधि, जिसमें अध्यापक या अन्य कोई बोले और छात्र जिसे सुने, श्रवण शिक्षण विधि के अंतर्गत आती है। इन गतिविधियों में श्रवण कौशल विकास मुख्य उद्देश्य न होकर सामान्य उद्देश्य होता है। यहां केवल वे विधियां विचारणीय हैं जिनका मुख्य उद्देश्य सुनने की क्षमता/कौशल का विकास करना होता है।

अध्यापक शुद्ध उच्चारण, उतार–चढ़ाव, बलाघात, अनुतान, हाव–भाव आदि को ध्यान में रखकर पाठ का सस्वर वाचन करते हैं तथा सभी छात्रों से बारी–बारी से सस्वर अनुकरण वाचन कराते हैं। वाचन के समय अध्यापक या कोई एक छात्र पढ़ता

है शेष उसे ध्यानपूर्वक सुनते हैं। अध्यापक के सस्वर वाचन के बाद विद्यार्थी भी पाठ का सस्वर वाचन, जैसा कि अध्यापक ने किया था उसको ध्यान में रखकर करते हैं। इससे बालकों में श्रवण कौशल का विकास होता है। साथ–साथ वे शुद्ध उच्चारण, बलाघात, अनुतान आदि का ज्ञान भी प्राप्त करते हैं। इसके अंतर्गत यदि शिक्षक विद्यार्थियों से वाचन से संबंधित प्रश्न पूछता है, तब विद्यार्थी और भी सचेत हो कर वाचन सुनते हैं जिससे सुनने की शक्ति का विकास होता है।

पठन या वाचन को अंग्रेजी में रीडिंग कहते हैं। संस्कृत में 'वाचनम्' शब्द की व्युत्पत्ति 'वच्' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है पढ़ना, वाचन करना, बांचना, पाठ करना या उच्चारण करना। पठन या वाचन का अर्थ सिर्फ पढ़ने से नहीं है, बल्कि हम जो भी पढ़ रहे हैं, उसे समझने से है। पठन या वाचन का मतलब है, लिखे हुए वर्णों को पहचानना। वाचन का तात्पर्य उचित विराम, बलाघात, सुरलहर, आरोह–अवरोह के साथ उचित गति से शुद्ध उच्चारण करके अर्थ ग्रहण करना भी है। पठन या वाचन का अर्थ, लिखी हुई सामग्री को पढ़ते हुए उसका अर्थ ग्रहण करना। अर्थ ग्रहण करने के पश्चात उस पर अपना मंतव्य स्थिर करना और तदनुसार व्यवहार करना। वाचन कवि या लेखक के लिखित विचारों से तादात्म्य (मेल) स्थापित करने का साधन है।

1.8 मुख्य शब्दावली

- **पंथ** – विचारधारा विषयक दृष्टिकोण
- **परिष्कार** – स्वरूप का विशुद्धिकरण
- **कोडीकरण** – कथ्य को भाषिक नियमों में बांधना
- **भौगोलिक** – स्थान काल–परिवेश से संबंधित
- **बलाघात** – वर्णोच्चारण में लगने वाले बल का अनुभव
- **स्वन** – ध्वनि
- **ऑफिशियल लैंग्वेज** – कार्यकारी भाषा
- **परिचर्चा** – विषय–विशेष पर विचारों का आदान–प्रदान

1.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. भाषा से क्या तात्पर्य है? परिभाषित कीजिए।
2. ध्वनि ग्राम का आशय स्पष्ट कीजिए।
3. राजनैतिक स्तर पर हिंदी भाषा शिक्षण का महत्व बताइए।
4. भाषा संचार माध्यम से क्या समझते हैं?
5. भाषिक कौशलों का नामोल्लेख कीजिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. हिंदी भाषा की उत्पत्ति एवं प्रगति पर प्रकाश डालिए।
2. भाषा परिवार से क्या आशय है, समझाकर लिखिए।
3. हिंदी भाषा शिक्षण के उपयोग एवं तत्संदर्भित चुनौतियों की विवेचना कीजिए।
4. हिंदी भाषा शिक्षण की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि स्पष्ट कीजिए।
5. विद्यालयी पाठ्यचर्या में विविध भाषा कौशलों की मीमांसा कीजिए।

1.10 सहायक पाठ्य सामग्री

1. डॉ. रामशकल पाण्डेय, 'हिन्दी शिक्षण'।
2. डॉ. भोलानाथ तिवारी : 'हिन्दी भाषा'।
3. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : 'हिन्दी साहित्य का इतिहास'।
4. डॉ. एस. के. मंगल एवं श्रीमती शुभ्रामंगल : 'शिक्षा तकनीकी'।
5. डॉ. एस. एस. माथुर : 'शिक्षण कला एवं तकनीति'।
6. पाठक एवं त्यागी : 'सफल शिक्षण कला'।
7. भाई योगेन्द्र जीत : 'मातृभाषा शिक्षण'।
8. सावत्री सिंह : प्रगत हिन्दी शिक्षण।

इकाई 2 हिंदी शिक्षण के उद्देश्य एवं उपागम

टिप्पणी

संरचना

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 प्रारंभिक शिक्षा स्तर पर हिंदी शिक्षण के उद्देश्य
  2.2.1 ज्ञानात्मक : ध्वनि, शब्द, वाक्य एवं अर्थ ज्ञान
  2.2.2 कौशलात्मक : सुनना, बोलना, पढ़ना एवं लिखना तथा सुनकर, बोलकर, पढ़कर एवं लिखकर अर्थ ग्रहण करना
2.3 उच्चतर माध्यमिक स्तर पर हिंदी शिक्षण के उद्देश्य
  2.3.1 ज्ञानात्मक : गद्य एवं पद्य विधाओं का संक्षिप्त परिचय (कविता, कहानी, नाटक, एकांकी एवं अन्य), हिंदी के विविध रूपों (राष्ट्रभाषा, राजभाषा, संपर्क भाषा, विश्व भाषा) का ज्ञान
  2.3.2 कौशलात्मक : (हिंदी को मानक ढंग से बोलना, विभिन्न विधाओं के पठन में उपयुक्त तरीके का प्रयोग, विराम चिह्नों का प्रयोग, श्रुत लेखन : शिरोरेखा)
  2.3.3 संरचनात्मक (कविता, कहानी, व्यंग्य, पत्र, निबंध लेखन आदि विधाओं में रुचि उत्पन्न करना)
2.4 प्रारंभिक शिक्षा में प्रयुक्त उपागम
  2.4.1 सम्प्रेषण, चार्ट एवं चित्र
  2.4.2 भाषा, खेल आदि
2.5 उच्चतर माध्यमिक स्तर पर प्रयुक्त उपागम
  2.5.1 चार्ट एवं मॉड्यूल
  2.5.2 भाषा प्रयोगशाला आदि
2.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.7 सारांश
2.8 मुख्य शब्दावली
2.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.10 सहायक पाठ्य सामग्री

2.0 परिचय

भाषा अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है। हम अपने भावों, इच्छाओं, कामनाओं इत्यादि की अभिव्यक्ति भाषा के माध्यम से ही करते हैं। भाषा चिंतन एवं मनन का आधार है। हिंदी हमारी मातृभाषा, राष्ट्रभाषा एवं साहित्यिक भाषा है। भारत के सात राज्यों की मातृभाषा हिंदी है। अन्य राज्य भी इसे राष्ट्रभाषा या द्वितीय भाषा के रूप में अपनाते हैं। हिंदी भाषा–भाषी प्रदेशों में हिंदी शिक्षा प्रथम कक्षा से ही आरंभ हो जाती है। अहिंदी भाषी क्षेत्र जैसे असम और बंगाल में पांचवीं कक्षा से, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश और कश्मीर में छठी कक्षा से, केरल में आठवीं कक्षा से हिंदी आरंभ होती है। अहिंदी प्रदेशों में हिंदी शिक्षण के उद्देश्य हिंदी भाषा–भाषी प्रदेशों के उद्देश्यों से भिन्न होते हैं।

दूसरी भाषा के रूप में हिंदी का शिक्षण एक कठिन एवं गम्भीर समस्या है। मातृभाषा के रूप में बच्चा प्रारम्भ से ही घर में बोले जाने वाले वाक्यों को सुनता, समझता और बोलता रहता है। उसे यह आभास भी नहीं होता कि उसे भाषा सिखाई या पढ़ाई

टिप्पणी

जा रही है और न घर वाले ही यह समझते हैं कि इस अनौपचारिक सम्पर्क से वे बच्चे को प्रशिक्षित कर रहे हैं। फिर भी बच्चे सुनना, समझना और बोलना अनुकरण द्वारा जान जाते हैं। विद्यालय में औपचारिक और साविधिक शिक्षण के पहले ही बच्चे को मातृभाषा का ज्ञान हो चुका होता है। अर्थात बालक विद्यालय में कोरी स्लेट स्वरूप न आ कर भाषागत परिवेश अपने साथ लाता है। अब आवश्यकता होती है उसमें ज्ञान के विस्तार की, उसमें कौशल प्रदान करने और उसे अनुभव देने की। विद्यालय में जाने से पूर्व ही बालक घर, ग्राम, परिवार, समाज और जाति के संपर्क एवं विविध माध्यमों से मातृभाषा की ध्वनियों, स्वरूप, वाक्य–विन्यास, लिंग भेद, कारक इत्यादि को समझ जाता है। मातृभाषा शिक्षक को इन बातों को समझाने जैसी कोई समस्या नहीं रहती क्योंकि बच्चे पहले से ही इन सब से परिचित होते हैं। शिक्षक का कार्य तो विद्यार्थियों को अनुभव प्रदान करना, शब्द भंडार में वृद्धि करना, वाचन, लेखन इत्यादि की क्षमता प्रदान करना हो जाता है। किन्तु दूसरी भाषा शिक्षण का कार्य इससे पूर्ण रूप से भिन्न होता है।

इस इकाई में हम प्रारंभिक और उच्चतर माध्यमिक स्तर पर हिंदी शिक्षण के उद्देश्य स्पष्ट करते हुए इसके विविध उपागमों की विवेचना करेंगे।

2.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- प्राथमिक शिक्षा स्तर पर हिंदी शिक्षण के उद्देश्यों एवं उपागमों की विवेचना कर पाएंगे;
- उच्चतर माध्यमिक स्तर पर हिंदी शिक्षण के उद्देश्यों एवं उपादानों से परिचित हो पाएंगे;
- श्रवण वाचन, पठन आदि कौशलों से अवगत हो पाएंगे;
- हिंदी की विविध विधाओं से संबंधित ज्ञानार्जन कर पाएंगे।

2.2 प्रारंभिक शिक्षा स्तर पर हिंदी शिक्षण के उद्देश्य

हिंदी भाषा शिक्षण और हिंदी साहित्य शिक्षण के उद्देश्यों में भी भिन्नता होती है अर्थात प्राथमिक स्तर पर जो हिंदी शिक्षण के उद्देश्य होंगे वे उच्च कक्षाओं के उद्देश्य नहीं बन पाएंगे। इस प्रकार हिंदी शिक्षण के उद्देश्यों का विवेचन अनिवार्य बन जाता है।

प्राथमिक स्तर पर हिंदी भाषा के उद्देश्य (प्रथम भाषा के रूप में)

प्रथम भाषा के रूप में प्राथमिक स्तर पर हिंदी भाषा शिक्षण के उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1. विद्यार्थियों के उच्चारण को शुद्ध बनाना और पाठ्यक्रम के स्तर की भाषा को भलीभांति बोल सकने की क्षमता प्रदान करना।
2. विद्यार्थियों को इस योग्य बनाना कि वे निर्धारित पाठ्यक्रम की शब्दावली व समकक्ष स्तर की शब्दावली को समझ सकें।

3. विद्यार्थियों को इस प्रकार की क्षमता से युक्त करना जिससे वे निर्धारित ज्ञान का सस्वर वाचन कर सकें।
4. विद्यार्थियों को अपने विचारों को क्रमबद्ध रूप से प्रस्तुत करने के योग्य बनाना।
5. विद्यार्थियों के शब्द–भण्डार में क्रमशः वृद्धि करना व उन्हें इस योग्य बनाना कि वे छोटे–छोटे वाक्य या वाक्यांशों को बना सकें।
6. विद्यार्थियों को इस योग्य बनाना कि वे पढ़ी गई सामग्री का अर्थ ग्रहण कर सकें।
7. विद्यार्थियों को इस योग्य बनाना कि वे स्तरानुसार प्रश्नों के उत्तर अपने शब्दों में दे सकें।
8. विद्यार्थियों के वाचन कौशल का विकास कर उनकी वाचन गति को बढ़ावा देना।
9. वाचन को शुद्ध, प्रवाहपूर्ण एवं प्रभावोत्पादक बनाना।
10. विद्यार्थियों में पढ़ने की आदत डालना, लेख या पाई का भाव ग्रहण करने के योग्य बनाना।
11. विद्यार्थियों को लिपि का सही ज्ञान तथा अभ्यास कराना।
12. पढ़ने की गति व पठन की शुद्धता पर पर्याप्त ध्यान देना।
13. विद्यार्थियों को पढ़े हुए तथ्यों को वार्तालाप व नाटकीय रूप में प्रस्तुत करने के योग्य बनाना।
14. विद्यार्थियों को कविता पाठ का सस्वर वाचन करने के योग्य बनाना।
15. विद्यार्थियों को कविता पाठ उचित, लय, ताल, एवं भावों के अनुरूप प्रस्तुत करने के योग्य बनाना।
16. विद्यार्थियों को सुलेख एवं श्रुतलेख लिखने योग्य बनाना।
17. विद्यार्थियों को भावाभिव्यक्ति प्रस्तुत करने योग्य बनाना।
18. विद्यार्थियों को सुन्दर लेख लिखने के योग्य बनाना।

माध्यमिक स्तर पर हिंदी भाषा का शिक्षण (द्वितीय भाषा के रूप में)

द्वितीय भाषा के रूप में हिंदी का शिक्षण आज महत्वपूर्ण स्थान पा रहा है। इसका लक्ष्य हिंदी को अंग्रेजी भाषा का स्थान देने के लिए, प्रयत्न करना और देश की राजभाषा बनाने के लिए समस्त देश में व्यापक बनाना है। त्रिसूत्री योजना में हिंदी का अध्ययन अहिंदी प्रदेशों में आवश्यक रूप से हो गया है। अंतर्देशीय एकता और सांस्कृतिक पुनरुत्थान के लिए हिंदी को समस्त भारत की निधि बनाना है। अहिंदी प्रदेशों में दूसरी भाषा के रूप में हिंदी के अध्ययन का विशेष महत्व है।

दूसरी भाषा का शिक्षक उस आधार को लेकर नहीं चल सकता जिस पर मातृभाषा शिक्षण चलता है। दूसरी भाषा शिक्षण में न तो अधिक समय दिया जाता है और न ही उसे अधिक व्यय साध्य बनाया जा सकता है। मातृ भाषा शिक्षण से इसमें कम समय और कम खर्च करना पड़ता है और शिक्षार्थी को मनोवैज्ञानिक रूप से भाषा अध्ययन की आवश्यकता समझानी होती है। इसीलिए दूसरी भाषा शिक्षण का एक सुनियोजित उद्देश्य होना आवश्यक है। इसमें वैज्ञानिक साधनों और नवीन प्रणालियों को

टिप्पणी

अपनाकर एक निर्धारित मार्ग पर चलना पड़ता है। बच्चे इस भाषा को न तो घर पर ग्रहण कर सकते हैं और न उन्हें ऐसा वातावरण ही प्राप्त होता है कि वे इसे सुगमता से सीख सकें। यदि वातावरण अनुकूल हो तब भी दूसरी भाषा शिक्षण में अर्जन का वातावरण एक निश्चित सुसंबद्ध, योजनाबद्ध होना चाहिए। यहां वैज्ञानिक पद्धति पर कतिपय साधनों और प्रणालियों को स्वीकार करना पड़ता है। मातृभाषा शिक्षण और दूसरी भाषा शिक्षण में आधारभूत विभिन्नता यहीं पर दिखाई देती है।

मातृभाषा स्वतः ग्राह्य होती है, शिक्षण प्रदत्त नहीं, जबकि दूसरी भाषा को बोधगम्य बनाने के लिए शिक्षण आवश्यक होता है। स्वर, उच्चारण, अक्षर विन्यास, लय, गति, लिंग, मुहावरे, कहावतें सभी का प्रशिक्षण देना पड़ता है। चाहे दोनों भाषाओं के ज्ञानोपार्जन में समानता हो परन्तु प्रशिक्षण विधियों में पर्याप्त भिन्नता होती है। यह सही है कि दोनों भाषाओं में शिक्षण का क्रम समान होता है अर्थात बोलने के पूर्व सुनना, पढ़ने के पहले बोलना और लिखने के पहले पढ़ना आदि की क्रियाएं दोनों भाषाओं के शिक्षण में स्वीकार की गई हैं।

द्वितीय भाषा सीखने की प्रक्रिया

अन्य भाषा या दूसरी भाषा अधिगम एक विशिष्ट उपलब्धि है। अन्य भाषा सीखते समय विद्यार्थी को अचेतन आदतों की जगह सचेतन आदतों को प्रयुक्त करना होता है। उसे अपरिचित शब्दावली का उपयोग सीखना पड़ता है। यही कारण है कि उसे अन्य भाषा सीखते समय कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। अन्य भाषा या दूसरी भाषा सीखते समय तीन प्रकार के तत्वों का प्रभाव पड़ता है। वे तत्व निम्नलिखित हैं–

1. भाषागत तत्व
2. सामाजिक तत्व
3. मनोवैज्ञानिक तत्व

1. **भाषागत तत्व** : मातृभाषा की आदतें विद्यार्थियों को अन्य भाषा सीखने में बाधा पहुंचाती हैं। ये बाधाएं भाषागत रूपों में निम्नांकित स्तरों पर दृष्टिगत होती हैं–
    - ध्वनि के स्तर पर
    - रचना के स्तर पर
    - वाक्य के स्तर पर
    - अर्थ के स्तर पर

    अन्य भाषा के तत्व मातृभाषा के तत्वों से समानता रखते हों तो सीखने में आसानी रहती है, यदि असमानता हो तो बाधा उत्पन्न करते हैं। दूसरी भाषा के रूप में हिंदी सीखते समय तब कठिनाई हो सकती है जब सीखने वाले की भाषा की ध्वनि व्यवस्था, रूप रचना वाक्य रचना, शब्द भण्डार इत्यादि तत्व समान नहीं हों। तमिलनाडु के लोग उच्चारण करते समय महाप्राणत्व को समाप्त कर देते हैं क्योंकि तमिल में महाप्राण सघोष ध्वनि है ही नहीं। पंजाबी भाषी लोग हिंदी की घ, झ, ढ़ ध, भ ध्वनियों को क्रमशः क, च, र, त, और प की भांति उच्चारित करते हैं।

ध्वनि व्यवस्था की ही तरह रचना और शब्द प्रयोग में भी व्याघात होता है। गुजराती, मराठी, सिंधी भाषाओं में पुलिंग, स्त्रीलिंग व नपुंसक लिंग होते हैं। हिंदी की दो लिंगों की व्यवस्था में इसमें भूल हो सकती है। बांग्लाभाषी काम का अर्थ दूसरा लेते हैं जबकि हिंदीवासी कार्य के अर्थ में इसको प्रयुक्त करते हैं। इसी प्रकार शब्दों की रचना सीखने में भी समस्या उत्पन्न होती है। दूसरी भाषा सीखते समय वाक्य के कर्म, कर्ता, क्रिया इत्यादि की स्थिति एवं क्रम में भी गड़बड़ी हो जाती है। वाक्य के नकारात्मक, सकारात्मक और प्रश्नवाची स्वरूपों में भी अंतर आ जाता है। अन्य भाषा सीखते समय इन बातों का भी ध्यान रखना चाहिए।

टिप्पणी

2. **सामाजिक तत्व** : दूसरी भाषा सीखने में सामाजिक कारकों का भी विशेष प्रभाव पड़ता है। अन्य या दूसरी भाषा सीखने में यदि शिक्षक उसी भाषा प्रदेश का हो तो आसानी होती है। शिक्षण में सहायक सामग्री का प्रयोग बहुत उपयोगी होता है। दूसरी भाषा सीखते समय, दूसरी भाषा के लोगों के साथ संपर्क बना रहे तो सीखने में आसानी होती है। सीखने में रुचि का होना भी आवश्यक है। अंग्रेजी भाषा को सीखने में सरकारी प्रोत्साहन है तो लोग जल्दी उसे सीखेंगे और जापानी व चीनी भाषा को प्रोत्साहन नहीं मिलेगा तो लोग भी उसे सीखने में रुचि नहीं लेंगे। कहने से तात्पर्य है कि प्रशासनिक, आर्थिक राजनैतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक आदि अनेक कारण हैं जो भाषा के सीखने पर प्रभाव डालते हैं।
3. **मनोवैज्ञानिक तत्व** : भाषा सीखने में कुशलता, अभिप्रेरणा, स्मृति, बुद्धि, व्यक्तित्व इत्यादि मनोवैज्ञानिक कारक उत्तरदायी हैं। जिसकी जितनी क्षमता होती है वह उतनी ही शीघ्रता के साथ दूसरी भाषा सीख लेता है। छोटी आयु के बच्चे दूसरी भाषा को प्रौढ़ों की अपेक्षा शीघ्रता से सीख लेते हैं। क्योंकि अल्पायु में मातृभाषा का व्याघात कम होता है। दूसरी भाषा सीखने में स्मरण–शक्ति, स्मृति विस्तार, बौद्धिक क्षमता, आन्तरिक प्रेरणा, व्यक्तित्व आदि प्रमुख कारक अहम भूमिका निभाते हैं। जिस में यह क्षमता जितनी अधिक होती है, वह उसी अनुपात में दूसरी भाषा का ज्ञान प्राप्त कर लेता है।

द्वितीय भाषा के रूप में माध्यमिक स्तर पर हिंदी भाषा शिक्षण के उद्देश्य

दूसरी भाषा के रूप में हिंदी शिक्षण का मुख्य लक्ष्य ग्राह्य शक्ति का विकास करना है अर्थात बोली जाने वाली हिंदी और लिखित हिंदी को समझने की पात्रता का निर्माण करना। इसके साथ–साथ अभिव्यक्ति की क्षमता प्रदान करना भी एक प्रयोजन है अर्थात मौखिक रूप से दूसरों के भावों और विचारों को समझने की पात्रता तथा अपने विचारों को अभिव्यक्त करने की कुशलता। इसके साथ ही लिखित रूप से भावों को जानने और व्यक्त करने की सामर्थ्य विकसित होना भी लक्ष्य है। दूसरी भाषा के रूप में भाषा शिक्षण के उद्देश्य हैं–

- दूसरी भाषा को सुनकर समझने की क्षमता का विकास करना।

टिप्पणी

- दूसरी भाषा में (हिंदी में) भावाभिव्यक्ति की क्षमता का विकास करना।
- दूसरी भाषा की संरचना का ज्ञान कराना।
- दूसरी भाषा का प्रयोग करना और उसे व्यवहृत करना।
- दूसरी भाषा की लिपि का ज्ञान कराना।
- दूसरी भाषा के लिखित रूप को पढ़ना और उसका अर्थ निर्धारण करना।
- दूसरी भाषा के माध्यम से बोलकर तथा लिखकर अपने विचारों को प्रकट करना।
- दूसरी भाषा के रूप में हिंदी भाषा से अपनी मातृभाषा और मातृभाषा से हिंदी में अनुवाद करने की क्षमता का विकास करना।
- दूसरी भाषा भाषी क्षेत्र की सांस्कृतिक, सामाजिक और साहित्यिक परंपराओं का परिचय प्राप्त करना।

उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कुछ कुशलताओं को जाग्रत करना पड़ता है–

1. दूसरी भाषा को सुनने एवं समझने की क्षमता।
2. दूसरी भाषा को शुद्ध बोलने की क्षमता।
3. शुद्ध एवं स्वाभाविक रूप से दूसरी भाषा को पढ़ने की क्षमता।
4. शुद्ध और स्पष्ट लेखन की क्षमता।
5. दूसरी भाषा की शब्दावली एवं मुहावरों का ज्ञान।
6. अनुवाद कौशल की क्षमता।

प्रथम एवं द्वितीय भाषा के शिक्षण के उद्देश्यों में अंतर

क्र.सं.	प्रथम भाषा (मातृभाषा)	द्वितीय भाषा
1.	मातृभाषा में बच्चों को बोलने का अभ्यास अपने आप हो जाता है।	द्वितीय भाषा को छात्र पहले पढ़ना सीखता है, फिर बोल पाता है।
2.	यह भाषा मनुष्य को उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पढ़ाई जाती है।	यह भाषा दूसरे राज्यों से संपर्क की स्थापना के लिए सिखाई जाती है।
3.	इसके द्वारा छात्रों के साहित्यिक कार्य तथा नैतिक विकास और व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास होता है।	इसका उद्देश्य बच्चों का कौशलात्मक, ज्ञानात्मक, रचनात्मक तथा सौंदर्यबोधात्मक विकास करना है।
4.	मातृभाषा में छात्र सुनकर स्वयं ही अर्थ ग्रहण कर लेता है।	द्वितीय भाषा में श्रवण कौशल की आवश्यकता होती है तथा अर्थ को समझना पड़ता है।
5.	मातृभाषा में छात्र पढ़ने की योग्यता, अर्थ समझना तथा मौखिक अभिव्यक्ति अपने आप सीख जाता है।	द्वितीय भाषा में पढ़ने की योग्यता, अर्थ समझना तथा मौखिक अभिव्यक्ति विशेष महत्वपूर्ण है।

2.2.1 ज्ञानात्मक : ध्वनि, शब्द, वाक्य एवं अर्थ ज्ञान

(क) ध्वनि विचार

प्रत्येक भाषा का अपना ध्वनि गठन होता है जो अन्य भाषाओं से भिन्न होता है। हिंदी भाषा में ध्वनि–ग्राम दो प्रकार के होते हैं।

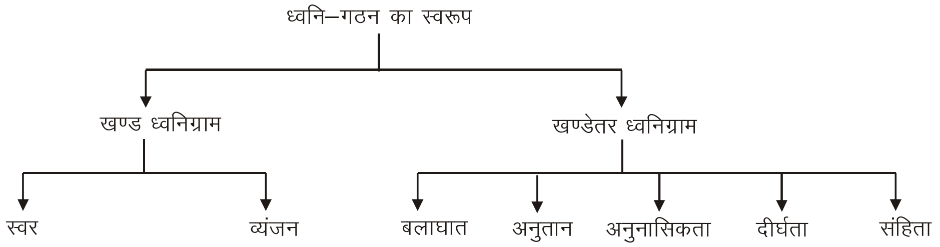

स्वर तथा व्यंजनों का पता खण्ड ध्वनि ग्राम के अंतर्गत लगाया जाता है। खण्डेतर ध्वनि ग्राम, खण्ड ध्वनिग्रामों पर आधारित होते हैं। इनमें बलाघात, सुर लहर, संगम, अनुनासिकता, दीर्घता और संहिता का अध्ययन किया जाता है।

- **(नोट** : ध्वनि ज्ञान का विस्तृत विवेचन इकाई–1 के 1.2.4 एवं 1.2.5 में किया गया है।)

(ख) शब्द विचार

भाषा के अंतर्गत शब्द को परिभाषित करना कठिन है। शब्द अर्थ के स्तर पर भाषा की लघुत्तम स्वतंत्र इकाई है। अक्षरों से शब्द बनता है और शब्दों से वाक्य बनते हैं। भाषा की इकाई ध्वनि न हो कर वाक्य माना जाता है, जिसे शब्दों में विभाजित किया जाता है। एक या एक से अधिक ध्वनियों से शब्द बनते हैं और शब्दों के प्रयोग के संदर्भ में उनका अर्थ स्पष्ट होता है, जिसे 'पद' या रूप कहते हैं।

रूप संरचना के अंतर्गत शब्द रचना और वाक्य में प्रयुक्त स्थान पर विचार किया जाता है। शब्द को वाक्य में प्रयुक्त करने योग्य बना लेने पर उसे रूप या पद माना जाता है।

हिंदी भाषा का शब्द भंडार बहुत ही समृद्ध, सशक्त और विशाल है। इसे निम्नलिखित आधार पर बांटा जा सकता है–

शब्दों के वर्गीकरण का आधार

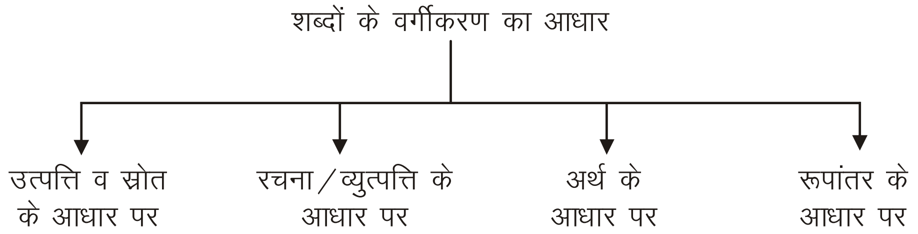

हिंदी भाषा का शब्द भंडार बहुत ही सशक्त, समृद्ध और विशाल है। भाषा वैज्ञानिकों ने हिंदी शब्द–भंडार को निम्न आधार पर विभाजित किया है। हिंदी शब्दों के वर्गीकरण के कई आधार हैं–

1. उत्पत्ति के आधार पर व स्रोत के आधार पर शब्दों का वर्गीकरण
2. रचना/व्युत्पत्ति के आधार पर
3. अर्थ के आधार पर
4. रूपांतरण के आधार पर

टिप्पणी

1. उत्पत्ति व स्रोत के आधार पर

उत्पत्ति व स्रोत के आधार पर शब्दों को चार भागों में बांटा गया है–

(क) **तत्सम शब्द**– 'तत् सम्' शब्द का अर्थ है उसके समान अर्थात संस्कृत के समान। हिंदी के जो शब्द संस्कृत से उसी रूप में ग्रहण किए गए हैं जिस रूप में उसका प्रयोग संस्कृत में होता है, उन्हें तत्सम् शब्द कहते हैं। ये शब्द ज्यों के त्यों संस्कृत से आए हैं, जैसे– अग्नि, नेत्र, जल, सूर्य, रात्रि, पवन, वायु, आकाश, चंद्र आदि।

(ख) **तद्भव शब्द**– तत् भव शब्द का अर्थ है उससे होना या बनना। संस्कृत के वे शब्द जो हिंदी में कुछ बदले हुए रूप में प्रयुक्त होते हैं, तद्भव कहलाते हैं, जैसे– नाक (नासिका), दूध (दुग्ध), घी (घृत) आदि। हिंदी में सभी क्रिया पद, सर्वनाम व संख्याएं तद्भव हैं।

तद्भव शब्द तीन प्रकार के होते हैं–

- वे शब्द जिनके तद्भव रूपों के साथ–साथ तत्सम रूपों का प्रयोग भी होता है, जैसे– आग – अग्नि, अनाज – अन्न, रात – रात्रि आदि।
- वे शब्द जिनके तत्सम शब्दों का प्रयोग नहीं होता या बहुत ही कम होता है, जैसे– आम – आम्र, ऊँट – उष्ट्र, आँखें – अक्षि आदि।
- वे तद्भव शब्द जिनके अर्थ तत्सम शब्दों से भिन्न हो गए हैं। तद्भव शब्द बनने की प्रक्रिया से इन शब्दों का कुछ अर्थ छूट गया अर्थात तद्भव शब्द में वह सारा अर्थ नहीं आया जो तत्सम में था, जैसे– थान – स्थान, खेत – क्षेत्र, सेठ – श्रेष्ठ आदि।

(ग) **देशज शब्द**– जो शब्द देश में ही जन्मे हों उन्हें देशज शब्द कहते हैं। जो शब्द न तो तत्सम हो, न तद्भव और न ही विदेशी, अर्थात न ही दूसरी भाषाओं से आए हों, उन्हें देशज की कोटि में रखा जाता है। ये वे शब्द हैं जिनके स्रोत का पता नहीं होता। जैसे– दाल, पेड़, खिड़की, लोटा, रोटी आदि।

(घ) **विदेशी शब्द**– विदेशी शब्द का अर्थ है अन्य देश की भाषा से लिए गए शब्द। ये किसी भी अन्य देश की भाषा से आए हुए शब्द, उस भाषा के लिए प्रायः विदेशी ही होते हैं किंतु 'विदेशी' नाम से दूसरे देश का अर्थ ग्रहण होता है, इसलिए विदेशी शब्द के स्थान पर 'आगत' शब्द या 'गृहीत शब्द' का प्रयोग भी किया जाता है।

आगत शब्द– वे शब्द हैं जो संस्कृत के अतिरिक्त किसी अन्य भाषा चाहे वह विदेशी भाषा हो या भारतीय भाषा, से लिए गए हैं। विदेशी शब्द के उदाहरण निम्नलिखित हैं–

- दूसरे देश की भाषाओं से आए शब्द, जैसे– फारसी, तुर्की, अंग्रेजी आदि से।
- हिंदी में किताब (अरबी), कैंची (तुर्की), नमाज (फारसी), कोट (अंग्रेजी), डोसा (द्रविड़) आदि ऐसे शब्द हैं।

विदेशी भाषा शब्द, जैसे–

- पश्तो के शब्द– खर्रात, खडङ्ग, पतखा, अखरोट, गड़बड़, भड़ास, तड़ाक।
- तुर्की के शब्द– बहादुर, कलगी, चाक, कैंची, तोप, बेगम, लाश आदि।
- अरबी–फारसी के शब्द– जिला, कस्बा, पाजामा, जुराब, दस्ताना, पता, वकील।
- पुर्तगाली भाषा के शब्द– काज, गमला, काजू, गोदाम, चाबी, चाय, बाल्टी।
- अंग्रेजी के शब्द– साइकिल, नर्सरी, स्कूल, टाई, कोलाज, पैंट, कोट, सूट।

स्रोत के आधार पर उपयुक्त चार प्रमुख वर्गों के अतिरिक्त दो अन्य वर्ग भी मिलते हैं, वे हैं–

- **द्विज/संकर शब्द**– ये शब्द भिन्न–भिन्न भाषाओं के योग से बने हैं। व्याकरण के नियमों के अनुसार किसी शब्द के साथ उसी भाषा का उपसर्ग व प्रत्यय लगता है, जिस भाषा का वह शब्द हो। लेकिन कुछ ऐसे शब्द भी हैं जिनमें अलग–अलग दो भाषाओं के शब्द हैं। इन शब्दों के आधे हिस्से का स्रोत अलग होता है तथा आधे का अलग। इन्हीं शब्दों को द्विज या संकर शब्द कहते हैं। जैसे– डब्ल + रोटी (अंग्रेजी + हिंदी), टिकट + घर (अंग्रेजी + हिंदी), रीति–रिवाज (संस्कृत + फारसी), रोशन + लाल (उर्दू + हिंदी)।
- **अनुकरणात्मक/ध्वन्यात्मक शब्द**– कुछ शब्दों का स्रोत कोई ध्वनि होती है। उस ध्वनि के आधार पर बनाए जाने वाले शब्द अनुकरणात्मक व ध्वन्यात्मक शब्द कहलाते हैं। इन शब्दों में पशु–पक्षियों की बोलियों व पदार्थों की ध्वनि का अनुकरण होता है। जैसे– फट–फट, खट–खट, धड़ा–धड़, झुन–झुना, हिन–हिना, खट–खटाना, चहचहाना आदि।

2. रचना या व्युत्पत्ति के आधार पर शब्दों का वर्गीकरण

एक शब्द से दूसरे शब्द बनाने की प्रक्रिया व्युत्पत्ति कहलाती है। व्युत्पत्ति के आधार पर शब्दों के तीन भेद हैं– (क) रूढ़, (ख) यौगिक, (ग) योगरूढ़।

(क) **रूढ़**– वह शब्द जो किसी अन्य शब्दों को जोड़कर नहीं बने होते, और उनके सार्थक टुकड़े नहीं किए जा सकते हैं, उन शब्दों को रूढ़ शब्द कहा जाता है। उदाहरण– कार, गधा, रोटी, कंबल आदि।

(ख) **यौगिक**– वह शब्द जो दो सार्थक शब्दों अर्थात ऐसे शब्द जिनका अलग–अलग अर्थ होता है उन्हें जोड़कर बने होते हैं और इन शब्दों के सार्थक खण्ड भी किए जा सकते हैं, उन शब्दों को यौगिक कहा जाता है। उदाहरण– बैलगाड़ी = बैल + गाड़ी, पाठशाला = पाठ + शाला।

टिप्पणी

(ग) **योगरूढ़**– योगरूढ़ शब्दों में रूढ़ शब्द एवं यौगिक शब्द दोनों की विशेषता पाई जाती है। यानी वह शब्द जो दो शब्दों को जोड़कर बने होते हैं लेकिन इनका प्रयोग किसी वस्तु विशेष के अर्थ में रूढ़ होता है। उदाहरण– जलज (कमल), जलद (बादल)।

जल से उत्पन्न होने वाला सिंघाड़ा, मछली, कछुआ आदि बहुत सी वस्तुएं और जीव हैं लेकिन 'जलज' का इस्तेमाल कमल के लिए ही होता है।

शब्द संरचना

अपने विचारों एवं भावों की अभिव्यक्ति हेतु प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी भाषा का प्रयोग करता है। प्रत्येक भाषा में नए–नए शब्दों के निर्माण की प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है। इसे शब्द निर्माण या 'शब्द संरचना' कहते हैं। शब्द निर्माण प्रक्रिया दो तरीके से शब्दों के निर्माण से संपन्न होती है– (क) शब्द रूप और (ख) नए शब्द।

(क) शब्द रूप– वाक्यों की रचना शब्दों से होती है, परंतु शब्दों को यथावत रूप में रखने मात्र से वाक्य नहीं बन जाता। शब्द जब वाक्य में प्रयुक्त होता है तब वह 'पद' कहलाता है।

वाक्यों में प्रयोग करने के लिए उनके साथ 'परसर्गों' का प्रयोग किया जाता है। वाक्यों में प्रयुक्त इन रूपों को 'शब्द रूप' या पद कहते हैं।

हिंदी में शब्दों में पहले पद बनाने वाले प्रत्यय लगते हैं। शब्दों का प्रयोग करते समय इन रूपों में लिंग, वचन और कारक के प्रत्यय लगते हैं, तभी इनका वाक्यों में प्रयोग किया जाता है, जैसे– लड़का + ए = लड़के।

वाक्य में प्रयोग– लड़के को खाना खिलाओ।

(ख) नए शब्द– शब्द निर्माण चार प्रकार से होता है–

1. शब्दों से पूर्व कोई शब्दांश या उपसर्ग जोड़कर नए शब्दों का निर्माण किया जाता है, जैसे– 'हार' शब्द से पूर्व विभिन्न उपसर्ग जोड़कर प्रहार, संहार, उपहार आदि नए शब्द बनाए जाते हैं।
2. रूढ़ शब्दों के बाद या घातु रूपों के बाद कुछ शब्दांश जोड़कर अर्थात 'प्रत्ययों' का योग करके नए शब्दों का निर्माण किया जाता है, जैसे– बल + वान (वान प्रत्यय) = बलवान।
3. दो तीन शब्दों को जोड़कर उनके अंत व आदि की ध्वनियों को मिलाकर अर्थात संधि करके नए शब्दों का निर्माण किया जाता है, जैसे–
   - इति + आदि = इत्यादि।
   - सूर्य + उदय = सूर्योदय।
4. दो शब्दों को पास–पास बिठाकर उनके बीच से कुछ गौण अंशों को हटाकर उनको एक करके, अर्थात समास द्वारा नए शब्दों का निर्माण किया जाता है। जैसे– राजा का पुत्र = राजपुत्र (समस्त पद)

टिप्पणी

(ग) वाक्य विचार एवं अर्थ

परिभाषा– ऐसा सार्थक शब्द–समूह, जो व्यवस्थित हो तथा पूरा आशय प्रकट कर सके, वाक्य कहलाता है। अर्थात जिस शब्द समूह से वक्ता का आशय व्यक्त होता है,वह वाक्य कहलाता है।

ऐसा शब्द–समूह सार्थक है, व्याकरण के नियमों के अनुसार व्यवस्थित होता है तथा पूरा आशय प्रकट करता है।

वाक्य के गुण

वाक्य का निर्माण करने में निम्नलिखित विशेषताओं का होना अनिवार्य है–

1. **योग्यता**– वाक्य रचना के लिए अनिवार्य है कि उसमें योग्यता के अर्थ की क्षमता हों। इसमें यहां यह आशय है कि शब्द सार्थक बेशक हो, परंतु प्रसंग के अनुसार अर्थ देने की क्षमता भी होनी चाहिए। जैसे– सीमा पानी खाती है।

   इस वाक्य में प्रयुक्त सभी शब्द सार्थक हैं, फिर भी यह वाक्य सही अर्थ देने की योग्यता नहीं रखता; क्योंकि पानी पीने का पदार्थ है न कि खाने का। इसी प्रकार–

   'घोड़ा घास पीता है।'– इस वाक्य में भी प्रसंग के अनुसार अर्थ देने की योग्यता नहीं है। अतः ये वाक्य तभी कहलाएंगे, जब हम इस प्रकार कहेंगे– 'सीमा पानी पीती है।' या 'घोड़ा घास खाता है'।

2. **सार्थकता**– वाक्य रचना के लिए अनिवार्य है कि उसमें प्रयुक्त सभी पद सार्थक हों। यदि वाक्य का कोई अंश निरर्थक हो तो उससे अर्थ में बाधा पड़ती है। ध्यान रहे कि कई बार निरर्थक शब्द वाक्य में प्रयुक्त होने पर अर्थवान हो जाते हैं। जैसे– भाई, पानी–वानी लाओ। यहां 'वानी' निरर्थक होते हुए भी 'आदि', 'वगैरह' के लिए प्रयुक्त हुआ है, अतः यह सार्थक है।

3. **आकांक्षा**– आकांक्षा का अर्थ है– 'इच्छा'। इसका आशय है कि वाक्य अपने आप में पूरा होना चाहिए। उसमें किसी ऐसे शब्द की कमी नहीं होनी चाहिए जिसके कारण अर्थ की अभिव्यक्ति में कोई अधूरापन रह जाए। जैसे– 'लड़के खुदाई है।' यह वाक्य अधूरा है। इसे पढ़कर पाठक के मन में कोई न कोई जिज्ञासा बनी रहती है– (कौन क्या) कर रहे हैं।

   लड़के खुदाई (क्या) हैं।

   यदि इसकी जगह यह लिख दिया जाए कि 'लड़के खुदाई कर रहे है।' तो वाक्य स्वयं में पूर्ण हो जाएगा।

4. **आसक्ति या निकटता**– एक वाक्य के शब्दों को बोलने व लिखने में निकटता होना आवश्यक है। रुक–रुक कर बोले गए शब्द अर्थ में बाधा डालते हैं। उनके प्रयोग में निरंतरता होना आवश्यक है। यदि कुछ ठहराव या बलाघात दिखाना हो तो विराम–चिह्नों का प्रयोग किया जाता है। लिखित रूप में भी शब्दों में समीपता अपेक्षित है।

बच्चे ..... हिंदी ... का .... व्याकरण पढ़ते हैं।

ऐसा लिखने से ऊपर लिखे शब्द वाक्य नहीं बनाते। उन्हें एक वाक्य रूप में इस प्रकार लिखा जाएगा– 'बच्चे हिंदी का व्याकरण पढ़ते हैं'।

टिप्पणी

5. **पद क्रम**– वाक्य का सही अर्थ जानने के लिए शब्दों का उचित क्रम में प्रयुक्त होना आवश्यक है। पद–क्रम के नियमों का उल्लंघन करने पर वांछित अर्थ नहीं निकलता। जैसे– हम फहराते हैं झंडा अगस्त पंद्रह को। इस वाक्य में सार्थक शब्द भी है, योग्यता भी है, निकटता भी, परंतु पद–क्रम की अव्यवस्था होने के कारण वांछित अर्थ नहीं निकलता। यदि इसी वाक्य को पद–क्रम के नियमानुसार ढाल दिया जाए तो इसका रूप होगा– 'हम पंद्रह अगस्त को झंडा फहराते हैं।'
6. **अन्वय**– अन्वय का अर्थ है मेल। वाक्य में कर्ता, कर्म और क्रिया के लिंग, वचन, पुरुष और कारक में मेल होना चाहिए। इसके बिना भी अर्थ में व्यवधान आता है। जैसे– हमने दस रुपयों से ये खिलौना खरीदी। इस वाक्य में से (कारक), ये (सर्वनाम) तथा खरीदी (क्रिया रूप) की अशुद्धता के कारण वाक्य का वांछित अर्थ नहीं प्रकट हो सकता। अतः वाक्य में अन्वय का होना भी अनिवार्य है।

वाक्य के घटक

जिन अवयवों को मिलाकर वाक्यों की रचना होती है, उन्हें वाक्य के अंग या घटक कहते हैं। वाक्य के मूल एवं अनिवार्य घटक हैं– कर्ता एवं क्रिया। इनके बिना वाक्य की रचना संभव नहीं है। उदाहरण के तौर पर, सबसे संक्षिप्त वाक्य इस प्रकार का हो सकता है–

गीता गाएगी। तुम जाओ। तू आ। आदि।

उपर्युक्त सभी वाक्यों में एक कर्ता (गीता, तुम, तू) है तथा एक क्रिया (गाएगी, जाओ, आ) है। इनकी सहायता से वाक्य रचना संभव है। अतः कर्ता और क्रिया वाक्य के अनिवार्य घटक हैं। इनके अतिरिक्त वाक्य के अन्य घटक होते हैं। जैसे– विशेषण, क्रियाविशेषण, कारक आदि। ये घटक आवश्यकतानुसार आते हैं। इन्हें ऐच्छिक घटक कहा जाता है।

वाक्य के अंग

वाक्य के दो अंग हैं– (1) उद्देश्य, (2) विधेय।

उद्देश्य और विधेय– कर्ता और क्रिया–पक्ष के अनुसार वाक्य के दो पक्ष हो जाते हैं– उद्देश्य और विधेय।

उद्देश्य– वाक्य में जिसके बारे में कुछ कहा गया हो, उसे उद्देश्य कहते हैं। इसके अंतर्गत कर्ता तथा कर्ता–विस्तार (विशेषण, संबंध बोधक, भाव बोधक आदि) आ जाते हैं।

विधेय– उद्देश्य के विषय में जो कुछ कहा जाए, उसे विधेय कहते हैं। इसके अंतर्गत क्रिया, क्रिया–विस्तार, कर्म, कर्म–विस्तार आदि आ जाते हैं। उदाहरण–

टिप्पणी

उद्देश्य	विधेय
राधा	नाचती है।
मैं	एक फुटबॉल प्लेयर हूं।
पंडित जी	भविष्यवाणी करते हैं।
दशरथ–पुत्र राम ने	सीता से विवाह किया।

उद्देश्य, उद्देश्य–विस्तार, विधेय और विधेय विस्तार को समझने के लिए अग्रलिखित तालिका देखिए–

(1)

क्रसं.	वाक्य	उद्देश्य	उद्देश्य का विस्तार	विधेय
1.	महान पी.टी. उषा दौड़ में जीतती है।	पी.टी. उषा	महान	जीतती है।
2.	बलशाली भीम ने दुर्योधन को मारा।	भीम	बलशाली	दुर्योधन को मारा।
3.	वीर हनुमान ने लंका में आग लगा दी।	हनुमान ने	वीर	लंका में आग लगा दी।
4.	सुंदर सीता पुस्तक लिखती है।	सीता	सुंदर	पुस्तक लिखती है।

(2)

क्रसं.	वाक्य	उद्देश्य	उद्देश्य का विस्तार	विधेय
1.	राधिका लिखकर ही उठेगी।	राधिका	लिखकर ही	उठेगी।
2.	इंजीनियर पुल निर्माण कर के ही रहेगा।	इंजीनियर	पुल निर्माण	करके ही रहेगा।
3.	राधा पुस्तक लिखती है।	राधा	पुस्तक	लिखती है।

वाक्य के भेद

सामान्यतः दो दृष्टियों से वाक्यों के भेद किए जाते हैं– (1) अर्थ की दृष्टि से, (2) रचना की दृष्टि से।

(1) अर्थ के आधार पर वाक्य के भेद

(क) **विधानवाचक**– जिन वाक्य से किसी क्रिया के करने या होने की सामान्य सूचना मिलती है उसे विधान वाचक वाक्य कहते हैं। किसी के अस्तित्व का बोध भी इसी प्रकार के वाक्यों से होता है, जैसे– रमेश लिखता है, मैं कल लंदन गया था।

(ख) **निषेधवाचक वाक्य**– जिन वाक्यों से कार्य के न होने का बोध हो उसे निषेध वाचक वाक्य कहते हैं। जैसे– मैं आज नहीं पढ़ूंगा, हम आज नहीं खेलेंगे।

(ग) **प्रश्नवाचक वाक्य**– जिन वाक्यों से प्रश्न किया जाए अर्थात किसी से कोई बात पूछी जाए उन्हें प्रश्नवाचक वाक्य कहते हैं। जैसे– क्या नविता आज नहीं आई? तुम्हारा नाम क्या है?

(घ) **विस्मयादिवाचक वाक्य**– जिन वाक्यों से हमारे भावों का पता चलता है, जैसे– हर्ष, क्रोध, घृणा आदि, उन्हें विस्मयादिवाचक वाक्य कहते हैं। जैसे– ओह! मेरे सिर में बहुत दर्द है! अरे! तुम आ गए।

टिप्पणी

(ङ) **आज्ञा/विधिवाचक वाक्य**— जिन वाक्यों से आज्ञा या अनुमति का बोध होता है उन्हें आज्ञा वाचक वाक्य कहते हैं। जैसे— आप जा सकते हैं! आप चुप रहिए!

(च) **इच्छावाचक वाक्य**— ऐसे वाक्य जो इच्छा, आशा, शुभकामना या आशीर्वाद को व्यक्त करते हैं, उन्हें इच्छावाचक वाक्य कहते हैं। जैसे— आप परीक्षा में सफल हों। भगवान आपको सफलता प्रदान करे।

(छ) **संदेहवाचक वाक्य**— जिन वाक्यों के होने का संदेह अथवा संभावना होती है, उन्हें संदेह वाचक वाक्य कहते हैं। जैसे— शायद वह चला गया। नविता घूम रही है।

(ज) **संकेतवाचक वाक्य**— जिन वाक्यों से एक क्रिया के दूसरी क्रिया पर निर्भर होने का बोध हो, उन्हें संकेतवाचक वाक्य कहते हैं। जैसे— यदि परिश्रम करते तो सफलता मिलती। यदि पानी न बरसता तो फसल सूख जाती।

(2) रचना के आधार पर वाक्य के प्रकार—

इस आधार पर वाक्य तीन प्रकार के होते हैं— (क) सरल वाक्य/साधारण वाक्य, (ख) संयुक्त वाक्य, (ग) मिश्र वाक्य।

(क) **सरल वाक्य**— जिस वाक्य में एक उद्देश्य और एक विधेय पाया जाए अथवा जिस वाक्य में एक ही मुख्य क्रिया हो, उसे सरल वाक्य कहते हैं। जैसे—

पानी बरस रहा है।

मोहन घर जाता है।

बच्चे मैदान में खेल रहे हैं।

(ख) **संयुक्त वाक्य**— जहाँ दो या दो से अधिक मुख्य अथवा स्वतंत्र उपवाक्य किसी समुच्चय बोधक अव्यय शब्द (योजक) द्वारा जुड़े होते हैं, संयुक्त वाक्य कहलाते हैं, जैसे—

वह मसूरी घूमने गए और वहां चार दिन रहे।

हमने सुबह से शाम तक बाजार की खाक छानी, किंतु काम नहीं बना।

उपरोक्त लिखे उदाहरणों में 'और', 'किंतु' अव्यय शब्दों से वाक्य जुड़े हुए हैं। यदि इन योजक अव्यय शब्दों को हटा दिया जाए, तो प्रत्येक में दो–दो स्वतंत्र वाक्य बनते हैं। योजकों की सहायता से जुड़े हुए होने के कारण इन्हें संयुक्त वाक्य कहते हैं।

(ग) **मिश्र वाक्य**— जिन वाक्यों की रचना एक से अधिक ऐसे उपवाक्यों से हुई हो, जिनमें एक प्रधान तथा अन्य आश्रित उपवाक्य हों, उन्हें मिश्र वाक्य कहते हैं।

'मैंने देखा' 'बाजार में चहल–पहल है'।

श्यामलाल, जो गांधी गली में रहता है, मेरा मित्र है।

यशोदा ने कहा कि कल की छुट्टी होगी।

आश्रित वाक्य के भेद

मिश्र वाक्य में प्रयुक्त होने वाले आश्रित उपवाक्य तीन प्रकार के होते हैं– संज्ञा आश्रित वाक्य, विशेषण आश्रित वाक्य, क्रिया विशेषण आश्रित उपवाक्य।

- **संज्ञा आश्रित उपवाक्य**– शीतल ने कहा कि मैं रजनी के घर जाऊंगी। इस वाक्य में 'मैं रजनी के घर जाऊंगी' यह आश्रित उपवाक्य है और 'संज्ञा उपवाक्य' की श्रेणी में आता है।
- **विशेषण आश्रित उपवाक्य**– यह वही लड़का है जो कपड़े धोता है। इस वाक्य में 'जो कपड़े धोता है' आश्रित उपवाक्य है ओर विशेषण उपवाक्य की श्रेणी में आता है क्योंकि 'जो' संज्ञा (लड़का) की विशेषता बता रहा है। जो, जिनसे, जिसे, जब, जहां आदि से जुड़ने वाले वाक्य अधिकतर विशेषण उपवाक्य होते हैं।
- **क्रिया विशेषण आश्रित उपवाक्य**– जिन उपवाक्य के संयोजक प्रधान उपवाक्य की क्रिया की विशेषता बताते हैं, वे उपवाक्य 'क्रिया विशेषण उपवाक्य' कहलाते हैं। जैसे– 'ज्यों ही शीला आएगी त्यों ही अमन चली जाएगी।' इस वाक्य में 'त्यों ही अमन चली जाएगी' यह क्रिया विशेषण आश्रित उपवाक्य है क्योंकि त्यों ही प्रधान उपवाक्य की क्रिया आएगी की विशेषता बता रहा है। ज्यों ही, ज्यों त्यों, जब–तब, जहां–तहां, जब कभी आदि संयोजकों से प्रारंभ होने वाले आश्रित उपवाक्य इसी श्रेणी में आते हैं।

2.2.2 कौशलात्मक : सुनना, बोलना, पढ़ना एवं लिखना तथा सुनकर, बोलकर, पढ़कर एवं लिखकर अर्थ ग्रहण करना

- (**नोट** : इस प्रकरण का विस्तृत अध्ययन आप इकाई–1 के 1.5 में कर चुके हैं।)

अपनी प्रगति जांचिए

1. इनमें से क्या खण्डेतर ध्वनिग्राम में शामिल नहीं है?

   (क) बलाघात — (ख) अनुतान

   (ग) दीर्घता — (घ) व्यंजन

2. रचना के आधार पर वाक्य के प्रकार क्या हैं?

   (क) सरल वाक्य — (ख) संयुक्त वाक्य

   (ग) मिश्र वाक्य — (घ) उपरोक्त सभी

2.3 उच्चतर माध्यमिक स्तर पर हिंदी शिक्षण के उद्देश्य

उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी हिंदी भाषा और हिंदी साहित्य की विभिन्न विधाओं की जानकारी रखने लगते हैं। इस स्तर पर भाषा–शिक्षण के उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

टिप्पणी

1. विद्यार्थियों में भाषा व साहित्य की विविध विधाओं की शब्दावली, प्रस्तुतीकरण शैलियों और अन्य विशिष्ट तत्वों को समझने की योग्यता का विकास करना।
2. भाषा का अधिकाधिक अध्ययन करने की प्रेरणा जाग्रत करना।
3. मौन वाचन और द्रुत गति से पठन के माध्यम से पाठ्यवस्तु के शीघ्र अर्थग्रहण पूर्वक पठन की योग्यता का विकास करना।
4. विद्यार्थियों में मौखिक एवं लिखित भाषा के माध्यम से बोध व भाव ग्रहण करने की क्षमता का विकास करना।
5. सस्वर वाचन के माध्यम से साहित्य की विभिन्न विधाओं के प्रस्तुतीकरण के कौशल का विकास करना।
6. विद्यार्थियों में शुद्ध उच्चारण और सृजनात्मकता की वृद्धि करना।
7. उन्हें कविता, कहानी इत्यादि लिखने के लिए प्रोत्साहित करना।
8. विद्यार्थियों में मौलिकता की प्रवृति का विकास करना।
9. मौखिक एवं लिखित भाषा के माध्यम से अपनी चुनी हुई शैली और विधा में अभिव्यक्ति के कौशल का विकास करना।
10. पठित गद्य एवं पद्य के भाव, रस विचार एवं सौन्दर्य की त्वरित अनुभूति, रसास्वाद एवं सराहने के कौशल का विकास करना।
11. भाषा के साहित्य और विधाओं का ज्ञान कराना।
12. विद्यार्थियों में सौन्दर्यानुभूति की भावना का विकास कराना।
13. कविता एवं पद्य के विविध पक्षों एवं गद्य की विविध शैलियों से परिचय कराना।
14. विद्यार्थियों में भाषा के विविध रूपों, विधाओं, गद्य–पद्य रचनाओं की सामान्य समालोचना की प्रवृत्ति पैदा करना।
15. विद्यार्थियों में चिंतन, मनन की प्रवृति का विकास करना।
16. भाषा–साहित्य के अंतर्हित भावों, कला–संस्कृति एवं इतिहास जैसे अमूर्त भावों को समझने एवं अभिव्यक्त करने की क्षमता का विकास करना।
17. उच्च कोटि के साहित्य पठन की प्रवृत्ति, क्षमता एवं अभ्यास का विकास करना।
18. हिंदी भाषा के माध्यम से शिक्षा के अन्य विषयों या पाठ्यक्रम के अन्य विषयों को समझने की क्षमता का विकास करना।
19. विद्यार्थियों के चरित्र एवं भावनाओं को विकसित एवं परिष्कृत करना।
20. भारतीय संस्कृति और मातृभाषा के साहित्य का विद्यार्थियों को ज्ञान कराना।
21. पाठ्यपुस्तकों के अतिरिक्त मातृभाषा की अन्य पुस्तकों और साहित्य को पढ़ने के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित करना।
22. विद्यार्थियों को भाषा के व्यावहारिक प्रयोग एवं विश्लेषण में समर्थ करना।

23. गद्य एवं पद्य में प्रस्तुत मानवीय भावों और सामाजिक, राष्ट्रीय, धार्मिक व आध्यात्मिक तत्वों को आत्मसात करने के लिए प्रेरित करना।
24. विद्यार्थियों को उनके भावी जीवन के लिए तैयार करना।

टिप्पणी

प्रस्तुत सूची में हिंदी शिक्षण के लक्ष्यों एवं उद्देश्यों का उल्लेख किया गया है। इनमें से अधिकांशतः तो इस प्रकार के लक्ष्य हैं जिनका अधिगम किसी एक कक्षा या प्रकरण के अंतर्गत अध्ययन से नहीं किया जा सकता। लक्ष्य व्यापक दिशा–निर्देश हैं जिनके अधिगम के लिए अनुकूल पाठ्य सामग्री, सहायक सामग्री और शिक्षण उपकरणों की व्यवस्था की जाती है। इस प्रक्रिया से सीधे तौर पर तो शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति होती है परन्तु परोक्ष रूप से लक्ष्यों का अधिगम भी होता रहता है।

मातृभाषा हिंदी शिक्षण के मूल/सामान्य उद्देश्य

भाषा केवल भावों और विचारों की अभिव्यक्ति का साधन ही नहीं है अपितु यह एक औजार की तरह है जिसका प्रयोग हम जिंदगी को समझने के लिए, उससे जुड़ने के लिए और जीवन–जगत को प्रस्तुत करने के लिए करते हैं। यह सब करने के लिए जांच–पड़ताल, सम्प्रेषण, तर्क जैसे कौशलों की आवश्यकता होती है। हम यह भी जानते हैं कि भाषा हमारे चारों ओर बिखरी हुई है, जैसे–अखबार, विज्ञापन, साइन–बोर्ड, पोस्टर इत्यादि के रूप में। इसके अतिरिक्त भाषा अपने साहित्यक रूप में भी उपलब्ध है। ऐसी स्थिति में शिक्षक का प्रयास होना चाहिए कि विद्यालयी शिक्षा में आरम्भिक वर्षों में भाषा के कौशलों के शिक्षण पर ध्यान केन्द्रित करे और आगे चल कर भाषा के साहित्यिक परिवेश से विद्यार्थियों का परिचय, साहित्य सृजन, समीक्षा आदि से कराए। इस आधार पर हिंदी भाषा शिक्षण के मूल उद्देश्यों को अग्रलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है–

1. ज्ञानात्मक उद्देश्य
2. कौशलात्मक उद्देश्य
3. सृजनात्मक उद्देश्य
4. अभिवृत्यात्मक उद्देश्य
5. समीक्षात्मक एवं रसात्मक उद्देश्य
6. सराहनात्मक उद्देश्य
7. विचारात्मक उद्देश्य
8. स्वाध्यात्मक उद्देश्य
9. भावात्मक उद्देश्य

1. **ज्ञानात्मक उद्देश्य** : ज्ञानात्मक उद्देश्य विद्यार्थियों को हिंदी भाषा और साहित्य की मूलभूत बातों का ज्ञान प्रदान करते हैं। इस प्रकार के उद्देश्य निम्नलिखित हैं–
   - विद्यार्थियों को ध्वनि का ज्ञान कराना।
   - शब्द, वाक्य एवं वाक्य रचना का ज्ञान कराना।
   - माध्यमिक स्तर पर हिंदी की विभिन्न विधाओं यथा कहानी, निबन्ध, काव्य, उपन्यास इत्यादि का सामान्य ज्ञान प्रदान करना।

टिप्पणी

- लिपि, उच्चारण, वर्तनी आदि भाषिक तत्वों का ज्ञान कराना।
- रचनात्मक कार्यों की ओर उन्मुख करना अर्थात उनके लिखित और मौखिक रूपों का विकास करना।
- लेखक की अनुभूतियों का ज्ञान कराना।
- उच्चतर माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों को हिंदी साहित्य के इतिहास की सामान्य जानकारी प्राप्त कराना।
- विद्यार्थियों में विश्लेषण, तुलना, वर्गीकरण, तथा उदाहरण देने की क्षमता का क्रमशः विकास करना।
- विद्यार्थियों को सांस्कृतिक, पौराणिक, सामाजिक इत्यादि तथ्यों से परिचित कराना।

2. **कौशलात्मक उद्देश्य** : सुनना, बोलना, पढ़ना लिखना अर्थ एवं भाव ग्रहण करना इत्यादि भाषायी कौशल कहलाते हैं। इसके अंतर्गत हिंदी भाषा के निम्न उद्देश्य सम्मिलित हैं–
   - विद्यार्थियों में शुद्ध और स्पष्ट सस्वर वाचन की क्षमता का विकास करना।
   - तथ्यों को सुनना, उनका अर्थ ग्रहण करना व भाव समझने की क्षमता का विकास करना।
   - अभिव्यक्ति के लिए बोलकर और लिखकर अपनी क्षमता को प्रदर्शित करना।
   - तथ्यों को पढ़कर भाव ग्रहण करने की क्षमता उत्पन्न करना।
   - बोलकर अपने भावों को प्रकट करना।
   - आरोह–अवरोह के साथ भाषा का उच्चारण करना।
   - मुहावरों, उक्तियों, एवं उदाहरणों का सन्दर्भ के अनुसार अर्थ ग्रहण करना।
   - सारांश ग्रहण करना, भावाभिव्यंजना का विकास करना।
   - विचारों, भावों एवं तथ्यों का परस्पर संबंध समझना व उनका मूल्यांकन करना।
3. **सृजनात्मक उद्देश्य** : सृजनात्मक उद्देश्य से तात्पर्य विद्यार्थियों में रचना करने की या सृजन करने की क्षमता पैदा करना है। प्रत्येक विद्यार्थी सृजनशील हो सकता है यदि उसे उपयुक्त प्रोत्साहन दिया जाए। हिंदी अध्यापक का कर्तव्य है कि वह उसे एतदर्थ प्रोत्साहित करे। विद्यार्थियों को कहानी, निबंध, नाटक, संवाद, कविता, उपन्यास, पत्र इत्यादि लिखने की ओर उन्मुख करे। इसके अंतर्गत मूलतः निम्न बातें आती हैं–
   - विद्यार्थियों को लेखन में मौलिकता लाने के लिए प्रोत्साहित करना।

- विद्यार्थियों को लिखने के लिए प्रोत्साहित करना।
- विषयानुकूल भाषा एवं शैली के प्रयोग में कुशल बनाना।
- विद्यार्थियों में स्वानुभूति की भावना भरना, स्वाध्याय के लिए अवसर प्रदान करना तथा विचारों की अभिव्यक्ति के लिए पूर्ण अवसर प्रदान करना।
- विद्यार्थियों को निबंध, कहानी, संवाद, कविता, पत्र इत्यादि लिखने के लिए प्रेरित करना।
- ग्रहीत व स्वानुभूत विचारों को कल्पना की सहायता से नया रूप देना।
- विषय एवं प्रसंग के अनुरूप शैली का ज्ञान व उपयोग कराना।
- भावों एवं विचारों की अभिव्यक्ति एवं प्रगटीकरण के लिए प्रोत्साहित करना।
- पठित अंश का संक्षेपीकरण व विस्तारीकरण सिखाना।

4. **अभिवृत्यात्मक उद्देश्य** : अभिवृत्ति से तात्पर्य है अभिरुचि। इस उद्देश्य का लक्ष्य विद्यार्थियों के दृष्टिकोण और अभिवृत्तियों का विकास करना है। दृष्टिकोण और अभिवृत्तियों के विकास से मौलिकता का जन्म होता है। मौलिकता के सहारे नवीन कृत्तियों का जन्म होता है। अभिवृत्यात्मक उद्देश्यों को कुछ प्रमुख बिंदुओं के तहत समझा जा सकता है–
   - सदवृत्तियों में रुचि का विकास।
   - भाषा और साहित्य में रुचि का विकास उत्पन्न करना।
   - अभिवृत्यात्मक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए विद्यार्थियों में योग्यताएं विकसित करनी चाहिए।
   - पाठ्यक्रम के अतिरिक्त अन्य पुस्तकों के अध्ययन में रुचि उत्पन्न करना।
   - अध्ययन के प्रति प्रेरित करना।
   - विद्यालय व समाज में होने वाले साहित्यिक व सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भाग लेने की प्रेरणा देना।
   - पत्रिका आदि विद्यालय के प्रकाशनों में सहयोग की प्रेरणा देना।
   - कवियों और अन्य साहित्यकारों की कृतियों के अध्ययन के अतिरिक्त उनका चित्र, संस्मरण इत्यादि एकत्र करना।
   - रुचिकर कविताओं को कंठस्थ करना।
   - पुस्तकालय का उपयोग करना और निजी पुस्तकालय की स्थापना करना।
   - साहित्यिक पत्रिकाओं का अध्ययन करना व उनका संग्रह करना।
   - साहित्यिक चित्रों तथा तथ्यों को एकत्रित करना।

टिप्पणी

- विभिन्न साहित्यिक समितियों का सदस्य बनना तथा उनके संचालन में योगदान देना।
- संस्कृति और सभ्यता का अध्ययन करना।
- सामाजिक मान्यताओं के प्रति आस्था रखना।
- मानव प्रेम व देश प्रेम की ओर उन्मुख होना।

5. **समीक्षात्मक एवं रसात्मक उद्देश्य** : भाषा और साहित्य का यह उद्देश्य बहुत महत्वपूर्ण और उपयोगी है। इसके अंतर्गत दो पहलू सम्मिलित हैं–
   - साहित्य के विभिन्न पक्षों की समालोचना का अध्ययन करना और स्वयं समालोचना करना।
   - रसात्मक अनुभूति कराना और साहित्य का रसास्वादन करना।

   इस उद्देश्य के अंतर्गत विद्यार्थियों को साहित्य के रस की अनुभूति करवाई जाती है और रसानुभूति के उपरान्त उसकी समालोचना प्रस्तुत की जाती है।
6. **सराहनात्मक उद्देश्य**– सराहनात्मक उद्देश्यों के माध्यम से बालकों में ऐसे गुणों का विकास करना है जिससे वे न केवल अच्छे अंशों को पहचानें बल्कि उनकी प्रशंसा भी करें तथा अपनी अभिव्यक्ति में उन्हें प्रयोग भी करें।
   - विद्यार्थियों में सौंदर्य बोध का विकास करना।
   - शब्द सौंदर्य तथा भाव को पहचानना व उसकी प्रशंसा करना।
   - साहित्य की अलग–अलग विधाओं का रसास्वादन करना।
   - सुंदर कविताओं को कंठस्थ करना तथा अवसर के अनुसार उनका अभिव्यक्ति में प्रयोग करना।
7. **विचारात्मक उद्देश्य**– विद्यार्थियों की विचार शक्ति को विकसित करना ही भाषा का मुख्य उद्देश्य है। विचारों की वाहक ही भाषा होती है। शिक्षक को चाहिए कि वह विद्यार्थियों के विचारात्मक उद्देश्यों के विकास के लिए अधिक से अधिक अवसर दें। इसके लिए–
   - विद्यार्थियों के विचारों में क्रमबद्धता लाने का प्रयत्न करना।
   - विचारों के साथ विद्यार्थियों का तादात्म्य स्थापित करना।
   - मर्मस्पर्शी व सुंदर विचारों को पहचानना व उनकी प्रशंसा करना।
   - पठित अंश का शीर्षक दे सकना।
   - पाठ्यपुस्तक के विचारों का विश्लेषण कर सकना।
   - सामान्य अर्थ के साथ–साथ विद्यार्थियों में लाक्षणिक अर्थ की समझ विकसित करना।
   - पठित अंश का सार ग्रहण कर सकना।
   - श्रुत सामग्री व पठित सामग्री के आधार पर निष्कर्ष निकाल सकना।

- कठिन विचारों के स्पष्टीकरण की योग्यता विकसित करना।
- पठित सामग्री के विचारों को क्रम अनुसार समझ सकना।
- विद्यार्थियों में चिंतन की प्रवृत्ति का विकास करना।

टिप्पणी

8. **स्वाध्यात्मक उद्देश्य**– भाषा के अध्ययन के द्वारा छात्रों में स्वाध्याय के प्रति रुचि उत्पन्न की जा सकती है।
   - छुट्टियों के समय का सदुपयोग करना।
   - पुस्तकालय का इस्तेमाल करना व अपना पुस्तकालय बनाना।
   - विद्यालय में होने वाले साहित्यिक कार्यक्रमों में हिस्सा लेना।
   - साहित्यिक संस्थाओं की सदस्यता ग्रहण करना।
   - छात्रों को तुकबंदी करके सरल कविताएं लिखने के लिए प्रेरित करना।
   - मातृभाषा व उसके साहित्य के प्रति अनुराग उत्पन्न करना।
   - सुंदर कविताओं को कंठस्थ करना तथा यथा अवसर के अनुसार अपनी अभिव्यक्ति में प्रयोग करना।
   - विद्यालयों की पत्र–पत्रिकाओं का अध्ययन व संकलन करना।
   - शब्दकोश के उपयोग की योग्यता विकसित करना।
   - साहित्यिक महत्व की पत्र–पत्रिकाओं का संकलन व अध्ययन करना।

2.3.1 ज्ञानात्मक : गद्य एवं पद्य विधाओं का संक्षिप्त परिचय (कविता, कहानी, नाटक, एकांकी एवं अन्य), हिंदी के विविध रूपों (राष्ट्रभाषा, राजभाषा, संपर्क भाषा, विश्व भाषा) का ज्ञान

(क) कविता

कविता को साहित्यिक अभिव्यक्ति का सबसे प्राचीनतम रूप माना गया है। हृदय की मुक्ति साधना के लिए मनुष्य की वाणी जब शब्दों के माध्यम से व्यक्त होती है उसे कविता कहते हैं। विद्वानों ने कविता को विभिन्न रूपों से समझने और परिभाषित करने का प्रयत्न किया है–

विश्वनाथ कविराज– "वाक्यम् रसात्मकम् काव्यम्।" अर्थात रस युक्त वाक्य ही काव्य है।

पंडित राज जगन्नाथ– "रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्।" अर्थात जिस साहित्य से आनंदप्रद भाव की अनुभूति हो वह काव्य है।

आचार्य आनंदवर्धन– "काव्यस्थात्मा ध्वनिः।" अर्थात ध्वनि ही काव्य की आत्मा है।

आचार्य वामन– "रीतिरात्मा काव्यस्थ।" रीति ही काव्य की आत्मा है।

आचार्य दंडी– "काव्य शोभा करान्ध्मनि–मनलंकारान्द्र चक्षते।"

आचार्य मम्मट– "तद्दोषौ शब्दार्थो
सगुणावनलंकृति पुनः क्वापि।

टिप्पणी

हिंदी के अनेक साहित्यकारों और आलोचकों ने कविता को परिभाषित करने का प्रयास किया है–

आचार्य रामचंद्रशुक्ल के शब्दों में– "कविता वह साधना है जिससे सृष्टि के साथ हमारे रागात्मक संबंधों का निर्वाह होता है।" इनके द्वारा एक अन्य परिभाषा भी प्रस्तुत की गई है– "हृदय की मुक्ति साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती है उसे कविता कहते हैं।"

जयशंकर प्रसाद– "आत्मा की संकल्पनात्मक अनुभूति काव्य है।"

पाश्चात्य साहित्यकारों द्वारा प्रस्तुत कविता की कतिपय परिभाषाओं का अवलोकन भी समीचीन प्रतीत होता है–

मिल्टन– "कविता सरल ऐंद्रिक एवं रागात्मक होनी चाहिए।"

जॉन्सन– "कविता सत्य और आनंद के एकीकरण की कला है जिसमें विवेक के साथ कल्पना का प्रयोग किया जाता है।"

हडसन– "कविता कल्पना एवं मनोवेगों के माध्यम से जीवन की व्याख्या है।"

मेथ्यू ऑर्नल्ड– "कविता मूलतः जीवन की समालोचना है।"

कॉलरिज– "सर्वोत्तम शब्दों का सर्वोत्तम क्रम कविता है।"

वर्ड्सवर्थ– "शांति के क्षणों में पुनःस्मृत मनोवेगों का प्रवाह कविता है।"

कारलायल– संगीतमय विचार ही कविता है।

प्रस्तुत विचारों और परिभाषाओं के विवेचन से कविता का जो स्वरूप स्पष्ट होता है उसे निम्नलिखित बिंदुओं द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है–

- कविता विचारों की अपेक्षा भावों के अधिक निकट है।
- छंद, लय, ताल और रस कविता के प्राण तत्व हैं।
- कविता में कल्पना की प्रधानता होती है।
- इसकी भाषा संगीतमय होती है।
- छंद, यति, गति, आरोह–अवरोह तथा चरणों में आबद्ध भावपूर्ण रचना काव्य है।
- कविता की भाषा में अभिधा की अपेक्षा लाक्षणिक भाषा की प्रमुखता होती है।
- कविता का एक गुण नाद सौंदर्य व ध्वन्यात्मकता है जिसके कारण कविता बहुत दिनों तक याद रहती है।

कविता की चाहे जो भी परिभाषा है परंतु यह सत्य है कि कविता से हमारे मन में जो आनंद का संचार होता है वह लोकोत्तर है अर्थात हम कुछ समय के लिए सांसारिक

बंधनों से मुक्त होकर भावों के सागर में विचरण करने लगते हैं। इसी प्रकार बच्चों के हृदय में इस लोकोत्तर आनंद का संचार करना ही कविता–शिक्षण का उद्देश्य होता है।

कविता शिक्षण के उद्देश्य

कविता शिक्षण का उद्देश्य बच्चों की रागात्मक वृत्तियों अर्थात हर्ष–विषाद, प्रेम–घृणा, करुणा–क्रोध इत्यादि का संशोधन और संस्कार करना है। इसके द्वारा सद्कर्मों, सद्वृत्तियों को जागृत करने एवं छात्रों की प्रकृति को रचनात्मक बनाने में मदद मिलती है।

सौंदर्य को अनुभव करने की शक्ति प्रत्येक बालक में होती है। एक अबोध बालक भी सुंदर खिलौनों की ओर लालायित होता है। कविता शिक्षण का उद्देश्य बालक के इस प्रकृति द्वारा प्राप्त सौंदर्य अनुभव की शक्ति का विकास करना है। संक्षेप में कविता शिक्षण के उद्देश्य इस प्रकार हैं–

- छात्रों को मनोयोगपूर्वक कविता पाठ सुनने के योग्य बनाना।
- कविता को लय, ताल, स्वर तथा नाटकीय आवश्यकताओं के अनुरूप पढ़ने के योग्य बनाना।
- छात्रों को उचित गति, आरोह–अवरोह एवं भावानुसार कविता पाठ करने के योग्य बनाना।
- कविता को पढ़कर अपने शब्दों में उसका अर्थ एवं भाव स्पष्ट करने की योग्यता विकसित करना।
- कविता के माध्यम से शब्द योजना, शब्द शक्तियों, छंदों, अलंकारों, रसों आदि काव्य तत्वों का ज्ञान कराना।
- कविता पाठ द्वारा छात्रों की रागात्मक वृत्तियों का परिष्कार करना।
- कविता की समीक्षा करने के योग्य बनाना।
- विभिन्न काव्य शैलियों से परिचित कराना।
- कविता की भावानुभूति करने के योग्य बनाना।
- छात्रों में कविता के संदेश को ग्रहण करने की क्षमता का विकास करना।
- कविता पढ़कर खुशी व आनंद की अनुभूति करने के योग्य बनाना।
- छात्रों की कल्पनाशक्ति का विकास करना।
- छात्रों को अच्छी कविताओं का संग्रह करने की प्रेरणा देना।
- छात्रों में अपनी सभ्यता, संस्कृति एवं सामाजिक आदर्शों के अनुकूल आचरण करने की प्रवृत्ति विकसित करना।
- छात्रों का नैतिक एवं चारित्रिक विकास करना।
- छात्रों में उच्च आदर्शों का निर्माण करना।

टिप्पणी

- कविता के सुंदर स्थलों को पहचानना व उनकी सराहना की क्षमता उत्पन्न करना।
- छात्रों को कविता के माध्यम से मानव जीवन के विभिन्न पक्षों का ज्ञान कराना।
- छात्रों की सृजनात्मक शक्तियों को विकसित कर उन्हें कविता की रचना करने के लिए प्रेरित करना।

(ख) कहानी

कहानी गद्य की सर्वाधिक लोकप्रिय विधा है। यह एक लघु वर्णनात्मक गद्य रचना है जिसके अंतर्गत वास्तविक जीवन को कलात्मक रूप से प्रस्तुत किया जाता है। इसमें संपूर्ण जीवन की अपेक्षा जीवन के एक अंश पर जोर दिया जाता है। लेखक कहानी के अंतर्गत अपनी पूरी शक्ति घटना की अभिव्यक्ति पर लगा देता है। कहानी का एक कथानक होता है। इसमें कुछ पात्र होते हैं जिनमें परस्पर वार्तालाप होता है। पात्रों के चरित्र को लेकर ही कहानी आगे बढ़ती है। कहानी में भाषा सरल व सरस होती है। लेखक इसे अपनी शैली के अनुसार लिखता है। कहानीकार द्वारा देशकाल के आधार पर कहानी का लक्ष्य निर्धारित किया जाता है। कहानी मनोरंजक होने के साथ–साथ कोई संदेश व उद्देश्य लिए हुए होती है।

मुंशी प्रेमचंद के अनुसार– "कहानी एक ऐसी रचना है जिसमें जीवन के किसी एक अंश या एक मनोभाव को प्रकट करना ही लेखक का उद्देश्य होता है। उसके चरित्र, उसकी शैली, उसका कथानक सब उसी एक भाव को प्रकट करते हैं।"

डॉ. श्याम सुंदर दास के अनुसार, "कहानी एक निश्चित लक्ष्य या प्रभाव को लेकर चलने वाला नाटकीय आख्यान है।"

मानव जीवन में कहानियों का अत्यंत महत्व है। व्यक्ति के चरित्र निर्माण व व्यवहार में इसकी भूमिका निर्विवाद है। छोटे बच्चों को उपयोगी बातें, कहानियों के माध्यम से ही सिखाई जाती हैं। कहानी के माध्यम से भाषायी कौशल, मुहावरों, लोकोक्तियों, अर्थग्रहण आदि पक्षों तथा रचना शिक्षण आदि को सरलता व सुगमता से सिखाया जा सकता है।

प्राचीन काल से उपदेशक, शिक्षक व समाज सुधारक कहानी नामक साधन का प्रयोग अपनी सफलता के लिए करते रहे हैं। आज भी बालक से लेकर वृद्ध तक सभी कहानी का आनंद लेते हैं। छोटी कक्षाओं में समस्त विषयों का अध्यापन, मुख्यतः समाजशास्त्र का अध्यापन कहानियों द्वारा होना चाहिए क्योंकि ऐतिहासिक घटनाओं की जटिलता एवं नीरस तथ्यों में बालकों की रुचि नहीं होती परंतु उन्हीं घटनाओं को कहानी की सहायता से रुचिकर बनाया जा सकता है। मुहावरों एवं लोकोक्तियों को कहानी के माध्यम से बड़ी सुगमता से स्पष्ट किया जा सकता है।

रचना शिक्षण में कहानी विधि सर्वोत्तम सिद्ध होती है। होली, दीपावली, रक्षाबंधन आदि पर निबंध लिखवाते समय होलिका कथा, रामचंद्र की बनवास से लौटने की कथा,

कर्णावती व हुमायूं की कहानी सुनाकर इन पर्वों के महत्व को स्पष्ट किया जा सकता है। कहानी सुनने व सुनाने के माध्यम से छात्रों में श्रवण कौशल व मौखिक अभिव्यक्ति कौशल का विकास होता है। इसके अंतर्गत, बालकों में नैतिक विकास एवं चारित्रिक निर्माण भी होता है।

अल्पज्ञों को समझाने में कहानी अत्यंत उपयोगी है। कहानी द्वारा पढ़ाने से बालकों में पढ़ने की रुचि उत्पन्न होती है। कहानी द्वारा विवेक, सूक्ष्मदर्शिता, अवलोकन, निरीक्षण, कल्पना व स्मरण शक्ति का विकास होता है।

प्राथमिक कक्षाओं में कहानी शिक्षण

बच्चों को कहानियां बहुत पसंद होती हैं। दादी–नानी की कहानियों से उन्हें बहुत आनंद आता है। वे हमेशा कहानी सुनने में इच्छुक रहते हैं यथा 'मां कह एक कहानी, राजा था या रानी'। विद्यालय में भी बच्चे कहानी सुनना चाहते हैं। इसलिए अध्यापक को कहानी के द्वारा बच्चों को पढ़ाना चाहिए लेकिन अध्यापक को कहानी के विषय में तीन प्रमुख बातों का हमेशा ध्यान रखना चाहिए–

1. कहानी कहने की शैली,
2. कहानी का चुनाव,
3. कहानी की भाषा।

कहानी का चुनाव बच्चों की आयु, रुचि और क्षमता का ध्यान रखकर करना चाहिए। कहानी कहने का उद्देश्य मनोरंजन के अतिरिक्त चरित्र–निर्माण करना तथा शिक्षा भी प्रदान करना है। उनमें कहानी के द्वारा उपयोगी गुणों का विकास करना है, जो भविष्य में उनके व्यक्तित्व का निर्माण करें। कहानी रुचिकर एवं शिक्षाप्रद होनी चाहिए। कहानी की भाषा सरल और आकर्षक होनी चाहिए। कहानी कहने की शैली पर्याप्त आकर्षक होनी चाहिए। बीच–बीच में चुटकुले और पद्य की साधारण पंक्तियों का भी इस्तेमाल होना चाहिए। कहानी अभिनयात्मक शैली में रुचिकर तरीके से कही जानी चाहिए, ताकि बच्चे उत्साहित होकर कहानी का आनंद ले सकें। कहानी का अनुकूल प्रभाव पड़ना चाहिए, तभी कहानी की सार्थकता है। कहानी के बाद उससे संबंधित प्रश्न पूछने चाहिए। बच्चों से भी कहानी सुननी चाहिए। प्रारंभिक स्तर पर कहानी में भाषागत एवं व्याकरण संबंधी अशुद्धियों पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

माध्यमिक स्तर पर कहानी शिक्षण

इस स्तर पर छात्रों को अनेक प्रकार की कहानियां प्रस्तुत की जानी चाहिए। घटना प्रधान कहानियां, चरित्र प्रधान कहानियां एवं भाव–प्रधान कहानियां इस स्तर पर कही जानी चाहिए। सरल भाषा की कहानियों का मौन पाठ उचित रहता है परंतु जटिल भाषा की कहानियों का रसास्वादन सस्वर वाचन के रूप में किया जाना चाहिए। वाचन के उपरांत इनका विश्लेषण करना भी आवश्यक है।

भाषा और कथावस्तु का विश्लेषण इस स्तर पर करना चाहिए। विश्लेषणात्मक प्रश्नों द्वारा भावों का स्पष्टीकरण होता है। कहानी के विश्लेषण के बाद उसका संश्लेषण भी

टिप्पणी

किया जाना चाहिए। संश्लेषण का अर्थ है, कहानी को क्रमबद्ध स्वरूप देकर उसका संक्षेपीकरण करना। माध्यमिक कक्षाओं में कहानी का गहन अध्ययन होना चाहिए। उसकी ऐतिहासिकता, सामाजिकता, मनोवैज्ञानिकता, पौराणिकता आदि की श्रेणियां निर्धारित की जानी चाहिए। पात्रों के चरित्र–चित्रण तथा तुलनात्मक अध्ययन आदि पर विचार होना चाहिए। कहने का मतलब है कि कहानी की समीक्षा होनी चाहिए।

इस स्तर पर कहानी का इस्तेमाल होना चाहिए। उसका नाटकीकरण होना चाहिए। कहानी का कथोपकथन लिखने का अभ्यास होना चाहिए। कहानी अगर ऐसी जगह पर खत्म होती है जहां आकर पाठकों को कल्पना करनी पड़ती है तो वहां कल्पना के लिए छात्रों को प्रेरणा मिलती है। छात्रों को स्वयं कहानी लिखने की प्रेरणा मिलनी चाहिए। इस स्तर पर सिर्फ कहानी पढ़ लेना, उसका शब्दार्थ या भावार्थ बता देना ही पर्याप्त नहीं है।

(ग) नाटक एवं एकांकी

• नाटक

भारत में नाटक साहित्य की प्राचीन परंपरा रही है। भारत में ही नाट्यशास्त्र की रचना की गई। आचार्य धनंजय ने नाटक की परिभाषा इस प्रकार दी है– "अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्"। अर्थात अवस्था का अनुकरण ही नाटक है। अलग–अलग अवस्था में रहने के कारण उसके जीवन रंगमंच पर अनेक दृश्य (स्थितियां) आते–जाते हैं। नाटककार नाटक की रचना करते समय इन्हीं स्थितियों का अनुकरण करता है।

नाटक में जीवन का यथार्थ अनुकरण होते हुए भी नाटककार उसमें अपनी कल्पना का मिश्रण करता है। यही कल्पना नाटक को साहित्य की विधा के रूप में प्रस्तुत करती है इसलिए नाटक एक ऐसी कला और विधा है जिसमें अनुकरण और कल्पना दोनों का मिश्रण रहता है। 'नाटक'– संस्कृत नाट्य परंपरा हो या प्रारंभिक नाटक सब नाट्यकला की दृष्टि से समृद्ध रहे हैं– केवल मध्ययुग के कुछ नाटककारों ने उपदेशात्मक व शिक्षण परक नाटक लिखे हैं। इनका उद्देश्य जीवन की अनेक प्रकार की समस्याओं का उद्घाटन करना और मानवीय संवेदनाओं को प्रकाश में लाना था। नाटक में अनेक कथाएं होती हैं, मुख्य, प्रासंगिक व अन्य छोटी–छोटी कथाएं जो नाटक में कथा का विस्तार होती हैं। नाटक के अभिनय में तीन से चार घंटे लगते हैं।

• एकांकी

एकांकी एक ऐसी पूर्ण नाटकीय रचना होती है जिसमें मानव जीवन के किसी एक पक्ष, एक समस्या, एक चरित्र और एक भाव की अभिव्यक्ति होती है। नाटक का विभाजन अंकों में होता है। एकांकी का साधारण अर्थ है–एक अंक वाला नाटक; लेकिन नाटक से एकांकी की कला और शैली भिन्न होती है। दोनों में अनुकरण तत्व की प्रमुखता होती है। दोनों में वस्तु, चरित्र, संवाद आदि रहते हैं किंतु इनके प्रस्तुतीकरण में अंतर होता है। एकांकी में कथावस्तु की लघुता रहती है, विस्तार

टिप्पणी

नहीं। इसमें केवल आधिकारिक कथा होती है और वह भी अत्यंत संक्षिप्त। इसकी कथा किसी घटना के मार्मिक स्थल से आरंभ होकर जिज्ञासा व कुतूहल को जगाती हुई विस्मयपूर्ण स्थिति में समाप्त हो जाती है। एकांकी की कथा साधारणतः जिज्ञासा जनक होती है। इसकी सारी कथा किसी एक स्थान की होती है। आरंभ से अंत तक स्थान की एकता बनी रहती है। इसका अंत आकस्मिक होता है।

एकांकी में चरित्र अधिक नहीं होते। इसमें प्रायः पांच–छः चरित्र रहते हैं। इसमें नायक के चरित्र की ही प्रधानता रहती है; अन्य चरित्र उसके व्यक्तित्व को विकसित करते हैं। यहां सामान्यतः प्रतिनायक नहीं होता। नायक स्वयं अपने द्वंद्व के लिए उत्तरदायी होता है। एकांकी में विदूषक आदि नहीं होते क्योंकि इसकी कथावस्तु में इनके लिए स्थान नहीं होता। हास्य, व्यंग्य और विनोद का काम इसके चरित्रों के संवादों से ही चल जाता है। एकांकी के चरित्र सजीव और प्रभावशाली होते हैं। यहां घटनाओं के उत्थान–पतन की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती। प्राचीन नाटकों की तरह यहां नायक या पात्रों का कोई बना बनाया सांचा नहीं होता। नायक का पूरी तरह गुणों से संपन्न होना भी आवश्यक नहीं होता। एकांकी का नायक साधारण व्यक्ति होता है जो साधारण लोगों की तरह सुख–दुख के बीच जीवन बिताता है। अधिकतर एकांकियों में चरित्र की मानसिक स्थिति द्वंद्वात्मक होती है। नायक को अंतर्द्वंद्व और बाह्य द्वंद्व से संघर्ष करता हुआ दिखाया जाता है। ऐसे चरित्र स्वाभाविक और जीवंत होते हैं। वास्तव में एकांकी चरित्र के माध्यम से आज के द्वंद्वपूर्ण जीवन को व्यक्त करता है।

संवाद एकांकी के प्राण होते हैं। इन्हीं के सहारे एकांकी की कथावस्तु और चरित्र का निर्माण होता है। एकांकी के संवाद ही पाठकों व दर्शकों पर अपना प्रभाव डालते हैं। इसके संवाद स्वाभाविक, संक्षिप्त, रोचक और प्रभावोत्पादक होते हैं। एकांकी की भाषा पात्रों की मनोवृत्ति और कथा की प्रकृति के अनुसार होती है। एकांकी की भाषा सरल, सुबोध और प्रवाहपूर्ण होती है। इसके वाक्यों की रचना में कृत्रिमता व अलंकार का प्रयोग नहीं होता। एकांकीकार शब्दों के प्रयोग में प्रायः मितव्ययी होते हैं। एकांकी की रचना कथा, चरित्र व संवाद इन तीन तत्वों के आधार पर ही होती है। साहित्य की यह विधा आज काफी लोकप्रिय है।

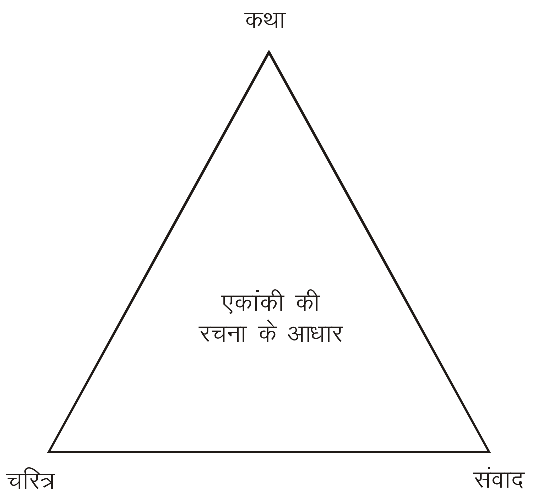

नाटक एवं एकांकी में अंतर

नाटक व एकांकी दोनों ही दृश्य–काव्य हैं। दोनों में ही अभिनय की प्रधानता है लेकिन इन दोनों में कुछ मूलभूत अंतर भी है, जिन्हें इस तालिका द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है–

	नाटक		एकांकी
1.	नाटक में पांच या उससे अधिक अंक होते हैं।	1.	एकांकी में एक ही अंक होता है।
2.	नाटक के तत्व हैं– वस्तु, नेता व रस।	2.	एकांकी के तत्व हैं– कथा, चरित्र व संवाद।
3.	नाटक में प्रायः आधिकारिक व प्रासंगिक दुहरी कथा होती है।	3.	एकांकी में प्रायः आधिकारिक कथा होती है।
4.	नाटक की कथा विस्तृत होती है।	4.	एकांकी की कथावस्तु लघु होती है।
5.	नाटक की कथा में शिथिलता होती है।	5.	एकांकी की कथा में तीव्रता होती है।
6.	समग्र मानव जीवन का चित्रण होता है।	6.	मानव जीवन के किसी एक पक्ष की उपस्थिति होती है।
7.	नाटक की कथा जिज्ञासा जगाने व उसके शमन का कार्य नहीं करती।	7.	एकांकी की कथा जिज्ञासा जगाती है तथा उसका शमन करती है।
8.	अभिनय में तीन–चार घंटे लगते हैं।	8.	अभिनय में एक घंटे से कम समय लगता है
9.	नाटक में रस की प्रधानता होती है।	9.	एकांकी में द्वंद्वपूर्ण जीवन की प्रधानता होती है।
10.	नाटक की लोकप्रियता एकांकी की अपेक्षा कम होती है।	10.	एकांकी की लोकप्रियता नाटक की अपेक्षा अधिक होती है।
11.	नाटक का अंत स्वाभाविक होता है।	11.	एकांकी का अंत आकस्मिक होता है।
12.	नाटक में विदूषक होता है।	12.	एकांकी में विदूषक का कोई स्थान नहीं होता।

नाटक एवं एकांकी शिक्षण के उद्देश्य

मातृभाषा शिक्षण में नाटक का बहुत महत्व है। नाटक के इस महत्व को देखते हुए नाटक शिक्षण के उद्देश्यों को निम्न रूप से स्पष्ट किया जा सकता है–

1. **भाषायी कौशलों का विकास**– नाटक मातृभाषा से संबंधित विभिन्न कौशलों को विकसित करने में सहायक होता है। नाटक से छात्रों की, पूर्ण मनोयोग से सुनने एवं सुनकर अर्थग्रहण करने की योग्यता का विकास होता है। नाटक के शिक्षण से छात्रों को शुद्ध उच्चारण, उचित गति एवं उचित स्वर एवं भाव के अनुसार उचित हाव–भाव प्रदर्शित करते हुए बोलने तथा अवसर के अनुकूल वार्तालाप करना सिखाया जाता है। भाव के अनुसार उचित गति के साथ नाटक का सस्वर पठन करने की योग्यता विकसित की जाती है।
2. **भाषायी ज्ञान में वृद्धि करना**– नाटक के माध्यम से छात्रों को शब्दभंडार, सूक्ति, मुहावरे एवं लोकोक्तियों का उचित प्रयोग करने की शिक्षा दी जा सकती है। इसके माध्यम से छात्रों को अवसरानुकूल शब्दावली के प्रयोग का

ज्ञान दिया जाता है। नाटक द्वारा छात्र यह सीख जाता है कि उसे किस विधि से, कैसे शब्दों में, किस शैली में एवं किस लहजे में अपने भावों को व्यक्त करना चाहिए जिससे कि उसकी बात प्रभावशाली हो सके। नाटक के माध्यम से विद्यार्थियों की निरीक्षण कल्पना, बोध एवं विवेचना शक्ति को विकसित किया जा सकता है।

टिप्पणी

3. **जीवन के विभिन्न पक्षों का ज्ञान**– नाटक के विभिन्न पात्रों का अलग–अलग जीवन दर्शन होता है। छात्र एक नाटक से ही अनेक प्रकार के जीवन दर्शन का ज्ञान प्राप्त कर लेता है। अतः नाटक शिक्षण के द्वारा मानव जीवन के विविध पक्षों से परिचित कराना भी प्रमुख उद्देश्य है।
4. **मानव स्वभाव का अध्ययन**– मानव प्रकृति को समझना बहुत मुश्किल है। मनुष्य का स्वभाव कभी बहुत सरल तथा कभी इतना विचित्र एवं जटिल होता है कि उसको समझना सरल काम नहीं होता। नाटकों के विभिन्न चरित्रों द्वारा मानव प्रकृति को समझा जा सकता है।
5. **आत्मप्रदर्शन**– सभी बच्चों में आत्मप्रदर्शन की प्रबल इच्छा होती है। छात्रों के मन में दबी आत्मप्रदर्शन की इच्छा की अभिव्यक्ति कराना नाटक शिक्षण का उद्देश्य है।
6. **विभिन्न परिस्थितियों का ज्ञान**– नाटक में विभिन्न प्रकार की परिस्थितियां रहती हैं साथ ही समस्याएं एवं उनका समाधान होता है। नाटक के द्वारा छात्र इन सभी परिस्थितियों का ज्ञान प्राप्त करता है। नाटक छात्रों को देश–काल एवं परिस्थिति के अनुरूप आचरण करने की शिक्षा देता है।
7. **स्वस्थ मनोरंजन**– नाटक शिक्षण के द्वारा छात्रों को स्वस्थ मनोरंजन प्रदान किया जा सकता है जिससे वे घटिया मनोविनोदों की ओर नहीं जाते। नाटक छात्रों के मनोभावों को संगठित करके उन्हें उच्चकोटि का मनोरंजन प्रदान करता है।
8. **वृत्तियों का विकास एवं परिमार्जन**– नाटक छात्रों की वृत्तियों का परिमार्जन कर, उच्च सामाजिक आचरण करने की अभिवृत्ति विकसित करता है। इसकी शिक्षा छात्रों के मनोभावों का परिष्कार करती है। यह छात्रों की साहित्यिक, कलात्मक तथा सृजनात्मक वृत्तियों का विकास करता है। नाटक शिक्षण का एक उद्देश्य यह भी है कि छात्रों को ऐसा उपदेश प्रदान किया जाए जो उनके लिए हितकर व सही हो।
9. **अनुकरण के अवसर प्रदान करना**– अनुकरण मानव की सहज इच्छा है और नाटक द्वारा इसकी पूर्ति हो जाती है। छात्रों के समक्ष अनुकरण के लिए उपयुक्त अवसर प्रदान करना नाटक व एकांकी का महत्वपूर्ण उद्देश्य है। इससे छात्रों की अनुकरण की प्रवृत्ति का उदात्तीकरण संभव है। छात्र कुछ पात्रों के संवाद आदि का अनुकरण कर उनका उपयोग भी करने लगते हैं।

टिप्पणी

10. **संवाद शिक्षा**– समाज में विविध आयु–वर्ग के लोगों के साथ किस प्रकार व्यवहार करना है, उनसे किस ढंग से बात करनी है, इसकी शिक्षा बालक को नाटक व एकांकी के माध्यम से मिल जाती है अर्थात छात्रों को शुद्ध व प्रभावशाली वार्तालाप की शिक्षा देना एकांकी व नाटक का उद्देश्य है। इससे छात्र अवसर के अनुकूल वार्तालाप की कला सीख जाते हैं एवं उनकी अभिनय कला में निखार आ जाता है।

- **हिंदी के विविध रूपों (राष्ट्रभाषा, राजभाषा, संपर्क भाषा, विश्व भाषा) का ज्ञान**

राष्ट्रभाषा

राजभाषा की तुलना में राष्ट्रभाषा अधिक व्यापक है। जब कोई बोली आदर्श भाषा का रूप धारण कर लेती है और व्यापक स्तर पर राष्ट्र में सम्मान पाती हुई राष्ट्र जीवन का अंग बन जाती है, तब उसे राष्ट्रभाषा कहा जाता है। इस प्रकार राष्ट्रभाषा एक समूचे राष्ट्र या देश की भाषा होती है। उसके अंतर्गत अनेक भाषाएं होती हैं। आज भारत में अनेक भाषाएं हैं और राष्ट्रभाषा केवल हिंदी है। राष्ट्रभाषा में देश की संस्कृति और आदर्शों की धारणा को विकसित करने की क्षमता होनी चाहिए। राष्ट्रभाषा की प्रकृति और साहित्य में यह सामर्थ्य होती है कि देश की अन्य भाषाओं को बिना बाधा के अपने साथ ले सकें। अंग्रेजी और हिंदी की ये विशेषताएं थीं तभी वे अपने सीमित क्षेत्रों से आगे बढ़ सकीं। भाषाएं प्रतिस्पर्धा में राष्ट्रभाषा के मार्ग में उलझनें भी उत्पन्न करती हैं पर गुण होने पर उनका बाल भी बांका नहीं होता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि राष्ट्रभाषा राष्ट्र की समृद्ध और अधिकाधिक जनोपयोगी भाषा होती है।

राजभाषा

कुछ लोग राजभाषा और राष्ट्रभाषा को एक ही समझते हैं। वस्तुतः ऐसा नहीं है। राजभाषा शासन की भाषा को कहते हैं। हां, राष्ट्रभाषा समग्र राष्ट्र की भाषा होती है। सामान्यतः राष्ट्र की भाषा को ही राजभाषा बनने का गौरव प्राप्त होना चाहिए। ध्यान से देखें तो राजभाषा और राष्ट्रभाषा में सीमितता व विस्तार का अंतर है। विजेता लोग विजित देश पर अपनी भाषा थोप देते हैं और उसे राजभाषा बना देते हैं। मुगलकाल तथा अंग्रेजों के शासनकाल में उर्दू व अंग्रेजी राजभाषाएं रही हैं। जब तक राजभाषा और राष्ट्रभाषा का अंतर स्पष्ट नहीं होता है तब तक अव्यवस्था रहती है। डॉ. मनमोहन गौतम ने ठीक ही लिखा है– "वास्तव में देश की राष्ट्रभाषा को ही राजभाषा बनने का अधिकार है। उसके अधिकार को छीनना और शासन के बल से किसी अन्य भाषा को राजभाषा घोषित करना और चलाना अनुचित है।"

संपर्क भाषा

संपर्क भाषा का उपयोग विभिन्न लोगों, विभिन्न संस्थाओं, विभिन्न राज्यों, विभिन्न राष्ट्रों आदि के बीच संपर्क स्थापित करने के लिए किया जाता है, इसलिए यह वैविध्यपूर्ण एवं परिवर्तनशील होती है। वैविध्यपूर्ण इसलिए कि संपर्क करने वाले सभी

व्यक्ति या तत्व अलग–अलग भाषा एवं बोली बोलने वाले, अलग–अलग क्षेत्रों के लोग भी हो सकते हैं। ऐसी स्थिति में संपर्क करने वाला अपने सामने वाले व्यक्ति की बोली और भाषा की थोड़ी जानकारी या पूरी जानकारी रखता है, ताकि सामने वाले से संपर्क करने के लिए, उसे अपनी बात समझाने के लिए वह अपनी भाषा में उसकी भाषा और बोली के शब्दों को भी सम्मिलित कर सके। जैसे शुद्ध हिंदी बोलने वाला अगर बुंदेलखंड के किसी ऐसे व्यक्ति से संपर्क करना चाहता है जो बुंदेली बोलता है और शुद्ध हिंदी कम जानता है तो संपर्क करने वाला व्यक्ति हिंदी में कुछ शब्द बुंदेली के मिलाकर बोलेगा ताकि वह उसकी बात समझ जाए। इस तरह संपर्क भाषा क्षेत्र और परिस्थिति के अनुसार परिवर्तित होती रहती है। इसलिए कहीं तो यह परिष्कृत रहती है और कहीं अपरिष्कृत प्रतीत होती है। जिस क्षेत्र में इसका उपयोग किया जा रहा हो यह उसी क्षेत्र के शब्दों और भाषा को आत्मसात कर लेती है। इसका मुख्य उद्देश्य काम चलाना होता है। अर्थात जिससे, जिस कार्य से संपर्क किया जा रहा है वह व्यक्ति बात को समझ ले और कार्य सिद्ध हो जाए।

टिप्पणी

संपर्क करने के लिए बोलना यानी वाणी द्वारा संपर्क स्थापित करना तो एक प्राचीन तरीका है ही, इसके अतिरिक्त और भी कई विधियों से संपर्क किया जाता है, जैसे –

1. **सांकेतिक भाषा या इशारों द्वारा** : कोई विदेशी या विभाषी जो हमारी भाषा नहीं समझता या बहरा व्यक्ति जो सुन नहीं सकता, उसे हम संकेत द्वारा समझाकर संपर्क स्थापित करते हैं।
2. **स्पर्श द्वारा** : अंधे और बहरे व्यक्ति को स्पर्श द्वारा अपना प्रयोजन समझाकर संपर्क स्थापित कर सकते हैं।
3. **पत्रों द्वारा** : दूरस्थ व्यक्ति या संस्था को पत्र लिखकर पत्रों द्वारा संपर्क बना सकते हैं।
4. **टेलीफोन** : टेलीफोन या दूरभाष जैसे नवीन आधुनिक साधन द्वारा हम देश–विदेश में बैठे दूरस्थ व्यक्तियों, संस्थाओं से संपर्क स्थापित कर सकते हैं।
5. **कम्प्यूटर और इंटरनेट** : इन सुविधाओं से मेल भेजकर हम दूरस्थ व्यक्तियों और संस्थाओं से संपर्क बना सकते हैं।
6. **चित्रों द्वारा** : चित्र बनाकर हम अपनी बात समझा सकते हैं। यदि संपर्क करने वाला मूक–बधिर हो और वह बोलने, लिखने में असमर्थ हो तो अपना मंतव्य प्रकट करने के लिए चित्रों का सहारा ले सकता है। संपर्क भाषा जोड़ने का कार्य करती है। व्यक्तियों एवं संस्थाओं को जोड़ने का उद्देश्य पूरा करने के लिए वह उपरोक्त साधनों में से किसी न किसी साधन का सहारा लेकर संपर्क स्थापित कर लेती है, इसलिए इसमें देशी–विदेशी, तद्भव–तत्सम–संकर शब्दों की उपस्थिति पाई जाती है। कहीं यह पूर्णतः व्याकरणिक होती है तो कहीं अन्यथा। इसे स्वयं के रूपाकार से मतलब नहीं है, इसका मूल उद्देश्य सामने स्थित तत्व से मेल स्थापित करना है।

टिप्पणी

अंतर्राष्ट्रीय भाषा

जो भाषा विभिन्न राष्ट्रों के बीच विचार–विनिमय तथा पत्र–व्यवहार आदि के लिए व्यवहार में लाई जाती है, उसे अंतर्राष्ट्रीय भाषा कहते हैं। उदाहरणार्थ – अंग्रेजी भाषा अनेक राष्ट्रों में रहने वाले लोगों में व्यापक रूप से बोली और समझी जाती है। संयुक्त राष्ट्र संघ में भी इसे व्यापक रूप से बोली जाने वाली भाषा का गौरव प्राप्त है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इसी भाषा का व्यवहार उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। धीरे–धीरे यह भाषा अंतर्राष्ट्रीय भाषा का रूप धारण करती जा रही है। संख्या की दृष्टि से पूरे विश्व में बोली जाने वाली भाषाओं में चीनी, स्पैनिश और हिंदी का स्थान सबसे ऊपर है। लेकिन आपसी विचार–विनिमय के लिए अंग्रेजी का वर्चस्व सर्वमान्य है, अतः इसे अंतर्राष्ट्रीय भाषा कहा जा सकता है।

(घ) जीवनी : परिचय एवं शिक्षण उद्देश्य

किसी विशिष्ट व्यक्ति के जीवन वृत्तांत को जीवनी कहा जाता है। विशिष्ट व्यक्ति सभी नहीं होते हैं। समाज और देश के कुछ चुने हुए लोगों को ही विशिष्ट कहते हैं। उनकी यह विशिष्टता उनके विशेष कार्यों पर निर्भर करती है। ये लोग समाज सुधारक, धार्मिक, राजनीतिक, क्रांतिकारी, राजनेता आदि होते हैं। इन्हीं विशिष्ट व्यक्तियों की ही जीवनी लिखी जाती है।

जीवनी गद्य साहित्य की एक नई विधा के रूप में सामने आ रही है। जीवनी में जीवन की स्थूल घटनाओं और जीवन–चरित में नायक के आंतरिक गुणों का समावेश मिलता है। जीवनी में किसी चरित नायक के आंतरिक और बाह्य दोनों प्रकार की जीवनगत घटनाओं का लेखा–जोखा प्रस्तुत किया जाता है। जीवनी न तो इतिहास होती है और न ही काल्पनिक कथा। यह किसी भी पुरुष के आदर्श कार्यों को प्रस्तुत करती है। यह उपन्यास भी नहीं है। जीवनी लिखने का मुख्य उद्देश्य विशिष्ट मनुष्य को व्यक्ति के रूप में देखना और परखना होता है क्योंकि हर व्यक्ति में कुछ न कुछ अपनी विशेषता होती है। इसी विशेषता को प्रकट करना मुख्य लक्ष्य होता है। जीवनी में विषय–वस्तु का विभिन्न क्षेत्रों में विस्तार नहीं होता। यह केवल उस व्यक्ति के जीवन से जुड़े क्षेत्रों तक ही सीमित होती है। इसमें लेखक अपनी टिप्पणी देने की अपेक्षा तथ्यों को ही प्रस्तुत करता है।

जीवनी के आकार में भिन्नता होती है। जीवनी में चरित नायक के आदर्श कार्यों और उसकी महत्ता का ही प्रकाशन नहीं होता, बल्कि उसे सामान्य व्यक्ति के रूप में भी प्रस्तुत किया जाता है, ताकि वह आम मनुष्य की तरह स्वाभाविक व सहज प्रतीत हो। जीवनी में मनुष्य की सामान्य और विशिष्ट दोनों प्रकार की विशेषताएं दिखाई जाती हैं। वह न तो देवता होता है और न ही दानव, वह इन दोनों के बीच का प्राणी होता है जो मनुष्य कहलाता है। जीवनीकार चरित्र नायक को उसी रूप में प्रस्तुत करता है जिस क्रम में उसके जीवन का उत्तरोत्तर विकास हुआ है। जीवनी लिखने से पहले जीवनीकार को कुछ आवश्यक तैयारी करनी होती है। जीवनीकार उस साहित्य का अध्ययन करता है जो उसके चरित नायक पर उसकी जीवनी लिखने से पहले लिखा गया है। इसके अलावा उसे अपने चरित नायक की डायरी व पत्रों की समीक्षा भी करनी

होती है क्योंकि इनमें जीवनी से संबद्ध कोई अमूल्य सामग्री प्राप्त हो सकती है। लेखक उन सभी लोगों से संपर्क स्थापित करता है जिसका संबंध चरित नायक से होता है।

टिप्पणी

पश्चिमी देशों में जीवनी लिखने की पुरानी परंपरा पाई जाती है किंतु भारत में इसकी कोई परंपरा नहीं मिलती है। पुराणों, महाकाव्यों आदि में महापुरुषों की चर्चा अवश्य हुई है पर वह सही अर्थ में जीवनी नहीं है। आज जीवनी साहित्य की महत्वपूर्ण विधा बन गई है जो कि पाठकों में लोकप्रिय होती जा रही है। जीवनी लेखक में वैज्ञानिक दृष्टि और प्रामाणिक तथ्यों की जानकारी होनी चाहिए। भावनाओं में बहकर जीवनी नहीं लिखी जाती है। लेखक की दृष्टि जितनी तथ्यपरक होगी, जीवनी उतनी ही वैज्ञानिक और प्रामाणिक समझी जाएगी।

जीवनी की पाठ्य वस्तु विभिन्न भागों में बंटी होती है। जिसकी जीवनी लिखी जा रही है, सर्वप्रथम उसके माता–पिता, परिवार, वंश, जन्म तिथि व जन्म स्थान के बारे में बताया जाता है। उसके बचपन, उसकी शिक्षा, उसके लालन–पालन का वर्णन किया जाता है। पारिवारिक जीवन को भी प्रदर्शित किया जाता है। जीवनी में व्यक्ति के कार्यक्षेत्र का वर्णन किया जाता है। नौकरी, पद, पदत्याग, विचारधारा, धार्मिक भावना, जीवन दर्शन आदि का उल्लेख किया जाता है।

जीवनी से संबद्ध व्यक्ति की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक आदि परिस्थितियों का चित्रण किया जाता है। व्यक्तियों द्वारा कुप्रथाओं के उन्मूलन जैसे सामाजिक सुधार के कार्यों हेतु किए गए प्रयासों का वर्णन किया जाता है। जीवनी अगर किसी राजनेता की हो तो उसके जीवन से संबंधित आंदोलन, सत्याग्रह, कानूनों के निर्माण में योगदान, पार्टियों का गठन, विधान मंडल की सदस्यता, सुशोभित किए गए विभिन्न पदों की स्थिति, सामाजिक जीवन की स्वच्छता, पराजय, पुनरुत्थान आदि विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डाला जाता है।

जीवनी में व्यक्ति की ईमानदारी, सच्चाई, न्यायप्रियता, सत्य की खोज, देश सेवा, स्वतंत्रता आंदोलन आदि मानवीय मूल्यों के माध्यम से उसकी छवि को प्रस्तुत किया जाता है। इसमें व्यक्ति द्वारा स्थापित संस्थाओं, संगठनों आदि का वर्णन किया जाता है। किसी वर्ग विशेष के उत्थान के लिए किए गए प्रयासों को दर्शाया जाता है। उसके बारे में प्रचलित नारों व सूक्तियों का वर्णन किया जाता है। इसमें जीवन की अप्रत्याशित व अविस्मरणीय घटनाओं को स्थान दिया जाता है।

जीवनी में व्यक्ति के अंतिम दिनों का भी परिचय होता है। उसके निर्वाण व देहांत का उल्लेख होता है। उसकी मृत्यु के कारण व स्थिति को भी स्पष्ट किया जाता है। उसकी शोभायात्रा, उसकी मृत्यु से जनमानस को पहुंचे आघात, अपार शोक व अपूरणीय क्षति का भी उल्लेख किया जाता है।

जीवनी पाठ छात्रों के पठन कौशल तथा अभिव्यक्ति की कुशलता को बढ़ाने में सहायक होते हैं। इन पाठों के माध्यम से छात्रों को, शब्द भंडार, सूक्ति भंडार, मुहावरों व लोकोक्तियों का ज्ञान सरलता से दिया जा सकता है। जीवनी के पाठ मानव मूल्यों को समझने व जीवन में उन्हें ग्रहण करने की ओर प्रवृत्त करते हैं। इन पाठों से छात्रों को व्यावहारिक ज्ञान होता है तथा अध्ययन के प्रति रुचि उत्पन्न होती है। जीवनी के पाठों को गहन अध्ययन व द्रुत पठन दोनों ही दृष्टि से पढ़ाया जा सकता है।

टिप्पणी

2.3.2 कौशलात्मक : (हिंदी को मानक ढंग से बोलना, विभिन्न विधाओं के पठन में उपयुक्त तरीके का प्रयोग, विराम चिह्नों का प्रयोग, श्रुत लेखन : शिरोरेखा)

• **(नोट** : मानक हिंदी से संबंधित तथ्यों का विवरण इकाई–1 के 1.3.1 में द्रष्टव्य है।)

• विराम चिह्नों का प्रयोग

रुकने की प्रक्रिया को व्यक्त करने के लिए लिखने में कुछ संकेत चिह्न निर्धारित किए गए हैं। ये विराम चिह्न, पदों, पदबंधों, वाक्यांशों अथवा वाक्यों को या तो अलग करते हैं या उनका परस्पर संबंध जोड़ते हैं। लिखित भाषा में विराम चिह्नों के यथास्थान प्रयोग से भाषा अधिक स्पष्ट और प्रभावपूर्ण बन जाती है। विराम चिह्न का प्रयोग किसी वाक्य के पूरे होने पर उस वाक्य के अंत में आता है। जिसे हम विराम चिह्न के नाम से जानते हैं। विराम चिह्न के प्रयोग से हमें यह जानने को मिलता है कि वाक्य का मतलब क्या है अर्थात विराम चिह्न से ही हमें पता चलता है कि क्या यह प्रश्न है अथवा उत्तर। कई बार एक जैसे वाक्य होने के कारण यह समझना मुश्किल हो जाता है कि हमसे कुछ पूछा जा रहा है अथवा बताया जा रहा है। जैसे– 'तुम वहां रहते हो।' इस वाक्य के अंत में अगर (प्रश्नवाचक चिह्न (?)) लगाएं तो यह प्रश्न माना जाएगा और अगर हम इस वाक्य के अंत में (पूर्ण विराम (।)) का चिह्न लगाते हैं तो यह एक सामान्य वाक्य अथवा उत्तर के रूप में माना जाएगा। इसका प्रयोग किस परिस्थिति में होता है इस पर अर्थ निर्भर करता है। इस प्रकार विराम चिह्न हमें यह समझने में सहयोग करते हैं कि यह वाक्य किस रूप में या किस परिस्थिति के अनुरूप है।

निम्नलिखित विराम चिह्न हिंदी भाषा में प्रचलित हैं–

1. **पूर्ण विराम (।)**

प्रश्नवाचक तथा विस्मयादिबोधक वाक्यों को छोड़कर अन्य सभी प्रकार के वाक्यों की समाप्ति पर पूर्ण विराम का प्रयोग किया जाता है। जैसे– मेरे विद्यालय में एक हजार छात्र पढ़ते हैं।

- अप्रत्यक्ष प्रश्नों के अंत में पूर्ण विराम का प्रयोग होता है। जैसे– किसी को नहीं मालूम कि वह कहाँ चला गया।
- दोहा, सोरठा, चौपाई आदि शब्दों के मध्य भाग में एक पूर्ण विराम तथा छंद की समाप्ति पर दो पूर्ण विराम लगते हैं। जैसे–

  परहित सरिस धर्म नहिं भाई।
  पर–पीड़ा सम नहिं अधमाई।।
- अब कहीं–कहीं पूर्ण विराम के लिए अंग्रेजी चिह्न (.) का प्रयोग भी होने लगा है, जिसे उचित नहीं कहा जा सकता।

2. अर्ध विराम (;)

- जहां पूर्ण विराम से कुछ कम तथा अल्पविराम से कुछ अधिक रुकने की आवश्यकता हो, वहां अर्ध विराम का प्रयोग होता है।
- समानाधिकरण उपवाक्यों के बीच में; जैसे– गाँधी जी ने स्वतंत्रता आंदोलन चलाया; सत्य और अहिंसा के शस्त्र दिए; देश को स्वतंत्र कराया।
- मिश्र वाक्यों तथा संयुक्त वाक्यों में विरोध या वैपरीत्य का भाव प्रकट करने के लिए, जैसे– वह कष्ट सहता रहा; लोग आनंद लेते रहे।
- कारण वाचक क्रिया विशेषण उपवाक्य के बीच में। जब कारण वाचक क्रिया विशेषण उपवाक्य का मुख्य उपवाक्य से निकट संबंध नहीं दिखाई देता तो वहां अर्ध विराम का प्रयोग होता है; जैसे–

  वायु–दबाव से साबुन का एक बुलबुला भी नहीं डूबता; क्योंकि हवा का बाहरी दबाव बुलबुले के भीतरी दबाव से कट जाता है।
- विभिन्न उपवाक्यों पर अधिक जोर देने के लिए, जैसे– निरंतर बढ़ते रहना ही जीवन है; आलस्य मौत है।

3. अल्प विराम (,)

हिंदी में प्रयुक्त विराम चिह्नों में अल्प विराम का प्रयोग सबसे अधिक होता है। अल्प विराम के प्रयोग की स्थितियां हैं–

- वाक्य में दो से अधिक समान–पदों को अलग–अलग करने के लिए; जैसे– राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न राजभवन में पधारे।
- जब दो से अधिक वाक्यांशों में समुच्चय बोधक अव्यय 'और' की आवश्यकता हो तब और के स्थान पर अल्प विराम का प्रयोग होता है। जैसे– वह रोज़ आता है। काम करता है, चला जाता है।
- बस, हाँ, नहीं, सचमुच, अतः, वस्तुतः, अच्छा जैसे शब्दों से आरंभ होने वाले वाक्यों में इन शब्दों के बाद अल्पविराम का प्रयोग किया जाता है; जैसे–

  बस, हो गया, रहने दीजिए। हां, तुम ऐसा कह सकते हो।
- किसी को संबोधित करते हुए; जैसे– किरण, तुम जाओ।
- 'लेकिन', 'किंतु', 'परंतु', 'बल्कि', 'वरन्' आदि से जो वाक्य आरंभ होते हैं उनमें अव्यय से पहले अल्प विराम आता है, जैसे– 'किशोर परीक्षा में सफल न हो सका, क्योंकि उसने मेहनत नहीं की।'
- किसी का कथन उद्धृत करने पर उद्धरण चिह्न से पहले अल्पविराम लगाया जाता है, जैसे– किरण ने कहा, "पृथ्वी अपनी धुरी पर चक्कर लगाती है।"

- पत्रों के संबोधन के बाद अल्पविराम लगाया जाता है, जैसे– प्रिय मित्र, पूज्य भइया, प्रिय महोदय, आदि।

4. उपविराम/अपूर्ण विराम (:)

इस चिह्न का प्रयोग निर्देश चिह्न की भांति होता है। प्रायः शीर्षकों में इसका प्रयोग होता है। जैसे– बाल साहित्य : एक विहंगम दृष्टि। संत कबीर : एक अध्ययन।

5. प्रश्नवाचक चिह्न (?)

प्रश्न सूचक वाक्यों के अंत में जिस चिह्न का प्रयोग किया जाता है, वह प्रश्नवाचक चिह्न कहलाता है। प्रश्न सूचक चिह्न प्रायः निम्नलिखित स्थानों पर आता है–

- प्रश्नवाचक वाक्यों के अंत में, जहां प्रश्न करने व पूछे जाने का बोध हो; जैसे– क्या आप दिल्ली से आ रहे हैं?
- प्रश्नवाचक शब्द सब जगह प्रश्न पूछने के लिए नहीं होते। जहां उत्तर की अपेक्षा न हो वहां प्रश्नवाचक चिह्न का प्रयोग नहीं होता; क्या कर रहे हो, बैठ जाओ!
- जहां स्थिति निश्चित न हो; जैसे– आप शायद आगरा के रहने वाले हैं?
- व्यंग्योक्ति में, जैसे– भ्रष्टाचार इस युग का सबसे बड़ा शिष्टाचार है, है न?
- जब एक वाक्य में कई प्रश्नवाचक उपवाक्य हों तो बीच के उपवाक्यों में अल्पविराम तथा अंत में प्रश्नसूचक चिह्न लगाते हैं, जैसे– मैं क्या करता हूं, मैं कहां जाता हूं, मैं क्या खाता हूं, तुम यह जानने के लिए उत्सुक क्यों हो?

6. विस्मयादि बोधक चिह्न (!)

विस्मय, घृणा, प्रसन्नता आदि मनोभावों का बोध कराने वाले पदों, पदबंधों अथवा वाक्यों के अंत में विस्मयादिबोधक चिह्न का प्रयोग किया जाता है; जैसे– अहा! कितना सुंदर मौसम है, छिः! कितने गंदे रहते हो।

प्रश्नवाचक वाक्यों के अंत में मनोवेग प्रदर्शित करने के लिए विस्मयादिबोधक चिह्न का प्रयोग किया जाता है, जैसे– सुनते क्यों नहीं, क्या बहरे हो! देखकर क्यों नहीं चलते, क्या अंधे हो!

अपने से बड़ों को सादर संबोधित करने में विस्मयादिबोधक चिह्न का प्रयोग किया जाता है। दूसरे शब्दों में यह चिह्न संबोधन के चिह्न के रूप में भी प्रयुक्त होता है; जैसे– हे राम! तुम मेरा दुःख दूर करो।

7. योजक चिह्न (–)

हिंदी में अल्पविराम के बाद योजक चिह्न (–) का सर्वाधिक प्रयोग होता है।

योजक चिह्न प्राय दो शब्दों को जोड़ने का काम करता है और दोनों को मिलाकर समस्त पद बनाता है। लेकिन दोनों शब्दों का स्वतंत्र अस्तित्व बना रहता है। जैसे– माता–पिता, ऊपर–नीचे, लड़का–लड़की, रात–दिन, चाचा–चाची।

टिप्पणी

- यह चिह्न द्वंद्व समास को भी प्रदर्शित करता है।
- यह चिह्न विलोम शब्द को भी दर्शाता है।
- जब दो क्रियाएं एक साथ प्रयुक्त हों, जैसे– पढ़ना–लिखना, खाना–पीना।
- जब दो विशेषण पदों का संज्ञा के अर्थ में प्रयोग हो, जैसे– लंगड़ा–लूला।
- संख्याओं और उनके अंगों के बीच में योजन चिह्न तब लगता है जब उन संख्याओं को शब्दों में लिखा जाये; जैसे– एक–तिहाई, तीन–चौथाई।

8. हंस पद (‸)

जब किसी वाक्यांश या वाक्य में कोई शब्द या अक्षर लिखने से छूट जाता है तो छूटे हुए शब्द के स्थान के नीचे हंस पदचिह्न का प्रयोग कर छूटे हुए शब्द को ऊपर या नीचे लिख दिया जाता है। जैसे–

से को
पापा ने मम्मी‸कहा कि वह कल से टीनू‸स्कूल छोड़ने जाएंगी।

की कर
श्री राम ने पिता‸आज्ञा मानकर वन जाना सहर्ष स्वीकार‸लिया।

और इसका प्रयोग सिर्फ लिखित भाषा में किया जाता है। इसका प्रयोग मौखिक अभिव्यक्ति में नहीं किया जा सकता।

9. निर्देशिका चिह्न (—)

- इस चिह्न को रेखिका भी कहते हैं। निर्देशक चिह्न का प्रयोग आने वाले विवरण को संकेतिक करने के लिए होता है।
- इसका आकार योजक चिह्न (जैसे माता–पिता) से बड़ा होता है।

इसका प्रयोग निम्नलिखित परिस्थितियों में होता है–

(क) किसी भी पद या वाक्यांश की व्याख्या करने के लिए, जैसे–

वे सच्चे अर्थ में धरती की पुत्री थीं– साध्वी, सरल, क्षमामयी, सबके प्रति ममतालु और असंख्य संबंधों की सूत्रधारिणी।

(ख) किसी अवतरण या अंश को लिखकर उसके लेखक या कवि का नाम लिखना हो तो उस नाम से पूर्व; जैसे–

मैं तो सांवरे के रंग रची– मीराबाई।

मैया, मैं तो चंद–खिलौने लैहों– सूरदास।

(ग) किसी के कथ्य को उद्धृत करने से पूर्व, जैसे–

अध्यापक– भारत के प्रधानमंत्री कौन हैं?

(घ) कहना, लिखना, बोलना, बताना क्रियाओं के बाद, जैसे–

सीता ने कहा – मैं कल जाऊंगी।

टिप्पणी

10. उद्धरण चिह्न (" ")

यह चिह्न दो प्रकार का होता है, इकहरे उद्धरण चिह्न (' ') तथा दोहरे उद्धरण चिह्न (" ")।

इनका प्रयोग निम्नलिखित स्थितियों में होता है–

- किसी व्यक्ति के कथन को मूल रूप से उद्धधृत करने के लिए; जैसे–
  (क) सुभाषचंद्र बोस ने कहा था, "तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूंगा।"
  (ख) उपनिषदों में आचार्यों ने कहा, "सेवा देने की चीज है, लेने की नहीं।"
- किसी के उपनाम, रचना और पुस्तक के शीर्षक आदि को उद्धृत करते समय, जैसे–
  (क) 'प्रियप्रवास' उनका लोकप्रिय महाकाव्य है।
- आजकल उपर्युक्त स्थिति में इकहरे उद्धृत चिह्न (' ') का प्रयोग भी होने लगा है; जैसे–
  (क) जतिन 'आनंद मठ' से बहुत प्रभावित थे।
  (ख) हजारी प्रसाद द्विवेदी का जन्म 'उत्तर–प्रदेश' में सन् 1907 में हुआ।
  (ग) 'पद्मावत' एक महाकाव्य है।

11. विवरण चिह्न (:–)

इन चिह्न का प्रयोग भी निर्देशक–चिह्न की भांति आगे दिए जाने वाले विवरण के लिए होता है। इसका स्पष्ट व एकमात्र प्रयोग वहां होता है जब वाक्य में विवरण शब्द का प्रयोग हो, जैसे–

चाय बनाने की प्रक्रिया कुछ इस प्रकार है:–

रमेश के जीवन की उपलब्धियां इस प्रकार है:–

12. कोष्ठक चिह्न (( ) [ ] { })

कोष्ठक चिह्न प्रायः वाक्य के मध्य में आता है। कोष्ठक में ऐसी जानकारियां रखी जाती हैं जो मुख्य वाक्य के बारे में अधिक जानकारियां उपलब्ध कराती हैं। जैसे–

1. नाटकीय स्थितियों के भाव–मुद्राओं का परिचय देते हुए, जैसे– राजा (क्रोधपूर्वक) बुलाओ, उस द्वारपाल को।

   सेनापति (भयभीत होकर) अभी बुलाता हूँ, महाराज।

   अध्यापिका (क्रोधपूर्वक) तुम इतने दिन से स्कूल क्यों नहीं आए?

   विद्यार्थी (भयभीत होकर) गाँव गया था।
2. वाक्य में आए किसी कठिन शब्द को स्पष्ट करने के लिए, जैसे– हवन सामग्री (सामान) लेकर आओ।
3. क्रमसूचक अंकों व अक्षरों के लिए, जैसे– (1) (2) (3) (4) (5)
4. किसी व्यक्ति के बारे में बताने के लिए, जैसे– पं. नेहरू (पहले प्रधानमंत्री) ने भारत के लिए बहुत काम किए हैं।

टिप्पणी

13. तुल्यतासूचक चिह्न (=)

इन चिह्नों का प्रयोग समानता व अर्थ प्रकट करने के लिए किया जाता है। दो समान अर्थ देने वाले शब्द में समानता दर्शाने के लिए इस चिह्न का प्रयोग किया जाता है। जैसे–

विद्या + आलय = विद्यालय; पंकज = कमल।

कई बार वाक्य में ऐसे शब्द होते हैं, जिनके अर्थ एक जैसे ही होते हैं, उनके लिए इन चिह्नों का प्रयोग होता है। इसके द्वारा विद्यार्थियों को एक ही शब्द के लिए प्रयुक्त होने वाले अलग–अलग शब्दों की जानकारी प्राप्त होती है।

14. लाघव चिह्न (०)

किसी बड़े शब्द को संक्षेप में लिखने के लिए उस शब्द का प्रथम अक्षर लिखकर उसके आगे इस चिह्न (लाघव चिह्न) का प्रयोग किया जाता है। प्रसिद्धि के कारण लाघव चिह्न होते हुए भी वह पूरा पढ़ लिया जाता है। इसका प्रयोग इसलिए होता है ताकि किसी शब्द को पूरा न लिख कर उस शब्द को छोटा करके लिख दिया जाता है। उदाहरण के लिए–

डॉक्टर = डॉ

पंडित = पं

चिरंजीव = चिं

15. लोपनिर्देशक चिह्न (××× , –)

जब लेखक उद्धरण देते समय कुछ अंश को छोड़कर लिखना चाहता है तो छोड़े गए अंश के स्थान पर लोप निर्देशक चिह्न का प्रयोग करता है; जैसे–

मेरी आहों में जागो,
सुस्मित में सोने वालो!
× × ×
आँखों से रोने वालो

लोपनिर्देशक चिह्न का प्रयोग अंश के अंत में भी किया जाता है।

16. पुनरुक्तिबोधक चिह्न (")

जब उपर्युक्त बात को पुनः लिखना होता है तो नीचे ठीक उन्हीं शब्दों के नीचे पुनरुक्तिबोधक चिह्न का प्रयोग करते हैं; जैसे

पंकज = कमल

सरोज = "

नीरज = "

17. समाप्तिसूचक चिह्न (–: 0 :–, – × –, – 0 –)

किसी निबंध, लेख, अध्याय या ग्रंथ की समाप्ति पर इस चिह्न का प्रयोग किया जाता है। जैसे– –: 0 :–, – × –, – 0 –

टिप्पणी

• श्रुत लेखन

प्राथमिक विद्यालयों में बच्चों को शुद्ध भाषा सिखाने के लिए बहुधा श्रुतलेख लिखवाया जाता है। श्रुतलेख लेखन का अभ्यास सभी विद्यालयों में होता है। ... इन त्रुटियों को सुधारने के लिए शिक्षक श्रुतलेख लिखवाने के बाद त्रुटियों को सुधारने के लिए उसी शब्द को पांच या सात बार लिखवाने का अभ्यास करवाते हैं।

श्रुतलेखन का अर्थ है 'सुने हुए को लिखना' या 'सुनकर लिखना'। 'श्रुत' का अर्थ होता है,'सुना हुआ'। इस विधि में एक व्यक्ति बोलता है तथा दूसरा सुन कर उसे लिखता है। विद्यालयों में श्रुतलेखन का उपयोग वर्तनी सुधारने हेतु किया जाता है। आजकल बहुत सी इलेक्ट्रॉनिक युक्तियों में सुनकर लिखने की क्षमता है।

श्रुति लेखन प्रक्रिया

भाषा शिक्षण में जब एक शिक्षक सभी बालकों को शुद्ध शब्द लेखन सिखाने का प्रयास करता है तो इसके लिए वह पाठ के किसी अंश या 20 कठिन शब्दों का चुनाव करता है। वह स्वयं उन शब्दों को शुद्ध रूप से उच्चारित करता है एवं बालक सुनने के आधार पर शुद्ध रूप से लिखने का प्रयास करते हैं उसके बाद शिक्षक स्वयं प्रत्येक बालक की उत्तर पुस्तिका की जांच करता है और गलत पाए गए शब्दों पर गोला बनाते हुए वह स्वयं शुद्ध रूप से लिखता है और फिर बालक को 10–10 बार शुद्ध लिखने के लिए प्रेरित करता है। ऐसा करने से बालक में शुद्ध शब्द लेखन का विकास होता है

महत्व

1. यह मनोवैज्ञानिक विधि है।
2. बालकों में भाषा शुद्धता का विकास होता है।
3. बालक में श्रवण कौशल व लेखन कौशल में वृद्धि होती है।

सीमाएं

1. समय अधिक खर्च होता है।
2. योग्य शिक्षकों का अभाव पाया जाता है।

सुझाव

श्रुतलेख लेखन का अभ्यास सभी विद्यालयों में होता है। इस अभ्यास के अंतर्गत शिक्षक का यह ज़ोर रहता है। कि बच्चे अपनी भाषा में शुद्धता लाएं। इसके लिए वे अपनी मात्रा व वर्तनी संबंधी त्रुटियों पर ध्यान दें तथा सुधार करें।

इन त्रुटियों को सुधारने के लिए शिक्षक श्रुतलेख लिखवाने के बाद त्रुटियों को सुधारने के लिए उसी शब्द को पांच या सात बार लिखवाने का अभ्यास करवाते हैं। एक ही शब्द को बच्चों से बार–बार लिखवाना बच्चों की दृष्टि से नीरस अभ्यास है।

इस अभ्यास पर अगर ध्यान दें तो हमें पता चलता है कि बच्चों के लिए इसमें कुछ भी रोचक नहीं है।

हां, यह ज़रूर हो सकता है कि इस तरह से एक ही शब्द को लिखते–लिखते वे शब्दों से चिढ़ने लगें और उनकी भाषा सीखने के प्रति रुचि कम हो जाए।

मन में हमेशा यह सवाल उठता है। कि अगर श्रुतलेख की त्रुटियों को कुछ रोचक–मनोरंजक ढंग से सुधारने के उपाय बच्चों को सुझाए जाएं जिनसे वे स्वयं जुड़ सकें, तो यह बच्चों के लिए भाषा सीखने का एक मनोरंजक तरीका हो सकता है।

बच्चों को शुद्ध भाषा जरूर सिखाएं लेकिन इस बात का ख्याल रखने की आवश्यकता है कि बच्चों की शुद्ध भाषा पर कौन–सी कक्षा से ध्यान देना आवश्यक होगा? और उसके तरीके क्या होंगे? इन पर समझ बनाने की जरूरत है।

बच्चों को भाषा सिखाने के लिए विविध अभ्यासों की जरूरत पड़ती है; जिससे बच्चों की रुचि बनी रहे और उन्हें स्वयं को अभिव्यक्त करने के मौके मिलें।

- **शिरोरेखा**

देवनागरी लिपि में वर्णों के ऊपर लगाई जाने वाली रेखा; ऊपरी रेखा; पड़ी पाई; शीर्षरेखा को शिरोरेखा कहते हैं।

शिरोरेखा देवनागरी की ध्वनि वैज्ञानिकता संदर्भित अनुपम विशेषता है।

यदि देवनागरी 'क' की आकृति किसी खोखली नली (मिट्टी के पाइप आदि से) बनाई जाए और जहाँ शिरोरेखा से वर्ण जुड़ता है, उस स्थान पर फूँक मारी जाए तो 'क' ध्वनि ही निकलेगी... इसी प्रकार अ से ह तक की आकृतियों से वही ध्वनियाँ निकलेगी... इतनी ध्वनिवैज्ञानिक थी यह लिपि..., शायद इसीलिए शिरोरेखा का प्रावधान किया गया होगा।

संसार की किसी अन्य लिपि में शिरोरेखा नजर नहीं आती। शिरोरेखा देवनागरी का अलंकरण है।

शिरोरेखा–विहीन शब्द ऐसे लगते हैं जैसे जंगल में पेड़ों से पत्ते झड़ गए हों और ठूँठ ही ठूँठ खड़े हों।

किसी समय कालांश समाप्त होने वाला हो और काम थोड़ा बाकी रहता हो तो पूरा करने के लिये शिक्षक भी जल्दी में दो–चार पंक्तियाँ बिना शिरोरेखा लिख देते हैं पर यह आदर्श स्थिति नहीं है। शिरोरेखा देवनागरी को सुन्दर और पठनीय बनाती है।

शिरोरेखा शब्द की सीमा भी दिखाकर अगला शब्द, कहाँ प्रारंभ होता है, वह भी बता देती है।

2.3.3 संरचनात्मक (कविता, कहानी, व्यंग्य, पत्र, निबंध लेखन आदि विधाओं में रुचि उत्पन्न करना)

- **(नोट** : इसी इकाई के 2.3.1 के अंतर्गत आप कविता, कहानी आदि विधाओं के बारे में पढ़ चुके हैं। यहां पर व्यंग्य, पत्र एवं निबंध को अध्ययन का विषय बनाया जा रहा है।)

टिप्पणी

- **व्यंग्य**

व्यंग्य की उत्पत्ति 'अज्ज' धातु में 'वि' उपसर्ग व 'ण्यत' प्रत्यय लगाने से हुई है जिसका शाब्दिक अर्थ होता है ताना कसना। दूसरे शब्दों में, 'व्यंग्य एक ऐसी साहित्यिक अभिव्यक्ति अथवा रचना है जिसके द्वारा व्यक्ति अथवा समाज की विसंगतियों और विडंबनाओं अथवा उसके किसी पहलू को रोचक तथा हास्यास्पद ढंग से प्रस्तुत किया जाता है।

व्यंग्य हिंदी गद्य की एक प्रमुख विधा है। अपने आदि रूप में व्यंग्य कथन की एक शैली रहा है जिसका प्रारंभिक उपयोग व्यक्तिगत दोष निवारण और तानाकशी के रूप में होता था। कथन की यह शैली सर्वदा वंदनीय है क्योंकि यह एक ऐसी शक्ति है जो पहली बार हथियार के रूप में दोषोद्घाटन के लिए प्रयोग की गई।

व्यंग्य का मूल्य भी इसी में है कि वह हमारी कमजोरियों और सामयिक अपेक्षाओं से हमें अवगत कराए। पतित मनोवृत्तियों का विरोध करें और भ्रष्टाचार के विरुद्ध रचनात्मक विचार दें।

'व्यंग्य' शब्द का मुख्यतः प्रयोग भारतीय काव्यशास्त्र में 'शब्दशक्तियों' के अन्तर्गत हुआ है। जहाँ हम साहित्य में शब्दशक्तियों की चर्चा करते है तो व्यंजना शक्ति के संदर्भ में 'व्यंग्यार्थ' के रूप में इस शब्द का प्रयोग होता है। सामान्य कथन में व्यंग्य को लोग 'ताना' या 'चुटकी' की भी संज्ञा देते है। इस शब्द का कोशगत अर्थ है "लगती हुई बात जिसका कोई गूढ़ अर्थ हो।" अति साधारण रूप में इसे 'लगती हुई बात' कहा गया।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने व्यंग्य की परिभाषा देते हुए कहा है "व्यंग्य कथन की एक ऐसी शैली है जहाँ बोलने वाला अधरोष्ठों में मुस्करा रहा हो और सुनने वाला तिलमिला उठे।" यानी व्यंग्य तीखा व तेज–तर्रार कथन होता है जो हमेशा सोद्देश्य होता है और जिसका प्रभाव तिलमिला देने वाला होता है।

कालान्तर में व्यंग्य के साथ हास्य भी जुड़ गया और हास्य का पक्ष इतना प्रबल हो गया कि लोग इसे 'हास्य–व्यंग्य' कहने लगे। अंग्रेजी व्यंग्यकार इसे 'सटायर' और 'ह्यूमर' आदि नाम से पुकारने लगे। आज तो व्यंग्य अपनी लोकप्रियता के लिए अपने में हास्य को भी समेटने लगा। आज हास्य और व्यंग्य लगभग एकसाथ सन्निहित से हो गए हैं।

कोई भी साहित्यकार अपने मन्तव्य को पाठकों तक पहुँचाने के लिए साहित्य की विविध विधाओं को चुनता है। कविता, कहानी, नाटक, निबन्ध, उपन्यास आदि के रूप में वह अपने भाव एवं विचार को संप्रेषित करता है। लेकिन रचनाकार चाहे जिस विधा को चुने अपने कथ्य को संप्रेषित करने के लिए वह शैली अलग चुनता है। भाषा तो केवल उपादान है शैली एक अलग पहचान है। प्रसिद्ध विद्वान हाकेट के शब्दों में – 'एक ही भाषा में एक ही बात को सम्प्रेषित करने के तरीके जो संरचना में अलग होते हैं उन्हें शैली कहते हैं।' प्रसिद्ध संस्कृत विद्वान बाणभट्ट ने एक बार कुछ विद्वानों से – 'आगे सूखा काठ पड़ा है' का संस्कृत अनुवाद करने को कहा तो एक विद्वान ने कहा–

'शुष्कः काष्ठः तिष्ठति अग्रे'और दूसरे ने बताया– 'नीरसः तरूरिहि विलसति पुरतः।' दोनों अनुवाद सही हैं।

टिप्पणी

लेकिन दोनों की भाषिक संरचना में अन्तर है और इस कारण दोनों के भाव–सौन्दर्य में बहुत अन्तर आ जाता है। यह अन्तर दोनों विद्वानों के भाव सम्प्रेषण की शैली में अन्तर के कारण प्रकट हुआ। यही कारण है कि व्यंग्य शैली में कही गयी बात ज्यादा धारदार और प्रभावकारी होती है।

कथन की एक शैली मात्र के रूप में जन्मा व्यंग्य आज साहित्य की सबसे उर्ज्वस्वित विधा का रूप ले चुका है। हिन्दी साहित्य के सन्दर्भ में विधा के रूप में व्यंग्य पर हम विचार करें तो व्यंग्य का सर्वप्रथम स्पष्ट प्रयोग सन्त कबीर की रचनाओं में मिलता है। कबीर ने बहुत पहले अपनी रचनाओं में धार्मिक आडम्बरों का विरोध करने के लिए व्यंग्य का प्रयोग किया है। अगर कबीर मुसलमानों के धार्मिक ढोंग का खण्डन करते हुए कहते हैं 'मसजिद चढ़ क्यों बाग दे क्या बहरा हुआ खुदाय' तो हिन्दुओं की मूर्तिपूजा एवं उनके अन्धविश्वासों पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं 'पाथर पूजै हरि मिलै तो मैं पुजूँ पहाड़।'

कबीर ने दोनों सम्प्रदायों की कठोरता एवं क्रूरता पर व्यंग्य करते हुए लिखा है– 'वा करे जिबह वा झटका मारै आग दुऔ घर लागी।'

यानी कबीर के यहाँ तिलमिला देने वाला व्यंग्य मिलता है जो सच्चाई की ओर इशारा करता है। निर्गुण ज्ञानाश्रयी कवियों ने धार्मिक बाह्य आडम्बरों का विरोध करने के लिए व्यंग्य का एक शैली के रूप में प्रयोग किया है। यही व्यंग्य भारतेन्दु हरिश्चन्द तक आते–आते राष्ट्रीयता के साथ जुड़ जाता है और साहित्य विधा का रूप धारण करने लगता है। उनकी प्रसिद्ब कृति 'अन्धेर नगरी' तत्कालीन सामाजिक एवं राजनैतिक व्यवस्था पर एक करारा व्यंग्य है। क्रांतिकारी कवि निराला के यहाँ व्यंग्य एक प्रगतिशील दृष्टि बनकर आता है।

निराला ने शोषकों का विरोध और शोषितों की पक्षधरता करने के लिए व्यंग्य को शैली के रूप में इस्तेमाल किया। उनकी 'कुकुरमुत्ता' कृति में व्यंग्य का पैनापन दिखाई पड़ता है। निराला शोषक एवं पूँजीपति वर्ग का विरोध करते हुए प्रतीकात्मक रूप में लिखते हैं

अबे! सुन बे गुलाब भूल मत जो तूने पाई खुशबू रंगोआब।

खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट डाल पर इठला रहा कैपिटलिस्ट।

निराला की तरह नागार्जुन ने भी व्यंग्य को शैली के रूप में इस्तेमाल किया है। नागार्जुन की कविता 'प्रेत का बयान' आजाद भारत में शिक्षक जीवन की विडम्बना का व्यंग्यात्मक चित्रण है जो देश की व्यवस्था से जुड़े तंत्र को तिलमिला देने के लिए लिखी गई है। मुक्तिबोध, धूमिल, दुष्यंत कुमार आदि के यहाँ आते–आते व्यंग्य व्यवस्था विरोध एवं बदलाव का कारगर हथियार बन जाता है। धूमिल की 'संसद से सड़क तक' की कविताएँ मुक्तिबोध की काव्यकृति 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' की कविता 'अँधेरे में' एवं दुष्यंत कुमार की गज़लों में व्यंग्य एक विधा बनने के साथ–साथ व्यवस्था बदलाव का एक असरदार माध्यम भी बन जाता है।

टिप्पणी

'व्यंग्य' का विधा के रूप में प्रयोग आज़ादी के बाद स्पष्ट रूप से हुआ। रामराज की परिकल्पना के आदर्श को लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति का जनान्दोलन आजादी के बाद व्यवस्था में मनोवांछित परिवर्तन न पाकर मोहभंग का रूप धारण करता है और व्यंग्य शैली को विधा का रूप धारण करने के लिए उर्वर जमीन प्रदान करता है। हरिशंकर परसाई की कृतियाँ –विकलांग श्रद्धा का दौर, सदाचार की ताबीज, भूत के पाँव पीछे, ठिठुरता हुआ गणतंत्र और श्रीलाल शुक्ल का उपन्यास 'राग दरबारी' एवं अन्य रचनाकार शंकर पुणताम्बेकर गोपाल चतुर्वेदी, के. पी. सक्सेना, ज्ञान चतुर्वेदी, शरद जोशी आदि अनेक साहित्यकारों ने व्यंग्य को साहित्य की सशक्त विद्या के रूप में स्थापित किया है।

इन रचनाकारों ने सामाजिक एवं राजनीतिक विसंगतियों पर चोट कर के उनमें बदलाव लाने की पहल की है। इन रचनाकारों के अतिरिक्त आज मंचीय कवियों ने हास्य मिश्रित व्यंग्य को आधार बनाकर इसकी लोकप्रियता के कारण व्यंग्य को लगभग आज के साहित्य की केन्द्रीय विधा बना दिया है।

वास्तव में जब तक समाज देश और राजनीति में भ्रष्टाचार विसंगतियॉ मूल्यहीनता एवं विद्रूपताएँ विद्यमान रहेगी इन पर चोट एवं इनका विरोध व्यंग्य द्वारा ही कारगर रूप से हो सकेगा। क्योंकि व्यंग्य 'जो गलत है' उस पर तल्ख चोट तो करता ही है 'जो सही होना चाहिए' इस सत्य की ओर इशारा भी करता है। अतः निर्विवाद रूप से यह कहा जा सकता है कि कथन की एक शैली के रूप में जन्मा व्यंग्य आज साहित्य की सशक्त विधा बन गया है और भविष्य में साहित्य की केन्द्रीय विधा बनने की सारी संभावना इस में सन्निहित है।

व्यंग्य के तत्व :

1) **विसंगतियों की उपस्थिति** – विसंगति के बगैर व्यंग्य की कल्पना करना संभव नहीं है। विसंगति ही व्यंग्य की आत्मा है। इस प्रकार विसंगति व्यंग्य का एक अनिवार्य तत्व है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है तथा हमारा समाज विसंगतियों से भरा पड़ा है। ये विसंगतियाँ पुरातन काल में भी थीं और वर्तमान में भी। ये विसंगतियाँ व्यक्ति व समाज को किसी–न–किसी रूप में अवश्य प्रभावित करती हैं। व्यंग्यकार सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक व आर्थिक विसंगतियों को लक्ष्य कर अपना व्यंग्य–कर्म करता है तथा पढ़ने वाला पाठक भी इन विसंगतियों के बारे में सोचने को विवश हो जाता है। ये विसंगतियाँ ही व्यंग्यकार को उसके लक्षित लक्ष्य तक पहुँचाती हैं।

   इन विसंगतियों से समाज को मुक्त करना अंसभव है किन्तु इन्हें कुछ हद तक कमजोर अथवा कम किया जा सकता है वह भी व्यंग्य के प्रहार द्वारा। व्यंग्यकार विचारों का मंथन कर समाज की विषमताओं को व्यंग्य रचना द्वारा समाज के सम्मुख रखता है।

2) **प्रगतिशील व सकारात्मक सोच** – साहित्यकार की सकारात्मक सोच उसे एक अच्छे व्यंग्य लेखन की ओर अग्रसित करती है। समाज से विसंगतियों का पलायन उसका उद्देश्य होता है तथा इसी को केद्रित कर वह अपनी रचना लिखता है। वह उन सभी बुराइयों का पुरजोर विरोध करता है जो समाज की

प्रगति में बाधक हैं। जो व्यंग्यकार अपनी व्यंग्य रचना द्वारा साम्प्रदायिकता, समाज में व्याप्त अंधविश्वास, कुरीति, गरीबी, बेरोजगारी व रूढ़िवादिता का विरोध करे वहीं व्यंग्य सफल व्यंग्य माना जायेगा अन्यथा वह व्यंग्य मात्र हास्य–विनोद बनकर रह जायेगा। व्यंग्यकार निहीर शोषितों व गरीबों की करुणा व पीड़ा को महसूस करता है तथा सदू खोरों, महाजनों तथा शोषक वर्ग पर व्यंग्य करता है।

टिप्पणी

3) **नैतिक मूल्यों की रक्षा** – मानव जीवन के विकास के लिए नैतिक मूल्यों की आवश्यकता होती है। नैतिक मूल्यों के अभाव में मनुष्य पतन की ओर उन्मुख हो जाता है। ईमानदारी, सहिष्णुता, समाज के प्रति उत्तरदायित्व की भावना ऐसे ही कुछ नैतिक गुण या मूल्य हैं।

   व्यंग्यकार अपनी व्यंग्य रचना द्वारा भ्रष्टाचार, साम्प्रदायिकता, अशिक्षा पर व्यंग्य कर नैतिक मूल्यों को पुनः स्थापित करने का प्रयास करता है। व्यंग्यकार शिक्षा, राजनीति या धार्मिक सभी क्षेत्र में आई अनावश्यक विसंगति को समाज के समक्ष लाने का प्रयास करता है। नैतिक मूल्यों की रक्षा के लिए व्यंग्यकार अनैतिक पक्षों को समाज व पाठकों के समक्ष रखता है। इसप्रकार नैतिक मूल्यों के बगैर व्यंग्य शाश्वत रूप से स्थापित होने में असफल रहेगा।

4) **गहन चिंतन** – गहन चिंतन ही व्यंग्य को जन्म देता है। किसी विषय की गंभीरता साहित्यकार को व्यंग्य लिखने के उद्देश्य को पूरा करने में सहायक होता है वहीं उसका चिंतन उसको उसके लक्ष्य तक पँहुचाता है। जहाँ से वह चारों तरफ विसंगति ही विसंगति से घिरा हुआ पाता है। गंभीर व गहन चिंतन द्वारा व्यंग्यकार श्रेष्ठ व्यंग्य की रचना करता है जो समाज में परिवर्तन का नेतृत्व करने में सहायक होता है।

5) **पात्रों का चयन** – एक सफल व्यंग्यकार अपनी व्यंग्य रचना में पात्रों का चयन बड़ी सावधानी से करता है क्योंकि उसके व्यंग्य लिखने का उद्देश्य उसके पात्रों के आस–पास ही केंद्रित होता है। व्यंग्यकार विसंगतियों के सापेक्ष अपने पात्रों का चयन करता है। व्यंग्यकार कभी–कभी फैंटेसी का सहारा लेता है तो कभी पौराणिक पात्रों के माध्यम से समाज की विसंगति को पाठक के सामने रखता है।

6) **व्यक्ति व समाज का पतन** – पतनोन्मुख व्यक्ति व समाज व्यंग्यकार के लिए पीड़ा का विषय है। वह इस पीड़ा को महसूस करता है तथा उसे अपनी रचना द्वारा उस पतन को समाज के समक्ष लाता है।

7) **भाषा–शैली** – व्यंग्य की भाषा उसकी प्रहारक क्षमता को दोगुना करती है। व्यंग्य विसंगतियों के प्रति सहानुभूति नहीं दिखाता अपितु वह कठोर व तीक्ष्ण भाषा का प्रयोग करता है। व्यंग्यकार अपनी भाषा–शैली द्वारा पाठकों के हृदय में अमिट छाप छोड़ता है।

8) **आलोचना** – व्यंग्य का अस्तित्व आलोचना पर आधारित होता है। आलोचना जितना तीक्ष्ण व कटाक्ष होगा व्यंग्य उतना ही प्रभावशाली होगा। व्यंग्य में सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक विसंगतियों की आलोचना की जाती है। आलोचना सौद्देश्य होनी चाहिए।

9) **बौद्धिकता** – व्यंग्य में बौद्धिकता तत्व अनिर्वाय है। व्यक्ति अपनी बुद्धि–तत्व के द्वारा विसंगतियों, विद्रूपताओं व विषमताओं को पहचान कर उस पर अपनी व्यंग्य दृष्टि रखता है। अच्छे व्यंग्य लेखन के लिए तर्क व ज्ञान आवश्यक है जो व्यंग्य को उसके उद्देश्य तक पँहुचाने में मदद करता है।

इस प्रकार ये सभी तत्व व्यंग्य सृजन के लिए आवश्यक हैं। ये सभी तत्व ही व्यंग्य लिखने के उद्देश्य की पूर्ति करते हैं। इनके अभाव में व्यंग्य रचनाएँ सामान्य रचना बन कर रह जाती है।

- **पत्र लेखन**

पत्र मानव सभ्यता के विकास के वाहक हैं। आज के वैज्ञानिक युग में संचार–माध्यमों के विकास के द्वारा पत्राचार से हजारों मील दूर बैठे आत्मीयों से संपर्क स्थापित किया जा सकता है। पत्र आज की दुनिया में वैचारिक प्रगति के पहिए हैं। लिपि के विकास से पूर्व चित्रों अथवा विभिन्न संकेतों के माध्यम से सूचना–संप्रेषण का काम किया जाता था। पत्र लेखन में क्षमता प्राप्त करना प्रत्येक सभ्य एवं शिष्ट व्यक्ति की कामना होती है। पत्र को हम विश्वबंधुत्व का एक प्रबल माध्यम भी कह सकते हैं। दुनिया के अनेक साधारण और असाधारण व्यक्तियों ने पत्रों के द्वारा मित्र बनाकर जीवन में महती सफलता प्राप्त की है। हर व्यक्ति किसी न किसी रूप में इन पत्रों से जुड़ा हुआ है। किसी भी महापुरुष, नेता, साहित्यकार द्वारा लिखे गए पत्रों के द्वारा हम उसकी चिंतनकला, विचारधारा, जीवन दर्शन, देश–विदेश नीति तथा अन्य बहुत–सी उपयोगी क्षेत्रों की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

पत्र लेखन के गुण एवं विशेषताएं

1. **स्पष्टता** : पत्र किसी भी प्रकार का हो, उसमें स्पष्टता होनी चाहिए, यदि कोई पत्र–प्राप्तकर्ता पत्र लिखने वाले के मंतव्य को स्पष्ट रूप से ग्रहण न कर पाए तो ऐसी स्थिति में पत्र का उद्देश्य खत्म हो जाता है।
2. **संक्षिप्तता** : संक्षिप्तता एक आदर्श पत्र–लेखन का मूलभूत गुण है। अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए आवश्यक शब्दों का प्रयोग ही करना चाहिए। एक अच्छा पत्र तभी संक्षिप्त माना जाता है, जब उसमें प्रयुक्त किया गया एक–एक शब्द उपयोगिता और आवश्यकता लिए हुए हो।
3. **मौलिकता** : पत्र की प्रस्तुति नवीन और मौलिक ढंग से होनी चाहिए। ऐसा करने से जहां कही हुई बात पत्र–प्राप्तकर्ता के हृदय को प्रसन्न करती है, वहीं उस पर अपना एक विशेष प्रभाव भी छोड़ती है।
4. **सुसंबद्धता** : पत्र लिखते समय जिस विषय का पत्र प्राप्तकर्ता तक पहुंचता है, प्रेषक उसी को मुख्य रूप से प्रस्तुत करे। पत्र में मुख्य विषय से हटकर कही गई कोई अन्य बात पत्र की एकान्विति या सुसंबद्धता को भंग कर देती है। पत्र में निर्दिष्ट सभी बातें एकसूत्रता या तारतम्यता में कही गई होनी चाहिए।
5. **यथार्थता** : इस गुण का संबंध मुख्य रूप से औपचारिक पत्रों से है, क्योंकि इस प्रकार के पत्रों में तथ्य–प्रस्तुति का होना आवश्यक होता है। औपचारिक पत्रों

के व्यावसायिक और कार्यालयी– दोनों रूपों के पत्रों में यह गुण अहम् भूमिका निभाता है।

6. **संपूर्णता** : पत्र लिखने वाले के लिए यह जरूरी होता है कि वह अपने कथ्य या मंतव्य को संपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करे। उसे पढ़ने के उपरांत पत्र प्राप्तकर्ता के मन में किसी भी प्रकार की जिज्ञासा या शंका नहीं रहनी चाहिए।
7. **सहजता और सरलता** : सहजता का अर्थ है– स्वाभाविकता। पत्र में लिखी हर बात सहज और अकृत्रिम होनी चाहिए। सरलता से अभिप्राय भाषा की सरलता से है। पत्र की भाषा में संप्रेषणीयता का गुण होना चाहिए।
8. **शालीनता** : शालीनता का गुण औपचारिक और अनौपचारिक दोनों प्रकार के पत्रों में आवश्यक है। इसमें पत्र के लिखने वाले के व्यक्तित्व, प्रतिष्ठा, पद, व्यावहारिक आचरण और स्वभाव की झलक स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है।
9. **प्रभावान्विति** : उत्कृष्ट पत्र–लेखन का महत्वपूर्ण गुण उसका समग्र प्रभावान्वित होना है। पत्र की भाषा, शैली और प्रस्तुतीकरण इस प्रकार होना चाहिए कि पत्र प्राप्तकर्ता के हृदय पर विशेष छाप छोड़े।

पत्र लेखन में विशेष उल्लेखनीय बातें

पत्र एक ऐतिहासिक दस्तावेज है, जो लिखने वाले के हाथ से छूटकर किसी अन्य के हाथ में जाता है। उसका सदुपयोग अथवा दुरुपयोग भी हो सकता है। किसी ने ठीक ही कहा है कि बोलते समय एक बार सोचो और लिखते समय तीन बार। भावावेश में कभी मत लिखो। क्रोध, द्वेष आदि के आवेश में लिखे गए पत्रों के लिए बड़े–बड़े दिग्गजों को क्षमायाचना करते हुए देखा गया है। लिख चुकने के बाद संपूर्ण पत्र को एक बार सावधानी से पढ़ लेना चाहिए, जिससे शीघ्रता में लिखी गई वर्तनी आदि की अशुद्धियों को ठीक किया जा सके तथा फालतू बातों को पत्र से काट दिया जाए। एक सफल पत्र तैयार करने के लिए, उसे काट–छांट आदि से बचाने के लिए समझदार लोग पत्र की कच्ची रूपरेखा पहले तैयार कर लेते हैं। प्राप्तकर्त्ता का पता लिफाफे आदि पर सावधानीपूर्वक लिखा जाना चाहिए, जिसमें जनपद, प्रांत तथा पिन कोड आदि का उल्लेख पत्र को उसके गंतव्य तक पहुंचाने के लिए अत्यंत अनिवार्य है। यदि पत्र में प्रमाण स्वरूप कुछ प्रमाण–पत्र लगाने पड़ें, तो उन पर पहले क्रमांक डालें, फिर पत्र के अंत में बांईं ओर उनका उल्लेख करें, जैसे–

संलग्नक– 1. हाई स्कूल प्रमाण–पत्र, 2. चरित्र प्रमाण–पत्र आदि।

पत्र लेखन के प्रकार

पत्र व्यवहार विभिन्न प्रकार से किया जाता है, समय और स्थान के अनुसार उनका प्रारूप परिवर्तित हो जाता है। पत्रों के मुख्य प्रकारों का वर्णन यहां किया जा रहा है–

1. कार्यालयी पत्र

राजकीय सहायता प्राप्त संस्थाओं एवं कार्यालयों द्वारा किसी भी संस्था, व्यक्ति या अन्य कार्यालयों को जो पत्र लिखे जाते हैं उन्हें कार्यालयी पत्र कहते हैं। कार्यालयी पत्रों की निम्नलिखित विशेषताएं हैं–

टिप्पणी

(क) **स्पष्टता**—पत्र की विषय—वस्तु बिल्कुल स्पष्ट होनी चाहिए, जिससे पत्र को पाने वाला उसके सही रूप को ग्रहण कर सके। पत्र—लेखक को पत्र की स्पष्टता का ध्यान रखना चाहिए।

(ख) **अचूकता**—पत्र लिखने वाले को कार्यालयी पत्र लिखते समय उसमें प्रस्तुत विधान, अवतरण, संदर्भ और उसके तथ्य को ध्यान में रखना चाहिए। इसके लिए बहुत सावधानी से उसका मसौदा तैयार करना चाहिए।

(ग) **संक्षिप्तता**—पत्र लिखते समय अनावश्यक शब्द—प्रयोग, एक ही बात को बार—बार न लिखकर पत्र को संक्षिप्त व केवल आवश्यक जानकारी देते हुए लिखना चाहिए।

(घ) **परिपूर्णता**—परिपूर्ण पत्र हम उसे कहेंगे जिसमें पत्र के विषय और उद्देश्य से संबंधित सारी जानकारियां उस पत्र में आ जाएं। पूर्णता के लिए हस्ताक्षर, दिनांक, क्रमांक का होना आवश्यक है।

(ङ) **भाषा**—व्याकरण की दृष्टि से कार्यालयी पत्र की भाषा शुद्ध, सरल एवं स्पष्ट होनी चाहिए

कार्यालयी पत्र के रूप

केंद्र सरकार के विभिन्न कार्यालयों में अनेक स्तर पर पत्राचार होता है जिसके अनेक रूप होते हैं, जिनका संक्षिप्त रूप में विवरण किया जा रहा है। ये पत्र निम्न प्रकार के होते हैं—

• सरकारी पत्र

कार्यालयी पत्रों में सरकारी पत्रों का प्रयोग सबसे अधिक किया जाता है। इन्हें आधिकारिक एवं नियमित पत्र भी कहते हैं। सरकारी पत्रों का प्रयोग एक सरकार द्वारा दूसरी सरकार को, उसके अधीन राज्य सरकार को, निर्वाचन आयोग को, संघ लोक सेवा आयोग, योजना आयोग, अर्ध सरकारी आयोगों एवं निकायों को, विभिन्न अर्धसरकारी/गैर सरकारी संघों, संरचनाओं, प्रांतीय सरकारों प्रमुख मामलों में भारत सरकार को तथा अपने क्षेत्र के उच्च न्यायालयों, आयोगों एव निगमों, विभागीय अध्यक्षों एवं अधिकारियों को, सरकार से अलग सार्वजनिक प्रतिष्ठानों एवं स्वतंत्र कार्यालयों आदि के लिए किया जाता है।

इसके निम्नलिखित अंग माने गए हैं जिनका सरकारी पत्र लिखते समय ध्यान रखना चाहिए—

1. पत्र की संख्या
2. कार्यालय का नाम
3. प्रेषक का नाम एवं पद
4. प्राप्तकर्ता का नाम, पद एवं पता
5. दिनांक

6. संबोधन
7. पत्र की मुख्य विषय वस्तु
8. स्वनिर्देश
9. हस्ताक्षर
10. संलग्नक, यदि हो तो

उदाहरण– सरकारी पत्र के कुछ उदाहरण आगे दिए जा रहे हैं जो निम्न प्रकार से हैं–

उदाहरण 1

नई दिल्ली

दिनांक : 6 जुलाई, 2013

प्रेषक :

विनोद कुमार शर्मा
डेस्क अधिकारी
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
नई दिल्ली।

सेवा में

अध्यक्ष
महाराष्ट्र हिंदी परिषद
पुणे–38

विषय : हिंदी के प्रचार–प्रसार के लिए स्वैच्छिक संस्थाओं को आर्थिक सहायता योजना के तहत दिए जाने वाले अनुदान के संबंध में।

महोदय,

आपके दिनांक 12 मई, 2012 के पत्र संख्या 1/10/05 के संबंध में मुझे यह कहने का निर्देश हुआ है कि आप अपना प्रस्ताव निर्धारित प्रपत्र में सभी आवश्यक विवरण/दस्तावेज के साथ इस मंत्रालय को यथाशीघ्र प्रेषित करें, ताकि इस संबंध में कार्यवाही की जा सके।

संलग्न : योजना की प्रति।

भवदीय

हस्ताक्षर

विनोद कुमार शर्मा

डेस्क अधिकारी

टिप्पणी

उदाहरण 2

क्रम संख्या 02/102/9/05 सूचना

दिनांक : 5 जून, 2013

भारत सरकार

सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय

प्रेषक : सूर्य प्रकाश शर्मा

अपर सचिव, नई दिल्ली–1

सेवा में

महानिदेशक

आकाशवाणी

नई दिल्ली

विषय : निदेशक के पद का स्थायीकरण।

महोदय,

उपर्युक्त विषय पर आपके दिनांक 10 अप्रैल, 2013 के पत्र संख्या 10/100/6 के संदर्भ में मुझे यह सूचित करने का निर्देश हुआ है कि राष्ट्रपति ने सूचना एवं प्रसारण सेवाओं के महानिदेशालय में विद्यमान अस्थायी निदेशक के पद को दिनांक 1 जुलाई, 2013 से स्थायी बनाने हेतु स्वीकृति प्रदान कर दी है।

उक्त स्वीकृति हेतु वित्त मंत्रालय ने अपनी सहमति दिनांक 15 मई, 2012 की अपनी औपचारिक टिप्पणी संख्या 11/110 वि, के अनुसार प्रदान की है।

भवदीय

हस्ताक्षर

सूर्य प्रकाश शर्मा

अवर सचिव, भारत सरकार

उदाहरण 3

दिनांक 10 जनवरी, 2013

संदर्भ सं./षा.प्र.इ/900/84

शाखा प्रबंधक

इटावा

श्री रमेश मिश्र

16, कृष्ण कुंज

राजनाथ चौक, पाली

विषय : जमानोंद—आपका बचत बैंक खाता सं. 1369

टिप्पणी

प्रिय महोदय,

आपको सादर सूचित किया जाता है कि हमने अपने बैंक की इस शाखा में उपरोक्त खाते में रुपए 1,60,768 (रुपए एक लाख साठ हजार सात सौ अरसठ) की राशि जमा कर दी है। यह राशि आपकी भविष्य निधि की है।

भवदीय

हस्ताक्षर

शाखा प्रबंधक

• अर्ध सरकारी पत्र

सरकारी कार्यों के लिए अर्ध सरकारी पत्रों का प्रयोग निम्नलिखित उद्देश्यों के लिए किया जाता है—

(क) पत्र पाने वाले का ध्यान किसी भी विषय की तरफ व्यक्तिगत रूप से आकर्षित करना।

(ख) किसी भी सरकारी कार्य को करने की विधि के बारे में अधिकारियों द्वारा बिना किसी औपचारिकता के आपस में विचार—विमर्श करना।

(ग) यदि कोई समस्या सरकारी अनुस्मारक देने पर भी नहीं सुलझती, तो उसे जल्दी निपटाने के लिए किसी विशेष अधिकारी का ध्यान आकर्षित करना।

अर्ध सरकारी पत्र अधिकतर विशेष अधिकारी को ही लिखा जाता है। इसमें भेजने वाले की भाषा सरल, स्पष्ट एवं विनम्र होनी चाहिए। पत्र के अंत में भेजने वाले के केवल हस्ताक्षर ही होते हैं, उसके पद का नाम आदि नहीं लिखा जाता है।

उदाहरण 1

भारतीय साधारण बीमा निगम

दिनांक 25 जून, 2013

प्रहलाद शर्मा
उपप्रबंधक
प्रधान कार्यालय
मुंबई

संदर्भ सं./6(अ स प) 2011

प्रिय श्री महेश

आपके आंचलिक प्रबंधक के पत्र से ज्ञात हुआ है कि आपने हाल ही में पी.एचडी. की उपाधि प्राप्त कर ली है। आपके द्वारा अर्जित इस उच्च स्तरीय शैक्षिक उपाधि पर हमें गर्व है। इस अवसर पर हमारे प्रबंधक महोदय एवं समस्त कर्मचारियों की ओर से हार्दिक बधाई स्वीकार करें। आशा है, आपका अर्जित ज्ञान निगम में हिंदी के प्रयोग में वृद्धि के लिए सहायक सिद्ध होगा।

शुभ कामनाओं सहित

आपका
हस्ताक्षर
(प्रहलाद शर्मा)

टिप्पणी

प्रति :

डॉ. सौरभ जोशी
राजभाषा अधिकारी
भारतीय साधारण बीमा निगम
आंचलिक कार्यालय, पुणे–24

उदाहरण 2

अ. सं. पत्र संख्या 5–6 / 70–75 दिनांक 22 अप्रैल, 2013

भारत सरकार
रेल मंत्रालय
नई दिल्ली

प्रिय श्री नायडू जी,

आपका ध्यान इस मंत्रालय के पत्र दिनांक 3 मार्च, 2011 के क्रम संख्या 5 / 12 / 23–25 की ओर आकृष्ट किया जाता है। उक्त पत्र में कर्मचारियों को स्थायी करने के संदर्भ में विशिष्ट नियमावली की प्रतिलिपि मांगी गई थी, ताकि केंद्रीय मंत्रालय से संबंधित निर्देशों का अध्ययन किया जा सके, परंतु अभी तक नियमावली की प्रतिलिपि प्राप्त नहीं हुई है।

नियमावली के न मिलने के कारण, स्थायी न किए जाने वाले कर्मचारियों में असंतोष की भावना पनपती जा रही है, इसलिए शीघ्र ही नियमावली भेजने की व्यवस्था करें, ताकि इस संबंध में इस कार्यालय में उचित कार्यवाही की जा सके।

आपका
हस्ताक्षर
(कमल प्रसाद द्विवेदी)

श्री नायडू
संयुक्त सचिव, वित्त मंत्रालय
भारत सरकार, नई दिल्ली।

- **अनुस्मारक**

जब किसी मंत्रालय या कार्यालय से, पूर्व पत्र में मांगी गई सूचना, निर्णय या टिप्पणी समय पर प्राप्त नहीं होती उस समय अनुस्मारक का प्रयोग किया जाता है। अनुस्मारक सरकारी और अर्धसरकारी पत्र के रूप में लिखा जा सकता है।

उदाहरण 1

दिनांक 6 जुलाई, 2013 अ.स. पत्र संख्या 6/12/24

सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया
प्रधान कार्यालय, मुंबई

प्रिय विकास जी,

हम आपका ध्यान इस कार्यालय के दिनांक 4 दिसंबर, 2012 के परिपत्र सं./प्र./हिंदी/100 की ओर आकृष्ट कराते हैं, जिसमें बैंक की हिंदी प्रयोग संबंधी रिपोर्ट तुरंत भेजने के निर्देश दिए गए थे। हमें खेद है कि आपके अंचल क्षेत्र की रिपोर्ट हमें अभी तक प्राप्त नहीं हुई है। कृपया उक्त रिपोर्ट तुरंत भेज दें।

भवदीय
संजय त्यागी
वरिष्ठ हिंदी अधिकारी

प्रति :
श्री विकास गुप्ता
हिंदी अधिकारी
क्षेत्रीय कार्यालय

उदाहरण 2. (ज्ञापन)

संख्या–च–403/28/78 दिनांक 3 मई, 2013

रेल सेवा आयोग
दक्षिण क्षेत्र, चेन्नई

विषयः टी.एक्स.आर. पद का चुनाव।

श्री विश्वनाथ शास्त्री को सूचित किया जाता है कि वे जनवरी, 2013 में ली गई उक्त पद की चयन–परीक्षा में उत्तीर्ण घोषित किए गए हैं, अतः वे 20 मई, 2013 को प्रातः 10.00 बजे डॉक्टरी जांच के लिए इस कार्यालय में उपस्थित हों।

विकास शर्मा
उपाध्यक्ष,
रेलवे सर्विस कमीशन

• कार्यालय आदेश

कार्यालय आदेश का प्रयोग किसी अधिकारी के द्वारा मंत्रालय, विभाग, प्रभाग, अनुभाग एवं कार्यालय के कर्मचारियों के लिए संबंधित कार्य करने के लिए किया जाता है। अधिकारी द्वारा दिए गए आदेशों का पालन करना संबंधित कर्मचारियों का कर्तव्य हो जाता है। अधिकतर ये कार्यालय आदेश कर्मचारियों की वेतन–वृद्धि जारी करने,

पदोन्नति करने या उसे रोकने के लिए छुट्टी मंजूर करने के लिए, प्रयोग किए जाते हैं।

टिप्पणी

उदाहरण 1

क्रम संख्या 100/1

दिनांक 10 जुलाई, 2013

भारत सरकार
रेल मंत्रालय
नई दिल्ली

भारतीय रेल सेवा में अधीक्षक के पद पर नियुक्त डॉ. नरेंद्र को, उनकी पदवृद्धि पर दिनांक 1 अगस्त, 2012 से रेल मंत्रालय के सचिवालय से स्थानापन्न रूप में प्रशासन अधिकारी के पद पर नियुक्त किया गया है। अगले आदेश तक उनकी नियुक्ति सामान्य अनुभाग 'अ' में कर दी गई है।

रीना कुमारी
अपर सचिव, भारत सरकार

पृष्ठांकन सं. 8/6/76

10 जुलाई, 2013

प्रतिलिपि निम्नलिखित को सूचनार्थ भेजी जाती है–
1. मंत्रालय के सभी विभाग, अनुभाग
2. डॉ. सुरेशचंद्र, प्रशासन अधिकारी
सामान्य अनुभाग 'अ'

कृते

अपर सचिव, भारत सरकार

• सूचना

कई बार सरकार जन–साधारण को या किन्हीं संबंधित व्यक्तियों को सूचित करने के लिए, नौकरी हेतु रिक्त स्थानों की, नीलामी की, निविदा की, न्यायालयीन नोटिस की, कार्यालय के स्थान परिवर्तन की सूचनाएं प्रायः समाचार–पत्रों में प्रकाशित करवाती है। लेकिन इन सूचनाओं का रूप प्रेस नोट व प्रेस विज्ञप्तियों से बिल्कुल अलग होता है। इसमें सूचना प्रकाशित करने वाले कार्यालयों का नाम और अंत में हस्ताक्षर कर्ता का नाम व पता लिखा जाता है। ये सूचनाएं संक्षिप्त, स्पष्ट व सुनिश्चित होती हैं।

उदाहरण 1

मध्य रेलवे
सूचना

यात्रियों की सुविधा के लिए थाना (मुंबई) स्टेशन पर पूछताछ कार्यालय में टेलीफोन की व्यवस्था की गई है, जिसके नंबर इस तरह हैं–

पूछताछ कार्यालय : 6667129, 6667130, 6667031

उदाहरण 2

महाराष्ट्र सरकार
(पुलिस विभाग)
टेंडर सूचना

महाराष्ट्र राज्य पुलिस विभाग द्वारा पुलिस कर्मचारियों की वर्दियां बनवाने के लिए स्वीकृत ठेकेदारों से 30 जनवरी, 2013 को दोपहर 2.00 बजे तक मुहर बंद टेंडर आमंत्रित किए जाते हैं।

विशिष्ट विवरणों की सूची प्रति सेट 5 रुपए अदा करने पर अधोहस्ताक्षरी के कार्यालय से प्राप्त की जा सकती है।

यदि कोई अन्य जानकारी अपेक्षित हो तो ठेकेदार 29 जनवरी, 2013 तक प्रतिदिन दोपहर 2.00 बजे से 3.00 तक अधोहस्ताक्षरी से व्यक्तिगत रूप से मिल सकते हैं।

दिनांक 8 जनवरी, 2013

हस्ताक्षर
पुलिस अधीक्षक
महाराष्ट्र राज्य पुलिस

• प्रेस विज्ञप्ति या प्रेस नोट

सरकार के किसी भी निर्णय को विस्तृत रूप में प्रचारित करने के लिए प्रेस विज्ञप्ति या प्रेस नोट का प्रयोग किया जाता है। इन्हें समाचार–पत्रों में ही प्रकाशित किया जाता है। प्रेस विज्ञप्ति किसी विषय पर सरकार का नपा–तुला बयान है और प्रेस नोट सरकार की ओर से दी जाने वाली जानकारी है।

उदाहरण

विषय : भारत तथा पाकिस्तान के बीच राजनैतिक संबंध।

भारत सरकार और पाकिस्तान की सरकार इस बात पर सहमत हो गई हैं कि दोनों के बीच मित्रतापूर्ण संबंध स्थापित किए जाएं। आशा है कि इस व्यवस्था से दोनों देशों में पारस्परिक संबंध और भी अधिक सुदृढ़ हो जाएंगे, जो दोनों के लिए लाभकारी होंगे।

मुख्य सूचना अधिकारी, प्रेस ब्यूरो, नई दिल्ली को प्रेस विज्ञप्ति जारी करने तथा उसे विस्तृत रूप से प्रसारित करने के लिए प्रेषित।

टिप्पणी

हस्ताक्षर
ललित पांडे
अपर सचिव, भारत सरकार
विदेश मंत्रालय
नई दिल्ली, दिनांक 15 जुलाई 2013

(प्रेस नोट)

पूर्वोत्तर रेलवे
गोरखपुर (उ.प्र.)
दिनांक 22 सितंबर, 2013

पूर्वोत्तर रेलवे ने अपने कर्मचारियों और अधिकारियों में हिंदी का प्रचार–प्रसार बढ़ाने के लिए इस दिशा में अनेक प्रभावशाली प्रयास किए हैं, जैसे 17 हिंदी प्रशिक्षण केंद्रों की स्थापना, हिंदी टंकण और आशुलिपि प्रशिक्षण, हिंदी में परीक्षा–विशेष योग्यता के लिए पुरस्कार।

हिंदी का ज्ञान रखने वाले कर्मचारियों को अपने आवेदन–पत्र हिंदी में देने और हिंदी में प्राप्त होने वाले पत्रों के उत्तर हिंदी में भेजने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है।

उदाहरण 1 (प्रेस विज्ञप्ति)

(इसके प्रारंभ में यह निर्देश होता है कि इसे कब छापा जाए। यह निर्देश नकारात्मक होता है)

सोमवार, दिनांक 2 अगस्त, 2013 को सांयकाल 5.00 बजे से पूर्व प्रसारित, प्रकाशित न किया जाए।

• अन्य कार्यालयों के पत्र

सरकारी कार्यालयों के अलावा अन्य कार्यालय भी होते हैं। इनमें बस इतना ही अंतर होता है कि सरकारी कार्यालयों के पत्रों की एक निश्चित रूपरेखा होती है, जबकि अन्य कार्यालयों के पत्रों को लिखते समय आवश्यकतानुसार छूट ली जा सकती है। अन्य कार्यालयों में– सेवाभावी संस्थाओं के कार्यालय, विश्वविद्यालयों व महाविद्यालयों के कार्यालय तथा व्यावसायिक प्रचार/विस्तार/शर्तों आदि के लिए स्थापित किए गए कार्यालय आते हैं। इनमें अधिकतर सरकारी पत्र, अर्ध सरकारी पत्र, ज्ञापन, परिपत्र, सूचना, तार आदि का प्रयोग किया जाता है।

टिप्पणी

उदाहरण 1. (पूछताछ संबंधी पत्र)

दिनांक 12 जून, 2013

विद्या बुक्स

(विद्यालयी एवं महाविद्यालयी पुस्तकों के वितरक व विक्रेता)

58, नेता जी सुभाषचंद्र मार्ग,
तार : विद्या बुक्स, अहमदाबाद
दूरभाष 3517

सेवा में
श्री सन्मार्ग प्रकाशन
दिल्ली–110007

प्रिय महोदय,

कृपया लौटती डाक से अपने प्रकाशनों का नवीनतम सूचीपत्र भिजवाने का कष्ट करें, साथ ही अपनी व्यावसायिक शर्तें भी लिखें। यदि आपकी शर्तें संतोषजनक और आकर्षक पाई गईं तो आपके प्रकाशन की पुस्तकें हम अपनी दुकान में विक्रय के लिए रखना चाहते हैं।

आपका पत्र मिलने पर आपको पुस्तकों के लिए आदेश भेजा जाएगा।

धन्यवाद

भवदीय

व्यवस्थापक
विद्या बुक्स
अहमदाबाद

2. व्यावसायिक पत्र

ऐसे पत्रों का संबंध व्यक्ति के अपने व्यवसाय से संबंधित होता है। एक व्यापारी/व्यापारिक संस्था की ओर से दूसरे व्यापारी दूसरी व्यापारी संस्था के नाम लिखे जाने वाले पत्र को व्यावसायिक पत्र कहते हैं। इसमें व्यापारी माल भेजने संबंधी निर्देश, नया माल मंगवाने के लिए, राशि के भुगतान के विषय में जानकारी देता है। इनकी भाषा सरल, सहज व स्पष्ट होती है।

पत्र लिखना अपने–आप में एक कला है। यह प्राचीन समय से चली आ रही है, व्यावसायिक जगत में मौखिक शब्दों की अपेक्षा लिखित शब्दों का महत्व अधिक है, क्योंकि व्यावसायिक क्षेत्रों में पत्र अपना अलग ही महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। अतः इस क्षेत्र में भी पत्र लिखने की अपनी ही एक कला होती है, ऐसे पत्र बड़ी सूझ–बूझ के साथ

टिप्पणी

लिखे जाते हैं। इस सूझ–बूझ के बिना हम अपनी समस्या और कार्य सही रूप में नहीं करवा सकते। व्यावसायिक क्षेत्र में मूल्य–पत्र, विज्ञापन–पत्र, क्रयादेश–पत्र, विक्रय–पत्र, अनुरोध–पत्र एवं निविदा पत्र आदि आते हैं। वर्तमान समय में व्यावसायिक क्षेत्र में पत्रों का अपना अलग ही महत्व है।

पत्र कई प्रकार के होते हैं। व्यक्ति, संदर्भ, विषय और क्षेत्र के अनुसार पत्रों को लिखने का तरीका भी अलग–अलग होता है। व्यावसायिक पत्रों को लिखते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए–

(क) **प्रेषक का नाम व पता**–व्यावसायिक पत्रों में सबसे ऊपर प्रेषक का नाम व पता लिखा होता है, जिससे पत्र पाने वाले को पत्र देखते ही पता चल जाता है कि पत्र किसने भेजा है तथा कहां से आया है। प्रेषक का नाम व पता ऊपर दाएं कोने में लिखा जाता है। साथ में फोन नं., फैक्स नंबर तथा ई–मेल आदि भी लिखा जाता है।

(ख) **पत्र पाने वाले का नाम व पता**– पत्र के बाईं ओर पत्र प्राप्त करने वाले का नाम व पता लिखा जाता है तथा कभी–कभी उसका केवल नाम या पदनाम या दोनों भी दिए जाते हैं। जैसे–नाम, पदनाम, कार्यालय का नाम, स्थान, जिला, शहर व पिन कोड आदि।

(ग) **विषय संकेत**– व्यावसायिक पत्रों में यह आवश्यक है कि पत्र पाने वाले के नाम व पते के पश्चात बाईं ओर जिस विषय में पत्र लिखा गया हो, उस विषय को संक्षेप में लिखा जाए, ताकि जिससे पत्र को देखते ही पता चल जाए कि पत्र किस विषय में है और उसे आगे की कार्यवाही के लिए उससे संबंधित अधिकारी के पास भेजा जा सके। उदाहरण के लिए विषय–नियुक्ति पत्र।

(घ) **संबोधन**–पत्र भेजने वाला सबसे पहले, पत्र पाने वाले के लिए आवश्यकतानुसार विभिन्न प्रकार के संबोधन सूचक शब्दों का प्रयोग करता है। जैसे– प्रिय महोदय या प्रिय महोदया, माननीय/मानवीय, महामहिम आदि।

(ङ) **पत्र की मुख्य सामग्री**– संबोधन के बाद हम पत्र के मूल विषय पर आते हैं। यह नये पैराग्राफ से शुरू किया जाता है। यदि व्यावसायिक पत्रों में किसी विषय पर पहले पत्राचार हो चुका हो या हो रहा हो तो उसके संदर्भ में सबसे पहले संकेत दिया जाना चाहिए; जैसे– उपर्युक्त विषय पर कृपया दिनांक.......... का अपना पत्र सं........देखें। कोई भी नया तथ्य, नवीन तर्क, नई मांग तथा नया स्पष्टीकरण अलग अनुच्छेद से ही शुरू करना चाहिए। व्यावसायिक पत्रों में विषयों को एक–दूसरे से अलग रखना चाहिए, आपस में मिलाना नहीं चाहिए।

(च) **अभिव्यक्ति शैली**– हमारे पत्र लिखने की शैली स्पष्ट होनी चाहिए, इसकी भाषा स्पष्ट, सरल व सहज होनी चाहिए। वाक्य छोटे होने चाहिए। पत्र पूरी तरह स्पष्ट होना चाहिए, जिससे प्राप्त करने वाले के मन में संदेह न रहे। अगर यह

सब बातें पत्र में नहीं होंगी तो पत्र प्राप्त करने वाला पत्र पढ़कर संतुष्ट नहीं हो पाएगा। इससे उसे नाराजगी भी हो सकती है।

टिप्पणी

(छ) **समापनसूचक शब्द**— पत्र समाप्त होने पर भेजने वाला अपने हस्ताक्षर से पहले प्राप्तकर्ता से अपने संबंध के विषय में कुछ शब्दों का प्रयोग करता है। जैसे— आपका आज्ञाकारी, विनीत, शुभाकांक्षी आदि। व्यावसायिक पत्रों में अधिकतर 'भवदीय' शब्द का प्रयोग होता है। आज के समय में ऐसे पत्रों में बाएं कोने में यह सब लिखा जाता है। पहले दाहिने तरफ लिखा जाता था।

(ज) **हस्ताक्षर और नाम**— पत्र समाप्ति के बाद नीचे भेजने वाले के हस्ताक्षर और फिर उसका पूरा नाम कोष्ठक में दिया जाता है। कभी—कभी बड़े अधिकारी की ओर से कोई अन्य अधिकारी या कर्मचारी पत्र पर हस्ताक्षर करता है तो ऐसे में 'कृते' प्राचार्य, 'कृते' निदेशक आदि लिखा जाता है।

(झ) **संलग्नक**— मूल पत्र के साथ कभी—कभी जरूरी कागजात भी भेजने पड़ते हैं। उन्हें ही पत्र में 'संलग्न' या संलग्नक कहते हैं। 'संलग्नक' भवदीय शब्द के ठीक बाईं ओर लिखा जाता है। यहां पर 'संलग्न पत्र' शीर्षक लिखकर सब पत्रों या कागजों का विवरण संकेत के रूप में लिखा जाता है। ये संकेत संख्या 1, 2, 3 के द्वारा क्रमशः देनी चाहिए।

(ञ) **पुनश्च**— 'पुनश्च' शब्द का अर्थ होता है— 'एक बार पुनः'। कभी—कभी पत्र लिखते समय कोई महत्वपूर्ण बात छूट जाती है। पत्र पूरा टाइप होकर आ जाता है। तब जो बात छूट गई है, उसको लिखने के लिए समापनसूचक शब्द, हस्ताक्षर, संलग्नक आदि लिखने के बाद अंत में सबसे नीचे 'पुनश्च' शीर्षक देकर छूटा हुआ अंश लिख दिया जाता है, फिर एक बार अपने हस्ताक्षर कर दिए जाते हैं।

व्यावसायिक पत्र का नमूना

रबर स्टाम्प

प्रेषक का नाम :	पता
पद नाम	फैक्स संख्या ....
पत्र संख्या/संदर्भः.............	टेलीफोन नं. ....
पाने वाले का नाम	दिनांक : ....

पद नाम

कार्यालय

पूरा पता

विषयः ....

प्रिय महोदय/महोदया

पत्र की विषय—वस्तु

आभार या धन्यवाद ज्ञापन

समापन सूचक शब्द

भवदीय

टिप्पणी

हस्ताक्षर

(पूरा नाम)

पद नाम

संलग्नक : 1.

2.

3.

सूचनार्थ प्रतिलिपि

1. नाम व पता............
2. नाम व पता ....

पुनश्चः छूटा हुआ अंश लिखना

हस्ताक्षर

व्यावसायिक पत्रों को हम निम्नलिखित भागों में बांट सकते हैं–

1. दर (मूल्य) जानने के लिए
2. मूल्य–सूची मंगाने के लिए
3. वस्तु–विशेष का नमूना मंगाने के लिए
4. विक्रय–प्रस्ताव संबंधी पत्र
5. क्रयादेश संबंधी पत्र
6. व्यापारिक संदर्भ संबंधी पत्र
7. भुगतान संबंधी पत्र
8. बीमा–पत्र
9. बैंक पत्र
10. निविदा पत्र
11. एजेंसी लेन–देन संबंधित पत्र

व्यावसायिक पत्रों में संबोधन के लिए महोदय, प्रिय महोदय, मान्यवर व श्रीमान आदि का प्रयोग किया जाता है।

विषय : बिजली के बिल की शिकायत संबंधी पत्र

पंजीकृत

51/10, शांतिनगर, मेरठ

दिनांक : 20–5–2013

सेवा में
अधिशासी अभियंता
मेरठ बिजली सप्लाई कंपनी
(वितरण शाखा)
मेरठ

महोदय

विषय : मीटर–संख्या एम. एल. 1050

निवेदन है कि इस बार उक्त मीटर संख्या के संबंध में मेरे पास अत्यधिक बढ़ा हुआ बिल भेजा गया है। पिछले दस वर्षों के अभिलेख द्वारा स्पष्ट हो जाएगा कि मेरा बिल 350 रुपए से अधिक कभी नहीं आया। परंतु इस बार के बिल की देय धनराशि 900 रुपए से अधिक दिखाई गई है। मेरी समझ में नहीं आता, इतना बिल क्यों भेजा गया है।

आपसे निवेदन है कि आप इस मामले में गंभीरतापूर्वक आवश्यक जानकारी प्राप्त करके पता लगाएं कि किस प्रकार से लापरवाही करके उपभोक्ता को परेशान करने का प्रयास किया गया है।

आशा है, आप आवश्यक कार्यवाही करके संशोधित बिल भिजवाने की कृपा करेंगे। मूल बिल संलग्न है।

सधन्यवाद
भवदीय
ह. महीपाल सिंह

संलग्नक–1
बिजली का मूल बिल

नियुक्ति स्वीकृति–पत्र

25/15 नागर कॉलोनी
खतौली
दिनांक 15 मई, 2013

सेवा में

प्रबंधक
सर्वश्री जिंदल एंड कंपनी
लाल डिग्गी सरदारशहर

टिप्पणी

महोदय

मेरी नियुक्ति की स्वीकृति संबंधी आपका दिनांक 28.3.2013 का पत्र संदर्भ एल/252/2012–13 प्राप्त हुआ। धन्यवाद। मैं दिनांक 3.7.2013 को पूर्वार्द्ध कार्यभार संभालने हेतु आपके कार्यालय में उपस्थित होऊंगा।

सधन्यवाद

भवदीय
हस्ताक्षर
सौरभ मिश्रा

3. व्यावहारिक पत्र

पुत्र का माता के नाम पत्र

दिनांक : 5 अप्रैल, 2013
बी.आर. अंबेडकर होस्टल
महाराजा कालेज, दिल्ली

आदरणीय माता जी,

सादर चरण स्पर्श।

आपका पत्र मुझे समय पर मिल गया था, लेकिन विश्वविद्यालय परीक्षा में व्यस्त होने के कारण मैं पत्र का उत्तर तुरंत नहीं दे पाया। मेरी चिंता बिलकुल भी न करें, मैं ठीक प्रकार से हूं। अब मेरा स्वास्थ्य भी ठीक है। यहां मेरी पढ़ाई ठीक चल रही है। सभी प्रोफेसर अच्छे और छात्रों के शुभचिंतक हैं। वे खूब मन लगाकर पढ़ाते हैं और छात्रों की समस्याओं पर भी अच्छी तरह से ध्यान देते हैं।

होस्टल के वार्डन तो हम लोगों की फिक्र अपने बच्चों की तरह करते हैं। वे हमेशा इस बात का ध्यान रखते हैं कि छात्रों को किसी प्रकार का कष्ट न हो। मेरे कमरे का साथी भी बहुत अच्छा है। वह जयपुर का रहने वाला है। वहां उसके पिता जी का सोने–चांदी का कारोबार है। उसका व्यवहार मेरे प्रति भाई जैसा है। सायंकाल को हम लोग विश्वविद्यालय के क्रीड़ा मैदान पर हॉकी और वॉलीबाल खेलते हैं। विश्वविद्यालय की हॉकी की टीम में सदस्य के रूप में मेरा चयन हो गया है। टीम शीघ्र ही अंतर–विश्वविद्यालयी हॉकी प्रतियोगिता में भाग लेने के लिए कोलकाता जाएगी। आप आशीर्वाद दें कि हमारी टीम विजयी होकर लौटे। मैं दशहरे की छुट्टियों में घर आऊंगा।

आप अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखें तथा पत्र का उत्तर शीघ्र देने की कृपा करें। रामू एवं राजी को आशीर्वाद। पिता जी को चरण स्पर्श।

आपका प्यारा बेटा

शिवांश

परीक्षा में असफल हो जाने पर भाई को धैर्य बंधाने हेतु पत्र

टिप्पणी

125–डी, साकेत, जयपुर

दिनांक : 3 मई, 2013

प्रिय चिरंजीव अनिल,

शुभ आशीर्वाद।

आशा है, तुम सकुशल होंगे। मुझे पिता जी द्वारा भेजे गए पत्र से ज्ञात हुआ कि तुम विश्वविद्यालय की मुख्य परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो गए हो। यह जानकर मुझे बहुत दुःख हुआ। मैं कभी सोच भी नहीं सकता था कि तुम विश्वविद्यालय की परीक्षा में फेल हो सकते हो। अवश्य ही कोई विशेष कारण रहा होगा जो तुम उत्तीर्ण नहीं हो पाए।

खैर, जो हुआ उसे अब भूल जाओ। दुःखी होने की आवश्यकता नहीं है। मत भूलो कि ''गिरते हैं शहसवार ही मैदान–ए–जंग में''। इस बार मैं कुछ और किताबें भेज रहा हूं। विश्वविद्यालय की परीक्षा के फार्म अगले माह निकलने वाले हैं। अभी से पूर्ण मनोयोग के साथ पढ़ाई शुरू कर दो। यदि जरूरत समझो तो ट्यूशन ले लेना। अन्य किसी मदद की आवश्यकता हो तो लिखना। मैं शीघ्र ही एक सप्ताह की छुट्टी लेकर घर आऊंगा। तब इस बारे में विस्तार से बात करेंगे।

पिता जी व माता जी को चरण स्पर्श। सोनू व प्रीति को आशीर्वाद।

सस्नेह

तुम्हारा शुभचिंतक
रंजन गर्ग

4. सामाजिक पत्र

पुरस्कार प्राप्ति पर बधाई पत्र

55/35, रेलवे रोड, सहारनपुर

दिनांक : 3 अप्रैल, 2013

प्रिय योगेश,

आज के समाचार–पत्र में यह पढ़कर बहुत प्रसन्नता हुई कि तुम्हें अपनी श्रेष्ठ रचना 'क्षितिज के पार' पर वर्ष 2008 का 'साहित्य श्री' पुरस्कार प्रदान करने की घोषणा भाषा साहित्य सम्मेलन द्वारा की गई। मेरे विचार से हिंदी–साहित्य जगत में यह श्रेष्ठ पुरस्कार है। इसे प्राप्त करना वास्तव में असामान्य प्रतिभा का द्योतक है। इस दृष्टि से यह स्पृहणीय भी है। यह तुम्हारे अनवरत अध्ययन एवं अध्यवसाय का सुफल है। इसके लिए हार्दिक बधाई स्वीकार करो। ईश्वर से प्रार्थना है कि भविष्य में तुम्हें इससे भी उच्चतर श्रेणी का पुरस्कार व सम्मान मिले।

टिप्पणी

तुम्हारे इस प्रकार पुरस्कृत होने पर हमारे समस्त मित्र एवं शुभचिंतक अपने–आपको गौरवान्वित अनुभव करते हैं।

हिंदी के प्रति की गई तुम्हारी सेवाएं चिरस्मणीय रहेंगी। हमारी हार्दिक कामना है कि तुम अधिकाधिक उत्साह से मां भारती के भंडार को भरने में संलग्न रहो।

तुम्हारा शुभाकांक्षी

मनोज

5. वैवाहिक पत्र

मान्यवर

श्रीमती एवं श्री...

20/2, शास्त्री नगर, मेरठ

अपनी सुपुत्री

सौभाग्याकांक्षिणी ....

एवं

चिरंजीव ....

(सुपुत्र श्रीमती एवं श्री ....)

के

विवाह के शुभ अवसर पर

आपको सपरिवार सादर निमंत्रित करते हैं। कृपया कार्यक्रमानुसार सपरिवार सम्मिलित होकर उत्सव की शोभा बढ़ाएं और नव–युगल को आशीर्वाद प्रदान कर हमें कृतार्थ करें।

उत्तराकांक्षी	दर्शनाभिलाषी
....	....
....	....

वैवाहिक कार्यक्रम

दिनांक ....

स्वागत बारात........................6 बजे सायः

वर स्वागत .... 10 बजे रात्रि

दिनांक ....

विदाई..............................तारों की छांव में

व्यक्तिगत पत्र

ऋण के लिए आवेदन पत्र

सेवा में

वरिष्ठ शाखा प्रबंधक
पूजा फाइनेंस कंपनी
चौमू

महोदय

सप्रेम नमस्कार।

निवेदन है कि मैं निजी क्षेत्र की कंपनी अमर सेल्स कारपोरेशन चौमू में स्थायी तौर पर सहायक निरीक्षक के पद पर कार्यरत हूं। मैं पिछले 30 वर्ष से उक्त कंपनी में नौकरी कर रहा हूं।

मैं अपनी बेटी की शादी के लिए आपकी कंपनी से दो लाख रुपए का ऋण लेने का इच्छुक हूं, जिसकी अदायगी मैं किश्तों में निर्धारित समय पर करता रहूंगा। ऋण की प्रतिभूति स्वरूप मैं अपनी भूमि और मकान के कागजात आपके पास रखने के लिए तैयार हूं। कृपया कंपनी के नियम व शर्तों के अनुरूप मुझे यथाशीघ्र ऋण देने की कृपा करें ताकि मैं ठीक प्रकार से अपनी बेटी का विवाह संपन्न करा सकूं।

कृपया इस संबंध में अपने निर्णय से शीघ्र अवगत कराने का कष्ट करें।

सधन्यवाद।
आवेदक

....

....

पता......................

दिनांक...............

- **निबंध**

आधुनिक निबंधों के जन्मदाता फ्रांस के मौन्तेन माने जाते हैं। निबंध की परिभाषा देते हुए उन्होंने कहा है– "निबंध विचारों, उद्धरणों एवं कथाओं का सम्मिश्रण है।" उन्होंने आगे कहा है– "अपने निबंधों का विषय स्वयं मैं हूं। ये निबंध अपनी आत्मा को दूसरों तक पहुंचाने का प्रयत्न है। इनमें मेरे निजी विचारों और कल्पनाओं के अतिरिक्त और कुछ नई बात नहीं है।" इन परिभाषाओं से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि (1) निबंध में निबंधकार स्वयं को अभिव्यक्त करता है, तथा (2) वह पाठक से अंतरंग रिश्ता स्थापित करता है।

निबंध का शाब्दिक अर्थ है बांधना अर्थात क्रमहीन विचारों को भाषा के माध्यम से क्रम प्रदान करना। 'कल्पद्रुम' के अनुसार नि बन्ध + धम – निश्चवर्यिन विषयम

अधिकृत्य बन्धनम्। अर्थात किसी निश्चित विषय पर विचारों को सूचीबद्ध करना निबंध कहलाता है।

टिप्पणी

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने निबंधकार की अभिव्यक्ति को ही निबंध की प्रमुख विशेषता कहा है। उनके अनुसार, "आधुनिक पाश्चात्य लक्षणों के अनुसार निबंध उसी को कहना चाहिए, जिसमें व्यक्तिगत विशेषता हो।" अर्थात निबंध में निबंधकार खुलकर पाठक के सामने आता है। वह निःसंकोच व निर्भीक होकर जो कुछ अनुभव करता है उसे ही अभिव्यक्त करता है। 'प्रवाह' निबंध का सौंदर्य है। निबंधकार पाठक को अनायास ही भावधारा में प्रवाहित करवाता है। गहन और तीव्र अनुभूतियों का निबंध भावात्मक प्रकाशन होता है। उसमें भाव आकुल–व्याकुल होकर सहज रूप में सामने आ जाते हैं। उनमें कहीं रुकावट नहीं होती और न ही टकराव होता है। यही कारण है कि निबंध में कोई सीमा–रेखा नहीं होती है। संसार की किसी भी वस्तु को लक्ष्य बनाकर निबंध की रचना की जाती है क्योंकि विषय तो एक बहाना मात्र होता है, मुख्य लक्ष्य निबंध के माध्यम से आत्म प्रकाशन करना/करवाना होता है।

निबंध मानसिक प्रतिक्रियाओं, भावनाओं एवं विचारों का संवरा हुआ रूप होता है। निबंधकार जीवन के छोटे–छोटे चित्र खींचता है। जीवन के किसी कोने में झांककर वह जो कुछ पाता है और उसके मन में जो प्रतिक्रिया होती है उसे ही निबंधकार निबंध के रूप में व्यक्त करता है और अपना पूरा व्यक्तित्व उसमें निमग्न कर देता है। वह किसी सिद्धांत या नियम का प्रतिपादन नहीं करता है, अपितु मनोनीत विषय को अपने व्यक्तित्व के रस में भिगोकर अभिव्यक्त करता है।

कुछ लोग निबंध, प्रबंध और लेख में कोई अंतर नहीं मानते हैं। लेकिन इनमें कुछ स्पष्ट अंतर होता है। प्रबंध में लेखक का व्यक्तित्व उभरकर नहीं आता। लेखक परोक्ष रूप में रहकर अपने ज्ञान–चातुर्य, सूक्ष्म दृष्टि, प्रकाशन पद्धति और भाषा–शैली का आधार लेता है। प्रबंध आकार में निबंध से दस गुना बड़ा होता है। उसमें निबंध की अपेक्षा विद्वता अधिक होती है। निबंध में निजी अनुभूति और विचार का प्राधान्य होता है और प्रबंध में समाजशास्त्र, लोक संग्रह और पुस्तकीय ज्ञान का। प्रबंधकार अपने बारे में कुछ नहीं कहता, किंतु निबंधकार अपनी पसंद–नापसंद, आचार–विचार के संबंध में खुलकर पाठकों से विचार–विमर्श करता है। प्रबंध की भाषा और शैली प्रौढ़, गंभीर और नपी–तुली होती है। प्रसाद गुण निबंध की आत्मा है किंतु प्रबंध के विषय गंभीर और ज्ञानपूर्ण होते हैं। निबंध का विषय कोई भी प्रसंग, भावना, वस्तु या स्थल बन सकता है क्योंकि वहां निबंध के विषय की अपेक्षा निबंधकार अधिक महत्वपूर्ण होता है।

निबंध और प्रबंध की भांति 'निबंध' और लेख में भी अंतर है। 'लेख' वह रचना है जो विषय का स्पष्ट और स्वतंत्र निरूपण करती है। प्रबंध की तरह लेख भी विषयगत होता है। पूर्णरूप से विषय का प्रतिपादन लेख की प्रधान विशेषता है। इसमें लेखक की आत्माभिव्यक्ति का अभाव नहीं रहता पर उसकी प्रधानता भी नहीं रहती, जबकि आत्माभिव्यक्ति निबंध का लक्ष्य है।

निबंध की शैली

टिप्पणी

लिखने के लिए दो बातों की आवश्यकता होती है—भाव और भाषा। भाव और भाषा को समन्वित करने के ढंग को 'शैली' कहा जाता है। अच्छी शैली वह है जो पाठक को प्रभावित करती है। अच्छी शैली में भाषा भाव के लिए भार स्वरूप नहीं होती। अपितु, वह पाठकों को भाव हृदयंगम कराने में मार्गदर्शक का काम करती है। इसके विपरीत जो शैली पाठक को शब्द जाल में फंसाकर रखती है तथा उसकी सारी शक्ति शब्दों की उलझन से निकलने में लग जाती है उसे अच्छी शैली नहीं कहा जाता।

भाषा दृष्टिकोण से दो शैलियां मानी जाती हैं– (1) प्रसाद शैली, (2) समास शैली।

1. **प्रसाद शैली**– इस शैली का लक्ष्य सुबोधता है। सहजता इस शैली का प्रधान गुण होता है। इसमें वाक्य सरल होते हैं। प्रसाद शैली में गंभीर भावों को साधारण शब्दों में व सहज रूप में अभिव्यक्त किया जाता है।
2. **समास शैली**– किसी बात को साधारण भाषा में न कहकर कठिन शब्दों व असामान्य भाषा के द्वारा कहना ही 'समास शैली' है। इसकी भाषा कठिन, दुरूह, जटिल होती है व तत्सम् शब्दों का प्रयोग किया जाता है। तत्सम् शब्दों को संधि समासादि के द्वारा और भी जटिल बना दिया जाता है। वाक्य मिश्र व संश्लिष्ट होते हैं। इसमें भाव के कारण भाषा जटिल नहीं होती अपितु भाषा की जटिलता ही भावग्रहण करने में बाधक होती है। यह शैली उन्हीं लेखकों के लिए उपयुक्त है जिन्हें वस्तुतः कुछ कहना भी नहीं है केवल वाग्जाल का निर्माण करना है।

दोनों शैलियों में से प्रसाद शैली को अच्छा माना गया है। फिर भी निबंध की कोई निश्चित शैली नहीं होती। निबंध शैली स्वयं में स्वतंत्र है।

निबंध के प्रकार

व्यक्ति अपने विचारों को भाषा द्वारा अभिव्यक्त करता है किंतु उसके विचार उसके अपने और वातावरण की क्रिया, अंतःक्रिया का परिणाम हैं– आंतरिक प्रतिक्रिया एवं बाह्य। इसी प्रकार इनसे दो प्रकार का साहित्य सृजित होगा– 1. आत्मानुभूति व्यंजक साहित्य, 2. बाह्यानुभूति व्यंजक साहित्य।

1. **आत्मानुभूति व्यंजक साहित्य**– आत्मानुभूति व्यंजक साहित्य में निम्न प्रकार के निबंधों की रचना होगी–

   (क) भावात्मक निबंध रचना

   (ख) विचार–प्रधान निबंध रचना।

   भावात्मक निबंध– भावात्मक निबंधों का संबंध हृदय से है। इनमें बुद्धि तत्व की अपेक्षा भाव तत्व की प्रधानता रहती है। इनमें मनोवेगों की प्रबलता रहती है। वे चाहे रागात्मक हो या व्यंग्यात्मक किंतु इस प्रकार के निबंधों का लक्ष्य रस संचार रहता है।

टिप्पणी

विचार–प्रधान निबंध– इस प्रकार के निबंधों में विचारात्मकता का प्राधान्य होता है। इनमें विचारों का तर्कशील, चिंतनशील तथा विवेचनशील संयोजन रहता है। दार्शनिक, आध्यात्मिक, मनोवैज्ञानिक, साहित्यिक तथा सामाजिक विषयों पर निबंध लिखे जाते हैं।

2. **बाह्यानुभूति व्यंजक साहित्य**– बाह्यानुभूति व्यंजक साहित्य में निम्न प्रकार के निबंधों की रचना होती है–

   (क) कथात्मक निबंध रचना।

   (ख) वर्णनात्मक निबंध रचना।

   कथात्मक निबंध– इस प्रकार के निबंध ऐतिहासिक घटनाओं पर अथवा साहित्यिक सूत्रों पर आधारित होते हैं। ऐतिहासिक चरित्रों को छात्र अपने पूर्व अध्ययन से करने का प्रयास करते हैं।

   वर्णनात्मक निबंध– इस प्रकार के निबंधों में प्राकृतिक उपकरणों, भौतिक पदार्थों, घटनाओं, दृश्यों, वातावरण आदि का वर्णन होता है। निबंधों में यथार्थ के साथ कल्पना का समावेश पूर्ण रूप से रहता है।

निबंध की विशेषताएं

निबंध की चार प्रमुख विशेषताएं निम्न मानी जाती हैं–

1. **व्यक्तित्व का प्रकाशन**– निबंध में निबंधकार अपने सहज स्वाभाविक रूप में पाठक के सामने प्रकट होता है। वह पाठक से मित्र की भांति खुलकर सहज भाव से बातचीत करता है। अतः व्यक्तित्व प्रकाशन ही निबंध की सर्वप्रथम विशेषता है।
2. **संक्षिप्तता**– निबंध जितना छोटा होता है, जितना अधिक गठा होता है, उसमें उतनी ही गहन अनुभूतियां भरी होती हैं। इन अनुभूतियों से ही उनमें तीव्रता आती है। फलतः निबंध का प्रभाव पाठक पर सबसे अधिक पड़ता है। निबंध की सफलता–श्रेष्ठता उसकी संक्षिप्तता है।
3. **एक–सूत्रता**– आचार्य रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में "निबंध में व्यक्तिगत विशेषता का अर्थ यह नहीं है कि उसके प्रदर्शन के लिए विचारों की शृंखला रखी न जाए या जान–बूझकर उसे जगह से तोड़ दिया जाए, भावों की विचित्रता दिखाने के लिए अर्थ योजना की जाए, जो अनुभूति के लोक सामान्य स्वरूप से कोई संबंध ही न रखे।"
4. **अन्विति का प्रभाव**– जिस प्रकार एक चित्र की अनेक असंबद्ध रेखाएं आपस में मिलकर एक संपूर्ण चित्र बना पाती हैं अथवा एक माला में अनेक पुष्प एक सूत्र में बंधकर माला का रूप धारण करते हैं, उसी प्रकार निबंध के सभी विचार, भाव और आवेग आपस में अन्वित होकर संपूर्णता के प्रभाव की सृष्टि करते हैं।

5. **तर्कसंगत विचार शृंखला**– विषय प्रतिपादन में आत्म–अभिव्यंजना के साथ तार्किक विचारधारा मुख्य भाव का विश्लेषण और संश्लेषण करती हुई चलती है। इन वैचारिक निबंधों में केंद्रीय भाव की स्पष्टता पर जोर दिया जाता है।
6. **आत्मनिष्ठता**– आत्मनिष्ठता भी निबंध की विशेषता है। प्रसिद्ध निबंधकार फ्रांसिस बेकन ने विषय–प्रतिपादन को महत्व न देकर आत्माभिव्यक्ति को प्रमुखता दी है।
7. **यथा प्रसंग व्यक्तित्व की अभिव्यंजना**– आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने निबंध के विषय में माना कि विषय–प्रतिपादन चाहे किसी भी शैली में किया जाए परंतु उसे मुख्य विचार शैली से कभी नहीं हटना चाहिए जिससे पाठक एक नई दृष्टि के साथ उद्‌बुद्ध होकर चिंतन–मनन कर सकें। इस शैली में लेखक आवश्यकतानुसार वैयक्तिक रुचियों, धारणाओं, प्रतिक्रियाओं, व्यंग्य–विनोद, हास–परिहास से पाठक को बांध सकता है। निबंधकार हृदय पक्ष तक तभी पहुंच सकता है जब स्वयं उसका व्यक्तित्व उसमें पूरी तरह से उतर जाए।
8. **सरलता और सजीवता**– सरलता और सजीवता निबंध की प्रमुख विशेषता हैं। लेखक की भाषा–शैली एवं विचार इतने सरल होने चाहिए कि पाठक को उसे समझने के लिए किसी कठिनाई का अनुभव न हो। निबंधों का वर्णन सजीवता लिए हो जिससे पाठक को उसमें रुचि हो। विद्यानिवास मिश्र जी के निबंधों में पर्याय सजीवता के दर्शन होते हैं।
9. **सहजता**– निबंधों की एक विशेषता सहजता एवं स्वाभाविकता होनी चाहिए जिससे पाठक उसे अपने जीवन के साथ एकाकार होते हुए देख सके।
10. **रोचकता**– विषय की रोचकता, साहित्यिकता एवं स्वाभाविकता पाठक को अपने साथ बांधे रखती है। रोचकता के लिए निबंधकार, विचारों की गहनता, भाषा–प्रवणता, सरलता, काव्यात्मकता, हास्य–व्यंग्यता, रमणीयता और माधुर्यता में संतुलन बनाकर गंभीर से गंभीर विषय को भी रोचक बना देते हैं। रोचक होने के साथ–साथ ये विषय संदेशपरक भी बन जाते हैं, जो लोकमंगल का आदर्श अपने साथ लेकर चलते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के निबंधों में रोचकता विद्यमान है। इनका 'चिंतामणि' ग्रंथ निबंध की कसौटी पर खरा उतरता है।

निबंध की भाषा–शैली

निबंध में भाषा के सर्वमान्य, व्याकरण सम्मत व मानक रूप का प्रयोग किया जाता है। कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक विचार व्यक्त किए जाते हैं। विषय वस्तु के साथ न्याय किया जाता है। निबंध में विषय सामग्री को तार्किक क्रम में प्रस्तुत किया जाता है। निबंध का विषय क्षेत्र व्यापक होता है। विषयांतर का त्याग व पुनरावृत्ति का बहिष्कार किया जाता है। विचारों की नूतनता व विषय से संबंधित विभिन्न पक्षों की

जानकारी दी जाती है। निबंध के माध्यम से शब्द, व्याकरण पक्ष, सूक्तियों, मुहावरों व लोकोक्तियों का ज्ञान दिया जा सकता है। शुद्ध उच्चारण, उचित पठन गति, आरोह–अवरोह, अर्थग्रहण, अभिव्यक्ति का विकास, श्रवण क्षमता का विकास आदि के द्वारा निबंध भाषायी कौशल के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

भाषा की दृष्टि से निबंध में सरल, शुद्ध व्याकरण सम्मत, रोचक, प्रभावशाली व सजीव भाषा होती है।

निबंध का शिल्प विधान

निबंध का कोई विशिष्ट शिल्प विधान नहीं होता लेकिन एक सुगठित निबंध में तीन बिंदुओं पर ध्यान दिया जाता है– 1. विषय निरूपण/भूमिका, 2. व्याख्या/मध्य भाग, 3. निष्कर्ष/उपसंहार।

भूमिका में विषय का परिचय व उनकी योजना का प्रतिपादन होता है। मध्य भाग निबंध का मूल भाग होता है। इसमें सभी आवश्यक बातों का रुचिपूर्ण शैली में विवरण होता है। प्रधान विचारों का स्पष्टीकरण होता है। इसमें विचारों की क्रमबद्धता पाई जाती है। प्रधान विचारों के लिए पृथक–पृथक अनुच्छेद होते हैं। विचारों को प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त उदाहरण दिए जाते हैं। विद्वानों की उक्तियों से अपने विचारों का समर्थन किया जाता है। असंगत बातों का परिहार किया जाता है। निबंध का एकाएक समापन नहीं किया जाता अपितु उसके लिए कम से कम एक अनुच्छेद होता है जिसे उपसंहार कहा जाता है। इसमें निबंध का परिणाम या सार निहित होता है। यह निबंध की पराकाष्ठा व निचोड़ होता है।

निबंध शिक्षण के उद्देश्य

1. छात्रों की अभिव्यक्ति का विकास करना।
2. शब्द, सूक्ति, मुहावरों व लोकोक्तियों का ज्ञान कराना।
3. सृजनात्मक व साहित्यिक रचना करने की क्षमता का विकास करना।
4. देश, जाति, धर्म आदि के प्रति आदर भाव उत्पन्न करना।
5. विचारों की एकता बनाए रखने की कुशलता उत्पन्न करना।
6. सामाजिक आदर्शों का बोध।
7. निरीक्षण, बोध, कल्पना व विवेचना शक्ति का विकास करना।
8. चित्त–वृत्तियों का परिमार्जन करना।
9. विषय क्षेत्र की व्यापकता को समझना।
10. पुनरावृत्ति के बहिष्कार को ध्यान में रखना।
11. साहित्य अध्ययन के प्रति रुचि उत्पन्न करना।
12. कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक विचारों को व्यक्त करने की क्षमता लाना।

13. विषय सामग्री को तार्किक क्रम में प्रस्तुत करने के कौशल का विकास करना।
14. मानव जीवन के विविध पक्षों का ज्ञान कराना।
15. निबंध के विभिन्न भेदों का ज्ञान कराना।
16. गद्य की विभिन्न शैलियों का ज्ञान कराना।
17. किसी बात को संक्षिप्त व विस्तृत रूप में कहने की योग्यता का विकास करना।
18. निबंधकार के व्यक्तित्व को समझ सकना।
19. विचारों की नूतनता को समझना।
20. विभिन्न विषयों के क्षेत्रों से संबंधित जानकारी देना।
21. विषयांतर को त्यागने की ओर ध्यान दिलाना।
22. निबंध लिखने के प्रति रुचि की भावना जाग्रत करना।
23. पर्यवेक्षक शक्ति की उचित शिक्षा प्रदान करना।
24. विद्यार्थियों को स्पष्टता तथा शुद्धतापूर्वक लिखने में समर्थ बनाना।
25. तर्क शक्ति का विकास करते हुए क्रमिक अभिव्यक्ति की दक्षता प्रदान करना।
26. क्रमिक रूप से भाषा सौंदर्य की ओर जाने का प्रयास करना।
27. स्थायी साहित्य के सृजन की प्रेरणा देना।

निबंध की विधियां

निबंध लिखने की विधियां निम्न हैं–

1. **देखो और रचो विधियां**– इसकी सार्थकता केवल आरंभिक कक्षाओं के लिए है। इसमें किसी भी चित्र को देखकर बालक उसके सहारे अपने भावों को व्यक्त करने का प्रयास करता है। आरंभिक अवस्था में निबंध लिखना सिखाने के लिए इस विधि का प्रयोग किया जा सकता है।
2. **प्रश्नोत्तर विधि या प्राचीन विधि**– प्रश्न बड़ी स्पष्टता तथा सुदृढ़ता से प्रस्तुत किये जाते हैं। उत्तर स्वरूप प्राप्त हुई सामग्री के आधार पर शिक्षक कुछ संकेत श्यामपट्ट पर लिखता जाता है। इस प्रकार सूत्रों की समाप्ति के बाद निबंध लिखने का आदेश दिया जाता है। इस विधि का आरंभ सुकरात द्वारा किया गया है तथा इस विधि को सुकरात विधि भी कहते हैं।
3. **सूत्र विधि**– इस विधि में विद्यार्थियों के लिए कुछ उपयोगी सूत्र श्यामपट्ट पर लिख दिये जाते हैं। इन सूत्रों का निबंध लेखन में विधिवत विकास विद्यार्थियों द्वारा किया जाना चाहिए। ये सूत्र विद्यार्थियों के पूर्व–ज्ञान से जुड़े हुए होने चाहिए। छात्रों को अभिव्यक्ति के लिए अधिक से अधिक मौके और अवसर दिए जाने चाहिए जिससे विद्यार्थी स्वतंत्र अभिव्यक्ति सीख सकें।

विद्यार्थियों को विभिन्न शैलियों से भी परिचित करा दें जिससे विद्यार्थी अपनी रुचि व योग्यता के अनुसार शैली का चयन कर सकें।

टिप्पणी

4. **प्रवचन विधि**– इस विधि में अध्यापक का कार्य प्रमुख होता है। अध्यापक को मौखिक रूप से क्रमबद्ध प्रवचन द्वारा संपूर्ण निबंध कक्षा में प्रस्तुत करना होगा। इस विधि के द्वारा छात्रों की कल्पना, तर्क, विचारशक्ति आदि का विकास नहीं होता है। अतः इस विधि का चयन न के बराबर किया जाना चाहिए। अर्थात कम से कम किया जाना चाहिए।
5. **स्वाध्याय व मंत्रणा विधि**– स्वाध्याय विधि में शिक्षक, शीर्षक बनाना अपना दायित्व समझता है। शेष कार्य विद्यार्थी करते हैं। मंत्रणा विधि के शिक्षक केवल पथ प्रदर्शन करते हैं। शीर्षक बताकर उससे संबंधित पुस्तकों की सूची बता देना शिक्षक का कार्य है। विद्यार्थी स्वयं पुस्तकों में से विषय से संबंधित पढ़कर आते हैं और उसके पश्चात निबंध लेखन किया जाता है।
6. **अनुकरण और आदर्श विधि**– निबंध को विद्यार्थियों के सम्मुख प्रस्तुत किया जाना चाहिए। भाषा शैली की दृष्टि से श्रेष्ठ और सुंदर आदर्श उनके सामने रखे जाएं। रुचिकर लगने वाली रचनाओं को छात्र बड़ी गंभीरता से ग्रहण करते हैं। इस विधि का प्रयोग केवल निबंध के प्रारंभिक रूप को सिखाने के लिए किया जाना चाहिए।
7. **वाद–विवाद या तर्क विधि**– वाद–विवाद वाले विषयों हेतु इस विधि का प्रयोग किया जाता है। इसी कारण इसका क्षेत्र सीमित है। विद्यार्थियों को विषय एक–दो दिन पहले बता देना चाहिए और संपूर्ण कक्षा को उसके पक्ष और विपक्ष में तैयार होने का आदेश देना चाहिए। फिर किसी निश्चित चक्र में दो दलों में वाद–विवाद करने का अवसर देना चाहिए। अधिकतर तर्कपूर्ण विषय–सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं युद्ध संबंधी समस्याओं को लेकर होते हैं। मौखिक वाद–विवाद के उपरांत निबंधात्मक शैली के रूप में उन्हें लिखने का आदेश देना चाहिए।

निबंध का अध्ययन–अध्यापन

निबंध को पूर्ण रूप से समझने के लिए एक कुशल शिक्षक को निम्नलिखित बिंदुओं को समझना आवश्यक है–

(क) **निबंध की विषय–वस्तु**– निबंध के विषय की अभिव्यक्ति चाहे किसी शैली में हो उसकी विषय–वस्तु को अध्यापक लेखक की दृष्टि से ही समझे। निबंध चाहे सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, राजनैतिक, आर्थिक, वैज्ञानिक किसी भी विषय का हो, गूढ़ विचारों को भी सरल रूप में प्रस्तुत करना ही अध्यापक का कार्य होता है। उसके अंतर्गत तथ्य, भाव एवं विचार के मर्म को समझकर छात्रों तक पहुंचाना अध्यापक की निपुणता है।

(ख) **विषय–वस्तु प्रस्तुत करने का उद्देश्य**– एक अच्छे अध्यापक को विद्यार्थियों को निबंध का लक्ष्य अवश्य बताना चाहिए। इस बात का विचार करना चाहिए कि निबंध का उद्देश्य भावात्मक है या सिद्धांत प्रतिपादन से पाठक का ज्ञान–वर्धन हो रहा है। अध्यापक को निबंध के तथ्य, दृश्य, व्यापार, विवरण आदि को अच्छे से बच्चों तक पहुंचाना चाहिए ताकि विद्यार्थियों का हिंदी भाषा, उसके कौशलों का और विचारात्मक विकास हो।

(ग) **निबंधकार का दृष्टिकोण**– लेखक ने क्या सोचकर, किस दृष्टिकोण को अपने विचार का आधार बनाया है। उसके तथ्य, आवेग, संवेग, पूर्वाग्रह तथा प्रतिक्रियाएं क्या कहना चाहते हैं, जैसे– शुक्ल जी के निबंध उन घटनाओं को लेते हैं जो विषय–प्रतिपादन में विचारों की सूक्ष्मता प्रस्तुत कर सकें। एक अच्छा शिक्षक निबंध के मर्म को समझकर अपने शिक्षार्थियों को उस उदात्तता की ओर ले जाता है, जहां लेखक स्वयं बैठा होता है।

(घ) **निबंध की भाषा–शैली**– निबंध की समस्त विशेषता तो उसकी भाषा–शैली में होती है। विषय प्रस्तुत करने में लेखक ने उर्दू शब्दावली का प्रयोग किया है या तत्सम संस्कृत शब्दावली का; बिंब, उदाहरण संस्मरण का विषय में क्या स्थान है? अर्थबोध के लिए छोटे–बड़े सभी विचार किस भाषा शैली में उद्देश्य की ओर ले जाते हैं; शिक्षक उस शैली को समझकर, निबंध के तर्क–वितर्क तथा निष्कर्षों को छात्रों में संप्रेषित कर सकता है। यदि वह निबंध में भी आनंद के विभिन्न तत्वों को खोज सके और छात्रों को उनका अनुभव करा सके तो अध्यापन सरल हो सकता है।

निबंध–शिक्षण प्रक्रिया

निबंध–शिक्षण में विभिन्न सोपानों के आधार पर शिक्षक विषय–वस्तु का प्रतिपादन करता है। पाठ का विकास निम्नलिखित क्रम में किया जा सकता है। इसके दो आधार हैं। कुछ लोग पहले सोपान को अध्यापन का केंद्र बताते हैं, कुछ लोग दूसरे सोपान को। लेकिन मुख्य उद्देश्य प्रस्तुतीकरण की कुशलता है।

प्रथम सोपान

- सामान्य उद्देश्य
- विशिष्ट सामग्री
- सहायक सामग्री
- पूर्व–ज्ञान
- प्रस्तुतीकरण
- आदर्श–पाठ (शिक्षक द्वारा)
- अनुकरण पाठ (शिक्षार्थी द्वारा)

टिप्पणी

- भाषिक कार्य (शब्दार्थ द्वारा)
- विषय–वस्तु बोध
- मौन पाठ
- मूल्यांकन
- गृहकार्य

द्वितीय सोपान

- सामान्य उद्देश्य
- विशिष्ट उद्देश्य
- सहायक सामग्री
- पूर्वज्ञान
- प्रस्तावना
- प्रस्तुतीकरण
- मौन पाठ (शिक्षार्थी द्वारा)
- बोध एवं केंद्रीय भावग्रहण
- विषय–वस्तु बोध, भाषा कार्य
- आदर्शपाठ (शिक्षक द्वारा)
- सस्वर पाठ (शिक्षार्थी द्वारा)
- मूल्यांकन
- गृहकार्य

उपर्युक्त सोपानों पर ध्यान दें तो हमें यह पता चलता है कि दोनों सोपानों की मूल क्रियाएं समान हैं भेद तो केवल क्रम का है, एक शिक्षक अपने विषयानुसार कोई भी सोपान चुन सकता है।

इन सोपानों में भिन्नता के दो आधार हैं–

1. निबंध शिक्षण या तो सस्वर पाठ से प्रारंभ हो या फिर मौन पाठ से।
2. भाषा को सुधारने का कार्य, विषय–वस्तु के स्पष्टीकरण के कार्य के साथ–साथ हो या बाद में।

निबंध पाठ–शिक्षण में मौन पाठ का महत्व

प्राथमिक स्तर पर गद्य शिक्षण आदर्श–पाठ से प्रारंभ होना चाहिए क्योंकि जब विद्यार्थी गद्य को बोल–बोल कर पढ़ता है तो उसकी बहुत सी यांत्रिक गतिविधियां सुधरती हैं। जैसे– बच्चे का उच्चारण, अनुतान, आरोह–अवरोह, बलाघात, गति, यति आदि सभी स्थलों में विकास होता है।

माध्यमिक स्तर पर मौन–पाठ से निबंध–शिक्षण प्रारंभ करना चाहिए क्योंकि इससे बच्चे मन–मन में ही पढ़कर अर्थ ग्रहण करते हैं, निबंध के भाव को समझने का प्रयास करते हैं, इसके द्वारा वह उस विषय के बारे में चिंतन–मनन करते हैं, अपनी ओर से निष्कर्ष निकालते हैं अतः विद्यार्थियों के लिए वह पाठ्य और भी सरल हो जाता है।

टिप्पणी

मौन–पाठ द्वारा विद्यार्थियों में एकाग्रता उत्पन्न होती है, जो उनको पाठ के प्रमुख लक्ष्य की ओर ले जाती है। मौन–पाठ के द्वारा ही विद्यार्थी गहन विचार करने में सफल हो जाते है, जिससे उनकी सोचने की क्षमता, सही–गलत का ज्ञान आता है। एक अच्छा शिक्षक विद्यार्थी को मौन–पाठ के लिए हमेशा प्रेरित करता है, हो सकता है कि शुरुआत में विद्यार्थी को अर्थग्रहण करने में मुश्किल हो, पर समय के साथ वह यह सीख जाता है। कुछ भाषा–शिक्षाशास्त्रियों का मत है कि मौन–पाठ, पाठ–स्पष्टीकरण तथा भाषा कार्य के बाद ही करवाना चाहिए। इससे वह विचारों को समझकर तार्किक एवं बौद्धिक प्रश्नों का उत्तर दे सकता है। दोनों ही विचारधाराएं विद्यार्थी के लाभ के लिए हैं।

अध्यापक विषयानुसार मौन–पाठ करवा सकता है। मौन–पाठ के द्वारा बच्चे कुछ ही दिनों में बोध–प्रश्नों का उत्तर देने लगते हैं तथा खुद ही प्रश्नों की कल्पना करते हैं। अधिक प्रश्न सोचने के लिए, उनमें रुचि जाग्रत होती है और बच्चे ध्यान लगाकर मौन–पाठ करते हैं।

माध्यमिक स्तर पर मौन–पाठ सस्वर पाठ से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि अर्थग्रहण मौन–पाठ से अधिक मात्रा में होता है।

मातृभाषा शिक्षण में सस्वर–वाचन से बच्चे उच्चारण की विशेषताओं से परिचित हो जाते हैं। किस विचार पर किस तरह से आरोह–अवरोह लाना है जिससे मुख्य बात प्रभावशाली ढंग से श्रोता के समक्ष आ सके। यह कार्य कक्षा 5 तक उपयोगी है, लेकिन उसके बाद मौन पाठ ही उपयुक्त है।

गद्य–शिक्षण में वातावरण निर्माण तथा सजीवता लाने के लिए आदर्श–वाचन की महत्ता भी मानी जाती है, किंतु इसमें विद्यार्थी की भागीदारी कम हो जाती है। सोद्देश्य पठन–पाठन के लिए शिक्षा का मौन–पाठ आवश्यक है। अध्यापक निर्देशक के रूप में उनकी इस कार्य में सहायता अवश्य कर सकता है। यह एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है। विचारात्मक, वर्णनात्मक निबंध मौन–शिक्षण से ही प्रारंभ होना चाहिए। भावात्मक निबंध में सस्वर–पाठ उपयोगी हो सकता है।

भाषा कार्य और विषय–वस्तु संबंधी विचार–विश्लेषण का समायोजन

निबंध शिक्षण के दौरान शिक्षक के सामने एक समस्या होती है कि भाषा कार्य विषय–वस्तु एवं विचार–विश्लेषण से पूर्व कराया जाए या फिर व्याख्या के साथ–साथ। अगर पहले करा दें तो पाठ की रोचकता खत्म हो जाती है और बच्चे व्याकरणिक नियम, शब्दार्थ का संदर्भ समझ नहीं पाते और पाठ से उसका अर्थ भी पूर्णतः बोध नहीं होता। दूसरे तरीके के अनुसार, भाषा कार्य प्रस्तुतीकरण के साथ ही होता है, जो साधन सामग्री के रूप में शिक्षक के काम आता है। इससे बच्चे पाठ के भाव को आसानी से समझ जाते हैं। दूसरी विधि अधिक मनोवैज्ञानिक मानी जाती है।

टिप्पणी

निबंध शिक्षण संबंधी विविध सोपानों की क्रियाविधि

हम निबंध शिक्षण के विभिन्न सोपानों की दोनों शैलियों का अध्ययन कर चुके हैं। अतः यह शिक्षक पर निर्भर करता है कि वह किस सोपान की किस विधि को पहले इस्तेमाल करना चाहता है और किसको बाद में।

1. **सामान्य उद्देश्य**– आत्मनिष्ठता, विषयपरकता, स्वच्छता, सरलता, रोचकता, काव्यात्मकता और कलात्मक एकान्विति का सामान्य उद्देश्य सभी निबंधों की रचना एवं प्रकृति के अनुसार आधार बिंदु बनाया जा सकता है।
2. **विशिष्ट उद्देश्य**– इसमें निम्नलिखित पक्षों पर ध्यान दिया जाता है–
   - पाठ पढ़ाते समय उसके भाव एवं विचारों को अपनी दृष्टि में रखना।
   - भाषा के तत्वों का ज्ञान कराना। व्याकरणिक नियमों को समझाना।
   - मार्मिक–स्थलों के सौंदर्य के प्रति प्रशंसनीय सराहना छात्रों के मध्य रखना।
   - जीवन–मूल्य एवं पाठ में वर्णित संदेश का उल्लेख बीच–बीच में करते रहना।
3. **सहायक सामग्री**– निबंध–शिक्षण के लिए विशेष सहायक–सामग्री की आवश्यकता नहीं होती। चार्ट, चित्र, टेप या अन्य कोई श्रव्य–दृश्य सामग्री का अपेक्षित प्रयोग किया जा सकता है।
4. **पूर्वज्ञान**– हमेशा वे उदाहरण दें जो बच्चों के जीवन से अर्थात उनके पूर्वज्ञान से संबंधित हो।
5. **प्रस्तावना**– पाठ से पहले प्रस्तावना के प्रति सतर्कता यह निर्धारित करती है कि पाठ रोचक होगा कि नहीं इसलिए प्रस्तावना रोचक होनी चाहिए। प्रेरणाप्रद प्रश्न इसमें सहायक होते हैं। ये युक्तियां निम्नलिखित हो सकती हैं–
   - पूर्वज्ञान के प्रश्न
   - सहायक–सामग्री द्वारा
   - लेखक के जीवन से परिचय
   - रोचक कथन, प्रसंग या उदाहरण
   - पूर्वपाठ संबंधी प्रश्न, समस्या, प्रस्तुतीकरण आदि।
6. **उद्देश्य–कथन एवं पाठ्यांश निर्देश**– उद्देश्य–कथन से पाठ के विषय में संक्षेप में बताया जाता है। बाद में पाठ्यांश अध्यापन होता है।
7. **प्रस्तुतीकरण**– सोद्देश्य पठन के लिए संक्षिप्त पाठ का परिचय विद्यार्थी को देते हैं। प्रमुख बिंदुओं पर ध्यान दिलाकर मौन–पाठ के लिए कहा जाता है।

टिप्पणी

8. **मौन–पाठ**– मौन–पाठ के उद्देश्य निम्नलिखित हैं–
   - भाव–विश्लेषण तथा विचार–विश्लेषण में दक्षता के लिए।
   - अध्ययन के लिए रुचि जाग्रत करने के लिए।
   - विषय की जानकारी के लिए।
   - समस्या का उत्तर जानने के लिए।
   - मौन–पाठ समग्रता से पाठ को समझकर उसका केंद्रीय भाव जानने के लिए किया जाता है। यह बहुत आवश्यक है कि बच्चे पढ़ते समय उचित मुद्रा में बैठे।
9. **बोध–प्रश्न**– पाठ के मुख्य भाव को सामने लाने के लिए बोध–प्रश्न आवश्यक होते हैं, जिनसे शिक्षक को उनकी कठिनाई को ध्यान में रखकर अध्यापन करना चाहिए।
10. **भाषा–कार्य, व्याख्या, विचार–विश्लेषण**– यह प्रमुख सोपान है जिसमें अध्यापक को बोध–प्रश्न करते हुए छात्रों की पाठ के पठन में भागीदारी बनाते हुए शब्दार्थ, शब्द–प्रयोग, शब्द–रचना, उच्चारण–शिक्षण, अर्थ–ग्रहणता, विचार–विश्लेषण, सौन्दर्य तत्वों का बोध, प्रशंसा आदि कार्य करते हुए शिक्षण करना चाहिए।

    पाठ का विकास दो बिंदुओं के माध्यम से होना चाहिए–

    (क) **विषय–वस्तु**– विषय–वस्तु बोध में कठिन तथा मार्मिक स्थलों के सरल स्पष्टीकरण, संश्लेषण और विचार–विश्लेषण को प्रमुखता दी जाती है, जिससे छात्र पाठ का विवरण प्रस्तुत कर सकें, शीर्षक दे सकें, प्रश्नोत्तर दे सकें।

    (ख) **भाषा शैली**– भाषा शैली में शब्दार्थ, समानार्थी, विलोम शब्द, समास, संधि, मुहावरे, लोकोक्ति, कहावत इत्यादि की व्याख्या करते हुए शिक्षण किया जाना चाहिए।

    भाषा तथा विचार दोनों को इतनी सरलता से बताना चाहिए कि छात्र सरलता से भाव ग्रहण कर सकें।

    व्याख्या– पाठ के कठिन स्थलों, कठिन शब्दों को समझाने के लिए इन बातों को ध्यान में रखना चाहिए–

    - सबसे पहले प्रेरक प्रश्नों द्वारा बच्चों की कठिनाइयों को समझना चाहिए, यह जानने की कोशिश करनी चाहिए कि बच्चों को कौन–सा शब्द, कौन–सा वाक्य अथवा कौन–सा भाव स्पष्ट नहीं है और फिर उसी कठिन स्थल को उदाहरणों द्वारा सरल करने का प्रयास करना चाहिए।

टिप्पणी

- अलंकृत (कठिन) भाषा से व्याख्या न करके बच्चों की बोलचाल की सरल भाषा के द्वारा स्पष्टीकरण करना चाहिए।
- व्याख्या उदाहरणों, प्रेरक प्रश्नों, संस्मरणों, दृष्टांतों द्वारा सुसंबद्ध क्रमयुक्त होनी चाहिए। व्याख्या न तो बहुत बड़ी, न बहुत छोटी होनी चाहिए, यह उतनी बड़ी होनी चाहिए जिससे बच्चों को उसका भाव स्पष्ट हो जाए और बच्चों को रोचकता तथा सजीवता का एहसास हो।
- बीच में बच्चों द्वारा पूछे प्रश्नों का उत्तर अवश्य देना चाहिए ताकि उनकी समस्याएं साथ–साथ समाप्त होती जाएं।
- व्याख्या का तात्पर्य छात्रों को उपदेश देना नहीं है अर्थात इसमें छात्रों की सक्रिय भागीदारी (बच्चों से विषय के बारे में बिंदु एकत्रित करना ताकि वे सोचने पर मजबूर हों) द्वारा विषय–वस्तु का स्पष्टीकरण करना चाहिए। भाषा कार्य तथा विषय–वस्तु दोनों का बोध होना आवश्यक है वरना एक बच्चे का संपूर्ण हिंदी–विषय का विकास नहीं हो सकता और एक शिक्षक का शिक्षण भी कभी सफल नहीं हो सकता।

11. **शिक्षक द्वारा आदर्श पाठ**– शिक्षक द्वारा पढ़ाया गया पाठ विद्यार्थियों के लिए अनुकरणीय होता है। उसमें उच्चारया की शुद्धता पर विशेष ध्यान देना चाहिए।
12. **अनुकरण पाठ**– विद्यार्थी द्वारा सस्वर–वाचन अनुकरण पाठ कहलाता है। अलग–अलग छात्रों को पाठ पढ़ने का अवसर देना चाहिए। ये सभी सोपान प्रथम अन्विति में आते हैं। द्वितीय अन्विति में मूल्यांकन, श्यामपट्ट कार्य तथा गृहकार्य किया जाता है।
13. **मूल्यांकन**– विद्यार्थी की अंतर्दृष्टि जानने के लिए उनसे पाठ से संबंधित प्रश्न पूछने चाहिए। ये प्रश्न निष्कर्षात्मक होने चाहिए। पाठ का संदेश बच्चों के सामने पूर्णतया परिलक्षित होना चाहिए। अर्थात मूल्यांकन से बच्चों को पाठ के प्रति समझ, पाठ के उद्देश्य का ज्ञान, बच्चों के दिमागी विकास का ज्ञान होता है।
14. **श्यामपट्ट कार्य**– पाठ विकास के साथ किए गए भाषा–कार्य, सारांश तथा बोध प्रश्नों को श्यामपट्ट पर लिखना चाहिए जिसे बच्चे अपनी कापी में लिख सकते हैं इससे बच्चे समय–समय पर उस कार्य का दोबारा अध्ययन कर सकते हैं।
15. **गृहकार्य**– प्रस्तुत पाठ की स्मृति स्थायी बनाने के लिए घर के कार्य के लिए किसी सहायक पुस्तक का पठन या स्वतंत्र लेखन करने का कार्य देना चाहिए।

निबंध शिक्षण के उद्देश्यों, हिंदी निबंध के विकास, निबंध की विधागत विशेषताओं, निबंध के प्रकार, निबंध का अध्ययन तथा अध्यापन, निबंध शिक्षण प्रक्रिया में मौन–पाठ के

महत्व, भाषा–कार्य, विषय–वस्तु संबंधी विचार विश्लेषण के समायोजन, निबंध–शिक्षण के विभिन्न सोपानों के द्वारा अध्यापक निबंध शिक्षण को सफल बना सकते हैं।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

3. विद्यार्थियों को भाषा और साहित्य की मूलभूत बातों का शिक्षण किस उद्देश्य के तहत प्राप्त होता है?

   (क) सराहात्मक (ख) ज्ञानात्मक

   (ग) भावात्मक (घ) सृजनात्मक

4. पदों, पदबंधों, वाक्यांशों आदि को पृथक या संबद्ध करने के लिए किसका प्रयोग होता है?

   (क) शिरोरेखा (ख) व्याकरण

   (ग) विराम चिह्न (घ) इनमें से कोई नहीं

2.4 प्रारंभिक शिक्षा में प्रयुक्त उपागम

भाषा के बिना हम दैनिक कार्य नहीं कर सकते हैं। इसलिए मनुष्य के जीवन के लिए इसका महत्व बढ़ जाता है। बच्चा समाज में ही भाषा सीखता है व प्रयोग करता है, जिससे उसकी भाषा विकसित होती है। भाषा से सामाजिक व्यक्तित्व का विकास होता है जिससे सामाजिक दक्षता भी बच्चों के अंदर पैदा होती है।

अध्याय को ठीक से समझाने के लिए शिक्षक जिन–जिन सामग्रियों का प्रयोग करता है उन्हें शिक्षण उपागम कहते हैं। इन्हें शिक्षण सामग्री या 'शिक्षण–अधिगम सहायक सामग्री' भी कहा जाता है। इसमें पाठ्यपुस्तक आदि परम्परागत सामग्रियाँ तो हैं ही, चार्ट, माड्यूल, प्रयोगशाला, एनिमेशन सामग्री भी इसमें शामिल हैं।

"सहायक सामग्री वह सामग्री है जो कक्षा में या अन्य शिक्षण परिस्थितियों में लिखित या बोली गई पाठ्यसामग्री को समझने में सहायक होती है।"

——डेण्ड

"कोई भी ऐसी सामग्री जिसके माध्यम से शिक्षण प्रक्रिया को उद्दीप्त किया जा सके, अथवा श्रवणेन्द्रिय संवेदनाओं के द्वारा आगे बढ़ाया जा सके, वह सहायक सामग्री कहलाती है।"

——कार्टर ए गुड

इन उपागमों माध्यम से सीखा ज्ञान न केवल छात्रों में उत्साह जाग्रत करता है वरन् सीखे हुए ज्ञान को लंबे समय तक अपने स्मृति पटल में संजोए रखने में भी सहायक होता है।

शिक्षक भी अपने अध्यापन के प्रति उत्साहित रहता है। परिणामस्वरूप कक्षा का वातावरण हमेशा सकारात्मक बना रहता है।

अध्यापन में नवीनता लाने के लिए सहायक सामग्री का प्रयोग शिक्षक के लिए बांछनीय ही नहीं अनिवार्य भी हैं। वही शिक्षक छात्रों के लिए आदर्श होता है, और उसी शिक्षक का शिक्षण आदर्श शिक्षण कहलाता है जो अपनी पाठ्य सामग्री को इन रोचक सहायक सामग्री के माध्यम से प्रस्तुत करता है। क्योंकि ये न केवल छात्रों का ध्यान केन्द्रित करती है बल्कि उन्हें उचित प्रेरणा भी देती है चाहे वह वास्तविक वस्तु हो, चित्र, चार्ट या कोई तकनीकी उपकरण सभी से छात्रों के मस्तिष्क में एक बिंब निर्माण करता है।

चार्ट वास्तव में एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा विषय–वस्तु को स्पष्ट रूप से समझाया जा सकता है और शिक्षण को रोचक बनाया जा सकता है। ग्राफ की सहायता से जलवायु, उपज, जनसंख्या संस्था की प्रगति तथा विकास आदि विषयों से सम्बिन्धित प्रकरणों को प्रभावशाली ढंग से पढ़ाया जाता सकता है।

2.4.1 सम्प्रेषण, चार्ट एवं चित्र

सम्प्रेषण, चार्ट तथा चित्रों का बहुत महत्व है। इनका अध्ययन निम्न शीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है।

- **सम्प्रेषण**

प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष अनुभव जीवन में बहुत कुछ सिखाते हैं। यूं कहें कि ये अध्यापक का कार्य करते हैं। अप्रत्यक्ष ढंग से हम किसी व्यक्ति से पहुंचकर, किताबों से या पत्र–पत्रिकाओं से पढ़कर, चित्र, फोटोग्राफ तथा फिल्म देखकर या रेडियो टेप आदि सुनकर सूचना प्राप्त करते हैं। इन स्रोतों से प्राप्त सूचना के आधार पर ही हम किसी व्यक्ति, स्थान, वस्तु या विचार के बारे में जानने या समझने का प्रयत्न करते हैं। सूचना को ठीक तरह से नियंत्रित एवं व्यवस्थित करने की तकनीक को सूचना तकनीकी कहा जाता है। संप्रेषण के बिना सूचना की प्राप्ति अधूरी है।

संप्रेषण की सहायता से हम अपने विचारों, मान्यताओं तथा जानकारी को दूसरे के साथ बांटते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि सूचना और संप्रेषण दोनों के ही ज्ञान को ग्रहण करने तथा ज्ञान प्राप्ति के ढंग को जानने तथा समझने हेतु हमें जरूरत रहती हैं।

हमारे देश के अधिकांश विद्यालयों, प्रमुखतया प्राथमिक विद्यालयों में अमूमन आधारभूत शिक्षण सामग्री का प्रयोग नहीं किया जाता है। फिल्म, रेडियो एवं टेप रिकॉर्डर आदि सम्प्रेषण के साधनों का प्रयोग किया जाना चाहिए। वैसे आजकल देश में हार्डवेयर तथा सॉफ्टवेयर का उपयोग बढ़ रहा है। सॉफ्टवेयर के अंतर्गत बालकों के शैक्षिक व्यवहार में परिमार्जन एवं वांछनीय परिवर्तन लाए जाते हैं। कंप्यूटर राज्य स्तर के मॉडल इंस्टिट्यूशन तथा नवोदय विद्यालय, पब्लिक विद्यालयों की कक्षाओं में उपलब्ध हैं। इनके माध्यम से संप्रेषण का कार्य बेहतर ढंग से होता है।

विषय के प्रस्तुतीकरण की प्रक्रिया में भी समाकलन की आवश्यकता अनुभव की जाती है। इसमें सूचना एवं संप्रेषण तकनीकी का ही योगदान माना जाता है। वर्तमान समय में बालकों के समक्ष प्रकरण एवं विभिन्न विषयों के प्रस्तुतीकरण का समाकलित स्वरूप का श्रेय सूचना एवं संप्रेषण तकनीकी को ही जाता है, क्योंकि इसके माध्यम से प्रस्तुतीकरण के सर्वमान्य तरीकों का ज्ञान संभव होता है।

टिप्पणी

विषय का सिद्धांतों में समाकलन की स्थिति भी सूचना एवं संप्रेषण तकनीकी की ही देन है। आज विभिन्न विषयों के शिक्षण सिद्धांतों में एकरूपता पाई जाती है। जैसे उपयोगिता का सिद्धांत एवं क्रियाशीलता का सिद्धांत आदि। जब तक छात्र के लिए कोई विषय उपयोगी और महत्वपूर्ण नहीं होगा तब तक उसको उस विषय में कोई रुचि नहीं होगी। इसी प्रकार छात्रों को क्रियाशील रखने के सिद्धांत का अनुकरण किया जाता है।

- **चार्ट**

चार्ट वास्तव में एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा विषय–वस्तु को स्पष्ट रूप से समझाया जा सकता है और शिक्षण को रोचक बनाया जा सकता है। ग्राफ की सहायता से जलवायु, उपज, जनसंख्या संस्था की प्रगति तथा विकास आदि विषयों से सम्बिन्धित प्रकरणों को प्रभावशाली ढंग से पढ़ाया जाता सकता है।

स्वर, व्यंजन, गिनती, पहाड़ा, दिनों–महीनों के नाम, ऋतुओं–फलों–विविध प्राणियों से संबंधित तथ्य आदि चार्ट से ही दर्शाए और समझाए जाते हैं।

गणितीय शिक्षण का आधार संख्या–चार्ट :

संख्या–चार्ट और संबंधित गतिविधियां–चार्ट गणित पढ़ाने का एक बहुमुखी उपकरण है। इसका उपयोग संख्या पैटर्न , संख्याओं के आपसी संबंध , संक्रियाएँ और समस्या समाधान से संबंधित गतिविधियां आदि पर कक्षा 1 से कक्षा 5 के बच्चों के साथ कार्य किया जाता है।

संख्या–चार्ट की गतिविधियां बच्चों में संख्या–बोध के विकास में मदद करती हैं।

1. **विशेष संख्याएं** : यह गतिविधि बच्चों को संख्या–चार्ट से परिचित कराने में मदद करती है। बच्चे संख्या–चार्ट पर कंकड़ की मदद से पाँच से दस संख्याओं को चिन्हांकित करते हैं और अपने साथी को कि ये संख्याएं उनके लिए विशेष क्यों हैं।

- मेरी उम्र
- मेरी जन्म तारीख
- मेरे परिवार में सदस्यों की संख्या
- मेरी प्रिय संख्या
- मेरी कक्षा में बच्चों की संख्या
- मेरे विद्यालय में शिक्षकों की संख्या
- मेरे गाँव में घरों की संख्या
- मेरे गाँव की शहर से दूरी

2. **चित्र निर्माण** : यह गतिविधि संख्या–चार्ट के ज्ञान को पुष्ट कर बच्चों को पैटर्न को चित्र रूप में देखने में मदद करती है। जैसे , आप एक–एक कर नीचे दी गयी संख्याएं बोलते हैं और बच्चे उन संख्याओं पर कंकड़ रखते जाते हैं :

1 , 71 , 17 , 53 , 44 , 35 , 34 , 8 , 78 , 12 , 67 , 23 , 45 , 62 , 26

संख्या बोलना खत्म करने से पहले बच्चों से पूछें कि उन्हें कौन सा चित्र नजर आ रहा है। यदि बच्चे चित्र पहचान लें तो उन्हें आगे की संख्याएं बताने को कहें जिससे चित्र पूरा किया जा सके।

टिप्पणी

3. पड़ोसी संख्या ढूंढ़ना : यह गतिविधि बच्चे के संख्या–चार्ट के ज्ञान को पुष्ट करने में सहायक होती है। बच्चे एक खाली संख्या–चार्ट का उपयोग करेंगे। एक बच्चा 0 – 99 के बीच कोई एक संख्या चुननेगा। अन्य बच्चे खाली–चार्ट में उस संख्या को सही जगह पर लिखेंगे। इसके पश्चात वे उस संख्या की सभी पड़ोसी संख्याएं लिखेंगे। संख्या–चार्ट पर पड़ोसी–संख्या वह संख्या है जो चुनी गयी संख्या से एक कम , एक अधिक , दस कम और दस अधिक होती है। अलग–अलग बच्चों को संख्या चुनने का मौका देते हुए संख्या–चार्ट के पूरा भरने तक इस गतिविधि को कराया जाए।

4. नाम का पैटर्न : यह गतिविधि बच्चों को विभिन्न प्रकार के संख्या–पैटर्न और संख्या– संबंधों से परिचय कराने के साथ–साथ गुणा की संक्रिया का एक आधार भी तैयार करती है। इसके लिए बच्चे एक खाली संख्या–चार्ट का उपयोग करते हैं। बच्चे चार्ट में अपना नाम लिखेंगे , हर बॉक्स में एक अक्षर , जब तक कि चार्ट पूरी तरह से न भर जाए। अब बच्चे अपने नाम के पहले अक्षर (चार्ट में जहाँ–जहाँ भी आये हैं) को शेड करेंगे , इस प्रकार उन्हें एक पैटर्न मिलेगा। बच्चे कक्षा में दूसरे बच्चों को ढूँढ़ेंगे जिनका पैटर्न उसके पैटर्न के समान हो । समान पैटर्न के बच्चे एक साथ बैठकर अपने पैटर्न के बारे में चर्चा करेंगे। इस प्रकार के प्राप्त पैटर्न 2 , 3 , 4 , 5 , 6 , 7 आदि के गुणज होंगे जो बच्चों के नाम में अक्षरों की संख्या पर निर्भर करेगा।

5. संख्या पैटर्न : यह गतिविधि बच्चों को विभिन्न प्रकार के संख्या–पैटर्न और संख्या– संबंधों से परिचय कराने के साथ–साथ गुणा की संक्रिया का एक आधार भी तैयार करती है।

- बच्चों से कहें कि वे उन सभी संख्याओं पर कंकड़ रखें जिनके इकाई या दहाई के स्थान पर 3 आता है। बच्चों को संख्या पैटर्न या संख्याओं के संबंधों पर विचार करने के लिए प्रेरित करें। उदाहरण के लिए ये संख्याएं एक क्षैतिज(आड़ी) और एक उर्ध्वाधर (खड़ी) रेखाएं बनाती हैं। ये रेखाएं 33 पर मिलती हैं और इस संख्या में इकाई और दहाई दोनों ही स्थान पर 3 है। उर्ध्वाधर रेखा पर संख्याएं ऊपर से नीचे 10 से बढ़ती हैं और क्षैतिज रेखा पर संख्याएं बाँए से दाँए 1 से बढ़ती है। बच्चों से पूछें कि क्या अन्य संख्याओं के लिए भी ये संबंध हैं। उन्हें उन सभी संख्याओं पर कंकड़ रखने को कहें जिनके इकाई या दहाई के स्थान पर 3 आता है और इस प्रकार बने पैटर्न और संख्या संबंधों पर चर्चा करने को कहें।
- बच्चों को 11 , 22 , 33 , 44 , 55 , 66 , 77, 88 , 99 संख्याओं पर कंकड़ रखने को कहें और संख्याओं के पैटर्न और संबंधों पर चर्चा करें। एक पैटर्न जो बच्चे देख सकते हैं कि संख्याओं में अंकों का योग (11 में 1+1=2 , 22 में 2+2=4 आदि) 2 , 4 , 6 , 8 , 10 , 12 , 14 , 16 , 18 है और ये सभी सम संख्याएं हैं।
- बच्चों को 1 , 12 , 23 , 34 , 45 , 56 , 67 , 78 , 89 संख्याओं पर कंकड़ रखने को कहें और संख्याओं के पैटर्न और संबंधों पर चर्चा करें। एक पैटर्न जो बच्चे

देख सकते हैं कि संख्याओं में अंकों का योग 1, 3 , 5 , 7 , 9 , 11, 13 , 15, 17 है और ये सभी विषम संख्याएं हैं। बच्चों को अगले विकर्ण की संख्याओं के साथ काम कर संख्या पैटर्न और संबंधों को देखने के लिए प्रेरित करें।

टिप्पणी

- बच्चों को 5, 14 , 23 , 32 , 41 , 50 संख्याओं पर कंकड़ रखने को कहें और उन्हें पैटर्न और संख्या संबंधों का अवलोकन करने को कहें । बच्चे यह देख सकते हैं कि सभी संख्याओं के अंकों का योग 5 है और 5 विकर्ण की पहली संख्या है। इसी प्रकार बच्चों को अन्य विकर्णों के पैटर्न का अवलोकन करने का समय दें।

6. **आगे गिनना** : यह गतिविधि बच्चों के जोड़ की संक्रिया की समझ का आधार बनाती है। बच्चे आपके निर्देश के अनुसार संख्याओं पर कंकड़ रखेंगे।

25 और उसके आगे 3 गिने 32 और उसके आगे 5 गिने

35 और उसके आगे 6 गिने 36 और उसके आगे 7 गिने

73 और उसके आगे 2 गिने 41 और उसके आगे 4 गिने

7. **'से' ज्यादा** : यह गतिविधि बच्चों में 'से ज्यादा या इससे अधिक ' की अवधारणा की पुष्टि और जोड़ की अवधारणा सीखने में मदद करती है। बच्चे आपके निर्देश के अनुसार संख्याओं पर कंकड़ रखेंगे।

15 से 4 अधिक 40 से 9 अधिक

52 से 3 अधिक 26 से 5 अधिक

61 से 6 अधिक 43 से 7 अधिक

यहाँ शिक्षक "अधिक" शब्द के स्थान पर "ज्यादा" शब्द का उपयोग भी कर सकते हैं।

8. **उल्टा गिनना** : यह गतिविधि घटाव संक्रिया की समझ का आधार रखती है। बच्चे आपके निर्देश के अनुसार संख्याओं पर कंकड़ रखेंगे।

38 से पीछे 4 गिने 58 के पीछे 2 गिने

23 के पीछे 6 गिने 73 के पीछे 3 गिने

47 के पीछे 1 गिने 69 के पीछे 8 गिने

यहाँ शिक्षक "पीछे" शब्द के स्थान पर "पहले" शब्द का उपयोग भी कर सकते हैं।

9. **'से' कम** : यह गतिविधि बच्चों में 'से कम या इससे कम ' की अवधारणा की पुष्टि और घटाने की अवधारणा सीखने में मदद करती है। बच्चे आपके निर्देश के अनुसार संख्याओं पर कंकड़ रखेंगे।

49 से 3 कम 89 से 8 कम

21 से 4 कम 30 से 7 कम

56 से 6 कम 16 से 3 कम

10. **दस अधिक या कम** : यह गतिविधि बच्चों में 10 की गिनती की पुष्टि करती है। यह बच्चों में स्थानीय मान की समझ के लिए आधार का काम करता है।

2 से 10 ज्यादा (अधिक) 48 से 10 कम

24 से 10 ज्यादा 62 से 10 कम

63 से 10 ज्यादा 76 से 10 कम

11. **बिंगो** : यह गतिविधि बच्चों को इकाई और दहाई के साथ स्थानीय मान समझने में मदद करती है। इस गतिविधि के लिए हर बच्चा खाली संख्या–चार्ट का उपयोग करेगा। शिक्षक 0 – 99 के काउंटर्स एक छोटे बक्से में रखेंगे। एक बच्चा बक्से से एक काउंटर निकालेगा और संख्या को इकाई व दहाई के रूप में कहेगा , उदाहरण के लिए 25 को वह दो दहाई और पाँच इकाई कहेगा। कक्षा के अन्य बच्चे संख्या सुनकर संख्या–चार्ट में उस स्थान पर एक कंकड़ रखेंगे। अलग–अलग बच्चे बक्से से काउंटर निकालकर संख्या कहेंगे और बच्चे अपने संख्या–चार्ट पर कंकड़ रखते जाएंगे। यह कार्य तब तक चलता रहेगा जब तक कि बच्चों की कोई पंक्ति या कॉलम पूरा नहीं हो जाता।

12. **संख्या चार्ट पर जोड़ना और घटाना** : यह गतिविधि बच्चों को संख्या चार्ट पर जोड़ने और घटाने के अभ्यास का मौका देती है। संख्या चार्ट पर संख्याओं को किस प्रकार से जोड़ा जाता है , बच्चों के सामने इसका प्रदर्शन करें। उदाहरण के लिए 33 + 48 । बच्चे 33 पर एक कंकड़ रखेंगे। उनसे पूछें कि 48 में कितने दहाई (4) हैं। उन्हें याद दिलाएं कि एक बॉक्स नीचे आने पर संख्या 10 बढ़ती है। हमें 33 से 4 बॉक्स नीचे आना है (43 , 53 , 63 , 73) । बच्चों से पूछें कि 48 में 8 क्या दिखाता है (इकाई)। बच्चों को याद दिलाएं कि क्षैतिज दिशा में बाँयीं ओर जाने से संख्या एक से बढ़ती है। हमें 73 से बाँयीं ओर 8 स्थान आगे बढ़ना है (74 , 75 , 76 , 77 , 78 , 79 , 80 , 81) । इस प्रकार हम 81 पर पहुँचे , अतः 33 + 48 = 81। इसी प्रकार और उदाहरणों से जोड़ का अभ्यास कराएं।

अब संख्या चार्ट की मदद से घटाने का प्रदर्शन करें। उदाहरण के लिए 72 – 44 । बच्चे 72 पर एक कंकड़ रखेंगे। बच्चों से पूछें , 44 में कितने दहाई हैं (4) । 72 से चार बॉक्स उपर चढ़ेंगे (62 , 52 , 42 , 32) । अब बच्चों से पूछें कि 44 में दांयी ओर का 4 क्या दर्शाता है (इकाई) । अब हम 32 से क्षैतिज दिशा में बाँयीं ओर 4 स्थान पीछे जाएंगे (31 , 30 , 29 , 28) । इस प्रकार हम 28 पर पहुँचे, अतः 72 – 44 = 28। इसी प्रकार और उदाहरणों से घटाने का अभ्यास कराएं।

13. **छोड़कर गिनना या गुणज पहचानना** : यह गतिविधि बच्चों में छोड़ कर गिनना , गुणज और गुण की अवधारणा की समझ विकसित करने में मदद करती है।

- बच्चे दो – दो छोड़ कर गिनते हुए (0 , 2 , 4 , 6 , 8 , 10,3398) संख्याओं पर कंकड़ रखेंगे। बच्चों को इस प्रकार बने पैटर्न को पहचानने को कहें। इस प्रकार कंकड़ पाँच उर्ध्वाधर (खड़ी) रेखाएं बनाएंगे। सभी संख्याएं सम संख्याएं और 2 की गुणज होंगी। इस संख्याओं में इकाई अंक 0 या 2 या 4 या 6 या 8 होंगे।

- बच्चों को तीन – तीन छोड़ कर संख्याओं पर कंकड़ रखने को कहें। इस प्रकार का बना पैटर्न विकर्ण रेखाओं को दिखाता है और इन विकर्णों की संख्याओं पर अंकों का योग 3 , 6 , 9 , 12 , 15 , 18 होगा।

टिप्पणी

- इसी प्रकार बच्चों को 4 , 5 , 6 , 7 , 8 , 9 , 10 तक संख्याओं को छोड़ कर कंकड़ रखने और बने पैटर्न का अध्ययन करने को कहें।

14. **सम–अपवर्त्य पहचानना** : यह गतिविधि बच्चों में 'छोड़ कर गिनने' और गुणज की अवधारणा की पुष्टि करती है। यह गतिविधि तीन या चार बच्चों के समूह में करायी जा सकती है। समूह में बच्चे संख्या–चार्ट पर 3 के गुणज पर कंकड़ रखेंगे। फिर बच्चे 4 के गुणज पर कंकड़ रखेंगे।अब बच्चे उन संख्याओं को लिखेंगे जिन पर दो कंकड़ (12 , 24 , 36 , 48 , 60 , 72 , 84 , 96) रखे हैं। इन संख्याओं को सम–अपवर्त्य (common multiple) कहते हैं। इन सम–अपवर्त्य में सबसे छोटे अपवर्त्य की पहचान करें (12) और 100 तक के 3 और 4 के सम–अपवर्त्य में सबसे बड़े अपवर्त्य (96) की पहचान करें। इसी प्रकार बच्चों से अन्य संख्याओं के गुणज , सम–अपवर्त्य , सबसे छोटे और 100 तक सबसे बड़े अपवर्त्य की पहचान का अभ्यास कराएं।

15. **अभाज्य संख्याएं** : यह गतिविधि बच्चों में अभाज्य संख्याओं की समझ विकसित करने में मदद करेगी और वे 0 – 99 के बीच की अभाज्य संख्याओं को जान पाएंगे। आपके दिए निर्देशों के अनुसार बच्चे संख्याओं पर कंकड़ रखते जाएंगे। 4 से शुरू करते हुए 2 के सभी गुणज पर कंकड़ रखने को कहें। इसी प्रकार 6 से शुरू करते हुए 3 के सभी गुणज पर कंकड़ रखने को कहें।

फिर बच्चे 4 के सभी गुणज पर कंकड़ रखेंगे। अब बच्चे 5 को छोड़कर 5 के सभी गुणज पर कंकड़ रखेंगे और इसके बाद वे 6 के सभी गुणज पर कंकड़ रखेंगे। अंत में 7 को छोड़कर 7 के सभी गुणज पर कंकड़ रखेंगे। इस बात का ध्यान रखा जाए कि यदि किसी संख्या पर कंकड़ रखा हो तो उस पर दोबारा कंकड़ रखने की आवश्यकता नहीं है।

अब बिना कंकड़ रखी संख्याओं की पहचान करें (2 , 3 , 5 , 7 , 11 , 13 , 17 , 19 , 23 , 29 , 31 , 37 , 41 , 43 , 47 , 53 , 59 , 61 , 67 , 71 , 73 , 79 , 83 , 89 , 97) , ये सभी अभाज्य संख्याएं (Prime Numbers) हैं। बच्चों को बताएं कि अभाज्य संख्याओं के केवल दो ही गुणनखण्ड , 1 और स्वयं वह संख्या , होते हैं। अभाज्य संख्याएं केवल स्वयं या एक से ही विभाजित होती हैं।

- **चित्र**

किताबों में छपे चित्रों पर होने वाली चर्चा बच्चों के भाषा का इस्तेमाल करने का एक सुंदर मौका देती है। अपने दोस्तों के साथ वे चित्रों के ऊपर बच्चे खुद आपस में बात करते हैं। इस प्रक्रिया में वे ढेर सारी नई बातें सीखते जाते हैं। मसलन किताब सीधी कैसे पकड़नी है? किसी दिशा से किस दिशा में पढ़ना है? किताब में छपे चित्रों का लिखी हुई सामग्री से क्या रिश्ता है? कौन से चित्र हैं जो अपने आसपास के परिवेश से मेल खाते हैं। जैसे लायब्रेरी में एक किताब में छपे चित्र को दिखाने के लिए बच्चा भाषा शिक्षक के पास लेकर गया और बोला ये देखिए ऑटो।

बच्चे, पढ़ना सीखना, बच्चे का शब्द भण्डार कैसे बनता हैइस बच्चे के गाँव में ऑटो चलते हैं। जबकि वह चित्र शहरी परिवेश का था। लेकिन अज़नबी परिवेश में भी बच्चा पहचानी सी चीज़ों से खुद को जोड़कर देख पा रहा है। भाषा का यही कमाल होता है। वह अपने आसपास की दुनिया को शब्दों के सहारे समझने और अनुभवों के रूप में उसे भविष्य में फिर से देखने के लिए सुरक्षित कर देती है।

मगर प्राथमिक कक्षाओं को किताबें देने में शिक्षक संकोच करते हैं। वास्तव में शिक्षकों को इस बात को पूरी तरह समझने में नाकाम होते हैं कि छोटे बच्चों के लिए किताबें कितनी उपयोगी हैं? पढ़ने का कौशल जो बच्चे सीख रहे हैं या सीख चुके हैं उसे इस्तेमाल करने का मौका लायब्रेरी की किताबों के माध्यम से बच्चों को मिलता है। इससे बच्चे ज्यादा रुचि के साथ अपने भाषाई कौशलों को इस्तेमाल करने के लिए प्रेरित होते हैं।

2.4.2 भाषा, खेल आदि

● **'भाषा :'** भाषा शिक्षण तथा खेल अलग–अलग ढंग से विद्यार्थियों के जीवन से जुड़े आवश्यक अंग हैं। इनके महत्व को निम्न शीर्षकों के अंतर्गत समझा जा सकता है–

पहली क्लास में अगर बच्चे सहजता के साथ बातचीत करने के लिए तैयार हैं तो इसका श्रेय शिक्षक द्वारा हिंदी में संवाद करने की कोशिश, बच्चों को हिंदी में निर्देश देने का प्रयास, कहानी के माध्यम से उन तक पहुंचने की कोशिश, इन सारे पहलुओं को इसका श्रेय दिया जा सकता है। इसमें उन बच्चों को किताबों के साथ एक रिश्ता बनाने का मौका देना भी शामिल है।

प्राथमिक स्तर पर भाषा शिक्षण का प्रमुख उद्देश्य है कि किसी बात को सुनकर समझ पाएं। औपचारिक और अनौपचारिक दोनों तरह के माहौल में प्रभावशाली ढंग से अपनी बात रख पाएं। किसी किताब को समझते हुए पढ़ सकें और उससे अपनी समझ का निर्माण कर सकें। सुनी हुई बातों को लिख सकें। लिखावट अच्छी हो ताकि जो लिखा गया है उसे समझते हुए पढ़ा जा सके। भाषा का विभिन्न संदर्भों में इस्तेमाल करते समय व्याकरण का उपयोग बच्चे आसानी से कर पाएं भाषा शिक्षण का एक उद्देश्य यह भी होता है। किताबों को पढ़ने में रुचि का विकास करना और अपने पसंद की किताबों का चुनाव खुद से करने की योग्यता का विकास करना भी भाषा शिक्षण के प्रमुख उद्देश्यों में से एक है।

भाषा की चार आधारभूत क्षमताएं हैं– सुनना, बोलना, पढ़ना और लिखना। सुनने, बोलने और पढ़ने में समझना शामिल है। लिखने में किसी भाषा के व्याकरण को समझते हुए अपनी बात को लिखित रूप में व्यक्त करना शामिल है। लिखने में डायरी लेखन, किसी सवाल का जवाब लिखना, नोट्स लिखना व अन्य किसी तरीके से लेखन कौशल का इस्तेमाल करना शामिल है। इसमें छोटी–छोटी कहानी, कविता या किसी सुनी हुई बात को लिखने का कौशल शामिल है। भाषा की यह सारी क्षमताएं एक–दूसरे से जुड़ी हुई हैं। एक क्षमता के विकास के साथ अन्य क्षमताएं स्वतः विकसित होती रहती हैं।

किसी घटना का वर्णन, क्लास के दोस्तों के साथ बातचीत (चिट–चैट),कहानी कहना, नाटक आयोजित करना, बातचीत (संवाद), सवाल–जवाब सत्र, शब्दों का खेल,

टिप्पणी

डिबेट प्रतिस्पर्धा, गीत व संगीत के कार्यक्रमों का आयोजन। खुद से सीखने की गतिविधि को बढ़ावा देने के लिए..बच्चों को उनकी रुचि की किताबें पढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है। चित्रों वाली किताबों का उपयोग किया जा सकता है। ऐसे खेल भी आयोजित किए जा सकते हैं। जो संवाद और बातचीत पर आधारित हों। ऐसी गतिविधियां बच्चों के भाषाई कौशल विकास के लिए बहुत उपयोगी साबित हो सकती हैं।

- **खेल**

शोध बताते हैं कि अधिगम में खेलों के उपयोग से सीखने वालों की सीखी जाने वाली विषयवस्तु में दिलचस्पी होती है, तथा वह उनकी ज़रूरतों, रुचि और योग्यता से मेल खाती है, तो वे बहुत कुछ सीख सकते हैं।

खेल विद्यार्थियों के ध्यान और रुचि को बढ़ाने के बहुत ही अच्छे साधन हैं और रचनात्मक, सहयोग और संवाद को प्रोत्साहित करते हैं।

इसके अलावा, विद्यार्थियों में खेल भागीदारी और सफलता को प्राप्त करने के लिए भी उपयोगी होते हैं।

जीतने के लिए अपने ज्ञान का प्रदर्षन या अपनी समझ को बहुत तेजी से विकसित करने की ज़रूरत होती है।

प्रतिस्पर्धा करने के लिए प्रोत्साहित करता है जो कि स्वस्थ और प्रेरणादायक हो, लेकिन इस बात पर जोर देना ज़रूरी है कि केवल हिस्सा लेना और सकारात्मक सोच रखना भी उतना ही महत्वपूर्ण है।

व्यक्तिगत आत्मविश्वास बढ़ाने का अवसर प्राप्त होता है।

बारी–बारी से काम करना सीखना और अन्य सामूहिक सामाजिक कौशलों को विकसित करने का मौका मिलता है।

स्वयं की समझ की अंतदृर्ष्टि हासिल करने का अवसर मिलता है।

विभिन्न कौशलों और भूमिकाओं को विकसित करने का अवसर मिलता है, उनके कार्य–निष्पादन के बारे में शीघ्र फीडबैक प्राप्त होता है।

अपने विचारों का साझा करने और अपनी समझ को सुदृढ़ करने के अवसर मिलते हैं।

बोर्ड खेल, कार्ड खेल और सक्रिय शारीरिक खेल का उपयोग शिक्षण के साथ–साथ बहुत से विषयों के पहलुओं का पता लगाने के लिए किया जा सकता है। विभिन्न आयु समूहों के विद्यार्थियों के साथ उपयोग में लाने के लिए आसानी से अनुकूलित किया जा सकता है। संसाधनों तक अपनी पहुंच के आधार पर आप पूरी कक्षा को जोड़ने वाले, या समूहों, जोड़ियों अथवा व्यक्तिगत रूप से खेल में गतिविधि करा सकते हैं।

बच्चों को समझाएं कि कौन–सा खेल किस प्रकार से खेला जाता है और उन्हें एक या दो बार खेल खेलने दें और इस बात का अवलोकन करें कि प्रत्येक बार वे किस प्रकार से खेलते हैं। इससे उन विद्यार्थियों को अपने आत्मविश्वास को विकसित करने और अपने सहपाठियों से सीखने का मौका मिलेगा जो कि अनिश्चित और कम आत्मविश्वासी हैं।

टिप्पणी

खेलों के अनेक शैक्षणिक लाभ होते हैं, जैसे कि सीखने में बल प्रदान करना, सामाजिक कौशलों को विकसित करना तथा वाचन एवं सुनने के अवसरों को उपलब्ध कराना। खेल विद्यार्थियों को सक्रिय, चुनौतीपूर्ण और प्रेरणादायक तरीके से अपने वैज्ञानिक ज्ञान का अन्वेषण करने में समर्थ बनाते हैं कठिनाई से सीख पाने वाले विद्यार्थियों के लिए विशेष रूप से मददगार होते हैं, क्योंकि वे बार–बार अभ्यास की सुविधा प्रदान करते हैं।

खेलों की एक श्रृंखला में समस्त योग्यताओं के विद्यार्थियों की भागीदारी को सुनिश्चित करते हुए और आत्मविश्वास बढ़ाते तथा आपस में जुड़े होने के बोध को बढ़ाते हुए सहयोग और सहायता के लिए प्रोत्साहित कर सकती है।

पढ़ाई में सहायक प्रमुख खेल

बोर्ड गेम

ऐसे अनेक प्रकार के बोर्ड खेल होते हैं जिन्हें कि आप खेल सकते हैं, जिससे कि विद्यार्थियों को सीखने में मदद मिले। विभिन्न प्रकार के खेलों के लिए कुछ तैयारी और विचार की आवश्यकता पड़ेगी, लेकिन एक बार डिजाइन और तैयार कर लेने पर उन्हें विभिन्न विद्यार्थियों के साथ बार–बार प्रयोग में लाया जा सकता है।

दो से छह खिलाड़ियों के लिए बोर्ड खेल होते हैं, जहां पर पांसे को फेंकना होता है और प्रत्येक व्यक्ति गंतव्य मार्ग के साथ स्थानों की एक नियत संख्या को हिलाने के लिए बदले में इसे प्राप्त करता है। उनके द्वारा हिलाये जाने वाले स्थानों की संख्या को उनके ऊपर 1 से 6 तक की संख्याओं के साथ एक कार्ड को ऊपर करके अथवा एक पांसे को फेंककर और वहां से गिनती करके निर्धारित किया जा सकता है। रास्ते में, हो सकता है कि खिलाड़ियों को उस विषय पर प्रश्नों का उत्तर देना पड़े और केवल तभी आगे बढ़ पाएं जब वे सही उत्तर प्रदान करें। वह व्यक्ति विजेता होता है, जो कि मंजिल पर सबसे पहले पहुंचता है।

ऐसे बहुत से फेरबदल होते हैं, जिन्हें कि आप इन खेलों में शामिल कर सकते हैं, जैसे कि इसे करने के लिए लोगों पर जुर्माना लगाना, जबकि वे गलत उत्तर प्राप्त करते हैं या उस तरह की वस्तुओं को जमा करना, जिनके कुछ निश्चित गुणधर्म हों। विजेता वह व्यक्ति होता है, जिसके पास सर्वाधिक वस्तुएं होती हैं या जिस पर उस समय सबसे कम जुर्माना लगा होता है, जबकि समस्त खिलाड़ी आखिर तक पहुंच जाते हैं।

ऐसे विषय के आधार पर विद्यार्थियों को अपने स्वयं के बोर्ड खेलों को डिजाइन करने और बनाने से संबद्ध किया जा सकता है, जिसका उन्होंने अध्ययन किया होता है। यह इस बात को देखने का एक तरीका है कि उन्होंने कितना सीखा और समझा है। इसके अलावा यह उस समय उनके लिए उपयोग में लाने और खेलने के लिए संसाधन उपलब्ध कराता है, जबकि उनके पास खाली के कुछ क्षण होते हैं और स्वयं विज्ञान से जोड़कर उसकी याद दिलाना चाहते हैं, जो कि उन्हें पढ़ाया जा रहा है।

कार्ड खेल

बल्ब को जलाने के लिए किस चीज़ की आवश्यकता है, इसके बारे में विद्यार्थियों की समझ का आकलन कर सकते हैं। कार्डों को किसी भी सामग्री से काटा जा सकता है

टिप्पणी

और जरूरी जानकारी कार्डों पर लिखी होती है। कुछ कार्डों पर विद्युत के प्रतीक को बनायें और फिर अन्य कार्डों पर उनकी समुचित शब्दावली लिखें (संसाधन 2 में नमूनों को देखें)। आपको तस्वीरों और शब्दों की समान संख्या रखने की ज़रूरत होती है, जिससे कि पूर्ण जोड़े बनाए जा सकें।

खेलने के लिएः सभी कार्डों को फर्श पर या मेज़ पर उल्टा करके रखा जाता है और प्रत्येक विद्यार्थी को दो कॉर्डों को पलटना है। अगर शब्द और तस्वीर मेल खाती है, तो विद्यार्थी जोड़े को ले लेता है। कार्ड अगर मेल नहीं खाते हैं, तो विद्यार्थी कार्ड को पुनः नीचे की ओर कर देता है। अगले विद्यार्थी की बारी आती है – उसे पुनः दो कार्डों को पलटना होता है और कार्ड अगर मेल खाते हैं, तो विद्यार्थी जोड़े को ले लेता है। जिस वक्त प्रत्येक विद्यार्थी कार्डों को पलटता है, उस वक्त प्रत्येक इस बात को देखेगा कि कुछ कार्ड कहां पर हैं? और इस तरह से अगर वे अच्छी तरह से याद कर लेते हैं, तो वे अपनी बारी के आने पर जोड़ों को बना सकते हैं। अगर कोई विद्यार्थी जोड़े को बना लेता है, तो अगले खिलाड़ी के पास तक पारी के पहुंचने से पूर्व उनके पास एक और बारी होती है। विजेता वह होता है, जिसके पास सर्वाधिक जोड़े होते हैं (प्रतीक/चित्र और सही शब्दावली या परिभाषा, उदाहरण के लिए शब्द 'बल्ब' और बल्ब जलाने की छोटी चित्र)।

वर्ग–पहेलियां

ऐसी सरल वर्ग–पहेलियां होती हैं, जिन्हें कि आप बिजली के विभिन्न पहलुओं, जैसे कि विद्युत की शब्दावलियों, की अपने विद्यार्थियों की समझ का आकलन करने के लिए बना सकते हैं और विद्यार्थी स्वयं भी अपनी वर्ग–पहेलियां बना सकते हैं। उत्तरों के लिए वे स्वयं के संकेत जिस तरह बनाते हैं उससे आपको शब्दों के पीछे की अवधारणाओं की अपने विद्यार्थियों की समझ सुदृढ़ होती है। इसके बाद वे एक–दूसरे की वर्ग–पहेलियों को पूरा कर सकते हैं।

शारीरिक खेल

खेलने लायक ऐसे कई खेल हैं, जिनमें विद्यार्थियों को अपने चारों ओर और अधिक घूमना पड़ता है और इससे विज्ञान भी जुड़ा होता है; जैसे टीम प्रश्नावलियां, जिसके दौरान आप या कोई विद्यार्थी प्रश्न पूछता है। इसके बाद सही उत्तरों वाला विद्यार्थी कुर्सी के चारों ओर दौड़ता है और टीम के पीछे लौट आता है। जीतने वाली टीम वह होती है, जहां पर अगुआ सबसे पहले मोर्चे पर वापस लौटता है।

एक सर्किट में भिन्न इकाइयां हो सकती हैं, जैसे कि बल्ब बैटरी और तार। आप या विद्यार्थी सर्किट के उस प्रकार का नाम लेकर बुलाता है, जो कि उसे बनाना होता है और विद्यार्थियों को शामिल होना और सर्किट को बनाना होता है; उदाहरण के लिए एक बल्ब, दो तार और दो बैटरियां। जो सर्किट में नहीं होता है, वह बाहर निकल जाता है और आखिरी सर्किट एक बल्ब, एक तार और एक सेल होता है। विद्यार्थी उस समय तक उछल–कूद करते रहते हैं, जब तक कि आप पुकारते नहीं हैं कि किस सर्किट को बनाना है। चारों ओर दौड़ते समय अगर वे एक साथ नजदीक में ही बने रहते हैं, तो एक चक्र के लिए उन्हें अलग रहने को कहा जाएगा। इसके अलावा आप संसाधन 3, खेल 2 में उपलब्ध कराये गये कार्डों का भी उपयोग कर सकते हैं, जिससे विद्यार्थी उस समय इस बात की पहचान कर सकें कि प्रत्येक कौन सा विद्युत का घटक है।

टीम खेल

विद्यार्थियों को चार से आठ के समूहों में बांटा जाता है। उन्हें या तो व्यक्तिगत रूप से या सामूहिक रूप से प्रश्नों का उत्तर देना होता है, जहां पर वे आपके अलावा विद्यार्थियों द्वारा निर्धारित किये गये प्रश्नों का उत्तर देने के लिए विचारों को साझा कर सकते हैं। कई बार टीमों को व्यक्तिगत रूप से या सामूहिक रूप कोई काम करना या किसी चीज़ को बनाना होता है, इसके लिए टीम को अंक दिये जाते हैं। सबसे अधिक अंक पाने वाली टीम जीत जाती है।

प्रश्नावलियां

प्रश्नों को तैयार करना होता है, लेकिन प्रश्नों को विज्ञान के प्रकरण के खास पहलू पर केंद्रित किया जा सकता है, जिसके बारे में आप चाहते हैं कि आपके विद्यार्थी अपनी समझ को गहन बनायें। एक बार जब इन प्रश्नों को तैयार कर लिया जाता है, तो आप उनका उपयोग अन्य कक्षाओं में या अगले वर्ष कर सकते हैं।

आपके प्रश्न एक शब्द के उत्तरों वाले हो सकते हैं या वे ऐसे भी हो सकते हैं जिनमें विद्यार्थियों को किसी समस्या का समाधान करने के लिए ज्यादा सोचना पड़ता है। आप स्वयं प्रश्न पूछ सकते हैं या अगर आपके पास संसाधन हैं, तो आप प्रश्नपत्र की प्रतियां बना सकते हैं तथा प्रत्येक विद्यार्थी अपने प्रश्नपत्र पर काम करा सकता है। जिसे सबसे ज्यादा अंक मिलते हैं, वह विजेता होता है।

समावेशी प्रिंट

विशिष्ट चित्र 'स्थान, वस्तुओं, रंगों एवं आरेखों ' से युक्त छात्र संदर्भात्मक संकेत होते हैं, जिन्हें 'परिवेशी प्रिंट' या 'प्रिंट–समृद्ध' भी कहा जाता है। विद्यार्थी इनका उपयोग करके अपने परिवेश में मौजूद लिखित सामग्री का अर्थ समझना सीख लेते हैं, वे 'वास्तविक' पठन की ओर ज्यादा आसानी से बढ़ सकेंगे।

प्रिंट, शिक्षण सामग्रियों और छात्रों के लेखन के उदाहरणों के पारस्परिक प्रदर्शन से अधिगम को बल मिल सकता है और उन्हें अपने कार्य पर गर्व महसूस करने का अवसर मिलता है। छात्रों के स्वयं के लेखन को प्रदर्शित करने से उन्हें न सिर्फ प्रेरणा मिलती है, बल्कि अंग्रेज़ी में सरल और उपयोग के लिए तैयार पाठ भी बन जाता है।

चित्रांकन एक तरह से एक ऐसा लेखन है, जिसे हर कोई देख सकता है, साझा कर सकता है और उसके बारे में बात कर सकता है, इसलिए यह शिक्षण और अधिगम के लिए एक सशक्त संसाधन है। एक 'प्रिंट–समृद्ध' कक्षा से छात्रों का पढ़ने का आत्मविश्वास बढ़ सकता है। जो छात्र इन संदर्भात्मक संकेतों का उपयोग करके अपने परिवेश में मौजूद लिखित सामग्री का अर्थ समझना सीख लेते हैं, वे 'वास्तविक' पठन की ओर ज्यादा आसानी से बढ़ सकेंगे।

इनसे छात्रों के स्वयं के लेखन को प्रदर्शित करने से उन्हें न सिर्फ प्रेरणा मिलती है, बल्कि अंग्रेज़ी में सरल और उपयोग के लिए तैयार पाठ भी बन जाता है, जिसे अन्य छात्र भी शिक्षक के साथ या उनके बिना पढ़ सकते हैं। प्रदर्शन आपकी कक्षा को सजाने और आपके अभ्यास को "दिखाने" का एक अच्छा तरीका है। जब अभिभावक आपकी कक्षा में आते हैं, तो उन्हें तुरंत दिखाई देता है कि छात्र क्या सीख रहे हैं।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

5. किसकी सहायता से हम अपने विचारों, मान्यताओं तथा जानकारी को दूसरे के साथ बांटते हैं?

   (क) पुस्तकों की (ख) संप्रेषण की

   (ग) लेख की (घ) विद्यालय की

4. भाषा की कितनी आधारभूत क्षमताएं हैं?

   (क) पांच (ख) छह

   (ग) चार (घ) दो

2.5 उच्चतर माध्यमिक स्तर पर प्रयुक्त उपागम

उच्चतर माध्यमिक स्तर पर हिंदी भाषा शिक्षण में जिन प्रतीकात्मक माध्यमों का उपयोग किया जाता है, उन्हें अधिगम उपागम कहते हैं। ये उपागम कई तरह के होते हैं। पाठ्क्रम निर्धारित उपागमों का विवेचन हम यहां कर रहे हैं।

2.5.1 चार्ट एवं मॉड्यूल

चार्ट तथा माड्यूल का अध्ययन निम्न प्रकार कर सकते हैं–

(अ) चार्ट

कागजों पर बनाये गये चित्रों, रेखाचित्रों तथा लिखित विवरण को चार्ट कहा जाता है। चार्ट हिंदी भाषा शिक्षण का एक दृश्य साधन है। इसमें शिक्षण इकाई की पाठ्यवस्तु के स्पष्टीकरण के लिए विभिन्न सूचनाएं शामिल की जाती हैं और इसमें तथ्यों व चित्रों का समन्वय होता है।

चार्ट सर्वाधिक प्रयोग होने वाली सामग्री है। यह संकेत, शब्द, चित्र तथा रेखा के सम्मिश्रण से निर्मित है। अच्छे चार्ट से अध्याय सुन्दर, सरल, आकर्षक और प्रभावशाली होता है।

हिन्दी साहित्य का इतिहास पढ़ाते समय समय चार्ट, धारा चार्ट, तालिका चार्ट, वृक्ष चार्ट और संगठन चार्ट का प्रयोग किया जा सकता है। कवियों व लेखकों को पढ़ाते समय चित्रयुक्त चार्ट का प्रयोग किया जा सकता है। व्याकरण को पढ़ाने के लिये भी चार्ट का प्रयोग किया जा सकता है। व्याकरण को पढ़ाने के बाद कभी–कभी श्यामपट्ट सारांश चार्ट के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

चार्ट के स्वरूप

उपयोगिता की दृष्टि से चार्ट विविध प्रकार के होते हैं, जैसे– समय–चार्ट, धारा चार्ट, तालिका चार्ट, वृक्ष चार्ट, चित्रयुक्त चार्ट आदि।

चार्ट का प्रयोग सावधानी पूर्वक करना चाहिये हर चार्ट का अपना अलग ही महत्त्व होता है जैसे– भाषा शिक्षण में नागरी अंकों की उत्पत्ति का चार्ट, गणित शिक्षण में गणित चिन्हों का चार्ट, घटना या आन्दोलन का क्रमिक विकास दिखाना आदि।

टिप्पणी

चार्ट का आकार ऐसा होना चाहिए कि वह कक्षा में सभी छात्रों को दिखाई दे। इसके लिये उपयुक्त प्रकाश की व्यवस्था होनी चाहिए।

चार्ट स्पष्ट तथा समझने योग्य होने चाहिए। चार्ट रुचिकर होना चाहिए अर्थात विद्यार्थियों की रूचि के अनुकूल हों। चार्ट बनाते समय यह भी ध्यान देना होगा कि चार्ट में उपयुक्त स्थान छोड़ा जाना चाहिये चार्ट इतने बड़े होने चाहिये कि विद्यार्थी इन्हें दूर से ही देख सके। चार्ट विषय से संबंधित होने चाहिये।

चार्ट पर प्रदर्शित सामग्री क्रमानुसार हो। इसमे कम से कम लिखित सामग्री का प्रयोग किया जाये।

चार्ट में समय का ज्ञान होता है, जैसे विभिन्न सम्प्रदाय के कवियों के जन्म का चार्ट, हिन्दी साहित्य के इतिहास का चार्ट इत्यादि। तालिका चार्ट में तालिका के माध्यम से समझाया जाता हैं। वृक्ष चार्ट में किसी के प्रकार बताने के लिए वृक्ष चार्ट से समझाते हैं। वृक्ष की पत्तियों में उसके प्रकार लिख देते है। किसी संगठन को समझाने के लिए संगठन चार्ट का प्रयोग करते हैं जिसमें उसकी कार्यप्रणाली को समझाया जाता है। व्याकरण में किसी, संज्ञा, सर्वनाम, इत्यादि को समझाने में तितली चार्ट का प्रयोग कर सकते है। चित्रयुक्त चार्ट में चित्रों के माध्यम से समझाया जाता है। कवियों व लेखकों को पढ़ाते समय चित्रयुक्त चार्ट का प्रयोग करते हैं।

(ब) मॉडयूल

मॉड्यूल यानी प्रारूप। किसी वस्तु का प्रतिनिधियात्मक रूप जिसमें लम्बाई चौड़ाई, मोटाई, गोलाई अदि में से कम से कम तीन बातें हों, उसे प्रतिरूप या मॉडल कहते है। जैसे हाथी का मॉडल या ट्रक का मॉडल।

माड्यूल के तहत कुछ प्रश्नों से उसका मूल्यांकन किया जाता है। इसको विषय विशेषज्ञों द्वारा लिखा जाता है। जिसकी भाषा सरल एवं बोधगम्य होती है।

शिक्षा के क्षेत्र में मॉड्यूल नवाचार में आने वाला एक नया शब्द है। शिक्षण मॉड्यूल विशेष रूप से लिखित इकाई होती है। इसमें एक विशेष अवधारणा के विषय में चर्चा होती है। पाठ्यक्रम को कई माड्यूल में विमाजित कर दिया जाता है। छात्र अपनी जरूरत के अनुरूप इनका चयन पढ़ने के लिए करते हैं।

मॉडल का प्रयोग तब करते हैं जब वास्तविक वस्तु को कक्षा में ला पाना सम्भव न हो या बहुत बड़ी हो, जैसे हाथी को कक्षा में नहीं लाया जा सकता। उसके मॉडल से हम हाथी के विषय में पढ़ाते हैं।

मॉडल तीन प्रकार के होते हैं– स्थिर मॉडल, विभाजित मॉडल एवं क्रियाशील मॉडल। मॉडल कम खर्च का, देखने योग्य, स्पष्ट एवं आकर्षक होना चाहिए। इसका अनुपात प्रत्यक्ष वस्तु के अनुरूप होना चाहिए। हिन्दी में ताजमहल, अशोक स्तंभ जैसे विषयों को पढ़ाने के लिए मॉडल का प्रयोग किया जाता है। सामान्यतः भाषा शिक्षण में मॉडल का उपयोग कम करते हैं।

2.5.2 भाषा प्रयोगशाला आदि

यह पद्धति दृश्य–श्रव्य उपकरणों की भांति शिक्षण में एक सहायक पद्धति के रूप में प्रयुक्त की जाती है इसलिए इस पद्धति को अध्यापक की प्रतिस्थापना नहीं कहा जा सकता है। भाषा– प्रयोगशाला एक विशेष कक्ष होता है, जो विविध दृश्य, श्रव्य

टिप्पणी

उपकरणों से युक्त होता है। सामान्यः एक भाषा–प्रयोगशाला चार–छह–आठ, बत्तीस टेप रिकार्डरों का एक क्रमिक व्यवस्थित संयोजन होता है जिसके माध्यम से शिक्षार्थी विविध प्रकार के अभ्यास करते हुए भाषा सीखते हैं। संकुचित अर्थ में एक ऐसा कमरा भी भाषा–प्रयोगशाला का लिया जा सकता है जिसमें केवल एक टेपरिकार्डर हो और जिसके माध्यम से शिक्षार्थी भाषा अभ्यास कार्य करते हो, किंतु वास्तव में भाषा–प्रयोगशाला एक सामान्य कक्षा का पूरक रूप है, जहां शिक्षार्थी सामान्य कक्षा के अध्ययन के अतिरिक्त समय के टेपित पाठ्यांकों का श्रवण करते हुए अनुकरण आदि के द्वारा भाषा को व्यवहार के स्तर पर सीखते हैं।

शिक्षक को विभिन्न शिक्षण विधियों का ज्ञान होना आवश्यक है। शिक्षण में और विषेष रूप से भाषा शिक्षण में सहायक सामग्री का भी विशेष महत्व रहता है। शिक्षण विधि को प्रभावी बनाने के लिए दृश्य–श्रव्य उपकरणों की आवश्यकता होती है। भाषा शिक्षण मे भाषा–कक्षा का भी विशेष महत्व होता है। जो विद्यालय आर्थिक दृष्टि से संपन्न है, उनमें प्रायः सभी विषयों के अलग–अलग कक्ष होते हैं। भाषा के लिए भी एक अलग कक्ष होना आवश्यक है, क्योंकि भाषा के कक्ष में घुसते ही बालकों का ध्यान एकदम अन्य विषयों से हटकर भाषा की ओर जाता है और वह भाषा पढ़ने के लिए तैयार हो जाते हैं। तथा भाषा विषय में रुचि लेने लगते हैं। भाषा–कक्ष की साज–सज्जा देखकर वे भाषा की ओर अधिक आकर्षित हो जाते हैं और शीघ्र ही भाषा की निपुणता प्राप्त करने में दक्षता प्राप्त कर लेते हैं। भाषा–कक्ष के अध्ययन और अध्यापन दोनों में सहायता मिलती है।

भाषा–प्रयोगशाला में पाठ अधिक प्रभावशाली होते हैं, क्योंकि इसमें भाषा रिकार्डिंग अधिक स्वाभाविक वातावरण की सृष्टि करता है। शिक्षक कन्सौल से प्रसारित पाठ की ध्वनियां सीधे छात्र के कान में पहुंची है, अतः उनका प्रभाव कक्षा तथा लिंग्वाफोन से भी अधिक पड़ता है। साथ ही छात्र अपने ही माइक से अपनी आवाज को इयरफोन की सहायता से सुन सकता है। इलेक्ट्रोनिक्स युग का प्रारंभ होने के कारण जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में इलेक्ट्रोनिक्स का उपयोग किया जाने लगा है। भाषा–शिक्षण– मुख्यतः द्वितीय भाषा–शिक्षण के क्षेत्र में भी इसका उपयोग विभिन्न रूपों में अनिवार्य सा प्रतीत होने लगा है। भाषा–प्रयोगशाला भाषा के क्षेत्र में इलेक्ट्रोनिक्स की उपयोगिता का एक महत्वपूर्ण अंश है। शिक्षक का बहुत–सा समय व शक्ति पुस्तकों, शब्दकोश तथा अन्य शिक्षण सहायक सामग्री एक कमरे से दूसरे कमरे में ले जाने से नष्ट होने का भय उत्पन्न होता है। भाषा–कक्ष होने से ऐसा नहीं हो सकेगा। भाषा–कक्ष में शिक्षक द्वारा श्यामपट्ट पर लिखे गए पाठों का सारांश, रचना तथा रेखाचित्र दूसरे दिन भी प्रयोग में लाए जा सकते है।

उपयोगिता

भाषा–शिक्षण की निम्नलिखित रूप से उपयोगिता होती है–

1. भाषा की ध्वनि, शब्द तथा वाक्य व्यवस्था का अभ्यास।
2. अन्य शिक्षार्थियों का समय नष्ट न करते हुए उनके अध्ययन में कोई बाधा पहुंचाए बिना प्रत्येक अध्येता पर व्यक्तिगत ध्यान देने की सुविधा होने के कारण शिक्षार्थी की अशुद्धियों को वहीं का वहीं सुधारा जा सकता है।

3. शिक्षार्थी की बिना जानकारी में उसके कुछ कार्य अभ्यास आदि की जांच संभव है,जिससे कि शिक्षार्थी के मस्तिष्क पर समीक्षा के भूत का मनोवैज्ञानिक कुप्रभाव नहीं पड़ता है।

टिप्पणी

4. कम–बुद्धि वाले छात्रों पर प्रारंभ से ही नियंत्रण रखा जा सकता है।
5. अन्य छात्रों के अध्ययन में बिना बाधा डालते हुए धीमी गति वाले शिक्षार्थी द्वारा– स्व गति से अभ्यास करना संभव हो जाता है।
6. भाषा के विभिन्न कौशलों का अध्ययन भाषा–प्रयोगशाला में सरलता से संभव है। जैसे– ध्वनि–भेद, शब्द–भेद, वाक्य–भेद, उच्चारण शुद्धता, उपवाक्य, श्रुतलेख आदि, श्रवण अभ्यास आदि।
7. शिक्षक की भूमिका परोक्ष हो जाती है। अतः शिक्षार्थी पर शिक्षक के भय, उसकी उदासीनता आदि का कोई मनोवैज्ञानिक कुप्रभाव नहीं पड़ पाता है।
8. सामान्य कक्षा में प्रयुक्त सामूहिक–अभ्यास की यांत्रिक प्रक्रिया से शिक्षक मुक्ति पा जाता है।
9. शिक्षक प्रत्येक छात्र पर व्यक्तिगत ध्यान दे सकता है।

भाषा कक्ष

भाषा–कक्ष के लिए बड़े आकार का कमरा होना चाहिए। दरवाजे, खिड़की तथा रोशनी का उचित प्रबंध होना चाहिए। उसका फर्श पक्का होना चाहिए तथा बच्चों के बैठने के लिए पर्याप्त मेज तथा कुर्सी आदि होनी चाहिए।

1. **शब्दकोश**– भाषा–कक्ष में प्रत्येक छात्र के लिए संक्षिप्त शब्दकोश भी होने चाहिए। परिभाषित शब्दकोश, अंग्रेजी–हिंदी शब्दकोश, हिंदी–अंग्रेजी शब्दकोश तथा वृहद् हिंदी–शब्दकोश अवश्य होने चाहिए। इन शब्दकोशों से छात्र अनेक नए शब्दों को देखकर अपने शब्दकोश में वृद्धि कर सकते है।
2. **सजावट**– भाषा कक्ष आकर्षण का केंद्र होना चाहिए। इसका कलापूर्ण होना आवश्यक है। इसमें साहित्यकारों व कवियों के सुंदर–सुंदर चित्र टंगे होने चाहिए। इसके साथ ही साथ हिंदी साहित्य का काल विभाजन, रस, अंलकार तथा अन्य साहित्यिक चित्र भी टंगे होने चाहिए। इन चित्रों, चार्टों आदि को देखकर बालकों का मन भाषा सीखने के प्रेरित होता है। भाषा–कक्ष को फूल–पत्ती, बेल–बूटे आदि से नहीं सजाना चाहिए।
3. **अन्य शिक्षण उपकरण**– भाषा शिक्षण की सहायक सामग्री में चित्र, वस्तु, मानचित्र, ग्रामोफोन, टेपरिकार्डर, रेडियो आदि भाषा–कक्ष से लगे स्टोर–कक्ष में रहने चाहिए।
4. **श्यामपट्ट**– भाषा–कक्ष में एक या दो श्यामपट्ट होने चाहिए। ये साफ–सुथरे तथा चौरस होने चाहिए ताकि उन पर सुडौल व सुंदर अक्षर, चित्र व रेखाचित्र बनाए जा सकें। श्यामपट्टों का आकार वर्गाकार होना चाहिए। इन पर पाठों के सारांश तथा रचना की पूरी–पूरी रूपरेखा तैयार की जाती है।

• कंप्यूटर तथा शिक्षण प्रक्रिया

वर्तमान मे कंप्यूटर शिक्षा का शिक्षण के क्षेत्र में बहुत भारी योगदान है। इस प्रतिमान का विकास लोरंस स्टोलुरो तथा डेनियल डेविज ने किया। इस पद्धति को प्रायः दो भागों में विभक्त किया जा सकता है– (क) अनुवर्ग शिक्षण तथा (ख) पूर्व अनुवर्ग शिक्षण अवस्था।

प्रथम पक्ष में कंप्यूटर अनुदेशन, विशिष्ट उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए विशिष्ट छात्र को उसके पूर्व ज्ञान के आधार पर किया जाता है। द्वितीय प्रकार की अवस्था में कंप्यूटर उसके अनुरूप सामग्री को प्रस्तुत करता है, जिसका छात्र अध्ययन करता है। अंत में छात्र अधिगम का मापन किया जाता है। कंप्यूटर अनुदेशन के प्रस्तुतीकरण के बाद उसका नियंत्रण भी करता है तथा छात्रों को पुनर्बलन प्रदान करता है।

सामाजिक अध्ययन शिक्षा में कंप्यूटर के प्रयोग करने हेतु निम्नलिखित सामग्री की उपलब्धता अनिवार्य है–

1. सर्वप्रथम कंप्यूटर स्क्रीन तथा सी.पी.यू.
2. प्रिंटर
3. इंटरनेट सुविधा
4. भाषा एवं गणना संबंधी सॉफ्टवेयर
5. स्पीकर

कंप्यूटर के प्रमुख कार्य

सामाजिक अध्ययन शिक्षण के अंतर्गत कंप्यूटर अनुदेशन तथा शिक्षण में निम्नलिखित कार्य करता है–

1. कंप्यूटर की सहायता से इलेक्ट्रॉनिक प्रकाशन आसानी से उपलब्ध हो रहे हैं।
2. कंप्यूटर विद्युत प्रिटंर की सहायता से सूचनाओं का संप्रेषण करता है।
3. कंप्यूटर की सहायता से शिक्षक उपयोगी सूचनाओं और अपेक्षित प्रपत्रों का संकलन कर सकता है।

कंप्यूटर अनुदेशन सामग्री को भी संचित करता है। एक ही प्रकरण पर हर प्रकार की अनुदेशन सामग्री इंटरनेट की सहायता से संचित की जा सकती है।

कंप्यूटर विषय–वस्तु से संबंधित सूचनाओं को कार्डों पर संचित करता है। फ्लॉपी एवं सी.डी. में विषय–वस्तु का संकलन कर आसानी से सुरक्षित रखा जा सकता है।

• दूरदर्शन पर शिक्षण

वर्तमान में दूरदर्शन ने शिक्षण के क्षेत्र में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इसका स्वरूप व्यापक हो गया है। शिक्षण के क्षेत्र में दूरदर्शन का प्रयोग सामान्यतः दो रूपों में किया जा रहा है। प्रथम रूप में विभिन्न कक्षाओं का अलग–अलग रूप से अध्ययन

टिप्पणी

इस विधि के द्वारा कराया जा सकता है। दूसरे इस विधि के द्वारा उन बड़े एवं आर्थिक रूप से संपन्न विद्यालयों में देखने का मिलता है जहां एक एक ही विषय की कई कक्षाएं एक साथ पढ़ाई जाती है। इस प्रकार दूरदर्शन के दूसरे रूप में देश के दूरदर्शन केंद्र, विद्वान् एवं कुशल अध्यापकों से पाठ तैयार कराकर यह उनके वास्तविक शिक्षण को एक ही निश्चित समय पर दूरदर्शन पर प्रसारित करते हैं, जिसे राष्ट्र या प्रदेश के विद्यालयों में प्रदर्शित किया जाता है। इस प्रकार की व्यवस्था में अपेक्षाकृत बहुत ही कम आर्थिक साधनों की आवश्यकता पड़ती है। कार्यक्रमों का दूरदर्शन पर प्रसारण करने में जो भी व्यय होता है, वह दूरदर्शन विभाग वहन करता है विद्यालयों को केवल दूरदर्शन क्रय तथा बिजली आदि पर सामान्य व्यय करना पड़ता है।

शिक्षण के लिए दूरदर्शन अपनी विशिष्टता उपादेयता है। सभी विषयों के शिक्षण में दूरदर्शन का प्रयोग बड़ी सरलता तथा प्रभावपूर्ण ढंग से किया जाता है। इस शिक्षण का यह लाभ होता है कि इस शिक्षण को विद्यार्थी रुचिपूर्वक सुनते तथा उन पर अमल करते हैं। दूरदर्शन पर शिक्षण सिद्धांतों, शैक्षिक संगठनों तथा शैक्षिक क्रिया–कलापों पर वाद–विवाद, उनकी कार्य प्रणाली का प्रदर्शन तथा अनेक शैक्षिक मुद्दों, तथ्यों आदि का स्पष्टीकरण उच्च कोटि के विद्वानों तथा शिक्षकों के द्वारा सफलतापूर्वक किया जा सकता है। दूरदर्शन के द्वारा विशिष्ट उद्योगों, खनिज क्षेत्रों, पशु धन आदि के संबंध में चित्रमय विवरण प्रस्तुत कर शिक्षण को प्रभावी रूप से स्पष्ट किया जा सकता है। ऐसा शिक्षण विद्यार्थियों पर गहरी छाप छोड़ता है तथा स्थाई होता है।

दूरदर्शन के उपयोग

दूरदर्शन का प्रयोग आज शिक्षा में बड़ी तीव्र गति से हो रहा है। इसको देखते हुए इसके निम्नलिखित उपयोग बताए जा सकते हैं–

1. **कार्यक्रमों का मूल्यांकन**– दूरदर्शन पर दिखाए जाने वाले कार्यक्रामें का मूल्याकंन व्यवस्थित रूप से होना चाहिए। जिससे इन कार्यक्रमों की सफलता का पता चल सके तथा इन्हें और अधिक सफल बनाने के प्रयास किए जा सकें।
2. **दूरदर्शन कार्यक्रमों का प्रस्तुतिकरण**– दूरदर्शन के कार्यक्रमों का प्रस्तुतीकरण इस प्रकार से होना चाहिए कि उनका प्रभाव सभी बालकों पर समान रूप से पड़े, ऐसा न हो कि दूरदर्शन पर दिखाए जाने वाले कार्यक्रमों में प्रयुक्त होने वाली भाषा इतनी अधिक कठिन हो या उनमें चित्रित चित्रों को अधिक उच्च तकनीक से बनाया गया गया हो कि सामान्य बुद्धि वाला विद्यार्थी उसे न समझ सके। इस हेतु निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए–
    1. कार्यक्रम प्रसारण के समय कक्षा में शिक्षक उपस्थित हों, जिससे वे छात्रों की शंकाओं का समाधान करते जाएं तथा कक्षा पर नियंत्रण भी रखें।
    2. आवाज ऐसी हो, जिसे सभी छात्र सुविधापूर्वक सुन सकें।
    3. कमरे में जहां दूरदर्शन कार्यक्रमों का प्रसारण प्रदर्शित हो रहा है, मध्यम प्रकाश की व्यवस्था की जानी चाहिए।

4. अधिक लम्बे कार्यक्रम प्रस्तुत न किए जाएं। सामान्यतः एक कार्यक्रम तीस से चालीस मिनट का ही होना चाहिए अन्यथा बालकों का उस कार्यक्रम में रुचि बनाए रखना मुश्किल हो जाता है।
5. विषय–वस्तु छात्रों के स्तर के अनुसार तथा पाठ्यक्रम के अनुकूल होनी चाहिए। तभी वह अधिक प्रभावशाली होगी।

3. **कार्यक्रमों की तैयारी**– दूरदर्शन कार्यक्रमों की सफलता बहुत बड़ी मात्रा में इस बात पर निर्भर करती है कि इन कार्यक्रमों के लिए संबंधित अधिकारियों ने किस स्तर की पूर्व तैयारियां की हैं। शिक्षण के लिए दूरदर्शन कार्यक्रमों के प्रसारण के लिए यह आवश्यक है कि सभी प्रकार की आवश्यक तैयारियां पूरी कर ली जाएं जिससे कि कार्यक्रम के दौरान किसी भी प्रकार की कठिनाइयों का सामना न करना पड़े। इस हेतु आप भी आवश्यक कागज–पेन आदि लेकर दूरदर्शन के सम्मुख ऐसे स्थान पर बैठें, जहां से सुविधापूर्वक देख और सुन सकें।
4. **कार्यक्रमों का चयन**– शिक्षण के लिए दूरदर्शन कार्यक्रमों का चयन बड़ी सावधानी से किया जाना चाहिए तथा इसके संबंध में सतर्कता बरतनी चाहिए। इस हेतु निम्नलिखित बातों का ध्यान रखाना जाना चाहिए–
   1. कार्यक्रमों को प्रसारित करने का निश्चित तथा सुविधाजनक समय निश्चित हो, जिसकी जानकारी विद्यालयों के अधिकारियों तथा छात्रों को हो।
   2. कार्यक्रमों के लिए विभिन्न विद्वानों की भी सूची बनाई जाए।
   3. दूरदर्शन कार्यक्रमों की एक व्यापक तथा विस्तृत योजना बनाई जाए।
   4. कार्यक्रम छात्रों के पाठ्यक्रम से संबंधित होना चाहिए।

दूरदर्शन शिक्षण के लाभ

दूरदर्शन शिक्षण के निम्नलिखित लाभ हैं–

1. एक ही साथ बहुत बड़ी संख्या में छात्रों को शिक्षण प्रदान किया जा सकता है। इससे न केवल समय, श्रम की बचत होती है बल्कि धन भी कम व्यय होता है।
2. दूरदर्शन केवल राष्ट्र से संबंधित जानकारी ही बालकों को नहीं देता है बल्कि इसके द्वारा अंतर्राष्ट्रीय जानकारियों को भी छात्रों के सम्मुख बांटा जा सकता है।
3. दूरदर्शन ज्ञान संबंधी विस्तृत जानकारी प्रदान करता है।
4. दूरदर्शन कार्यक्रम उच्चकोटि के विद्वानों द्वारा तैयार किए जाते हैं।
5. दूरदर्शन कार्यक्रमों में हम ऐसे दृश्य उपस्थित कर सकते है, जो वास्तविक ज्ञान प्रदान करने में बड़े सार्थक सिद्ध होते हैं। जैसे– बाढ़, कारखाने द्वारा फेंके जाने वाले जहरीले धुएं से हानियां, आदि से संबंधित ज्ञान।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि दूरदर्शन के शिक्षण के द्वारा न केवल छात्रों को शिक्षा प्रदान करने में सहायता मिलती है बल्कि यह ऐसा शिक्षण देने में सफलता प्राप्त करता है जोकि अधिक स्थाई और प्रभावपूर्ण होता है।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

7. प्रारंभिक शिक्षा में प्रयुक्त सहायक शिक्षण सामग्री को क्या कहते हैं?
   (क) शिक्षण उपागम (ख) शिक्षण माध्यम
   (ग) शिक्षण प्रविधि (घ) संसाधन
8. इनमें से क्या पढ़ाई में सहायक खेल नहीं है?
   (क) बोर्ड गेम (ख) वर्ग पहेलियां
   (ग) हॉकी (घ) प्रश्नावलियां

2.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (घ)
2. (घ)
3. (ख)
4. (ग)
5. (ख)
6. (ग)
7. (क)
8. (ग)

2.7 सारांश

मातृभाषा स्वतः ग्राह्य होती है, शिक्षण प्रदत्त नहीं, जबकि दूसरी भाषा को बोधगम्य बनाने के लिए शिक्षण आवश्यक होता है। स्वर, उच्चारण, अक्षर विन्यास, लय, गति, लिंग, मुहावरे, कहावतें सभी का प्रशिक्षण देना पड़ता है। चाहे दोनों भाषाओं के ज्ञानोपार्जन में समानता हो परन्तु प्रशिक्षण विधियों में पर्याप्त भिन्नता होती है। यह सही है कि दोनों भाषाओं में शिक्षण का क्रम समान होता है अर्थात बोलने के पूर्व सुनना, पढ़ने के पहले बोलना और लिखने के पहले पढ़ना आदि की क्रियाएं दोनों भाषाओं के शिक्षण में स्वीकार की गई हैं।

भाषा केवल भावों और विचारों की अभिव्यक्ति का साधन ही नहीं है अपितु यह एक औजार की तरह है जिसका प्रयोग हम जिंदगी को समझने के लिए, उससे जुड़ने के लिए और जीवन–जगत को प्रस्तुत करने के लिए करते हैं। यह सब करने के लिए जांच–पड़ताल, सम्प्रेषण, तर्क जैसे कौशलों की आवश्यकता होती है। हम यह भी जानते हैं कि भाषा हमारे चारों ओर बिखरी हुई है, जैसे–अखबार, विज्ञापन, साइन–बोर्ड, पोस्टर इत्यादि के रूप में। इसके अतिरिक्त भाषा अपने साहित्यक रूप में भी उपलब्ध है।

प्राचीन काल से उपदेशक, शिक्षक व समाज सुधारक कहानी नामक साधन का प्रयोग अपनी सफलता के लिए करते रहे हैं। आज भी बालक से लेकर वृद्ध तक सभी कहानी का आनंद लेते हैं। छोटी कक्षाओं में समस्त विषयों का अध्यापन, मुख्यतः समाजशास्त्र का अध्यापन कहानियों द्वारा होना चाहिए क्योंकि ऐतिहासिक घटनाओं की जटिलता एवं नीरस तथ्यों में बालकों की रुचि नहीं होती परंतु उन्हीं घटनाओं को कहानी की सहायता से रुचिकर बनाया जा सकता है।

कई बार एक जैसे वाक्य होने के कारण यह समझना मुश्किल हो जाता है कि हमसे कुछ पूछा जा रहा है अथवा बताया जा रहा है। जैसे– 'तुम वहां रहते हो।' इस वाक्य के अंत में अगर (प्रश्नवाचक चिह्न (?)) लगाएं तो यह प्रश्न माना जाएगा और अगर हम इस वाक्य के अंत में (पूर्ण विराम (।)) का चिह्न लगाते हैं तो यह एक सामान्य वाक्य अथवा उत्तर के रूप में माना जाएगा। इसका प्रयोग किस परिस्थिति में होता है इस पर अर्थ निर्भर करता है। इस प्रकार विराम चिह्न हमें यह समझने में सहयोग करता है कि यह वाक्य किस रूप में या किस परिस्थिति के अनुरूप है।

भाषा की चार आधारभूत क्षमताएं हैं– सुनना, बोलना, पढ़ना और लिखना। सुनने, बोलने और पढ़ने में समझना शामिल है। लिखने में किसी भाषा के व्याकरण को समझते हुए अपनी बात को लिखित रूप में व्यक्त करना शामिल है। लिखने में डायरी लेखन, किसी सवाल का जवाब लिखना, नोट्स लिखना व अन्य किसी तरीके से लेखन कौशल का इस्तेमाल करना शामिल है। इसमें छोटी–छोटी कहानी, कविता या किसी सुनी हुई बात को लिखने का कौशल शामिल है। भाषा की ये सारी क्षमताएं एक–दूसरे से जुड़ी हुई हैं।

2.8 मुख्य शब्दावली

- **अंतर्देशीय एकता** – एक देश के भीतर की एकता
- **नासिका** – नाक का आंतरिक भाग
- **सृजन** – रचना, निर्माण
- **आनंदप्रद** – जिससे आनंद मिले
- **लोकोक्तियां** – लोगों द्वारा कथित वाक्य
- **उत्तरोत्तर** – निरंतर आगे की तरफ
- **तथ्यपरक** – यथार्थ पर आधारित
- **पदचिह्न** – पैरों के निशान (आकृति)

2.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. ध्वनि और शब्द में क्या अंतर है?
2. वाक्य किसे कहते हैं?

3. विश्व भाषा से क्या आशय है?
4. संप्रेषण से आप क्या समझते हैं?
5. खेल का प्रारंभिक शिक्षा में क्या महत्व है?

टिप्पणी

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. श्रवण एवं वाचन कौशल से संबंधित तथ्यों का विश्लेषण कीजिए।
2. उच्चतर माध्यमिक स्तर पर कहानी और नाटक शिक्षण के उद्देश्य पर प्रकाश डालिए।
3. राजभाषा एवं संपर्क भाषा की विवेचना कीजिए।
4. विराम चिह्नों को सोदाहरण समझाइए।
5. प्रारंभिक शिक्षा में प्रयुक्त शिक्षण उपागमों का परिचय दीजिए।

2.10 सहायक पाठ्य सामग्री

1. डॉ. रामशकल पाण्डेय, 'हिन्दी शिक्षण'।
2. डॉ. भोलानाथ तिवारी : 'हिन्दी भाषा'।
3. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : 'हिन्दी साहित्य का इतिहास'।
4. डॉ. एस. के. मंगल एवं श्रीमती शुभ्रामंगल : 'शिक्षा तकनीकी'।
5. डॉ. एस. एस. माथुर : 'शिक्षण कला एवं तकनीति'।
6. पाठक एवं त्यागी : 'सफल शिक्षण कला'।
7. भाई योगेन्द्र जीत : 'मातृभाषा शिक्षण'।
8. सावत्री सिंह : प्रगत हिन्दी शिक्षण।

इकाई 3 सामाजिक परिवेश में हिंदी की संरचना

टिप्पणी

संरचना

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 हिंदी शिक्षण का अन्य विषयों एवं समाज में प्रचलित बोलियों से सहसंबंध
 3.2.1 हिंदी शिक्षण का विज्ञान, भूगोल, इतिहास, राजनीति, संगीत, दर्शन, समाजशास्त्र, पर्यावरण से संबंध
 3.2.2 स्थानीय बोलियों के साथ हिंदी भाषा का सहसंबंध
3.3 हिंदी शिक्षण द्वारा ज्ञानात्मक संरचना का विकास
 3.3.1 व्याकरणिक इकाइयों का अध्ययन– उपसर्ग, प्रत्यय, संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, विशेषण, कारक एवं समास
 3.3.2 रस, छंद एवं अलंकार
 3.3.3 पर्यायवाची, विलोम शब्द, मुहावरे एवं लोकोक्ति
 3.3.4 चित्र आधारित कविता–कहानी की संरचना एवं वाक्य रचना
3.4 हिंदी शिक्षण अनुप्रयोग (समस्त व्याकरणिक इकाइयों का वर्गीकरण/विश्लेषण, प्रयोग एवं प्रश्नावली निर्माण)
 3.4.1 समस्त व्याकरणिक इकाइयों का वर्गीकरण/विश्लेषण व प्रयोग
 3.4.2 प्रश्नावली निर्माण
3.5 हिंदी शिक्षण में सहायक शिक्षण सामग्री (TLM) का प्रयोग
 3.5.1 चित्र, चार्ट्स एवं मॉडल्स
 3.5.2 दृश्य–श्रव्य सामग्री आदि
 3.5.3 दृश्य एवं श्रव्य सामग्री का सामंजस्य
3.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.7 सारांश
3.8 मुख्य शब्दावली
3.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.10 सहायक पाठ्य सामग्री

3.0 परिचय

भारतीय प्राचीन आर्य भाषाओं संस्कृत, पालि, प्राकृत एवं अपभ्रंश की उत्तराधिकारिणी हिंदी भाषा आज संपूर्ण भारत पर अधिकार स्थापित कर चुकी है। अनेक विकसित आधुनिक भारतीय भाषाओं में हिंदी सर्वाधिक लोकप्रिय एवं सर्वसुलभ है। अपने इसी गुण के कारण वह राष्ट्रभाषा एवं राजभाषा के गौरवशाली पद पर आसीन है। हिंदी के क्षेत्र की ओर संकेत करते हुए ग्रियर्सन ने कहा है कि हिंदी का क्षेत्र पश्चिम में अंबाला (पंजाब) से लेकर पूर्व में बनारस तक और उत्तर में नैनीताल की तलहटी से लेकर दक्षिण में बालाघाट तक फैला है। किंतु ग्रियर्सन द्वारा कथित हिंदी भाषा का क्षेत्र अब इतना संकुचित नहीं रह गया है, क्योंकि हिंदी का क्षेत्र इससे कहीं अधिक विस्तृत और व्यापक है।

विस्तृत और व्यापक क्षेत्र में फैली हिंदी की संरचना में व्याकरणिक इकाइयों, विविध भाषी शब्द भंडारों, शिक्षकों–शिक्षण एवं सहायक शिक्षण सामग्रियों की भूमिका

तो है ही, अन्यान्य विषयों से हिंदी का सह–संबंध भी इसके लिए विधायी रूप से उत्तरदायी है।

टिप्पणी

हम इस इकाई में हिंदी शिक्षण का अन्य विषयों एवं विविध बोलियों से सहसंबंध स्पष्ट करते हुए 'हिंदी शिक्षण द्वारा ज्ञानात्मक विकास' का अध्ययन करेंगे। विविध व्याकरणिक इकाइयों के विश्लेषण के साथ हिंदी शिक्षण में सहायक शिक्षण–सामग्री की विवेचना भी इस इकाई का विषय है।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- हिंदी शिक्षण का अन्य विषयों एवं बोलियों से संबंध समझ पाएंगे;
- रस, छंद, अलंकार, पर्यायवाची–विलोम आदि से परिचित हो पाएंगे;
- हिंदी की समस्त व्याकरणिक इकाइयों का विश्लेषण कर पाएंगे;
- हिंदी शिक्षण में सहायक शिक्षण सामग्री का अवलोकन कर पाएंगे।

3.2 हिंदी शिक्षण का अन्य विषयों एवं समाज में प्रचलित बोलियों से सहसंबंध

हिंदी भाषा शिक्षण का विविध पाठ्य विषयों और समाज में प्रचलित बोलियों से सहसंबन्ध पृथक–पृथक इस प्रकार समझा जा सकता है–

3.2.1 हिंदी शिक्षण का विज्ञान, भूगोल, इतिहास, राजनीति, संगीत, दर्शन, समाजशास्त्र, पर्यावरण से संबंध

हिन्दी भाषा–भाषियों का 81.072 प्रतिशत गांवों में निवास करता है, शेष हिन्दीभाषी लोग भारत के शहरों में रहते हैं। शिक्षा का विस्तार देश भर में हो चुका है। सभी विषय शिक्षालयों में पढ़ाये जाते हैं। शहरों में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी है, लेकिन हिंदी शिक्षण भी है। ग्रामीण भारत में तो हिन्दी का ही वर्चस्व है। इस प्रकार हिंदी भाषा शिक्षण का विज्ञान, भूगोल, इतिहास, राजनीति, संगीत, दर्शन, समाजशास्त्र, पर्यावरण आदि समस्त विषयों से सह संबंध स्वाभाविक है। इसे संक्षेप में समझते हैं–

- **हिंदी भाषा शिक्षण का विज्ञान से संबंध**

विज्ञान वह व्यवस्थित ज्ञान या विद्या है जो विचार, अवलोकन, अध्ययन और प्रयोग से मिलती है, जो किसी अध्ययन के विषय की प्रकृति या सिद्धान्तों को जानने के लिये किये जाते हैं। विज्ञान शब्द का प्रयोग ज्ञान की ऐसी शाखा के लिये भी करते हैं, जो तथ्य, सिद्धान्त और तरीकों को प्रयोग और परिकल्पना से स्थापित और व्यवस्थित करती है।

हिंदी भाषा शिक्षण का विज्ञानसम्मत तथ्यों से प्रत्यक्ष संबंध तो है ही, हिंदी भाषा का स्वयं का भी विज्ञान है।

टिप्पणी

अर्थविज्ञान आदि को भाषाविज्ञान की शाखाएँ मानने वालों में डॉ. बाबूराम सक्सेना, डॉ. भोलानाथ तिवारी आदि तथा वर्णनात्मक, तुलनात्मक, ऐतिहासिक आदि को भाषाविज्ञान की शाखाएँ मानने वाले विद्वनों में डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, डॉ. देवेन्द्र शर्मा, डॉ. देवीशंकर द्विवेदी आदि शामिल हैं।

वास्तव में ध्वनिविज्ञान, पदविज्ञान, वाक्यविज्ञान,अर्थविज्ञान आदि भाषाविज्ञान के अंग हैं। वर्णनात्मक, तुलनात्मक, ऐतिहासिक एवं संरचनात्मक भाषाविज्ञान की शाखाएँ हैं। ये तथ्य भाषाविज्ञान के मूर्धन्य आचार्यों द्वारा मान्य हैं।

वर्णनात्मक भाषाविज्ञान को समकालिक, या एककालिक (Syncronic) भी कहते हैं। इस पद्धति द्वारा किसी एक भाषा की किसी एक काल की संरचनात्मक विशेषताओं का विवेचन विश्लेषण किया जाता है। इसमें जीवित भाषा या बोली के लिए वर्णनात्मक भाषाविज्ञान की पद्धति को अपनाया जाता है। कथित भाषा की लिखित सामग्री को विश्लेषण का आधार बनाया जा सकता है।

आधुनिक भाषा विज्ञान का प्रारम्भ ही तुलनात्मक भाषा विज्ञान से माना जाता है। 'तुलनात्मक ' का अर्थ है दो या दो से अधिक भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन तथा इस पद्धति में अध्ययन एक या कई कालों की भाषाओं का हो सकता है। इसमें ऐतिहासिक भाषाविज्ञान से भी सहायता ली जाती है। एक, दो या अधिक भाषाओं या बोलियों के तुलनात्मक अध्ययन द्वारा उस अज्ञात भाषा का स्वरूप ज्ञात किया जाता है, जिससे वे निकली हैं। इसे भाषा का पुनर्निर्माण (Reconstruction) कहते हैं।

ऐतिहासिक भाषाविज्ञान को कालक्रमिक, (Diachronic) भी कहते हैं। किसी भाषा में विभिन्न कालों में हुए परिवर्तन पर विचार करना एवं उन परिवर्तनों के सम्बन्ध में सिद्धान्तों का निर्माण ऐतिहासिक भाषा विज्ञान के अन्तर्गत आता है। वर्णनात्मक पद्धति तथा ऐतिहासिक पद्धति में मुख्य अन्तर यह है कि वर्णनात्मक भाषा विज्ञान में किसी भाषा का अध्ययन करते समय काल से सम्बन्धित स्वरूप का विश्लेषण होता है। इसलिए इसे एककालिक (Synchronic) कहा जाता है जबकी दूसरी ओर ऐतिहासिक भाषा विज्ञान में भाषा का कालक्रमिक अध्ययन होता है।

संरचनात्मक पद्धति वर्णनात्मक भाषाविज्ञान पद्धति की अगली कड़ी है। इसमें भाषा के विभिन्न तत्वों के पारस्परिक सम्बन्धों को लेकर अध्ययन किया जाता है। संरचनात्मक भाषाविज्ञान के विभिन्न तत्वों का पारस्परिक सम्बन्ध अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है, जबकि वर्णनात्मक भाषाविज्ञान भाषा की भीतरी व्यवस्था से निरपेक्ष अध्ययन प्रस्तुत करता है।

• हिंदी भाषा शिक्षण का भूगोल से संबंध

भूगोल ग्रीक भाषा के दो शब्दों Geo (पृथ्वी) तथा Graphos (वर्णन करना) से बना है।

हिंदी पर बंगला का प्रभाव है। अर्थात भाषा का जैसा रूप केंद्रिक क्षेत्र में होता है वैसा सीमावर्ती क्षेत्र में नहीं होता। भाषा–सर्वेक्षण भाषा–भूगोल का सीधा संबंध भाषा सर्वेक्षण की प्रक्रिया से है। भाषा सर्वेक्षण से प्राप्त सामग्री व तथ्यों के आधार पर किसी भाषा का ऐतिहासिक विकास समझा जा सकता है।

भाषा और बोली सर्वेक्षण के स्वरूप और प्रविधि को स्पष्ट करना बिना भूगोल के अध्ययन के संभव नहीं है।

टिप्पणी

भाषा–भूगोल (language geography) मानव भूगोल की एक प्रमुख शाखा है। इस शाखा के अन्तर्गत किसी भाषा या क्षेत्रीय बोली में पाई जाने वाली क्षेत्रीय एवं भौगोलिक विभिन्नताओं का अध्ययन किया जाता है।

किसी एक उल्लिखित क्षेत्र में पाई जाने वाली भाषा संबंधी विशेषताओं का व्यवस्थित अध्ययन भाषा भूगोल या बोली भूगोल (dialect geography) के अंतर्गत आता है। ये विशेषताएँ उच्चारणगत, शब्दगत या व्याकरणगत हो सकती हैं। सामग्री एकत्र करने के लिये भाषाविज्ञानी आवश्यकतानुसार सूचक (Informant) चुनता है और टेपरिकार्डर पर या विशिष्ट स्वनात्मक लिपि (Phonetic Script) में नोटबुक पर सामग्री एकत्र करता है। इस सामग्री के संकलन और संपादन के बाद वह उन्हें अलग–अलग मानचित्रों पर अंकित करता है। इस प्रकार तुलनात्मक आधार पर वह समभाषांश रेखाओं (Isoglosses) द्वारा क्षेत्रीय अंतर स्पष्ट कर भाषागत या बोलीगत भौगोलिक सीमाएँ स्पष्ट कर देता है। इस प्रकार बोलियों का निर्धारण हो जाने पर प्रत्येक का वर्णनात्मक एवं तुलनात्मक सर्वेक्षण किया जाता है। उनके व्याकरण तथा कोश बनाए जाते हैं। बोलियों के इसी सर्वांगीण वर्णनात्मक तुलनात्मक या ऐतिहासिक अध्ययन को भाषिका (बोली) विज्ञान (Dialectology) कहते हैं।

• हिंदी भाषा शिक्षण का इतिहास से संबंध

बिना इतिहास के सहयोग के हिंदी भाषा का शिक्षण संभव नहीं है।स्वयं हिंदी का भी अपना इतिहास है। हिन्दी भाषा का इतिहास लगभग एक हजार वर्ष पुराना माना गया है। सामान्यतः प्राकृत की अन्तिम अपभ्रंश अवस्था से ही हिन्दी साहित्य का आविर्भाव स्वीकार किया जाता है। उस समय अपभ्रंश के कई रूप थे और उनमें सातवीं–आठवीं शताब्दी से ही 'पद्य' रचना प्रारम्भ हो गयी थी। चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' ने इसी अवहट्ट को 'पुरानी हिन्दी' नाम दिया। हिंदी विश्व की लगभग 3,000 भाषाओं में से एक है।

हिंदी भाषा की उत्पत्ति, विकास क्रम, वर्तमान स्वरूप आदि का अध्यन इतिहास सम्मत है।

इतिहास का प्रयोग विशेषतः दो अर्थों में किया जाता है। एक है प्राचीन अथवा विगत काल की घटनाएँ और दूसरा उन घटनाओं के विषय में धारणा। इतिहास शब्द (इति + ह + आस ; अस् धातु, लिट् लकार अन्य पुरुष तथा एक वचन) का तात्पर्य है "यह निश्चय था"। ग्रीस के लोग इतिहास के लिए "हिस्तरी" (history) शब्द का प्रयोग करते थे। "हिस्तरी" का शाब्दिक अर्थ "बुनना" था। अनुमान होता है कि ज्ञात घटनाओं को व्यवस्थित ढंग से बुनकर ऐसा चित्र उपस्थित करने की कोशिश की जाती थी जो सार्थक और सुसंबद्ध हो। इस प्रकार इतिहास शब्द का अर्थ है – परंपरा से प्राप्त उपाख्यान समूह (जैसे कि लोक कथाएँ), वीरगाथा (जैसे कि महाभारत) या ऐतिहासिक साक्ष्य। इतिहास के अंतर्गत हम जिस विषय का अध्ययन करते हैं उसमें अब तक घटित घटनाओं या उससे संबंध रखनेवाली घटनाओं का इतिहास होता है।

टिप्पणी

इतिहास लेखन शब्द यूनानी / ग्रीक भाषा के शब्द HISTORIA से बना है। छानबीन करके या खोजबीन करके जो भी जानकारी प्राप्त होती है उसे ही ग्रीक भाषा में हिस्टोरिया कहा जाता है। सबसे पहले हेरोडोटस नाम के यूनानी व्यक्ति ने हिस्टोरिका नामक पुस्तक लिखकर अतीत में हुई घटनाओं की जानकारी दी। इतिहास लिखने का काम सबसे पहले हेरोडोटस ने किया इसलिए इसे इतिहास का पिता या Father Of History भी कहा जाता है। इतिहास के मुख्य आधार युगविशेष और घटनास्थल के वे अवशेष हैं जो किसी न किसी रूप में प्राप्त होते हैं। जीवन की बहुमुखी व्यापकता के कारण स्वल्प सामग्री के सहारे विगत युग अथवा समाज का चित्रनिर्माण करना दु:साध्य है। सामग्री जितनी ही अधिक होती जाती है उसी अनुपात से बीते युग तथा समाज की रूपरेखा प्रस्तुत करना साध्य होता जाता है। पर्याप्त साधनों के होते हुए भी यह नहीं कहा जा सकता कि कल्पनामिश्रित चित्र निश्चित रूप से शुद्ध या सत्य ही होगा। इसलिए उपयुक्त कमी का ध्यान रखकर कुछ विद्वान कहते हैं कि इतिहास की संपूर्णता असाध्य सी है, फिर भी यदि हमारा अनुभव और ज्ञान प्रचुर हो, ऐतिहासिक सामग्री की जाँच–पड़ताल को हमारी कला तर्कप्रतिष्ठित हो तथा कल्पना संयत और विकसित हो तो अतीत का हमारा चित्र अधिक मानवीय और प्रामाणिक हो सकता है। सारांश यह है कि इतिहास की रचना में पर्याप्त सामग्री, वैज्ञानिक ढंग से उसकी जाँच, उससे प्राप्त ज्ञान का महत्व समझने के विवेक के साथ ही साथ ऐतिहासक कल्पना की शक्ति तथा सजीव चित्रण की क्षमता की आवश्यकता है। स्मरण रखना चाहिए कि इतिहास न तो साधारण परिभाषा के अनुसार विज्ञान है और न केवल काल्पनिक दर्शन अथवा साहित्यिक रचना है। इन सबके यथोचित सम्मिश्रण से इतिहास का स्वरूप रचा जाता है।

शिक्षा अनवरत चलने वाली प्रक्रिया है। यह अनवरता हमें इतिहास से जोड़े बिना चल नहीं सकती। भाषा शिक्षण भी तमाम घटनाओं और दुर्घटनाओं से जोड़े रहा है। भाषा के उतार–चढ़ाव पर इतिहास की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। इतिहास से कटकर शिक्षण है ही नहीं। उदहारण स्वरूप मुगल काल में उर्दू का बोलबाला था तो भाषा शिक्षण में इतिहास के पन्नों को भी पलटना पड़ेगा। अतः इतिहास के बिना भाषा शिक्षण असम्भव है।

• हिंदी भाषा शिक्षण का राजनीतिशास्त्र से संबंध

राजनीतिशास्त्र वह विज्ञान है जो मानव के एक राजनीतिक और सामाजिक प्राणी होने के नाते उससे संबंधित राज्य और सरकार दोनों संस्थाओं का अध्ययन करता है।

राजनीति विज्ञान अध्ययन का एक विस्तृत विषय या क्षेत्र है। राजनीति विज्ञान में ये तमाम बातें शामिल हैं– राजनीतिक चिन्तन, राजनीतिक सिद्धान्त, राजनीतिक दर्शन, राजनीतिक विचारधारा, संस्थागत या संरचनागत ढाँचा, तुलनात्मक राजनीति, लोक प्रशासन, अन्तरराष्ट्रीय कानून और संगठन आदि।

अरस्तु के अनुसार मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। सामाजिक जीवन के समस्त आयाम (सांस्कृतिक, सामाजिक, नैतिक, मनोवैज्ञानिक, आर्थिक, राजनीतिक) उसकी जीवन शैली को सम्पन्न करते हैं। मानक जीवन की धुरी पर इन आयामों के सभी नियामक विषय परस्पर जुड़कर सतत परिचालित हैं। राजनीति इन सभी आयामों को समन्वित करने का महत्वपूर्ण कार्य करती है।

हिंदी एवं अन्य सामाजिक विज्ञानों की घनिष्ठता के कारण ही राजनीति विज्ञान के अध्ययन में प्राचीन काल से अन्तर–अनुशासनात्मक अध्ययन की परम्परा रही है। प्राचीन यूनानी विचारक प्लेटो, अरस्तू की रचनाओं में दर्शन व आचारशास्त्र से राजनीति की घनिष्ठता स्पष्ट होती है। मध्ययुगीन विचारक सेण्ट आगस्टाइन व टॉमस एक्वीनास की रचनाओं में धर्मशास्त्र व नीतिशास्त्र के साथ राजनीति की घनिष्ठता प्रकट होती है।

16वीं सदी अर्थात् आधुनिक युग के प्रारम्भ के विद्वान मैकियावली ने इतिहास का अपने वैचारिक आधार में प्रयोग किया। उसके बाद हाब्स ने ज्यामिति, यांत्रिकी तथा चिकित्साविज्ञान के तथ्यों व सिद्धान्तों का उपयोग किया। रूसो व मॉन्टेस्क्यू ने राजनीति व भूगोल की घनिष्ठता को स्पष्ट किया। 18वीं सदी के उत्तरार्द्ध व 19वीं सदी के प्रारम्भिक काल में राजनीति विज्ञान व अन्य समाज विज्ञानों के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध स्वीकारने में बाधा आयी क्योंकि इस काल में विभिन्न विज्ञानों द्वारा अपने को पूर्ण एवं स्वतंत्र विज्ञान मानने पर बल दिया गया। किन्तु 19वीं सदी के मध्यकाल से पुनः इस तथ्य को स्वीकारा जाने लगा कि सभी समाज विज्ञानों में घनिष्ठ सम्बन्ध होते है। कार्ल मार्क्स एवं आगस्त काम्टे ने सामाजिक विज्ञानों की घनिष्ठता पर बल दिया।

20 वीं सदी के प्रारम्भ के साथ ही राजनीति विज्ञान की अन्य विज्ञानों से घनिष्ठता प्रायः निर्विवाद रूप से स्वीकारी जाने लगी। व्यवहारवाद एवं उत्तर–व्यवहारवाद ने अन्तर–अनुशासनात्मक अध्ययन की अनिवार्यता को स्थापित किया। इस विकास में अमेरिकी राजनीति विज्ञानियों, विशेषकर शिकागो स्कूल के राजनीति विज्ञानियों, का प्रमुख योगदान रहा है। केटलिन, चार्ल्स मेरियम, गॉस्वेल, लासवेल, डेविड ईस्टन, स्टुअर्ट राइस आदि ने अनुभववादी प्रमाणों के आधार पर अन्तर–अनुशासनात्मक अध्ययनों को पुख्ता किया। पॉल जेनेट ने लिखा है–

''राजनीति शास्त्र का राजनीतिक अर्थव्यवस्था या अर्थशास्त्र से गहरा सम्बन्ध है। इसका कानून से सम्बन्ध है चाहे वह प्राकृतिक हो या मानवीय जो कि नागरिकों के आपसी संबन्धों को नियमित करता है, वह इतिहास से सम्बन्धित है जो कि इसको आवश्यकता के अनुसार 'तथ्य' देता है। इसका 'तत्व ज्ञान' या दर्शनशास्त्र और विशेषकर नैतिकता या आचार से सम्बन्ध है जो कि इसको 'सिद्धान्त' देता है।"

सारांश यह है कि समाजशास्त्रों में पारस्परिक अन्तर्निर्भरता पायी जाती है।

कोई भी एक समाज विज्ञान समाज का उचित एवं समग्र अध्ययन नहीं कर सकता। इसलिए तमाम समाजशास्त्र आपस में सम्बन्धित हैं और अन्तर्शास्त्रीय अध्ययन पद्धति ने फिर से समाजशास्त्रों के इस सम्बन्ध को उभार दिया है।

आज राजनीतिक अर्थशास्त्र, (पॉलिटिकल इकोनॉमी), राजनीतिक नैतिकता (पॉलिटिकल मौरेलिटी), राजनीतिक इतिहास (पॉलिटिकल हिस्ट्री), राजनीतिक समाजशास्त्र (पॉलिटिकल सोशियोलॉजी), राजनीतिक मनोविज्ञान (पॉलिटिकल साइकोलॉजी), तथा राजनीतिक भूगोल (पॉलिटिकल जियोग्राफी) आदि विभिन्न राजनीति विज्ञान की नई शाखाओं का खुलना इस बात का प्रतीक है कि राजनीति विज्ञान हिंदी समेत अन्य समाज विज्ञानों से सम्बन्ध स्थापित किये बिना नहीं चल सकता।

हिंदी भाषा का गुण प्रवाहमयता है। वह बहुत कुछ अपने में समाहित करती चलती है। राजनीति राज्य के संचालन की नीति है जो विविध आयामों के साथ है। यद्यपि आज के समय में राजनीति को आज के परिवेश के हिसाब से लेते हैं।

टिप्पणी

भाषा राज्य के अंदर की बात है तो भाषा शिक्षण में एक–दूसरे से प्रभावित होना स्वाभाविक है।

एक उदाहरण हम लेते हैं, हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने की बात आई तो दक्षिण वालों ने राजनीतिक स्तर पर हिंदी भाषा का विरोध किया तो कहने का आशय यह है कि भाषा शिक्षण भी राजनीति से अलग नहीं।

• हिंदी भाषा शिक्षण का संगीत से संबंध

सुव्यवस्थित ध्वनि, जो रस की सृष्टि करे, संगीत कहलाती है। गायन, वादन व नृत्य तीनों के समावेश को संगीत कहते हैं। संगीत नाम इन तीनों के एक साथ व्यवहार से पड़ा है। गाना, बजाना और नाचना प्रायः इतने पुराने हैं, जितना पुराना आदमी है। बजाने और बाजे की कला आदमी ने कुछ बाद में खोजी–सीखी हो, पर गाने और नाचने का आरंभ तो न केवल हज़ारों बल्कि लाखों वर्ष पहले उसने कर लिया होगा, इसमें कोई संदेह नहीं।

नेपाल की नुक्कड़ संगीत–मण्डली द्वारा पारम्परिक संगीत गायन मानव के लिए प्रायः उतना ही स्वाभाविक है जितना भाषण। कब से मनुष्य ने गाना प्रारंभ किया, यह बताना उतना ही कठिन है जितना कि कब से उसने बोलना प्रारंभ किया है। परंतु बहुत काल बीत जाने के बाद उसके गायन ने व्यवस्थित रूप धारण किया।

हिंदी की सभी काव्य विधाएं संगीतात्मक हैं। संगीत मानवीय लय एवं तालबद्ध अभिव्यक्ति है। भारतीय संगीत अपनी मधुरता, लयबद्धता तथा विविधता के लिए जाना जाता है। वर्तमान भारतीय संगीत का जो रूप दृष्टिगत होता है, वह आधुनिक युग की प्रस्तुति नहीं है, बल्कि यह भारतीय इतिहास के प्रारम्भ के साथ ही जुड़ा हुआ है। वैदिक काल में ही भारतीय संगीत के बीज पड़ चुके थे। सामवेद उन वैदिक ऋचाओं का संग्रह मात्र है, जो गेय हैं। प्राचीन काल से ही ईश्वर आराधना हेतु भजनों के प्रयोग की परम्परा रही है। यहाँ तक की यज्ञादि के अवसर पर भी समूहगान होते थे। ध्यान देने की बात है कि प्राचीन काल की अन्य कलाओं के समान ही भारतीय कला भी धर्म से प्रभावित थी।

वास्तव में भारतीय संगीत की उत्पत्ति धार्मिक प्रेरणा से ही हुई है। परन्तु धीरे–धीरे यह धर्म को तोड़कर लौकिक जीवन से संबन्धित होती गई और इसी के साथ नृत्य कला, वाद्य तथा गीतों के नये–नये रूपों का आविष्कार होता गया। कालांतर में नाट्य भी संगीत का एक हिस्सा बन गया। समय के साथ संगीत की विभिन्न धाराएँ विकसित होती गईं, नये–नये राग, नये–नये वाद्य यंत्र और नये–नये कलाकार उत्पन्न होते गये।

भारतीय संगीत जगत अनेक महान् विभूतियों के योगदानों के परिणामस्वरूप ही इतना विशाल रूप धारण कर सका है।

'संगीत रत्नाकर' के अनुसार गीतं वाद्य तथा नृत्य त्रयं संगीतमुच्यते – अर्थात् गीत, वाद्य और नृत्य – इन तीनों का समुच्चय ही संगीत है। परन्तु भारतीय संगीत का

टिप्पणी

अध्ययन करने पर यह आभास होता है कि इन तीनों में गीत की ही प्रधानता रही है तथा वाद्य और नृत्य गीत के अनुगामी रहे हैं। एक अन्य परिभाषा के अनुसार, सम्यक् प्रकारेण यद् गीयते तत्संगीतम् – अर्थात् सम्यक् प्रकार से जिसे गाया जा सके वही संगीत है। अन्य शब्दों में स्वर, ताल, शुद्ध, आचरण, हाव–भाव और शुद्ध मुद्रा का गेय विषय ही संगीत है। वास्तव में स्वर और लय ही संगीत का अर्थात् गीत, वाद्य और नृत्य का आधार है।

प्लेटो के अनुसार –

"संगीत ब्रह्मांड को देता है आत्मा , बुद्धि को देता है पंख , कल्पना को देता है उड़ान, हर शय को देता है जीवन दान।"

संगीत मानव जीवन का अविभाज्य अंग है। इसका प्रयोग हम मनोरंजन , सम्प्रेषण , शिक्षा आदि विभिन्न क्षेत्रों में करते हैं। इस संबंध में किये गए अध्ययनों से ज्ञात होता है कि संगीत संज्ञानात्मक प्रक्रिया में सहायक होने के साथ–साथ अधिगम के लिए आवश्यक सभी तत्त्वों को प्रभावित करता है।

भाषा शिक्षण को संगीत गति देता है , प्रवाह देता है। भाषा संगीत को अपने शब्दों में बांधकर ऊँचाइयाँ प्रदान करती है।

• हिंदी भाषा शिक्षण का दर्शनशास्त्र से संबंध

भाषादर्शन (Philosophy of language) का सम्बन्ध इन चार केन्द्रीय समस्याओं से है– अर्थ की प्रकृति, भाषा प्रयोग, भाषा संज्ञान, तथा भाषा और वास्तविकता के बीच सम्बन्ध। किन्तु कुछ दार्शनिक भाषादर्शन को अलग विषय के रूप में न लेकर, इसे तर्कशास्त्र (लॉजिक) का ही एक अंग मानते हैं।

भारत में भाषा के तत्त्वमीमांसीय व ज्ञानमीमांसीय पक्षों पर सुदूर प्राचीन काल से ही विचार आरम्भ हो गया था। व्याकरण की रचना के लिए अनेक पारिभाषिक शब्दों का आश्रय लेना पड़ा। नाम, आख्यात उपसर्ग, निपात, क्रिया, लिंग, वचन, विभक्ति, प्रत्यय इत्यादि शब्दों के माध्यम से भाषा के विभिन्न रूपों का विश्लेषण किया गया। गहरा चिन्तन, सूक्ष्म विचार और सत्य के अन्वेषण की पद्धति को दर्शन कहा जाता है। इस कारण भाषा के विश्लेषण को भी दर्शनशास्त्र का स्तर मिल गया।

वैदिक साहित्य में ही इस स्तर को स्वर मिलना आरम्भ हो गया था।

गोपथ ब्राह्मण का ऋषि प्रश्न करते हुए कहता है–

ओंकार पृच्छामः को धातुः, किं प्रातिपदिकम्, किं नामाख्यातम्, किं लिंगम्, किं वचनम्, का विभक्तिः, कः प्रत्यय इति।

ये प्रश्न भाषा की आन्तरिक मीमांसा को संबोधित हैं। यदि इन प्रश्नों के उत्तर दे दिए जाएं, तो पूरा व्याकरणदर्शन सामने आ जाता है। जब धातु, प्रातिपदिक, नाम, आख्यात आदि के प्रति जिज्ञासा थी तो इनका समाधान भी किया गया था और समाधान करने वाले आचार्यों की लम्बी परम्परा भी खड़ी हो गई थी।

निरुक्तकार यास्क ने नाम, आख्यात आदि के विवरण प्रस्तुत करते हुए कतिपय पूर्वाचार्यों के मतों का उल्लेख किया है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि इस देश में

व्याकरण की दार्शनिक–प्रक्रिया ईसा से कई सौ वर्ष पूर्व विकास के एक ऊँचे स्तर को छू चुकी थी।

उपसर्ग तथा नाम शब्दों के स्वरूप के सम्बन्ध में अपने से पूर्ववर्ती आचार्य गार्ग्य तथा शाकटायन के परस्पर विरोधी मतों का उल्लेख यास्क ने अपने निरुक्त में भी किया है। इसी निरुक्त में उद्धृत एक आचार्य औदुम्बरायण के अखण्डवाक्यविषयक व्याकरणदर्शन के प्रमुख एवं आधारभूत सिद्धान्त का उल्लेख भर्तृहरि ने वाक्यपदीय में, तथा भरतमिश्र ने स्फोटसिद्ध में किया है।

युधिष्ठिर मीमांसक औदुम्बरायण आचार्य का समय 3100 वर्ष विक्रमपूर्व अथवा उससे कुछ पूर्व मानते हैं। शब्दनित्यत्व के सिद्धान्त पर प्रतिष्ठित स्फोटवाद नामक सिद्धान्त का सम्बन्ध पाणिनि से पूर्ववर्ती आचार्य स्फोटायन से माना जाता है। स्फोटायन आचार्य का उल्लेख पाणिनि ने 'अवघ् स्फोटायनस्य' सूत्र पर किया है।

युधिष्ठिर मीमांसक स्फोटायन आचार्य का समय 3200 विक्रम पूर्व मानते हैं। किन्तु जैसे पाणिनि के पूर्व के व्याकरणशास्त्र की बहुत ही अल्प सामग्री आज उपलब्ध है वैसे ही पूर्वाचार्यों के व्याकरण–सम्बन्धी दार्शनिक विचार भी अल्प ही सुरक्षित रह पाए हैं।

जैसे शब्दनिष्पत्तिव्यवस्थानरूप संस्कृतव्याकरण का सुव्यवस्थित रूप पाणिनि से आरम्भ होता है वैसे ही व्याकरणदर्शन का भी स्पष्ट रूप पाणिनि से ही आरम्भ होता है। यद्यपि पाणिनि ने अष्टाध्यायी की रचना शब्दानुशासन के निमित्त की थी किन्तु अपनी व्याकरणरचनापद्धति के कारण उन्हें अनेक परिभाषा–सूत्रों की रचना करनी पड़ी। अनेक संज्ञाशब्द बनाने पड़े और पारिभाषिक शब्दों के लक्षण देने पड़े। हम देखते हैं कि आचार्य के इसी अवान्तरप्रतिपादन में व्याकरणदर्शन की एक विस्तृत पृष्ठभूमि स्वयं तैयार हो गई। कालांतर में और आधुनिक युग में इस सब का विस्तार– विकास हिंदी भाषा के सहयोग के बिना संभव नहीं होता।

दर्शनशास्त्र जीवन का गहन दर्शन है। जीवन के सत्य तक पहुँचना दर्शन शास्त्र का उद्देश्य है और भाषा शिक्षण जीवन के गहन तत्त्व को समझे बिना अधूरा है। हिंदी भाषा शिक्षण दर्शन के विविध आयामों को छुए बिना नहीं रह सकता। अतः हिंदी भाषा शिक्षण में दर्शन का अपना महत्व है। हिंदी भाषा की मौलिकता दर्शन के स्पर्श से निखर उठती है। हिंदी भाषा जीवन का हिस्सा है और दर्शन भी उसका अंग है।

• हिंदी भाषा शिक्षण का समाजशास्त्र से संबंध

हिंदी भाषा शिक्षण समाज, संस्कृति और भाषा तीनों को साथ लेकर चलता है। हिंदी शिक्षण में भाषा, समाज, और धर्म पर विमर्श, भाषा का समाजशास्त्र तथा समाजोन्मुख भाषा–विज्ञान, इनके अध्ययन की प्रकृति एवं भाषागत अवधारणा पर ध्यान दिया जाता है।

हिंदी को समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास सभी विद्वानों ने किया है। वस्तुतः हिंदी भाषाई समाज की वास्तविकता यह है कि उसका हर सदस्य अपने घरेलू जीवन एवं व्यवहार के आत्मीय सन्दर्भ में अपनी बोलियों का प्रयोग करता है, तो शिक्षा

टिप्पणी

एवं व्यवहार के औपचारिक सन्दर्भ में किसी न किसी अंश में खड़ीबोली का प्रयोग करता है। यह बात भी कम महत्वपूर्ण नहीं है कि हिंदी साहित्य का मूलाधार भी उस हिंदी भाषाई समाज की सांस्कृतिक चेतना और काव्यात्मक संवेदना है जिसे हम बोली समुच्च्य की अंतरंग शक्ति के रूप में पाते हैं।

हिंदी और समाजभाषाविज्ञान के सन्दर्भ में डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव लिखते हैं, "इसके अध्ययन क्षेत्र के भीतर विभिन्न सामाजिक वर्गों की सामाजिक शैलियाँ, बहुभाषिकता का सामाजिक आधार, भाषा–नियोजन आदि भाषा अध्ययन के सभी सन्दर्भों में आ जाते हैं जिनका संबंध सामाजिक संस्थान से रहता है।"

आज व्यवस्था व्यक्ति की अपनी स्वेच्छा से परे जाकर समूहगत अनुबंधन के रूप में मिलती है तो भाषा–व्यवहार व्यक्तिजन्य प्रयोग होने के कारण अहम है। इन्हीं के कारण हम एक–दूसरे से बंधे हुए हैं परस्पर हम में सम्प्रेषण भी हो पाता है।

समाज भाषाविज्ञान के स्वरूप एवं प्रकृति को स्पष्ट रूप में प्रस्तुत करता है। जहाँ समाजविज्ञान समाज के समस्त व्यवहारों का निरीक्षण–परीक्षण करता है, वहीं भाषा भी एक प्रमुख सामाजिक व्यवहार है।

इसलिए अन्य सामाजिक व्यवहारों की भांति ही वह भाषा– व्यवहार को भी नियंत्रित एवं सुविकसित करता है। अध्ययन क्षेत्र के भीतर विभिन्न सामाजिक आधार भाषा– नियोजन जैसे भाषा–अध्ययन के वे सारे सन्दर्भ आ जाते हैं जिनका संबंध संस्थान से रहता है।

कैम्पवेल और वेल्स (1970) का मत है– "समाज भाषाविज्ञान की यह मान्यता है कि भाषा को इस सामाजिक बोध अथवा उसके सामाजिक प्रयोजन से अलग करके देखना असंगत है ।"

शुद्ध भाषावैज्ञानिकों और समाज भाषावैज्ञानिकों के बीच का अंतर भाषा को भिन्न ढंग से देखने की दृष्टि का परिणाम कहा जा सकता है। समाज और भाषा कभी एक–दूसरे से अलग हो ही नहीं सकते क्योंकि न ही भाषाविज्ञान का अध्ययन सामाजिक परिप्रेक्ष्य के बिना संभव है और न ही समाज भाषाविज्ञान को भाषा के सामाजिक पक्ष को जाने बिना समझा जा सकता है।

इस सन्दर्भ में भी आर.ए. हडसन का मानना है कि– "चाहे कोई भी भाषा पर कार्य कर रहा हो और चाहे किसी भी दृष्टिकोण से कर रहा हो। उसके लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि वह उस विषयवस्तु के सामाजिक पक्ष के बारे में पहले जाने।"

समाज भाषाविज्ञान हो या भाषाविज्ञान दोनों का संबंध भाषा और समाज से है और किसी एक के अभाव में दूसरा कार्य नहीं कर सकता क्योंकि एक का अस्तित्व ही दूसरे में निहित है।

आर.ए. हडसन का कथन है– "समाज भाषाविज्ञान से भाषाविज्ञान केवल इसलिए अलग है क्योंकि वह भाषिक संरचना का अध्ययन सामाजिक परिप्रेक्ष्य के बाहर करता है।"

इस तरह उन्होंने भाषा को एक सामाजिक प्रक्रिया भी माना है क्योंकि समाज में सम्प्रेषण के माध्यम से और समूह को पहचानने के माध्यम से यह कई सामाजिक कार्य करती है।

इस तरह ये बातें स्पष्ट हो गई हैं कि शुद्ध भाषाविज्ञान अगर भाषा का अध्ययन भाषा के लिए करता है तो समाज भाषाविज्ञान समाज के माध्यम से भाषा अध्ययन करता है। अगर शुद्ध भाषाविज्ञान अपने अध्ययन का संदर्भ भाषा को मानता है तो समाज भाषाविज्ञान आपसी भाषिक व्यवहार को मानता है।

व्यक्ति समाज में रहता है और व्यक्ति से ही समाज बनता है और समाज से ही भाषा का जन्म होता है। अतः भाषा शिक्षण और समाजशास्त्र का गहरा नाता है। प्रारम्भिक काल में कोई भाषा नहीं थी सिर्फ संकेत थे। संकेत और ध्वनियों से आकार ग्रहण करके भाषा प्रस्फुटित हुई। कहने का आशय यह है कि भाषा शिक्षण में समाजशास्त्र का गहरा योगदान है। जिस तरह से भाषा ने नए आयामों को छुआ यह समाज में ही सम्भव है।

• हिंदी भाषा शिक्षण का पर्यावरण से संबंध

पर्यावरण दो शब्दों परि + आवरण से मिलकर बना है जिसका तात्पर्य है हमारे चारों ओर का आच्छादित वतावरण । जल , भूमि , पर्वत , पहाड़ , जीव–जन्तु , जंगल सभी कुछ पर्यावरण के अंतर्गत आते हैं स्वस्थ पर्यावरण भाषा अधिगम को सरल बनाता है। स्वस्थ पर्यावरण का भाषा शिक्षण से गहरा नाता है या भाषा शिक्षण में महती भूमिका है।

किसी समाज का पर्यावरण पहले बिगड़ना शुरू होता है या उसकी भाषा, हम इसे समझकर संभल सकने के दौर से अभी तक आगे बढ़ रहे हैं। हम 'विकसित' हो रहे हैं।

भाषा केवल जीभ/होंठ का उच्चारण नहीं है। भाषा मन और माथा भी है। एक का नहीं, एक बड़े समुदाय का मन और माथा जो अपने आसपास के और दूर के भी संसार को देखने–परखने–बरतने का संस्कार अपने में सहज संजो लेता है।

ये संस्कार बहुत कुछ पर्यावरण और संबंधित समाज की मिट्टी, पानी, हवा में अंकुरित होते हैं, पलते–बढ़ते हैं और यदि उनमें से कुछ मुरझाते भी हैं तो उनकी सूखी पत्तियां वहीं गिरती हैं, उसी मिट्टी में खाद बनाती हैं। इस खाद यानी असफलता की ठोकरों के अनुभव से भी समाज नया कुछ सीखता है।

लेकिन कभी–कभी समाज के कुछ लोगों का माथा थोड़ा बदलने लगता है। यह माथा फिर अपनी भाषा भी बदलता है। यह सब इतने चुपचाप होता है कि समाज के सजग माने गए लोगों के भी कान खड़े नहीं हो पाते। इसका विश्लेषण, इसकी आलोचना तो दूर, इसे कोई क्लर्क या मुंशी की तरह भी दर्ज नहीं कर पाता।

इस बदले हुए माथे के कारण हिंदी भाषा में 50–60 बरस में नए शब्दों की एक पूरी बारात आई है। जितना अनर्थ नकारात्मक शब्दों ने पर्यावरण के साथ किया है, उतना शायद ही किसी और ने किया हो।

अंग्रेजों के आने से ठीक पहले तक समाज के जिन अंगों के लोग बाक़ायदा राजा थे, वे लोग इस भिन्न विकास की 'अवधारणा' के कारण आदिवासी कहलाने लगे। नए

माथे ने देश के विकास का जो नया नक्शा बनाया, उसमें ऐसे ज्यादातर इलाके 'पिछड़े' शब्द के रंग से ऐसे रंगे गए, जो कई पंचवर्षीय योजनाओं के झाड़ू–पोंछे से भी हल्के नहीं पड़ पा रहे। अब हम यह भूल ही चुके हैं कि ऐसे ही 'पिछड़े' इलाकों की संपन्नता से, वनों से, खनिजों से, लौह–अयस्क से देश के अगुआ मान लिए गए हिस्से कुछ टिके से दिखते हैं। ये अब पर्यावरण के पहलू ही हैं।

पर्यावरण की भाषा इस सामाजिक–राजनैतिक भाषा से रत्ती–भर अलग नहीं है। वह हिंदी भी है यह कहते हुए डर लगता है। बहुत हुआ तो आज के पर्यावरण की ज्यादातर भाषा देवनागरी कही जा सकती है। लिपि के कारण राजधानी में पर्यावरण मंत्रालय से लेकर हिंदी राज्यों के क़स्बों, गांवों तक के लिए बनी पर्यावरण संस्थाओं की भाषा कभी पढ़ कर तो देखें।

आज हमारी भाषा खारी हो चली है। जिन सरल, सजल शब्दों की धाराओं से वह मीठी बनती थी, उन धाराओं को बिल्कुल नीरस, बनावटी, पर्यावरणीय, पारिस्थितिक जैसे शब्दों से बांधा जा रहा है। अपनी भाषा, अपने ही आंगन में विस्थापित हो रही है, वह अपने ही आंगन में पराई बन रही है।

3.2.2 स्थानीय बोलियों के साथ हिंदी भाषा का सहसंबंध

डॉ. हरदेव बाहरी के शब्दों में 'ग्रियर्सन द्वारा निर्धारित सीमाओं के आगे पूर्व में बिहारी, पश्चिम में राजस्थानी और उत्तर में मध्य पहाड़ों की सीमाएं सम्मिलित कर लें अर्थात पश्चिम में अंबाला से बीकानेर, जैसलमेर, दक्षिण में ताप्ती नदी बालाघाट से दुर्ग, पूर्व में रायगढ़ से भागलपुर और उत्तर में नेपाल की सीमा को छूते हुए गंगोत्री–यमुनोत्री तक चले जाएं। इस प्रकार, यह डेढ़ हजार मील लंबा और लगभग छह सौ मील चौड़ा भू–भाग हिंदी प्रदेश है और इस क्षेत्र की भाषा हिंदी भाषा कही जाती है, जिसमें क्षेत्रीय प्रभाववश अनेक भिन्नताओं के सम्मिश्रण ने अनेक बोलियों को उत्पन्न कर दिया है।

हिंदी की ग्रामीण बोलियों के अंतर्गत डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने पांच उपभाषाएं पश्चिमी हिंदी, पूर्वी हिंदी, बिहारी, राजस्थानी, पहाड़ी तथा उसकी बोलियों को लिया है। तात्पर्य यह है कि जिस–जिस भाषा क्षेत्र में हिंदी को राजकीय भाषा स्वीकार किया गया है उसकी बोलियां भी हिंदी के अंतर्गत मान ली गई हैं। डॉ. उदयनारायण तिवारी ने सर जॉर्ज ग्रियर्सन के विचारों की पुष्टि की है कि केवल पश्चिमी हिंदी तथा उसकी बोलियों को ही हिंदी के अंतर्गत लिया जाना चाहिए। उन्होंने पूर्वी हिंदी (कोसली) और पश्चिमी हिंदी में मौलिक अंतर भी बताया है। किंतु 'हिंदी का उद्‌गम और विकास' के छठे अध्याय में हिंदी की बोलियों का विवेचन करते हुए उन्होंने पूर्वी हिंदी और पश्चिमी हिंदी– दोनों की बोलियों का विवेचन किया है। राजस्थानी और बिहारी को छोड़ दिया है। डॉ. श्यामसुंदर दास ने हिंदी भाषा और साहित्य में राजस्थानी को हिंदी की उपभाषा माना है, किंतु बिहारी को नहीं। इसमें संदेह नहीं कि राजस्थानी की जयपुरी बोली का ब्रजभाषा से घनिष्ठ संबंध है।

हिंदी की विविध बोलियां

क्षेत्रीय आधार पर हिंदी के दो बड़े वर्ग बनाए गए हैं – 1. पश्चिमी हिंदी तथा 2. पूर्वी हिंदी।

पश्चिमी हिंदी और उसकी बोलियां

पश्चिमी हिंदी की पांच मुख्य बोलियां हैं –1. खड़ी बोली 2. बांगरू 3. ब्रज 4. कन्नौजी 5. बुंदेली।

1. **खड़ी बोली :** दिल्ली और उसके पूर्व तथा उत्तर–पूर्व के समीपवर्ती जिलों की भाषा खड़ी बोली है। इस बोली को मुसलमान 'हिंदी' या 'हिंदवी' कहते थे। हिंदी के लिए 'खड़ी बोली' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम लल्लूलाल जी ने अपने 'प्रेम–सागर' की भूमिका में किया है। इसी का परिष्कृत रूप राष्ट्र–भाषा 'हिंदी' कहलाता है। यद्यपि कई शताब्दी पूर्व यह सारे भारतवर्ष की और विशेषतः उत्तर भारत की व्यावहारिक भाषा बन चुकी थी, किंतु इसमें कभी साहित्यिक रचना नहीं हुई। आज से सौ वर्ष पूर्व तक इसमें साहित्य नाम मात्र को था। हिंदू कवि और कई मुसलमान कवि भी या तो ब्रजभाषा में कविता करते थे या अवधी में। इसकी एक विशेष शैली 'उर्दू' में काव्य रचना पहले ही आरंभ हो गई थी। सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम के पश्चात हिंदुओं में पुनरुत्थान का युग आरंभ हुआ। स्वामी दयानंद जैसे संतों ने जहां हिंदुओं की प्राचीन संस्कृति की ओर समाज का ध्यान आकर्षित किया, वहीं जातीय एकता के लिए हिंदी–भाषा को प्रधानता दी। गुजराती होते हुए भी उन्होंने (खड़ी बोली) हिंदी में 'सत्यार्थ प्रकाश' की रचना की। ईसाई धर्म–प्रचारकों ने भी इसी भाषा को अपने धर्म–प्रचार का साधन बनाया। जातीय पुनरुत्थान के उस काल में देशभक्ति की भावना से ओतप्रोत भारतेंदु हरिश्चंद्र जैसे कवि तथा लेखकों ने हिंदी (खड़ी बोली) गद्य को साहित्यिक भाषा बनाने में योगदान किया और कालांतर में इस भाषा ने ब्रजभाषा का स्थान ग्रहण कर लिया।

   खड़ी बोली का क्षेत्र मुसलमान शासकों का भी गढ़ रहा है। अतः हिंदी की अन्य बोलियों की अपेक्षा खड़ी बोली में अरबी–फारसी के शब्दों की अधिकता है, जिनको प्रायः अपने शुद्ध उच्चारण के साथ लिखने की प्रवृत्ति है। किंतु ग्रामीण खड़ी बोली में इन विदेशी शब्दों को ध्वन्यात्मक परिवर्तन के साथ ग्रहण किया गया है। ग्रामीण खड़ी बोली तथा साहित्यिक खड़ी बोली में उच्चारण का और कहीं–कहीं रूपात्मकता का भी अंतर है। खड़ी बोली क्षेत्र में जाट जाति के लोगों की संख्या अधिक है, अतः बोलचाल की भाषा में जाटों के जातिगत गुण, पौरुष और कठोरता आ गई है। अंतिम व्यंजन को द्वित्व कर देने की प्रवृत्ति है। जैसे–गाड्डी (गाड़ी), भूक्खा (भूखा), देक्खा (देखा), रोट्टी (रोटी), 'ड़' और 'ढ़' स्थान पर उच्चारण में प्रायः 'ड' और 'ढ' ही रहता है पड्ढा (पढ़ा), गाड्डी (गाड़ी)। 'न' के स्थान पर 'ण' की प्रवृत्ति है जैसे– अपणा (अपना), सुण्णा

टिप्पणी

(सुनना)। तत्कालिक वर्तमान 'मान रहा हूं', 'मार रहे हैं', के स्थान पर 'मारे हूं', 'मारे हैं', हो जाता है।

2. **बांगरू :** यह शब्द 'बांगर' से निकलता है जिसका अर्थ– ऊबड़–खाबड़ या ऊंची–नीची भूमि से है। दिल्ली के उत्तर–पश्चिम की भूमि इसी प्रकार की है यह प्रदेश सतलुज–सिंधु तथा गंगा–यमुना के बीच की उच्च भूमि है। इसका प्राचीन नाम 'सारस्वत' देश था। हिसार–जिले में 'हरियाणा' एक स्थान का नाम है, जिसके कारण इसको 'हरियानी' भी कहते हैं। यह दिल्ली के ग्रामीण क्षेत्र– रोहतक, करनाल, नाभा, पटियाला के पूर्वी भाग तथा हिसार जिले के पूर्वी भाग में बोली जाती है। जाटों का प्रदेश होने के कारण इसे 'जाटू' भी कहते हैं। दिल्ली में चमड़े का काम करने वाले आस–पास के गांवों से आ गए हैं जो इसी भाषा का प्रयोग करते हैं, अतः दिल्ली में यह 'चमरुवा' भी कहलाती है। ग्रामीण खड़ी बोली के समान ही बांगरू में पौरुष और कठोरता है।

   साहित्यिक भाषा न होने से स्वरों का उच्चारण अस्थिर है। 'जवाब' और 'जुबाब' बहुत और 'बौहत' समान रूप से बोले जाते हैं। 'न' के स्थान पर 'ण' का प्रयोग ग्रामीण खड़ी बोली से भी अधिक है। जैसे – होणा (होना), चल्लाणा (चलाना)। खड़ी बोली में केवल वत्सर्यल है किंतु बांगरू में 'ल' की मूर्धन्य ध्वनि 'ल' भी है, जैसे–काल। ग्रामीण खड़ी बोली के समान ही ड़, ढ़ के स्थान पर ड, ढ पाया जाता है तथा द्वित्व की भी प्रवृत्ति अधिक है जैसे राज्जी (राजी), भित्तर (भीतर)।

   खड़ी बोली में संज्ञा शब्दों के बहुवचन रूप 'ओं' या 'यों' लगाकर बनते हैं, किंतु बांगरू में 'आं' या 'यां' लगाकर, जैसे 'घोड़ां' (घोड़ों), छोरियां (छोरियों) के साथ परसर्ग 'ने' का प्रयोग खड़ी बोली में केवल कर्ताकारक होता है, किंतु बांगरू में 'ने' या 'नै' कर्म संप्रदान का भी परसर्ग है, जैसे – दिल्ली ने गया सूं। यह राजस्थानी प्रभाव है। तो, ते, सी परसर्ग अपादान कारक के हैं, किंतु कभी–कभी कर्मकारक के लिए भी प्रयुक्त होते हैं, जैसे छोरे को (लड़के को)। करण कारक में 'सेती' परसर्ग का भी प्रयोग होता है, जैसे लाठियां सेती। राजस्थानी के प्रभाव से संबंध कारक में तुम्हारे के स्थान पर 'थारा' का भी प्रयोग होता है। थारा, 'तिहारा' का बिगड़ा रूप है। सहायक क्रिया हं, है, हैं, हो के स्थान पर सू, से, सो का भी प्रयोग होता है।

3. **ब्रजभाषा :** ब्रजप्रदेश की ब्रजभाषा आदर्श ब्रजभाषा है। किंतु ब्रजभाषा का क्षेत्र विस्तृत है। उत्तर प्रदेश के आगरा, अलीगढ़, एटा, मथुरा, मैनपुरी, बुलंदशहर, बदायूं, बरेली, हरियाणा का गुड़गांव, राजस्थान के धौलपुर, भरतपुर तथा जयपुर का पूर्वी भाग, मध्यप्रदेश का ग्वालियर ब्रज भाषा–भाषी क्षेत्र हैं। इसकी क्षेत्रीय बोलियों का अंतर भूतकृदंत के रूपों पर यौ, यो, औ, ओ प्रत्ययों द्वारा ज्ञात हो जाता है, जैसे – चल्यो, चल्यौ, चलौ, चलो। शौरसेनी प्राकृत की वास्तविक प्रतिनिधि ब्रजभाषा ही है। खड़ी बोली पर पंजाबी का प्रभाव है।

   खड़ी बोली के अकारांत शब्द ब्रजभाषा में आकारांत या ओकारांत हो जाते हैं, जैसे खड़ी बोली का 'भला' ब्रज में 'भलौ या भलो', खड़ी बोली का 'का' ब्रज में 'को

या कौ', खड़ी बोली का 'करना' ब्रज में 'करनो या करनौ'। आकारांत संज्ञा शब्द ब्रज की कुछ बोलियों में, जिनका क्षेत्र खड़ी बोली के क्षेत्र से मिला हुआ है, आकारांत ही रहता है, जैसे – ढौटा।

टिप्पणी

बहुवचन का विकारी रूप खड़ी बोली में 'ओ' प्रत्यय लगाकर बनाया जाता है। इसके विपरीत ब्रजभाषा में 'न' प्रत्यय जोड़ा जाता है, जैसे खड़ी बोली 'घोड़ों' ब्रज में 'घोड़न'। बहुवचन के प्रत्यय की दृष्टि से ब्रजभाषा अवधी से मिलती है।

कर्ताकारक में ब्रजभाषा में 'मैं' की अपेक्षा 'हौं' का प्रयोग अधिक होता है, जैसे – 'हौं खडौ रहौं', किंतु सकर्मक क्रिया का कर्ता 'मैं' ही होता है। जिस पर खड़ी बोली के समान 'ने' परसर्ग लगाया जाता है, जैसे – मैंने आम खायौ। अन्य सर्वनाम खड़ी बोली के समान हैं, केवल ध्वनि विकार उत्पन्न हो गया है, जैसे वह 'बुह', यह 'इह' हो जाता है। खड़ी बोली के परसर्ग ब्रजभाषा में ने 'नै', को 'कूं', कौ, कै, से, सों, सूं, तों, ते का कौ, को में पर पैं रूपों में पाए जाते हैं।

वर्तमान कृदंत के भी अकारांत और उकारांत दोनों रूप पाए जाते हैं जैसे – मारत है या मारतु हूं।

ब्रजभाषा में भविष्य काल के लिए, खड़ी बोली के समान, क्रिया के साथ गा, गे, गी, प्रत्यय भी लगते हैं और कन्नौजी के समान सीधा संस्कृत के भविष्यत रूपों से विकसित रूपों में भी प्रयोग में आते हैं। जैसे सं. 'चलिष्यति' ब्रज 'चलिस्सति' या 'चलिहई' ब्रज चलिहै।

सहायक क्रिया में भी अंतर पाया जाता है। खड़ी बोली के 'था, थे, थी' ब्रज में प्रायः 'हो, हे, ही', हो जाते हैं। 'हुआ' के स्थान पर 'भयौ' और हुई के स्थान पर भई का प्रयोग होता है। पालि और प्राकृत में संस्कृत–'भू' धातु के 'भू' और 'हू' दोनों शब्द पाए जाते हैं। भूतकृदंत के लिए खड़ी बोली ने 'हूं' को और ब्रज ने 'भू' को अपनाया है।

खड़ी बोली में पूर्वकालिक क्रिया बनाने के लिए धातु के साथ 'कर' प्रत्यय लगाया जाता है। किंतु ब्रजभाषा में धातु के साथ 'इ' प्रत्यय लगाकर पुनः उसके साथ 'करि' या कै लगाया जाता है। या कभी बिना 'करि' या 'कै' के भी काम चल जाता है– जैसे – खड़ी बोली में 'चलकर', ब्रज में चलि, चलिकरि।

4. **कन्नौजी** : उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद जिले में कन्नौज एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक नगर है। यह शब्द 'कान्यकुब्ज' का तद्भव रूप है। कन्नौजी 'कन्नौज' शब्द से बना है, कन्नौजी का उद्भव शौरसेनी प्राकृत की एक शाखा पांचाली अपभ्रंश से माना जाता है। कुछ लोग इसे ब्रज की ही एक बोली मानते हैं। यह उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद, इटावा, शाहजहांपुर, पीलीभीत, हरदोई के पश्चिमी भाग तथा कानपुर जिलों में बोली जाती है। इसमें और ब्रज में बहुत कम अंतर होने के कारण कन्नौजी का साहित्य ब्रजभाषा के अंतर्गत ही गिना जाता है।

टिप्पणी

जो शब्द खड़ी बोली में 'आ' से समाप्त होते हैं, वे ब्रज में 'औ या यौ' से और कन्नौजी में ओकारांत हो जाते हैं। खड़ी बोली का 'चला' ब्रज में 'चल्यौ' तथा कन्नौजी में 'चलो' हो जाता है।

कन्नौजी में अकारांत शब्दों को उकारांत करने की प्रवृत्ति ब्रज से अधिक है जैसे – मालू, बांटु, चलतु, खातु धरू। भूतकालिक सहायक तथा स्थिति सूचक क्रिया 'था, थे, थी, के स्थान पर 'हतो, हते, हती' का प्रयोग होता है।

5. **बुंदेली** : बुंदेलखंड की बोली बुंदेली है। बुंदेला राजपूतों के कारण इस भूखंड का नाम बुंदेलखंड पड़ा। किंतु वर्तमान काल में बुंदेली का क्षेत्र विस्तृत है। उत्तर प्रदेश के हमीरपुर, जालौन, झांसी जिलों तथा मध्य प्रदेश के भोपाल, ग्वालियर, ओरछा, सागर, नरसिंहपुर, होशंगाबाद जिलों में यह अपने मूल रूप में बोली जाती है। दतिया, पन्ना, चरखारी, दमोह, बालाघाट, छिंदवाड़ा आदि स्थानों पर इसका मिश्रित रूप मिलता है। इसके उत्तर–पूर्व तथा पूर्व में कोसली, दक्षिण में मराठी, पश्चिम में राजस्थानी तथा उत्तर में ब्रजभाषा बोली जाती है। बुंदेली साहित्य को भी ब्रज के ही अंतर्गत गिना जाता है, क्योंकि बुंदेली को भी कन्नौजी के समान ब्रज की ही एक बोली माना जाता है। बुंदेली कवियों ने क्षेत्रीय शब्दों का प्रयोग बहुत किया है, जिनका प्रयोग सामान्यतः साहित्य भाषा में नहीं होता। केशवदास की रचनाओं में इस प्रकार के शब्द पाए जाते हैं। बुंदेली की कई उपबोलियां भी हैं, जैसे–राठौरी, लौघंती, बनाफरी आदि। ब्रज के 'ऐ' और 'औ' बुंदेली में 'ए' और 'ओ' हो जाते हैं, जैसे, और–ओर, जैसा–जेसो।

   कन्नौजी के ही समान खड़ी बोली के अकारांत शब्द बुंदेली में ओकारांत हो जाते हैं, जैसे–घोड़ा – घोरो, गया – गयो। खड़ी बोली का 'ड़' बुंदेली में 'र' में परिणत हो जाता है। 'वह', 'वो' जैसे सर्वनाम प्रायः खड़ी बोली के समान होते हैं। किंतु खड़ी बोली के परसर्ग बुंदेली में– को – कों या खों, से–सें, सों, में–मैं, रूपों में पाए जाते हैं। भविष्यत काल के रूप खड़ी बोलियों के समान गा, गे, गी लगाकर ब्रज के समान हो, है, हैं से भी समाप्त होते हैं।

पूर्वी हिंदी और उसकी बोलियां

जिस तरह पश्चिमी हिंदी की जननी शौरसेनी – प्राकृत है, उसी तरह पूर्वी हिंदी का उद्‌भव अर्द्धमागधी से है। यह उस प्रदेश की भाषा है, जहां प्राचीन काल में कोसल जनपद था। भाषा–विज्ञान की दृष्टि से पश्चिमी हिंदी ही हिंदी कहलाने की अधिकारिणी है, क्योंकि मूलतः 'हिंदी' शब्द इसी के लिए प्रयुक्त होता रहा है। डॉ. चटर्जी ने पूर्वी हिंदी को प्राच्य भाषाओं के साथ रखा है। सर जॉर्ज ग्रियर्सन ने 'कोसली' को पूर्वी हिंदी इसलिए कहा है कि पश्चिमी और पूर्वी हिंदी का क्षेत्र, विशेषतः अवधी का क्षेत्र सांस्कृतिक और राजनीतिक दृष्टि से एक ही रहा। सूर का 'सूर सागर' और 'तुलसी' का 'रामचरित मानस' क्रमशः पश्चिमी और पूर्वी हिंदी के होते हुए भी पश्चिमी और पूर्वी क्षेत्रों में समान रूप से मान्य ग्रंथ हैं। गत शताब्दी तक ब्रजभाषा तो पंजाब से लेकर काशी तक की साहित्यिक भाषा हो गई थी। अतः पूर्वी और पश्चिमी–हिंदी इसी कारण समीप आ गई

हैं। इनका तात्विक अंतर पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है। पूर्वी हिंदी की तीन प्रमुख बोलियां है, जैसे –

1. **अवधी** : अवध प्रांत के आधार पर इसका नामकरण हुआ। प्राचीन काल में इसका केंद्र अयोध्या नगर था, किंतु अब लखनऊ अवधी का केंद्र है क्योंकि अवधी का क्षेत्र कुछ पश्चिम को हट गया है। गंगा के दक्षिण में भी यह फतेहपुर, इलाहाबाद, बांदा, मिर्जापुर जिलों में बोली जाती है। अवधी के बोलने वालों की संख्या 2 करोड़ से अधिक है। अवधी के पश्चिमी भाग उन्नाव, फतेहपुर आदि जिलों में इसे 'बैसवाड़ी' भी कहते हैं। बैसवाड़ी मूल अवधी से कुछ कर्णकटु है। अवधि के साहित्य को प्रेमाख्यानकार जायसी तथा 'रामचरित मानस' के रचयिता तुलसी द्वारा अमरत्व प्रदान किया गया है।
2. **बघेली** : यह बघेलखंड की भाषा है, जिसका नामकरण बघेले राजपूतों के कारण हुआ। रीवा बघेलखंड का केंद्र है। यह पश्चिमी बांदा तथा मध्य प्रदेश के दमोह, जबलपुर, मंडला तथा बालाघाट जिलों में भी बोली जाती है। कुछ विद्वान इसे अवधी की ही एक बोली मानते हैं।
3. **छत्तीसगढ़ी** : यह छत्तीसगढ़ की बोली है, किंतु कुछ भागों में इसे खलोटी और लरिया भी कहा जाता है। यह जबलपुर से लेकर छोटा नागपुर तक और उत्तर में रीवां से लेकर दक्षिण में बस्तर तक बोली जाती है। इसकी कई क्षेत्रीय बोलियां हैं, क्योंकि यह उत्तर में अवधी, पूर्व में मुंडा और उड़िया, दक्षिण तथा दक्षिण पश्चिम में मराठी और पश्चिम में बघेली और बुंदेली से घिरी हुई है। इसमें साहित्य का प्रायः अभाव है।

इनके अतिरिक्त बिहारी हिंदी, भोजपुरी, मगही एवं मैथिली भी पूर्वी हिंदी के अंतर्गत रखी जाती हैं।

राजस्थानी हिंदी और उसकी बोलियां

राजस्थान प्रांत में बोली जाने वाली भाषा को राजस्थानी कहते हैं। इसे अपभ्रंश की 'जेठी बेटी' की संज्ञा दी गई है, क्योंकि अपभ्रंश की जितनी अधिक विशेषताएं राजस्थानी में हैं उतनी अन्य किसी आधुनिक बोली में नहीं। इसका संबंध एक ओर ब्रजभाषा और बुंदेली से और दूसरी ओर गुजराती से निश्चित होता है। आज इसका नाम 'राजस्थानी' है किंतु पहले इसे मारू सोरठ या मारू भाषा तथा डिंगल कहा जाता था। इसका उद्भव कुछ विद्वान शौरसेनी से और कुछ गुर्जर अपभ्रंश से मानते हैं। सन् 1971 की जनगणना के अनुसार इसके बोलने वालों की संख्या 25,724,144 है।

भौगोलिक दृष्टि से इस प्रदेश में एकरूपता नहीं मिलती। कहीं रेतीले मैदान हैं (जैसे जैसलमेर और बीकानेर) तो कहीं पहाड़ी प्रदेश (जैसे उदयपुर)। मालवा का हरा–भरा इलाका और अजमेर की घाटियां भी इसी प्रदेश में हैं। इसी कारण से यहां अनेक बोलियां और उपबोलियां मिलती हैं। यहां की उपबोलियों की संख्या 30 के लगभग है। यहां की निम्न बोलियां प्रमुख हैं–

1 **मारवाड़ी**: शुद्ध मारवाड़ी जोधपुर और उसके आसपास बोली जाती है। इसकी लगभग 12 उपबोलियां हैं। यह राजस्थानी की सबसे बड़ी बोली है। बोलने वाले लगभग 78 लाख हैं। यही प्राचीन डिंगल का विकसित रूप है। इसमें चंद दुरसाजी, मुरारीदान, पृथ्वीराज, सूर्यमल्ल, मोरा, दादू, चरणदास–हरिदास, गद्य साहित्य में बचनिकाओं, प्रसिद्धियों या यश गाथाओं की अपनी विमल परंपरा प्राप्त होती है। यही आज के राजस्थान की आदर्श बोली है।

विशेषताएं–इसमें दो क्लिक ध्वनियां हैं – घृ,स

घृ का उच्चारण द–ध के बीच में होता है – धावो (पशु)

स का स–ह के बीच में – जास्यो

स > श में उच्चरित

2. **मालवी**: मालवा की बोली मालवी है। इसके अंतर्गत पश्चिम में प्रतापगढ़, रतलाम, इंदौर, भोपाल, होशंगाबाद, गुना, झालावाड़, टोंक तथा चित्तौड़गढ़ के कुछ भाग आते हैं। शुद्ध मालवी उज्जैन, इंदौर और देवास में बोली जाती है। लगभग 65 लाख लोग इसे बोलते हैं।

इसकी स्थिति बुंदेली और मारवाड़ी के बीच की है।

ड़ > ड

ऐ > ए

औ > ओ

3. **जयपुरी**: इसको ढूंढाड़ी भी कहते हैं। इसको पश्चिमी सीमा पर ढूंढ़ा या अभीटा गया या पाया गया है, जहां किसी युग में बड़े–बड़े यज्ञ हुए थे। इसी ढूंढाड़ से इसका नाम पड़ा। इसको जंगली बोली भी कहा गया है। इसे बोलने वालों की संख्या 40 लाख के लगभग है। जयपुर नगर के 50 मील के क्षेत्र में इसे बोला जाता है।

4. **मेवाती**–मेओ जाति के नाम पर क्षेत्र का नाम मेवात ओर बोली का नाम मेवाती पड़ा है। इस पर अब जयपुरी का प्रभाव अधिकाधिक पड़ता जा रहा है।

बिहारी और उसकी बोलियां

बिहारी की मुख्य बोलियां निम्नलिखित हैं–

1. भोजपुरी: भोजपुरी मुख्य रूप से पश्चिम बिहार, पूर्वी–उत्तर प्रदेश और झारखंड के क्षेत्र में बोली जाती है। आधिकारिक और व्यावहारिक रूप से भोजपुरी हिंदी की एक उपभाषा या बोली है। भोजपुरी अपनी शब्दावली के लिए मुख्यतः संस्कृत एवं हिंदी पर निर्भर है। कुछ शब्द इसने उर्दू से भी ग्रहण किये हैं। भारत के जनगणना आंकड़ों के अनुसार भारत में लगभग 3.3 करोड़ लोग भोजपुरी बोलते हैं। पूरे विश्व में भोजपुरी जानने वालों की संख्या लगभग 5 करोड़ है।

डॉ. ग्रियर्सन ने भारतीय भाषाओं को अंतरंग और बहिरंग इन दो श्रेणियों में विभक्त किया है जिसमें बहिरंग के अंतर्गत उन्होंने तीन प्रधान शाखाएं स्वीकार की हैं–

1. उत्तर पश्चिमी शाखा
2. दक्षिणी शाखा
3. पूर्वी शाखा

इस अंतिम शाखा के अंतर्गत उड़िया, असमी, बांग्ला और पुरबिया भाषाओं की गणना की जाती है। पुरबिया भाषाओं में मैथिली, मगही और भोजपुरी– ये तीनों बोलियां मानी जाती हैं। क्षेत्र विस्तार और भाषा–भाषियों की संख्या के आधार पर भोजपुरी अपनी बहनों मैथिली और मगही में सबसे बड़ी है।

2. मगही या मागधी: यह भाषा भारत के मध्य–पूर्व में बोली जाने वाली एक मुख्य भाषा है। इसका निकट का संबंध भोजपुरी और मैथिली भाषा से है और अक्सर ये भाषाएं एक ही साथ बिहारी भाषा के रूप में रख दी जाती हैं। इसे देवनागरी लिपि में लिखा जाता है। मगही बोलने वालों की संख्या लगभग 1 करोड़ 30 लाख है। मुख्य रूप से यह बिहार के गया, पटना, राजगीर और नालंदा के इलाकों में बोली जाती है।

3. मैथिली: हिंदी प्रदेश की यह उपभाषा 'बिहारी' की एक बोली है। 'मैथिली' नाम उस क्षेत्र के नाम 'मिथिला' से संबद्ध है। 'मिथिला' शब्द भारतीय साहित्य में बहुत पहले से है। मैथिली मुख्य रूप से भारत में बिहार के दरभंगा, मधुबनी, समस्तीपुर, पूर्णिया आदि के क्षेत्रों तथा नेपाल के तराई के इलाकों में बोली जाने वाली भाषा है। यह प्राचीन भाषा हिंदी आर्य परिवार की सदस्य है और भाषाई तौर पर हिंदी (जिससे इसकी लगभग 65 प्रतिशत शब्दावली आती है), बांग्ला, असमिया, उड़िया और नेपाली से इसका काफी निकट का संबंध है।

पहाड़ी हिंदी और उसकी बोलियां

इसे ग्रियर्सन ने मध्यवर्ती नाम दिया है। इसके अंतर्गत गढ़वाली ओर कुमाऊंनी बोलियां आती हैं। यह उत्तर प्रदेश के गढ़वाल और कुमाऊं के पर्वतीय मंडल की भाषा है। यह प्रदेश शिक्षा की दृष्टि से काफी पिछड़ा हुआ रहा है। पहाड़ी हिंदी की कोई साहित्यिक परंपरा नहीं मिलती। कुछ लोकगीतों और लोककथाओं के संग्रह अवश्य प्रकाशित मिलते हैं। इसकी प्रमुख बोलियां निम्न हैं–

1. **कुमाऊंनी:** कुमाऊं का पुराना नाम कूर्मांचल था। इसके अंतर्गत नैनीताल, अल्मोड़ा और पिथौरागढ़ के जिले सम्मिलित हैं। ग्रियर्सन ने इसकी 12 बोलियों की गिनती की है। इसके बोलने वालों की संख्या लगभग 10 लाख है। लोककवियों में गुमानी पंत और कृष्ण पांडेय का नाम प्रसिद्ध है।

   इस पर दरद, खस, राजस्थानी, खड़ी बोली आदि के अतिरिक्त किरात और मोटा आदि तिब्बती चीनी परिवार की भाषाओं का प्रभाव रहा है।

2. **गढ़वालीः** ठाकुरों के बावन गढ़ियों में विभक्त हो जाने के कारण इसका नाम गढ़वाल या बावनी पड़ा। यहां की बोली होने के कारण ही इसे गढ़वाली कहते हैं। आज इस क्षेत्र का नाम उत्तराखंड है। इसमें गढ़वाल, टिहरी, चमोली, उत्तरकाशी का दक्षिणी भाग आता है। इसके लगभग 11 लाख बोलने वाले हैं। लोकगीतों के कई संग्रह प्रकशित हुए हैं। लेखकों में चंद्रमोहन रतूड़ी, गैरोला बहुगुणा आदि के नाम प्रसिद्ध हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

1. ग्रामीण भारत में किस भाषा का वर्चस्व है?
   (क) खड़ी बोली (ख) हिंदी भाषा
   (ग) अंग्रेजी (घ) संस्कृत
2. इनमें से क्या पश्चिमी हिंदी की बोलियों में शामिल नहीं है?
   (क) बांगरू (ख) खड़ी बोली
   (ग) अवधी (घ) ब्रज भाषा

3.3 हिंदी शिक्षण द्वारा ज्ञानात्मक संरचना का विकास

भाषा अधिगम में विद्यार्थियों की ज्ञानात्मक संरचना के विकास के लिए व्याकरण का अभिज्ञान तो आवश्यक है ही पर्यायवाची, विपरीतार्थी शब्दों; मुहावरों, लोकोक्तियों का भी इसमें अहम योगदान रहता है। इसके अलावा वाक्य एवं कविता–कहानी रचना की भी महती भूमिका रहती है।

3.3.1 व्याकरणिक इकाइयों का अध्ययन– उपसर्ग, प्रत्यय, संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, विशेषण, कारक एवं समास

- **उपसर्ग**

उपसर्ग में 'उप' का अर्थ है 'छोटा' और 'सर्ग' का अर्थ है 'रचना' या 'निर्माण' अर्थात उपसर्ग वे शब्दांश होते हैं जिनके जुड़ने से छोटी–छोटी रचनाएं होती हैं। यह किसी शब्द के आरंभ में लगकर नए शब्दों का निर्माण करते हैं तथा अर्थ में परिवर्तन करते हैं। उपसर्ग शब्द में भी 'उप' सर्ग है। जैसे–

1. बे + ईमान = बेईमान
2. सु + पुत्र = सुपुत्र

इन शब्दों का स्वतंत्र रूप से भाषा में प्रयोग नहीं होता है किंतु शब्द के शुरुआत में लगकर उसके अर्थ में परिवर्तन ला देते हैं। जिस भाषा का उपसर्ग होता है वह उसी भाषा के शब्द के साथ जुड़ता है।

उपसर्ग के प्रकार–

उपसर्ग पांच प्रकार के होते हैं– (क) संस्कृत के उपसर्ग, (ख) हिंदी के उपसर्ग, (ग) अंग्रेजी के उपसर्ग, (घ) उर्दू–फारसी के उपसर्ग, (ङ) उपसर्ग की तरह प्रयुक्त किए जाने वाले संस्कृत के अव्यय।

1. **संस्कृत के उपसर्ग–**

प्र	– प्रबल, प्रचार	दुर	– दुर्जन
परा	– पराजय	वि	– विदेश
अप	– अपमान	आ	– आदान
सम्	– सम्मान	नि	– नियुक्त
अनु	– अनुमान	अधि	– अधिपति
अव	– अवतार	अति	– अतिक्रमण
निरः	– निर्दोष	सु	– सुगम, सुपुत्र

2. **हिंदी के उपसर्ग–**

अ	– अचूक, अछूत
अन	– अनपढ़, अनमोल
अध	– अधमरा, अधजला
औ	– औजार
उन	– उनतीस, उनासी
क/कु	– कपूत, कुरूप
दु	– दुलारा, दुबला
भर	– भरपेट
बिन	– बिनब्याहा
चौ	– चौराहा
ति	– तिकोना, तिपाई
नि	– निडर, निर्दोष

3. **अंग्रेजी के उपसर्ग–**

सब	– सबडिविजन
डिप्टी	– डिप्टी कमिश्नर
हेड	– हेडमास्टर
चीफ	– चीफकमिश्नर
जनरल	– जनरलमैनेजर
वाइस	– वाइसकैप्टन
हाफ	– हाफटाइम

टिप्पणी

4. **उर्दू–फारसी के उपसर्ग–**

बे	– बेचारा, बेगुनाह
बद	– बदनाम, बदसूरत
खुश	– खुशनुमा, खुशहाल
गैर	– गैरकानूनी
बा	– बाकायदा
बिला	– बिलावजह
हम	– हमराह, हमराज, हमसफर
ऐन	– ऐनवक्त
अल	– अलविदा, अलबेला।

5. **उपसर्ग की भांति प्रयोग होने वाले संस्कृत के अव्यय–**

अधः	– अधोलिखित	पुनः	– पुनर्विवाह
कु	– कुकर्म	स्व	– स्वभाव, स्वदेश
सत्	– सत्संग	स्वयं	– स्वयंवर
पुरा	– पुरातन	प्रादुर	– प्रादुर्भाव
चिर	– चिरकाल	पुरस्	– पुरस्कार
सह	– सहपाठी	पर	– परतंत्र
सम	– समकोण	तिरस्	– तिरस्कार
अलम्	– अलंकार		

- **प्रत्यय**

वह शब्द खण्ड जो शब्दों के अंत में जुड़ने पर उनके अर्थ में परिवर्तन ला देते हैं, 'प्रत्यय' कहलाते हैं। प्रत्यय दो प्रकार के होते हैं–

1. तद्धित प्रत्यय
2. कृत (कृदन्त) प्रत्यय।

1. तद्धित प्रत्यय– यह प्रत्यय संज्ञा, सर्वनाम तथा विशेषण शब्दों के साथ जुड़कर प्रायः संज्ञा या विशेषण बनाते हैं। इन प्रत्ययों को मुख्य रूप से आठ वर्गों में बांटा जाता है सकता है–

- **भाववचाक तद्धित प्रत्यय**– ये प्रत्यय किसी भाव का बोध कराते हैं, जैसे–
  - जातिवाचक से भाववाचक संज्ञा– शत्रुता, देवत्व।
  - विशेषण से भाववाचक संज्ञा– मूर्खता, बुढ़ापा।
  - सर्वनाम से भाववाचक संज्ञा– ममता, निजता।

- **संबंधवाचक तद्धित प्रत्यय**– जो प्रत्यय संबंध का बोध कराते हैं संबंधवाचक प्रत्यय कहलाते हैं, जैसे– मानव, कौरव, वासुदेव, चचेरा आदि।
- **कर्तृवाचक तद्धित प्रत्यय**– इनसे कर्तासूचक शब्द बनते हैं, जिनसे किसी व्यक्ति के कार्यों का पता चलता है, जैसे– रसोइया, पुजारी आदि।
- **लघुतासूचक तद्धित प्रत्यय**– खटिया, बिटिया, ढोलकी आदि।
- **गुणवाचक तद्धित प्रत्यय**– इनसे गुणवाचक विशेषण बनते हैं जिससे किसी व्यक्ति की खूबियों का पता चलता है, जैसे– शीतल, तेजस्वी, बुद्धिमान।
- **गणनावाचक तद्धित प्रत्यय**– इसमें किसी वस्तु, व्यक्ति की गणना की जाती है, उसकी संख्या का पता चलता है, जैसे– दशक, शतक, सातवां आदि।
- **सादृश्यवाचक तद्धित प्रत्यय**– इसमें समानता वाचक शब्दों का निर्माण किया जाता है तथा जिससे किसी व्यक्ति, वस्तु का एक आकार उभर कर आता है, जैसे– काली सी, पीला सा।
- **परिणामवाचक तद्धित प्रत्यय**– इसमें प्रत्येक वस्तु की मात्रा का अनुमान लगाया जाता है, जैसे– थोड़ासा, जरासा आदि।

2. कृदन्त प्रत्यय– यह प्रत्यय क्रिया के धातु रूपों के साथ लगकर संज्ञा, विशेषण आदि शब्द बनाते हैं। कृत (कृदन्त) प्रत्यय से बने शब्दों के छः भेद हैं–

- **कर्तृवाचक कृदन्त प्रत्यय**– इनमें कर्तासूचक शब्द बनते हैं, जो कर्ता के स्वभाव, व्यक्तित्व के बारे में जानकारी देता है, जैसे– गायक, घुमक्कड़ आदि।
- **कर्मवाचक कृदन्त**– इसमें कर्म की तरह प्रयुक्त होने वाली संज्ञाएं कर्मवाचक कृदन्त प्रत्यय कहलाती हैं, जैसे– खिलौना, बिछौना, ओढ़नी आदि।
- **करणवाचक कृदन्त**– झटका, झूला, फांसी, बुहार आदि।
- **भाववाचक कृदन्त**– जिन प्रत्ययों के क्रिया में जुड़ने से भाववाचक संज्ञाएं बनती हैं, जैसे– सूचना, वंदना, रक्षा, पीड़ा, रक्षण आदि।
- **विशेषण कृदन्त**– जिन प्रत्ययों के क्रिया में जुड़ने से विशेषण शब्द बनते हैं विशेषण कृदन्त प्रत्यय होते हैं। जैसे– नम्र, नश्वर, स्थावर आदि।
- **योग्य का अर्थ देने वाले कृदन्त प्रत्यय**– कथनीय, गोपनीय, गेय, पेय, देय आदि।

• संज्ञा

(क) संज्ञा– संज्ञा का शाब्दिक अर्थ है– 'सम्' + ज्ञा अर्थात सम्यक् ज्ञान कराने वाला। दूसरा अर्थ है– नाम।

संज्ञा उस विकारी शब्द को कहते हैं जो किसी व्यक्ति, प्राणी, वस्तु, पदार्थ, स्थान, भाव, दशा आदि के नाम का बोध कराता है।

संज्ञा के तीन भेद माने गए हैं–

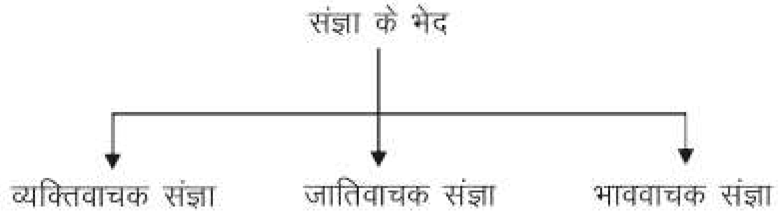

- **व्यक्तिवाचक संज्ञा**– जो शब्द किसी विशेष व्यक्ति, विशेष वस्तु, विशेष स्थान या विशेष प्राणी के नाम का बोध कराते हैं उन्हें व्यक्तिवाचक संज्ञा कहते हैं।

  व्यक्ति का नाम– ऐरावत (हाथी), कपिला (गाय), चेतक (घोड़ा), नंदी (बैल)।

  स्थानों के नाम– दिल्ली, आगरा, मुंबई, अमेरिका, भारत।

  वस्तुओं के नाम– रामायण, गीता, हिमालय, यमुना, कुरान।

- **जातिवाचक संज्ञा**– जो शब्द किसी प्राणी, पदार्थ या समुदाय की पूरी जाति का बोध कराते हैं उन्हें जातिवाचक संज्ञा कहते हैं। जैसे– मनुष्य, नारी, पर्वत, नदी, फल, कुत्ता, नगर, देश, पुस्तक आदि।

  जातिवाचक संज्ञा के अंतर्गत द्रव्यवाचक तथा समूहवाचक संज्ञाएं भी आती हैं–

  द्रव्यवाचक संज्ञा– किसी पदार्थ या द्रव्य का बोध कराने वाले शब्दों को द्रव्यवाचक संज्ञा कहते हैं। जैसे– सोना, चांदी, लोहा, लकड़ी।

  समूहवाचक संज्ञा– जिस शब्द से किसी समूह या समुदाय का ज्ञान होता है, जैसे– सभा, परिवार, कक्षा, जलूस, झुंड।

- **भाववाचक संज्ञा**– किसी गुण, दोष, दशा, भाव, स्वभाव, धर्म, अवस्था आदि का बोध कराने वाले शब्दों को भाववाचक संज्ञा कहते हैं। जैसे– चौड़ाई–लंबाई, सुंदरता, चतुरता, बुढ़ापा, यौवन, आशा, स्वार्थ, क्रोध, प्रेम, सहायता, प्रसन्नता।

व्यक्तिवाचक संज्ञा का जातिवाचक के रूप में प्रयोग

कुछ व्यक्तिवाचक संज्ञाएं कभी–कभी ऐसे व्यक्तियों के बारे में बताती है जो अपने दुर्लभ गुणों के कारण उस गुण के प्रतिनिधि रूप माने जाते हैं। उन व्यक्तियों के नाम लेते ही उनका गुण दिमाग में आ जाता है; जैसे हरिश्चंद्र (सत्यनिष्ठा), जयचंद (विश्वासघात) आदि। ऐसी स्थिति में इनका प्रयोग जातिवाचक के समान होता है। जैसे–

– कलियुग में भी हरिश्चंद्रों की कमी नहीं।

– विभीषणों से बचकर रहो।

यहां हरिश्चंद्र और विभीषण क्रमशः सत्यवादियों व घर–भेदियों के लिए प्रयुक्त हुए हैं। अतः ये शब्द यहां सत्यवादियों, विश्वासघातियों व घर–भेदियों की जाति का बोध कराते हैं।

टिप्पणी

जातिवाचक संज्ञा का व्यक्तिवाचक के रूप में प्रयोग

– उन दिनों पंडित जी देश के प्रधानमंत्री थे।

उपयुक्त वाक्य में 'पंडित जी' जवाहरलाल नेहरू के लिए प्रयुक्त हुआ है।

भाववाचक संज्ञा का जातिवाचक के रूप में प्रयोग

जब भाववाचक संज्ञा बहुवचन में प्रयुक्त होती है, जैसे– प्रेम, घृणा, आशा, क्रोध, शांति, प्रशंसा, सलाह आदि।

अधिकांश भाववाचक संज्ञाएं यौगिक होती हैं। निर्मित भाववाचक संज्ञाएं पांच प्रकार की हैं–

1. जातिवाचक संज्ञाओं से भाववाचक
2. सर्वनाम से भाववाचक
3. विशेषणों से भाववाचक
4. अव्ययों से भाववाचक
5. क्रियाओं से भाववाचक

1. **जातिवाचक से भाववाचक संज्ञा**

शब्द	**भाववाचक संज्ञा**
इनसान	इनसानियत
राष्ट्र	राष्ट्रीयता
चोर	चोरी
लड़का	लड़कपन

2. **सर्वनाम से भाववाचक संज्ञा**

शब्द	**भाववाचक**
निज	निजता
स्व	स्वत्व

3. **विशेषण से भाववाचक संज्ञा**

शब्द	**भाववाचक**
आलसी	आलस्य
उपयोगी	उपयोगिता
कठोर	कठोरता
कम	कमी

टिप्पणी

4. **अव्ययों से भाववाचक संज्ञा**

शब्द	**भाववाचक**
ऊपर	ऊपरी
नीचे	नीचाई
समीप	समीपता
दूर	दूरी

5. **क्रियाओं से भाववाचक संज्ञा**

शब्द	**भाववाचक**
कमाना	कमाई
खोजना	खोज
जलना	जलन
पूजना	पूजा

संज्ञा के स्थान पर प्रयुक्त होने वाले शब्द

- सर्वनाम का उपयोग संज्ञा के स्थान पर होता है, जैसे–

  मैं (मोहन) पाठ पढ़ता हूं।

- विशेषण कभी–कभी संज्ञा के स्थान पर प्रयुक्त होता है। ऐसा प्रायः तब होता है जब विशेषण का प्रयोग बिना विशेष्य के होता है, जैसे–

  बड़ों का सदा आदर करो।

  गरीबों की सहायता करो।

- कभी–कभी क्रिया–विशेषण भी संज्ञा के समान प्रयुक्त होते हैं, जैसे–

  जिसका भीतर–बाहर एक सा हो।

  यहां की भूमि अच्छी है।

- कभी–कभी विस्मयादिबोधक शब्द संज्ञा के समान प्रयुक्त होते हैं, जैसे–

  वहां हाय–हाय मची है।

  उनकी बड़ी वाह–वाह हुई।

- जब कोई शब्द या अक्षर केवल उसी शब्द अथवा अक्षर के अर्थ में प्रयुक्त हो, तो वह संज्ञा के समान उपयोग में आ सकता है। जैसे– 'मैं' 'सर्वनाम' है।
- तुम्हारे इस लेख में कई बार 'फिर' आया है।

क्रिया शब्द का संज्ञा के रूप में प्रयोग

- कभी–कभी क्रिया शब्द भी संज्ञा के स्थान पर प्रयुक्त होते हैं। इसे क्रियार्थक संज्ञा कहते हैं, जैसे–

मेरे जाने से काम हो जाएगा।

खेलने का स्वास्थ्य पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।

टिप्पणी

• सर्वनाम

जिन शब्दों का प्रयोग संज्ञा के स्थान पर किया जाता है उन्हें सर्वनाम कहते हैं। दूसरे शब्दों में– संज्ञा के स्थान पर प्रयुक्त होने वाले विकारी शब्द सर्वनाम कहलाते हैं। सर्वनामों का सबसे अधिक प्रयोग एक ही संज्ञा को बार–बार उसी रूप में प्रयुक्त होने से बचाने के लिए किया जाता है।

जैसे– राम विद्यालय जा रहा है। वह विद्यालय पढ़ने जा रहा है।

ऊपर के वाक्य में राम संज्ञा है। दूसरे वाक्य में कर्ता राम के स्थान पर वह शब्द कर्ता के बदले प्रयोग किया गया है। अतः वह सर्वनाम है।

हिंदी में ग्यारह सर्वनाम हैं– मैं, तू, आप, यह, वह, सो, जो कोई, कुछ, कौन, क्या। प्रयोग के आधार पर सर्वनाम के छः भेद या प्रकार हैं–

1. पुरुष वाचक सर्वनाम
2. निश्चयवाचक सर्वनाम
3. अनिश्चयवाचक सर्वनाम
4. प्रश्नवाचक सर्वनाम
5. संबंधवाचक सर्वनाम
6. निजवाचक सर्वनाम

1. पुरुषवाचक सर्वनाम– जो सर्वनाम शब्द किसी व्यक्ति, प्राणी आदि के नाम के बदले प्रयुक्त किए जाएं इसमें वक्ता अपने लिए, सुनने वाले के लिए और अन्य किसी के लिए, जिन सर्वनामों का प्रयोग करता है वे पुरुषवाचक सर्वनाम कहलाते हैं।

व्याकरण में पुरुष व्यक्ति को कहते हैं। ये व्यक्ति तीन होते हैं– वक्ता, श्रोता तथा इनके अतिरिक्त अन्य। इस प्रकार पुरुष के तीन भेद हुए– (क) उत्तम पुरुष, (ख) मध्यम पुरुष, (ग) अन्य पुरुष।

(क) **उत्तम पुरुष**– वक्ता अपने लिए या अपने नाम के स्थान पर जिस सर्वनाम का प्रयोग करता है उसे उत्तम पुरुष सर्वनाम कहते हैं। जैसे– मैं, हम, मुझको, मुझसे, मुझे आदि।

(ख) **मध्यम पुरुष**– वक्ता जिस सर्वनाम का प्रयोग श्रोता के लिए करता है, जैसे– तू, तुम, तुम्हारा, तुम्हें, आप, तुममें आदि।

(ग) **अन्य पुरुष**– वक्ता श्रोता के अतिरिक्त किसी अन्य के लिए जिस सर्वनाम का प्रयोग करता है उसे अन्य पुरुष सर्वनाम कहते हैं। जैसे– वह, वे, इनका, उनका, उसे, ये, यह, इसे आदि।

2. निश्चयवाचक सर्वनाम– जिन सर्वनामों से दूर व समीप के व्यक्तियों, वस्तुओं, घटनाओं का बोध हो वह निश्चयवाचक सर्वनाम कहलाते हैं। दूर के लिए वह और निकट के लिए यह का प्रयोग किया जाता है। जैसे– इस पुस्तक को देखो, यह कितनी उपयोगी है।

टिप्पणी

3. अनिश्चयवाचक सर्वनाम– जिस सर्वनाम से किसी निश्चित व्यक्ति, प्राणी, वस्तु का बोध नहीं होता या फिर जिस सर्वनाम से किसी का निश्चित ज्ञान न हो उसे अनिश्चयवाचक सर्वनाम कहते हैं। जैसे– कोई, किसी, को, कुछ आदि। जैसे–

बाहर कोई खड़ा है।

कौन लिख रहा है।

यह कितना जल है।

ऐसी स्थिति तब आती है जब किसी व्यक्ति, वस्तु आदि का आभास तो होता है परंतु उसके संज्ञा के नाम के बारे में निश्चित रूप से पता नहीं होता। ऐसी दशा में व्यक्ति के लिए कोई और वस्तु या अप्राणी के लिए कुछ सर्वनाम का प्रयोग किया जाता है। जैसे– शायद दरवाजे पर कोई है।

4. प्रश्नवाचक सर्वनाम– जिस सर्वनाम से किसी व्यक्ति प्राणी, वस्तु, घटना आदि के बारे में प्रश्न का बोध हो, उसे प्रश्नवाचक सर्वनाम कहते हैं। 'कौन' और 'क्या' प्रश्नवाचक सर्वनाम हैं।

प्राणीवाचक संज्ञाओं के बारे में प्रश्न करने के लिए 'कौन' का प्रयोग होता है तथा अप्राणीवाचक संज्ञाओं के बारे में प्रश्न करने के लिए 'क्या' का प्रयोग होता है। जैसे–

– दीवार के ऊपर कौन बैठा है?

– मोहन को क्या मारा है?

5. संबंधवाचक सर्वनाम– जिस सर्वनाम का प्रयोग किसी अन्य वाक्य/उपवाक्य में प्रयुक्त संज्ञा या सर्वनाम से संबंध बताने के लिए किया जाता है उसे संबंध वाचक सर्वनाम कहते हैं या जिस सर्वनाम से एक बात का संबंध दूसरी से बताया जाये। जैसे– जो, सो, जिसको, तिसको, उसने आदि। जैसे– उस व्यक्ति को बुलाओ, जो इस काम को कर सके।

– उसे क्या पता, जिसे कभी कोई कष्ट न हुआ हो।

6. निजवाचक सर्वनाम– वक्ता या लेखक स्वयं अपने लिए जिस सर्वनाम का प्रयोग करता है उसे निजवाचक सर्वनाम कहते हैं। जैसे– अपना काम करो। मैं अपना पाठ पढ़ूंगा।

उक्त वाक्य में अपना, अपने, शब्दों से अपनेपन का बोध हो रहा है, अतः ये शब्द निजवाचक सर्वनाम हैं।

- **क्रिया**

जिन शब्दों से किसी कार्य के करने व होने का बोध हो, उन्हें क्रिया कहते हैं। जैसे– खाना, पीना, जाना, सोना, नहाना आदि।

क्रिया एक विकारी शब्द है (जिसके रूप लिंग, पुरुष, काल, वचन के अनुसार बदलते हैं।)

क्रिया का मूल 'धातु' है (जिन मूल अक्षरों से क्रियाएं बनती हैं, उन्हें धातु कहते हैं) जैसे– पढ़, लिख, चल, हट, कह, ला, खा आदि। इन मूल धातु में ना जोड़कर क्रिया का सामान्य रूप पाया जाता है। जैसे– पढ़ + ना = पढ़ना, कह + ना = कहना, ला + ना = लाना आदि।

क्रिया के भेद

व्युत्पत्ति/शब्द निर्माण के आधार पर

1. मूल धातु– यह धातु स्वतंत्र होती है, जैसे– खा, पी, देख, जा, आ नहा, पा आदि। मूल धातु आज्ञार्थक रूप में मध्यम पुरुष एक–वचन 'तू' के साथ प्रयुक्त होती है, जैसे– तू खा, तू पी, तू देख आदि।

2. यौगिक धातु– यह धातु तीन प्रकार से बनती है–

- मूल धातु से प्रत्यय लगाकर–सामान्य क्रिया (जैसे– पढ़ना, खाना, पीना, सोना आदि) अकर्मक से सकर्मक व प्रेरणार्थक क्रियाएं (जैसे– मरना से मारना, उठना से उठाना, चलना से चलाना आदि)।
- कई धातुओं को संयुक्त करके बनाई गई क्रियाएं संयुक्त क्रियाएं कहलाती हैं, जैसे– दिखाई दिया, लौट आया आदि।
- संज्ञा, सर्वनाम, विशेषणों से प्रत्यय लग कर बनी क्रियाएं नाम धातु आदि।

सामान्य क्रिया– मूल धातु में 'ना' जोड़कर बनाई गई क्रियाएं सामान्य क्रियाएं होती हैं। जैसे– पढ़ + ना = पढ़ना। इसमें पढ़ मूल धातु है और इसमें ना जोड़ने पर यह सामान्य क्रिया में परिवर्तित हो गई। इसमें केवल एक क्रिया का प्रयोग होता है।

व्युत्पन्न धातु/प्रेरणार्थक क्रिया– जिस क्रिया से पता चले कि कर्ता स्वयं कार्य न करके किसी अन्य को उस कार्य को करने का प्रेरणा देता है या ये क्रियाएं मूल धातु में परिवर्तन करके या कोई प्रत्यय लगाकर बनाई जाती है।

नामधातु/नामिक क्रिया– संज्ञा, सर्वनाम व विशेषणों से प्रत्यय लगाकर बनाई गई क्रियाएं नामधातु/नामिक क्रियाएं कहलाती हैं। जैसे–

संज्ञा– लाज से लजाना।

विशेषण– मोटा से मोटापा।

सर्वनाम– आप से अपनाना।

सम्मिश्र धातु– संज्ञा, विशेषण और क्रिया विशेषण शब्दों के बाद होना, देना, करना, खाना आदि क्रियापद लगाकर बनने वाले धातु रूप, 'सम्मिश्र धातु' कहलाते हैं। जैसे–

करना– काम करना, दर्शन करना, प्यार करना।

होना– नाम होना, छेद होना, हत्या होना, प्यार होना।

पूर्वकालिक क्रिया– जब कर्ता एक क्रिया समाप्त करके उसी क्षण दूसरी क्रिया में प्रवृत्त होता है तब पहली क्रिया 'पूर्वकालिक क्रिया' कहलाती है। जैसे– वह पढ़कर जाएगा। पूर्वकालिक क्रिया धातु के अंत में कर या करके लगा देने से बनती है।

समापिका क्रिया– ये क्रियाएं वाक्य के अंत में लगकर वाक्य को समाप्त करती हैं। जैसे– राम स्कूल जाता है। 'जाता है' समापिका क्रिया है।

असमापिका क्रियाएं– जो क्रियाएं वाक्य के अंत में न लगकर वाक्य के अन्यत्र कहीं प्रयुक्त होती है। वे असमापिका क्रियाएं होती हैं। जैसे– वह खाते हुए फिल्म देखता है।

सहायक क्रिया– सहायक क्रियाएं मुख्य क्रिया के अर्थ को स्पष्ट और पूरा करने में सहायक होती हैं। कभी एक क्रिया और कभी एक से अधिक क्रियाएं सहायक होती हैं। जैसे– वह जाता है, तुम जगे हुए हो, हम सुन रहे थे, आदि।

इसमें 'जाना', 'जगना' और 'सुनना' मुख्य क्रियाएं हैं। क्योंकि इनके अर्थ की प्रधानता है। और इसमें 'है', 'था', 'हुए हो', 'रहे थे' सहायक क्रियाएं हैं। ये मुख्य क्रिया के अर्थ को स्पष्ट और पूरा करती हैं।

संयुक्त क्रिया– जो क्रिया दो या दो से अधिक धातुओं के योग से बनती है, उसे संयुक्त क्रिया कहते हैं। जैसे– बैठ जाओ, लौट आया, चल पड़ा। इन क्रियापदों को संयुक्त क्रिया कहते हैं। इनमें 'बैठ', 'लौट', 'चल' मूल क्रियाएं हैं, जो कोशीय अर्थ देती है। 'जाओ', 'आया', 'पड़ा' क्रियाएं रंजक क्रियाएं हैं, जो कोशीय अर्थ को रंजित करती है।

कर्म के आधार पर क्रिया के प्रकार

1. अकर्मक क्रिया
2. सकर्मक क्रिया

1. अकर्मक क्रिया

जिस क्रिया में कर्म नहीं होता और क्रिया का प्रभाव सीधा कर्ता पर पड़ता है तो उसे अकर्मक क्रिया कहते हैं, जैसे– वह दौड़ता है, वह सोता है, वह रोता है, वह खेलता है, वह हंसता है आदि।

जैसे– बच्चा बिस्तर पर सोता है।– लगता है कि कोई कर्म हो रहा है और यह क्रिया सकर्मक है लेकिन कोई कर्म नहीं हो रहा तथा बच्चे के सोने का प्रतिफल बिस्तर पर नहीं पड़ रहा। जैसे– मेरे मातापिता बाग में टहलते हैं– इसमें अर्थ स्पष्ट नहीं होता।

2. सकर्मक क्रिया

इस क्रिया में क्रिया का प्रभाव कर्म पर पड़ता है तथा इसमें कर्म की अनिवार्यता बनी रहती है। जैसे– लिखना, देखना, खाना, पीना। जैसे– वह पत्र लिखता है।

अकर्मक क्रियाओं के भेद– इसके तीन भेद हैं–

(क) **अवस्थाबोधक पूर्ण अकर्मक क्रियाएं**– ये क्रियाएं स्थिर अवस्था में होती है तथा बिना कर्म के पूर्ण अर्थ देती है, जैसे– बालक सो रहा है, लता हंस रही है। ये क्रियाएं स्थिति, अवस्था, दशा आदि का बोध कराती हैं।

(ख) **गत्यर्थक पूर्ण अकर्मक क्रियाएं**— ये क्रियाएं बिना कर्म या पूरक के पूर्ण अर्थ देती है तथा इनमें कर्ता गतिमान रहता है, जैसे— मोहन दिल्ली जा रहा है, चिड़िया उड़ रही है।

(ग) **पूर्ण अकर्मक क्रियाएं**— यह वे क्रियाएं हैं जिनके प्रयोग में अर्थ की पूर्णता के लिए कर्ता से संबंध रखने वाले किसी शब्द विशेष की आवश्यकता पड़ती है, अर्थात इसमें कर्म की तो आवश्यकता नहीं होती परंतु किसी अन्य पूरक की अवश्य आवश्यकता होती है; जैसे— लवकेश बहुत ईमानदार है, वह डॉक्टर बनेगा, राम बीमार हो गया।

सकर्मक क्रियाओं के भेद— सकर्मक क्रियाओं के तीन भेद हैं—

(क) **पूर्ण एक—कर्मक क्रियाएं**— यह क्रियाएं एक कर्म के साथ जुड़कर पूरा अर्थ प्रदान करती है, जैसे— ममता पुस्तक पढ़ रही है, गीता पार्क में खेल रही है, वाल्मीकि ने रामायण लिखी।

(ख) **पूर्ण द्विकर्मक क्रियाएं**— जो क्रियाएं एक नहीं अपितु दो कर्मों के साथ संयुक्त होने पर पूर्ण अर्थ प्रदान करती हैं। वे पूर्ण द्विकर्मक क्रियाएं होती हैं, जैसे— राकेश ने कुत्ते को दूध पिलाया, मैं राम को पत्र लिखूंगा, लता ने रमा को गाना सुनाया।

जब वाक्य में दो कर्म हों तो एक मुख्य कर्म तथा दूसरा गौण कर्म कहलाता है। मुख्यकर्म प्रायः क्रिया के समीप रहता है। जैसे— राम ने श्याम को पत्र लिखा। इसमें श्याम गौण कर्म है तथा पत्र मुख्य कर्म है।

(ग) **अपूर्ण सकर्मक क्रियाएं**— ये वे क्रियाएं हैं जिनमें कर्म रहते हुए भी अर्थ का पूरा बोध नहीं होता और उसे पूरा करने के लिए कर्म से संबंध रखने वाले एक अन्य शब्द की आवश्यकता होती है। जैसे—

1. अमित सुमित को बिल्कुल मूर्ख समझता है।
2. वह डॉक्टर बन कर दिखाएगा।

• विशेषण

संज्ञा या सर्वनाम की विशेषता प्रकट करने वाले शब्दों को विशेषण कहते हैं।

जिस संज्ञा या सर्वनाम की विशेषता बताई जाती है उसे विशेष्य और जो विशेषता—सूचक शब्द होता है, उसे विशेषण कहते हैं।

विशेषण शब्द संज्ञा या सर्वनाम से पहले भी आते हैं, जैसे— सफेद बिल्ली को देखो।

कभी—कभी विशेषण शब्द संज्ञा या सर्वनाम/विशेष्य के बाद भी प्रयुक्त होते हैं; जैसे— यह कमीज लाल है।

विशेष्य विशेषण और विधेय विशेषण

विशेष्य से पहले आने वाले विशेषण को 'विशेष्य—विशेषण' या 'उद्देश्य विशेषण' कहते हैं और विशेष्य के बाद में आने वाले विशेषण को 'विधेय विशेषण' कहते हैं। जैसे—

चतुर बालक अपना काम कर लेते हैं। (विशेष्य विशेषण)

यह बालक चतुर है। (विधेय विशेषण)

टिप्पणी

प्रविशेषण– जो शब्द विशेषणों की भी विशेषता बताते हैं, उन्हें प्रविशेषण कहते हैं। जैसे– मोहन बहुत सुंदर बालक है।

विशेषण के भेद

विशेषण के चार भेद होते हैं–

1. गुणवाचक विशेषण
2. परिमाणवाचक विशेषण
3. संख्यावाचक विशेषण
4. सार्वनामिक विशेषण

1. **गुणवाचक विशेषण**– विशेषण का अर्थ है– 'गुण'। यहां गुण से तात्पर्य केवल अच्छी विशेषताओं से नहीं है अपितु यहां गुण का तात्पर्य है किसी भी वस्तु या व्यक्ति की विशेष स्थिति, विशेष दशा, विशेष दिशा, रंग, गंध, काल, स्थान, आकार, रूप, स्वाद, बुराई, अच्छाई आदि। अतः जो विशेषण किसी संज्ञा या सर्वनाम की उपर्युक्त विशेषताओं का बोध कराये, उसे गुणवाचक विशेषण कहते हैं।

2. **परिमाणवाचक विशेषण**– जो शब्द किसी संज्ञा या सर्वनाम की माप–तोल संबंधी विशेषता का बोध कराते हैं, उन्हें परिमाणवाचक विशेषण कहते हैं। जैसे–

   रामू प्रतिदिन एक किलो दूध पीता है।

   वह कुछ मिठाई भी खाता है।

   परिमाणवाचक विशेषण दो प्रकार के होते हैं–

   (क) निश्चित परिमाणवाचक– ये निश्चित परिमाण का बोध कराते हैं। जैसे– एक किलो दाल देना।

   (ख) अनिश्चित परिमाणवाचक– अनिश्चित परिमाण का बोध कराते हैं। जैसे– थोड़ा सा नमक ला दो।

3. **संख्यावाचक विशेषण**– जो शब्द संज्ञा या सर्वनाम की संख्या संबंधी विशेषता का बोध कराते हैं, उन्हें संख्यावाचक विशेषण कहते हैं। संख्यावाचक विशेषण भी दो प्रकार के होते हैं–

   (क) निश्चित संख्यावाचक विशेषण– दो, चौथा, दर्जन, चौगुना आदि।

   (ख) अनिश्चित संख्यावाचक विशेषण– कुछ, सब, थोड़े, बहुत आदि।

   (क) निश्चित संख्यावाचक विशेषण– इसके छः भेद किए जा सकते हैं–

   - **गणनावाचक या अंकबोधक**– जिससे अंक या गिनती का बोध हो, जैसे– एक, तीन, आधा आदि।

गणनावाचक विशेषणों के दो उपभेद किए जा सकते हैं–

(अ) पूर्ण संख्या बोध विशेषण– पांच पुस्तकें, दस लड़कियां आदि।

(ब) अपूर्ण संख्या बोधक– पाव, आधा, सवा, डेढ़, ढाई आदि।

- **क्रमबोधक विशेषण**– जिस (संख्यावाचक) विशेषण से क्रम का बोध हो, उसे 'क्रमबोधक विशेषण' कहते हैं, जैसे– पहला, आठवां, छठा, ग्यारहवां आदि।
- **आवृत्तिबोधक**– जिस विशेषण से किसी संज्ञा/सर्वनाम के तहों या गुणन का बोध हो, उसे आवृत्तिबोधक विशेषण कहते हैं, जैसे– दुगुना, चौगुना, दुहरा आदि।
- **समूह बोधक**– जिस विशेषण से कुछ संख्याओं के समूह का बोध हो, उसे समूहवाचक विशेषण कहते हैं, जैसे– दोनों भाई, तीनों बहनें, पांचों पांडव आदि।
- **समुच्चय बोधक**– संज्ञा या सर्वनाम के किसी प्रचलित समुदाय को प्रकट करने वाले विशेषण, समुच्चय बोधक विशेषण कहलाते हैं, जैसे– एक दर्जन केले, एक दस्ता कागज आदि।
- **प्रत्येक बोधक विशेषण**– जिस विशेषण से प्रत्येक का अथवा विभाग का बोध हो, उसे प्रत्येक बोधक विशेषण कहते हैं। जैसे– प्रत्येक, हर एक, हर वर्ष, एक–एक आदि।

(ख) अनिश्चित संख्यावाचक विशेषण– संख्या संबंधी विशेषता का निश्चित बोध न होकर अनिश्चित या अस्पष्ट बोध होता है। जैसे– कक्षा में कुछ बच्चे पढ़ रहे हैं; गली में कई लोग खड़े हैं।

परिमाणवाचक और संख्यावाचक विशेषणों में अंतर– यदि विशेष्य गिनी जाने वाली वस्तु हो तो उसके साथ प्रयुक्त कुछ, थोड़ा आदि विशेषण संख्यावाचक होते हैं अन्यथा उन्हें परिमाण वाचक माना जाता है, जैसे–

– आज मैंने <u>अधिक</u> केले खा लिए। (संख्यावाचक)

– <u>कुछ</u> दूध मेरे लिए भी छोड़ देना। (परिमाणवाचक)

4. **सार्वनामिक विशेषण**– वह सर्वनाम जो संज्ञा से पहले आता है और विशेषण का काम करता है, सार्वनामिक विशेषण कहलाता है। जैसे– <u>वह</u> नौकर नहीं आया। <u>यह</u> घोड़ा अच्छा है।

सार्वनामिक विशेषण के चार भेद हैं–

- **निश्चयवाचक सार्वनामिक विशेषण**– ये विशेषण संज्ञा या सर्वनाम की ओर अनिश्चयात्मक संकेत करते हैं, जैसे–

  – यह किताब उठा लो।

  – इसे नहीं, <u>उस</u> पुस्तक को निकालो।

टिप्पणी

- **अनिश्चयवाचक सार्वनामिक विशेषण**– ये विशेषण संज्ञा या सर्वनाम की ओर अनिश्चयात्मक संकेत करते हैं, जैसे–

  – कोई आदमी मिलने आया है।

  – मुझे खाने को कुछ मिठाई दो।

- **प्रश्नवाचक सार्वनामिक विशेषण**– ये विशेषण संज्ञा या सर्वनाम से संबंधित प्रश्नों का बोध कराते हैं, जैसे–

  – कौन लड़की खड़ी है?

  – किस पुस्तक को पढ़ूं?

- **संबंधवाचक सार्वनामिक विशेषण**– ये विशेषण एक संज्ञा या सर्वनाम का संबंध वाक्य में प्रयुक्त अन्य संज्ञा या सर्वनाम शब्द के साथ जोड़ते हैं; जैसे–

  – जो लड़का कल आएगा, उसे अभी पहचान लो।

  – जिस काम को करना ही न हो, उस पर विचार करना व्यर्थ है।

व्युत्पत्ति के अनुसार सार्वनामिक विशेषण के दो भेद हैं–

- **मौलिक सार्वनामिक विशेषण**– यह बिना रूपांतर के संज्ञा से पहले आता है। जैसे– यह मकान, वह लड़की, कोई नौकर आदि।
- **यौगिक सार्वनामिक विशेषण**– ये विशेषण मूल सर्वनामों में प्रत्यय लगाने से बनते हैं, जैसे– ऐसा आदमी, कैसा घर, जैसा देश आदि।

सार्वनामिक विशेषण और सर्वनाम में अंतर

वे सर्वनाम शब्द जो संज्ञा से पहले आते हैं और उनकी विशेषता बताते हैं, सार्वनामिक विशेषण कहलाते हैं और यदि संज्ञा की जगह अकेले प्रयुक्त हो, उन्हें सर्वनाम कहते हैं; जैसे–

– यह बालक बहुत चालाक है। (सार्वनामिक विशेषण)

– वह काफी कमजोर है। (सर्वनाम)

• कारक

जिन चिह्नों से संज्ञा शब्दों का क्रिया के साथ संबंध का बोध होता है, उन्हें कारक कहा जाता है। कारक आठ माने गए हैं– कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान, संबंध, अधिकरण, संबोधन।

कर्ता कारक–जो काम करे उसे कर्ता कहते हैं। राम पुस्तक पढ़ता है, राम ने पुस्तक पढ़ी, रमेश से पुस्तक पढ़ी गई। यहां पर राम और रमेश कर्ता कारक हैं। कर्ता के लिए कभी 'ने', कभी 'से' का प्रयोग होता है, और कभी किसी भी चिह्न का प्रयोग नहीं होता।

कर्म कारक—जिस पर काम का प्रभाव पड़े या जिसको काम का फल प्राप्त हो उसे कर्म कहते हैं, जैसे— राम ने लक्ष्मण को पुकारा, श्याम ने गाय दुही, हरी ने कमल को फल दिया। यहां पर लक्ष्मण, गाय और कमल ये कर्म कारक हैं। कर्म का चिह्न प्रायः 'को' रहता है और कभी—कभी कोई चिह्न नहीं रहता।

करण कारक—जिसके द्वारा काम होता है, उसे करण कहते हैं। उसका चिह्न प्रायः 'से' रहता है, जैसे— रावण ने तलवार से, जटायु के पंख काट डाले। यहां पंख काटने का काम तलवार द्वारा होता है, अतः तलवार करण कारक में है। इसका चिह्न 'से' होता है, जो कभी—कभी लुप्त भी हो जाता है।

संप्रदान कारक—जिसके लिए कोई कार्य किया जाए उसे संप्रदान कहते हैं, जैसे— भूखे को भोजन और प्यासे को पानी देना, मनुष्य का धर्म है, रमेश ने अपने भाई के लिए पुस्तक खरीदी। यहां पर भूखा, प्यास और भाई ये संप्रदान कारक में हैं। संप्रदान का चिह्न 'ओ' या 'के लिए' होता है।

अपादान कारक—जिससे कोई वस्तु अलग होती है वह अपादान कारक में आता है, जैसे— पेड़ से पत्ते गिरते हैं, पहाड़ से नदियां निकलती हैं, गाय से दूध दुहा जाता है। यहां पर पेड़, पहाड़ और गाय अपादान कारक में हैं। अपादान कारक का चिह्न 'से' होता है।

संबंध कारक—जिससे स्वतः लगाव या अपनेपन का बोध होता है उसे संबंध कारक कहते हैं, जैसे—श्याम का घोड़ा, नदी का जल, हरि की गाय। यहां पर श्याम, नदी और हरि संबंध कारक में है। संबंध कारक का चिह्न 'का', 'की', 'के' होते हैं।

अधिकरण कारक—जिसका आधार लेकर कोई पदार्थ या प्राणी स्थित होता है, उसे अधिकरण कारक कहते हैं, जैसे— राम घर में है, बालक बिस्तर पर लेटा है, लोटे में जल रखा है। यहां पर घर, बिस्तर और लोटे अधिकरण कारक में है। अधिकरण कारण का चिह्न 'में' और 'पर' होता है।

संबोधन कारक—जब किसी को पुकारा जाता है, चेतावनी दी जाती है या सावधान किया जाता है, तब वहां संबोधन कारक माना जाता है, जैसे— हे राम, मुझ पर दया करो। अरे मोहन, सबेरे—सबेरे कहां चल दिए। ऐ भाई, ऐसी वर्षा में जाना ठीक नहीं है। यहां संबोधन कारक है। संबोधन कारक चिह्न 'हे', 'ऐ', 'ओ', 'अरे', 'हे', 'हो' आदि होते हैं।

उपर्युक्त लिंग, वचन और कारक चिह्नों के कारण संज्ञा शब्दों का रूप परिवर्तित हो जाता है और ये विकारी रूप कहलाते हैं। इसी प्रकार विकारी रूप सर्वनाम, विशेषण और क्रिया के भी होते हैं। अविकारी शब्दों को अव्यय कहा जाता है।

- **समास**

परस्पर संबंध रखने वाले दो या दो से अधिक शब्दों के मेल को समास कहते हैं। समास एक प्रकार की शब्द रचना विधि है। इसमें दो या दो से अधिक शब्दों को मिलाकर एक नया शब्द बनाया जाता है, इस नए शब्द को 'समस्त पद' कहते हैं।

टिप्पणी

समास रचना में प्रायः दो पद होते हैं। पहले को पूर्वपद और दूसरे पद को उत्तर पद कहते हैं।

समास के भेद

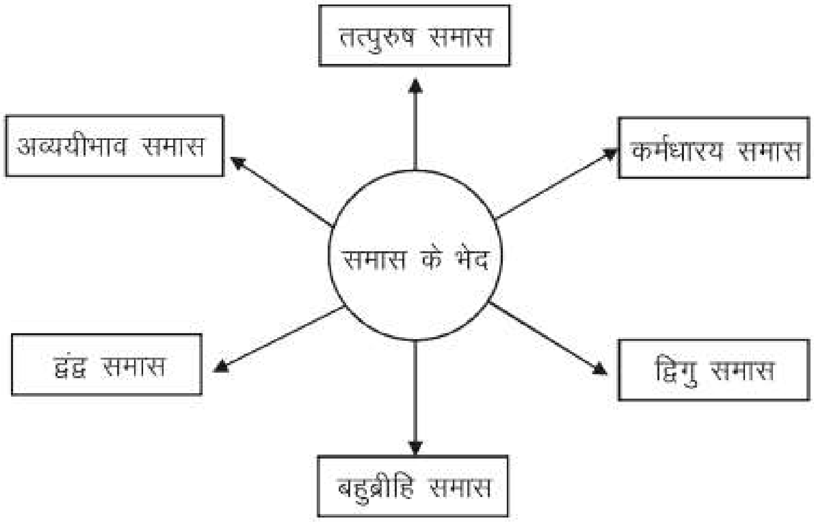

1. तत्पुरुष समास

इसमें उत्तर पद प्रधान होता है तथा पहला पद गौण रहता है। इसमें कारकीय परसर्गों का लोप होता है। जिस कारक के परसर्ग का लोप होता है वह उसी कारक का समास कहलाता है। जैसे– राजा का कुमार = राजकुमार।

तत्पुरुष समास के भेद–

- **संबंध तत्पुरुष**– यहां संबंध कारक का, के, की, का लोप होता है। जैसे– देश की रक्षा – देश रक्षा।
- **संप्रदान तत्पुरुष**– यहां कारकीय परसर्ग 'के लिए' का लोप होता है। जैसे– देश के लिए भक्ति – देश भक्ति।
- **अधिकरण तत्पुरुष**– इसमें 'में', 'पर' का लोप होता है। जैसे– लोक में प्रिय – लोकप्रिय।
- **आपादन तत्पुरुष**– इसमें 'से' का लोप होता है। जैसे– पथ से भ्रष्ट– पथभ्रष्ट
- **कर्म तत्पुरुष**– इसमें भी 'को' का लोप हो जाता है। जैसे– चिड़िया को मारने वाला– चिड़ीमार।

2. कर्मधारय समास

इस समास के दोनों पदों में विशेषण–विशेष्य अथवा उपमान–उपमेय का संबंध होता है। जैसे– महात्मा, महान्, आत्मा; महादेव– महान् देव।

टिप्पणी

3. द्विगु समास– इस समास का पहला पद संख्यावाचक होता है तथा इसके समास पद से 'समूह' का बोध होता है। जैसे– दूसरा + पहर = दोपहर; चार राहों वाला = चौराहा।

4. बहुब्रीहि समास– इसमें दोनों ही पद गौण होते हैं तथा यह दोनों पद किसी अन्य पद के संबंध में कहते हैं तथा 'वह अन्य पद ही प्रधान होता है। जैसे– दशानन– दस है आनन जिसके अर्थात रावण।

5. द्वंद्व समास– जिस समास में दोनों पद प्रधान होते हैं तथा दोनों पदों को मिलाते समय मध्य में योजक (–) चिह्न लगाया जाता है। जैसे– माता–पिता = माता और पिता; दाल–चावल = दाल और चावल।

6. अव्ययीभाव समास– जिस समास में पहला पद प्रधान हो तथा वह अव्यय हो, वह अव्ययीभाव समास कहलाता है। इस प्रक्रिया से बना समस्त पद भी अव्यय की भांति काम करता है। जैसे– आमरण– मरण तक; प्रतिवर्ष– प्रत्येक वर्ष।

3.3.2 रस, छंद एवं अलंकार

- **रस**

जिस तरह से बहुत से रूपों में परब्रह्म प्रकट होकर भक्तों और ज्ञानियों एवं मुमुक्षुओं को आश्चर्यचकित कर देता है उसी तरह रस भी काव्य में आविर्भूत होकर सहृदयों को खुशी देता है। साहित्य में सभी प्रकार के अंगों, वेद, वेदांग, ब्राह्मण उपनिषद्, आयुर्वेदशास्त्र, रामायण और महाभारत आदि में रस अलग-अलग अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। रस को काव्य की आत्मा कहा गया है।

हेमकोष के अनुसार–

"रसः स्वादे, जले वीर्ये, शृंङ्गरादौ विषे द्रवे।
रागे गृहे तथा धातौ तिक्तादौ पारदेऽपि च॥

स्वाद, जल, वीर्य, शृंगारादि रस, विष, द्रव, पारद, राग, गृह, धातु, तिक्त ये सभी रस से जाने जाते हैं।

रस का निर्वचन शब्द-प्रधान व्याकरणशास्त्र में चार तरह से हुआ है–

1. **रस्यते आस्वाद्यते इति रसः –** इस व्युत्पति के अनुसार जो पदार्थ आस्वाद के विषय बनते हैं, उन्हें रस नाम से अभिहित किया जाता है जैसे– परमात्मरूप रस (साधन का रस) मधुर, अम्ल, कटु, कषाय, तिक्त आदि भोज्य पदार्थों एवं सोम, गन्ध, मधु आदि वस्तुओं को भी रस नाम से जाना जाता है।
2. **रस्यते अनेन इति रसः –** इस व्युत्पत्ति के अनुसार आस्वाद कराने वाले पदार्थ रस शब्द से विदित होते हैं यथा-शब्द राग, संगीत, वाद्य, वीर्य शरीर आदि रस पद-बोध्य हैं।

3. **रसति रसयति वा रसः –** जो व्याप्त हो जाता है या स्वयं सभी को व्याप्त कर लेता है, वह भी 'रस' पद बोध्य होता है। यथा–पारद, जल, शरीर को पुष्ट बनाने वाली धातु या अन्य द्रव्य सभी रस होते हैं।
4. **रसनं रसः आस्वादः –** जो आस्वाद स्वरूप है, उसे रस कहते हैं। इस व्युत्पत्ति के अनुसार शृंगार, हास्य, करुण आदि को रस कहा जाता है क्योंकि सहृदयों द्वारा उनका आस्वाद किया जाता है।

विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी भाव तथा स्थायी भाव का स्वरूप

विभाव

विभाव सहृयामानस में स्थायी रूप से रहने वाले रति आदि स्थायी भावों को उद्‌बुद्ध एवं उत्पन्न करते हैं। इसीलिए वे विभाव कहलाते हैं। साथ ही कहा गया है–

विभावयन्ति इति विभावाः इस व्युत्पत्ति के अनुसार भी विभाव शब्द की सार्थकता स्पष्ट हो जाती है। स्थायी भावों को उद्‌बुद्ध एवं उत्पन्न करने के कारण ही विभाव के दो भेद होते हैं-

1. **आलम्बन विभाव–**जिनका आलम्बन लेकर रति आदि स्थायी भाव उद्‌बुद्ध होते हैं, वे नायक-नायिकादि आलम्बन विभाव कहलाते हैं।
2. **उद्दीपन विभाव–**आलम्बन द्वारा उद्‌बुद्ध भावों को जो उद्दीप्त करते हैं, वे उपवन, सुधाकर, कमलाकर, चारु-चन्द्रिका, वाद्य-वीणा मलयसमीरादि उद्दीपन विभाव कहलाते हैं।

अनुभाव

सहृदय-हृदय में रति आदि स्थायी भावों को जो उद्‌बुद्ध एवं उद्‌दीप्त होने पर अपने आप से जो शारीरिक विकास एवं आङ्गिक चेष्टाएं होने लगती हैं। हृदय के आन्तरिक भाव मुख आदि अङ्गों पर नर्तन करने लगते हैं। नयनों में विचित्र-भांङ्गिमाएं होने लगती हैं। वस्तुतः ये अश्रु, स्वेद, रोमांच, कम्पनादि शारीरिक विकार एवं भ्रूभङ्ग कटाक्ष-विक्षेपादि शारीरिक चेष्टाएं ही अनुभाव कहलाती हैं।

1. **सात्विक अनुभाव :** स्वेद, स्तम्भ, रोमांच, स्वरभङ्ग, वेपुथ, वैवर्ण्य, अश्रु तथा प्रलय- ये आठ सात्विक भाव होते हैं।
2. **कायिक अनुभाव :** भू-अङ्ग, कटाक्ष, भुजाक्षेप आदि कायिक अनुभाव होते हैं।
3. **वाचिक अनुभाव :** मधुर वचन तथा वाणी के अन्य प्रकार वाचिक अनुभाव होते हैं।

व्यभिचारी भाव

व्यभिचारी भाव रति इत्यादि स्थायी भावों को पुष्ट करते हुए उनकी अभिव्यक्ति में सहकारी होते हैं। चिन्ता, औत्सुक्य आदि का भाव काव्य तथा नाटक से संचारी कहलाते हैं। किसी भी रस के साथ इनका निश्चित सम्बन्ध नहीं होता। इनमें कोई एक भी कई

रसों का उपकारक हो सकता है। इसलिए अनेक रसों में व्यभिचरण (संचरण) करने के कारण ही ये संचारी भाव या व्यभिचारी भाव कहलाते हैं।

टिप्पणी

व्यभिचारी भाव संख्या में 33 होते हैं– विर्वेद, ग्लानि, शङ्का, असूया, मद, श्रम, आलस्य, दैन्य, चिन्ता, मोह, स्मृति, धृति, व्रीड़, चपलता, हर्ष, आवेग, जाड्य, गर्व, विषाद, औत्सुक्त्य, निद्रा, अपस्मार, सुप्त, प्रबोध, अमर्ष, अविहत्था, उग्रता, मति, व्याधि, उन्माद, भरण, त्रास, वितर्व।

इस प्रकार ये 33 व्यभिचारी भाव होते हैं।

स्थायी भाव

मनुष्य के हृदय में होने वाले मानस-संस्कार या वासना को ही भाव कहते हैं जो हर मनुष्य के हृदय में चित्रवृत्ति की तरह सोयी हुई अवस्था में विद्यमान रहते हैं और जैसे ही अवसर मिलता है ये जाग्रत हो जाते हैं। ये वासना रूपी भाव मनुष्य के हृदय में लगातार स्थायी रूप से विद्यमान रहते हैं, इसलिए इन्हें स्थायी भाव कहते हैं। मानव की सभी चेष्टाओं का आधार ये स्थायी भाव ही हैं। आचार्य धनञ्जय ने स्थायी भाव को साक्षात् लवणाकार के समान कहा है। जैसे लवणाकार में डाला गया प्रत्येक पदार्थ नमक ही बन जाता है, वैसे ही जो विरुद्ध या अविरुद्ध भावों से विच्छन्न न होता हुआ दूसरे पदार्थों को आत्मसात कर लेता है, उसे स्थायी भाव कहते हैं।

स्थायी भाव रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय तथा शम के भेद से कुल नौ प्रकार का होता है।

रस-निष्पत्ति-विषयक प्रमुख चार मत

रस के विषय में महामुनि भरत की मान्यता अलङ्कारशास्त्र के लिए अमूल्य देन है।

महामुनि भरत की यह परिभाषा–

विभावनुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पतिः।

अर्थात्, विभाव, अनुभाव एवं व्यभिचारी भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। भरत की यह मान्यता अलङ्कारशास्त्र के आचार्यों के लिए एक आदर्श है। आगे आने वाले आचार्यों ने इसी आधार पर अपनी-अपनी विचारधाराओं को विशदता प्रदान की–

प्रथम मत : आचार्य भट्टलोल्लट का उत्पत्तिवाद

आचार्य भट्टलोल्लट उत्पत्तिवादी हैं। उन्होंने भरत के रस-सूत्र की व्याख्या अद्भुत ढंग से की। भट्टलोल्लट विभाव एवं व्यभिचारी भावों के संयोग से अनुकार्य रामादि में रस की उत्पत्ति स्वीकार करते हैं।

वेदान्त की यह मान्यता भट्टलोल्लट की मान्यता का आधार है। जिस प्रकार वास्तविक सर्प के विद्यमान न होने पर भी अज्ञानवश रज्जु को सर्प समझकर भय आदि कार्यों की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार से रामादि में स्थित भाव के नट में वास्तविक रूप में न होने पर भी अनुकरण आदि के चातुर्य से सामाजिक उसे भ्रमवश वास्तविक ही समझ बैठते हैं। फलस्वरूप उससे सामाजिक के हृदय में भी एक चमत्कार का उदय होने

लगता है। भट्टलोल्लट के अनुसार यह चमत्कार ही रस है। इस भांति आचार्य भट्टलोल्लट के अनुसार रस मुख्य रूप से अनुकार्य रामादि में रहता है। परन्तु अनुकरण आदि की कुशलता से नट में भी उसकी प्रतीति होने लगती है।

टिप्पणी

द्वितीय मत : आचार्य शंकुक का अनुमितिवाद

शंकुक ने भरत के रस-सूत्र की व्याख्या अभिनव रूप में की। उसके अनुसार विभाव, अनुभाव और संचारी भाव रस के अनुमापक होते हैं और रस 'अनुमाप्य' होता है। इसलिए उसके अनुसार संयोगात् का अर्थ अनुमाप्य-अनुमापकभावत् तथा निष्पत्ति का अर्थ अनुमिति होता है।

आचार्य शंकुक का अनुमितिवाद न्यायमतानुसारी है। प्रमाण-शास्त्र होने के नाते न्याय में अनुमिति की प्रधानता स्वीकार की गई। जिस भांति नैयायिक कुहरे को धुंआ समझकर वहीं अग्नि का अनुमान कर लेते हैं उसी भांति आचार्य शंकुक के अनुसार नट में वास्तविक रस के न रहने पर भी अभिनय-कौशल से उसमें रामादिगत रति का अनुमान कर लिया जाता है। इसमें एक विलक्षता होती है। इसलिए आचार्य मम्मट ने शंकुक के अनुमितिवाद को प्रस्तुत करते समय-अन्यानुमीयमान विलक्षण: शब्द का प्रयोग किया है। यद्यपि नट के विभावादि कृत्रिम होते हैं, किन्तु अभिनय कुशलता के कारण वे कृत्रिम से नहीं लगते। आचार्य मम्मट ने-कृत्रिमैरपि तथा अनभिमन्यमाने: कहकर इसी अभिप्राय को घोषित किया है। श्री शंकुक के अनुसार सामाजिक के रसास्वाद का कारण उसकी वासना संस्कार के बल से अनुमीयमान रस सामाजिक की चर्वणा का विषय बन जाता है।

तृतीय मत : आचार्य भट्टनायक का भुक्तिवाद

आचार्य भट्टनायक ने भरत के रससूत्र की व्याख्या कर एक नवीन उद्भावना को जन्म दिया। वे सामाजिक में रस की स्थिति स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार रस भोज्य है तथा विभावादि उसके भोजक हैं। अत: उनके अनुसार संयोगात का अर्थ भोज्य-भोजकभावात् एवं निष्पत्ति का अर्थ मुक्ति है। भट्टनायक ने रस सम्बन्धी अन्य मान्यताओं का निराकरण किया है। भट्टलोल्लट मुख्य रूप से तटस्थ रामादि में गौण रूप से तटस्थ नट आदि में रसोत्पत्ति स्वीकार करते हैं। परन्तु इसमें सामाजिक के लिए कोई स्थान नहीं। सामाजिक की रसानुभूति कैसी होगी? यह प्रश्न बना ही रहता है। अत: 'ताटस्थ्येन रसोत्पत्तिः मानने वाले भट्टलोल्लट का मत समीचीन नहीं।

इसी भांति शंकुक ने भी तटस्थ नट में रस की अनुमति प्रतीति मानी है और उसके द्वारा संस्कार-वश सामाजिक में रस-चर्वण का उल्लेख किया है। भट्टनायक को शंकुक का मत भी स्वीकार नहीं, क्योंकि परोक्ष ज्ञान रूप अनुमिति से साक्षात्कारात्मक रसानुभूति नहीं हो सकती है।

चतुर्थ मत : आचार्य अभिनवगुप्त का अभिव्यक्तिवाद

भरत के रससूत्र की सर्वाधिक सङ्गत एवं सर्वमान्य व्याख्या आचार्य अभिनवगुप्त ने प्रस्तुत की। अभिनवगुप्त व्यञ्जनावादी हैं। उनकी दृष्टि में रस व्यङ्ग्य है और विभावादि उसके

व्यञ्जक है। अतः उनके अनुसार संयोगात् का अर्थ व्यङ्ग्य व्यञ्जकभावात तथा निष्पत्ति का अभिप्राय 'अभिव्यक्ति' होता है। आचार्य अभिनवगुप्त की मान्यता में यह विशेषता है कि वे सहृदय के मानस में विद्यमान स्थायी भाव को रसानुभूति कराने में निमित्त मानते हैं।

सहृदय के हृदय में वासना या संस्कार रूप में रति आदि स्थायी भाव विद्यमान रहता है। यही स्थायी भाव साधारण रूप में प्रतीत होने वाले विभावादि के द्वारा अभिव्यक्त होकर हृदय मात्र के आस्वाद का विषय बन जाता है। यह आस्वाद ही रस है, यह आस्वाद साक्षात् ब्रह्मस्वाद के सदृश होता है।

आचार्य अभिनवगुप्त रसाभिव्यक्ति में व्यञ्जना व्यापार एवं साधारणीकरण की प्रमुखता स्वीकार करते हैं। वे भट्टनायक के 'भावकत्व' एवं भोजकत्व व्यापार को प्रामाणिक नहीं मानते। आचार्य अभिनवगुप्त ने भावकत्व व्यापार के स्थान पर साधारणीकरण व्यापार को माना है।

आचार्य अभिनवगुप्त रस की अलौकिकता स्वीकार करते हैं। रस अपरिमित होता है। उसकी कोई इयत्ता नहीं होती। रस में यह विलक्षणता है कि वह न तो विभावादि की योजना से पूर्व विद्यमान रहता है और न ही विभावादि के पश्चात् उसकी सत्ता रहती है। स्पष्ट है कि अन्य सभी आचार्यों की अपेक्षा आचार्य अभिनवगुप्त का मत ही अधिक समीचीन एवं मनोवैज्ञानिक है।

रस का अलौकिकत्व

मनुष्य के जीवन का एक मात्र सार रस है। मनुष्य के जितने भी कार्य आदि होते हैं उन सभी का उदय, तथा विकास सभी कुछ रस में अन्तर्निहित है मानव की साध्य और सिद्धावस्था भी रस स्वरूप है। कहने का तात्पर्य है कि सृष्टि का चराचर रसमय है। महामुनि भरत ने इसी उपर्युक्त तथ्य को निम्न प्रकार से अभिव्यक्त किया है–

न हि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते।

काव्य-मर्मज्ञों ने रस को ब्रह्मस्वाद-सहोदर कहकर महिमान्वित किया है। काव्यानन्द का आस्वाद मनुष्य का सबसे बड़ा सौभाग्य है इसीलिए महामुनि भरत ने कहा है- "सुकविता यद्यस्ति राज्येन किम"। ब्रह्मनन्द सहोदर होने के कारण रस को लक्षण एवं परिभाषाओं की सीमा में नहीं बांधा जा सकता। वस्तुतः भाव प्रधान तत्व के स्वरूप को निरूपित करना नितान्त असम्भव है। उसका गूंगे के समान बस आस्वाद ही किया जा सकता है। अतएव साहित्य-समीक्षकों ने रस को वेद्यान्तर सम्पर्क शून्य, अखंड चिन्मय एवं स्वयंप्रकाश बताकर समस्त भारतीय काव्यशास्त्र का समीक्षा-सिद्धान्त रस को ही प्रमुख मानदंड के रूप में स्वीकार किया है।

रस एक अलौकिक स्थिति है, आत्मानुभूति है, ब्रह्मानंद सहोदर है। काव्य के सृजन, पठन, श्रवण और देखने से सर्जक, दर्शक, पाठक और श्रोता उस भाव-भूमि पर पहुंच जाता है, जहां पर केवल निर्विकल्प, निर्लेप, शुद्ध आनंदमयी चेतना का ही साम्राज्य होता है। उस भावभूमि को प्राप्त कर लेने की स्थिति का नाम ही रस है।

टिप्पणी

काव्य सहृदय सामाजिक को या सर्जक को रस की भावभूमि पर पहुंचाकर ही सार्थक होता है। यदि वह ऐसा करने में, इस भावदशा तक पहुंचाने में असमर्थ है तो वह काव्य कहलाने का अधिकारी नहीं। उस शुद्ध, आनंदमयी स्थिति तक पहुंचने के लिए सर्जक एवं सहृदय को भी निर्मल हृदय का अधिकारी होना चाहिए। वह दुर्बल सांसारिक बंधनों की उपेक्षा कर काव्य के पठन, सृजन, श्रवण में डूब जाए तभी उस भाव भूमि तक पहुंच सकता है। अन्यथा मोह-माया के, छल-कपट के व्यापार में रमा हृदय उसे उस आनंदानुभूति से विरक्त या दूर ही रखेगा। प्राचीन काव्यशास्त्रियों ने इसलिए बार-बार काव्य के साथ 'सहृदय' शब्द का प्रयोग किया है। कुछ आचार्यों जैसे अभिनवगुप्त, मम्मट आदि ने 'स्व' के परित्याग की ओर ध्यान आकर्षित कराया है यह और बात है कि रस की व्याख्या करते हुए वे इसका निर्वाह नहीं कर पाए।

काव्य में निहित भाव एवं कवि अपने विचारों का जिस हृदयग्राही रीति से मर्मस्पर्शी निरूपण करता है वही सहृदय सामाजिक को उस भाव दशा तक ले जाता है। कुछ काव्य की अपनी शक्ति और कुछ सहृदयता पाठक के हृदय की, भावों की स्थिति एवं प्रवृत्ति ही सहृदय को उस आनंद सरोवर तक ले जाती है। जब सहृदय सामाजिक आनंदानुभूति की उस चरम स्थिति में पहुंच जाता है तो उसे उस निर्विकल्प अवस्था में यह ज्ञान ही नहीं रहता कि वह किस रस का अनुभव कर रहा है। शृंगार, करुण या वात्सल्य रस का. ..। उसकी अवस्था ध्यानस्थ योगी जैसी होती है जो आत्म-प्रकाश से प्रकाशमान हो, जिसमें केवल आत्म-स्वरूप सत्ता ही शेष हो। वह केवल हृदय ही हृदय, आत्म ही आत्म होता है शेष बाह्यावरण लुप्त हो जाते हैं।

रसमग्न, ध्यानस्थ, आनंदमग्न उस योगी के 'सत् और चित्' स्वरूप भी इस आनंद की छाया में लुप्त हो जाते हैं। धरती, आकाश, जड़-चेतन आदि प्रकृति की सभी चेष्टाएं तिरोहित हो जाती हैं। इसलिए आचार्य विश्वनाथ इस स्थिति के लिए 'सत्वोद्रेक' की बात कहते हैं। इस अवस्था को ही 'रस' का नाम दिया गया है। विभिन्न आचार्यों ने अपनी रुचि, प्रतिभा एवं दृष्टिकोण के आधार पर रस के स्वरूप पर प्रकाश डाला है। अभिनवगुप्त इसे आनंदमयी चेतना कहते हैं तथा स्थायी भाव से विलक्षण स्वरूप वाला मानते हैं।

काव्यशास्त्रीय दृष्टि से रस परंपरा का प्रामाणिक ग्रंथ नाट्यशास्त्र को माना जाता है जिसे पांचवां वेद भी स्वीकार किया गया है। इसके प्रणेता आचार्य भरतमुनि रस की महत्ता को प्रतिपादित करने वाले प्रथम आचार्य माने गए हैं यद्यपि इनसे पूर्व रस की चर्चा करने के संबंध में आचार्य नंदिकेश्वर एवं उनके ग्रंथ अभिनवदर्पण का उल्लेख किया जाता है किंतु इसके अप्रामाणिक एवं अप्राप्य होने के कारण भरत का 'नाट्यशास्त्र' ही रस संबंधी प्रथम ग्रंथ ठहरता है। रस के महत्व को रेखांकित करते हुए छठे अध्याय में रस और सातवें अध्याय में विभाव, अनुभाव आदि का विवेचन करते हुए भरतमुनि ने कहा है–

- नहि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते।
- विभावानुभावव्यभिचारि संयोगाद्रस निष्पत्तिः।
- एवं भावा रसाश्चैव भावयन्ति परस्परम्।
- एवमेतेह्यऽलंकारा गुणा दोषाश्च कीर्तिताः। प्रयोगमेषां च पुनर्वक्ष्यामि रससंश्रयम्।

टिप्पणी

यहां रस को संगीत, अभिनय एवं पाठ्य या वस्तु तत्व, इन तीनों अंगों का नियंता स्वीकार किया गया है। काव्य के सभी तत्व रसों पर आश्रित होते हैं। रस के बिना किसी की किसी में प्रवृत्ति नहीं होती। भरतमुनि कहते हैं कि आस्वादमय होने के कारण ही उसे रस की संज्ञा प्राप्त है, **'आस्वादनात्मानुभवः रसः काव्यार्थ इष्यते।'** रस आस्वादन स्वरूप अनुभव है और वही काव्यार्थ है।

जिस प्रकार नाना व्यंजनों एवं औषधि आदि के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है, उसी तरह नाना भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है– **"यथा नाना व्यञ्जनौषधि द्रव्यसंयोगाद्रसनिष्पत्तिर्भवति यथा गुडादिभिर्द्रव्यैर्व्यञ्जनैरोषधिभिश्चि षाडवादयो रसा निवर्तन्ते तथा नानाभावोपगता अपि।"** भरतमुनि ने चार प्रधान रस ही स्वीकार किए हैं–शृंगार, रौद्र, वीर और वीभत्स रस। पुनःशृंगार से हास्य, रौद्र से करुण, वीर से अद्‌भुत एवं वीभत्स से भयानक, इस तरह उन्होंने कुल आठ रस स्वीकार किए हैं। नौवां शांत रस बाद में स्वीकृत हुआ किंतु इसमें अभिनय करना संभव नहीं है। **'शममपि केचित् प्राहुः पुष्टिर्नाट्येषु नैतस्य।'** कहकर दशरूपककार ने भी इसे नाटक के लिए अस्वीकृत किया। रुद्रट ने काव्यालंकार में 'प्रेयाम्' नामक दसवें रस की चर्चा की गई है तथा साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने वात्सल्य रस को मान्यता प्रदान की है।

रौद्रः शान्तः प्रेयानितिमन्तव्याः रसाः सर्वे।

स्फुटं चमत्कारितया वत्सलं च रसं विदुः।।

रसवादी आचार्य विश्वनाथ ने **'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्'** कहकर रस को ही काव्य की आत्मा स्वीकार किया है। रुद्रट रस को काव्यात्मा मानते हैं तथा राजशेखर ने भी रस को काव्यात्मा मानते हुए काव्यमीमांसा में लिखा है–"रस आत्मा रोमाणि छन्दांसि।" अग्निपुराण में भी ऐसा ही उल्लेख है–**'वाग्वैदग्ध्य रस एवात्र जीवितम्।'** काव्य में रस का महत्व और काव्यात्मा के रूप में रस का स्थान दृढ़ से सुदृढ़ होता गया।

आचार्य भरतमुनि के रस सूत्र–'विभावानुभाव व्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः' की चार टीकाकारों ने अपने-अपने तरीके से व्याख्या की। भट्टलोल्लट ने 'निष्पत्ति' शब्द को 'उत्पत्ति' के अर्थ में लेते हुए 'उत्पत्तिवाद' की प्रतिष्ठा की वहीं शंकुक ने रस को अनुमान का विषय बताते हुए 'निष्पत्ति' का अर्थ अनुमिति के रूप में लिया और 'अनुमितिवाद' की स्थापना की। भट्टनायक ने निष्पत्ति शब्द को भुक्ति के अर्थ में तथा संयोग शब्द को भोज्य-भोजक संबंध के रूप में मानते हुए भुक्तिवाद की स्थापना की। ये तीनों वाद स्वीकार्य नहीं हुए। अभिनवगुप्त ने अभिव्यंजना की चर्चा की जो सर्वमान्य हुई। उन्होंने संयोग शब्द को व्यंग्यव्यंजक भाव तथा निष्पत्ति को अभिव्यक्ति या व्यंजना के अर्थ में लिखा। उन्होंने कहा कि प्रत्येक के हृदय में प्रेम, शोक, भय, घृणा आदि वासनाएं स्थायी भाव के रूप में रहती हैं। सभी सहृदयों के हृदय में स्थित सुप्त स्थायी भाव विभावादिकों को ग्रहण करके रसानुभूति से सिक्त हो जाते हैं और आनंद का अनुभव करते हैं। अभिनवगुप्त ने कहा–**"नाट्य-रसाःस्मृताः। सर्वानुग्राहकं हि, शास्त्रमितिन्यायात्तेन नाट्य एव रसा न लोके इत्यर्थः। काव्यं च नाट्यमेवा।"**

रसानुभूति की आवश्यक शर्त है सहृदय होना। जो सहृदय है वह अपनी संवेदनाओं से प्रकृति के जड़-चेतन सभी के सुख-दुख को अनुभव कर सकता है। सरस प्रकृति के

भीतर परमात्मा की उपस्थिति को अनुभव कर सकता है, वह रसानुभूति में डूबकर ब्रह्मानंद को प्राप्त कर सकता है। रसानुभूति से पाया हुआ ब्रह्मानंद हृदय को शांति और मुख पर कांति बिखेर देता है। वामन कहते हैं–**दीप्तरसत्वं कांतिः**। मम्मट भी रस के महत्व को स्वीकार करते हैं।

टिप्पणी

भोज ने 'श्रृंगारप्रकाश' में केवल एक रस श्रृंगार को ही मान्यता दी है। वे कहते हैं-श्रृंगार का रूप अभिमान और अहंकार जैसा ही है। **रसोभिमानोऽहंकारः श्रृंगार इति गीयते।** भानुदत्त मिश्र ने रसतरंगिणी और रसमंजरी में रसों पर विस्तार से प्रकाश डाला है। माणिक्य चंद्र कहते हैं–**'काव्यं रसादिमद्वाक्यं श्रुतं सुखविशेषकृत्।'** अर्थात एक विशेष प्रकार का सुख पैदा करने वाला रस आदि से भरा वाक्य काव्य कहा जाता है। रस काव्य की आत्मा है, यह निर्विवाद होता चला गया। काव्य में औचित्य से रसानुभूति होती है जिससे चमत्कार उत्पन्न होता है। अनौचित्य से रसभंग होता है। सिद्धांत चाहे कोई भी हो–औचित्य, चमत्कार, अलंकार, वक्रोक्ति, रीति सभी के मूल में महत्व रस का ही है। बलदेव उपाध्याय ने नारायण पंडित के विचारों को उद्धृत किया है **"रसो सारश्चमत्कारः सर्वत्राप्यनुभूयते"** अर्थात रस चित्त विस्तार या आनंद का जनक होता है अतः रसानुभूति चमत्कार रूपिणी होती है। अभिनवगुप्त ध्वन्यालोक लोचन में रस को चमत्कार की आत्मा कहते हैं। लोचनकार सत्य कहते हैं, रस के बिना चमत्कार संभव नहीं है। विश्वेश्वर पांडेय ने रसचंद्रिका में रसों पर विस्तृत चर्चा की है। रुद्रभट्ट ध्वनिपूर्व रसवादी धारा के अंतिम आचार्य माने जाते हैं। उन्होंनेश्रृंगार रस को रेखांकित करते हुए लिखा है–"यामिनी वेन्दुना युक्ता नारीव रमणं विना। लक्ष्मीरिव कृते त्यागान्नो वाणी भाति नीरसाः।"

अभिनवगुप्त के गुरु भट्टतौत भी रसवादी धारा के संवर्धन में सहयोगी बने। आचार्य भरतमुनि से पंडितराज जगन्नाथ तक रसवादी आचार्यों की सुदीर्घ परंपरा दृष्टिगोचर होती है। पंडितराज जगन्नाथ लिखते हैं–'एवं पञ्चात्मके ध्वनौ परम रमणीयतया रसध्वनेस्तदात्मा रसस्तावदभिधीयते।' इस रस का एक रूप भक्ति रस के रूप में हमें रूप गोस्वामी की उज्ज्वल नीलमणि में मिलता है। इसमें भक्ति के पांच प्रकार–शांत, हास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य माने गए हैं। ये सभी भाव कृष्ण को समर्पित हैं। माधुर्य भाव को भक्ति रसराट् कहते हैं। रसवादी आचार्यों की भिन्न-भिन्न मान्यताओं के साथ रसवाद पुष्ट और विकसित होता गया।

आचार्य विश्वनाथ के विवेचन में रस का संपूर्ण स्वरूप समाहित हो गया है। आचार्य विश्वनाथ का कथन इस प्रकार है–

सत्वोद्रेक अखण्ड–स्वप्रकाशानन्द चिन्मयः।
वेद्यान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वादसहोदरः।
लोकोत्तरचमत्कारप्राणः कैश्चित् प्रमातृभिः।
स्वाकारवदभिन्नत्वेनायमास्वाद्यते रसः।।

उपर्युक्त श्लोकों से रस के स्वरूप निर्धारण में निम्न बिंदु स्पष्ट होते हैं–

1. सहृदय के हृदय में सत्व गुण के उद्रेक के पश्चात रस का स्वरूप स्पष्ट होता है।
2. रस अखंड होता है।

3. रस स्वप्रकाशानंद है।

4. रस चिन्मय होता है।

5. रस लोकोत्तर चमत्कारप्राण होता है।

6. रस ब्रह्मानंद के समान है।

7. रस अन्य सभी प्रकार के ज्ञान से अस्पष्ट होता है।

8. रस सामाजिक से अभिन्न रूप होता है।

टिप्पणी

समस्त बिंदुओं को इस प्रकार व्याख्यायित किया जा सकता है–

(1) **सत्वोद्रेक–**सांख्य दर्शन के अनुसार प्रकृति त्रिगुणात्मक होती है। ये तीन गुण हैं– (1) सत्व गुण, (2) रजोगुण और (3) तमोगुण। सत्व गुण अधिकतर रजोगुण और तमोगुण से आच्छादित रहता है। सत्व गुण ही व्यक्ति को शुद्ध-बुद्ध आत्मा (पुरुष) को पहचानने की क्षमता प्रदान करता है। आत्मा का निर्मल स्वरूप भी सत्व गुण के प्राधान्य में अभिव्यक्त होता है। फलतः आचार्य ने सर्वप्रथम रस के स्वरूप के लिए सामाजिक में सत्व गुण के आविर्भाव को प्रमुखता प्रदान की है। सत्व गुण के उदित होने पर व्यक्ति राग-द्वेष से मुक्त होने लगता है और रसास्वाद के लिए राग-द्वेष से मुक्ति प्राप्त करना पहली अनिवार्य शर्त है।

(2) **रस अखंड है–**विश्वनाथ रस की कोटियां या उसके उच्च, मध्यम या निम्न जैसे स्तर स्वीकार नहीं करते। उनके अनुसार रस आनंदमयी चेतना है। फलतः उसके खंड नहीं किए जा सकते। डॉ. नगेंद्र के अनुसार, इसकी व्याख्याएं भी की जा सकती हैं कि रस स्थिति में विभावादि की पृथक-पृथक अनुभूति नहीं होती, बल्कि उनकी समंजित अनुभूति होती है। वस्तुतः विभावादि तो रस स्थिति उत्पन्न करने के सहायक उपकरण मात्र हैं। अतः रस स्थिति में इनके अुनभव का तो प्रश्न ही नहीं उठता। अतः स्पष्ट है कि अखंड से तात्पर्य आत्मानुभूति की पूर्णता से है।

(3) **रस स्वप्रकाशानंद है–**विश्वनाथ का स्वप्रकाशानंद से तात्पर्य है–आत्मा का प्राकृतिक मलों से विनिर्मुक्त होना, क्योंकि आत्मा प्रकाशमयी चेतन सत्ता है, किंतु जिस प्रकार मेघाच्छादित सूर्य की आभा मलिन प्रतीत होती है, उसी प्रकार आत्मा के प्रकाश का भी मलाच्छादित होने के कारण सामाजिक अवलोकन या अनुभव नहीं कर पाता। रस-दशा में वे मल तिरोहित हो जाते हैं और उस समय केवल आत्मा अपने मूल रूप में प्रकाशित होने लगती है। आत्मा के प्रकाशमान स्वरूप का ही नाम आनंद है।

(4) **रस चिन्मय होता है–**विश्वनाथ का चिन्मय से तात्पर्य आत्म-स्वरूप से है। रस स्थिति आत्म-स्वरूप स्थिति है। जहां केवल शुद्ध-बुद्ध आत्मा ही व्यक्त रहती है। शेष सभी मलों का तिरोभाव हो जाता है। ऐसी स्थिति में रस और

टिप्पणी

आत्मा में कोई अंतर नहीं रह जाता। इसीलिए उपनिषदकारों ने 'रसौ वै स:' कहकर रस की चिन्मयता की घोषणा बहुत पहले ही कर दी है। उस समय जब रस चिन्मय स्वरूप को प्राप्त कर लेता है, तब लौकिक ऐंद्रिय मूल या अनुभूतियों के लिए अवकाश नहीं रह जाता।

(5) **वेद्यांतर स्पर्शशून्य**–अन्य सभी प्रकार के ज्ञान का अभाव ही रस स्थिति का भाव है। कहने का तात्पर्य यह है कि रस की स्थिति में प्रमाता में स्व, पर, तटस्थ आदि की अनुभूति का तिरोभाव हो जाता है। अर्थात उस दशा में प्रमाता देशकाल की परिधि को लांघ जाता है और आत्मलीन हो जाता है। उस स्थिति में तन्मयता के अतिरिक्त अन्य समस्त ज्ञान कुछ समय के लिए समाप्त हो जाते हैं। समस्त जड़ चेतन समुदाय ब्रह्ममय दृष्टिगत होने लगता है।

(6) **ब्रह्मानंद सहोदर**–विश्वनाथ ने काव्यानंद या काव्य रस के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहा है कि काव्यास्वाद और ब्रह्मानंद में कोई तात्विक अंतर नहीं है। अंतर केवल अवधि का है। ब्रह्मानंद स्थायी होता है जिसका एक बार आस्वादन कर लिए जाने के पश्चात् वह आस्वाद कभी समाप्त नहीं होता, जबकि काव्यास्वाद अस्थायी होता है क्योंकि काव्यादि की सहायता से मलों का तिरोभाव ही होता है, उनका समूल नाश नहीं होता। फलत: काव्योपकरणों के अभाव में मलों का पुन: आविर्भाव हो जाता है और सहृदय पुन: इस लौकिक जगत में प्रवेश कर जाता है। काव्यास्वाद सरल एवं शीघ्राधिगम्य तो होता है, किंतु स्थायी नहीं हो पाता। इसलिए विश्वनाथ ने रस को 'ब्रह्मास्वाद' न कहकर 'ब्रह्मानंद सहोदर' कहा है।

(7) **लोकोत्तर चमत्कार-प्राण**–रस में पाया जाने वाला चमत्कार लौकिक न होकर अलौकिक होता है। इसलिए रस को पूर्णतया परिभाषित नहीं किया जा सकता और ब्रह्मानंद सहोदर होने के कारण अनेक आचार्य इसे अनिर्वचनीय भी कह देते हैं। वस्तुत: यहां पर इसीलिए विश्वनाथ ने 'अलौकिक' शब्द का प्रयोग न कर 'लोकोत्तर' शब्द का प्रयोग किया है और संभवत: यहां 'लोक' शब्द से आचार्य का मन्तव्य 'इंद्रिय' से रहा है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि रसोद्गत चमत्कार इंद्रिय अनुभव से परे की वस्तु है, क्योंकि लौकिक चमत्कार का अनुभव इंद्रियों द्वारा किया जाता है, किंतु रस चमत्कार के लिए इंद्रियों के प्रवेश का अवसर नहीं रहता। अत: यह एक ऐसा चमत्कार है जो इंद्रियानुभूत नहीं होता। फलत: यह चमत्कार लोकोत्तर है और यही लोकोत्तर चमत्कार रस का प्राणभूत तत्व है।

(8) **स्वाकारवदभिन्नत्व**–रस की स्थिति अपने स्वरूप से अभिन्न रूप में होती है। इसका तात्पर्य यह है कि आस्वाद और रस कोई दो भिन्न-भिन्न तत्व नहीं हैं, जिस प्रकार आत्मा या परमात्मा के 'सत्, चित् और आनंद' कोई भिन्न तत्व नहीं हैं। ब्रह्म सच्चिदानंद है और सच्चिदानंद का नाम ही ब्रह्म है। इसी प्रकार रस का नाम ही आस्वाद और आस्वाद ही रस है। अर्थात रस अनुभूति का विषय नहीं

है बल्कि अनुभूति ही स्वयं रस है। इस प्रसंग में अनुभूति भी अनुभव करने की कोई वृति नहीं है अपितु अनुभूति ही आत्मा है। अनुभूति का स्वयं प्रकाशमान स्वरूप ही आनंद का पर्याय है। 'आनंद' कोई अनुभव करने का विषय नहीं है, बल्कि आचार्य शुक्ल के शब्दों में 'हृदय की मुक्तावस्था ही आनंद है और यही रस है।'

परवर्ती आचार्यों में पंडितराज जगन्नाथ ने आनंद की तीन कोटियां मानी हैं–(1) विषयानंद (लौकिक सुख), (2) ब्रह्मानंद और (3) काव्यानंद।

पंडितराज के अनुसार–

(1) विषयानंद चेतना से आभासित अंत:करण की वृत्तियों के विषय के साथ सामंजस्य से व्युत्पन्न होता है तथा एंद्रिक होता है।

(2) ब्रह्मानंद में समस्त सांसारिक उपाधियों का नाश होकर केवल चैतन्य-स्वरूप का भाव ही आनंद स्वरूप होता है।

(3) काव्यानंद रति आदि भावों की उपाधि बने रहने पर भी चैतन्य स्वरूप का आभास है।

'आनंद' आत्मा का स्वरूप एवं एक मुक्त प्राकृतिक, नैसर्गिक स्थिति है। काव्यानंद एवं ब्रह्मानंद में अंतर है। काव्यानंद में चित्त के विकार छिप जाते हैं। लुप्त होते हैं लेकिन बाद में उनके प्रत्यक्ष होने की संभावना शेष रहती है जबकि ब्रह्मानंद में विकारों का नाश हो जाता है और उनके प्रत्यक्षीकरण की कोई संभावना शेष नहीं रहती। ब्रह्मानंद को इसलिए चरम स्थिति माना गया है। काव्य में सांसारिक दुख भी सुख बनकर उपस्थित होता है इसलिए करुण रस के काव्य के दुखद वर्णनों को भी हम बार-बार पढ़ते हैं। पढ़ते हैं, रोते हैं और फिर पढ़ते हुए सुख का ही अनुभव करते हैं। इसलिए रस दशा 'आनंद' की ही द्योतक मानी गई है। 'रस' का स्वरूप 'ब्रह्म' के पर्याय के रूप में लिया गया है। 'रसो वै स:' अर्थात रस ही वह ब्रह्म है।

सभी रसों का सामान्य परिचय

रसों की संख्या दस हैं–शृंगार, वीर, हास्य, रौद्र, भयानक, वीभत्स, करुण, अद्‌भुत, शांत और वात्सल्य। 'भक्ति रस' को ग्यारहवें रस के रूप में देखा जाता है। रस ही काव्य की आत्मा है। ऐसा मानने वाले आचार्य गण मानते हैं कि कई बार उक्ति अनौचित्य या काव्य में रस का पूर्ण परिपाक न होने के कारण उक्ति में रसत्व तो विद्यमान रहता है किंतु उसमें तीव्र या दीप्त रसत्व का अभाव होता है। इसी कारण भक्ति को 'रस' के समान नहीं माना जाता। इस प्रकार की उक्तियों को सात प्रकारों में बांट सकते हैं–(1) भाव, (2) रसाभास, (3) भावाभास, (4) भावोदय, (5) भावशांति, (6) भाव संधि और (7) भाव सबलता।

आचार्य मम्मट ने रसों के आठ भेद किए हैं। जिनका परिगणन निम्न प्रकार है–

टिप्पणी

श्रृंगार-हास्य-करुण-रौद्र-वीर भयानकाः!
बीभत्साद्भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसायेस्मृताः!!

श्रृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, और अदभुत ये सभी नाट्य में रस माने गए।

1. **श्रृंगार रस**-श्रृंगार रस का स्थायी भाव 'रति' होता है। श्रृंगार के आलम्बन विभाव नायक-नायिका होते हैं। उपवन, चन्द्रिका आदि उद्दीपन विभाव होते हैं। भू-विक्षेप, कटाक्ष आदि इसके अनुभाव होते हैं तथा लज्जा, ह्रास आदि व्यभिचारी भाव होते हैं।

   श्रृंगार दो प्रकार का होता है–

   (क) संयोग श्रृंगार (ख) वियोग श्रृंगार।

(क) संयोग श्रृंगार–इसमें नायक और नायिका का मिलन हो जाता है। इसके दो प्रकार होते हैं।

(ख) वियोग श्रृंगार– इसमें नायक नायिका का मिलन नहीं हो पाता। यह अभिलाषा, विरह, ईर्ष्या, प्रवास, शाप के भेद से पांच प्रकार का होता है।

2. **हास्य रस**- हास्य का स्थायी भाव 'हास' है।

   आचार्य विश्वनाथ ने हास को निम्न रूप में परिभाषित किया है–

   वागदिर्वैकृतैश्चेतौ विकासो हास इष्यते।

   विकृत आकार तथा चेष्टा वाला व्यक्ति हास्य रस का आलम्बन होता है। अनुपयुक्त वेश-भूषा, चेष्टाएं तथा अनर्गल प्रलाप उद्दीपन होते हैं। नेत्र-संकोच, मुस्कराना आदि अनुभाव होते हैं तथा निद्रा, आलस्य आदि व्यभिचारी भाव होते हैं।

3. **करुण रस**- करुण रस का स्थायी भाव 'शोक' है। आचार्य विश्वनाथ ने शोक को निम्न रूप से परिभाषित किया है–

   इष्टनाशादिभिश्चेतो वैक्लव्यं शोकशब्दभाक्।

   अर्थात प्रिय वस्तु के नष्ट हो जाने पर चित्त की जो व्याकुलता होती है वही शोक कहलाती है। जिसके लिए शोक किया जाता है, वही शोच्य आलम्बन होता है। आलम्बन की बातें तथा दाह आदि अवस्था उद्दीपन होते हैं। 'दैवनिन्दा' तथा 'क्रन्दन' आदि अनुभाव होते हैं। मोह-व्याधि-विषाद आदि व्यभिचारी भाव होते हैं।

4. **रौद्र रस**- रौद्र रस का स्थायी भाव 'क्रोध' होता है।

   आचार्य विश्वनाथ ने इसे निम्न रूप में परिभाषित किया है–

   विरोधियों के प्रति हृदय में तीक्ष्णता या प्रतिशोध की भावना ही क्रोध कहलाती है। इसका आलम्बन शत्रु होता है। शत्रु की चेष्टाएं एवं अपकार आदि उद्दीपन होते हैं। भुजाएं ठोकना, शस्त्र-उठाना, आक्षेप लगाना आदि अनुभव होते हैं। मोह, अमर्ष असूया आदि व्यभिचारी भाव होते हैं।

टिप्पणी

5. **वीर रस**-वीर रस का स्थायी भाव 'उत्साह' होता है। साहित्यदर्पणकार ने इसकी परिभाषा निम्न रूप में दी है–

कार्यारम्भेषू संरम्भः स्थेयानुत्साह उच्यते।

अर्थात कार्य करने में आनन्दपूर्ण स्थिर उद्योग ही उत्साह कहलाता है। इसमें प्रतिद्विन्द्वी आलम्बन होता है। उसकी पराजय तथा युद्ध का कोलाहल उद्दीपन होते हैं। शस्त्र-प्रहार, शत्रु से प्रतिस्पर्धा अनुभाव तथा गर्व, धैर्य एवं मति आदि व्यभिचारी भाव होते हैं।

6. **भयानक रस**-भयानक रस का स्थायी भाव 'भय' है। आचार्य विश्वनाथ ने भयानक रस की परिभाषा निम्न रूप में प्रस्तुत की है–

रौद्र शक्त्या तु जनितं चित्तवैक्लव्यदं भयम्।

किसी भीषण वस्तु के कारण चित्त की विकलता भय कहलाती है। भयोत्पादक व्यक्ति या वस्तु आलम्बन होती है। उसकी चेष्टाएं उद्दीपन होती हैं। मुख का पीला पड़ना, बोल न पाना, स्वेद आदि अनुभाव हैं तथा शंका, सम्भ्रम, मरण आदि व्यभिचारी भाव होते हैं।

7. **वीभत्स रस**-वीभत्स रस का स्थायी भाव 'जुगुप्सा' है। आचार्य विश्वनाथ वीभत्स को इस प्रकार परिभाषित करते हैं–

दोषेक्षणादिभिर्गर्हो जुगुप्सा विषयोद्भवा।

अभिप्राय है कि किसी घृणास्पद वस्तु के दोष-दर्शन से उत्पन्न घृणाभाव ही जुगुप्सा है। दुर्गन्ध, सड़ांध, मांस, रुधिर आदि इसके आलम्बन हैं। कीड़े पड़ना आदि उद्दीपन हैं। नाक सिकोड़ना, थूकना आदि अनुभाव हैं तथा उद्वेग आदि व्यभिचारी भाव हैं, जिनसे समाज में वीभत्स रस की अभिव्यक्ति होती है।

8. **अद्भुत रस–** अद्भुत रस का स्थायी भाव 'विस्मय' है। आचार्य विश्वनाथ अद्भुत रस की निम्न परिभाषा प्रस्तुत करते हैं–

विविधेषु पदार्थेषु लोकसीमातिवर्तिषु।

विस्फारश्चेतसो यस्तु स विस्मय उदाहृतः॥

विलक्षण वस्तुओं के दर्शन, श्रवण आदि से जो चित्त का विकास होता है, वही विस्मय कहा जाता है। विस्मय का आलम्बन विलक्षण वस्तु होती है। ऐसी वस्तु का देखना, सुनना, कहना तथा गुण-वर्णन आदि उद्दीपन हैं। स्वेद, रोमांच, नेत्र विकास आदि अनुभाव हैं। वितर्क, आवेग, हर्ष आदि व्यभिचारी भाव होते हैं।

9. **शान्त रस**-शान्त की रस-विषयक मान्यता में आचार्यो में पर्याप्त मतभेद है। अभिनवगुप्त के मतानुसार मोक्ष रूप पुरुषार्थ की प्राप्ति के लिए शान्त रस की स्वीकृति आवश्यक है।

आचार्य मम्मट ने सभी के मतों का सार लेकर शान्त रस को अपनी मान्यता प्रदान की है-**निर्वेदस्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रसः।** शान्त रस का स्थायी भाव 'निर्वेद'

है। इसका दूसरा नाम 'शम' भी है। संसार की अनित्यता, परमात्मस्वरूप की अनुभूति इसका आलम्बन है। आश्रम, तीर्थ तपोवनादि उद्दीपन तथा रोमांचादि अनुभाव हैं। स्मृति, धृति, भति, जीव, दया तथा हर्षादि इसके व्यभिचारी भाव होते हैं।

- **छन्द**

गद्य का नियामक व्याकरण है और पद्य का छन्द शास्त्र। हिंदी साहित्य की पारंपरिक रचनाएं छन्दबद्ध ही हुआ करती थीं, यानी किसी न किसी छन्द में रची जाती थीं। विश्व की अन्य भाषाओं में भी यही दर्शनीय तथ्य है। आज छन्दमुक्त रचनाएं भी की जा रही हैं।

छन्द भारतीय आर्य भाषा परिवार की उतनी ही प्राचीन परंपरा है जितनी ज्ञान की अन्य शाखाएं हैं। भारत के प्राचीनतम लिपिबद्ध आलेख वेद हैं और वेदों का सम्यक ज्ञान प्राप्त करने के लिए वेदांगों का अध्ययन अनिवार्य है, ऐसा प्राचीन मनीषी कहते हैं। वेदांगों की संख्या छह है– (1) शिक्षा, (2) कल्प, (3) ज्योतिष, (4) व्याकरण, (5) निरुक्त और (6) छन्द। यजुर्वेद को छोड़कर शेष तीनों संहिताओं में छन्दों का प्रयोग किया गया है। यजुर्वेद गद्य में लिखित है। वेदों में मुख्यत: सात छन्दों के प्रयोग किए गए हैं– (1) गायत्री, (2) उष्णिक, (3) अनुष्टुप, (4) बृहती, (5) पंक्ति, (6) त्रिष्टुप और (7) जगती।

सर्वप्रथम यास्क ने 'छन्द' की व्युत्पत्तिपरक व्याख्या की है। आपके अनुसार, 'छन्दांसि धारनात्' अर्थात छन्द भावों को आच्छादित कर उन्हें समष्टि रूप प्रदान करते हैं। 'छन्द' शब्द छादनार्थक 'छद्' धातु से बना है। इसके पश्चात कात्यायन ने छन्द की परिभाषा करते हुए लिखा है कि 'यदक्षर परिमाणं तच्छन्द:' अर्थात जिसमें अक्षरों के परिमाण या संख्या में वर्णों की संख्या निहित होती है, वह छन्द कहलाता है। अर्थात प्रत्येक छन्द में वर्णों की संख्या निर्धारित रहती है। इसके पश्चात छन्द एक निश्चित परिभाषा में आबद्ध कर दिया गया कि 'छन्द' काव्य के उस तत्व का नाम है जिसमें वर्णों की या मात्राओं की संख्या, 'गुरु लघु' का क्रम, यति, गति की व्यवस्था निर्धारित हो। इनके भेदोपभेदों एवं वर्ण, मात्रा, यति, गति, चरण आदि की व्यवस्था करने वाले शास्त्र को छन्द-शास्त्र कहा जाता है।

हिंदी में छन्दों की नवीनता की आवश्यकता पर सर्वप्रथम आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने विचार व्यक्त किए थे। उन्होंने परंपरागत मात्रिक छन्दों के साथ-साथ संस्कृत के वर्ण-वृत्तों को अपनाने की ओर ध्यान दिलाया था, जिससे अयोध्यासिंह उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त आदि ने दिशा-संकेत पाकर संस्कृत के वर्ण वृत्तों में भी कविता आरंभ की। उन्होंने कहा था, "जो सिद्ध कवि हैं वे चाहे जिस छन्द का प्रयोग करें उनका पद्य अच्छा ही होता है, परंतु सामान्य कवियों को विषय के अनुकूल छन्द-योजना करनी चाहिए। दोहा, चौपाई, सोरठा, घनाक्षरी, छप्पय और सवैया आदि का प्रयोग हिंदी में बहुत हो चुका। कवियों को चाहिए कि यदि वे लिख सकते हैं तो इसके अतिरिक्त और छन्द भी लिखा करें।"

टिप्पणी

कविकर्म में कठिनाई होते हुए भी कविता में छन्द का गौण व वैकल्पिक स्थान नहीं है। द्विवेदी जी ने भी ऐसा नहीं कहा था। उनका कथन है कि किसी एक छन्द का महत्व नहीं है। प्रतिभावान कवि अपनी कवित्व-शक्ति के बल पर किसी भी छन्द में सफल रचना कर सकता है। निराला ने भी शास्त्र-बद्ध छन्दों का विरोध किया, छन्द में पूर्व सांचे का प्रतिबंध अनावश्यक माना, बंधन को अस्वीकारा, छन्द या मुक्त छन्द अर्थात स्वत: निर्मित स्व-छन्द को; छन्द को नहीं। वास्तव में निराला का तात्पर्य यही था कि कवि की अनुभूति स्वत: अपने आप जिस प्रवाहात्मक स्वत: व्यवस्थित रूप में प्रकट हो जाती है, वह मुक्त छन्द बन जाता है। इस प्रकार हम ये कह सकते हैं-

1. छन्द कविता का अनिवार्य तत्व है जिसके बिना उसका असली रूप सिद्ध नहीं होता। यह बंधन अवश्य है, पर ऐसा श्रमसाध्य बांध है जो शक्ति उपजाता है।
2. छन्दरहित पाठ्य कविता नहीं, गद्य काव्य हो सकता है– वह भी भावप्रवणता यदि हो।
3. स्वच्छन्द छन्द (निराला द्वारा प्रवर्तित) भी एक तरह का अव्यवस्थित अनिश्चित छन्द है, जो अपनी प्रवाहात्मकता के कारण अपना कुछ पाठ्य सौंदर्य प्रकट कर सकता है– यदि निराला जैसा कोई अच्छा पढ़ने वाला हो। वह संगीतात्मक नहीं, उसकी उपयोगिता कविता की अपेक्षा नाटकों में पात्रों के वार्तालाप में प्रयुक्त करने में है।
4. अपनी प्रतिभा से कवि नयी-नयी संगीतात्मक छन्द-ध्वनियां प्रकट कर सकता है। बने-बनाये सांचों को ही सामने रखना अनिवार्य नहीं। वह स्वच्छन्दता से गुनगुना कर ध्वनियों के साम्य और आरोह-अवरोह से स्वयं संगीतात्मक स्वर, लय प्रकट कर सकता है। ऐसी स्वर-लहरी स्वत: ही कोई-न-कोई छन्द बन जाती है।
5. साधने पर छन्द ऐसे सध जाते हैं कि फिर कवि के इंगितों पर नाचने लगते हैं।
6. छन्दों से कविता में संगीतात्मकता आ जाती है और संगीत के समावेश से कविता का प्रभाव और महत्व खूब बढ़ जाता है। वह मधुर तथा मनोहारी होकर अलौकिक आनंद प्रदान करती है। संगीत अपने में एक महत्वपूर्ण कला है। कविता को उसकी इस सहयोगिनी कला से वंचित करना कविता का अहित करना ही है।

संगीतात्मक छन्दों का ऐसा अद्‌भुत प्रभाव होता है कि कभी-कभी अर्थ न समझने पर भी पाठक या श्रोता झूम उठता है और कई बार तो संगीत-ध्वनियों से ही हृदय में भाव उमड़ आता है। संगीत से एक विशेष प्रकार का विलक्षण चमत्कार उत्पन्न हो जाता है। हम रोज ही कवि सम्मेलनों में देखते हैं कि जो कवि अपनी रचना गाकर 'तरन्नुम' में सुनाता है, उसका प्रभाव श्रोताओं पर अधिक पड़ता है, चाहे उसमें भाव-रस-संपदा अपेक्षाकृत कम हो। इसके विपरीत छन्द और गेयतारहित कविता को पढ़कर सुनाने वाला कवि मंच पर कम जम पाता है। अत: गेय और संगीतमय होने से कविता की प्रभावशक्ति खूब बढ़ जाती है। इसलिए छन्द को कविता का अनिवार्य तत्व मानना चाहिए। अत: कहा

जा सकता है कि रसानुभूति करना कविता का लक्ष्य होने के कारण लय और छन्द से उसका अटूट संबंध है।

टिप्पणी

छन्द के अवयव एवं मात्रा की स्थिति

छन्द वह सांचा या बंध है जिसमें मात्राओं या अक्षरों (स्वर-ध्वनियों) के क्रम, गति और यति के नियम तथा चरणान्त की समता का ऐसा विधान होता है जिससे कविता में प्रवाह, लय, गेयता और संगीतात्मकता आ जाती है।

गण

तीन वर्णों के समूह को 'गण' कहते हैं। इन तीन वर्णों में दो एक जाति के और एक एक जाति का होता है। केवल दो गण ऐसे हैं जिनमें एक जाति के ही तीनों वर्ण होते हैं। यहां पर जाति से तात्पर्य लघु एवं गुरु वर्णों से है। इस आधार पर संस्कृत आचार्यों ने समस्त वाङ्‌मय को आठ गणों में समेट लिया है। गणों का अधिक प्रयोग वर्णिक छन्दों में ही किया जाता है। कुछ मात्रिक छन्द भी ऐसे हैं जिनमें आचार्यों ने गण विशेष का संकेत दिया है जिनका ज्ञान यथास्थान हो जाएगा। जैसा कि ऊपर कहा गया है कि इन गणों की कुल संख्या आठ निर्धारित की गई है– (1) भगण, (2) जगण, (3) सगण, (4) यगण, (5) रगण, (6) तगण, (7) मगण, (8) नगण।

क्रम गुरु और लघु के आधार पर रखा गया है। इसी आधार पर हम इनके तीन वर्ग बना सकते हैं– (1) भजसा, (2) यरता और (3) मन।

उपर्युक्त वर्गों में प्रथम दो वर्गों में तीन गण तथा अंतिम वर्ग में दो गण रखने के आधार हैं। जैसा कि बताया जा चुका है कि प्रत्येक गण में तीन वर्ण होते हैं, अतः इनका क्रम होगा– (1) आदि, (2) मध्य और (3) अंत।

यह भी कहा गया है कि प्रत्येक गण में दो वर्ण उस एक जाति के वर्ण को आधार बनाकर बनाए गए हैं। एक वर्ण में तीन गण इसलिए रखे गए हैं कि वह एक वर्ण उस गण विशेष में या तो आदि में होगा या मध्य में या फिर अंत में होगा।

इस आधार पर एक वर्ग में तीन गण रख लिए, उसी क्रम से जिस क्रम से उस एक जाति के वर्ण का सन्निवेश होगा। तीसरे वर्ग का आधार है वर्ण की संपूर्णता अर्थात इनमें तीनों ही वर्ण एक जाति के होंगे। जाति दो ही हैं– गुरु एवं लघु। अतः पहले में तीनों वर्ण गुरु अर्थात मगण और दूसरे में तीनों लघु अर्थात नगण। गुरु बड़ा होता है अतः पहले गुरु को ही लेते हैं– (1) पहले वर्ग में तीन गण हैं– भगण, जगण और सगण। इनका संक्षिप्त रूप हुआ 'भजसा'। आधार है 'गुरु वर्ण' आदि, मध्य और अंत के रूप में। 'भजसा' में पहला वर्ण 'भ' है। अतः सिद्ध हुआ कि भगण में पहला वर्ण गुरु होगा और शेष दो वर्ण लघु होंगे; यथा- 'ऽ।।' यह भगण का रूप हुआ।

'जगण' 'भजसा' शब्द के मध्य में 'ज' रूप में वर्तमान है। अतः स्वतः स्पष्ट है कि 'जगण' के मध्य में गुरु वर्ण आएगा तथा आदि और अंत में एक-एक लघु वर्ण आएंगे और रूप होगा– '।ऽ।'

'भजसा' शब्द के अंत में 'स' वर्ण आया है जो सगण का द्योतक है। अत: इस गण के अंत में गुरु वर्ण आएगा और आदि तथा मध्य के दोनों वर्ण लघु होंगे। रूप होगा- '।।ऽ'

टिप्पणी

गुरु का कार्य पूर्ण हुआ। अब इसी प्रकार लघु वर्ण वाले वर्ग को लेते हैं– लघु वर्ण वाले वर्ग का नाम है– 'यरता'। यह शब्द 'यगण', 'रगण' और 'तगण' शब्दों का संक्षिप्त रूप है। लघु के उसी क्रम आदि, मध्य और अंत में इन गणों की भी व्याख्या की जा सकती है। 'यरता' शब्द के आदि में 'य' वर्ण है जो 'यगण' का प्रतिनिधि है और लघु वाले वर्ग का है तथा वर्ग के आदि में है। अत: 'यगण' का आदि वर्ण 'लघु' होगा और शेष दो वर्ण गुरु होंगे जो मध्य और अंत में होंगे। अत: यगण का रूप होगा– '।ऽऽ'

'रगण' 'यरता' शब्द के मध्य में आए 'र' से सूचित है, लघु वर्ण के वर्ग में है। अत: स्पष्ट है कि 'रगण' में मध्य में लघु आएगा और शेष आदि और अंत में एक-एक गुरु वर्ण आएंगे। इस प्रकार रगण का रूप होगा– 'ऽ।ऽ'

'तगण' को द्योतित कराने वाला 'त' वर्ण 'यरता' शब्द के अंत में आया है। अत: लघु वर्ग का होने के कारण तगण के अंत में 'लघु' वर्ण आएगा और आदि तथा मध्य में एक-एक गुरु वर्ण आएगा। इस प्रकार तगण का रूप होगा– 'ऽऽ।'

मगण और नगण के संबंध में संकेत दिया जा चुका है। ये तीसरे वर्ग के गण हैं जो क्रमश: 'गुरु और लघु' से संबद्ध हैं। अत: गुरु के पहले आने से 'मन' के पहले वर्ण 'म' में जो 'मगण' का प्रतिनिधि है, तीनों गुरु वर्ण होंगे। 'लघु' गुरु से छोटा है। अत: बाद में आएगा। 'मन' वर्ग में 'न' बाद में आया है और यह 'नगण' का प्रतिनिधि है। अत: स्पष्ट है कि 'नगण' में तीनों वर्ण लघु होंगे। इस प्रकार इनका रूप होगा मगण– 'ऽऽऽ' और नगण '।।।' समस्त गणों के रूप एक साथ इस प्रकार होंगे–

यगण	–	।ऽऽ
मगण	–	ऽऽऽ
तगण	–	ऽऽ।
रगण	–	ऽ।ऽ
जगण	–	।ऽ।
भगण	–	ऽ।।
नगण	–	।।।
सगण	–	।।ऽ

उपर्युक्त विधि संस्कृत भाषा में लिखित श्रुतबोध ग्रंथ के आधार पर प्रतिपादित की गई है। श्रुतबोध ग्रंथ का श्लोक है–

आदिमध्यावसानेषु भजसा यान्ति गौरवम्।
यरता लाघवम्यान्ति, मनौ तु गुरु लाघवम्।।

कुछ विद्वान गणों को चिह्नित करने की एक विधि का भी प्रतिपादन करते हैं। इन्होंने एक ऐसा सूत्र बनाया है कि उसमें सभी गणों के संक्षिप्त नाम आ जाते हैं और आपको जिस गण को भी निकालना हो आप उस 'गण' के प्रतिनिधि वर्ण (आद्य वर्ण) से गुरु लघु लगाइए। जब तीन वर्ण पूरे हो जाएं और जो रूप सामने आए उसे ही उस गण का रूप समझ लीजिए। सूत्र इस प्रकार है–

यमाताराजभानसलगा।

। ऽ ऽ ऽ । ऽ । । । ऽ

य मा ता रा ज भा न स ल गा

यमाता	–	यगण	–	।ऽऽ
मातारा	–	मगण	–	ऽऽऽ
ताराज	–	तगण	–	ऽऽ।
राजभा	–	रगण	–	ऽ।ऽ
जभान	–	जगण	–	।ऽ।
भानस	–	भगण	–	ऽ।।
नसल	–	नगण	–	।।।
सलगा	–	सगण	–	।।ऽ
ल	–	लघु	–	।
गा	–	गुरु	–	ऽ

गणों के स्वरूप को समझने की यह भी एक पद्धति है। वृत्तरत्नाकर के लेखक एवं छन्दोमन्जरी के लेखक ने श्रुतबोध की पद्धति को ही अपनाया है।

गुरु एवं लघु वर्ण

मात्राओं को दृष्टि में रखकर छन्द-शास्त्री वर्ण के भार का अनुमान लगाते हैं कि किस वर्ण में कितना भार है। अधिक भार वाले वर्ण को गुरु और कम भार वाले वर्ण को 'लघु' कहा जाता है। इस आधार पर संगीत के आरोहावरोह, क्रम एवं ताल, लय की संगति बैठती है। अत: छन्द शास्त्रकारों ने इस आधार पर वर्ण को दो वर्णों में विभाजित किया है- (1) गुरु एवं (2) लघु।

(1) गुरु वर्ण

मूलत: व्याकरण में जिस वर्ण की दीर्घ संज्ञा होती है, छन्द-शास्त्र में उसे ही 'गुरु' की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। सामान्यत: दो मात्राओं वाले वर्ण को गुरु कहा जाता है अर्थात जिस वर्ण या अक्षर के उच्चारण में दो मात्राओं का समय लगता है उसे छन्द-शास्त्र में गुरु वर्ण माना जाता है और उसे 'ऽ' (अंग्रेजी एस.) चिह्न से द्योतित कराया जाता है। निम्नांकित अन्य स्थलों पर भी लघु वर्ण को छन्द-शास्त्र में 'गुरु' वर्ण माना जाता है–

टिप्पणी

1. यदि संयुक्त व्यंजन से पहले कोई लघु वर्ण भी होगा तो वह गुरु ही माना जाएगा; यथा– 'प्रयुक्त' शब्द में आगत 'यु' वर्ण लघु है किंतु 'क्त' संयुक्त वर्ण का पूर्ववर्ती होने के कारण इसकी गुरु संज्ञा होगी।
2. अनुस्वार युक्त लघु वर्ण भी छन्द-शास्त्र के अनुसार गुरुसंज्ञक होगा; यथा– 'संसार'। इस शब्द में आद्य 'स' लघु है किंतु अनुस्वार युक्त होने के कारण इसको गुरु माना जाएगा।
3. पाद के अंतिम लघु वर्ण को यदि प्रयोजन हो तो अर्थात छन्द सिद्धि के लिए, गुरु मान लिया जाता है। इससे कवि छन्दों-भंग दोष से बच जाता है।
4. किसी वर्ण के आगे यदि विसर्गों का प्रयोग हुआ है और वह वर्ण लघु है तो छन्द-शास्त्र में उसे भी गुरु वर्ण ही माना जाएगा; यथा– 'अत:'। इस शब्द में 'त' लघु वर्ण है किंतु इसके आगे विसर्गों के प्रयोग के कारण 'त' गुरु संज्ञक माना जाएगा।

(2) लघु वर्ण

व्याकरण में जिस वर्ण की ह्रस्व संज्ञा होती है उसे ही छन्द शास्त्र के लघुभार वाला लघु वर्ण कहा जाता है। सामान्यत: एक मात्रा वाले वर्ण की लघु संज्ञा होती है अर्थात जिस वर्ण के उच्चारण करने में एक मात्रा का समय लगता है वह वर्ण छन्द-शास्त्र में लघु संज्ञक होता है। इसे खड़ी रेखा से द्योतित कराया जाता है; यथा–'।' इसके अतिरिक्त अन्य कारणों से भी गुरु वर्ण की छन्द-शास्त्र में लघु संज्ञा हो जाती है–

1. पाद के अंतिम गुरु वर्ण को, यदि किसी प्रयोजन की सिद्धि होती है तो उसे लघु माना जाना चाहिए, ऐसी शास्त्रकारों की मान्यता है।
2. यदि किसी संयुक्त वर्ण से पूर्ववर्ती वर्ण लघु है और पूर्व नियम के अनुसार उसकी गुरु संज्ञा हो जाती है किंतु उसका लघु रखना ही अभीष्ट है (किसी प्रयोजन विशेष के कारण) तो पूर्व नियम का उल्लंघन कर उसे लघु ही माना जा सकता है। किंतु यह सुविधा केवल चरण के प्रारंभिक वर्ण तक ही सीमित रखी गई है।

उपर्युक्त दोनों नियम संभवत: कवि को छन्दों-भंग दोष से बचाने के लिए ही निर्धारित किए गए हैं। अनेक अवसर ऐसे आते हैं कि कवि किसी शब्द का साभिप्राय प्रयोग करना चाहता है किंतु छन्द नियम के कारण वह उसका प्रयोग नहीं कर पा रहा हो और अन्य शब्द के प्रयोग से भाव की हानि होती हो तो कवि को यह छूट दे दी गई है। दूसरे कुछ स्थल ऐसे भी आते हैं कि संगीतात्मकता के कारण गुरु वर्ण लघु और लघु वर्ण गुरु उच्चरित होते हैं। अत: शास्त्रकारों ने निष्कर्षत: ऐसी व्यवस्था कर दी हो।

छन्द में लय एवं प्रवाह लाने के लिए कुछ वर्णों के उच्चारण के पश्चात विश्राम की आवश्यकता पड़ती है और गायक कुछ क्षण के लिए विश्राम लेता है। छन्द शास्त्रकारों

ने किस छन्द में कहां पर विश्राम लिया जाए इसका सम्यक विधान किया है और उसे 'यति' की संज्ञा से अभिहित किया है।

टिप्पणी

यति

यति का अर्थ है विराम। किसी पद्य को पढ़ते समय या सुनते समय पाठक या श्रोता अपने कथन का सुविधापूर्वक पाठ कर सके और श्रोता उसे हृदयंगम कर कुछ स्थलों पर कुछ क्षण के लिए विराम करता है या रुकता है। उस रुकने के भाव को यति और जहां पर वह रुकता है या विश्राम करता है उस स्थल को यति स्थान कहा जाता है। पाद के अंत में और मध्य में यति आनी चाहिए। यह सामान्य नियम है किंतु ऐसा-विशेषकर मध्य यति का-सर्वत्र नहीं होता और कुछ कारणों से संभव नहीं हो पाता। फलत: आचार्यों ने लगभग सभी छन्दों के प्रत्येक चरण में यति स्थान नियत कर दिए हैं। ये यति स्थान संभवत: यादृच्छिक नहीं हैं अपितु प्रत्येक छन्द की संगीतात्मकता एवं आरोहावरोह क्रम को ध्यान में रखकर निर्धारित किए गए हैं। भरतादि कुछ आचार्य यति को मान्यता नहीं देते किंतु परवर्ती आचार्यों ने श्लोक या पद्य में विरसता से बचाव के लिए यति के महत्व को स्वीकार किया है। यति के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि वह शब्द के मध्य में न आए। इसके लिए कवि को सतर्क रहने की आवश्यकता है। कविता में पद विन्यास कुछ इस प्रकार से होना चाहिए कि यति पद के पूर्ण होने पर भी आनी चाहिए अन्यथा पद भंग के कारण सुनने में विरसता आ जाने का भय बना रहेगा।

छन्दोबद्ध रचना को 'पद्य' कहा जाता है। कुछ छन्दों को छोड़कर प्रत्येक शब्द में प्राय: चार चरण या पाद माने जाते हैं। अत: चारों पादों के संपूर्ण रूप को पद्य और उसके एक भाग को पाद या चरण कहा जाता है।

तुकांतता या अन्त्यानुप्रास

यद्यपि तुकांतता या तुक-साम्य छन्द का अनिवार्य तत्व नहीं है, अपितु इसका कविता में विशेष महत्व है। तुक-साम्य के पांच रूप हो सकते हैं-

1. जहां सब चरणों में तुकांतता हो, जैसे कवित्त, सवैया आदि में।
2. जहां दूसरे और चौथे चरणों के अंत में तुल-साम्य हो, जैसे दोहा, बरवै आदि में।
3. जहां पहले और तीसरे के अंत में तुक-साम्य हो, जैसे सोरठा में।
4. जहां पहले-दूसरे तथा तीसरे-चौथे की तुक अंत में मिलती हो।
5. जहां सम चरण की सम चरण से (दूसरे-चौथे की) तथा विषम की विषम से (पहले-तीसरे की) तुक मिलती हो।

तुकांतता या तुक साम्य से छन्द की गेयता और लय का गुण बढ़ जाता है। उसमें संगीत की विशिष्ट ध्वनि उत्पन्न हो जाती है। आज की अतुकांत कविता तो छन्द रहित ही बन गई है।

छन्द के भेदोपभेद एवं मात्रा विधान

छन्द-शास्त्रज्ञों ने छन्द को पहले दो वर्गों में विभाजित किया है– (1) वर्णिक, (2) मात्रिक।

टिप्पणी

पुनः इनका तीन उपविभागों में विभाजन किया गया- (क) समवर्णिक छन्द, (ख) अर्धसम वर्णिक छन्द, (ग) विषम वर्णिक छन्द।

इसी प्रकार मात्रिक के भी तीन भेद होते हैं– (क) सम मात्रिक छन्द, (ख) अर्धसम मात्रिक छन्द, (ग) विषम मात्रिक छन्द।

(1) वर्णिक छन्द

वर्णिक छन्द उन छन्दों को कहा जाता है जिनमें वर्णों की संख्या निर्धारित होती है और गणों के आधार पर जिनके लक्षणों को पुष्ट किया जाता है तथा यति स्थान निर्धारित रहता है। मल्लिका, मन्दाक्रान्ता, वंशस्थ आदि वर्णिक छन्द हैं। उदाहरण–

पीछे बातें विविध करती, काँपती, कष्ट पाती।
ऽ ऽ ऽ, ऽ ।।, । ।।, ऽ ऽ।, ऽ ऽ ।, ऽ ऽ
म भ न त त गुरु

कुल– 17 वर्ण हैं।

उपर्युक्त पंक्ति में मन्दाक्रांता छन्द है। लक्षणानुसार इसमें मगण, भगण, नगण, तगण, तगण और दो गुरु के क्रम से 17 वर्ण होते हैं तथा चौथे, फिर छठे और पदान्त में अर्थात सातवें वर्ण पर यति होती है। उपर्युक्त पंक्ति में इसी क्रम से गणों की स्थापना की गई है तथा तें, ती, तथा ती वर्णों पर यति है जो पंक्ति में क्रमशः चौथे, छठे और सातवें वर्ण हैं। इसके चारों चरण बराबर हैं।

(क) **समवर्णिक छन्द–** जिस वर्णिक छन्द में चारों चरणों में समान वर्णों और समान क्रम से गणों की स्थापना की जाती है वहां समवर्णिक छन्द होता है अर्थात इस प्रकार के छन्दों में पद्य के चारों चरण समान लक्षण वाले होते हैं; जैसे–

मुख - मलीन किये दुख में पगे।
। । । ऽ। । ऽ । । ऽ । ऽ
न भ भ र

कुल 12 वर्ण, चार गण हैं।

अमित मानव गोकुल ग्राम के।।
। । । ऽ।। ऽ । । ऽ । ।
न भ भ र

कुल 12 वर्ण, चार गण हैं।

सब सदार स बालक-बालिका।
। । । ऽ।। ऽ । । ऽ । ऽ
न भ भ र

कुल 12 वर्ण, चार गण हैं।

व्यथित से निकले निज सद्म से।
। । । ऽ । । ऽ । । ऽ । ऽ
न भ भ र

टिप्पणी

कुल 12 वर्ण, चार गण हैं।

उपर्युक्त पद्य के चारों चरणों में बारह-बारह वर्ण हैं। प्रत्येक चरण में क्रमशः नगण, भगण, भगण और रगण गणों की योजना की गई है। छन्द के लक्षण के अनुसार यहां पर समवर्णिक द्रुतविलम्बित छन्द है।

(ख) **अर्धसम वर्णिक छन्द–** इस छन्द में प्रथम और तृतीय चरण तथा द्वितीय और चतुर्थ चरणों में समान वर्णों एवं समान गणानुक्रम की योजना की जाती है अर्थात जिस छन्द में पहले और तीसरे चरणों को समान रखा गया हो किंतु तीसरे और चौथे चरणों में परस्पर समानता रखते हुए उन्हें प्रथम और तृतीय चरण से भिन्न रखा गया हो वहां पर अर्धसम वर्णिक छन्द होता है। इस प्रकार के छन्दों में न तो पूर्णतया समानता होती है और न ही पूर्णतया असमानता। अतः इन्हें अर्धसम वर्णिक छन्द कहते हैं। 'अर्धसम' इसलिए कहते हैं कि विषमता की तुलना में समता का पलड़ा भारी रहता है। उदाहरण–

सुन्दर कारण जीवन का है।
भ ।ऽ।। भ ऽ।। भ ऽ।। ऽ ऽ

11 वर्ण, तीन गण, दो गुरु।

अब अकुला कर मौन हुआ था
। । । । ऽ । । ऽ । । ऽ ऽ
न ज ज य

12 वर्ण, चार गण।

साम्यरसा धरती पर बैठा
ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ ऽ
भ म य गु

11 वर्ण, तीन गण, दो गुरु।

मनस नदी पर द्वीप हुआ था।
। । । । ऽ । । ऽ । ऽ । ऽ
ज ज ज य

12 वर्ण, चार गण।

उपर्युक्त पंक्तियों में पहली और तीसरी पंक्तियों में ग्यारह-ग्यारह वर्ण हैं और क्रमशः तीन भगण दो गुरु हैं जबकि दूसरी और चौथी पंक्तियों में बारह-बारह वर्ण हैं और क्रमशः नगण, जगण और यगण चार गणों की योजना है। इस प्रकार प्रथम एवं तृतीय तथा द्वितीय एवं चतुर्थ चरणों में समानता के कारण, यहां पर अर्धसम वर्णिक छन्द है। अतः यहां पर द्रुतमध्या नाम का अर्धसम वर्णिक छन्द है।

(ग) **विषम वर्णिक छन्द–** जहां पर 'छन्द' या पद्य के चारों चरणों में वर्णों एवं गणों के क्रम की समानता न हो वहां पर विषम वर्णिक छन्द होता है। कभी-कभी

कोई दो चरण तो समान होते हैं और शेष दो चरण असमान होते हैं तब भी वहां पर विषम वर्णिक छन्द ही होगा क्योंकि इसमें भी चरणों का असम वर्ग अर्थात तीन वर्ग हो जाते हैं, उदाहरण–

हरिणाक्षिणी शशिमुखी तु शिखिर दशना प्रियम्वदा
I I S I S I I I S I I I I S I S I S I S
स ज स ल न स ज गु

भिर्र कटि सुगमना मधुरा कुल कामिनी कसक दायिनी बनी
S I I I I I I S I I S I I I I S I I I S I S I S
भ न ज लगु स ज स ज गु

उपर्युक्त पद्य के पहले चरण में दस वर्ण हैं और क्रमशः सगण, जगण, सगण तथा एक लघु की व्यवस्था है। दूसरे चरण में भी वर्ण तो दस ही हैं किंतु गणों की व्यवस्था भिन्न है, जैसे- नगण, सगण, जगण और गुरु। तीसरे चरण में ग्यारह वर्ण हैं और क्रमशः भजन, नगण, जगण तथा एक लघु और एक गुरु का विन्यास है। चतुर्थ चरण में तेरह वर्ण हैं और क्रमशः सगण, जगण, सगण, जगण और एक गुरु का नियोजन है। चारों चरणों की भिन्न-भिन्न रूप से स्थापना होने के कारण यह विषम वर्णिक छन्द है और इसमें 'उद्‌गता' विषम वर्णिक छन्द के लक्षण होने के कारण उद्‌गता छन्द है।

(2) मात्रिक छन्द

जहां पर छन्द का नियोजन वर्ण या गणों के आधार पर न कर मात्राओं के आधार पर किया जाता है, वहां पर मात्रिक छन्द होता है। इसमें गुरु की दो मात्राएं एवं लघु की एक मात्रा परिगणित की जाती है। वर्णों के गुरु-लघु रूपों का विवेचन पहले ही किया जा चुका है। वर्णिक छन्दों की तरह ही इसके भी तीन वर्ग किए जाते हैं– (क) सममात्रिक छन्द, (ख) अर्धसम मात्रिक छन्द और (ग) विषम मात्रिक छन्द।

(क) **सममात्रिक छन्द–** सममात्रिक छन्द वे होते हैं जिनके चारों चरणों में समान मात्राओं का विन्यास किया जाता है और संबद्ध मात्रिक छन्द के अन्य यति, गुरु, लघु, गण (यदि विधान हो) आदि के नियमों का चारों चरणों में समान रूप से पालन किया जाता है; यथा–

मरै बैल गरियार, मरै वह अडियल टट्‌टू
IS SI IISI IS II IIII SS = 24 मात्राएं

मरै करकसा नारि, मरै वह खसम निखट्‌टू
IS SIIS SI IS II III ISS = 24 मात्राएं

वामन सो मरि जाय, हाथ ले मदिरा प्यावै।
SII S II SI SI SIIS SS = 24 मात्राएं

पूत वही मर जाय, जो कुल में दाग लगावै।
SI IS II SI S II S IS ISS = 24 मात्राएं

टिप्पणी

उपर्युक्त पंक्तियों में प्रत्येक चरण में चौबीस-चौबीस मात्राएं हैं तथा प्रत्येक चरण में ग्यारह और तेरह मात्राओं पर यति है। अत: चारों चरणों में समान मात्राएं हैं तथा समान रूप से यति है। अत: यह सममात्रिक छन्द है। इसी प्रकार 'रोला' छन्द के लक्षण लक्षित होने से यहां पर रोला छन्द है।

(ख) **अर्धसम मात्रिक छन्द–** अर्धसम वर्णिक छन्द की तरह ही अर्धसम मात्रिक छन्द में भी पहले और तीसरे चरण से समान मात्राएं एवं यति का नियम होता है तथा द्वितीय एवं चतुर्थ चरणों में पहले और तीसरे चरण से भिन्न समान मात्राएं एवं यति स्थान होते हैं। दोहा, सोरठा आदि छन्द अर्धसम मात्रिक छन्द हैं; यथा–

मेरी भव बाधा हरौ।
ऽऽ ।। ऽऽ ।ऽ = 13 मात्राएं

राधा नागरि सोय।।
ऽऽ ऽ।। ऽ। = 11 मात्राएं

जा तन की झाँई परै।
ऽ ।। ऽ ऽऽ ।ऽ = 13 मात्राएं

श्याम हरित दुति होय।।
ऽ। ।।। ।। ऽ। = 11 मात्राएं

उपर्युक्त पंक्तियों में प्रथम एवं तृतीय चरणों में तेरह-तेरह मात्राएं हैं और अंत में लघु गुरु का क्रमश: नियोजन है। दो-दो चरणों की समानता के कारण अर्धसम मात्रिक छन्द है और ग्यारह एवं तेरह मात्राओं के कारण दोहा छन्द है।

(ग) **विषम मात्रिक छन्द–** जिस छन्द के चारों चरणों की कुल मात्राएं पृथक-पृथक हों तो वहां पर विषम मात्रिक छन्द होता है। कभी-कभी दो चरण समान मात्रिक भी हो जाते हैं या रखे जाते हैं। उदाहरण–

कैसा मादक क्षण था।
ऽऽ ऽ।। ।। ऽ =12 मात्राएं

जब तुम थी रंग अबीर उड़ाती।।
।। ।। ऽ ऽ। ।ऽ। ।ऽऽ = 18 मात्राएं

स्मृति उर में भर जाती।
।।।।।ऽ ।। ऽऽ=12 मात्राएं

जब ऊषा पतंग उड़ाती।।
।। ऽऽ ।ऽ। ।ऽऽ = 15 मात्राएं

उपर्युक्त पद्य के प्रथम चरण में बारह मात्राएं, द्वितीय चरण में अठारह मात्राएं, तृतीय चरण में बारह मात्राएं तथा चतुर्थ चरण में पंद्रह मात्राएं होने के कारण वहां विषम मात्रिक छन्द है। इसमें आर्या के लक्षण होने के कारण आर्या छन्द है।

उपरिकथित छन्द-भेदों के अतिरिक्त गाथा एवं दंडक नाम से छन्द के दो और भेद होते हैं–

गाथा

गाथा छन्द उसे कहते हैं जिसमें तीन या छह चरण होते हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक चरण की मात्रा, संख्या या वर्ण संख्या में समानता नहीं पायी जाती तथा जहां लघु-गुरु का क्रम भी विलक्षण होता है उसे गाथा छन्द कहते हैं। कुछ गाथाएं तो नौ-नौ चरणों की भी होती हैं। संस्कृत के आर्यादि छन्द गाथा के ही रूप हैं। पालि-प्राकृतादि भाषाओं में गाथा को ही काहा कहा जाता है।

दण्डक छन्द

वर्णिक छन्दों में एकाक्षरात्मक छन्द से लेकर छब्बीस अक्षरों तक के छन्द के नाम तो छन्दशास्त्रियों ने निर्धारित किए हैं किंतु छब्बीस से अधिक अक्षरों वाले छन्दों को उन्होंने दण्डक छन्द कहा है। उनके पृथक-पृथक 'चण्डवृष्टिप्रपात' आदि नाम भी रखे गए हैं किंतु इन्हें सामान्यतया दंडक नाम से ही अभिहित किया जाता है। उदाहरण–

पात भरी सहरी, सकल सुत बारे-बारे,
ऽ । ।ऽ ।।ऽ । ।। । ।ऽ ।ऽ ।ऽ
केवट की जाति, कछु वेद न पढ़ाइ हौ।
ऽ।। ऽ ऽ । ।। ऽ। । ।ऽ। ऽ = 31
मेरो परिवार सब याहि लागि राजा जू! हौ,
ऽऽ ।।ऽ। ।। ऽऽ ऽ। ऽऽ ऽ ऽ
दीन वित्त हीन, कैसे दूसरी गठाइहौ।।
ऽ। ऽ। ऽ । ऽऽ ऽ।ऽ ।ऽऽऽ = 31
गौतम की घरनी ज्यों तरनी तरैगी मेरी,
ऽ।। ऽ ।।। ऽ ।।ऽ ।ऽऽ ।ऽ
प्रभु सौ निषाद ह्वै के बाद न बढाइहौं।।
।। ऽ ।ऽ। ऽ ऽ ऽ। । ।ऽ।ऽ = 31
तुलसी के ईस राम, रावरे सो साची कहौं,
।।ऽ । ऽ। ऽ। ऽ।ऽ ऽ ऽऽ ।ऽ
बिना पग धोय नाथ, नाव न चढ़ाइहौं।।
।ऽ ।। ऽ। ऽ। ऽ। । ।ऽ।ऽ = 31

उपर्युक्त पद्य के प्रत्येक चरण में इकतीस वर्ण हैं तथा क्रमशः आठ, आठ, आठ और सात पर यति है। यह पद्य क्योंकि छब्बीस वर्णों से अधिक वर्णों से बना है अतः दंडक वर्ग का है और इकतीस वर्णों का तथा आठवें वर्णों पर एवं अंत में सातवें वर्ण पर यति होने से यह मन हरण कवित्त है।

टिप्पणी

शेष छन्दों के नाम-वर्ण संख्या के क्रम से-

1. उला
2. अत्युला
3. मध्या
4. प्रतिष्ठा
5. सुप्रतिष्ठा
6. गायत्री
7. उष्णिक
8. अनुष्टुप
9. बृहती
10. पंक्ति
11. त्रिष्टुप
12. जगती
13. अति जगती
14. शक्वरी
15. अति शक्वरी
16. अष्टि
17. अत्यष्टि
18. धृति
19. अतिधृति
20. कृति
21. प्रकृति
22. आकृति
23. विकृति
24. संकृति
25. अतिकृति
26. उत्कृति।

कविता में छन्द का स्थान

भावों को आच्छादित कर समष्टि स्वरूप में लाने के कारण छन्दों की कविता में योगदान अत्यंत अहम है। निम्नांकित मूलभूत उद्देश्यों की अभिपूर्ति के लिए कविता में छन्द आवश्यक होते हैं–

टिप्पणी

1. भावों की अभिव्यक्ति को स्पष्टता देने और तीव्रतर रूप में प्रस्तुत करने के लिए।
2. भावों में बिखराव में एकसूत्रता स्थापित करने के लिए।
3. कविता में सजीवता लाने के लिए।
4. कविता में रमणीयता और सौंदर्य की प्रतिष्ठा करने के लिए।
5. कविता को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए।
6. रस-निष्पत्ति के योगदान हेतु।
7. प्रेषणीयता लाने के लिए।
8. कवि के व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा के लिए।
9. उक्ति में पवित्रता की प्रतिष्ठा के लिए।

छन्दों का प्रयोग तथा छन्द शब्द की उत्पत्ति वैदिक साहित्य में ही हो गई थी। 'छन्द' शब्द 'छद्' धातु में 'असुन्' प्रत्यय लगाने से बना है। छद् धातु प्रसन्न करना, आच्छादित करना, बांधना आदि अर्थों का बोध कराती है। वैदिक ऋषियों ने प्राकृतिक प्रकोपों से त्राण के लिए मंत्रों की सृष्टि की थी। अत: उन्होंने प्रकृति से बचने के लिए मंत्रों से स्वयं को आच्छादित कर लिया था– संभवत: आरंभ में छन्द शब्द से यही अर्थ ग्रहण किया गया होगा।

'छन्दोग्योपनिषद्' में कहा गया है कि "मृत्यु के डर से देवताओं ने अपने को छन्दों से आच्छादित कर लिया।" साथ ही छन्दों की संगीत-ध्वनि तथा भाव आह्लादक होने से प्रसन्नता का अर्थ-बोध भी रहा होगा और वर्ण-मात्रा आदि का बंधन होने से उसके मूल अर्थ के साथ बंधन या बंध भी लगा है।

वैदिक छन्दों में गायत्री, अनुष्टुप, त्रिष्टुप, वृहती, पंक्ति, जगती जाति के अनेक छन्द पाए जाते हैं। वैदिक छन्दों में मात्रा-विचार नहीं था, केवल अक्षर-गणना तथा ध्वनि-साम्य का ध्यान रखा जाता था। किंतु वैदिक छन्दों में नियमों का अपवाद खूब पाया जाता है। छन्दों की गति स्वरों के आरोह-अवरोह पर आधारित थी। गीतात्मक स्वराघात का विधान भी था।

लौकिक (संस्कृत) छन्दों की शास्त्रीय मीमांसा पिंगल ऋषि ने ही सर्वप्रथम की थी। पिंगल ऋषि ने ही गण-शैली का आविष्कार किया था। संस्कृत-छन्दों का निर्माण इन्हीं गणों के आधार पर अतिशय नियमबद्ध रूप में हुआ। सुनिश्चित गतियों में छन्द ऐसा बंध गया कि भावी विकास की संभावनाएं रूढ़ हो गईं। संस्कृत के गण-क्रमबद्ध वर्ण-वृत्तों में सर्वाधिक नियमबद्धता और जटिलता है।

आगे चलकर प्राकृत-अपभ्रंश में स्थिति परिवर्तित हुई। प्राकृत-अपभ्रंश में मात्रिक छन्दों का विकास हुआ। अपभ्रंश में न केवल मात्रिक छन्दों का स्वतंत्र विकास हुआ,

टिप्पणी

अपितु कवियों ने मिश्र छन्दों का प्रयोग भी आरंभ किया। दो छन्दों को मिलाकर कविता रचने की प्रवृत्ति भी विकसित हुई– जैसे छः पदों के छप्पय, कुण्डलियां छन्द। अपभ्रंश साहित्य में संस्कृत के वर्ण-छन्दों का प्रयोग बहुत कम हुआ है। पढ़डिया और धन्ता के योग की छन्दशैली, जो दोहा-चौपाई शैली के रूप में हिंदी में विकसित हुई, अपभ्रंश साहित्य की ही देन है।

मध्ययुगीन हिंदी साहित्य को अपभ्रंश से ही छन्द परंपरा प्राप्त हुई। 'पृथ्वीराज-रासो' में लगभग 60 छन्दों का प्रयोग हुआ है जिनमें आधे से अधिक मात्रिक छन्द हैं। दोहा, चौपाई, सोरठा, रोला आदि छन्दों का हिंदी में खूब विकास हुआ। साथ ही हिंदी में कई नए छन्द प्रचलित हुए, जैसे- बरवै, गीत शैली आदि। हिंदी में लोकगीतों के आधार पर गीत शैली का प्रचलन एक अद्भुत घटना है। गीत हिंदी की सर्वलोकप्रिय शैली है।

लोकगीतों की लय पर ही हिंदी में कविता, सवैया आदि कुछ ऐसे वर्ण-छन्दों का विकास हुआ जिनमें गण-गणना के नियम शिथिल हो गए थे। सूफी काव्यों, रामचरितमानस, सूरसागर आदि में अपभ्रंश के कडवक का प्रयोग मिलता है। जायसी ने चौपाई कडवक में चौदह चरण रखे हैं और धन्तों के स्थान पर दोहों का प्रयोग किया है। मात्राओं के आधार पर जो गीत परंपरा सिद्ध साहित्य में प्रचलित हुई, उसका समुचित विकास हिंदी की बहुत बड़ी विशेषता है।

हिंदी में वर्ण-छन्द बहुत ही कम रह गए। 'मानस' में त्रोटक, भुजंगप्रयात आदि का कहीं-कहीं प्रयोग मिलता है। रीतिकाल में केशव ने प्रयोग के लिए कुछ वर्ण छन्द रचे हैं। कवित्त-सवैये का विकास भी हिंदी छन्द-शैली की अदभुत देन है। देव ने घनाक्षरी का नया प्रयोग किया। गीत, सवैया, कवित्त, घनाक्षरी, दोहा, चौपाई, कुण्डलिया, रोला, सोरठा, बरवै आदि छन्द प्राचीन हिंदी के लोकप्रिय छन्द हैं।

आधुनिक काल में हिंदी छन्द परंपरा ने नया मोड़ लिया। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रयास से हिंदी में संस्कृत वर्ण छन्दों का पुनः उद्धार हुआ। अयोध्यासिंह उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त, रूपनारायण पांडे, नाथूराम शर्मा, शंकर आदि अनेक कवियों ने संस्कृत के वर्ण-छन्दों की रचना की। किंतु संभवतः वर्ण छन्दों के कड़े-गण-क्रम का नियम हिंदी की आश्लिष्ट प्रकृति के प्रतिकूल था। इसी से इन छन्दों को लोकप्रियता प्राप्त न हो सकी।

इधर अंग्रेजी-बांग्ला आदि के प्रभाव से द्विवेदी जी ने हिंदी में भी भिन्न तुकांत, अतुकांत प्रवाहात्मक छन्द शैली पर जोर दिया। फलतः छन्दों के अतुकांत प्रयोग की खूब परंपरा चली। प्रसाद आदि कई कवियों ने मिश्र छन्दों का नया निर्माण किया। इसी बीच निराला ने अपने स्वच्छन्द या मुक्त छन्द का निर्माण किया जिसका स्वरूप पीछे बताया जा चुका है। निराला का छन्द फिर भी कुछ छन्द था, उसमें प्रवाह और लय का कुछ स्वतः आवर्त्तन था, क्योंकि वह घनाक्षरी पर आधारित था, बाद में जो केंचुआ, रबड़, कंगारू, स्वच्छन्द पंक्तियों की कविताएं रची जाने लगीं, उनमें तो सब नियम, बंध आदि ताक पर धरे रह गए।

आजकल के घर-घर बसने वाले कवि तो मनमाना पंक्ति-प्रयोग कर रहे हैं। न उन्हें संगीत से कुछ मतलब है, न लय ताल-गति से। कविता करना कितना आसान हो गया है। मनमाने ढंग से पंक्तियों को छोटा-बड़ा रख लिया जाता है। लय की उपेक्षा भला कविता को कब तक जीवित रखेगी? आज की नि:छन्द, नीरस, गद्यवत भाव-रसहीन कविता को देखकर बड़ा दुख होता है।

हिंदी में उर्दू की बहरों को भी मात्रिक छन्द-रूप में उतारा गया, जैसे अयोध्यासिंह उपाध्याय ने 'चोखे चौपदे' में। वर्तमान काल में अतुकांत, रन ऑन लाइन, सॉनेट, स्वच्छन्द छन्द आदि कुछ विदेशी प्रभाव से किए गए प्रयोगों के अतिरिक्त पूर्वकाल में हमारी छन्द शैली प्राय: विदेशी प्रभावों से मुक्त रही। हिंदी पिंगल की दृष्टि से विचार करने पर उर्दू के सभी छन्द मात्रिक प्रतीत होते हैं, क्योंकि उनमें एक गुरु के स्थान पर दो लघु आ सकते हैं। इसलिए उर्दू छन्दों का हिंदी में ध्वनि-साम्य हो सकता है। पारंपरिक काव्य सृजन विश्वासी कवि आधुनिकता पसंद कवियों से चाहते हैं कि वे कविता में लय की उपेक्षा न करें। कविता भी यदि गद्य बन गई- जैसा कि अब हो रहा है तो कविता कहां बचेगी? अत: भिन्न-भिन्न प्रयोग लय-बद्ध छन्दों के निर्माण में दिखाने चाहिए। हम अपनी छन्द परंपरा को भी मिट्टी में न मिलाएं तो अच्छा होगा। नियम बंधन जाने दीजिए, पर गुनगुनाकर तो देख लीजिए कि कविता में स्वर-लय भी कोई बनती है या नहीं।

विविध छन्दों के लक्षण और उदाहरण

(1) दोहा

दोहा अर्द्धसम मात्रा-छन्द है। दोहा छन्द के अनेक भेद हैं, उनमें प्रमुख वह दोहा होता है जिसके विषम चरणों अर्थात प्रथम व तृतीय चरण में क्रमश: तेरह-तेरह मात्राएं और सम चरणों अर्थात द्वितीय एवं चतुर्थ चरणों में ग्यारह-ग्यारह मात्राएं होती हैं। इसके विषम चरणों के प्रारंभ में जगण नहीं रहता तथा सम चरणों के अंत में गुरु और लघु का क्रम रहता है; यथा–

विषम चरण तेरह कला,
।।। ।।। ऽ।। ।ऽ

सम ग्यारह अनुमान।
।। ऽ।। ।।ऽ।

नहीं हो आदि जगण फिर,
।ऽ ऽ ऽ। ।।। ।।

दोहा छन्द सुमान।।
ऽऽ ऽ। ।ऽ।

उपर्युक्त पद्य में विषम चरणों में क्रमश: तेरह-तेरह मात्राएं और सम चरणों में ग्यारह-ग्यारह मात्राएं होने से, आदि में जगण के अभाव और अंत में गुरु-लघु का क्रम रहने के कारण यहां पर दोहा छन्द है।

(2) सोरठा

सोरठा भी दोहे की तरह अर्द्धसम मात्रा-छन्द है। यह छन्द दोहे का विलोम छन्द होता है। यह भी कुल 48 मात्राओं का छन्द है। मात्राओं का क्रम दोहे से उल्टा होता है, इसी से इसे दोहा का उल्टा कहा जाता है। दोहा उलट देने से सोरठा बन जाता है। इसमें पहली-तीसरी पंक्ति में ग्यारह-ग्यारह तथा दूसरी-चौथी में तेरह-तेरह मात्राएं होती हैं। इसकी पहली और तीसरी पंक्तियों के अंत में तुक-साम्य रहता है, दूसरी चौथी के अंत में तुक-साम्य जरूरी नहीं। उपर्युक्त दोहे छन्द की पंक्तियों को उलट कर रख दीजिए अर्थात दूसरी को पहली, पहली को दूसरी तथा चौथी को तीसरी और तीसरी को चौथी बना दीजिए, सोरठा छन्द बन जाएगा।

इसके विषम चरणों के अंत में गुरु-लघु का क्रम रहता है तथा सम चरणों के प्रारंभ में जगण नहीं रहता; यथा–

सम तेरह विषमेश, दोहा, उलटा सोरठा।
। । ऽ।। ।।ऽ। ऽऽ ।।ऽ ऽ।ऽ

राजस्थानी भाषा का यह प्रिय छन्द है। उदाहरण–

लिख कर लोहित लेख
। । ।। ऽ।। ऽ। = 11 मात्राएं

डूब गया है दिन अहा।
ऽ। ।ऽ ऽ ।। ।ऽ = 13 मात्राएं

व्योम-सिन्धु सखि देख,
ऽ। ऽ। ।। ऽ। = 11 मात्राएं

तारक-बुद्बुद् दे रहा।।
ऽ।। ऽऽ ऽ।ऽ = 13 मात्राएं

स्पष्ट है कि पहली-तीसरी पंक्ति में ग्यारह-ग्यारह मात्राएं हैं, दूसरी चौथी में तेरह-तेरह मात्राएं हैं। पहली के अंतिम 'लेख' और तीसरी के 'देख' में तुकसाम्य है।

(3) चौपाई

चौपाई-छन्द सम मात्रा छन्द है। जिस पद्य के प्रत्येक चरण में सोलह-सोलह मात्राएं हों, अंत में 'जगण', 'तगण' में से कोई गण न हो तथा चार चतुष्कलों की पूर्ण व्यवस्था हो वहां पर चौपाई छन्द होता है। अंत में दो गुरु हों तो इस छन्द में माधुर्य आ जाता है। कुछ विद्वान इसका कट्टरता से पालन करने की व्यवस्था करते हैं, क्योंकि उपर्युक्त नियम के अनुसार अंत में दो लघु भी हो सकते हैं किंतु दो गुरु हों तो उत्तम रहता है, यथा-

चार चतुष्कल अंगीकारा।
ऽ। । ऽ।। ऽऽ ऽऽ
1 2 3 4

टिप्पणी

अन्त जगण तगणा ना कारा।।
ऽ। । । । । । ऽ ऽ ऽ ऽ
1 2 3 4

अन्त गुरु दो उचित अधिकारी।
ऽ। । । ऽ । । । । । ऽ ऽ
1 2 3 4

प्रेम कथा शुभ बोलन हारी।।
ऽ। । ऽ । । ऽ । । ऽ ऽ
1 2 3 4

(4 + 4 + 4 + 4 = 16)

(4 + 4 + 4 + 4 = 16)

उपर्युक्त पद्य के चारों चरणों में चार चतुष्कलों के क्रम से सोलह-सोलह मात्राएं होने के कारण यहां पर चौपाई छन्द है।

(4) हरिगीतिका

हरिगीतिका छन्द सम मात्रा-छन्द है। जिस पद्य के प्रत्येक चरण में अट्ठाईस मात्राएं हों, जिन्हें पहले चार पंचकल फिर एक षट्कल और फिर एक गुरु में सजाया गया हो तथा अंत में रगण बनता हो तो वहां पर हरिगीतिका छन्द होता है। इसके प्रत्येक चरण में क्रमशः सोलहवीं और बारहवीं मात्रा पर यति होती है; यथा–

हरिगीतिका अठाईस कल
। । ऽ । ऽ । ऽ ऽ । । ।
पंचकल 1 2 3

यति सौलह रवि भावता।
। । ऽ । । । । ऽ । ऽ
4 षट्कल गुरु

अन्त रगण का योग कमनी-
ऽ । । । । ऽ ऽ । । । ऽ
पंचकल 1 2 3

य, कान्त कला कहावता।।
। ऽ । । ऽ । ऽ । ऽ
4 षट्कल गुरु

उपर्युक्त दोनों चरणों में अठाइस-अठाइस मात्राएं आई हैं तथा इनमें चार पंचकलों, एक षट्कल और अंत में गुरु का क्रम है। प्रत्येक चरण के अंत में रगण भी बनता है तथा क्रमशः सोलहवीं और बारहवीं मात्राओं पर यति है। अतः यहां पर हरिगीतिका छन्द है।

(5) रोला

'रोला' छन्द अत्यंत लोकप्रिय छन्द है। यह सम मात्रा-छन्द है। यह स्वतंत्र रूप में तो प्रयुक्त किया ही जाता है, छप्पय छन्द के पूर्वांग के रूप में भी आता है। रोला छन्द

टिप्पणी

के प्रत्येक चरण में चौबीस मात्राएं होती हैं। 'प्राकृत पैंगलम्' में गुरु लघु के क्रम के आधार पर इसके तेरह भेद बताए गए हैं। हिंदी में इसका अंत में दो गुरु वाला रूप ही अधिक प्रचलित है। वैसे अंत में दो लघु भी हो सकते हैं। हां! एक लघु नहीं होगा। गुरु एक हो सकता है। इसके प्रत्येक चरण में क्रमश: ग्यारहवीं और तेरहवीं मात्राओं पर यति होती है; यथा–

रोला की चौबीस, कला यति ग्यारह तेरह।
ऽऽ ऽ ऽऽ। ।ऽ ।। ऽ।। ऽ।।
दो लघु

उपर्युक्त पंक्ति में चौबीस मात्राएं हैं, ग्यारहवीं तथा तेरहवीं मात्रा पर यति है और अंत में दो लघु हैं। अत: यहां पर रोला छन्द है।

(6) बरवै

यह अर्धसम मात्रिक छन्द है। इसके विषम चरणों (पहले और तीसरे) में 12 और सम चरणों (दूसरे और चौथे) में 7 मात्राएं होती हैं। सम चरणों के अंत में जगण या तगण आने से मृदुलता में वृद्धि होती है। यति प्रत्येक चरण के अंत में होती है।

गोस्वामी तुलसीदास की प्रसिद्ध कृतियों में एक 'बरवै रामायण' बरवै छन्द में ही रची गई है। इसमें भगवान श्रीराम की कथा है।

चम्पक हरवा अंग मिलि, अधिक सुहाय।
जानि परै सिय हियरे, जब कुंभिलाय।।

मात्रा-विधान की स्थिति को इस उदाहरण से समझते हैं–

बाहर लैके दियवा, बारन जाय।
ऽ।। ऽऽ ।।ऽ ऽ।। ऽ।

(प्रथम चरण- 12 मात्राएं, द्वितीय चरण- 7 मात्राएं)

सासु ननद ढिग पहुंचत, देस बुझाय।
ऽ। ।।। ।। ।।।। ऽ। ।ऽ।

(तृतीय चरण- 12 मात्राएं, चतुर्थ चरण- 7 मात्राएं)

(7) कुण्डलिया

छ: चरणों वाले इस छन्द के प्रत्येक चरण में 24 मात्राएं होती हैं। दोहों के बीच एक रोला मिलाकर कुण्डलिया बनती है। जिस शब्द से कुण्डलिया का आरंभ होता है, समापन भी उसी शब्द से होता है।

कमरी थोरे दाम की बहुतै आवै काम
।।ऽ ऽऽ ।ऽ ऽ ।ऽऽ ऽऽ ऽ। = 24 मात्राएं
खासा मलमल वाफ्ता उनकर राखै मान
ऽऽ ।।।। ऽ।ऽ ।।।। ऽऽ ऽ। = 24 मात्राएं

टिप्पणी

बकुचा बांधे मोर राति को झारि बिछावै

। । ऽ ऽऽ ऽ। ऽ। ऽ ऽ। ।ऽऽ = 24 मात्राएं

सबै दिन राखै साथ बड़ी मर्यादा कमरी

।ऽ ।। ऽऽ ऽ। ।ऽ ।ऽऽ ।।ऽ = 24 मात्राएं

(प्रत्येक चरण में 24 मात्राएं हैं और जिस शब्द से आरंभ हुआ है, उसी शब्द से अंत भी हुआ है।)

(8) सवैया

बाईस से लेकर छब्बीस वर्णों तक के चरणों वाले समवर्ण-छन्द को सवैया कहते हैं। यद्यपि इसके अनेक रूप होते हैं जो लगभग 48 बताए जाते हैं। इनमें से कुछ सवैया छन्द इस प्रकार हैं–

(क) मदिरा

संस्कृत भाषा में जिसे मदिरा छन्द कहा जाता है हिंदी में उसे ही सवैया छन्द कहते हैं। अंतर केवल इतना है कि संस्कृत में चारों चरणों में 'तुक' मिलना (अन्त्यानुप्रास) आवश्यक नहीं है; जबकि हिंदी भाषा में तुकान्त या अन्त्यानुप्रास अनिवार्य है। इसका लक्षण इस प्रकार है– जिस पद्य के प्रत्येक चरण में बाईस वर्ण हों तथा उन्हें सात भगणों और एक गुरु से सजाया गया हो और क्रमशः दसवें और बारहवें वर्णों पर यति हो वहां पर मदिरा या सवैया छन्द होता है; यथा–

सा त भ का र ग का र इ का,
ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ
भ भ भ गु

तब प्यार भरी मदिरा छल की।
। । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ
भ भ भ भ गु

उपर्युक्त पंक्ति में सात भगण और एक गुरु के क्रम से बाईस वर्ण हैं और दसवें तथा बारहवें वर्ण पर क्रमशः यति होने के कारण यहां पर मदिरा छन्द है।

(ख) मत्तगयन्द

जिस पद्य के प्रत्येक चरण में सात भगण और अंत में दो गुरु हों। इसमें क्रमशः बारहवें और ग्यारहवें वर्णों पर यति होती है तथा कुल तेईस वर्ण हों वहां मत्तगयन्द छन्द होता है। कुछ विद्वान इसे मालती और कुछ इन्दव छन्द कहते हैं। हिंदी में इसे 'सवैया' का ही एक भेद माना जाता है; यथा-

सा त भ का र गुरु द्वय से यति
ऽ ऽ । ऽ। । ऽ।। ऽ। ।
भ भ भ भ

बारह ग्यारह मत्तगयन्दा।
ऽ।। ऽ।। ऽ।।ऽऽ
भ भ भ गु गु

उपर्युक्त पंक्ति में सात भगण और दो गुरुओं के क्रम से तेईस वर्ण आए हैं तथा क्रमशः बारहवें और ग्यारहवें वर्ण पर यति है। अतः यहां पर मत्तगयन्द (सवैया) छन्द है।

टिप्पणी

(ग) दुर्मिल

जिस पद्य के प्रत्येक चरण में चौबीस वर्ण हों तथा उनका आठ चरण में विन्यास किया गया हो तथा क्रमशः आठवें, छठे और दसवें वर्णों पर यति हो वहां पर दुर्मिल छन्द होता है। हिंदी भाषा में इसे ही दुर्मिल सवैया कहा जाता है; यथा-

यति आठ छहा दस, से शुभरा सगणा,
।।ऽ ।।ऽ ।।ऽ ।।ऽ ।।ऽ
स स स स स

आठ दुर्मिल गावत है।
।।ऽ ।।ऽ ।।ऽ
स स स

उपर्युक्त पंक्ति में आठ सगणों के क्रम से चौबीस वर्ण आए हैं तथा आठवें, छठे और दसवें वर्णों पर क्रमशः यति है। अतः यहां पर दुर्मिल सवैया है।

(घ) किरीट

जिस पद्य के प्रत्येक चरण में आठ भगणों के क्रम से चौबीस वर्ण स्थापित किए गए हों तथा क्रमशः बारहवें वर्ण पर यति हो वहां पर किरीट (सवैया) होता है, यथा-

आठ भकारान से सजता तब,

ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।।
भ भ भ भ

द्वादश की यति काम किरीट सु

ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।।

भ भ भ भ

उपर्युक्त पंक्ति में चौबीस वर्ण आठ भगणों के क्रम से आए हैं तथा क्रमशः बारहवें वर्णों पर यति है। अतः यहां पर किरीट (सवैया) छन्द है।

(ङ) गंगोदक

जिस पद्य के प्रत्येक चरण में आठ रगणों के क्रम से चौबीस वर्ण रखे जाते हैं और प्रत्येक बारहवें वर्ण पर यति होती है वहां पर गंगोदक (सवैया) छन्द होता है, यथा-

अष्टरा राशि गंगोद का ज्ञात है,
ऽ।ऽ ऽ।ऽ ऽ।ऽ ऽ।ऽ
र र र र

छन्द वेदी कड़ी गीत की पूछते।
ऽ।ऽ ऽ।ऽ ऽ।ऽ ऽ।ऽ
र र र र

उपर्युक्त पंक्ति में चौबीस वर्ण और आठ रगण हैं तथा प्रत्येक बारहवें वर्ण पर यति है। अतः यहां पर गंगोदक सवैया है।

टिप्पणी

(च) सुंदरी

जिस पद्य के प्रत्येक चरण में पच्चीस वर्ण हों, उसमें आठ सगणों के पश्चात एक गुरु हो तथा क्रमशः बारहवें और तेहरवें वर्णों पर यति हो वहां पर सुंदरी (सवैया) छन्द होता है, यथा–

सगणा घर आठ सजा गुरु को दस-दो
। । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ
स स स स स

यति सुंदर-नारि सजाई।
। । ऽ । । ऽ । । ऽ ऽ
स स स गु

उपर्युक्त पंक्ति में क्रमशः आठ सगण और एक गुरु आया है। इसमें पच्चीस वर्ण हैं तथा क्रमशः बारहवें और तेरहवें वर्णों पर यति है। अतः यहां पर 'सुंदरी' सवैया छन्द है।

(9) इन्द्रवज्रा छन्द

यह समवर्ण छन्द है। इस छन्द में कुल ग्यारह वर्ण होते हैं अर्थात इसके प्रत्येक चरण में आगत ग्यारह वर्णों को क्रमशः तगण, तगण, जगण और दो गुरुओं में विन्यस्त किया जाता है; यथा–

हो इन्द्रवज्रा त त जा ग गा से।
ऽ ऽ।ऽ ऽ । । ऽ । ऽ ऽ
त त ज गु गु

उदाहरण–

तू मंगला मंगल कारिणी है।
सद्भक्त के धाम विहारिणी है।।
माता! सदा पूर्ण पिता समेता।
कीजै हमारे चित में निकेता।।

इस प्रकार चारों पंक्तियों में ग्यारह-ग्यारह वर्ण हैं। इसमें क्रमशः तगण, तगण, जगण और दो गुरु अनुस्यूत हैं तथा पादान्त में यति है। अतः यहां पर इन्द्रवज्रा छन्द है।

(10) मन्दाक्रान्ता

यह समवर्ण छन्द है। इस छन्द के प्रत्येक चरण में सत्तरह वर्ण होते हैं और उन्हें मगण, भगण, नगण, तगण और दो गुरुओं के क्रम में अनुस्यूत किया जाता है। इसके चौथे, छठे और सातवें वर्णों पर यति होती है; यथा–

मन्दाक्रान्ता, म भ न त त गा, गा क हें छन्द वे दी।

S S S	S । ।	। । ।	S S ।	S S ।	S S
म	भ	न	त	त	गु गु

टिप्पणी

उदाहरण–

जो मैं कोई, विहग उड़ता देखती व्योम में हूँ,
तो उत्कण्ठा बरा विवश हो चित्त में सोचती हूँ।
होते मेरे निर्बल तन में, पक्ष जो पक्षियों से,
तो यों ही मैं समुद उड़ती श्याम के पास जाती।।

उपर्युक्त पंक्तियों में मगण, भगण, नगण, तगण और दो गुरु के क्रम से सत्तरह वर्णो का प्रयोग किया गया है तथा इसके चौथे, छठे और सातवें वर्णों के पश्चात यति है; अतः यहां पर मन्दाक्रान्ता छन्द है।

(11) द्रुतविलम्बित या सुन्दरी

यह समवर्ण छन्द है। कवियों का यह अत्यंत प्रिय छन्द है। इसके प्रत्येक चरण में बारह वर्ण होते हैं जिन्हें क्रमशः नगण, भगण, भगण और रगण में ग्रथित किया जाता है। इसके पादान्त में यति होती है। कुछ आचार्य इसे सुन्दरी छन्द भी कहते हैं; यथा–

द्रुतविलम्बित माँहि न भा भ रा।

।।।	S ।।	S । ।	S । S
न	भ	भ	र

उदाहरण–

दिवस का अवसान समीप था।
गगन था कुछ लोहित हो चला।।
तरुशिखा पर थी अब राजती।
कमलिनी कुल वल्लभ की प्रभा।

उपर्युक्त पंक्तियों में बारह वर्ण हैं जिन्हें क्रमशः नगण, भगण, भगण और रगण में निबद्ध किया गया है। इसके अंत में यति है। अतः यहां पर द्रुतविलम्बित छन्द है।

(12) शार्दूलविक्रीडित छन्द

यह समवर्ण छन्द है। जिस पद्य के प्रत्येक चरण में उन्नीस वर्ण हों और उन्हें मगण, सगण, जगण, सगण, तगण, तगण और एक गुरु के क्रम से सजाया हो तथा क्रमशः बारहवें और सातवें वर्णों पर यति हो वहां पर 'शार्दूलविक्रीडित' छन्द होता है।

उदाहरण

आ बैठी उर मोहजन्य जड़ता विद्या विदा हो गई?
पाई कायरता मलीन मन कोहा। वीरता खो गई।
जागी दीन दशा दरिद्र पन की श्री सम्पदा सो गई,
माया शंकर की हंसाय हमको रुद्रा ठानी रो गई।।

उपर्युक्त पंक्तियों में मगण, सगण, जगण, सगण दो तगण और एक गुरु के क्रम से उन्नीस वर्ण आए हैं और क्रमशः बारहवें और सातवें वर्ण पर यति है। अतः यहां पर 'शार्दूलविक्रीडित' छन्द है।

रसानुकूलता-प्रतिकूलता सूचक छन्द-सारिणी

सं.	रस	अनुकूल छंद	प्रतिकूल छंद
1.	शृंगार	शार्दूल विक्रीडित, बसन्तलतिका, पृथ्वी, हरिणी, शिखरिणी, मन्दाक्रान्ता, मालिनी, स्रग्धरा, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, रथोहता, द्रुतविलम्बित	पथ्या
2.	हास्य	रोधक, तोटक, भुजंगप्रयात	पृथ्वी
3.	करुण	मालिनी, द्रुतविलम्बित, मन्दाक्रान्ता, पुष्पिताग्रा	दोधक
4.	रौद्र	शार्दूल विक्रीडित, हरिणी, स्रग्धरा, रथोहता, अनुष्टुम	शिखरिणी
5.	वीर	शार्दूल विक्रीडित, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, वंशस्थ तथा शिखरिणी	प्रशर्षिणी
6.	भयानक	शार्दूल विक्रीडित, स्रग्धरा, पथ्या	मालिनी
7.	वीभत्स	शार्दूल विक्रीडित, स्रग्धरा, वंशस्थ, रथोहता	मन्दाक्रान्ता
8.	अद्भुत	शार्दूल विक्रीडित, नन्दिनी, कुसुमविचित्रा, शालिनी, बसन्तलतिका, इन्द्रव्रजा	शिखरिणी
9.	शान्त	शार्दूल विक्रीडित, शिखरिणी, मन्दाक्रान्ता	कुसुमविचित्रा

- **अलंकार**

काव्य शरीर, उसके नित्यधर्म तथा बहिरंग उपकारक का विचार करते हुए अलंकारों का स्थान निर्धारण किया जाता है। अलंकारों की योजना का वास्तविक कारण मन का ओज है। अलंकार कविता-कामिनी के सौंदर्य को बढ़ाने वाले तत्व होते हैं।

'अलंकार' का सामान्य अर्थ है—गहना या आभूषण जो देह की शोभा बढ़ाते हैं। काव्य के संदर्भ में भी इसे शोभा बढ़ाने वाले धर्म और तत्व के रूप में लिया जाता है। बाह्य तत्व के रूप में काव्य को अलंकृत करने वाले शब्दालंकार तथा धर्म के रूप में शब्द की आत्मा में धारित यानी अर्थ को अलंकृत करने वाले अर्थालंकार। काव्य की आत्मा 'रस' है या अन्य कोई लक्षण इस तर्क-वितर्क के आरंभिक दौर में सर्वप्रथम अलंकार सिद्धांत का जन्म हुआ। काव्य की आत्मा अलंकार है ऐसा मत इस सिद्धांत के अंतर्गत स्थिर हुआ। आचार्य भामह इस संप्रदाय के प्रवर्तक हैं। आचार्य रुद्रट एवं जयदेव ने इस सिद्धांत को प्रतिष्ठा प्रदान की।

'अलंकार' शब्द की व्युत्पत्ति दो प्रकार से की जाती है—(1) अलंक्रियते अनेन इति अलंकारः और (2) अलंकरोति इति अलंकारः। पहली व्याख्या के अनुसार अलंकार की प्रतिष्ठा एक उपादान या 'करण' के रूप में सिद्ध होती है और यह काव्य के मूल से उसका पार्थक्य बताती है।

दूसरी व्युत्पत्ति के अनुसार अलंकार काव्य का वह तत्व है जो उसे (काव्य को) सुंदर बनाता है। अर्थात काव्य का ही एक अंग है जो उसका सौंदर्याधायक तत्व है। अलंकारवादियों ने इन दोनों ही व्युत्पत्तियों को आधार मानकर यथा स्थान और यथा आवश्यकता अलंकार की व्याख्या और उसकी महत्ता का दिग्दर्शन कराया है।

अलंकार सिद्धांत का काव्यशास्त्र में काव्य लक्षण के रूप में विशेष महत्व है। यह सत्य है कि यह काव्यात्मा नहीं हो सकता, साध्य नहीं हो सकता। यह साधन मात्र है किंतु रस का सहयोगी हो सकता है। काव्य के लिए किसी आचार्य ने काव्य पुरुष कहा, किसी ने कविता कामिनी...। काव्य पुरुष हो या कविता कामिनी दोनों ही दृष्टियों से उनके लिए आत्मा रस है और अलंकार उनके शोभाधायक धर्म हैं।

काव्य की शोभा बढ़ाने के लिए अलंकार का उपयोग किया जाता है। यह उपयोगिता तो सिद्ध है ही इसके अतिरिक्त अलंकार काव्य का ऐसा लक्षण है जो इसे वक्रोक्ति और ध्वनि से भी जोड़ता है। रस तो काव्य की आत्मा है ही, औचित्य आत्मा की भी आत्मा है। जहां तक वक्रोक्ति का प्रश्न है वह भी अलंकार है। यह शब्दालंकार तथा अर्थालंकार दोनों में सम्मिलित है। वक्रोक्ति यानी व्यंग्यार्थ व्यंजना जोकि उत्तम ध्वनि है। इससे निर्मित काव्य उत्तम काव्य की श्रेणी में आता है। अत: अलंकार सिद्धांत की उपयोगिता वक्रोक्ति एवं ध्वनि सिद्धांत को जानने के साथ-साथ पूरे काव्यशास्त्र की महिमा को जानने के लिए भी है।

अलंकार के भेद असंख्य हैं क्योंकि यह अंतर्बाह्य की शोभा को बढ़ाने वाला लक्षण है। शब्द की, अर्थ की, भाव की शोभा बढ़ाते हुए यह भेदोपभेद होते जाना स्वाभाविक है। काव्यशास्त्रीय जगत में अलंकार सिद्धांत वस्तुत: स्वयं भी अलंकार ही है।

अलंकारों का काव्य में स्थान

अलंकारवादियों ने अलंकार को काव्य की आत्मा स्वीकार करते हुए अलंकार रहित रचना को काव्य मानने से इनकार किया है। ऐसी घोषणा सर्वप्रथम भामह ने की। उनके अनुसार नारी का मुख सुंदर होते हुए भी आभूषणों के बिना शोभा नहीं देता–

'न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनिता मुखम्।'

अलंकारवादियों ने 'शोभा' शब्द का प्रयोग काव्य के मुख सौंदर्य के अर्थ में या फिर उसकी आत्मा के अर्थ में किया है। भामह की उक्त पंक्ति से स्वत: सिद्ध होता है कि 'भामह' की दृष्टि में वनिता के स्वाभाविक सौंदर्य का अलंकारों के बिना कोई मूल्य नहीं है। भामह कथन के दो रूप मानकर चलते हैं–(1) कथन का प्रकृत रूप अर्थात अनलंकृत रूप और (2) रमणीय अर्थात अलंकृत रूप।

इनमें प्रथम अकाव्य या वार्ता है तथा दूसरा अपने समग्र रूप में काव्य है और यही अलंकार है। वस्तुत: भामह ने अलंकार और अलंकार्य में भेद नहीं किया, क्योंकि उनकी दृष्टि में समग्र काव्य ही अलंकार है। अत: उससे भिन्न किसी अन्य तत्व की कल्पना उनकी सीमा से बाहर की वस्तु थी। अलंकार और अलंकार्य की धारणा का आरंभ ध्वनिवादियों ने किया था। कुंतक की दृष्टि भी इस तथ्य की ओर गई थी किंतु उन्होंने

इसे केवल प्रतिपादन का माध्यम मात्र स्वीकार किया, क्योंकि उनकी दृष्टि में 'शब्द' 'अर्थ और अलंकार' की समष्टि का नाम काव्य है। इन्हें एक-दूसरे से पृथक करके नहीं देखा जा सकता। भामह ने अलंकार के मूल में अतिशयोक्ति या वक्रोक्ति को माना है। उक्ति की अतिशयता या चमत्कार ही अलंकार है और वक्रोक्ति तथा अतिशयोक्ति में कोई अंतर नहीं है। दोनों का अर्थ ही 'विशिष्ट उक्ति' है। अंत में भामह अपने मंतव्य को पूर्णत: स्पष्ट कर देते हैं, जब यह कह देते हैं कि 'कोऽलंकारोऽनया विना' अर्थात वक्रोक्ति के अभाव में किसी भी अलंकार की कल्पना नहीं कर सकते। वक्रोक्ति के द्वारा ही अर्थ का विभावन होता है अर्थात अर्थ में वैचित्र्य आ जाता है। भामह ने अतिशयोक्ति को 'लोकातिक्रांतगोचरा' अर्थात शब्दार्थ के इतिवृत्त कथन से भिन्न चमत्कारपूर्ण प्रयोग कहा है और उसे ही फिर वक्रोक्ति कह दिया है–'सैषा सर्वत्र वक्रोक्ति:' इससे स्पष्ट है कि 'वक्रोक्ति और अतिशयोक्ति' दोनों ही 'लोकातिक्रांत गोचरा' अर्थात लोककथन से भिन्न विशिष्ट अर्थ का द्योतन कराने वाला कथन वक्रोक्ति है।

भामह ने अन्य का संकेत देते हुए 'स्वभावोक्ति' को भी एक अलंकार के रूप में अपनी स्वीकृति दी है, क्योंकि इन्होंने उक्त अलंकार का लक्षण भी दिया है और उदाहरण भी। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भामह इसे एक अलंकार के रूप में स्वीकार करते हैं।

सर्वप्रथम अलंकारों का क्रमबद्ध वैज्ञानिक विवेचन 'काव्यालंकार' में भामह ने किया। भामह ने अपने पूर्ववर्ती 'मेधाविन' का उल्लेख किया है जिससे यह पता चलता है कि अलंकार परंपरा पहले से चली आ रही है। लेकिन 'मेधाविन' या किसी भी रचनाकार का अलंकार संबंधी कोई ग्रंथ उपलब्ध न होने के कारण 'काव्यालंकार' को ही अलंकार संप्रदाय का प्रथम प्रामाणिक, उपयोगी और महत्वपूर्ण ग्रंथ माना जाता है। भरत ने इससे पूर्व 'नाट्यशास्त्र' में अलंकारों का वर्णन करते हुए उपमा, रूपक, दीपक और यमक चार अलंकारों को मान्यता दी थी। 'उपमा दीपकं चैव रूपकं यमकं तथा। काव्यस्यैते अलंकाराश्चत्वार: परिकीर्तिता:।' बाद में लगभग सभी आचार्यों ने अलंकारों की सत्ता को स्वीकार किया। किसी ने अलंकारों को काव्य का मुख्य तत्व माना तो कुछ ने काव्य में अलंकारों का महत्व है ऐसा स्वीकार किया। भामह कहते हैं, काव्य की आत्मा अलंकार है। रस आदि का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है बल्कि वे अलंकारों में ही उनका अंतर्भाव स्वीकार करते हैं। 'वक्राभिधेयशब्दोक्ति- रिष्टावाचामलंकृति:' अर्थात वे शब्द और अर्थ के वैचित्र्य को अलंकार की संज्ञा देते हैं। यह विचित्रता वक्रोक्ति में भी पाई जाती है अत: कहा जा सकता है कि अलंकार काव्य की आत्मा है और अलंकारों में वक्रोक्ति का स्थान मुख्य है। वक्रोक्ति अलंकारों को जीवन देने वाला तत्व है। भामह की दृष्टि में वक्रोक्ति से रहित कोई अलंकार नहीं होता। भामह कहते हैं–

'सैषा सर्वत्र वक्रोक्तिरनयार्थो विभाव्यते। यत्नोऽस्यांकविना कार्य: कोऽलंकारोऽनया विना।'

रुद्रट वक्रोक्ति को शब्दालंकार और वामन अर्थालंकार मानते हैं क्योंकि इसमें शब्द और अर्थ दोनों की विचित्रता होती है। भामह के बाद दंडी का मत महत्वपूर्ण है।

वे काव्य के सौंदर्य को बढ़ाने वाले धर्मों को अलंकार मानते हैं–'काव्यशोभाकरान् धर्मानलंकारान् प्रचक्षते।'

टिप्पणी

अलंकार को काव्य का नित्यधर्म मानते हुए उन्होंने अतिशयोक्ति को अलंकारों का सर्वस्व बताया–

'अलंकारान्तराणामप्येकमाहुः परायणम्।
वागीशमहितामुक्तिमिमामतिशयाह्वयाम्।।

दंडी ने काव्य के परिप्रेक्ष्य में अलंकारों को स्पष्ट किया है जबकि भामह ने सिद्ध किया कि–"काव्य एक स्वतंत्र एवं अपने में पूर्ण इकाई है।" फलतः दंडी ने काव्य-सौंदर्य के सभी तत्वों को अलंकार के अंतर्गत समाहित करने का प्रयास किया है। आपके अनुसार काव्य का विषयगत सौंदर्य सामान्य अलंकार का अंग है तो शैलीगत सौंदर्य विशेष अलंकार में समाहित हो जाता है। दंडी ने रसों को भी रसवत् अलंकारों के अंतर्गत सन्निविष्ट कर अलंकार्य और अलंकार की अभिन्नता की घोषणा कर दी। उधर दूसरी ओर दंडी वक्रोक्ति और स्वभावोक्ति में अंतर मान कर चलते हैं किंतु भामह जहां स्वभावोक्ति को अलंकार मानकर उसे वक्रोक्ति के अंतर्गत परिगणित कर लेते हैं, वहां दंडी इसे इससे भिन्न रूप में स्वीकार करते हैं। उन्होंने समस्त वाङ्मय को दो वर्गों–स्वभावोक्ति और वक्रोक्ति में विभाजित कर स्वभावोक्ति का शास्त्रादि में साम्राज्य बताया है तथा वक्रोक्ति को इससे भिन्न चमत्कारपूर्ण उक्ति का पर्याय कहा है। आपका कथन इस प्रकार है–

आगे चलकर दंडी स्पष्ट कर देते हैं कि 'शास्त्रेष्वस्यैव साम्राज्यम्'। काव्यादर्श की हृदयंगमा टीका में स्पष्ट करते हुए टीकाकार लिखते हैं कि 'वक्रोक्ति शब्देन उपमादयः संकीर्णपर्यन्ता अलंकारा उच्यन्ते।' दंडी ने वक्रोक्ति के मूल में चमत्कार के लिए किसी-किसी रूप में 'श्लेष' का योग माना है–'श्लेषो सर्वासु पुष्णाति प्रायः वक्रोक्तिषु श्रियम्'। यहां पर वे चमत्कार का श्रेय अकेली वक्रोक्ति को न देकर 'श्लेष' को भी महत्व प्रदान करते हुए दिखाई देते हैं। दूसरी ओर भामह की तुलना में दंडी स्वभावोक्ति को अलंकार मानते हैं किंतु उसे वक्रोक्ति से भिन्न आद्य अलंकार के रूप में स्वीकार कर उसे शास्त्रीय उक्तियों की प्रयोजक बताकर एक प्रकार से काव्य-जगत् से बहिष्कृत कर देते हैं और स्वभावोक्ति को अनिवार्य न मानकर वांछनीय ही मानते हैं।

वामन की भी गणना एक रूप से अलंकारवादियों में की जाती है। अंतर केवल इतना है कि जहां भामह और दंडी काव्य में अलंकार को कारक धर्म के रूप में स्वीकार करते हैं, वहां वामन अलंकार की शोभा को अतिशयता प्रदान करने वाले एक सहायक तत्व के रूप में प्रतिपादित करते हैं–काव्यशोभायाः कर्तारो धर्मा गुणाः तदतिशय-हेतवस्त्वलंकाराः। अर्थात काव्य का शोभाकारक धर्म गुण है और अलंकार उन्हें अतिशयता प्रदान करते हैं। किंतु एक अन्य स्थल पर वे अलंकार को सौंदर्य का पर्यायवाची बता देते हैं, यथा–सौंदर्यालंकारः। साथ ही यह भी कहते हैं कि 'काव्य अलंकार के कारण ही ग्राह्य होता है–'काव्यं ग्राह्यमलंकारात्'। ये दोनों उक्तियां यदि देखा जाए तो पूर्वोक्त कथन 'तदतिशयहेतवस्त्वलंकाराः' और 'रीतिरात्मा काव्यस्य' के विपरीत जान पड़ती हैं। आधुनिक

आलोचक तो सौंदर्य को ही काव्य का प्राण मानते हैं और स्वयं वामन भी यह मानते हैं कि काव्य अलंकार के कारण ही ग्राह्य होता है, तब रीति और गुण के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता है। वामन ने भी संभवत: अपने कथन के विरोधाभास को समझ लिया था। फलत: आगे के सूत्रों में उन्हें अपने कथन में सुधार करना पड़ा कि गुण काव्य का नित्य धर्म है और अलंकार अनित्य धर्म है। फलत: 'गुण' काव्य में सौंदर्य की सृष्टि कर सकता है किंतु अकेला अलंकार काव्य में सौंदर्य की सृष्टि नहीं कर सकता।

कुंतक के अनुसार, काव्य न तो अलंकार है न अलंकार्य, बल्कि दोनों का समन्वित रूप ही काव्य है अर्थात सालंकार काव्य का ही काव्यत्व है। इससे स्पष्ट है कि कुंतक काव्य में अलंकार के पक्षधर हैं किंतु वे अलंकार को काव्य का शोभाकारक धर्म नहीं मानते। कुंतक ने वक्रोक्ति और स्वभावोक्ति को पृथक-पृथक मानकर स्वभावोक्ति को अलंकार्य और वक्रोक्ति को अलंकार की संज्ञा से अभिहित किया है। कुंतक का कथन है कि स्वभावोक्ति का अर्थ होता है- स्वभाव ही उक्ति का विषय अथवा वर्ण्य विषय है। यदि वही अलंकार हो जाए तो कौन सी वस्तु रह जाएगी, जो अलंकार्य कहलाएगी अर्थात कुछ नहीं। स्वभाव कथन तो काव्य का शरीर है और यदि वही अलंकार हो जाए तो वह दूसरे को किसको अलंकृत करेगा? कहीं कोई स्वयं अपने कंधे पर भी चढ़ सकता है? इन सबको अधिक स्पष्ट करते हुए कुंतक एक स्थान पर लिखते हैं कि 'अन्य पर्याय शब्दों के रहते हुए भी विवक्षित अर्थ का बोधक केवल एक शब्द ही वस्तुत: शब्द है।' इसी प्रकार सहृदयों के हृदय को आनंदित करने वाला अपने स्वभाव से सुंदर अर्थ ही वास्तव में अर्थ है। ये दोनों (शब्द और अर्थ) ही अलंकार्य होते हैं। वैदग्ध्य-पूर्ण उक्ति रूप वक्रोक्ति ही उन दोनों का अलंकार है।

आचार्य उद्भट का नाम भी अलंकारवादी आचार्यों में आता है। इन्होंने भामह के काव्यालंकार की टीका की तथा 'काव्यालंकार सार संग्रह' ग्रंथ की रचना की। इन्होंने गुण और अलंकार को अभिन्न माना। उद्भट अलंकार को काव्य का अभिन्न अंग मानकर चलते हैं और उनकी दृष्टि कुंतक की तरह ही 'सालंकारं काव्यता' को ही मानकर चलती है। दूसरी ओर वे गुण और अलंकार को काव्य में चारुता का द्योतक मानते हैं। वक्रोक्ति को अलंकार के मूल में होने को अपनी स्वीकृति प्रदान कर देते हैं किंतु दूसरी ओर स्वभावोक्ति को भामह की तरह अकाव्य नहीं मानकर उसे एक अलंकार के रूप में मानते हैं किंतु दंडी की तुलना में वे इसके क्षेत्र को सीमित कर देते हैं। भोजराज ने 'अलंकारैरलंकृतम्' का भी प्रतिपादन किया–

निर्दोषं गुणवत्काव्यमलंकारैरलंकृतम्।
रसान्वितं कविः कुर्वन्कीर्तिंप्रीतिं च विन्दति।।

रुद्रट के अनुसार 'वास्तव' अलंकार है और 'वास्तव' अलंकार का यह लक्षण है– 'वास्तव' में वस्तु के स्वरूप का कथन होता है किंतु इसका पुष्टार्थ (रमणीयार्थ) वैपरीत्य, औपम्य, अतिशय तथा श्लेष आदि पर निर्भर नहीं रहता।' इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि रुद्रट 'वास्तव' अलंकार में अप्रस्तुत विधान को स्वीकार नहीं करते तथा

वस्तु के स्वरूप कथन में भी चमत्कार के अभिनिवेश को स्वीकार करते हैं। संभवत: वह वस्तु के प्राकृत सौंदर्य का वाचक है; जैसे–

टिप्पणी

वास्तवमिति तज्ज्ञेयं क्रियते वस्तु-स्वरूपकथनं यत्।
पुष्टार्थमविपरीतं निरुपममनतिशयम् अश्लेषम्।।

ऐसा प्रतीत होता है कि रुद्रट वस्तु के आकृतिगत प्राकृत सौंदर्य को अधिक महत्व देते हैं। महिम भट्ट के अनुसार चारुत्व ही अलंकार है। यह चारुत्व वैचित्र्य का ही पर्याय है। अत: शब्दार्थ की विच्छिति ही अलंकार है। यहां पर विचारणीय विषय दो हैं–(1) चारुत्व के बिना (वस्तु के अपकर्ष और उत्कर्ष) काव्य आस्वाद्य नहीं होता, किंतु (2) कवि अलंकार की सिद्धि के लिए नहीं अपितु रस या सौंदर्य सिद्धि के लिए काव्य रचना करता है।

अलंकार तो स्वत: ही सौंदर्य सिद्धि के लिए काव्य में प्रविष्ट हो जाते हैं, क्योंकि अलंकार रस के साथ बिना किसी प्रयत्न के ही सिद्ध हो जाते हैं। उपर्युक्त कथनों से यह स्पष्ट नहीं हो पाता कि महिम भट्ट की दृष्टि से काव्य में अलंकारों की क्या स्थिति है। वे काव्य के अंग हैं या अंगी हैं। इसके साथ-साथ महिम भट्ट ने स्वभावोक्ति को अलंकारत्व प्रदान करने में अलंकार और अलंकार्य के एकत्व को पुष्ट कर दिया है। इससे रस की स्थिति पुन: डावांडोल हो जाती है अथवा यूं कहें कि अलंकार्यत्व के लिए अवसर नहीं रह जाता क्योंकि वे विशिष्ट स्वरूप कथन को स्वभावोक्ति अलंकार मान लेते हैं।

जयदेव की दृष्टि में अलंकार से रहित उक्ति को काव्य मानना वैसा ही है जैसे अग्नि को उष्णता रहित मानना। ये पंक्तियां ही अलंकारों के प्रति जयदेव के अनुराग को स्पष्ट करने में पर्याप्त हैं। जयदेव की दृष्टि में अलंकारों के बिना काव्य का काव्यत्व ही दांव पर लग जाता है और उसके अस्तित्व के लिए खतरा उत्पन्न हो जाता है। मम्मट द्वारा प्रतिपादित काव्य लक्षण–'शब्दार्थावनलंकृती पुन: क्वापि'–का खंडन करते समय जयदेव ने कहा कि जो व्यक्ति अलंकार रहित काव्य को काव्य मानते हैं वे विद्वान अग्नि को भी उष्णता रहित क्यों नहीं मान लेते हैं। इससे स्पष्ट है कि न तो अग्नि उष्णता रहित हो सकती है और न ही काव्य अलंकार रहित हो सकता है–

अंगीकरोतिः यः काव्यं शब्दार्थावनलंकृती।
असौ न मन्यते कस्माद् अनुष्णमनलंकृती।।

जयदेव की दूसरी मौलिकता इस तथ्य में निहित है कि वे अतिशयोक्ति या वक्रोक्ति को काव्य का मूल स्वीकार नहीं करते। उनके अनुसार उपमादि अलंकारों में वक्रता की समानता रहते हुए भी प्रत्येक अलंकार में परस्पर अंतर रहता है, जिस प्रकार मुख के उपांगों में समानता रहते हुए भी प्रत्येक व्यक्ति के मुख में विलक्षणता रहती है।

अलंकारवादियों के अतिरिक्त ध्वनिवादी, वक्रोक्तिवादी रीतिवादी आचार्यों ने भी 'अलंकार' पर अपने विचार व्यक्त किए। किसी ने काव्य में इनके महत्व को स्वीकार

किया। किसी ने कहा कि काव्य में अलंकार हों तो ठीक है, न हों तो भी ठीक है। काव्य के काव्यत्व में कोई अंतर नहीं आएगा क्योंकि काव्य की आत्मा रस है या काव्य की आत्मा ध्वनि है आदि। कुछ ने ध्वनि, रस, रीति, गुण आदि को भी काव्य के लिए अलंकार माना। किसी ने अलंकारों को रस का सहायक माना, किसी ने रस का आश्रित माना। किसी ने इन्हें रस के उन्मीलक तत्व के रूप में स्वीकार किया तो किसी ने कहा कि ये काव्य की आकर्षण शक्ति बढ़ाते हैं। भावों के स्पष्टीकरण के लिए भी किसी ने इन्हें आवश्यक माना किंतु अंततः भाव ही रस है ऐसा मानते हुए बात अपनी जगह लौट आई। अपनी-अपनी मान्यताओं, विचारों, दृष्टिकोण के अनुरूप अलंकार सिद्धांत की प्रतिष्ठा बनी रही। यह प्रासंगिकता नई कविता तक निरंतर जारी है।

शब्दालंकार एवं अर्थालंकार

काव्यशास्त्र के क्षेत्र में अलंकारों का सर्वप्रथम विवेचन हमें भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में उपलब्ध होता है। भरत ने अपने ग्रंथ में 'उपमा, रूपक, दीपक एवं यमक' इन चार अलंकारों का उल्लेख किया है। उपमा के पांच भेदों का उल्लेख भी भरत ने किया है तथा 'अन्य भेद भी हो सकते हैं' का संकेत भी दिया है। 'यमक' के भी अनेक भेदों का उल्लेख मिलता है।

भरत के पश्चात भामह और दंडी ने अनेक अलंकारों को चिह्नित किया तथा उनके लक्षणों एवं उदाहरणों का विस्तार से विवेचन किया। इन्होंने अलंकारों की संख्या को चालीस तक पहुंचा दिया। इतना ही नहीं दंडी ने यमक के तीन सौ पंद्रह भेदों का भी उल्लेख किया है तथा उपमा के बत्तीस भेद बताए हैं। भामह की तुलना में दंडी ने अर्थालंकारों का विस्तार से विवेचन किया था। दोनों ही आचार्य अलंकार के दो भेद–(1) शब्दालंकार और (2) अर्थालंकार – प्रस्तुत कर चुके हैं। इनके पश्चात उद्भट ने सर्वप्रथम अलंकारों का वर्ग विभाजन किया। इन्होंने 'इकतालीस' अलंकारों का विवेचन किया है। रीतिवादी वामन ने केवल बत्तीस अलंकारों का विवेचन किया है।

अलंकारवादियों में सर्वप्रथम 'रुद्रट' ने अलंकारों का साधारण वर्गीकरण करने का प्रयास किया है। शब्दालंकार एवं अर्थालंकार। रुद्रट ने लगभग छियासठ अर्थालंकारों एवं पांच शब्दालंकारों का विवेचन अपने ग्रंथ में किया है। रुद्रट के पश्चात मम्मट के अलंकार विवेचन को काव्यशास्त्र में अत्यधिक महत्व दिया जाता है। इन्होंने छह शब्दालंकारों और इकसठ अर्थालंकारों का विवेचन किया है।

रुद्रट के अनुसार अलंकारों का वर्गीकरण इस प्रकार है–(1) शब्दालंकार, (2) अर्थालंकार।

(1) **शब्दालंकार**–शब्दालंकार वहां होते हैं, जहां कथन का चमत्कार उसमें प्रयुक्त शब्दों की आवृत्ति पर निर्भर करता है। यदि उक्ति में से संबद्ध शब्दों को हटाकर उनके पर्यायवाची शब्द उक्ति में रख दिए जाएं तो उक्ति का वह चमत्कार भी समाप्त हो जाता है। अतः शब्द पर ही आधारित होने के कारण

इन्हें शब्दालंकार कहा जाता है। इनमें प्रमुख अलंकार हैं–अनुप्रास, यमक, पुनरुक्तवदाभास, श्लेष, वक्रोक्ति आदि।

टिप्पणी

(2) **अर्थालंकार**–अर्थालंकार वहां होते हैं, जहां अलंकार का सौंदर्य शब्द पर निर्भर न कर उसके अर्थ पर निर्भर करता है। किसी शब्द के स्थान पर उसके पर्यायवाची शब्द का प्रयोग कर दिए जाने पर भी उसका अलंकारत्व यथावत् बना रहता है। अतः ऐसे अलंकारों को अर्थालंकार की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। इन अलंकारों को निम्नलिखित पांच वर्गों में विभाजित किया गया है–

- **सादृश्यमूलक अर्थालंकार**–इस वर्ग में वे अलंकार आते हैं जिनमें सादृश्य न होने पर प्रस्तुत और अप्रस्तुत के सादृश्य का निरूपण किया जाता है।
- **विरोधमूलक अर्थालंकार**–जहां प्रस्तुत और अप्रस्तुत में विरोध का चमत्कार पूर्ण कथन होता है वहां विरोधमूलक अलंकार होते हैं। इसमें विरोध कवि कल्पित होता है, वास्तविक विरोध नहीं होता। ऐसी उक्तियों में विरोध प्रतीत होते ही शांत हो जाता है और विरोध की शांति ही उक्ति का चमत्कार होता है। यह दृश्य ठीक इस प्रकार का होता है जैसे कि बादलों में क्षण भर को चमक कर बिजली छिप जाती है। जिस प्रकार बिजली की क्षणिक चमक दर्शकों को चमत्कृत कर देती है, उसी प्रकार अप्रस्तुत का क्षणिक विरोध काव्य रसिकों को चमत्कृत कर देता है।
- **शृंखलामूलक अर्थालंकार**–शृंखलामूलक अलंकारों की योजना वहां होती है, जहां प्रत्येक पद शृंखला की तरह परस्पर जुड़े रहते हैं। यह संबंध कभी कार्य-कारण भाव का होता है, कभी विशेषण-विशेष्य का तो कभी यह उत्कर्षापकर्ष भाव का होता है।
- **न्यायमूलक अर्थालंकार**–न्यायमूलक अलंकारों की अवस्थिति वहां पर होती है जहां पर उक्ति किसी लौकिक न्याय या वाक्य न्याय पर आधारित होती है। कहीं-कहीं तर्क के आधार पर न्याय का दिग्दर्शन कराया जाता है। काव्य लिंग, अलंकार इसी न्याय का प्रतिपादन करता है।

  कनक-कनक से सौ गुनी माद्कता अधिकाय
  इक खाए बौरात हैं इक पावत बौराय॥

  इस स्वर्ण में धतूरे से अधिक मादकता होती है। यहां प्रस्तुत अर्थ को तर्कन्याय से सिद्ध करने का प्रयास किया है कि उसके खाने से नशा आता है किंतु इसके पाने मात्र से नशा आ जाता है। इसी प्रकार अन्य न्यायों को भी समझना चाहिए।
- **गूढ़ार्थ प्रतीतिमूलक अर्थालंकार**–गूढ़ार्थ प्रतीतिमूलक अलंकार वहां होते हैं, जहां अप्रस्तुत विधान के कारण संपूर्ण उक्ति से किसी अन्य अर्थ की रमणीय व्यंजना होती है। जहां प्रस्तुत अर्थ का अन्य अर्थ में न्यास होता है

तथा व्यंग्यार्थ सदैव प्रतीयमान रहता है, वहां गूढ़ार्थ प्रतीतिमूलक अलंकार ही माना जाना चाहिए।

टिप्पणी

पंडितराज जगन्नाथ ने अर्थालंकार को तीन वर्गों में विभाजित कर सादृश्यमूलक अलंकारों को पुन: दो वर्गों में विभाजित किया है–(1) जहां पर सादृश्य स्पष्ट एवं स्फुट होता है वहां पर स्फुट सादृश्यमूलक अलंकार होता है, जैसे–उपमा, रूपकादि। (2) जहां पर सादृश्य अस्फुट रहता है वहां पर अस्फुट सादृश्य मूलक अलंकार होते हैं, जैसे–दीपक, तुल्य, योगिता आदि।

प्रमुख अलंकारों के लक्षण तथा उदाहरण

(1) अनुप्रास अलंकार

अनुप्रास का अर्थ होता है बारंबार निकट रखना अर्थात वर्णों का बार-बार प्रयोग। अलंकार रूप में अनुप्रास की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है कि वर्णों की रसानुकूल बार-बार आवृत्ति करना ही अनुप्रास अलंकार होता है। विश्वनाथ ने इसके पांच प्रमुख भेदों का उल्लेख किया है– (1) छेकानुप्रास, (2) वृत्यानुप्रास, (3) श्रुत्यानुप्रास, (4) अंत्यानुप्रास और (5) लाटानुप्रास।

● **छेकानुप्रास–**जहां पर अनेक व्यंजनों की एक बार स्पष्टत: एवं क्रमश: आवृत्ति की गई हो, वहां छेकानुप्रास अलंकार होता है। इसे छेकानुप्रास इसलिए कहते हैं कि संभवत: अनुप्रास की यह योजना छेक अर्थात विदग्ध जनों को अधिक प्रिय थी। अत: कवियों ने इस अलंकार के पर्याप्त प्रयोग किए हैं। जैसे–

बंदौ गुरु पद पदुम परागा। सुरुचि सुवास सरस अनुरागा। *(मानस)*

यहां प, सु, स, आदि अनेक व्यंजनों की एक-एक बार आवृत्ति की गई है।

● **वृत्यानुप्रास–**जहां पर वर्णों की अथवा वर्ण की अनेक बार आवृत्ति की गई हो वहां पर वृत्यानुप्रास अलंकार होता है। जैसे–

'कंकन किंकनी नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन राम हृदय गुनि।। *(मानस)*

न, नी, नि की आवृत्ति है।

● **श्रुत्यानुप्रास–**जहां पर एक ही उच्चारण स्थान से उच्चरित होने वाले व्यंजनों में समानता पाई जाती है, वहां पर श्रुत्यानुप्रास अलंकार होता है। जैसे–

जाहि जन पर ममता अति छोहू। जेहि करुण करि कीन्ह न कोहू।। *(मानस)*

यहां 'ह' की चार बार और 'क' की तीन बार आवृत्ति की गई है। दोनों वर्णों का एक कंठ ही उच्चारण स्थान है अत: श्रुत्यानुप्रास होगा।

● **अंत्यानुप्रास–**जहां पर पद या पद के अंत में सभी पदों में समान स्वर और व्यंजन की आवृत्ति की जाती है, वहां अंत्यानुप्रास अलंकार होता है। हिंदी भाषा में ऐसे पद्यों को तुकांत कविता या तुकांत पद कहते हैं। यह आवृत्ति क्योंकि पद के अंत में होती है, इसलिए इसे अंत्यानुप्रास कहते हैं। जैसे–

धीरज धरम मित्र अरु नारी। आपत्ति काल परखिए चारी। *(मानस)*

दोनों अर्धाली में 'री' की आवृत्ति है।

● **लाटानुप्रास**–जहां शब्द और अर्थ की समान रूप से आवृत्ति की जाती है किंतु अन्वय करने पर उनके अभिप्राय में भिन्नता आ जाती हो वहां लाटानुप्रास अलंकार होता है। जैसे–

पूत कपूत तो का धन संचै। पूत सपूत तो का धन संचै।।

'धन संचय' का रूप एवं अर्थ दोनों बार समान है किंतु तात्पर्य बदल गया है।

(2) यमक अलंकार

जहां सार्थक किंतु भिन्नार्थक या निरर्थक वर्ण-समुदाय की एक से अधिक बार आवृत्ति की जाती है वहां पर यमक अलंकार होता है। जैसे–

कनक-कनक तें सौ गुनी मादकता अधिकाय।
या खाए बौरात जग, वा पाये बौराय।। *(बिहारी)*

अर्थात एक ही शब्द की बार-बार आवृत्ति होती है किंतु हर बार अर्थ अलग होता है। जैसे–कनक का अर्थ – सोना और धतूरा दोनों हैं।

(3) श्लेष अलंकार

श्लेष अलंकार दो प्रकार का होता है–शब्द श्लेष और अर्थ श्लेष।

● **शब्द श्लेष**–शब्द श्लेष अलंकार वहां होता है, जहां अलंकार का सौंदर्य शब्द विशेष पर आधारित होता है। यदि उस शब्द के स्थान पर कोई दूसरा उसका पर्यायवाची शब्द रख दिया जाए तो श्लेष अलंकार वहां पर नहीं रहेगा। शब्द श्लेष के दो भेद होते हैं–(1) अभंग श्लेष और (2) सभंग श्लेष। अभंग श्लेष में तो प्रयुक्त शब्द ही एक से अधिक अर्थों का द्योतन कराने की क्षमता रखता है। जैसे–

तुम्हारा पी मुख वास तरंग आज बौरे भौंरे सहकार।

उपर्युक्त पंक्ति में बौरे शब्द में श्लेष है। इसके दो अर्थ हैं–(1) फूल आना या बौर आना (2) मस्त होना। सहकार अर्थात आम वृक्ष के प्रसंग में पुष्पित होना और भौंरे के प्रसंग में मस्त होना अर्थ लिए जाएंगे। यहां पर एक ही शब्द दोनों अर्थ दे रहा है। अतः यहां पर अभंग श्लेष अलंकार है। यदि हम 'बौरे' शब्द के स्थान पर 'मंजरी' या 'मद' जैसे पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग कर दें तो श्लेष अलंकार नहीं रहेगा। अतः यह शब्द श्लेष है।

जहां तक सभंग श्लेष का प्रश्न है, वहां पर शब्द का खंड करने पर दूसरा अर्थ निकलता है तथा शब्द के तोड़ने या भंग करने से दूसरा अर्थ निकलता है, इसलिए इसे सभंग श्लेष कहते हैं। जैसे–

चिर जीवौ जोरी जुरै क्यों न स्नेह गंभीर।
को घटि वह वृषभानुजा ए हलधर के वीर।। *(बिहारी)*

उपर्युक्त दोहे में 'वृषभानुजा' और 'हलधर' शब्दों में श्लेष अलंकार है। वृषभानुजा का अर्थ है 'राधा जी' और 'हलधर के वीर' का अर्थ है बलदेव जी के भाई अर्थात कृष्ण जी। दोनों का प्रेम गंभीर क्यों न हो, क्योंकि दोनों में कोई भी कम नहीं है। इन दोनों शब्दों

में वृषभानु + जा (वृषभानु की पुत्री) का अर्थ है 'राधा' किंतु 'वृषभ + अनुजा' (संधि विच्छेद करने पर) का अर्थ है बैल की छोटी बहिन अर्थात गाय। 'हल + धर' का अर्थ हो जाएगा 'बैल' और इस प्रकार 'हलधर के वीर' का अर्थ हुआ 'बैल का भाई अर्थात सांड'। इन पंक्तियों में प्रथम पंक्ति में ही संधि-विच्छेद से दूसरा अर्थ आने से वह सभंग श्लेष का उदाहरण हुआ।

- **अर्थ श्लेष–**अर्थ श्लेष अलंकार वहां होता है जहां पर अर्थ में अलंकारत्व रहता है। यदि संबद्ध शब्द के स्थान पर उसका कोई भी पर्यायवाची शब्द रख दें तब भी श्लेष का सौंदर्य बना रहे वहां पर अर्थ श्लेष अलंकार रहता है। जैसे–'साधु चरित सुभ सरिस कपासू। निरस विसद गुनमय फल जासू।' इस चौपाई में 'नीरस, विशद और गुणमय' तीन एकार्थक शब्दों का प्रयोग किया गया है जो साधु और कपास दोनों के प्रसंग में अपना अर्थ देते हैं जैसे कपास रुखी, उजले धागे वाली होती है और साधुओं का चरित्र (विषय रस से) सूखा, निर्मल गुण वाला होता है। इस चौपाई में 'नीरस और विसद' शब्दों 'गुणमय' का प्रयोग किया जाता है। पर्यायवाची (रसहीन, विस्तृत) रख देने पर श्लेष की सत्ता बनी रहने से अर्थ प्राबल्य सिद्ध होता है। अत: यहां अर्थ श्लेष अलंकार है।

(4) वक्रोक्ति अलंकार

किसी एक अभिप्राय वाले अभिव्यक्त वाक्य का, किसी अन्य द्वारा (श्लेष अथवा काकु से) अन्य अर्थ लिए जाने को वक्रोक्ति अलंकार कहते हैं। वक्रोक्ति अलंकार का नियोजन एक जटिल कर्म है। यही कारण है कि कवियों ने इसका प्रयोग कम ही किया है।

उदाहरण–

को तुम हौ इत आए कहां घनस्याम हौ तौ कित हूं बरसो।
चितचोर कहावत हैं हम तौ तहां जाहुं जहां धान है सरसों।।

वक्रोक्ति अलंकार दो प्रकार का होता है- (1) श्लेष वक्रोक्ति, (2) काकु वक्रोक्ति।

- श्लेष वक्रोक्ति में किसी शब्द के अनेक अर्थ होने के कारण वक्ता के अभिप्रेत अर्थ से अन्य अर्थ ग्रहण किया जाता है।
- काकु वक्रोक्ति में कंठ ध्वनि अर्थात वक्ता के लहजे में भेद होने के कारण अन्य अर्थ कल्पित किया जाता है।

(5) उपमा अलंकार

जहां उपमेय और उपमान में भेद रहते हुए भी उपमेय के साथ उपमान के सादृश्य का वर्णन हो वहां उपमा अलंकार होता है।

उपमा में चार तत्वों का होना आवश्यक है–(1) उपमेय, (2) उपमान, (3) समान धर्म, और (4) वाचक शब्द।

1. **उपमेय–**जिस वस्तु का उपमान के साथ सादृश्य का वर्णन होता है, उस वस्तु को उपमेय कहते हैं।

टिप्पणी

2. **उपमान**–जिस वस्तु के साथ उपमेय का सादृश्य बताया जाता है, वह वस्तु उपमान कहलाती है।

3. **समान धर्म**–दोनों वस्तुओं–उपमेय और उपमान–में समान रूप से पाए जाने वाले धर्म का कथन समान धर्म कहलाता है।

4. **वाचक शब्द**–उपमेय और उपमान को समान धर्म के साथ जोड़ने वाले शब्द को वाचक कहा जाता है।

उपर्युक्त तत्वों को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है जैसे–"मुख चंद्रमा के समान सुंदर है।" इस वाक्य में मुख का चंद्रमा के साथ सादृश्य बताया गया है इसलिए 'मुख' उपमेय है और चंद्रमा के साथ तुलना की जाने के कारण 'चंद्रमा' उपमान है। सुंदरता को दोनों का समान धर्म बताया गया है, जो चंद्रमा के समान मुख में भी विद्यमान है। अतः यहां पर 'सुंदर' शब्द समान धर्म है। इसी वाक्य में 'के समान' शब्द मुख और चंद्रमा को सुंदर (समान धर्म) के साथ जोड़ रहा है, इसलिए इसे वाचक शब्द कहा जाएगा। समानता बताने के कारण इसे सादृश्य वाचक भी कह सकते हैं। समान, सादृश्य सरिस सो, से, ज्यों, जैसे, जैसा, जिमि, लौ, तुल्य, सम आदि शब्द सादृश्य वाचक होते हैं।

उपमा को मुख्यतः तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है–(1) पूर्णोपमा, (2) लुप्तोपमा, और (3) मालोपमा।

● **पूर्णोपमा**–पूर्णोपमा अलंकार वहां होता है जहां उपमा के चारों अवयव–उपमेय, उपमान, समान धर्म और वाचक शब्द उपस्थित रहते हैं। इस अलंकार को पूर्णोपमा अलंकार इसलिए कहा जाता है कि इसमें उपमा अलंकार के लिए निश्चित चारों अवयव शब्द के द्वारा कथित रहते हैं। उदाहरण–'पीपर पात सरिस मन डोला।'

उक्त पद्य में मन की तुलना पीपल के पत्ते के साथ की गई है इसलिए इसमें 'मन' उपमेय है और 'पीपर पात' उपमान। दोनों के चांचल्य को 'डोला' शब्द के द्वारा व्यक्त किया गया है जो इनमें पाए जाने वाले समान धर्म को भी व्यक्त करता है अतः वह समान धर्म है। 'सरिस' शब्द क्योंकि समानता को व्यक्त कर रहा है इसलिए यह वाचक शब्द है।

● **लुप्तोपमा**–जहां पर उपमा के उक्त चारों अंगों में से जब किसी एक अंग का वर्णन शब्द के द्वारा कथित नहीं होता, वहां लुप्तोपमा अलंकार होता है। इस दृष्टि से लुप्तोपमा के चार भेद हो जाते हैं–

(1) उपमेय लुप्तोपमा, (2) उपमान लुप्तोपमा, (3) समान धर्म लुप्तोपमा और (4) वाचक शब्द लुप्तोपमा। कभी-कभी एक ही पद से दो-दो अंगों का लोप भी कर दिया जाता है, उदाहरण–'कोटि कुलश सम वचन तुम्हारा'। यह पद समान धर्म लुप्तोपमा का उदाहरण है। इसमें वचन उपमेय कुलिश उपमान और 'सम' वाचक शब्द का कथन तो है ही किंतु 'कठोर' का समान धर्म का कथन नहीं किया गया है। अतः समान धर्म का कथन न होने के कारण यह समान धर्म लुप्तोपमा है।

● **मालोपमा**–जहां एक उपमेय की अनेक उपमानों के साथ समानता का वर्णन किया जाता है वहां मालोपमा अलंकार होता है। उदाहरण–जिय बिनु देह, नदी बिनु बारी, तैसे ही नाथ! पुरुष बिनु नारी।

(6) रूपक अलंकार

जहां उपमेय का कथन कर उसका उपमान के साथ अभेद आरोपित किया गया हो, वहां पर रूपक अलंकार होता है। रूपक अलंकार में उपमेय पर उपमान का आरोप कर दिया जाता है अर्थात उपमेय को ही उपमान बता दिया जाता है या समझ लिया जाता है। जैसे–मुख चांद है। इस वाक्य में मुख को चांद बता दिया गया है। रूपक अलंकार के तीन भेद होते हैं–(1) निरंग रूपक, (2) सांग रूपक, (3) परंपरित रूपक।

● **निरंग रूपक**–जहां केवल उपमेय में उपमान का आरोप किया जाता है, वहां निरंग रूपक अलंकार होता है। प्रत्येक वस्तु मूल होती है और उसके अंग भी होते हैं। मूल वस्तु को 'अंगी' कहा जाता है। 'निरंग' शब्द का अर्थ ही होता है 'अंग रहित'। कुछ विद्वान इसे निरवयव रूपक भी कहते हैं। जैसे–

विधु वदनी सब भांति संवारी। सोह न वसन बिना वर नारी।

● **सांग रूपक**–जहां पर उपमेय के सभी अंगों अथवा अवयवों पर उपमान के सभी अंगों या अवयवों का आरोप वर्णित हो, वहां पर सांग रूपक अलंकार होता है। इस अलंकार-रूप में अंगों सहित अंगी उपमेय पर अंगों सहित अंगी उपमान का आरोप किया जाता है। इसमें अनेक आरोप वर्णित होते हैं, जैसे–

बीती विभावरी जाग री,
अंबर पनघट में डुबो रही।
तारा-घट ऊषा-नागरी।

इन पंक्तियों में अंबर में पनघट का, तारे में घट का और ऊषा में सुंदरी का आरोप किया गया है। यहां पर प्रातःकाल के आकाश, तारा और ऊषा का कुएं के पनघट, घट और नागरी पर आरोप कर रात्रि के बीतने और प्रातःकाल के आगमन का वर्णन किया गया है। अतः समस्त अंगों पर आरोप कथित होने से यहां पर सांग रूपक अलंकार है। सांग रूपक के पुनः दो भेद किए जाते हैं–(1) समस्त वस्तु विषय और (2) एकदेशविवर्ति।

(1) समस्त वस्तु विषय सांग रूपक अलंकार वहां होता है, जहां पर उपमेय और उपमान के समस्त अंगों का शब्दों के द्वारा कथन हो और (2) एकदेशविवर्ति सांग रूपक अलंकार वहां होता है, जहां पर कुछ अंगों का तो शब्द द्वारा कथन कर दिया जाता है और कुछ का आक्षेप से या प्रसंग से ग्रहण किया जाता है।

● **परंपरित रूपक**–जहां पर एक आरोप दूसरे आरोप का कारण होता है, वहां पर परम्परित रूपक अलंकार होता है। परंपरित का अर्थ होता है परंपरा या क्रम। इस प्रसंग में कम से कम दो आरोप होते हैं जिनमें एक आरोप कारण होता है और दूसरा कार्य। कहने

का तात्पर्य यह है कि एक आरोप कर देने के पश्चात दूसरे आरोप का निरूपण करना आवश्यक हो जाता है। जैसे–

राम कथा सुंदर करतारी। संशय बिहग उड़ावन हारी। *(मानस)*

उपर्युक्त चौपाई में रामकथा पर करताल (तालियों) का आरोप किया गया है और संशय पर पक्षी का आरोप किया गया है। यहां पर 'संशय-विहग' आरोप कार्य है और 'रामकथा-करतारी आरोप' कारण है। अत: कार्य-कारण की परंपरा का चित्रण होने के कारण यहां पर परंपरित रूपक अलंकार है।

परंपरित रूपक अलंकार दो प्रकार का होता है–(1) श्लिष्ट परंपरित रूपक और (2) अश्लिष्ट परंपरित रूपक अलंकार।

(7) उत्प्रेक्षा अलंकार

जहां प्रस्तुत वस्तु में अप्रस्तुत वस्तु की संभावना अर्थात उत्कृष्ट कल्पना का वर्णन हो, वहां पर उत्प्रेक्षा अलंकार होता है। उत्प्रेक्षा का व्युत्पत्तिपरक अर्थ होता है– किसी वस्तु को उत्कट या प्रकृष्ट रूप से देखना। इसमें जनु, मानों, मनु, इव आदि वाचक शब्दों का प्रयोग किया जाता है। इसके पहले दो भेद किए जाते हैं–(1) वाच्या और (2) प्रतीयमान।

वाच्या में वाचक शब्दों का प्रयोग आवश्यक होता है जबकि प्रतीयमान में व्यंग्य की प्रधानता रहने के कारण वाचक शब्दों का अभाव पाया जाता है। वाच्योत्प्रेक्षा के पुन: तीन भेद किए जाते हैं–(1) वस्तूत्प्रेक्षा, (2) हेतूत्प्रेक्षा और (3) फलोत्प्रेक्षा। उदाहरण–

पंथ जात सोहहिं मति धीरा। ज्ञान भक्ति जनु धरे सरीरा। *(मानस)*

(8) संदेह अलंकार

जहां किसी वस्तु के संबंध में अनेक वस्तुओं का संदेह हो और सादृश्य के कारण अनिश्चय बना रहे, वहां संदेह अलंकार होता है। प्राचीन काव्य में यह संदेह किंवा, धौं, किधौं आदि तथा खड़ी बोली के काव्य में कि, क्या या तथा अथवा आदि शब्दों द्वारा किया जाता है। उदाहरण के लिए–

मद भरे ये नलिन नयन मलीन हैं,
अल्प जल में या विकल लघु मीन है।

यहां 'नयन' के विषय में 'मीन' का संदेह होता है। 'या' संदेहवाचक शब्द का प्रयोग हुआ है।

अन्य प्रमुख अलंकार

(1) उपमेयोपमा अलंकार–जहां पर उपमेय और उपमान परस्पर एक-दूसरे के उपमेय और उपमान बन जाते हैं, वहां उपमेयोमपा अलंकार होता है। वस्तुत: यहां पूर्व कथित उपमेय उत्तर कथन में उपमान और पूर्व कथित उपमान उत्तर कथन में उपमेय बन जाता है अर्थात लेखक की दृष्टि में उन दोनों के अतिरिक्त उनकी समता के लिए कोई तीसरी वस्तु नहीं होती, जैसे–'वे तुम सम तुम उन सम स्वामी।' उक्त पद के पूर्व कथन में वे उपमेय हैं और तुम उपमान किंतु उत्तर कथन में तुम उपमेय बन जाता है और 'उन'

उपमान बन जाता है। इस कारण यह उपमेयोपमा अलंकार है। अन्य उदाहरण–राम के समान, शंभू, शंभू सम राम है।

टिप्पणी

(2) अनन्वय अलंकार–अनन्वय अलंकार वहां होता है, जहां उपमेय को ही उपमान के रूप में प्रस्तुत किया जाए। इसका तात्पर्य यह है कि रचनाकार कार्य विषय की उत्कृष्टता सिद्ध करने के लिए यह बताना चाहता है कि विश्व में दूसरी ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो उस वस्तु की समता कर सके। इसलिए उपमेय को ही उपमान बना दिया जाता है। उदाहरण–

'उपमान विहीन रचा विधि ने, बस भारत के सम भारत है।'

उक्त पद्य में भारत की उत्कृष्टता सिद्ध करने के लिए कवि ने भारत उपमेय के लिए भारत उपमान का ही वर्णन किया है अतः यहां अनन्वय अलंकार है। अन्य उदाहरण–

'सुंदर नंदकिशोर से, सुंदर नंदकिशोर।'

(3) उदाहरण अलंकार–जहां पहले किसी सामान्य बात का कथन किया जाए और फिर उसे स्पष्ट करने के लिए उसी सामान्य के एक अंश विशेष का वाचक शब्दों के द्वारा निरूपण कर उनका अवयवावयवी भाव प्रकट किया जाए वहां उदाहरण अलंकार होता है। इसमें उपमेय वाक्य प्रधान होता है–

नीकी पै फीकी लगै, बिन अवसर की बात।
जैसे वर्णन युद्ध में, रस शृंगार न सुहात।।

(4) प्रतीप अलंकार–'प्रतीप' का अर्थ होता है विपरीत। इसका अर्थ यह हुआ कि यह अलंकार उपमा से विपरीत अर्थात् उलटा होता है। अतः इसको इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है कि जहां प्रसिद्ध उपमान को उपमेय की तुलना में अपकर्ष दिखाया जाता है वहां प्रतीप अलंकार होता है। उदाहरण–उस तपस्वी से लंबे ये देवदारू दो चार खड़े।–*कामायनी*

(5) व्यतिरेक अलंकार–जहां गुणाधिक्य के कारण उपमान की तुलना में उपमेय का उत्कर्ष वर्णित होता है, वहां व्यतिरेक अलंकार होता है। व्यतिरेक का अर्थ होता है उत्कर्ष या आधिक्य। अतः इस अलंकार के माध्यम से उपमेय का उत्कर्ष प्रदर्शित किया जाता है। जैसे–

सिय मुख सरद कमल जिमि किमि कहि जाय।
निसि मलिन वह, निसि-दिन यह विगसाय।। *(बरवै रामायण)*

(6) स्मरण अलंकार–जहां पहले से देखी हुई या अनुभव की हुई वस्तु का उसी के सदृश किसी अन्य वस्तु को देखकर या अनुभव कर, स्मरण हो आने का वर्णन हो, वहां स्मरण अलंकार होता है। जैसे– भएउ कोलाहलु नगर मंझारी
आवा कपि लंका जेहि जारी।।

(7) असम अलंकार–जहां उपमेय के समान किसी उपमान के निषेध का वर्णन हो, वहां असम अलंकार होता है। 'असम' का अर्थ होता है जिसके समान कोई अन्य न हो। जैसे–

टिप्पणी

फलराज रसाल समान कहीं।
फल और मनोहर एक नहीं।।

(8) उल्लेख अलंकार–जहां एक वस्तु को अनेक प्रकार से वर्णित किया जाए, वहां उल्लेख अलंकार होता है। इसके दो भेद होते हैं–1. प्रथम उल्लेख, 2. द्वितीय उल्लेख।

प्रथम उल्लेख–जहां एक ही वस्तु अनेक व्यक्तियों द्वारा भिन्न-भिन्न दृष्टि से देखी जाए अथवा वर्णित की जाए वहां प्रथम उल्लेख होता है; जैसे

गज रक्षक वृद्धान ने, युवतिन ने श्रीकांत।
असुर-तियन हरि लखे, रिसियाने नरकांत।।

जिस समय श्रीकृष्ण मथुरा में प्रविष्ट हुए तो वृद्ध नारियों ने उन्हें गज का उद्धार करने वाला, युवतियों ने लक्ष्मीकांत, असुरपत्नियों ने साक्षात विष्णु समझा जिन्होंने सक्रोध नरकासुर का वध किया। अत: यहां श्रीकृष्ण का विभिन्न दृष्टियों से वर्णन होने के कारण प्रथम उल्लेख है।

द्वितीय उल्लेख–जहां पर एक वस्तु एक व्यक्ति द्वारा विभिन्न दृष्टि से देखी जाए अथवा वर्णित हो, वहां द्वितीय उल्लेख होता है; जैसे–

तू रूप है किरन में, सौंदर्य है सुमन में।
तू प्रण है पवन में, विस्तार है गगन में।।

यहां कवि ने ईश्वर का विभिन्न दृष्टियों से अनेक रूपों में उल्लेख किया है, अत: यहां द्वितीय उल्लेख है।

(9) अपह्नुति अलंकार–जहां उपमेय को नकार कर उपमान का आरोप किया जाए वहां अपह्नुति अलंकार होता है। इसके छ: भेद हैं–

शुद्धापह्नुति–इसमें वास्तविक उपमेय का निषेध करके उपमान का आरोपण किया जाता है; जैसे–वे दो ओठ न थे, राधे, था एक फटा उर तेरा।

यहां ओठों का निषेध करके उर का आरोप किया गया है।

हेत्वपह्नुति–जहां उपमेय के निषेध के कारण बताते हुए उपमान की स्थापना हो–

अभी उम्र कुल तेइस की थी, मनुज नहीं अवतारी थी।
हमको जीवित करने आई, बन स्वतंत्रता नारी थी।

यहां लक्ष्मीबाई में मनुजत्व का निषेध करके उसके अवतारी होने की स्थापना की गई है। दूसरी पंक्ति में कारण देने से यह हेत्वपह्नुति है।

पर्यस्तापह्नुति–इसमें किसी वस्तु के धर्म का निषेध दूसरी वस्तु में उसके आरोप के लिए किया जाता है–

तेरे ही भुजनि पर भूतल को भार,
कहिबे को सेसनाग दिगनाग हिमाचल है।

यहां सेसनाग, दिगनाग का निषेध कर उसका आरोप भुजबल पर किया गया है।

टिप्पणी

भ्रांतापह्नुति–इसमें सत्य बात प्रकट करके किसी के भ्रम को दूर किया जाता है–

आनन हैं, अरविंद न फूले, अलिंगन भूलैं कहा मंडरात हौ।
बोलती बाल, न बाजती बीन कहा सिगरे मृग घेरति जात हौ।।

यहां भ्रांति कवि-कल्पित है।

छेकापह्नुति–इसमें सत्य को छिपाकर असत्य के द्वारा भ्रांति दूर करने का प्रयास होता है–

आँखें अति सीतल भई, दीन्हों ताप निहारि।
क्यों सखि पीतम को लखै, ना सखि, ससिहिं निहारि।।

यहां एक सखी अन्य सखी के भाव से अनजान है और प्रियतम दर्शन की बात पूछती है किंतु वह एकदम बात बदलकर चंद्रिका की बात करने को कहती है।

कैतवापह्नुति–जिसमें उपमेय का स्पष्ट निषेध न करके मिस, ब्याज, छल आदि शब्दों से निषेध किया जाए–

यों लछिराम छटा नख नौल तरंगनि गंग प्रभा फल पेनी।
मैथिली के चरनांबुज ब्याज लसै मिथिला जग मंजु त्रिवेनी।।

यहां 'चरणोदक' का निषेध 'ब्याज' से किया गया है।

(10) भ्रम या भ्रांतिमान अलंकार–भ्रम का अर्थ होता है मिथ्या ज्ञान। जहां पर किसी सदृश वस्तु में अर्थात उपमेय में अन्य वस्तु अर्थात उपमान के सुंदर कल्पित मिथ्या ज्ञान का वर्णन होता है, वहां पर भ्रम, भ्रांति या भ्रांतिमान अलंकार होता है। उदाहरण–

पाय महावर देन को नाइन बैठी आय।
फिरि-फिरि जानि महावरी, एडी मीड़त जाय।। –*बिहारी*

यहां नाइन ने भ्रमवश एड़ी की लाली के कारण एड़ी को ही महावर समझ लिया।

(11) अतिशयोक्ति अलंकार–'अतिशयोक्ति' का अर्थ है उक्ति की अतिशयता अर्थात किसी कथन को सामान्य रूप में प्रस्तुत न कर उसे बढ़ा-चढ़ा कर प्रस्तुत किया जाए वहां पर अतिशयोक्ति अलंकार होता है। इसके प्रमुख छह भेद किए हैं–

(1) रूपकातिशयोक्ति, (2) भेदकातिशयोक्ति, (3) संबंधातिशयोक्ति, (4) अक्रमातिशयोक्ति, (5) चपलातिशयोक्ति और (6) अत्यंतातिशयोक्ति।

- **रूपकातिशयोक्ति**–'देखो दो-दो मेघ बरसते, मैं प्यासी की प्यासी'–यहां दो मेघों के उपमान में दो आंखें उपमेय हुई हैं। उपमेय का उपमान में अध्यवसान हो जाने के कारण यहां रूपकातिशयोक्ति है।
- **भेदकातिशयोक्ति**–जहां भेद न रहते हुए भी उपमेय में चमत्कार लाने के लिए अन्य, और अनियार जैसे शब्दों का प्रयोग कर भेद स्थापित किया जाए वहां यह अलंकार होता है–

सुनहुं सखा कह कृपानिधाना।
जेहि जय होई सो स्यंदन आना।।

टिप्पणी

● **संबंधातिशयोक्ति**–जहां पर संबंधों में असंबंध और असंबंधों में संबंध का वर्णन हो वहां पर यह अलंकार होता है।

'जो संपदा नीच गृह सोहा।
सो विलोकि सुरनायक मोहा।' *–मानस*

● **अक्रमातिशयोक्ति**–जहां क्रम नहीं होता और क्रम का त्याग कर कवि कार्य-कारण का अत्यधिक वर्णन करता है वहां यह होता है–

'संधानेउ प्रभु बिसिख कराला।
उठी उदधि उर अंतर ज्वाला।। *–मानस*

● **चलातिशयोक्ति**–जहां कारण को देखते ही कार्य की संपन्नता का वर्णन किया जाए वहां यह अलंकार होता है–

'तब सिव तीसर नयन उघारा।
चितवत काम भयउ जरि छारा। *–मानस*

● **अत्यंतातिशयोक्ति**–इसमें कारण के पहले ही कार्य संपन्न हो जाता है। जैसे–
हनुमान की पूंछ में लगन न पाई आग, लंका सिगरी जल गई गए निसाचर भाग।

(12) **दीपक अलंकार**–जहां उपमेय और उपमान दोनों का एक धर्म के साथ संबंध दिखा कर वर्णन किया जाता है वहां पर दीपक अलंकार होता है। जैसे–

सेवक सठ नृप कृपन कुनारी।
कपटी मित्र सूल-सम चारी।। *(मानस)*

(13) **प्रतिवस्तुपमा अलंकार**–जहां एक वाक्यार्थ का दूसरे वाक्यार्थ के साथ बिना वाचक शब्द के सादृश्य का वर्णन हो तथा एक ही समान धर्म का पृथक-पृथक शब्दों के द्वारा कथन हो वहां प्रतिवस्तुपमा अलंकार होता है। प्रतिवस्तुपमा का अर्थ होता है–'प्रतिवस्तु' अर्थात प्रत्येक वाक्य के अर्थ में उपमा का समावेश किया गया हो। इस अलंकार में दो वाक्य होते हैं– (1) उपमेय वाक्य और (2) उपमान वाक्य। दोनों वाक्यों का एक ही समान धर्म होता है। (3) समान धर्म का कथन पृथक-पृथक शब्दों द्वारा किया जाता है और (4) इसमें सादृश्य, साधर्म्य के द्वारा ही नहीं अपितु वैधर्म्य के द्वारा भी निरूपित होता है। उदाहरण–

सठ सुधरहिं सत्संगति पाई।
परस-परस कुधात सुहाई।। *(मानस)*

(14) **दृष्टांत अलंकार**–जहां दो वाक्यार्थों में आए उपमेय और उपमान के समान धर्मों में बिंब- प्रतिबिंब भाव संबंध हो, वहां दृष्टांत अलंकार होता है। उपमेय वाक्य में एक सामान्य बात कही जाती है किंतु उपमान वाक्य में कोई उससे मिलता-जुलता दृष्टांत प्रस्तुत किया जाता है जो उपमेय वाक्य के कथन की पुष्टि करता है। दृष्टांत यानी–उदाहरण–

करत-करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात ते, सिल पर परत निसान।। *(वृंद)*

टिप्पणी

(15) निदर्शना अलंकार–दो वाक्यों में परस्पर संभव और असंभव संबंध होने पर भी उपमा के द्वारा उनमें संबंध की कल्पना करना निदर्शना अलंकार होता है। निदर्शना का अर्थ भी दृष्टांत होता है किंतु इसमें निश्चित रूप से सादृश्य का अभिव्यंजन किया जाता है। उसमें संभव की अभिव्यक्ति की जाती है। उदाहरण–

सो धनु राज कुंअर कर देहीं।
बाल मराल कि मंदर लेहीं।। –*मानस*

फल की समानता के कारण असंभव संबंध स्थापित किया गया है।

(16) समासोक्ति अलंकार–जहां कवि के प्रस्तुत अर्थ के अतिरिक्त श्लिष्ट पदों या शब्दों के संगठन से कोई अप्रस्तुत भाव भी अनायास ही प्रकट होता है, वहां समासोक्ति अलंकार होता है, जैसे–

जीवन के दानि हों, सुजान हौ, सरस अति।
जगत के जीवन मैं, आनन्द उमाहे हौ।।

यहां जीवन शब्द अनेकार्थ सूचक तथा सरस शब्द भी दो अर्थों का सूचक है। इससे इसमें अन्यार्थ प्रतीत होता है।

(17) अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार–जहां अप्रस्तुत (उपमान) के द्वारा उपमेय का बोध कराया जाए, वहां अन्योक्ति अलंकार होता है। जैसे–

नहिं पराग, नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहि काल।
अली कली ही सौं बंध्यो आगे कौन हवाल।।

यहां भौंरे और कली के माध्यम से प्रस्तुत राजा जयसिंह और उनकी नवोढ़ा पत्नी का बोध कराया गया है। अत: अन्योक्ति अलंकार है।

विरोधमूलक अलंकार

(18) विरोधाभास अलंकार–जहां पर विरोध न होने पर भी विरोध की प्रतीति होती हो वहां विरोधाभास अलंकार होता है। उदाहरण–

या अनुरागी चित्त की गति समुझे नहीं कोय।
ज्यों-ज्यों बूड़े स्याम रंग, त्यों-त्यों ऊजवल होय।। *(बिहारी)*

(19) विभावना अलंकार–जहां कारण के अभाव में ही कार्य की संपन्नता का वर्णन किया गया हो, वहां विभावना अलंकार होता है। उदाहरण–

'बिनु पद चलै सुनै बिनु काना।
कर बिनु करम करै बिधि नाना।। *(मानस)*

यह अलंकार दो प्रकार का होता है–(1) शाब्दी विभावना, (2) आर्थी विभावना।

● **शाब्दी विभावना–**इसमें कारण के अभाव का शब्द के द्वारा कथन किया जाता है। जैसे– 'निंदक नियरे राखिए, आंगन कुटी छवाय।
बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करै सुभाय।।

यहां पानी और साबुन वस्त्रादि की मैल साफ करने के कारण हैं। इनके अभाव में चित्त के निर्मल होने का वर्णन किया गया है कि निंदक को पास में रखने से वह दोषों को उजागर करेगा जिससे व्यक्ति अपने दोष दूर कर लेगा।

टिप्पणी

● **आर्थी विभावना**—यहां कारण का अभाव अर्थ द्वारा कथित होता है। जैसे—'बिनु पद चलै सुनै बिनु काना'—अर्थ के द्वारा ईश्वर की महिमा का पता चलता है कि उसकी कृपा से मनुष्य बिना पैर के चल सकता है तथा बिना कान के सुन सकता है।

(20) विशेषोक्ति अलंकार—जैसा कहा जा चुका है, 'असंगति' में कारण और कार्य दोनों होते हैं, परंतु एक ही जगह नहीं, दूर-दूर, इसके विपरीत जब कारण उपस्थित होने पर भी कार्य नहीं होता तब विशेषोक्ति अलंकार होता है। जैसे—

मूरख ह्रदय न चेत, जो गुरु मिलै विरंचि सम।
फूलहि फरहि न बेत, जदपि सुधा बरसहिं जलद।।

यहां विरंचि समान गुरु की प्राप्ति होने पर भी मूरख सचेत नहीं हो रहा। अर्थात प्रबल और पूर्ण कारण के रहने पर भी कार्य नहीं हो रहा।

(21) असंगति अलंकार—जहां कारण किसी अन्य स्थल पर हो और कार्य की निष्पत्ति किसी अन्य स्थल पर वर्णित हो, वहां पर असंगति अलंकार होता है। उदाहरण—

'कोयल काली मतवाली है, आम्र मंजरी झूम रहीं।

यहां मस्ती कोयल में है और आम्र मंजरी का झूमना दिखाया गया है। कार्य और कारण अलग-अलग जगहों पर स्थित है।

दृग उरझत टूटत कुटुम, जुरत चतुर संग प्रीति।
परति गांठि दुरजन ह्दै, दई नई यह रीति।। —*बिहारी*

(22) विषम अलंकार—जहां विरोधाभास अलंकार में ऐसे पदार्थों का एक-दूसरे में संबंध कहा जाता है जिनमें वास्तव में परस्पर भेद होता है, परंतु जब ऐसे दो पदार्थों का परस्पर संसर्ग कराया जाता है जिनका संबंध अनुचित होता है तब विषम अलंकार होता है। जैसे—

कहँ धनु कुलिसहूँ चाहि कठोरा, कहँ स्यामल मृदुगात किसोरा! —*तुलसी*

'शिव' के कठोर 'धनुष' और 'राम' के कोमल 'तन' का संबंध होना अनुचित लगता था परंतु यहां ऐसा कराया जा रहा है, अतः यह विषम 'असमान' संयोग है।

(23) कारणमाला अलंकार—जहां शृंखला रूप में वर्णित पदार्थों का कार्य-कारण भाव संबंध हो वहां कारणमाला अलंकार होता है। उदाहरण—

विद्या ते उपजै विनय विनय जगत-बस होय।
जगत भये बस धन मिलै, धन ते धरम उदोत।। *(हीरा द्वारा उद्धृत)*

इस अलंकार की योजना दो प्रकार से होती है—(1) पूर्व-पूर्व में कारण तथा पर-पर में कार्य (2) पूर्व पूर्व में कार्य – पर पर में कारण।

प्रथम योजना का उदाहरण ऊपर दिया गया है। दूसरी योजना का उदाहरण है–

अन्न मूल धन, धनन को मूल जग्य अभिराम।
ताको धन, धन को धरम, धरम मूल हरिनाम।।

(24) एकावली अलंकार–करणमाला में कार्य कारण का क्रम होता है किंतु जब वस्तुओं के ग्रहण और त्याग की एक श्रेणी विशेषण भाव से बन जाए अथवा निषिद्ध भाव से बन जाएं, तब एकावली अलंकार होता है। जैसे–

मैं इस झरने के निर्झर में प्रियवर सुनता हूं वह गान।
कौन गान? जिसकी तानों से परिपूरित हैं मेरे प्राण।
कौन प्राण? जिनको निशि–वासर करता एक तुम्हारा ध्यान।
कौन ध्यान? जीवन सरसिज को जो सदैव रखता अम्लान।

इसमें गान, प्राण, ध्यान के ग्रहण–त्याग की एक श्रेणी है।

निषिद्ध भाव का उदाहरण–

सोभित सो न सभा जहं वृद्ध न, वृद्ध न ते जे पढ़े कछु नाहीं,
ते न पढ़े जिन साधु न साधत, दींन दया न दिखै जिन माहीं;
सो न दया जु न धर्म धरै धर, धर्म न सौ जहं दान वृथा हीं,
दान न सौं जहं सांच न 'केसव', सांच न सो जु बसै छल छाहीं।

(25) सार अलंकार–जब पहले कही हुई वस्तुओं का उत्तरोत्तर बढ़ने (उत्कर्ष) या कम होने (अपकर्ष) का वर्णन किया जाता है, तो 'सार' अलंकार होता है। उदाहरण के लिए–

मधुर से मधु सुधा है रुचिकर, कविता रुचिकर अधिक सुधा से।

यहां मधु सुधा और कविता में क्रमशः उत्तरोत्तर अधिक मिठास बताकर उत्कर्ष की क्रमशः वृद्धि बताई गई है। अथवा–

तृण से लघु है तूल तूल से लघु है भिक्षा।

इसमें तृण तूल (रुई) और भिक्षा में क्रमशः घटती प्रतिष्ठा दिखाकर अपकर्ष की क्रमिक वृद्धि प्रदर्शित की गई है।

न्यायमूलक अलंकार-

(26) काव्यलिंग अलंकार–जहां पर किसी कथन का समर्थन करने के लिए वाक्यार्थ या पदार्थ में उसका कारण भी प्रस्तुत किया जाए वहां पर काव्यलिंग अलंकार होता है। काव्यलिंग शब्द का अर्थ भी यही होता है कि काव्य वर्ण्य विषय और लिंग हेतु अर्थात वर्ण्य विषय का लिंग या हेतु प्रस्तुत किया जाए। जैसे–

स्याम गौर किमि कहऊं बखानी।
गिरा अनयन नयन बिनु बानी।। *(मानस)*

यहां राम और लक्ष्मण के सौंदर्य को वर्णित करने की असमर्थता का कारण वाणी का नेत्रहीन होना तथा नेत्रों का वाणीहीन होना है।

टिप्पणी

(27) अर्थांतरन्यास अलंकार–जहां सामान्य कथन से विशेष या विशेष कथन से सामान्य का समर्थन किया गया हो वहां अर्थांतरन्यास अलंकार होता है। उदाहरण–

निर्वासित थे राम, राज्य था कानन में भी।
सच ही है–श्रीमान भोगते सुख वन में भी।। *(मैथिलीशरण गुप्त)*

न्यायमूलक अलंकारों के अंतर्गत परिगणित अन्य अलंकार हैं–

अनुमान अलंकार, परिकर अलंकार, सहोक्ति अलंकार, विनोक्ति अलंकार, यथासंख्या या क्रम अलंकार, पर्याय अलंकार, अत्युक्ति अलंकार, गूढ़ोक्ति अलंकार, उन्मीलित अलंकार, परिवृत्ति अलंकार, परिसंख्या अलंकार, काव्यार्थापत्ति अलंकार, मीलित अलंकार, तद्‌गुण अलंकार।

गूढ़ार्थ प्रतीति मूलक अलंकार-

(28) पर्यायोक्ति अलंकार–जहां विवक्षित अर्थ को सीधे-सीधे ढंग से न कह कर भिन्न प्रकार से चमत्कारपूर्ण ढंग से व्यक्त किया जाता है वहां पर्यायोक्ति अलंकार होता है। जैसे–

मातु पितहु जनि सोचबस, करहि महीप किसोर।
गर्भन के अर्भक दलन, परसु मोर अति घोर। *(मानस)*

(29) व्याजोक्ति अलंकार–व्याजोक्ति का अर्थ होता है बहाने का कथन अर्थात जहां पर गुप्त रहस्य के प्रकट होने पर उसे किसी बहाने से अन्य कथन द्वारा छुपाया जाए, वहां पर व्याजोक्ति अलंकार होता है। इसे अन्योक्ति भी कह सकते हैं। इस अलंकार में वक्ता को लगता है कि उसका गुप्त रहस्य प्रकट हो गया, इसका ज्ञान व्यंजना द्वारा उसके उस रहस्य को छिपाने के कथन से होता है। जैसे–

बहुरि गौरी कर ध्यान करेहू। भूप किशोर देखि किन लेहू।।

राम के प्रति सीता का तल्लीनता के रहस्य को गौरी का 'ध्यान' कहकर छिपाया गया है।

(30) व्याजस्तुति अलंकार–जहां पर स्तुति कथन से निंदा की और निंदा के कथन से स्तुति की व्यंजना की जाती है, वहां पर व्याजस्तुति अलंकार होता है। व्याजस्तुति का अर्थ है किसी बहाने स्तुति या निंदा करना। जैसे–

कहत कौन रण में तुम्हें, धीर वीर सरदार।
लखि रिपु बिनु हथियार जो, डारि देत हथियार।। *(वीर-सतसई)*

'हे सरदार (नायक) तुम्हें युद्ध में पराक्रमी वीर कौन कह सकता है क्योंकि तुम जैसे ही शत्रु को शस्त्र विहीन देखते ही उसके सामने हथियार डाल देते हो।' यहां सेनानायक की निंदा के बहाने उसकी स्तुति या प्रशंसा की गई है कि वह शस्त्रहीन शत्रु पर वार नहीं करता।

अन्य गूढ़ार्थ प्रतीतिमूलक अलंकार हैं–अवज्ञान अलंकार, अनुज्ञा अलंकार, तिरस्कार अलंकार।

टिप्पणी

(31) पुनरुक्तवदाभास अलंकार–जहां पर भिन्न आकार वाले किंतु समान अर्थ वाले शब्दों का इस प्रकार प्रयोग किया जाता है कि पुनरुक्ति न होने पर भी पुनरुक्ति का आभास होने लगता है, वहां पर पुनरुक्तवदाभास अलंकार होता है। जैसे–

पयोधर बने उरोज उदार। (मानस)

यहां 'पयोधर' और 'उरोज' एकार्थक शब्द हैं जिनसे पुनरुक्ति का आभास होता है परंतु पयोधर में मातृत्वकाल के स्तनों का व उससे पूर्व दुग्धहीन स्तनों का वर्णन होने से यह 'पुनरुक्तवत् आभास' है।

उभयालंकार या मिश्रित अलंकार

इस वर्ग के अंतर्गत ऐसे कथनों को लिया जाता है, जिनमें एकाधिक अलंकारों का मिश्रण या सम्मिलन रहता है। कुछ आचार्य इन्हें उभयालंकार कहते हैं। उभयालंकार से तात्पर्य होता है जिस कथन में शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों का प्रयोग किया गया हो।

(32) संसृष्टि अलंकार–जब दो या दो से अधिक शब्दालंकार या अर्थालंकार किसी काव्य में मिश्रित होते हैं तब इसे संसृष्टि कहा जाता है। संसृष्टि तीन प्रकार की होती है–

1. शब्दालंकार–इसमें शब्दालंकारों का मेल होता है।
2. अर्थालंकार–इसमें कई अर्थालंकारों का मेल होता है।
3. शब्दार्थालंकार–इसमें शब्द एवं अर्थ दोनों प्रकार के अलंकार मिले होते हैं।

शब्दालंकार संसृष्टि का उदाहरण–

दीरघ सांस न लेहि दुख, सुख सांईहिं न भूल।
दई दई क्यों करत है, दई दई, सु कबूल।।

इसमें दीरघ-दुख, सुख सांईहिं आदि में छेकानुप्रास और दई में यमक (दई – दैव, दई – दिया) होने के कारण दो शब्दालंकार एकत्र हैं। ये दोनों अलग-अलग स्पष्ट विदित होते हैं। अतः यहां संसृष्टि शब्दालंकार है।

अर्थालंकार संसृष्टि का उदाहरण–

कीर कै कागर ज्यों नृप चोर विभूषण उप्पम अंगनि पाई।
औध तजी मग बास के रूख ज्यों, पंथ के साथी ज्यों लोग लुगाई।
संग सुबंधु पुनीत प्रिया, मनो धर्म क्रिया धरि देह सुहाई।
राजिवलोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाईं।

इसमें उपमा और उत्प्रेक्षा दोनों अर्थालंकार की संसृष्टि है।

शब्दार्थालंकार की संसृष्टि है–

सम सुबरन सुषमाकर सुखद न थोर।
सीय अंग सखि कोमल कनक कठोर।

इसमें अनुप्रास शब्दालंकार है और व्यतिरेक अर्थालंकार भी है। इसलिए यहां शब्दार्थालंकार संसृष्टि है। वे दोनों ही यहां अलग-अलग स्पष्ट रूप से देखे जा रहे हैं।

टिप्पणी

(33) संकर अलंकार–जब एक ही छन्द में अनेक अलंकारों का सम्मेलन नीर-क्षीर न्याय से अर्थात परस्पर सापेक्ष रूप से हो, वहां संकर अलंकार होता है। जिस प्रकार एक ही पात्र में रखे हुए तिलों और चावलों में परपर अभेद संबंध हो जाता है, उसी प्रकार संकर अलंकार में प्रयुक्त अनेक अलंकार परस्पर सापेक्ष लगते हैं। जैसे–

बीती विभावरी जाग री।
अंबर पनघटन में डुबो रही
तारा घट ऊषा नागरी।
खगकुल कुल-कुल सा बोल रहा
किसलय का अंचल डोल रहा,
लो यह लतिका भी भर लाई
मधु मुकुल नवल रस-गागरी।
अधरों में राग अमन्द पिये–
अलकों में मलयज बंद किये,
तू अब तक सोई है आली
आंखों में भरे विहाग री।

कविवर प्रसाद की इन पंक्तियों में ऊषा का वर्णन है तथा सुप्त नायिका का उद्बोधन अप्रस्तुत है। अतएव समासोक्ति है। साथ ही कवि ने अंबर को पनघट तारों का घट, ऊषा की नागरी, मुकुल को गागर कहकर उपमेय और उपमान में अभेद अरोपित किया है, अतः सांग रूपक है। बीती विभावरी, मधु-मुकुल में अनुप्रास है। खगकुल कुल-कुल में यमक है। अधरों में अमंद राग पीना, अब तक सोते रहने में हेतु है, अतः काव्यलिंग अलंकार है। क्योंकि इसमें हेतु प्रदर्शित किया जाता है, किंतु अंगी रूपक अलंकार है। अन्य अलंकार अंग-रूप में है। अतः इन पंक्तियों में अनुप्रास, यमक समासोक्ति, काव्यलिंग मुख्य रूपक अलंकार का उपकार करते हैं, जिनसे इनका संकर है।

(34) मानवीकरण अलंकार–जहां पर अमूर्त भावों का मूर्तीकरण कर के और जड़ पदार्थों का चेतनवत वर्णन किया जाता है वहां मानवीकरण अलंकार होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि जहां अमूर्त अथवा जड़ पदार्थों का मानवीय चेष्टाओं की तरह चेष्टाएं करते हुए वर्णन किया जाता है वहां पर मानवीकरण अलंकार होता है, जैसे–

उधो! मन नाहीं दस-बीस।
एक हुतो सो गयो स्याम संग को आराधे ईस।। *(सूरदास)*

टिप्पणी

यहां अमूर्त मन को स्याम के साथ चला गया कहना उसका मानवीकरण करना है। क्योंकि गमन करना मानवीय कार्य है।

(35) ध्वन्यार्थ व्यंजना अलंकार–काव्य रचना में कई बार इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग होता है जिनकी ध्वनि ही उन शब्दों के अर्थ को भी ध्वनित या व्यंजित करती है। इस अलंकार के अंतर्गत भाषा की ध्वन्यात्मकता का विशेष महत्व रहता है। उदाहरण के लिए–

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि।

इस पंक्ति में 'कंकन', 'किंकिनि' आदि शब्द ध्वन्यात्मक हैं और अर्थ का द्योतन भी करते हैं, अर्थात इन शब्दों में 'किंकिनि' (रघनी) और 'कंकन' (कंगन) के बजने की-सी ध्वनि निकलती है।

(36) विशेषण विपर्यय अलंकार–जब किसी विशेषण को उसके विशेष्य से न जोड़कर किसी दूसरे शब्द का विशेषण बना दिया जाए, तो इसे विशेषण-विपर्यय अलंकार कहा जाता है।

जयशंकर प्रसाद की निम्नलिखित पंक्ति विशेषण-विपर्यय का उदाहरण है–

कुसुमति कुंजों में थे पुलकित, प्रेमालिंगन हुए विलीन।

यहां 'प्रेमालिंगन' का विशेषण 'पुलकित' है। वास्तव में 'पुलकित' विशेषण व्यक्ति का ही हो सकता है, 'प्रेमालिंगन' का नहीं।

3.3.3 पर्यायवाची, विलोम शब्द, मुहावरे एवं लोकोक्ति

- **पर्यायवाची शब्द**

शब्द और अर्थ के संबंध पर विचार करने के दौरान हमने जाना कि इनके बीच का संबंध स्थायी न होकर यादृच्छिक होता है। यदि शब्द और अर्थ के बीच का संबंध स्थायी होता तो किसी एक वस्तु, भाव या विचार के लिए एक ही शब्द होता। चूँकि यह रिश्ता मानव मन की सामूहिक चेतना पर निर्भर करता है इसलिए किसी एक वस्तु या विचार के लिए कई शब्दों का प्रयोग होता है। जैसे 'कपड़ा' को हम 'वस्त्र' भी कहते हैं और 'अम्बर' भी। यहाँ 'कपड़ा', 'वस्त्र' और 'अम्बर' समान अर्थ प्रकट करते हैं अतः इन्हें पर्यायवाची शब्द कहेंगे। 'पर्याय' का तात्पर्य है समान अर्थ वाला। जिन शब्दों के अर्थ में समानता हो उन्हें पर्यायवाची शब्द कहते हैं।

जो भाषा जितनी प्राचीन और समृद्ध होती है उसमें उतने ही ज्यादा पर्यायवाची शब्द होते हैं। ये शब्द किसी भी भाषा के सौन्दर्य को बढ़ाने में काफी मददगार होते हैं। यदि हम किसी भाव के लिए बार–बार एक ही शब्द का प्रयोग करें तो पाठक को बोरियत होगी। पर्यायवाची शब्दों के द्वारा हमें अलग–अलग शब्दों के प्रयोग का विकल्प उपलब्ध होता है जिससे हमारी अभिव्यक्ति निखरती है। किसी भाषा पर अपनी पकड़ मजबूत करने के लिए हमें अधिक–से–अधिक पर्यायवाची शब्दों की जानकारी रखनी चाहिए।

टिप्पणी

पर्यायवाची शब्दों के संबंध में यह बात भी ध्यान रखनी चाहिए कि प्रत्येक पर्यायवाची शब्द बिल्कुल समान अर्थ की अभिव्यंजना नहीं करते। प्रत्येक शब्द का निश्चित अर्थ होता है जो किसी अन्य शब्द द्वारा प्रकट करना कठिन है। 'कमल' शब्द का पर्यायवाची शब्द है 'जलज' और 'पंकज'। अब यहाँ जल में पैदा होने वाली हर वस्तु को 'जलज' और 'पंक' अर्थात 'कीचड़' में जनमने वाली प्रत्येक वस्तु को 'पंकज' कहा जाता है। 'कमल' एक खास फूल को कहते हैं। चूँकि यह 'जल' और 'पंक' में पैदा होता है इसलिए इसे 'जलज' और 'पंकज' भी कहते हैं। तात्पर्य यह कि पर्यायवाची शब्दों के अर्थ लगभग समान होते हैं लेकिन उनके सूक्ष्म अर्थ भिन्न–भिन्न भी हो सकते हैं।

जिन शब्दों के अर्थ में समानता होती है, उन्हें समानार्थक या पर्यायवाची शब्द कहते है। हिन्दी भाषा में एक शब्द के समान अर्थ वाले कई शब्द हमें मिल जाते है, जैसे –

पहाड़ – पर्वत, अचल, भूधर।

ये शब्द पर्यायवाची कहलाते है। इन शब्दों के अर्थ में समानता होती है, लेकिन प्रत्येक शब्द की अपनी विशेषता होती है। पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग करते हुए विशेष सावधानी बरतनी चाहिए। कुछ पर्यायवाची शब्द यहाँ दिए जा रहे हैं –

अंधकार – तिमिर, अँधेरा, तम।

आग – अग्नि, अनल, पावक, दहन, ज्वलन, धूमकेतु।

अच्छा – उचित, शोभन, उपयुक्त, शुभ, सौम्य।

अजेय – अजित, अपराजित, अपराजेय।

अतिथि – पाहुन, आगंतुक, अभ्यागत, मेहमान।

अनुचर – नौकर, दास, सेवक, परिचारक।

अनुपम – अनूठा, अनोखा, अपूर्व, निराला, अभूतपूर्व।

अन्य – पृथक, और, भिन्न, दूसरा।

अनाज – अन्न, धान्य।

अरण्य – विपिन, वन, कानन, कान्तार, जंगल।

आभूषण – विभूषण, भूषण, गहना, अलंकार।

आज्ञा – हुक्म, आदेश, निर्देश।

अमृत – सुधा, अमिय, पीयूष, सोम, अमी।

असुर – दैत्य, दानव, राक्षस, निशाचर, रजनीचर, दनुज।

अश्व – वाजि, घोड़ा, घोटक, हय, तुरंग।

आम – रसाल, आम्र, अमृतफल।

अंहकार – गर्व, अभिमान, दर्प, मद, घमंड।

टिप्पणी

आँख – लोचन, नयन, नेत्र, चक्षु, दृग, विलोचन, दृष्टि।
आकाश – नभ, गगन, अम्बर, व्योम, अनन्त, आसमान।
आनंद – हर्ष, सुख, आमोद, मोद, प्रमोद, उल्लास।
आश्रम – कुटी, विहार, मठ, संघ, अखाड़ा।
आंसू – नेत्रजल, नयनजल, चक्षुजल, अश्रु।
इंद्र – देवराज, सुरेन्द्र, सुरपति, अमरेश, देवेन्द्र, सुरराज, सुरेश।
इन्द्राणी – इंद्रवधु, शची।
ईश्वर – भगवान, परमेश्वर, जगदीश्वर, विधाता।
इच्छा – अभिलाषा, चाह, कामना, लालसा, मनोरथ, आकांक्षा।
उन्नति – प्रगति, विकास, उत्कर्ष, अभ्युदय, उत्थान, वृद्धि।
उत्साह – आवेग, जोश, उमंग।
उद्यान – बाग, कुसुमाकर, वाटिका, उपवन, बगीचा।
ओंठ – ओष्ठ, अधर, होंठ।
कमल – पद्म, पंकज, नीरज, सरोज, जलज।
कल – सुन्दर, अगला दिन, बीता हुआ दिन, मशीन, कोमल, सुहावना।
कपड़ा – चीर, पट, वसन, अम्बर, वस्त्र।
कनक – गेहूं का आटा, स्वर्ण, धतूरा, सोना।
कृषक – हलवाहा, किसान, कृषिजीवी, खेतिहर।
कान – श्रवण, श्रुतिपट, कर्ण, श्रवणेंद्रिय।
कोमल – नाजुक, नरम, मृदु, सुकुमार, मुलायम।
कोष – भंडार, खजाना, निधि।
कोयल – वनप्रिय, पिक, कोकिल, काक्पाली, वसंतदूत।
किरण – मरीचि, कर, अंशु, रश्मि, मयूख।
किनारा – कगार, कूल, तट, तीर।
कृपा – प्रसाद, दया, अनुग्रह।
खल – अधम, दुर्जन, दुष्ट, कुटिल, नीच।
गाय – गौ, धेनु, सुरभि।
गधा – गर्दभ, खर, धूसर, शीतलावाहन।
चरण – पद, पग, पाँव, पैर।
चातक – सारन, मेघजीवन, पपीहा, स्वातीभक्त।
किताब – पोथी, ग्रन्थ, पुस्तक।
कपड़ा – चीर, वसन, पट, वस्त्र, अम्बर, परिधान।

टिप्पणी

कामदेव – मन्मथ, मनोज, काम, मार, कंदर्प, अनंग, मनसिज, रतिनाथ, मीनकेतु।

कुबेर – किन्नरपति, किन्नरनरेश, यक्षराज, धनाधिप, धनराज, धनेश।

कृष्ण – राधापति, घनश्याम, वासुदेव, माधव, मोहन, केशव, गोविन्द, गिरधारी।

कल्पवृक्ष – कल्पतरु, देवतरु, कल्पद्रुम, देववृक्ष।

गंगा – देवनदी, मंदाकिनी, भागीरथी, जाह्नवी, देवपगा।

गणेश – गजानन, गौरीनंदन, गणपति, गणनायक, शंकरसुवन, लम्बोदर, महाकाय।

क्रोध – रोष, कोप, अमर्ष, कोह।

गज – हाथी, हस्ती, मतंग, कुंजर, करी।

गुरु – शिक्षक, बड़ा, भारी, वृहस्पति।

ग्रीष्म – ताप, घाम, निदाघ, गर्मी।

गृह – घर, सदन, गेह, भवन, धाम, निकेतन, निवास।

चंद्रमा – चन्द्र, शशि, हिमकर, राकेश, रजनीश, निशानाथ, सोम, मयंक, सारंग, सुधाकर, कलानिधि।

चतुर – चालाक, कुशल, पटु, नागर, दक्ष, प्रवीण।

जल – वारि, नीर, तोय, अम्बु, उदक, पानी, जीवन, पय।

जहाज – पोत, जलयान।

जमुना – सूर्यसुता, कृष्णा, अर्कजा, रवितनया, कालिंदी।

जीभ – रसना, जिह्वा, गिरा, रसज्ञा।

झंडा – फरहरा, ध्वज, पताका, निशान।

झरना – प्रताप, उत्स, निर्झर, सोता, श्रोत।

झूठ – असत्य, मिथ्या, मृषा, अनृत।

तन – काया, तनु, शरीर, देह, कलेवर।

तरु – विटप, पादप, पेड़, द्रुम, वृक्ष।

तात – परम, प्यारा, पूज्य, पिता।

तालाब – सरोवर, जलाशय, सर, पुष्कर, पोखरा।

तलवार – असि, करवाल, कृपाण, खड़ग, चंद्रहास।

तीर – वाण, सर, नाराच, विहंग।

तोता – सुग्गा, शुक, सुआ, कीर, दाड़िमप्रिय।

दरिद्र – निर्धन, गरीब, रंक, कंगाल, दीन।

दिन – दिवस, दिवा, वार।

दुःख – पीड़ा, कष्ट, व्यथा, वेदना, संताप, शोक, खेद, पीर, क्लेश।

दूध – दुग्ध, क्षीर, पय।

दर्पण – शीशा, आरसी, आईना, मुकुर।

दांत – दन्त, दशन, रद।

दुर्गा – चंडिका, भवानी, कुमारी, कल्याणी, महागौरी, कालिका, शिवा।

देवता – सुर, देव, अमर, वसु, आदि।

धनुष – धनुही, धनु, सारंग, चाप, शरासन।

धन – दौलत, संपत्ति, सम्पदा, वित्त।

धरती – पृथ्वी, भू, भूमि, धरणी, वसुंधरा, अचला, मही, रत्नवती, रत्नगर्भा।

ध्वनि – स्वर, आवाज, आहट।

नदी – सरिता, तटिनी, सरि, तरंनिणी।

नया – नूतन, नव, नवीन, नव्य।

नरक – यमलोक, यमालय, कुम्भीपाक।

नित्य – सदा, सर्वदा, सतत, निरंतर।

निरादर – अपमान, उपेक्षा, अवहेलना, तिरस्कार, अवज्ञा।

नाव – नौका, बेड़ा, तरिणी, जलयान, जलवाहन।

पवन – वायु, हवा, समीर, वात, मारुत, अनिल, पवमान।

पहाड़ – पर्वत, गिरि, अचल, नग, भूधर, महीधर।

पक्षी – खग, चिड़िया, गगनचर, पखेरू, विहंग, नभचर।

पानी – जल, नीर, वारि, सलिल, अंबु।

पार्वती – उमा, गिरिजा, गौरी, शिवा, भवानी, अम्बिका।

पति – स्वामी, प्राणाधार, प्राणप्रिय, प्राणेश, आर्यपुत्र।

पत्नी – गृहिणी, वधू, वनिता, दारा, जोरू, वामांगिनी।

पुत्र – बेटा, आत्मज, वत्स, तनुज, तनय, नंदन।

पुत्री – बेटी, आत्मजा, तनुजा, सुता, तनया।

पुष्प – फूल, सुमन, कुसुम, मंजरी, प्रसून।

बादल – मेघ, घन, जलधर, जलद, वारिद, नीरद, सारंग।

बालू – रेत, बालुका, सैकत।

बन्दर – वानर, कपि, कपीश, हरि।

बिजली – घनप्रिया, चपला, दामिनी, तडित, विद्युत।

ब्रह्मा – विधि, विधाता, प्रजापति, निर्माता, धाता, चतुरानन, प्रजापति।

विष – जहर, हलाहल, गरल, कालकूट।

वृक्ष – पेड़, पादप, विटप, तरु, द्रुम।

टिप्पणी

विष्णु – नारायण, दामोदर, पीताम्बर, चक्रपाणि।
भौरा – भ्रमण, भँवरा, भृंग, मिलिंद, मधुप।
महेश – महादेव, नीलकंठ, चंद्रशेखर, गंगाधर, रुद्र, शिव, विश्वनाथ।
मनुष्य – आदमी, नर, मानव, मानुष, मनुज।
मदिरा – शराब, हाला, आसव, मधु, मद्य।
मोर – केकी, कलापी, नीलकंठ, नर्तकप्रिय, मयूर।
मधु – शहद, रसा, कुसुमासव।
मृग – हिरण, सारंग, कृष्णसार।
मछली – मीन, मत्स्य, जलजीवन, शफरी।
मूर्ख – गँवार, अल्पमति, अज्ञानी, अनपढ़, जड़।
मृत्यु – देहांत, मौत, अंत, स्वर्गवास, मरण।
मोक्ष – मुक्ति, परधाम, निर्वाण, परमपद, अपवर्ग।
यमराज – धर्मराज, यम, अन्तक, सूर्यपुत्र, दंडधर।
रात – रात्रि, रैन, रजनी, निशा, यामिनी, तमी, निशि, यामा।
राजा – नृप, भूप, भूपाल, नरेश, महीपति, अवनीपति।
लक्ष्मी – कमला, पद्मा, रमा, हरिप्रिया, श्री, इंदिरा।
विवाह – शादी, गठबंधन, परिणय, ब्याह, पाणिग्रहण।
समूह – गण, झुण्ड, संघ, वृन्द, समुदाय।
वायु – पवन, अनिल, समीर, हवा, वात।
वस्त्र – कपडा, वसन, अम्बर, परिधान, पट।
साँप – सर्प, नाग, विषधर, उरग, भुजंग।
शिव – भोलेनाथ, शम्भू, त्रिलोचन, महादेव, नीलकंठ, शंकर।
सूर्य – रवि, सूरज, दिनकर, प्रभाकर, आदित्य, भास्कर, दिवाकर।
संसार – जग, विश्व, जगत, लोक, दुनिया।
शरीर – देह, तनु, काया, कलेवर, अंग, गात।
सोना – स्वर्ण, कंचन, कनक, हेम, सुवर्ण।
स्त्री – अबला, नारी, महिला, रमणी, दारा, कान्ता।
सिंह – केसरी, शेर, महावीर, नाहर, सारंग, मृगराज।
सेना – वाहिनी, कटक, चनु।
समुद्र – सागर, पयोधि, उदधि, पारावार, नदीश, जलधि।
हनुमान – महावीर, पवनसुत, रामदूत, मारुति, कपीश, बजरंगबली।

टिप्पणी

हर्ष – आनंद, प्रसन्नता, प्रमोद, खुशी, आमोद।

हाथी – गज, हस्ती, नाग, मतंग, कुंजर।

शत्रु – रिपु, दुश्मन, अमित्र, वैरी।

हिमालय – हिमगिरी, हिमाचल, गिरिराज, पर्वतराज, नगेश।

हृदय – छाती, वक्ष, वक्षस्थल, हिय, उर।

• विलोम शब्द

ऊपर हमने शब्द और अर्थ के बीच के संबंध का विस्तृत अध्ययन किया। हम जानते हैं कि शब्द और उसके अर्थ का निर्माण समाज के बीच होता है। समाज में किसी वस्तु, भाव या विचार के मूल रूप के साथ–साथ उसका विपरीत रूप भी होता है। जैसे यदि 'सुख' है तो उसके साथ 'दुख' भी है। यदि 'मीठा' है तो उसके साथ 'तीखा' भी है। 'विलोम' शब्द का अर्थ है 'उल्टा' या 'विपरीत'। किसी शब्द से प्रकट होने वाले अर्थ का विपरीत अर्थ प्रकट करने वाले शब्द को 'विलोम शब्द' कहते हैं। जैसे 'जन्म' शब्द का विलोम शब्द 'मृत्यु' होगा। यहाँ यह भी ध्यान रखने की बात है कि दो विलोम शब्द एक–दूसरे का विलोम होते हैं। जैसे यदि 'जन्म' का विलोम शब्द 'मृत्यु' है तो 'मृत्यु' शब्द का विलोम शब्द 'जन्म' होगा।

विलोम शब्दों के निर्धारण के दौरान यह बात ध्यान रखनी चाहिए कि संज्ञा शब्द का विलोम संज्ञा शब्द ही होगा विशेषण शब्द नहीं। जैसे 'आग' शब्द का विलोम 'पानी' होगा। अब 'आग' शब्द से जलने का भाव प्रकट हो रहा है तो उसका विलोम 'शीतलता' नहीं हो सकता। इसी प्रकार विशेषण शब्दों का विलोम विशेषण ही होगा संज्ञा नहीं।

हिन्दी भाषा के कुछ प्रमुख शब्दों के विलोम नीचे दिये जा रहे हैं–

शब्द	**विलोम शब्द**
आरंभ	अंत
आलोक	अंधकार
आयात	निर्यात
इष्ट	अनिष्ट
इच्छा	अनिच्छा
ईश्वर	अनीश्वर
उन्नति	अवनति
उत्तीर्ण	अनुत्तीर्ण
उपकार	अपकार
उत्कृष्ट	निकृष्ट
उतार	चढ़ाव
उचित	अनुचित

अभ्यंतर	बाह्य
उपयोगी	अनुपयोगी
उत्तर	प्रश्न, दक्षिण
एकत्र	सर्वत्र
एकांगी	सर्वांगी
एक	अनेक
ऐच्छिक	अनिवार्य
कठोर	मुलायम
मान	अपमान
आशा	निराशा
आवश्यक	अनावश्यक
आकाश	पाताल
आदि	अंत
आय	व्यय
आकर्षण	विकर्षण
आज्ञा	अवज्ञा
आस्तिक	नास्तिक
आदान	प्रदान
आदर	निरादर
आग	पानी
अनुरक्ति	विरक्ति
अनुराग	विराग
अमीर	गरीब
अर्थ	अनर्थ
अस्त	उदय
अनुकूल	प्रतिकूल
अपेक्षा	उपेक्षा

- **मुहावरे**

ऐसा वाक्यांश अथवा पदबंध, जो अपने शाब्दिक अर्थ के बदले किसी विलक्षण अथवा लाक्षणिक अर्थ की प्रतीति कराये, 'मुहावरा' कहलाता है। जैसे– 'एक आँख से देखना' का शाब्दिक अर्थ दोनों आँखों से न देखकर किसी एक आँख से देखने की क्रिया से

टिप्पणी

है लेकिन लाक्षणिक अर्थ में यह सबको समान रूप से देखने के संदर्भ में प्रयुक्त किया जाता है। मुहावरों का प्रयोग वाक्य में लालित्य पैदा करने के लिए किया जाता है। दैनिक जीवन में प्रचलित वाक्यों के साथ मुहावरे के प्रयोग से वाक्य को प्रभावी ढंग से संप्रेषित किया जाता है। मुहावरे का प्रयोग करने से पूर्व उनका सटीक अर्थ जान लेना चाहिए अन्यथा अर्थ का अनर्थ भी हो सकता है।

मुहावरा मूलतः अरबी भाषा के 'मुहावररू' का हिन्दी में प्रचलित नाम है। उर्दू में इसे 'मुहाविरा' कहा जाता है। हिन्दी में यह वाच्यार्थ के बदले 'विलक्षण अर्थ देने वाले वाक्यांश' के रूप में प्रचलित है।

हिन्दी के कुछ प्रचलित मुहावरे, उनके अर्थ तथा वाक्य में प्रयोग

नीचे कुछ दैनिक जीवन में प्रचलित मुहावरे उनके अर्थ, वाक्य में प्रयोग सहित दिए जा रहे हैं, ताकि पाठक सुस्पष्ट अर्थ समझ सकें।

अंक भरना (स्नेह से गले लगाना)– यात्रा से लौटते ही माँ ने अपने बेटे को अंक भर लिया।

अंगार उगलना (अत्यधिक क्रोध में बुरा–भला कहना)– छोटी–सी बात पर चिढ़कर मुखिया जी अंगार उगलने लगते हैं।

अंगूर खट्टे होना (प्राप्त न कर सकने पर वस्तु को बेकार बताना)– 'सेना की नौकरी में जान का खतरा बराबर बना रहता है, अच्छा हुआ जो मेरा सिलेक्शन नहीं हुआ।' रमेश की बात सुनकर महेश ने कहा, ठीक है भाई ! अंगूर ही खट्टे हैं।

अन्धे की लकड़ी/लाठी (एकमात्र सहारा)– बेटे की सड़क दुर्घटना में मृत्यु हो गई, अब तो बेटी ही उस अन्धे की लकड़ी है।

अन्धे के हाथ बटेर लगना (बिना प्रयास ही बड़ी वस्तु पा लेना)– महेश को लाटरी मिलना, अँधे के हाथ बटेर लगना है।

अक्ल पर पत्थर पड़ना (समझ न रहना)– तुम्हारे अक्ल पर पत्थर पड़ गया है क्या ! दामाद के सामने जो–सो बके जा रहे हो।

अपना उल्लू सीधा करना (अपना मतलब निकालना)– कई बीमा कंपनियाँ अपना उल्लू सीधा करते ही कंपनी बन्द कर देते हैं।

अपने पाँव आप कुल्हाड़ी मारना (अपना अहित करना)– सरकारी नौकरी छोड़ बनिये की नौकरी करना अपने पाँव आप कुल्हाड़ी मारना है।

अब–तब करना (टाल देना)– बकाया पैसा माँगने पर वह अब–तब करना शुरू कर देता है।

आँख का तारा (बहुत प्यारा)– उसकी माँ के लिए छोटा बेटा ही आँख का तारा है।

आसमान टूट पड़ना (अचानक विपत्ति आ पड़ना)– सड़क हादसे में माँ–बाप की मृत्यु हो गई, बेचारे पर आसमान टूट पड़ा।

टिप्पणी

ईंट से ईंट बजाना (विनाश करना)– भारतीय सेना किसी भी शत्रु देश की ईंट से ईंट बजाने में दक्ष है।

ईद का चाँद होना (बहुत दिनों बाद दिखना)– तुम आजकल कहाँ रहते हो कि ईद का चाँद हो गए हो।

उगल देना (रहस्य उजागर कर देना)– पुलिस की मार से चोर सारी बात उगल देते हैं।

कमर कसना (तैयार हो जाना)– मैट्रिक उत्तीर्ण करने के लिए उसने कमर कस ली और पढ़ाई में जुट गया है।

कीचड़ उछालना (बुराई करना)– दूसरों पर कीचड़ उछालने में उसे बड़ा मजा आता है।

खिचड़ी पकाना (भीतर–भीतर षड्यंत्र रचना)– मेरे पड़ोसी मुझे घर से बाहर भगा देने के लिए अक्सर खिचड़ी पकाते रहते हैं।

खून–पसीना एक करना (कठिन परिश्रम करना)– अच्छी पैदावार के लिए किसान खेत में खून–पसीना एक कर देता है।

गागर में सागर भरना (थोड़े में बहुत कुछ कह जाना)– बिहारी ने अपने दोहों में गागर में सागर भर दिया है।

गुदड़ी के लाल होना (गरीबी में भी गुणवान् पैदा होना)– अब्दुल कलाम आजाद सचमुच गुदड़ी के लाल थे।

घर फूँक तमाशा देखना (अपनी हानि कर मौज मनाना)– तुम्हारी तरह मुझे घर फूँक तमाशा देखने का शौक नहीं है।

घोड़े बेचकर सोना (निश्चिंत रहना)– कल से परीक्षा शुरू होने वाली है और यह महाशय घोड़े बेचकर सो रहे हैं।

चार दिन की चाँदनी (थोड़े दिनों के लिए सुख)– पुलिया का ठेका मिलने पर कैसे इतराएँ, बस चार दिन की चाँदनी है।

चूना लगाना (धोखा देना)– वह लोगों को बड़ी आसानी से चूना लगा जाता है।

छठी का दूध याद आना (संकट में पिछले सुख की याद आना)– महीनों से वेतन न मिलने पर अब छठी का दूध याद आ रहा है।

छाती पर साँप लोटना (ईर्ष्या करना)– पड़ोसी की तरक्की देखकर मिश्रा जी की छाती पर साँप लोटने लगते हैं।

जमीन आसमान एक करना (सब उपाय करना)– बेटे ने बाप को कैंसर से बचाने के लिए जमीन आसमान एक कर दिया।

जी चुराना (काम करने से कतराना)– पढ़ाई से जी चुराओगे तब बाद में तुम्हें पछताना पड़ेगा।

टाँग अड़ाना (अड़चन पैदा करना)– उसे हर काम में टाँग अड़ाने की आदत है, पिकनिक में नहीं ले जायेंगे।

टेढ़ी उँगली से घी निकालना (होशियारी से काम साधना)– सारी योग्यताओं के बावजूद जब नौकरी नहीं मिल सकी, तब विधायक से फोन पर बात करवा टेढ़ी उँगली से घी निकालने का काम किया।

टेढ़ी खीर (कठिन काम)– गर्मी की दुपहरी में साइकिल से सफर करना टेढ़ी खीर है।

ठोकर खाना (दुःख झेलना)– ठोकर खाने पर आदमी सुधर जाता है।

डंके की चोट पर कहना (स्पष्ट घोषणा करना)– मैं डंके की चोट पर कहता हूँ कि तुम्हारा दोस्त शराबी है।

डूबते को तिनके का सहारा (विपत्ति में थोड़ा सहयोग बेहद लाभकारी सिद्ध होना)– बेरोजगारी में चपरासी की नौकरी ने मुझे डूबते को तिनके का सहारा दे दिया।

ढिंढोरा पीटना (प्रचारित करना)– अमेरिका के राष्ट्रपति बराक ओबामा ने ओसामा की मृत्यु का ढिंढोरा पिटवा दिया।

तिल का ताड़ करना (छोटी बात को बढ़ा–चढ़ाकर कहना)– मीडिया ने उस अभिनेत्री के सर्दी–जुकाम सी मामूली बीमारी को तिल का ताड़ बनाते हुए स्वाइन फ्लू होना बताया।

तूती बोलना (प्रभाव जमना)– योग्य व्यक्ति की सर्वत्र तूती बोलती है।

दाल में काला होना (संदेहास्पद बात)– जरूर दाल में कुछ काला है, अन्यथा वह सीधे मुँह मुझसे कभी बात नहीं करती।

दुम दबाकर भाग जाना (डर कर भागना)– पुलिस की गाड़ी देखते ही मुहल्ले से सारे जुआरी दुम दबाकर भाग गये।

धुन सवार होना (किसी बात के पीछे पड़ना)– उसे इंजीनियरिंग की पढ़ाई की धुन सवार है।

नाक रगड़ना (दीनतापूर्वक विनती करना)– मजदूर के लाख नाक रगड़ने के बावजूद मैनेजर ने उसे आलसी प्रवृत्ति के कारण दुबारा नौकरी पर नहीं रखा।

नौ–दो ग्यारह होना (भाग जाना)– गणित की कक्षा शुरू होते ही कुछ लड़के कक्षा से नौ–दो ग्यारह हो गये।

पीठ दिखाना (युद्धक्षेत्र से भाग जाना)– कारगिल में पाकिस्तानी सेना को भारतीय नौजवानों ने अन्त में पीठ दिखाने पर विवश कर दिया।

पेट में चूहे दौड़ना (अत्यधिक भूख लगना)– दिनभर काम करते–करते पेट में चूहे दौड़ने लगे हैं।

फूला न समाना (बहुत प्रसन्न होना)– जमीन मुकदमे में जीत की खबर सुनकर किसान फूला न समाया।

बाग बाग होना (अत्यधिक प्रसन्न होना)– खेत में गेहूँ की अच्छी पैदावार देखकर किसान बाग बाग हो उठा।

बीड़ा उठाना (उत्तरदायित्व लेना)– भूकंप प्रभावित नेपाल के पुनरुद्धार का बीड़ा भारत ने उठाया।

भंडा फूटना (गुप्त बात उजागर होना)– सीबीआई की छापेमारी से नेताजी के काले कर्मों का भंडा फूट पड़ा।

भाड़ झोंकना (बेकार में समय बर्बाद करना)– सिविल सर्विस की तैयारी के लिए कड़ी मेहनत चाहिए, भाड़ झोंकने पर पछताना पड़ेगा।

मुँह पर थूकना (अपमानित करना)– उनका पूरा परिवार धूर्त है। उनकी भलाई की बात करो तब भी मुँह पर थूक देते हैं।

मुँह मोड़ना (त्याग देना)– नौकरी से इस्तीफा देते ही परिवार वालों ने भी महेश से मुँह मोड़ लिया।

रफा–दफा करना (समाप्त करना)– रिश्वत लेने के बाद पुलिस ने हत्या का प्रकरण रफा–दफा कर दिया।

रास्ते पर लाना (सुधारना)– भारत की गिरती अर्थव्यवस्था को रास्ते पर लाने में भ्रष्टाचार सबसे बड़ा बाधक है।

लकीर का फकीर होना (पुरानी मान्यताओं पर विश्वास करना)– भूत–प्रेत के मामले में आज भी कई लकीर के फकीर हैं।

लेने के देने पड़ना (लाभ के बदले हानि पहुँचना)– बड़ी रकम है। तुम खुद जाकर बैंक में जमा कर दो। नौकर के भरोसे कहीं लेने के देने न पड़ जाए।

सब्ज–बाग दिखाना (लालच देकर बहकाना)– नेताओं के चुनावी घोषणा–पत्र में हमेशा आम जन के लिए विकास का सब्ज–बाग दिखाया जाता है।

साँप को दूध पिलाना (दुष्ट का उपकार करना)– प्रकाश को मुखिया बनाना साँप को दूध पिलाना है।

सिक्का जमना (प्रभाव जमना)– गजल गायन के क्षेत्र में जगजीत सिंह का सिक्का आज पर्यंत जमा हुआ है।

हथियार डाल देना (हार मान जाना)– बमवर्षक विमान देखकर आतंकवादी ने हथियार डाल दिये।

हाथ मलना (पश्चाताप करना)– दहेज की माँग पर लड़की ने शादी से मना कर दिया तब वर पक्ष हाथ मलता रह गया।

• लोकोक्तियाँ (कहावतें)

अर्थ एवं परिभाषा– 'कहावत' उस पद विन्यास को कहते हैं, जिसमें जीवनानुभव की कोई सारगर्भित बात संक्षेप में सरस, सुन्दर प्रभावी ढंग से चमत्कारिक शैली में कही जाती है। संस्कृत में कहावत को 'सूचित' और अंग्रेजी में 'Proverb' तथा उर्दू में इसे 'मसल' कहा जाता है। कहावत को 'लोकोक्ति' भी कहा जाता है।

लोकोक्ति के पीछे कोई एक कहानी अथवा घटना जुड़ी होती है। वही कहानी अथवा घटना कालांतर में जब लोगों की जुबान पर प्रचलित हो जाती है, तब 'लोकोक्ति' कहलाती है।

• मुहावरा और कहावत (लोकोक्ति) की तुलना

समानता

- दोनों ही भाषा में चमत्कार पैदा कर उसे सरस और बेहद प्रभावी बनाते हैं।
- दोनों ही अपने सामान्य अर्थ से अधिक विलक्षण अर्थ को प्रस्तुत करते हैं।
- दोनों ही गम्भीर एवं जीवनानुभव की उपज हैं।
- दोनों ही प्रयोग के बाद अपनी सार्थकता सिद्ध करते हैं।
- समानार्थी या पर्यायवाची शब्दों के प्रयोग से दोनों ही अपनी अर्थवत्ता खो देते हैं।

अन्तर

मुहावरा	कहावत
• मुहावरा वाक्यांश होता है।	• कहावत में पूरा वाक्य होता है।
• मुहावरे का प्रयोग स्वतंत्र रूप से नहीं किया जा सकता है।	• कहावत स्वतंत्र रूप में भी प्रयोग की जाती है।
• मुहावरों से उद्देश्य एवं विधेय का पूरा स्पष्ट पता नहीं लगाया जा सकता है, अतः आशय स्पष्ट करने के लिए वाक्य में प्रयोग आवश्यक है।	• कहावत में उद्देश्य और विधेय स्पष्ट होता है, अतः वाक्य–प्रयोग के बिना ही आशय स्पष्ट हो जाता है।
• मुहावरा परिणाम से संबंधित नहीं होता।	• कहावत परिणाम पर आधारित होती है।
• मुहावरे का कार्य भाव सौंदर्य बढ़ाकर वाक्य में चमत्कार पैदा करना है।	• कहावत कथन के समर्थन में अथवा उसके विरोध में खण्डन प्रस्तुत करती है।
• मुहावरा काल, वचन और पुरुष के अनुरूप परिवर्तित होता है।	• कहावत का स्वरूप यथावत रहता है।
• मुहावरे को अर्थ स्पष्ट करने के लिए माध्यम की आवश्यकता होती है।	• कहावत के लिए माध्यम की जरूरत नहीं होती।
• मुहावरों के अन्त में प्रायः 'ना' प्रत्यय आता है।	• कहावत में ऐसा नहीं है।

नीचे कुछ महत्त्वपूर्ण कहावतें उनके अर्थ एवं प्रयोग सहित दी जा रही हैं, ताकि उनका अर्थ सुस्पष्ट हो सके–

अन्धों में काना राजा (निरक्षर लोगों के बीच कम पढ़ा लिखा व्यक्ति)– मेरे कस्बे में बिजली सुधारने के लिए कोई कर्मी नहीं है। एक मुकेश ही अन्धों में काना राजा है। इसलिए मुकेश ही सब कुछ है।

अब पछताये होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत (समय निकल जाने पर पछतावा महसूस होना)– दुकान में तुम सुरक्षा को लेकर कभी चिंतित नहीं रहे। अब चोरी हो जाने के बाद सुरक्षाकर्मी तैनात करने का क्या प्रयोजन? अब पछताये होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत।

आगे नाथ न पीछे पगहा (उत्तरदायित्व अथवा बंधन से रहित व्यक्ति)– मेरे घर में माँ अकेली है। वह मेरे लिए चिंतित रहती है इसलिए धार्मिक अनुष्ठान हो अथवा पार्टी। सब तुम्हें मुबारक हो। मैं घर जा रहा हूँ। तुम्हारे आगे नाथ न पीछे पगहा बस मौज है।

आम के आम गुठलियों के दाम (हर तरह से लाभ)– उसने पढ़ाई के दौरान पुरानी साईकिल आधे दाम में खरीद कर पढ़ाई के बाद फिर उसी आधे दाम में बेच दी। अर्थात आम के आम गुठलियों के दाम।

इधर कुआँ उधर खाई (दोनों ओर मुसीबत)– घर में बहू बीमार है और बिटिया के ससुराल वाले दहेज के लोभ से बेटी को मायके भेजने की तैयारी कर रहे हैं। मेरे लिए इधर कुआँ उधर खाई जैसा हो गया है।

ऊँट के मुँह में जीरा (अत्यल्प)– सौ सीट की सवारी गाड़ी में केवल पाँच यात्रियों का सफर करना ऊँट के मुँह में जीरा के समान है।

एक मछली सारे तालाब को गन्दा करती है (एक बुरा व्यक्ति पूरे समाज को बदनाम कर देता है)– रमेश आदतन अपराधी है। अब उसने घर में अवैध शराब बेचकर शान्तिप्रिय मोहल्ले को शराबियों का अड्डा बना दिया है। ठीक ही कहा गया है, एक मछली सारे तालाब को गन्दा कर देती है।

ओछे की प्रीति बालू की भीति (नीच व्यक्ति की मित्रता अस्थायी होती है)– उसने मित्रता के नाम पर मुझसे दस हजार रुपये उधार लिए थे। अब रकम माँगने पर गाली–गलौच करने लगता है। कहा भी गया है, 'ओछे की प्रीति बालू की भीति'।

काला अक्षर भैंस बराबर (निरक्षर आदमी)– रामलाल को बही–खाते का हिसाब दिखाना काला अक्षर भैंस बराबर है।

गेहूँ के साथ घुन भी पिसता है (बुरे के साथ भला भी बदनाम हो जाता है)– खरपतवार नाशक के छिड़काव से घास–फूस के साथ गुलाब के पौधे भी मर गए क्योंकि गेहूँ के साथ घुन भी पिसता है।

चिराग तले अँधेरा (अपनी बुराई नहीं दिखती)– बाप ने भ्रष्टाचार विरोधी मुहिम चला रखा है लेकिन बेटा अव्वल दर्जे का भ्रष्ट तहसीलदार है। सच ही कहा गया है, 'चिराग तले अँधेरा'।

जान है तो जहान है (जीवन ही सब कुछ है)– नक्सल प्रभावित क्षेत्र में जान जाने का खतरा देख उसने नौकरी करने से मना करते हुये कहा, 'जान है तो जहान है'।

तुम डाल–डाल हम पात–पात (चालाकी समझ जाना)– सायबर अपराधियों पर शिकंजा कसने के लिये पुलिस 'तुम डाल–डाल हम पात–पात' के अंदाज में नये तकनीकों का प्रशिक्षण ले रही है।

नौ दिन चले अढ़ाई कोस (सुस्ती से काम करना)– सरकारी आवास योजना के तहत भवन निर्माण की राशि मिलने में 'नौ दिन चले अढ़ाई कोस' की तर्ज पर दो साल लग गये।

हाथी चले बाजार, कुत्ता भौंके हजार (लोगों की बातों पर ध्यान न देकर अपने काम से मतलब रखना)– गाँव में मशरूम की खेती शुरू करने पर उसे सब हँस रहे थे लेकिन लोगों की परवाह न करते हुये जब वह कमाने लगा तब अधिक आमद होने लगी। कहा भी गया है, 'हाथी चले बाजार, कुत्ता भौंके हजार'।

3.3.4 चित्र आधारित कविता–कहानी की संरचना एवं वाक्य रचना

साहित्य सृजन में चित्रांकन और वाक्य–रचना विधान इसलिये महत्वपूर्ण होता है, क्योंकि इससे साधारणीकरण की प्रक्रिया सहजता से संपादित होती है। परिणामस्वरूप रचना की प्रभावोत्पादकता बढ़ जाती है।

(अ) कविता

कविता को हिन्दी साहित्य का मूलभूत अंग माना जाता है। हिन्दी साहित्य में जितना महत्व गद्य शिक्षण को दिया जाता है उतना ही महत्व कविता शिक्षण को भी दिया जाता है। जो बात व्यक्ति गद्य के माध्यम से नहीं कह सकता, वह कविता के माध्यम से कह सकता है। कविता मानव की भावनाओं को प्रस्तुत करने का सर्वोत्तम माध्यम है।

चित्र आधरित कविता वर्तमान में विद्यार्थियों के लिए सृजनशीलता का एक सशक्त माध्यम है। चित्रों की लात्मकता अभिव्यक्तियों को जीवंत रूप प्रदान करती है।

चित्र आधारित कविता इस प्रकार की होनी चाहिए जिससे छात्रों की सृजनशीलता एवं अनुभूतियों का विकास हो सके।

चित्र आधारित कविताओं के प्रमुख विषय– प्रकृति सौन्दर्य, वीरता, हास्यविनोद, प्रेरणा, संदेश, नर–नारी, छोटे परिवार सरीखे प्रतिरूप हो सकते है। इससे विद्यार्थियों में सामाजिकता की भावना, नैतिकता की भावना, आत्मविश्वास की भावना तथा अन्य सभी प्रकार की भावनाओं को विकसित किया जा सकता है।

(ब) कहानी

हिन्दी भाषा में कहानी की संरचना एक प्रभावशाली कला मानी जाती है। प्रत्येक व्यक्ति कहानी कहने की योग्यता नहीं रखता है। सभी व्यक्तियों में कहानी कला का विकास एक समान नहीं किया जा सकता।

कहानी संरचना को की क्षमता प्रकृतिगत है। यह प्रकृति द्वारा मनुष्य को प्रदान किया जाने वाला एक सुन्दर उपहार है, जो केवल कुछ ही भाग्यशाली व्यक्तियों को सुलभ होता है।

टिप्पणी

कहानी की संरचना में निम्नलिखित बातों का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए–

1) कहानी विद्यार्थियों के विषयानुकूल होनी चाहिए मुख्यतः चित्र आधारित कहानियाँ जो सृजनात्मक होती हैं।
2) कहानियों विद्यार्थियों के स्तर के अनुकूल हो जो उनकी अभिव्यक्ति के लिए अत्यंत आवश्यक है।
3) चित्र आधारित कहानियां वातावरण तथा विभिन्न शीर्षकों से संबंधित होती हैं
4) चित्र आधारित कहानियाँ विभिन्न रसों का ज्ञान प्रदान करने वाली होनी चाहिए।
5) चित्र आधारित कहानियां मानव जीवन की विभिन्न समस्याओं का ज्ञान प्रदान करने वाली होनी चाहिए।
6) चित्र आधारित कहानियाँ संस्कृति से संबंधित हो जिससे विद्यार्थियों का मानसिक विकास हो सके।

(स) वाक्य संरचना

वाक्य संरचना वाक्य का निर्माण करना है। वाक्य संरचना का प्रथम चरण शब्द संरचना से होता है। शब्द रचना इस स्तर पर आकर विद्यार्थियों को स्वयं की वृद्धि का प्रयोग करके शब्दों की रचना बनानी पड़ती है।

इससे ही वे लिखित परीक्षा में भी सफलता प्राप्त करते है। छात्रों को समाज के परिप्रेक्ष्य में शब्दचयन, प्रत्ययों आदि का प्रयोग करके शब्दरचना, के द्वारा सम्यक ज्ञान प्रदान करना चाहिए।

इससे विद्यार्थी अपने स्वयं के शब्दों का निर्माण करना प्रारंभ कर देते हैं और उनकी भाषा अभिव्यक्ति भी बहुत विस्तृत हो जाती है। वे किसी भी विषय पर अपने स्वयं के विचारों को अध्यापक के समक्ष प्रस्तुत करने में सक्षमता प्राप्त करते हैं। इसे ही शब्द रचना भी कहा जाता है।

वाक्य संरचना और शब्द वर्ग के संदर्भ में विद्यार्थियों को यह बताना चाहिए कि वे किस प्रकार वाक्यों का प्रयोग कर सकते हैं तथा शब्द वर्ग का किस समय कहां पर और कैसे प्रयोग किया जाना अति लाभदायक सिद्ध हो सकता है।

वाक्य संरचना चित्र आधारित भी होती है जो विद्यार्थियों को मानसिक सृजनात्मकता प्रदान करती है।

• हिंदी वाक्य रचना : सार्थकता, पदक्रम, अन्विति

सार्थकता–सार्थक अर्थात 'अर्थ सहित'। यह तभी होगा जब पदों का अनुक्रम ठीक हो। किसी वाक्य को सुनकर यदि उसके अर्थ को पूरा समझने के लिए अन्य पदों की इच्छा, ललक या जिज्ञासा बनी रहती है तब उसे 'आकांक्षा' कहा जाता है। वाक्य की सार्थकता तो तभी है, जब उसे सुनकर श्रोता पूरा अर्थ समझ जाए। यदि

कोई वाक्य अपने श्रोता को सम्यक् अर्थबोध न करा सके, तो वह अपूर्ण समझा जाएगा। इस तरह के उदाहरण लगभग सभी भाषाओं में उपलब्ध होते हैं, जहां संपूर्ण आशय के लिए अन्य पदों की बैसाखी की आवश्यकता निरंतर बनी रहती है। इसे ही आकांक्षा कहा जाता है।

टिप्पणी

पदस्य पदांतर व्यतिरेक प्रयुक्तांवयाननुभावकत्वम् आकांक्षा।

उदाहरण के लिए, यदि कोई व्यक्ति 'राम और श्याम' कह कर चुप हो जाए, तो श्रोता कहने वाले की ओर एक जिज्ञासा तथा प्रश्न भरी दृष्टि से निहारने लगेगा। श्रोता अर्थ के किसी निश्चित बिंदु को प्राप्त ही नहीं कर सकता। उसके मन में तमाम आशंकाएं जन्म लेना शुरू कर देंगी कि वक्ता, राम और श्याम के विषय में क्या कहना चाहता है? असल में उक्त वाक्य अधूरा है, इसलिए किसी भी पूर्ण अर्थ की अभिव्यक्ति इससे नहीं हो सकती। पूर्ण अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए यहां किसी अन्य पद की आकांक्षा निरंतर बनी रहती है। इस आकांक्षा की पूर्ति से ही वाक्य सार्थक बनता है।

पदक्रम–सामान्यतया सभी भाषाओं में वाक्य–निर्माण के लिए पदों का कोई न कोई क्रम देखा जाता है, जिसके द्वारा निर्मित वाक्य अपने अभीष्ट अर्थ का बोधक होता है इसी को 'पदक्रम' कहते हैं। यदि पदक्रम के बिना किसी वाक्य का उच्चारण किया जाता है, तो वह कदापि अपने अभीष्ट अर्थ का बोध नहीं करा पता। जैसे यदि कोई हिंदी में 'खिला में था फूल बाग', 'खेला ने खेल में रात मोहन एक', 'निकलता में है सूरज पूरब', या 'खिल में सरोवर रहे फूल हैं' आदि वाक्यों का उच्चारण करता है, तो हिंदी के ये सभी वाक्य 'पदक्रम' के अभाव में किसी भी अर्थ के बोधक नहीं हैं। यदि इन वाक्यों में व्याकरण के नियमानुसार पदों का क्रम से उच्चारण किया जाए, तो ये सभी वाक्य अपने–अपने अभीष्ट अर्थ के द्योतक हो जाएंगे। जैसे– 'बाग में फूल खिला था', 'मोहन ने रात में एक खेल खेला', 'सूरज पूरब में निकलता है', तथा 'सरोवर में फूल खिल रहे हैं।' यही कारण है कि 'पदक्रम' भी वाक्य – निर्माण का मूलाधार होता है।

अन्वय या अन्विति : अंग्रेजी में इसे 'कांकार्डेस' कहा जाता है। इसका अर्थ होता है, वैयाकरणिक विचार से सामान्यरूपता। जहां व्याकरण–सम्मत नियमों का अनुपालन नहीं किया जाता, वहां अन्वय की दृष्टि से बाधा उत्पन्न होती है। हिंदी में क्रिया के लिंग और वचन कर्ता के लिंग और वचन से प्रभावित होते हैं। यदि कोई कहे कि 'रावण मारी गई', 'सूर्य चमक रही है' अथवा 'परीक्षा हो रहा है' तो उक्त सभी वाक्य अशुद्ध समझे जाएंगे, क्योंकि वहां क्रियाओं के लिंग और वचन से कर्ताओं के लिंग और वचन की कोई संगति नहीं बैठ पाई है। अतः व्याकरण के अनुसार इन वाक्यों का स्वरूप यदि 'रावण मारा गया', 'सूर्य चमक रहा है' अथवा 'परीक्षा हो रही है' कर दिया जाए, तो उक्त वाक्य अन्विति–संबंधी दोष से सर्वथा मुक्त हो जाएंगे।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

3. किसी शब्द के आरंभ में लगकर नए शब्द का निर्माण करने वाले शब्दांश क्या कहलाते हैं?

   (क) प्रत्यय (ख) सर्वनाम

   (ग) विशेषण (घ) उपसर्ग

4. काव्य की आत्मा किसे कहा गया है?

   (क) अलंकार (ख) रस

   (ग) छंद (घ) रीति

3.4 हिंदी शिक्षण अनुप्रयोग (समस्त व्याकरणिक इकाइयों का वर्गीकरण/विश्लेषण, प्रयोग एवं प्रश्नावली निर्माण)

हिंदी शिक्षण अनुप्रयोग हिंदी के भाषिक स्वरूप पर आधारित होता। रूप रचना का यह कार्य वाक्य संरचना से होता है, जिसका मूल आधार व्याकरणिक इकाइयां बनती हैं।

रूप रचना : हिंदी की व्याकरणिक कोटियां

भाषा का मूल आधार वाक्य है। वाक्य पूर्णार्थक या सार्थक पद समूह है। वाक्य के दो अंग होते हैं–प्रथम उद्देश्य और द्वितीय विधेय। उद्देश्य का अंग कर्त्ता प्रधान होता है और विधेय कर्म प्रधान होता है। वाक्य के उद्देश्य अंग के भीतर संज्ञा, सर्वनाम और विशेषण पद आते हैं, जबकि विधेय के अंतर्गत क्रिया, क्रिया विशेषण–पद आते हैं।

3.4.1 समस्त व्याकरणिक इकाइयों का वर्गीकरण/विश्लेषण व प्रयोग

संज्ञा

किसी वस्तु, व्यक्ति, जाति, स्थान, प्राणी और भाव के नाम को संज्ञा कहते हैं। संज्ञा के पांच भेद माने जाते हैं – 1. व्यक्तिवाचक 2. जातिवाचक 3. समूहवाचक 4. द्रव्यवाचक 5. भाववाचक।

व्यक्तिवाचक संज्ञा– जिस शब्द से किसी एक व्यक्ति या वस्तु का बोध हो, उसे व्यक्तिवाचक संज्ञा कहते हैं। जैसे गौतम बुद्ध, महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू आदि। व्यक्तिवाचक संज्ञा के अंतर्गत व्यक्तियों, दिशाओं, समुद्रों, नदियों, पर्वतों, ग्रहों, नक्षत्रों, दिनों, महीनों, त्योहारों, उत्सवों आदि के नाम आते हैं।

जातिवाचक संज्ञा– जिस शब्द से व्यक्ति विशेष का बोध न होकर पूरी जाति का बोध होता है, उसे जातिवाचक संज्ञा कहते हैं, जैसे–मनुष्य, पेड़, पहाड़, गाय, घोड़ा आदि।

समूहवाचक संज्ञा– जिस शब्द से वस्तु अथवा व्यक्ति के समूह का बोध होता है, उसे समूहवाचक संज्ञा कहते हैं, जैसे–सभा, समाज, दल, सेना, कक्षा, मंडल आदि।

द्रव्यवाचक संज्ञा– जिस शब्द से वस्तु के नाप–तोल या मूल्यवान धातु या पदार्थ का बोध होता है, इसे द्रव्यवाचक संज्ञा कहते हैं, जैसे– दूध, पानी, सोना, चांदी, तेल,घी आदि।

भाववाचक संज्ञा–जिस शब्द से व्यक्ति या वस्तु के गुण, धर्म, दशा या व्यापार का बोध होता है, उसे भाववाचक संज्ञा कहते हैं, जैसे– नम्रता, उदारता, मिठास, बड़प्पन, बुढ़ापा, युवा, लंबाई आदि।

संज्ञा के विकारी रूप

लिंग, वचन और कारक के कारण संज्ञा के रूप और अर्थ में विकार उत्पन्न हो जाते हैं, अर्थात उनका रूप परिवर्तन हो जाता है।

लिंग

लिंग के विकार–संज्ञा शब्दों में लिंग भेद के कारण रूपांतर हो जाता है। हिंदी में लिंग दो हैं–1. पुल्लिग 2. स्त्रीलिंग। नर जाति के बोधक शब्द पुल्लिग होते हैं और नारी जाति के बोधक शब्द स्त्रीलिंग होते हैं। संस्कृत तथा अन्य कई भाषाओं में तीन लिंग होते हैं–पुल्लिग, स्त्रीलिंग और नपुंसक लिंग। हिंदी में नपुंसक लिंग का व्यवहार नहीं होता है। पुल्लिग और स्त्रीलिंग का निर्णय प्रायः व्यवहार के अनुसार होता है। प्रायः अकारांत शब्द पुल्लिग होते हैं और ईकारांत शब्द स्त्रीलिंग होते हैं, जैसे– नर, नारी, घोड़ा, घोड़ी। यहां नर, घोड़ा शब्द पुल्लिग हैं और नारी, घोड़ी शब्द स्त्रीलिंग हैं।

वचन

हिंदी में दो वचन होते हैं– एकवचन और बहुवचन। शब्द के जिस रूप से एक पदार्थ का बोध होता है, उसे एकवचन कहते हैं। शब्द के जिस रूप से एक से अधिक पदार्थों का बोध होता है, उसे बहुवचन कहते हैं। संस्कृत में एक और वचन होता है, जिसे द्विवचन कहते हैं। पर हिंदी में द्विवचन नहीं होता, जैसे– लड़का एकवचन है और लड़के बहुवचन। गाय एक वचन है और गाएं बहुवचन। एकवचन और बहुवचन के रूप कारक के अनुसार भी बदलते हैं।

सर्वनाम

संज्ञा शब्दों के लिए प्रयुक्त होने वाले विकारी शब्दों को सर्वनाम कहते हैं या संज्ञा के स्थान पर प्रयुक्त होने वाले शब्दों को सर्वनाम कहते हैं। सर्वनाम के छः भेद हैं– पुरुषवाचक, निजवाचक, निश्चयवाचक, अनिश्चयवाचक, संबंधवाचक और प्रश्नवाचक।

पुरुषवाचक सर्वनाम– जो सर्वनाम वक्ता (अर्थात बोलने वाले का) श्रोता (अर्थात सुनने वाले का) तथा जिसके संबंध में कुछ कहा जाता है, उसका बोध कराते हैं, उन्हें पुरुषवाचक सर्वनाम कहते हैं। इसके तीन भेद होते हैं–

उत्तम पुरुष – मैं, हम

मध्यम पुरुष – तू, तुम और आप

अन्य पुरुष – यह, ये, वह, वे

ये तीनों पुरुषवाचक शब्द, वचन और कारक के हिसाब से विकारी रूप ग्रहण करते हैं, जैसे–

1. उत्तम पुरुष – मैं

	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	मैं, मैंने	हम, हमने
कर्म	मुझे, मुझको	हमें, हमको
करण	मुझसे	हमसे
संप्रदान	मेरे लिए, मुझे, मुझको	हमारे लिए, हमें, हमको
अपादान	मुझसे	हमसे
संबंध	मेरा, मेरी, मेरे	हमारा, हमारी, हमारे
अधिकरण	मुझमें, मुझ पर	हममें, हम पर

2. मध्यम पुरुष– तू

कर्ता	तू, तूने	तुम, तुमने
कर्म	तुझे, तुझको	तुम्हें, तुमको
करण	तुझसे	तुमसे
संप्रदान	तेरे लिए, तुझे, तुझको	तुम्हारे लिए, तुम्हें, तुमको
अपादान	तुझसे	तुमसे
संबंध	तेरा, तेरी, तेरे	तुम्हारा, तुम्हारी
अधिकरण	तुझमें, तुझपर	तुममें, तुमपर

3. अन्यपुरुष– वह

कर्ता	उसने	उन्होंने
कर्म	उसे, उसको	उन्हें, उनको
करण	उससे, उसके द्वारा	उनसे, उनके द्वारा
संप्रदान	उसको, उसे, उसके लिए	उनको, उन्हें, उनके लिए
अपादान	उससे	उनसे

संबंध	उसका, उसकी, उसके	उनका, उनकी, उनके
अधिकरण	उसमें, उसपर	उनमें, उनपर

टिप्पणी

निजवाचक सर्वनाम– इसका रूप 'आप' है। पुरुषवाचक मध्यमपुरुष वाले 'आप' से इसका प्रयोग भिन्न है। निजवाचक सर्वनाम में 'आप' का प्रयोग निम्नांकित रूपों में होता है–

(क) निजवाचक 'आप' का प्रयोग सर्वनाम के निश्चय के लिए आता है, जैसे मैं, आप यह कार्य कर रहे हैं। वह आप ही वहां चला गया।

(ख) निजवाचक 'आप' का प्रयोग विरोध प्रदर्शन के लिए होता है, जैसे राम ने मुझे जाने को कहा और आप यहीं बने रहे। दूसरों को क्या सुधारोगे, पहले अपने–आपको ठीक करो।

(ग) सामान्य अर्थ में भी 'आप' का प्रयोग होता है, जैसे– अपने से बड़ों का सम्मान करो। आप भला तो जग भला।

निश्चयवाचक सर्वनाम– जिस सर्वनाम से वक्ता के पास या दूर की किसी वस्तु के निश्चय का बोध होता है, जैसे– वह कोई नया कारक नहीं है। उसका विश्वास मत करो, क्योंकि वह दुष्ट आदमी है।

अनिश्चयवाचक सर्वनाम– जिस सर्वनाम से किसी निश्चित वस्तु का बोध न हो, उसे अनिश्चयवाचक सर्वनाम कहते हैं, जैसे– कोई, कुछ, बहुत कुछ। उदाहरण के लिए– कोई ऐसा काम मत करो जिससे कोई कुछ कहे। बहुत कुछ काम हो गया है।

संबंधवाचक सर्वनाम – जिस सर्वनाम से वाक्य में किसी दूसरे सर्वनाम से संबंध स्थापित किया जाए उसे संबंधवाचक सर्वनाम कहते हैं, जैसे जो, सो। उदाहरणार्थ– वह कौन व्यक्ति है जो चोरी करता है। वह जो न करे वह थोड़ा है। जो करेगा, वो भरेगा।

प्रश्नवाचक सर्वनाम– जिस सर्वनाम का प्रयोग किसी प्रश्न को करने के लिए होता है, उसे प्रश्नवाचक सर्वनाम कहते हैं, जैसे– कौन, क्या। उदाहरण के लिए– वहां कौन व्यक्ति काम कर रहा है? राम ने कल क्या खाया? आदि।

विशेषण

संज्ञा और सर्वनाम की विशेषता बतलाने वाले शब्दों को विशेषण कहते हैं। विशेषण भी एक विकारी शब्द है। विशेषण के चार मुख्य भेद हैं – गुणबोधक, संख्याबोधक, परिमाणबोधक और संकेतबोधक या सार्वनामिक।

गुणबोधक– गुणबोधक विशेषण वे हैं जिनसे गुण, अवस्था, रंग आकार, दशा, काल आदि का बोध होता है। इसके कुछ उदाहरण निम्नांकित हैं–

गुण– सज्जन, दुष्ट, शांत, सच्चा, झूठा, उचित, अनुचित, वीर, कायर आदि।

अवस्था– बड़ा, छोटा, युवा, वृद्ध, बालक, शिशु आदि।

टिप्पणी

रंग– लाल, नीला, पीला, हरा, सुनहरा, चमकीला आदि।

आकार– लंबा, चौड़ा, गोल, चौकोर, तिरछा, ऊंचा आदि।

दशा– दुबला, पलता, मोटा, सूखा, गीला, घना, विरला आदि।

काल– नया, पुराना, वर्तमान, प्राचीन, आगामी आदि।

संख्यावाचक विशेषण– जिन शब्दों से संज्ञा या सर्वनाम के गुण का बोध न होकर उसकी संख्या का बोध होता है, उसे संख्यावाचक विशेषण कहते हैं, जैसे दस गाएं, पंद्रह घोड़े, सौ रुपए, कुछ लोग, सब लोग, सब लड़के, पांचवीं क्लास, चौगुना लाभ, दो–दो आदमी, सवा सेर आदि। संख्यावाचक विशेषण गणना, क्रम, आवृत्ति, समूह आदि का बोध कराते हैं।

परिमाणवाचक विशेषण– जो शब्द किसी वस्तु की नाप, तोल का बोध कराते हैं, उन्हें परिमाण वाचक विशेषण कहते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं–

1. **निश्चित परिमाणवाचक**– निश्चित परिमाणवाचक में निश्चित नाप, तोल का बोध होता है, जैसे– दस लीटर दूध, पचास किलो गेहूं, पांच तोला सोना आदि।
2. **अनिश्चित परिमाणवाचक**–अनिश्चित परिमाणवाचक विशेषण में अनुमान के आधार पर अनिश्चित परिमाण का बोध होता है, जैसे– बहुत पानी, कुछ दूध, सारा धन, थोड़ा खाना आदि।

क्रिया

जिस शब्द से किसी काम के करने या होने का बोध होता है उसे क्रिया कहते हैं। यह भी विकारी शब्द है और लिंग, वचन और काल से प्रभावित होता है। हिंदी में इन शब्दों का मूल रूप या धातु ''ना', अंत वाला क्रियार्थक शब्द होता है, जैसे–करना, जाना, पढ़ना, खाना, बोलना, दौड़ना, मारना, पीटना आदि।

क्रियाएं दो आधारों पर बनती हैं – प्रथम रूढ़ (या मूल), द्वितीय यौगिक। रूढ़ क्रियाएं मूल धातु से बनती हैं, परंतु यौगिक क्रियाएं मूल या धातु के साथ अन्य तत्वों के मिलने से बनती हैं। रूढ़ के उदाहरण हैं– खाना, देखना, लेना, देना, आना, जाना। इन क्रियाओं के विभिन्न विकारी रूपों में मूल रूप या धातु की पहचान बनी रहती है। परंतु यौगिक क्रियाओं में अन्य तत्व आ जाते हैं। यौगिक क्रियाएं चार प्रकार की होती हैं– प्रेरणार्थक क्रिया, संयुक्त क्रिया, अनुकरणात्मक क्रिया और नामधातु।

1. **प्रेरणार्थक क्रियाएं** : जिन क्रियाओं के माध्यम से कर्ता स्वयं कार्य न करके किसी अन्य को कार्य करने के लिए प्रेरित करता है, उन्हें प्रेरणार्थक क्रियाएं कहा जाता है। उदाहरणार्थ– लिखना से लिखवाना, बोलना से बोलवाना, चराना से चरवाना, मांगना से मंगवाना, नापना से नपवाना, पीसना से पिसवाना आदि।
2. **संयुक्त क्रियाएं** : जो क्रिया, संज्ञा, विशेषण, क्रियाविशेषण अथवा क्रिया शब्द के साथ किसी अन्य क्रिया के योग से बनती है, उसे संयुक्त क्रिया कहते हैं।

टिप्पणी

उदाहरणार्थ–

1. संज्ञा से क्रिया– पता लगाना, दिखाई देना, ध्यान रखना आदि।
2. विशेषण से क्रिया मिलाकर– कड़वी लगना, लाल–पीले होना, पीला पड़ना आदि।
3. क्रिया विशेषण से क्रिया मिलाकर– आगे बढ़ना, पास पड़ना आदि।
4. क्रिया से क्रिया मिलाकर– आ बैठा, दौड़ चला, चल पड़ा, खो बैठा आदि।

अर्थ की दृष्टि से संयुक्त क्रिया के मुख्य भेद निम्नलिखित हैं–

1. **आरंभ बोधक**– जिससे क्रिया के आरंभ होने का बोध होता है उसे आरंभ बोधक क्रिया कहते हैं, जैसे– पानी बरसने लगा, श्रीधर पढ़ने लगा, धूप पड़ने लगी आदि।
2. **समाप्ति बोधक**– जिस क्रिया से कार्य की समाप्ति या पूर्णता का बोध हो, वह समाप्ति बोधक क्रिया संयुक्त क्रिया है, जैसे– राम पढ़ चुका, हरि परीक्षा दे चुका, वह जा चुका आदि।
3. **निरंतरता बोधक**– जिस क्रिया से किसी कार्य के चलते रहने का बोध होता है, उसे निरंतर बोधक संयुक्त क्रिया कहते हैं, जैसे– श्याम हमेशा बोलता रहता है, आजकल पानी बरसता रहता है। पहाड़ों पर हवा चलती रहती है आदि।
4. **अवकाश बोधक**– जिससे क्रिया के पूरा होने में समय या अवकाश का संकेत या बोध हो, उसे अवकाश बोधक संयुक्त क्रिया कहते हैं। उदाहरणार्थ– शिवाजी कठिनाई से विजय प्राप्त कर सके, तेज बुखार के कारण वह कठिनाई से सो पाया, भीड़ के कारण मैं मुश्किल से मंदिर तक जा पाया आदि।
5. **आकस्मिकता बोधक**– जिससे क्रिया के द्वारा अचानक कोई कार्य होने का बोध हो, वहां आकस्मिकता बोधक संयुक्त क्रिया होती है, जैसे– लड़का दौड़ते–दौड़ते गिर पड़ा, उसने अपना सारा धन दान में दे डाला, घर के झगड़े से तंग आकर वह आत्महत्या कर बैठा आदि।
6. **अनुमति बोधक**– जिससे किसी कार्य को करने की अनुमति दिए जाने का बोध हो, उसे अनुमति बोधक संयुक्त क्रिया कहते हैं, जैसे– कृपया मुझे बोलने दीजिए, उसे जाने दो, बच्चों को खाना खा लेने दो आदि।
7. **क्षमता बोधक**– जिससे कार्य करने की क्षमता का बोध होता है, उसे क्षमता बोधक संयुक्त क्रिया माना जाता है, जैसे– मैं यह कार्य कर सकता हूं, वह पेड़ पर चढ़ सकता है, हरि मशीन नहीं चला सका आदि।
8. **इच्छा बोधक**– जिस संयुक्त क्रिया से करने की इच्छा का बोध होता है, उसे इच्छा बोधक क्रिया कहते हैं, उदाहरणार्थ– वह फौज में भरती होना चाहता है, वह उच्च शिक्षा प्राप्त करना चाहता है, श्याम अब अपने घर जाना चाहता है आदि।

टिप्पणी

9. **अभ्यास बोधक**– जिस संयुक्त क्रिया से अभ्यास करने का भाव प्रकट होता है, उसे अभ्यास बोधक कहते हैं। वास्तव में यह निरंतरता का ही एक रूप है। अंतर यही है कि यहां कार्य स्वतः संचालित होता है, उदाहरणार्थ– वह संगीत की साधना करता रहता है, पहलवान नित्य व्यायाम करता रहता है, रमेश परीक्षा के दिनों में बराबर पढ़ा करता है आदि।
10. **आवश्यकता बोधक**– जहां कर्तव्य या विवशता के कारण किसी कार्य के करने का बोध संयुक्त क्रिया द्वारा होता है, वहां आवश्यकता बोधक क्रिया मानी जाती है, उदाहरणार्थ– प्रवीण को काम पर जाना पड़ता है, बच्चों को अपने शिक्षक की बात माननी चाहिए, दोपहर हो गई है, अब खाना खाना चाहिए आदि।
11. **पुनरुक्त संयुक्त क्रिया**– जहां समान ध्वनि या समान अर्थवाली दो क्रियाओं का संयोग होता है वहां पुनरुक्त संयुक्त क्रिया मानी जाती है, उदाहरणार्थ– पड़ोसियों के यहां उसका आना–जाना रहता है, हमारा खाना–पीना हो चुका, आजकल दौड़ना भागना हो रहा है (यहां पर चार संयुक्त क्रियाएं हैं) आदि।

3. **अनुकरणात्मक क्रियाएं** : जब किसी ध्वनि या कार्य के अनुकरण पर क्रियाएं बना ली जाती हैं, तब उन्हें अनुकरणात्मक क्रियाएं कहा जाता है, जैसे– भनभनाना, झनझनाना, कटकटाना, खटखटाना, गुनगुनाना, घरघराना, गुर्राना, भोंकना, मिमियाना, फड़फड़ाना, पिनपिनाना, हिनहिनाना आदि।
4. **नामाश्रित क्रियाएं या नामधातुएं** : संज्ञा, सर्वनाम या विशेषण से बनने वाली क्रियाओं को नामाश्रित क्रियाएं कहते हैं तथा उनकी धातुओं को नाम धातु। उदाहरणार्थ–

   क. संज्ञा से बनी संयुक्त क्रियाएं– हाथ से हथियाना, लात के लतियाना, बात से बतियाना, पानी से परियाना, आगर से अगियाना, झूठ से झुठलाना, गोबर से गोबरियाना, टोंटी से टोंटियाना, आदि।

   ख. विशेषण से बनी क्रियाएं– हरा से हरियाना, चिकना से चिकनाना, मोटा से मोटाना, दुबला से दुबराना आदि।

   ग. सर्वनाम से बनी क्रियाएं– अपना से अपनाना। सर्वनाम से बनने वाली क्रियाएं बहुत कम होती हैं

अकर्मक–सकर्मक क्रियाएं : क्रिया के दो और मुख्य भेद माने जाते हैं– अकर्मक और सकर्मक।

अकर्मक क्रिया– जिस क्रिया के प्रयोग में कर्म की अपेक्षा नहीं रहती अर्थात जहां क्रिया का फल कर्ता स्वयं भोगता है, वहां अकर्मक क्रिया मानी जाती है, जैसे राम सोता है, हरीश तैरता है, चिड़िया उड़ती है, शीला नाचती है। इन क्रियाओं का फल और व्यापार कर्ता में ही केंद्रित है। इसके लिए किसी अन्य व्यक्ति या वस्तु की अपेक्षा नहीं। अतएव ये अकर्मक क्रियाएं हैं।

सकर्मक क्रिया– जिस क्रिया में क्रिया का फल कर्ता को छोड़कर किसी अन्य पर पड़ता है, और उसका उल्लेख भी होता है, उसे सकर्मक क्रिया कहते हैं, उदाहरणार्थ–लड़की फल काट रही है, श्याम पानी पी रहा है, वह पुस्तक पढ़ रहा है, यहां पर 'काटना', 'पीना' और 'पढ़ना' क्रियाओं का प्रभाव कर्ता के अतिरिक्त कर्म 'फल' 'पानी', और 'पुस्तक' पर भी पड़ रहा है। अतः ये क्रियाएं सकर्मक हैं।

सहायक क्रियाएं

जो क्रियाएं मुख्य क्रिया के रूप को पूरा करने में सहायक होती हैं, उन्हें सहायक क्रिया कहते हैं, उदाहरणार्थ– सीमा घर जाती है, राम सो रहा था, बच्चे खड़े थे, मजदूर काम पर जा रहे हैं, आदि। इनमें मुख्य क्रियाएं 'जाती', 'सो रहा', 'खड़े', 'जा रहे' के साथ लगे शब्द 'हैं', 'था', 'थे', और 'हैं'– ये सहायक क्रिया के रूप हैं।

संयुक्त क्रियाओं में अंत में आने वाले क्रिया रूप सहायक क्रिया के ही होते हैं। 'उसने पूरा काम कर डाला' वाक्य में 'कर' मुख्य क्रिया है और 'डाला' सहायक क्रिया इसी प्रकार अन्य उदाहरणों में भी दूसरी या अंतिम क्रिया सहायक क्रिया होती है।

क्रिया के विकारी रूप

क्रिया के विकार या रूप –परिवर्तन जिनके कारण होते हैं, वे हैं– 1. लिंग, 2. पुरुष वाची सर्वनाम, 3. वचन, वाक्य 5. काल, कृदंत।

1. **लिंग**– जिस प्रकार विशेषण शब्दों का लिंग, संज्ञा शब्दों के अनुसार परिवर्तित होता है, उसी प्रकार क्रिया शब्दों का लिंग भी संज्ञा (कर्ता) के अनुसार परिवर्तित होता है। उदाहरणार्थ–

   (क) **कर्ता के अनुसार**–

राम जाता है	हरि गया था	शंकर जाएगा
सीता जाती है	लक्ष्मी गई थी	दुर्गा जाएगी

   (ख) **कर्म के अनुसार**–

   शिकारी ने हिरन मारा

   शिकारी ने लोमड़ी मारी

   कर्म के अनुसार क्रिया का लिंग परिवर्तन केवल भूतकालिक क्रिया में होता है।

2. **पुरुषवाची सर्वनाम**– क्रिया के कुछ कृदंतीय रूपों को छोड़ कर शेष में पुरुषवाची सर्वनामों के साथ क्रिया रूपों में विकास आ जाता है।

   उदाहरणार्थ–

मैं जाता हूं	तू जाता है	वह जाता है
हम जाते हैं	तुम जाते हो	वे जाते हैं

   यह परिवर्तन वर्तमान, भूत और भविष्यत तीनों ही कालों में होता है, जैसे – मैं गया, हम गए। तू गया, तुम गए। वह गया, वे गए। मैं जाऊंगा, हम जाएंगे। तू जाएगा, तुम जाओगे आदि।

3. **वचन**– वचन के अनुसार भी क्रियाओं के रूप बदलते हैं, जैसे–

एकवचन	**बहुवचन**	**एकवचन**	**बहुवचन**
बालक जाता है	बालक जाते हैं	मैं जाऊंगा	हम जाएंगे
गाय दौड़ी	गाएं दौड़ीं	तू जाएगी	तुम जाओगी
तू जा	तुम जाओ	वह गाएगा	वे गाएंगे
मैं दौड़ा	हम दौड़े	घोड़ा दौड़ेगा	घोड़े दौड़ेंगे
वह गया	वे गए	चींटी काटेगी	चींटियां काटेंगी

इन उदाहरणों में हम देखते हैं कि एक वचन क्रिया रूपों से बहुवचन क्रिया रूप भिन्न हैं।

4. **वाच्य**–क्रिया में कार्य–कर्ता की प्रधानता के आधार पर वाच्य का निश्चय होता है। ये तीन प्रकार के होते हैं– कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य और भाववाच्य।

कर्तृवाच्य– क्रिया का वह रूपांतर होता है जिसमें कर्ता के अनुसार क्रिया के लिंग, वचन और पुरुष निश्चय होते हैं। इसमें क्रिया के लिंग, वचन और पुरुष कर्ता के अनुसार होते हैं, जैसे– राम किताब पढ़ता है, अनीता सिलाई करेगी, हरि ने घोड़ा दौड़ाया आदि।

कर्मवाच्य– क्रिया का वह रूपांतर है जिसमें क्रिया के लिंग, वचन और पुरुष कर्म के अनुसार होते हैं। ऊपर के उदाहरणों के निम्नांकित रूप कर्मवाच्य के उदाहरण होंगे–

जैसे– राम के द्वारा किताब पढ़ी जाती है, अनीता के द्वारा सिलाई की जाएगी, हरि के द्वारा घोड़ा दौड़ाया गया।

भाववाच्य– क्रिया जब न कर्ता के अनुसार होती है और न कर्म के ही अनुसार बल्कि क्रिया के अनुसार रहती है। इसमें क्रिया ही प्रधान होती है। यह क्रिया अकर्मक ही होती है।

उदाहरणार्थ–पीड़ा के कारण अब उससे चला भी नहीं जाता, उससे अब अकेले रहा नहीं जाता, आतंक के कारण अब लोगों से वहां जाया नहीं जाता। इस प्रकार यह देखा जाता है कि कर्तृवाच्य में अकर्मक और सकर्मक दोनों क्रियाएं होती हैं, कर्मवाच्य में केवल सकर्मक क्रियाएं तथा भाववाच्य में प्रायः अकर्मक क्रियाएं होती हैं।

काल

क्रिया के उस रूपांतर को काल कहते हैं जिससे उसके कार्य–व्यापार का समय तथा उसकी पूर्ण या अपूर्ण व्यवस्था का बोध होता है–

काल के तीन भेद हैं– 1. वर्तमान काल 2. भूतकाल 3. भविष्यत काल

टिप्पणी

वर्तमान काल

क्रिया व्यापार की निरंतरता को वर्तमान काल कहते हैं। वर्तमान काल में क्रिया–व्यापार का आरंभ तो हो चुका होता है, पर उसकी समाप्ति नहीं होती।

उदाहरणार्थ– सुरेश पढ़ता है। इसमें पढ़ने का कार्य आरंभ तो हो चुका है, पर उसकी समाप्ति नहीं हुई है।

वर्तमान काल के पांच भेद माने गए हैं, जो हैं– 1. सामान्य वर्तमान 2. तात्कालिक वर्तमान 3. पूर्ण वर्तमान 4. संदिग्ध वर्तमान 5. संभाव्य वर्तमान।

1. **सामान्य वर्तमान**– वर्तमान काल में अनिश्चित रूप से जिस क्रिया का होना पाया जाए, वह सामान्य वर्तमान काल की क्रिया का रूप है, जैसे– राम जाता है, शिरीष पढ़ता है, श्याम दौड़ता है आदि।
2. **तात्कालिक वर्तमान**– जिस रूप से यह पता चलता है कि क्रिया का व्यापार अभी चल रहा है, बंद नहीं हुआ है तात्कालिक वर्तमान कहलाता है, जैसे– हरि दौड़ रहा है, विमल पढ़ रहा है, गोपी सो रही है आदि।
3. **पूर्ण वर्तमान**– वर्तमान काल के जिस रूप से कार्य की पूर्णता का बोध होता है, उसे पूर्ण वर्तमान कहते हैं, जैसे– मैंने खाना खाया है, शिखा ने पुस्तक पढ़ी है, हरि दौड़ा है आदि।
4. **संदिग्ध वर्तमान**– जिसमें वर्तमान का बोध तो हो, परंतु क्रिया के होने में संदेह प्रकट होता है, संदिग्ध वर्तमान होता है, जैसे– हीरा गाता होगा, लक्ष्मी पढ़ती होगी, विजय खाता होगा आदि।
5. **संभाव्य वर्तमान**– जिसमें वर्तमान काल में कार्य होने की संभावना प्रकट होती है उसे संभाव्य वर्तमान कहते हैं, जैसे– शायद हरि आया है, हो सकता है दिनेश मुंबई गया है, शायद वह आया हो आदि।

भूतकाल

क्रिया के जिस रूप से कार्य की समाप्ति का बोध हो उसे भूतकाल का क्रिया रूप कहते हैं। भूतकाल के छः भेद हैं– 1. सामान्य भूत, 2.आसन्न भूत, 3. पूर्णभूत, 4. अपूर्ण भूत, 5. संदिग्ध भूत, 6. हेतु–हेतु मद्‌भूत।

1. **सामान्य भूत**– भूत कालिक क्रिया का वह रूप जिससे कार्य के समय विशेष का बोध न हो, उदाहरणार्थ– रमेश गया, सुशीला आई, श्याम दौड़ा आदि।
2. **आसन्न भूत**– जिस रूप से निकट भूत में या तत्काल पूर्व कार्य के समाप्ति की सूचना मिलती है, उदाहरणार्थ– शेखर यात्रा से आया है, उसने खेत काट लिया है, मैंने पत्र लिख लिया है आदि।
3. **पूर्णभूत**– जहां क्रिया की समाप्ति के समय का स्पष्ट बोध होता है, वह पूर्ण भूत है, जैसे– श्रीधर ने चोर को पकड़ा था, शेर ने घोड़े को मार डाला था, हरि ने उसका गेंद छीना था आदि।

4. **अपूर्णभूत**– यदि क्रिया–व्यापार भूतकाल में चल रहा हो और समाप्त होने का निश्चय न हो, तो वहां अपूर्ण भूत होता है, जैसे– राम खेत जोत रहा था, सीता गीत गा रही थी, हरि कपड़े धो रहा था आदि।
5. **संदिग्ध भूत**– जहां भूतकाल के कार्य के संबंध में संदेह बना रहता है कि कार्य पूरा हुआ या नहीं, जैसे– सुरेश खेत पर गया होगा, रवींद्र ने दुकान खोली होगी, शशि ने गाना गाया होगा आदि।
6. **हेतु–हेतु मद्‌भूत**– जहां किसी कारण पर भूतकालिक क्रिया का होना निर्भर करता है, वहां हेतु–हेतु मद्‌भूत होता है, जैसे– मैं उसे रुपया देता, तो वह कपड़े लाता। हरि आता, तो मैं उसके साथ बाजार जाता। दही मिल जाता, तो सुषमा उसका श्रीखंड बनाती आदि।

भविष्यत काल

भविष्य में होने वाले क्रिया–व्यापार का बोध कराने वाले क्रिया रूप को भविष्यत काल कहते हैं। भविष्यत काल के तीन भेद होते हैं– 1. सामान्य भविष्यत 2. संभाव्य भविष्यत 3. हेतु–हेतु मद् भविष्यत।

1. **सामान्य भविष्यत**– जहां यह प्रकट होता है कि क्रिया सामान्यतः भविष्य में होगी, वहां सामान्य भविष्यत काल होता है, जैसे– मैं मुंबई जाऊंगा।
2. **संभाव्य भविष्यत**– जिस क्रिया रूप से भविष्य में कार्य होने की संभावना हो, उसे संभाव्य भविष्यत कहते हैं, जैसे– शायद राजीव कल आए, संभवतः रमेश कल दिल्ली जाए आदि।
3. **हेतु–हेतु मद् भविष्यत**– जहां पर भविष्य में किसी क्रिया का होना, दूसरी क्रिया पर निर्भर करता है वहां हेतु–हेतु मद भविष्यत होता है, जैसे– हरि आए तो मैं प्रयाग जाऊं, कलम मिल जाए तो मैं लिखूं, सवारी मिल जाए तो मंजू स्टेशन जाए आदि।

3.4.2 प्रश्नावली निर्माण

प्रश्नावली प्रक्रिया की खोज 1998 में लन्दन सांख्यिकी सोसायटी (Statistical Society of London) ने किया था।

प्रश्नावली (Questionnaire) प्रश्नों या कथनों का समूह हैं, जिसके माध्यम से व्यक्ति से पूछकर सूचनाएं एकत्रित की जाती हैं। प्रश्नावली, अनुसन्धान करने का एक औजार है जिसमें लोगों से सूचना एकत्र करने के लिए उनसे बहुत से प्रश्न पूछे जाते हैं।

अर्थ एवं परिभाषाएँ

प्रश्नावली का शाब्दिक अर्थ प्रश्न माला से होता है जिसमें शृंखलाबद्ध तरीके से प्रश्नों को जानकारी इकट्ठा करने के अनुसार प्रस्तुत किया जाता है।

मुद्रित या लिखित प्रश्नों की एक सूची तैयार की जाती है, जिसमें पसंदीदा उत्तर चुनने को दिए जाते हैं प्रश्नावली कहलाती है।

गुडे और हैट के अनुसार "सामान्य शब्दों में प्रश्नावली एक उपकरण को संदर्भित करता है जो प्रश्नों के उत्तर को एक ऐसे रूप में उपयोग करके सुरक्षित करता है जो प्रतिक्रिया जबाब में स्वयं भरता है।"

बार, डेविस और जॉनसन के अनुसार – "सवालों का एक ऐसा व्यवस्थित संकलन, जो जनसंख्या के नमूने जानने के लिए प्रस्तुत किया गया हो जिसमें से इच्छित जानकारी प्राप्त होती है।"

प्रश्नावली का प्रयोग प्रायः तब किया जाता है जब तथ्यात्मक (Factual) सूचनाओं की आवश्यकता होती है। प्रश्नावली का निर्माण इस प्रकार किया जाता है जिससे व्यक्ति के वांछित गुणों का मापन हो सके। प्रश्नावली का प्रयोग व्यक्तिगत तथा सामूहिक दोनों रूपों में किया जा सकता है । यदि प्रश्नावली का प्रयोग समूह के लिए किया जाता है तो यह समय, धन और श्रम की बचत करने मे सहयोगी होता है।

प्रश्नावली के भेद

पी०वी० यंग ने प्रश्नावली को दो वर्गों में विभाजित किया है–

1 संरचित प्रश्नावलीः इस प्रकार की प्रश्नावली में निश्चित एवं ठोस प्रश्न होते हैं। इस प्रश्नावली का निर्माण सटीक संचार एवं सटीक अनुक्रिया प्राप्त करने के लिए किया जाता है यदि सर्वेक्षण के दौरान व्यक्ति सर्वेक्षण के उद्देश्य को ठीक प्रकार से संबंधित जाते हैं तो इससे उचित संचार उत्पन्न होता है।

यदि दिए गए प्रश्नों के उत्तर में मांगी गई सूचना मिल जाती है तो इससे सटीक अनुक्रिया पैदा होती है।

2. असंरचित प्रश्नावली : इस प्रकार की प्रश्नावली में एक निश्चित प्रश्न माला सम्मिलित होती है जो पहले से तैयार होती है।

इस प्रकार की प्रश्नावली का प्रयोग साक्षात्कार में किया जाता है इस प्रकार की प्रश्नावली के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए प्रश्नावली का स्वरूप एवं समय सीमा निश्चित नहीं होती है।

प्रश्नावली के गुण एवं विशेषताएं

- एक अच्छी प्रश्नावली में यह गुण होता है कि वह ऐसी सूचनाओं की जानकारी देती है जो किसी अन्य विधि द्वारा नहीं दी जा सकती है।
- एक अच्छी प्रश्नावली बहुत व्यापक होती है क्योंकि किसी प्रश्नावली की व्यापकता ही संबंधित जानकारी पूर्णता की ओर अग्रसर करती है।
- एक अच्छी प्रश्नावली स्पष्ट एवं पूर्ण होती है।
- प्रश्नावली की भाषा सरल और सुगम होनी चाहिए।
- प्रश्नावली जानकारी के अनुसार सतत होनी चाहिए ताकि प्रश्नावली को आसानी से समझा जा सके।

- एक अच्छी प्रश्नावली में प्रश्न छोटे एवं आकर्षक होते हैं।
- एक अच्छी प्रश्नावली में वस्तुनिष्ठ प्रश्नों का समावेश होता है।

टिप्पणी

हिन्दी भाषा शिक्षण संदर्भित प्रश्नावली का एक प्रारूप

प्रश्न : कहानी सुनाने से ––

(क) बच्चे अनुशासित रहते हैं

(ख) बच्चों की कल्पना–शक्ति व चिंतन–शक्ति का विकास होता है ।

(ग) बच्चे प्रसन्न होते हैं।

(घ) बच्चे कक्षा में एकाग्रचित होकर शांत बैठते हैं।

उत्तर : (ख)

प्रश्न : 'बोलना' कौशल में महत्वपूर्ण है–

(क) आलंकारिक भाषा का प्रयोग

(ख) मधुर वाणी

(ग) संदर्भ एवं स्थिति के अनुसार अपनी बात कह सकना ।

(घ) स्पष्ट एवं शुद्ध उच्चारण ।

उत्तर : (ग)

प्रश्न : भाषा–शिक्षण में पाठ्य–पुस्तक–

(क) साधन है

(ख) अनावश्यक है

(ग) एकमात्र संसाधन है

(घ) साध्य है

उत्तर : (क)

प्रश्न : ग्राह्यात्मक कौशलों में शामिल हैं ?

(क) सुनना , पढ़ना

(ख) पढ़ना , लिखना

(ग) सुनना , बोलना

(घ) बोलना , लिखना

उत्तर : (घ)

प्रश्न : पाठ पढ़ने–पढ़ाने के बाद किस तरह के सवाल बच्चों की समझ का मूल्यांकन करने में सहायक नहीं होते ?

(क) ' क्यों ' , ' कैसे ' वाले प्रश्न

(ख) ' क्या शिक्षा मिलती है ? ' वाला प्रश्न

(ग) ' यदि – तो ' वाले प्रश्न

(घ) पढ़े गए पाठ से जोड़ते हुए अपने निजी ! अनुभवों को व्यक्त करने वाले प्रश्न

उत्तर : (घ)

टिप्पणी

प्रश्न : भाषा–अर्जन और भाषा–अधिगम में मुख्य अन्तर है?

(क) पाठ्य–पुस्तक के अभ्यासों का अभ्यास करने का

(ख) स्वाभाविकता का

(ग) भाषा के नियमों को स्मरण करने का

(घ) भाषा लेखन के अभ्यास का

उत्तर : (ख)

प्रश्न : भाषा एक औजार है जिसका उपयोग करते हैं–

(घ) जिन्दगी को समझने के लिए

(घ) जिन्दगी से जुड़ने के लिए

(घ) जीवन–जगत् को प्रस्तुत करने के लिए

(घ) ये सभी

उत्तर : (घ)

प्रश्न : भाषा के अभिव्यक्तात्मक कौशल हैं –

(क) पढ़ना , लिखना

(ख) सुनना , पढ़ना

(ग) सुनना , बोलना

(घ) बोलना , लिखना

उत्तर : (घ)

प्रश्न : भाषा–कौशलों के संदर्भ में कौन–सा कथन उचित है ?

(क) भाषा के चारों कौशल परस्पर अंतः सम्बन्धित हैं

(ख) भाषा–कौशलों के विकास में अभ्यास की अपेक्षा भाषिक नियमों का ज्ञान जरूरी है

(ग) विद्यालय में केवल 'पढ़ना', 'लिखना' कौशलों पर ही बल देना चाहिए

(घ) बच्चे केवल सुनना , बोलना , पढ़ना, लिखना कौशल क्रम से ही सीखते हैं

उत्तर : (घ)

प्रश्न : पाठ में दिए गए चित्रों का क्या उद्देश्य होता है?

(क) पाठ्य–पुस्तक में चित्र देने का प्रचलन है

(ख) चित्र अमूर्त संकल्पनाओं को समझने में सहायता करते हैं

(ग) चित्रों से पाठ्य–पुस्तक आकर्षक बनती है

(घ) चित्र पाठ की शोभा बढ़ाते हैं

उत्तर : (ख)

प्रश्न : भाषा शिक्षण का उद्देश्य है ?

(क) निजी अनुभवों के आधार पर भाषा का सृजनशील प्रयोग करना

(ख) भाषा सीखते समय त्रुटियाँ बिल्कुल न करना

(ग) भाषा की बारीकी और सौंदर्यबोध को सही रूप में समझने की क्षमता को हतोत्साहित करना

(घ) भाषा के व्याकरण सीखने पर बल देना

उत्तर : (ग)

टिप्पणी

प्रश्न : भाषा हमारे परिवेश में बिखरी मिलती है । यह कथन किस पर लागू नहीं होता ?

(क) अखबार

(ख) विज्ञापन

(ग) साइनबोर्ड

(घ) भाषा–प्रयोगशाला

उत्तर : (घ)

प्रश्न : भाषा स्वयं में–

(क) एक नियमबद्ध व्यवस्था है

(ख) एक जटिल चुनौती है

(ग) एक विषय मात्र है

(घ) संप्रेषण का एकमात्र साधन है

उत्तर : (क)

प्रश्न : भाषा का प्रयोग–

(क) केवल मुद्रित सामग्री में होता है

(ख) जीवन के विभिन्न संदर्भो में होता है

(ग) केवल परीक्षा में होता है

(घ) केवल पाठ्य–पुस्तक में होता है

उत्तर : (ख)

अपनी प्रगति जांचिए

5. व्यक्ति, वस्तु, स्थान, जीव और भाव के नाम को क्या कहते हैं?

(क) संज्ञा (ख) सर्वनाम

(ग) क्रिया (घ) अव्यय

6. प्रश्नावली प्रक्रिया की खोज कहां हुई थी

(क) भारत (ख) पाकिस्तान

(ग) लंदन (घ) चीन

3.5 हिंदी शिक्षण में सहायक शिक्षण सामग्री (TLM) का प्रयोग

शिक्षा में सहायक सामग्रियों को शिक्षण उपागम कहा जाता है। ये उपागम कई प्रकार के होते हैं। पाठ्यक्रम निर्धारित उपागमों का अध्ययन यहां किया जा रहा है।

3.5.1 चित्र, चार्ट्स एवं मॉडल्स

• **(नोट** : चित्र, चार्ट्स एवं मॉडल्स का अध्ययन आप इकाई–2 में कर चुके हैं।)

3.5.2 दृश्य–श्रव्य सामग्री आदि

• **समाचार–पत्र**

'समाचार' के शब्दार्थ का विश्लेषण करें तो यह कह सकते हैं कि जिसमें चारों दिशाओं की खबरें समा जाएं अर्थात जिसमें सब तरफ की खबर हो-उसे समाचार कहते हैं। इसे समाचार के अंग्रेजी शब्द 'न्यूज' से आसानी से समझा जा सकता है।

अंग्रेजी में समाचारों को 'न्यूज' कहते हैं। इस शब्द के चार अक्षर होते हैं- एन.ई.डब्ल्यू.एस.। इन अक्षरों से चारों दिशाओं-उत्तर (नार्थ), पूर्व (ईस्ट), पश्चिम (वैस्ट) और दक्षिण (साउथ) का बोध होता है। अतः यह कहा जा सकता है कि जो चारों दिशाओं का बोध कराए, वह समाचार है। संभवतः इसी दृष्टि से हेडन के कोश में समाचार की परिभाषा सब दिशाओं की घटना दी गई है। उत्तर, पूर्व, पश्चिम और दक्षिण की घटनाओं को समाचार समझाना चाहिए।

अंग्रेजी का 'न्यू' लेटिन के 'नौवा' संस्कृत के 'नव' शब्द पर आधारित है। इन तीनों शब्दों का एक ही अर्थ है 'नवीन'। वास्तव में समाचार तो वह है, जो नवीन है। महाकवि जयशंकर प्रसाद ने ठीक ही कहा है-'प्रकृति के यौवन का शृंगार, करेंगे कभी न बासी फूल'। जैसे कोई बासी फूलों को पसंद नहीं करता, उसी प्रकार कोई भी पाठक बासी समाचारों को पढ़ना रुचिकर नहीं समझता। सत्य तो यह है कि समाचार का शिवत्व उसकी नवीनता में है। कहा जा सकता है कि जो नित्य नूतन हो, वही समाचार है।

पत्रकारिता की भाषा में समाचार को कथा कहा जाता है। समाचार को कथा के रूप में प्रस्तुत करना वास्तव में एक कठिन कार्य है, यह समाचार लेखन की श्रेणी निर्धारित करता है। समाचार लेखन के विविध आयाम होते हैं। समाचार लेखन की मुख्य विशेषताओं के बारे में जानने से पूर्व समाचार की संरचना के बारे में जान लेना सुविधाजनक होगा।

जहां तक समसामयिक घटनाक्रम विषयक लेखन का प्रश्न है, यह इस बात के साथ घनिष्ठ रूप से संबद्ध है कि पत्रिका साप्ताहिक है, पाक्षिक है या मासिक। इस संदर्भ में समाचार क्या है, यह जान लेना आवश्यक है। वर्तमान युग में समाचार की व्याख्या इतनी व्यापक हो गई है कि उसे सीमाबद्ध नहीं किया जा सकता है। फिर भी, विश्व में जो कुछ भी हुआ या हो रहा है अथवा होगा, वह सभी समाचार है, बशर्ते कि वह जनता के लिए नया हो और उसमें जनता की रुचि हो।

समाचार के दो प्रमुख भेद हैं- वास्तविक और जनश्रुत। वास्तविक के भी दो भेद हैं- सामान्य समाचार और मामूली दिलचस्प कहानियां। जनश्रुत समाचार भी दो प्रकार के होते हैं- वास्तविकता पर आधारित गोपनीय रहस्य और संभावित घटना से संबंधित।

टिप्पणी

दैनिक पत्रों के लिए समाचार या संवाद- लेखन में कब, कहां, क्या, कौन, कैसे और क्यों का संतोषजनक उत्तर होना ही चाहिए और जहां तक हो सके, इन समस्त प्रकारों का समाचार के प्रथम चरण में ही समावेश होना चाहिए। इस संबंध में 'वस्तुपरकता' पर बहुत जोर दिया जाता है, किंतु आधुनिक दर्शनानुसार 'पूर्ण वस्तुपरकता' जैसी कोई स्थायी वस्तु नहीं होती क्योंकि हर व्यक्ति एक वस्तु को समान दृष्टि से नहीं देखता। संवाददाता या पत्रकार की विशिष्टता, शैली, उसकी सारतत्त्व निर्णायक बुद्धि तथा समझने की सामर्थ्य समाचार की वस्तुपरकता में वैयक्तिकता का समावेश कर ही देती है।

दैनिक पत्र के लिए समाचार- लेखन में केवल एक दिन की घटना का समावेश रहता है, किंतु साप्ताहिक पत्र के लिए उस समाचार-पत्र के लिए उस समाचार से संबंधित सात दिन के घटनाक्रम का सारांश समाहित रहता है। दैनिक के लिए समाचार लेखन में समाचार की पृष्ठभूमि आदि का तथा उसी प्रकार की अन्यत्र हुई घटना से तुलना आदि का भी समावेश होता है।

समाचार की परिभाषा

'समाचार' की कोई एक निश्चित और वैज्ञानिक परिभाषा आज तक नहीं की गई है। समाचार-पत्र में जो कुछ छपता है वह समाचार नहीं होता है। फिर भी समाचार-पत्र का कच्चा माल कागज और स्याही नहीं है, बल्कि समाचार ही हैं वही उसके मुख्य उपजीव्य है, उसका मुख्य भोजन है और मुख्य प्रतिपाद्य है। समाचार-पत्र में प्रकाशित सामग्री चाहे ठोस संवाद कथा (News Story) रूप में हो, चाहे फीचर या लेख के रूप में हो, या विज्ञान के रूप में हो, उसमें मुख्य तत्व समाचार ही रहता है।

'समाचार' की कोई ठोस परिभाषा आज तक नहीं की गई है। समाचारों की जानकारी, बातों और अफवाहों की भरमार होती है। लेकिन हर जानकारी, हर बात और हर अफवाह समाचार नहीं होता। तब प्रश्न उठता है कि समाचार क्या है? उसकी परिभाषा क्या है? उसकी संरचना कैसे हुई? उसके मुख्य तत्व क्या हैं? इन प्रश्नों का उत्तर अनेक विद्वानों ने दिया है। कुछ महत्वपूर्ण और रोचक परिभाषाएं इस प्रकार हैं। पाश्चात्य विद्वानों ने 'समाचार' को इस प्रकार रेखांकित किया है-

> "पर्याप्त संख्या में मनुष्य जिसे जानना चाहे वह समाचार है, शर्त यह है कि वह सुरुचि तथा प्रतिष्ठा के नियमों का उल्लंघन न करे।" **–जे.जे. सिडलर**
>
> "समाचार सामान्य वह उत्तेजक सूचना है, जिसमें कोई व्यक्ति संतोष अथवा उत्तेजना प्राप्त करता है।" **– प्रो. चिल्टन बुश**
>
> "अनेक व्यक्तियों की अभिरुचि जिस सामयिक बात में होती है, वह समाचार है। सर्वश्रेष्ठ समाचार वह है, जिसमें बहुसंख्यक लोगों की अधिकतम रुचि हो।"
>
> **–प्रो. विलियम जी. ब्लेयर**
>
> "उन महत्वपूर्ण घटनाओं की, जिनमें जनता की दिलचस्पी हो, पहली रिपोर्ट को समाचार कह सकते हैं।" **–इरी सी. हापवुड**

टिप्पणी

"किसी समय होने वाली उन महत्वपूर्ण घटनाओं के सही और पक्षपातरहित विवरण को, जिनमें उस पत्र के पाठकों की अभिरुचि हो, हम समाचार कह सकते हैं।" – **विलियम एस. माल्सबाई**

"समाचार अति गतिशील साहित्य है। समाचार-पत्र समय के करघों पर इतिहास के बहुरंगी बेल-बूटेदार कपड़े को बुनने वाले तकुए हैं।"

–हार्पर लीच और जॉन सी. कैरोल

"श्रेष्ठ समाचार की परिभाषा यद्यपि यही है, तथापि साधारण व्यवहार में समाचार वे हैं, जो अखबार में छपते हैं और अखबार वे हैं, जिन्हें समाचार-पत्र में काम करने वाले तैयार करते हैं। यह कथन यद्यपि वेदनामूलक है तथापि कटु व्यंग्य होते हुए भी सत्य है।" **–जेराल्ड डब्ल्यू, जानॅसन**

"जिसे अच्छा संपादक प्रकाशित करना चाहे, वही समाचार है।"

"समाचार घटना का विवरण है। घटना स्वयं में समाचार नहीं है।"

"घटनाओं, तथ्यों और विचारों की सामयिक रिपोर्ट समाचार है, जिसमें पर्याप्त लोगों की रुचि हो।" **–विलियम एल. रिचर्स**

"उस सत्य घटना का विचार, जिसमें बहुसंख्यक पाठकों की अभिरुचि हो।"

–एम. लाइल स्पेंसर

"समाचार जल्दी में लिखा गया इतिहास है।" **–जार्ज एच. मारिस**

"घटना समाचार नहीं है, बल्कि वह घटना का विवरण है जिसे उनके लिए लिखा जाता है, जिन्होंने उसे देखा नहीं है।" – **मैंस फील्ड**

"जो प्रसारित अथवा समाचार-पत्र में मुद्रित होता है, वह समाचार होता है।"

–टर्नर कैटोलिज

"समाचार किसी घटना, परिस्थिति, स्थिति या रूप की सही और सामयिक सूचना है-ऐसी सूचना, जिमसें उन लोगों को, जिनके लिए वह अभिप्रेत हो, दिलचस्पी होगी।" – **डाउलिंग लेदरवुड**

"समाचार 'सामान्य से परे' कोई भी बात है समाचार ही एक ऐसी बात है, जो समाचार-पत्रों की विशाल संख्या को बेचने में सहायता कर सकती है।"

–नार्थक्लिफ

"समाचार किसी भी घटना का ऐसा विवरण है, जिसे एक समाचार-पत्र केवल इसलिए मुद्रित करता है ताकि वह लाभ कमा सके।"

–कर्टिस डी. मेक्डेगेल

"समाचार किसी वर्तमान विचार, घटना या विवाद का ऐसा विवरण है, जो उपभोक्ताओं को आकर्षित करे।" **–वूलस्ले और कैंपवेल**

भारतीय विद्वानों की दृष्टि में समाचार की अवधारणाएं इस प्रकार हैं-

समाचार शब्द की व्युत्पत्ति- 'सम् + आ + चर + घत्र्' है, जिसका अर्थ सम्यक करना या व्यवहार बताना है। सम्यक आचरण के अनुरूप ही जब निष्पक्ष भाव से तथ्यों की सही सूचना दी जाती है तो वह समाचार माना जाता है। 'चर' धातु चिंतन, अध्ययन और रक्षण से भी संबंधित है अर्थात तथ्यों का अध्ययन, चिंतन एवं रक्षण समाचार है।

'संवाद', 'ख़बर', 'विवरण', 'सूचना', 'जानकारी', 'मालूमात', 'रपट', 'रिपोर्ट', 'वार्ता', 'वृत', 'वृतांत', 'संवाद', 'हाल', 'घोषणा', 'मुनादी', 'वक्तव्य', और 'संदेश' समाचार के पर्याय हैं। इन सभी शब्दों से किसी घटना की पूरी जानकारी देने का भाव स्पष्ट होता है।

"समाचार का मौलिक कच्चा माल कागज नहीं है, वह है समाचार। फिर चाहे प्रकाशित सामग्री ठोस संवाद के रूप में हो या लेख के रूप में, सबके मूल में वही तत्व रहता है, जिसे हम समाचार कहते हैं।" परिभाषा के बिना भी समाचार का बोध पाठक को उस स्पंदन से होता है, जो वह उसे पढ़कर प्राप्त करता है। समाचार का बोध उस आंशिक या पूर्ण संतोष से भी होता है, जब पाठक उसे पढ़कर अपने को अधिक सूचित, ज्यादा शिक्षित पाता है। स्पंदकारी वही होगा, जो मन-मस्तिष्क को दिलचस्प लगे। मानसिक संतोष उससे मिलेगा, जो महत्वपूर्ण जानकारी देगा। अत: समाचार को सदैव नया, दिलचस्प, मनोरंजक और महत्वपूर्ण होना चाहिए।" **–डॉ. नंदकिशोर त्रिखा**

"समाचार की नवीनता इसी में है कि वह परिवर्तन की जानकारी दे। यह जानकारी चाहे राजनीतिक, सामाजिक अथवा आर्थिक हो। परिवर्तन में भी उत्तेजना है।" राव ने समाचार की उस पुरानी परिभाषा को बदल देने पर जोर दिया जिसके अनुसार "अगर कुत्ता आदमी को काटे तो समाचार नहीं बनता। हां यदि आदमी कुत्ते को काटे तो समाचार बन जाता है।" **–मनुकोंडा चलपति राव**

"दुनिया में कहीं भी किसी समय कोई छोटी-छोटी घटना या परिवर्तन हो, उसका शब्दों में जो वर्णन होगा, उसे समाचार या खबर कहते हैं।" **–रा.र. खाडिलकर**

"समाचार कागज या स्याही का पुलिंदा नहीं, बल्कि समाचार का पुंज है। इस पुंज को संवाददाता दूरमुद्रक, तार अथवा सामान्य डाक से प्रेषित करता है और मुद्रणालय छापकर पाठक तक भेज देता है।" **– डॉ. श्याम सिंह शशि**

"हर घटना समाचार नहीं है। सिर्फ वही घटना समाचार बन सकती है, जिसका सार्वजनिक महत्व है। अस्पतालों में लोग भरती होते रहते हैं। अच्छे होते हैं और मरते भी हैं लेकिन कोई मरीज इसलिए मर जाता है कि अस्पताल पहुंचने पर उसे देखने वाला कोई नहीं था, या डॉक्टर की गैर-हाजिरी में कंपाउंडर ने उसका गलत इलाज कर दिया या नर्स ने एक मरीज की दवा दूसरे को दे दी या ऑपरेशन करते समय कोई औजार पेट में रह गया और पेट की सिलाई कर दी गई। वे सब समाचार हो सकते हैं। इसी प्रकार यदि कोई नवीनतम ऑपरेशन हो, जैसे 'हृदय-प्रत्यारोपण', वह भी समाचार का विषय है।"

–अंबिका प्रसाद वाजपेयी

"पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित और रेडियो-टेलीविजन (इलेक्ट्रॉनिक मीडिया) जनसंचार माध्यमों से प्रसारित होने वाले सामयिक महत्व के सार्वजनिक विचारों, घटनाओं और क्रिया-कलापों के उस विवरण को 'समाचार' कहते हैं, जिससे हमें किसी प्रकार की शिक्षा, सूचना या मनोरंजन प्राप्त होने की अनुभूति होती है।" **–प्रवीण दीक्षित**

"समाचार का अर्थ आगे बढ़ना, चलना, अच्छा आचरण या व्यवहार है। मध्य और परवर्ती काल में किसी कार्य या व्यापार की सूचना को समाचार मानते थे। ऐसी ताजी या हाल की घटना की सूचना, जिनके संबंध में पहले लोगों की जानकारी न हो।"

–मानक हिंदी कोश (रामचंद्र वर्मा)

"सूखे तथ्यों को समाचार नहीं माना जाता। वे तथ्य ही समाचार हैं जो पाठक के जीवन, सुख-दुख, भावना और विचारों पर प्रभाव डालते, उसे रुचिकर प्रतीत होते और आनंद देते हैं।" **–प्रेमनाथ चतुर्वेदी**

"जिन तत्वों से समाचार बनता है, उनमें सबसे महत्वपूर्ण तत्व है-सत्य का तत्व। सामयिकता मूल्यवान होती है, किंतु सत्य उससे भी अधिक मूल्यवान होता है।"

–के.पी. नारायणन

"समाज में किसी भी प्रकार का संघर्ष समाचार का सृजन करता है। यह संघर्ष प्रकृति के विरुद्ध भी हो सकता है। श्रमिकों का प्रबंधकों और संचालकों के विरुद्ध संघर्ष हो सकता है। एक इकाई या समूह के विरुद्ध हो सकता है। अत्याचार के विरुद्ध खड़े होना तो संघर्ष ही है। साथ ही दो राष्ट्रों के बीच युद्ध भी संघर्ष की स्थिति में है। भले ही वह शीत युद्ध हो। इसके अतिरिक्त राज्यों के बीच विवाद को लेकर संघर्ष हो या राज्य के बीच में किसी विवाद को लेकर संघर्ष हो, दोनों ही समाचार के लिए महत्वपूर्ण हैं। चुनाव भले ही किसी भी स्तर पर हो, प्रकारांतर से संघर्ष के अंतर्गत ही आते हैं। अत: जहां भी संघर्ष का तत्व मौजूद है-उसमें समाचार उत्पन्न करने की क्षमता होती है।"

किसी प्रख्यात नेता के भाषणों की बार-बार आवृत्ति कदापि समाचार नहीं है, किंतु भाषण में समाचार तत्व क्या है, यह देखने की बात है। इसी प्रकार किसी भी घटना या स्थिति-परिस्थिति को केवल मात्र वर्णन समाचार नहीं है। उसमें जो समाचार तत्व है वह समाचार है। कोई भी मोड़ किसी भी क्षेत्र में समाचार नहीं है। लेकिन क्या हुआ है? क्या हो सकता है? वह समाचार है। राजनीतिक दल का प्रवक्ता जब कोई बात प्रथम बार कहता है तो वह समाचार होता है। लेकिन बार-बार उसी बात को कहना प्रचार की श्रेणी में आता है। समाचार और प्रचार में यही अंतर है। जब किसी निर्णय की घोषणा की जाए, तब तो वह समाचार है, लेकिन भाषण दे-देकर जनता को अपने पक्ष में बनाने का प्रयत्न हो तो वह प्रवाह है। **–ऋषिक कुमार मिश्र**

उपर्युक्त परिभाषाओं के अतिरिक्त 'समाचार' इन वक्तव्यों और कथनों से भी परिभाषित होता है। ये हैं-

"जिस किसी बात को संपादक कहते हैं वह समाचार होता है।"

टिप्पणी

"विचार रहित तथ्य भी समाचार है।"

"जिसे कहीं कोई दबाना चाह रहा हो तो समाचार है, शेष सब विज्ञापन है।"

"बुराई में समाचार है।"

"जिसे अच्छा संपादक प्रकाशित करना चाहे, वही समाचार है।"

"समाचार घटना या विवरण है। घटना स्वयं में समाचार नहीं।"

"समाचार कोई भी बात है जो सामान्य से परे हो।"

"एक योग्य पत्रकार जो लिखता है वही समाचार है।"

"पाठक जिसे जानना चाहते हैं, वह समाचार है।"

ब्रिटेन के प्रसिद्ध समाचार-पत्र 'मानचेस्टर गार्डियन' ने "समाचार की परिभाषा क्या है" इस पर एक प्रतियोगिता कराई थी, जिसमें सर्वोत्तम परिभाषा जो पुरस्कृत की गई, वह इस प्रकार थी-समाचार किसी अनोखी या असाधारण घटना की अविलंब सूचना को कहते हैं, जिसके बारे में लोग प्राय: पहले कुछ न जानते हों, लेकिन जिसे तुरंत ही जानने की ज्यादा से ज्यादा लोगों में रुचि हो।

"जो प्रसारित अथवा समाचार-पत्र में मुद्रित होता है, वह समाचार होता है।"

"समाचार जल्दी से लिखा गया इतिहास है।"

जिन तत्वों से समाचार बनता है, उनमें सबसे महत्वपूर्ण तथ्य हैं-सत्य, सामयिकता और मूल्यांकन, लेकिन सत्य अधिक मूल्यवान होता है। इसी कारण 'लंदन टाइम्स' के प्रारंभिक संपादकों में से एक संपादक ने अपने समाचार-पत्र का ध्येय वाक्य बनाया था-'समाचार सबसे पहले देना चाहिए, किंतु सबसे अधिक जल्दबाजी में नहीं।'

इन सभी परिभाषाओं से यही निष्कर्ष निकलता है कि सत्य, सामयिकता और बहुसंख्यक व्यक्तियों की जिसमें रुचि हो, वही सूचना 'समाचार' है।

समाचार लेखन के तत्व

जो घटना या वस्तु एकाएक हमारा ध्यान आकर्षित कर लेती है, उसमें समाचार का बुनियादी तत्व मौजूद होता है, ऐसी मान्यता है। इनके अतिरिक्त निम्न तत्वों का किसी भी समाचार को महत्व देने में विशेष योगदान रहता है-1. तात्कालिकता, 2. निकटता, 3., आकार और संख्या 4. विचित्रता और 5. महत्व।

1. **तात्कालिकता**-जो समाचार (या वृत्तांत) दिया जा रहा हो और जिस घटना के बारे में दिया जा रहा हो, उसके बीच समय में कम से कम अंतर हो, अर्थात उस घटना को घटे अधिक समय व्यतीत न हुआ हो। कहने का तात्पर्य यही है कि ताजा से ताजा समाचार पाठकों को आकर्षित करता है।
2. **निकटता**- जिस स्थान का समाचार दे रहे हों और जिस स्थान पर वह समाचार प्रकाशित होगा-इनमें भौगोलिक निकटता है। पाठक के लिए निकट की घटना दूर की घटना से अधिक महत्वपूर्ण होती है। उसमें उसको दिलचस्पी अधिक होती है।

टिप्पणी

3. **आकार और संख्या**- किसी भी घटना विशेष का आकार के हिसाब से भी (छोटी और बड़ी घटना का) 'समाचार मूल्य' आंका जाता है। अधिक संख्या में मृत और घायल यात्रियों से संबद्ध कोई दुर्घटना समाचार की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण मानी जाएगी, जबकि कम यात्रियों की मौत की खबर अपेक्षाकृत गौण होगी।
4. **विचित्रता**- आश्चर्य या हैरत में डालने वाली बात या घटना का भी समाचार-मूल्य होता है। संशय और रहस्य से पूर्ण समाचार में पाठकों को अधिक जिज्ञासा होती है।
5. **महत्व**- किसी भी घटना का परिणाम यदि राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, व्यापारिक और साहित्यिक-सांस्कृतिक क्षेत्र में बहुत बड़ा परिवर्तन ला सके तो इसका महत्व अधिक होता है।

समाचार की आधुनिक और जितनी भी परिभाषाएं हैं, इन सबका सार यही है कि समाचार को समाचार तत्व प्रदान करने वाले निम्नलिखित पांच तत्व हैं-1. जानकारी, 2. नवीनता, 3. बहुसंख्यकों की अधिक रुचि, 4. उत्तेजक सूचना, 5. परिवर्तन की सूचना।

केवल शुष्क तथ्य कभी समाचार नहीं कहलाते। परंतु जो तथ्य मानव के जीवन, भावना और विचारों में प्रभाव डालते हैं, उसे रुचिकर होते हैं, आनंद देते हैं और आंदोलित करते हैं, वे ही समाचार बनते हैं। भावोद्रेक करने वाले या अपने हित और अहित से संबद्ध समाचारों में मनुष्य की विशेष रुचि होती है।

प्रेमनाथ चतुर्वेदी ने आकर्षण के मूल गुण निम्न माने हैं-

1. नवीनता, 2. सामयिकता, 3. सामीप्य, 4. स्वहित, 5. धन, 6. काम-वासना, 7. संघर्ष और रोमानी, 8. असाधारणतया, 9. वीर पूजा, 10. यश, 11. रहस्य, 12. मानवीय गुणों का उद्रेक, 13. विशिष्टता (व्यक्ति, स्थान और पद), 14. परिणाम (व्यापक और सघन), 15. संस्कृति, 16. विश्वास, 17. स्वास्थ्य, 18. सुरक्षा, 19. बंधुत्व (अंतर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय, प्रादेशिक, नगरीय और जातीय), 20. सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन।

डॉ. नंदकिशोर त्रिखा ने वे बातें, जो अधिकांश पाठकों को दिलचस्प लगती हैं-वे इस प्रकार मानी हैं- 1. नवीनता, असामान्यता, 2. अनापेक्षित भाव, 3. आत्मीयता, आकांक्षा, 4. व्यक्तिगत प्रभाव, 5. निकटता, 6. करुणा और भय, 7. धन, 8. मानवीय पक्ष, 9. सहानुभूति, 10. रहस्य।

डॉ. अर्जुन तिवारी ने समाचार के ये तत्व माने हैं- 1. नूतनता, 2. सत्यता, 3. सामीप्य, 4. सुरुचिपूर्णत, 5. वैयक्तिकता, 6. संख्या और आकार, 7. संशय और रहस्य। इन तत्वों के अतिरिक्त संघर्ष, स्पर्धा, उत्तेजना, रोमांस, वैशिष्ट-परिणाम, कामेच्छा, कुकृत्य, नाटकीयता, मानवीय गुणों का उद्देश्य, असाधारणतया, आर्थिक-सामाजिक परिवर्तन तथा उद्भावना समाचार के ऐसे तत्व है जिनसे समाचार के प्रति आकर्षण उत्पन्न होता है।

समाचार की आधुनिक और जितनी भी परिभाषा है, उन सब का सार यही है कि समाचार को समाचार तत्व प्रदान करने वाले ये पांच हैं- 1. जानकारी, 2. नवीनता, 3. बहुसंख्यकों की अधिकता रुचि, 4. उत्तेजक सूचना और 5. परिवर्तन की सूचना।

टिप्पणी

प्रो. रमेश जैन ने समाचार लेखन में कुशलता और प्रवीणता प्राप्त करने के लिए ये मूल मुख्य तत्व माने हैं-1. सामयिकता, 2. घटना स्थल, 3. मानवीय रुचि और 4. आत्मीयता।

1. **सामयिकता**- सामयिकता समाचार लेखन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व है। कोई भी समाचार चाहे वह प्रिंट मीडिया का हो या इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का नवीन घटनाओं ओर वर्तमान जगत से जितना अधिक जुड़ा होगा उसमें पाठक की उतनी ही अधिक रुचि होगी। समाचार का सबसे बड़ा गुण है उसकी तात्कालिकता या सामयिकता। उसे नदी के निरंतर बहते जल-प्रवाह की तरह नवीनतम होना चाहिए।

   घटनाक्रम के तीव्र प्रवाह के साथ-साथ समाचार का कथ्य भी बदलता रहता है। यही सामयिकता है। पुराना या बासी समाचार एक तरह से समाचार नहीं रह जाता। समाचार यदि सामयिक या नवीनतम न हो तो वह संवाद न होकर संदर्भ विश्लेषण का आख्यान बन जाता है।

2. **घटना स्थल (प्रकाशन-स्थल)**- समाचार का दूसरा महत्वपूर्ण तत्व उसका घटना स्थल या प्रकाश-स्थल है। आम पाठक की अपने आस-पास, नगर या राज्य के समाचारों में दिलचस्पी होना स्वाभाविक है, क्योंकि जो घटनाएं पाठक के इर्द-गिर्द घटती हैं, वे उसे अधिक प्रभावित करती हैं।

3. **मानवीय रुचि**- रोजमर्रा की आपाधापी की जिंदगी में कुछ ऐसी स्थितियां आती हैं, जो जीवन की दृष्टि से अर्थपूर्ण होती है। आमतौर पर नेताओं के भाषणों, बयानों, अपराधों, आतंकवाद, भ्रष्टाचार और सरकारी विज्ञप्तियां, चुनाव आदि समाचारों की समाचार-पत्रों में भरमार होती है। लेकिन मानवीय रुचि- 'ह्यूमन' से जुड़े समाचारों का समाचार-पत्रों में अभाव रहता है। मानवीय संवेदनाओं और जीवन के कुछ अव्यक्त पहलुओं को प्रकाश में लाने वाले समाचार मानवीय रुचि के समाचारों की श्रेणी में आते हैं। ऐसे समाचारों को लिखने के ढंग से और रोचक बनाया जा सकता है। कहा जा सकता है कि समाचार में मानवीय रुचि का होना जरूरी है।

4. **आत्मीयता**- आत्मीयता भी समाचार का एक बड़ा तत्व है। समाचार से जुड़ी घटनाओं से पाठक जितनी आत्मीयता पाएगा, वह उससे उतना ही प्रभावित होगा। इसके अतिरिक्त सत्यता, नवीनता, वैयक्तिकता, संख्या और आकार, संशय और रहस्य आदि समाचार के ऐसे तत्व हैं, जिनमें समाचार के प्रति आकर्षण उत्पन्न होता है।

चार सकार

संवाददाता को समाचार लेखन में चार सकारों को अवश्य ध्यान में रखना चाहिए। ये हैं-

1. **सत्यता**- समाचारों में सत्यता हो और समाचार किसी पूर्वाग्रह या पक्षपात से न लिखा जाए। सत्य को ठेस पहुंचाना समाचार की आत्माओं को नष्ट करता है।
2. **स्पष्टता**- समाचार सरल और सहज भाषा में लिखा जाए, जिसमें पाठक को समझने में कोई कठिनाई नहीं हो।

3. **सुरुचि**- समाचार सदैव सुरुचि से लिखा जाना चाहिए, जिससे पाठक की रुचि उसमें बनी रहे।
4. **संक्षिप्तता**- समाचार में थोड़े से शब्दों में अधिक से अधिक बात कहने की क्षमता हो।

समाचार लेखन की तकनीक

आज समाचार का महत्व बताने की शायद ही आवश्कता हो। जेम्स रस्टन ने ठीक ही कहा है कि, "उन्नीसवीं सदी कथाकारों की थी, तो बीसवीं सदी पत्रकारों की है। लोकतंत्र में पत्रकारिता को 'चौथी सत्ता' माना जाता है। समाचार-पत्रों के बिना लोकतंत्र संभव नहीं है।"

समाचार-पत्र में हम अधिकतर समाचार पढ़ते हैं। इसके अलावा दैनिक समाचार-पत्र में संपादकीय और अन्य स्तंभ तथा विज्ञापन होते हैं। लेकिन समाचार दैनिक समाचार-पत्र का मुख्य आधार है। समाचार रहित दैनिक समाचार-पत्र की कल्पना भी नहीं की जा सकती। इन समाचारों को दूसरे शब्दों में 'घटी हुई घटनाओं का विवरण अथवा वृतांत कहा जा सकता है। यह वृतांत तैयार करने वालों को संवाददाता (रिपोर्टर) कहते हैं। इस प्रकार, संक्षेप में कहें, तो समाचार-लेखन समाचार-पत्र का अत्यंत महत्वपूर्ण अंग है। नादिग कृष्णमूर्ति इसे 'Sum and substance of a newspaper' (समाचार-पत्र का मूलभूत तत्व) कहते हैं।

अब प्रश्न उठता है कि समाचार लेखन किसे कहेंगे? व्यापक अर्थ में कहा जाए तो समाचार-लेखन किसी समाचार माध्यम द्वारा 'किसी कहे हुए, सुने हुए अथवा किसी तरह प्राप्त किए संदेश को पुनः प्रस्तुत करना है।' दूसरे शब्दों में कहें, तो जो हो चुका है, अथवा होने की संभावना है, उसके विषय में सही, संपूर्ण, तटस्थ और समय पर जानकारी देने की प्रक्रिया को समाचार-लेखन कहा जा सकता है।

समाचार-पत्रों में समाचार लेखन का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। मानव की जिज्ञासा का क्षेत्र विस्तृत होता जा रहा है और भविष्य में और विस्तृत होता जाएगा। स्वाभाविक ही है कि इस प्रक्रिया के साथ-साथ समाचार लेखन का क्षेत्र बढ़ता जा रहा है। इस क्षेत्र में नए-नए विषय प्रवेश करते जा रहे हैं।

1800 से पूर्व समाचार लेखन के लिए कोई वैज्ञानिक पद्धति नहीं थी। संवाददाता दैनिक घटनाओं का काल क्रमानुसार रखकर अपना कार्य चला रहे थे। धीरे-धीरे समाचार-पत्रों का प्रसार होता गया। समाचार-पत्रों में स्थान का महत्व बढ़ा और मूल्य का भी। अतः समाचारों को व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत किया जाने लगा। वर्ष 1894 में एडविन एल. शूमैन ने 'प्रैक्टिकल जर्नलिज्म' नामक पुस्तक में पत्रकारिता के इन विशिष्ट तथ्यों की ओर संकेत किया।

समाचार लेखन के सिद्धांत-5 डब्ल्यू और एक एच (5-W/H– what, where, when, who, why, and, how)। हिंदी में छह ककार-क्या, कहां, कब, कौन, क्यों और कैसे।

रूडयार्ड किपलिंग ने सर्वप्रथम समाचार लेखन के लिए 5 डब्ल्यू और 1 एच का उल्लेख किया। इन्हें हिंदी में छह ककार कहते हैं। ये छह ककार आज भी केवल समाचार संकलन जगत के नहीं, बल्कि पत्रकारिता-जगत के आधार स्तंभ हैं-

1. क्या हुआ, अर्थात क्या घटना हुई?
2. कहां हुआ, अर्थात घटना कहां हुई?
3. कब हुआ, अर्थात किस समय घटना घटी?
4. कौन-सी घटना हुई, अर्थात किसके साथ क्या हुआ?
5. क्यों घटना हुई, अर्थात किसके साथ क्या हुआ?
6. कैसे घटना घटित हुई?

अंग्रेजी में इन्हें- What, Where, When, Who, Why और How कहा जाता है (अर्थात 5 डब्ल्यू. और 1 एच.)। पाठक इन ककारों का उत्तर इसी क्रम से चाहता है। सबसे पहले 'क्या' और सबसे बाद 'कैसे' का उत्तर देना चाहिए। सामान्य नियम यह है कि अत्यंत महत्व के तथ्य सबसे पहले देना चाहिए और सबसे कम महत्व के अंश को सबसे बाद में देना चाहिए। एक समाचार देखिए-

सिक्किम : भूस्खलन से 21 लोगों की मौत

गंगटोक, 23 सितंबर। उत्तरी सिक्किम में भारी बारिश और भूस्खलन से 21 लोगों की मौत हो गई। इसमें इंडो-तिब्बत सीमा पुलिस (आईटीबीपी) के दो जवान और उनके दो परिजन शामिल हैं। सीमा सड़क संगठन के 12 जूनियर अफसर भी मारे गए हैं। बाकी मृतक मजदूर थे। जिले के डिप्टी कमिशनर टी.डब्ल्यू कांगशेरपा ने बताया कि ज्यादा लोगों की मौत रंगमा रेंज में हुई है। चुंगतांग क्षेत्र में सीमा सड़क संगठन का शिविर लगा था। लाचेन नदी में आई बाढ़ में यह लोग बह गए। कई लोग अभी भी लापता हैं। राहत सामग्री से लदे ट्रक सड़कों के क्षतिग्रस्त हो जाने से बीच में फंसे हुए हैं।

इनमें हमें प्राय: छह ककारों का उत्तर मिल जाता है-

1. क्या? भूस्खलन
2. कहां? सिक्किम
3. कब? 23 सितंबर
4. कौन? 21 लोग मरे
5. क्यों? भूस्खलन के कारण
6. कैसे? भारी बारिश और भूस्खलन से

संवाददाता को समाचार-लेखन से पूर्व तय कर लेना चाहिए कि समाचार की शुरुआत कैसे करनी है। कौन-सी जानकारी पहले देनी हैं और किस क्रम से देनी है। मन में इस तरह का खाका बना लेने से ब्यौरे तरतीब से सजाए जा सकते हैं एवं सुगठित और

तराशा हुआ समाचार लिखा जा सकता है समाचार-लेखन के लिए निम्न प्रक्रिया जरुरी है- 1. समाचार तथ्यों को संकलित करना, 2. कथा की कार्य योजना बनाना एवं लिखना, 3. आमुख लिखना, 4. परिच्छेदों का निर्धारण करना, 5. वक्ता के कथन को अविकल रूप से प्रस्तुत करना, 6. सूत्रों के संकेत को उद्धृत करना।

विलोम पिरामिड

समाचार-लेखन के लिए कुछ पारंपरिक नियम हैं, जिनका कमोबेश आज भी प्रयोग होता है। उदाहरण के लिए 'विलोम पिरामिड' (Inverted Pyramid) शैली। पिरामिड का आधार आयताकार होता है और शीर्ष पहाड़ की चोटी की तरह नुकीला। पिरामिड को उलटकर नोक के बल पर खड़ा कर दिया जाए तो उसका आधार ऊपर की तरफ होगा। समाचार के संदर्भ में इसका अर्थ है कि समाचार का सार संक्षेप आरंभ में ही दे दिया जाए ताकि पाठक को एक ही नजर में पता लग जाए कि आगे क्या-क्या जानकारी मिलने वाली है। पाठक में आगे पढ़ने की उत्सुकता जागेगी और ज्यों-ज्यों वह खबर पढ़ता जाएगा जानकारी की परतें एक-एक करके उघड़ती चली जाएंगी।

विलोम पिरामिड शैली से पाठक को शुरु में ही ज्ञात हो जाता है कि समाचार में क्या है? दूसरा यदि पेज का मेकअप करते समय मैटर या समाचार बढ़ जाता है यानी जगह कम रहती है तो आखिर के दो-तीन अनुच्छेद आसानी से काटे जा सकते हैं, क्योंकि अंत में गौण तथ्य ही होंगे।

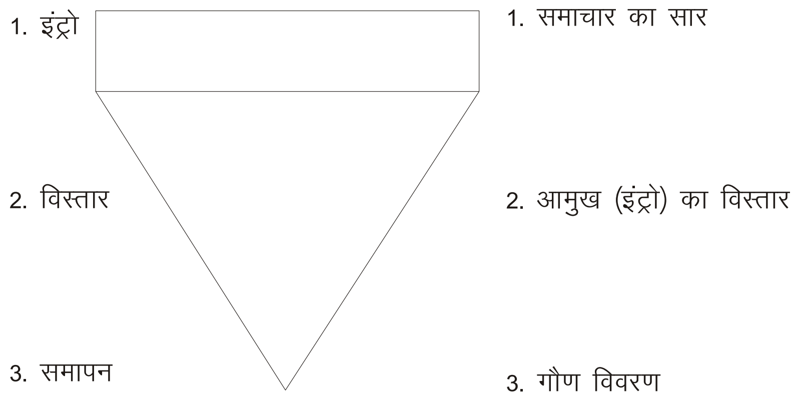

चित्र *विलोम पिरामिड*

विलोम पिरामिड शैली में कुछ खामियां भी हैं। जैसे समाचार के आरंभिक भाग (इंट्रो) में जानकारी ठूंसने की कोशिश मे वाक्य रचना के बोझिल होने का खतरा रहता है। दूसरा, समाचार की शुरुआत रोचक ढंग से नहीं होती। तीसरी बात यह है कि शीर्षक और इंट्रो में विषय या जानकारी की पुनरावृत्ति होती है। आगे चलकर अन्य तथ्य देते समय उसका फिर से उल्लेख करना पड़ जाता है। इन खामियों के वाबजूद विलोम पिरामिड शैली समाचारों को कम से कम स्थान या पंक्तियों जोड़ने की दृष्टि से भी बहुत उपयोगी है। समाचारों में पूरी तरह और बड़ी घटनाओं की खबरों में काफी हद तक विलोम पिरामिड का अनुसरण किया जाता है।

ऊधर्व पिरामिड शैली

ऊधर्व (Upright Pyramid) शैली विलोम पिरामिड शैली से एकदम उलटी है। ऐसे समाचारों के आरंभ में सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंश को शुरु में न देकर उसका आरंभ सबसे कम महत्व के विवरण में किया जाता है। लेकिन धीरे-धीरे महत्वपूर्ण विषय को लिया जाता है और

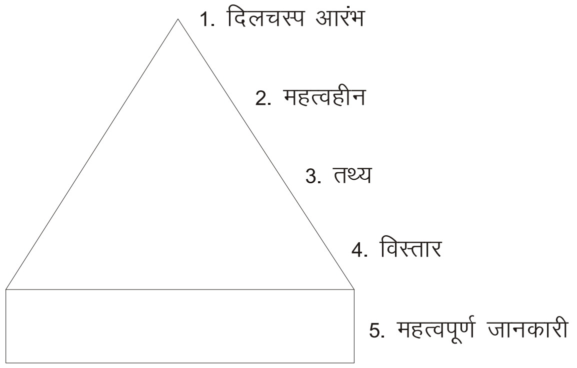

चित्र *ऊर्ध्व पिरामिड*

समाचार सर्वाधिक महत्व वाले विवरण पर समाप्त किया जाता है। इन्हें निलंबित अभिरुचि वाला समाचार भी कहा जाता है। ऊधर्व पिरामिड का उपयोग फीचर, मानवीय, अभिरुचि के समाचारों में प्रयुक्त किया जाता है। इसमें दी जाने वाली सामग्री का क्रम कुछ इस प्रकार रहता है-

1. सबसे कम महत्वपूर्ण सूचना, लेकिन जो पाठक में उत्सुकता पैदा करे।
2. समाचार से जुड़े तथ्य।
3. विस्तार, जिसमें समाचार की पृष्ठभूमि भी शामिल हो।
4. महत्वपूर्ण जानकारी।
5. सर्वाधिक महत्वपूर्ण जानकारी जिसे समाचार का चरमोत्कर्ष भी कहा जा सकता है।

समाचार लेखन की नई शैली

मीडिया के विभिन्न माध्यमों में समाचार लेखन के लिए विलोम पिरामिड शैली का सर्वाधिक प्रयोग होता है। लेकिन समाचार लेखन की अनेक शैलियों का प्रचलन बढ़ा है। नई शैली में लोकप्रिय शैली कथात्मक या वर्णनात्क शैली है। इसमें समाचार विलोम पिरामिड के बजाय कथात्मक/वर्णनात्मक शैली में समाचार लिखा जाता है। इसमें समाचार पढ़ने में एक निरंतरता बनी रहती है। समाचार को कहीं भी संपादित नहीं किया जा सकता है। अंग्रेजी के समाचार-पत्रों-टाइम्स ऑफ इंडिया, हिंदुस्तान टाइम्स, इंडियन एक्सप्रेस आदि में कथात्मक या वर्णनात्मक शैली में लिखे समाचारों का चलन लगातार बढ़ रहा है। हिंदी के समाचार-पत्रों 'नवभारत टाइम्स', 'दैनिक हिंदुस्तान', 'जनसत्ता', 'जागरण', 'राजस्थान पत्रिका' आदि में इस शैली में लिखे गए समाचार दिखाई देते हैं।

समाचार लेखक के गुण एवं योग्यताएं

किसी भी समाचार लेखक या संवाददाता के लिए सहज बुद्धि और भाषा पर पूर्ण अधिकार मूल योग्यता मानी जाती है। साथ ही उसमें मानवीय मूल्यों का भी समावेश होना चाहिए। उसमें लौकिक उत्सुकता के साथ सार्वजनिक मामलों में भी विशेष दिलचस्पी होनी चाहिए। उसे अपने कार्य के प्रति लगाव और प्रेम होना चाहिए। अन्य पेशों में अधिक धन और सुरक्षा प्राप्त को सकती है, किंतु संवाददाता का कार्य अपने आप में एक चुनौतीपूर्ण कार्य है और यह कार्यों की अपेक्षा अधिक कठोर होता है। एक अच्छे संवाददाता के लिए निम्नलिखित गुण एवं योग्यताएं अपेक्षित हैं-

1. **समाचार बोध–** संवाददाता में 'समाचार बोध' (न्यूज सेंस) जरुरी है, उसे पलक झपकते ही सारी घटना का समाचार मूल्य समझ में आ जाना चाहिए। उसे यह भी जानना चाहिए कि कम-से-कम समय में अधिक-से-अधिक जानकारी कहां से प्राप्त की जा सकती है? कौन-सा समाचार कहां से प्राप्त किया जा सकता है? समाचार बोध (न्यूज सेंस) का आशय है-समाचार क्या है और समाचार क्या नहीं है? संवाददाता को समाचार और गैर-समाचार में अंतर जानना जरुरी है।
2. **जिज्ञासु प्रवृत्ति–** संवाददाता में समाचार के अन्वेषण की जिज्ञासा सदैव बनी रहनी चाहिए और उसे अपने आपको सदैव जिज्ञासु बनाए रखना चाहिए। एक अच्छा संवाददाता वही है, जो सामयिक घटनाओं पर पैनी नजर रखता हो, तभी वह समाचार के 'पांच डब्लू और एक एच' (क्या, कब, कहां, कौन, क्या और कैसे) का विश्लेषण कर पाएगा। कोई भी अच्छी स्टोरी समाचार नहीं हो सकती। यदि संवाददाता जिज्ञासु प्रवृत्ति का होगा, तो वह समाचार की गहराई में जाकर नए-नए तथ्यों को उजागर कर सकेगा।
3. **दूरदृष्टि–** एक अच्छे संवाददाता के लिए दूरदृष्टि आवश्यक है। किसी घटना के महत्व को दूरदृष्टि के आधार पर ही समझा जा सकता है। अनेक बार संवाददाता किसी छोटी-मोटी खबर को महत्व नहीं देते हैं, बाद में वही छोटी खबर किसी बड़े समाचार का घटना का रूप ले लेती है। यदि संवाददाता की दूरदृष्टि तीव्र और पैनी होगी, तो वह ऐसी खबरों के महत्व को शुरु में ही समझ लेगा और उसे प्रेषित कर देगा।
4. **सतर्कता–** 'सतर्कता' संवाददाता के लिए अनिवार्य है। संवाददाता को सदैव सतर्क होना चाहिए और समाचार संकलन-प्रेषण का कार्य सतर्कता के साथ करना चाहिए। 'स्कूप' या 'खोज' में विशेष सतर्कता रखनी चाहिए। ऐसे समाचार, संवाददाता की सतर्कता के कारण ही पूर्ण समाचारों के लिए संवाददाता को प्रकाश में लाते हैं। 'तहलका डॉट कॉम', 'स्टांप पेपर घोटाला', 'ताज कोरिडॉर', 'बेस्ट बेकरी मामला', 'सरिस्का से स्पेक्ट्रम घोटाला', 'आदर्श हाउसिंग घोटाला', 'कोल ब्लाक आवंटन' आदि खोजपूर्ण समाचार मीडिया की सतर्कता के कारण ही प्रकाश में आए।

5. **स्पष्टवादी–** संवाददाता का स्पष्टवादी होना भी एक गुण है। बिना किसी लाग-लपेट के अपनी बात कहना किसी भी संवाददाता का विशेष गुण माना जा सकता है। यदि कोई संवाददाता अपने समाचार में 'सत्य' को पूरी निर्भयता से स्पष्टपूर्वक कहता है, प्रेषित करता है, तभी वह अपने पेशे और पाठकों के साथ न्याय कर पाता है।

   भारत के पूर्व मुख्य न्यायधीश के. सुब्बाराव ने पत्रकारों के कर्तव्य का विश्लेषण करते हुए कहा कि वे देश की प्रगति में तभी सहायक हो सकते हैं, जब वे समाचार-पत्र शासन और शक्तिमान पूंजीपतियों के हाथ की कठपुली न बनें, वे तथ्यों को सही-सही प्रकाशित करें और विचार प्रकट करते समय पक्षपात न करें।

6. **विश्वासी होना–** संवाददाता का सबसे बड़ा आधार विश्वास है। विश्वास संवाददाता की ऐसी बड़ी संपत्ति है, जिसे प्रयत्नपूर्वक संचित किया जाना चाहिए। यह मत भूलिए कि संपर्क-सूत्र भी हमेशा इस बात का ध्यान रखता है कि अमुक संवाददाता उसके विश्वास को कायम रखता है या नहीं। पत्रकारिता के पेशे का सबसे बड़ा आधार 'विश्वास' ही है। सच्चा पत्रकार कभी भी विश्सवासघात नहीं कर सकता, चाहे इसके लिए उसे कितना ही कष्ट क्यों न उठाना पड़े। विशेषकर अपने सूत्र पर कभी कोई संवाददाता आंच नहीं आने देता। पत्रकारिता की आचार-संहिता में एक यह भी है कि संवाददाता अपने स्रोत के विश्वास का पूरा सम्मान करे। अच्छे संवाददाता को सदैव अपने स्रोत की गोपनीयता बनाए रखना चाहिए।

7. **व्यवहार कुशलता–** संवाददाता को अपने कार्य में प्रवीण और कुशल होने के साथ-साथ व्यवहार कुशल भी होना जरूरी है। समाचार संकलन करते समय संवाददाता का संपर्क महत्वपूर्ण एवं संवेदनशील व्यक्तियों से होता है। यहां संवाददाता की व्यवहार कुशलता ही काम में आती है। कठिन-से-कठिन परिस्थितियों में धैर्यपूर्वक कार्य करने वाले संवाददाता अपने क्षेत्र में विशेष ख्याति प्राप्त करते हैं। अनेक बार संवाददाता को युद्ध, प्राकृतिक आपदा (बाढ़, अकाल, भूकंप, महामारी), रेल दुर्घटना आदि के समाचार अंकलन के लिए दूर-दराज के इलाकों में जाना पड़ता है। ऐसे अवसर पर व्यवहार कुशलता और नम्रता ही काम में आती है।

8. **समयबद्धता–** पत्रकारिता में समयबद्धता अर्थात समय की पाबंदी महत्वपूर्ण स्थान रखती है। कोई भी संवाददाता समय के प्रति निष्ठावान और अपनी प्रतिबद्धता से ही सफल हो सकता है। सूचना प्रौद्योगिकी के कारण समयबद्धता का गुण तो और भी आवश्यक हो गया है। कुछ ही मिनटों की देरी भी संवाददाता के समाचार प्रेषण को पीछे छोड़ सकती है, जिसका सीधा प्रभाव उसके समाचार माध्यमों पर पड़ सकता है। मीडिया जगत में विलंब से पहुंचे समाचारों का कोई विशेष महत्व नहीं है। कोई भी समाचार मिनटों में पुराना और मूल्यरहित हो जाता है।

9. **त्वरितता और गतिशीलता–** एक अच्छे संवाददाता में त्वरितता और गतिशीलता के गुण अनिवार्य है। कहा जा सकता है कि एक सुस्त व्यक्ति कभी भी एक अच्छा और योग्य संवाददाता नहीं बन सकता है। सूचना प्रौद्योगिकी के विस्तार के कारण गतिशीलता का महत्व अधिक बढ़ गया है। विश्व के किसी भी कोने में होने वाली छोटी-से-छोटी घटना भी क्षणभर में समूचे संसार में फैल जाती है। अनेक टेलीविजन न्यूज चैनल (जैसे-'आज तक', 'ए.बी.पी.' 'जी न्यूज', 'राष्ट्रीय सहारा चैनल', 'आई.बी.एन. 7', 'एनडी टी.वी इंडिया आदि) चौबीस घंटे चलते हैं, जिसके कारण कोई भी समाचार कुछ ही मिनटों में पुराना और मूल्यरहित हो जाता है। अत: मीडिया में त्वरित और गतिशीलता का विशेष महत्व है। संवाददाता को सदैव गतिशील रहना चाहिए, उसकी गतिशीलता ही उसे कोई 'स्कूप' या 'एक्सक्लुसिव' समाचार दिला सकते हैं।

10. **ईमानदारी और आत्मानुशासन–** संवाददाता के पेशे में ईमानदारी व आत्मानुशासन जरूरी है। देखा जाए तो ईमानदारी सभी पेशों में जरूरी है, लेकिन संवाददाता के लिए ईमानदारी और सत्यनिष्ठा का विशेष महत्व है। संवाददाता पर विभिन्न प्रकार के दबाव और प्रलोभन की आशंका बनी रहती है।

    मीडिया और समाचार प्रेषण में आत्मानुशासन का अलग महत्व है। संवाददाता आत्मनियंत्रण द्वारा ही आत्मानुशासन स्थापित कर सकता है। आत्मानुशासित होने पर ही काम के प्रति आत्मसमर्पण की भावना पैदा होती है। इससे आत्मविश्वास कई गुणा बढ़ जाता है।

11. **कलम का धनी–** आज का युग विशेषज्ञों का युग है। इसलिए देश-विदेश, राजनीति, विज्ञान, कृषि, खेल, संसद, वाणिज्य-व्यापार, न्यायालय और अदालतें, फिल्म और मनोरंजन विभिन्न प्रकार के समाचारों के संकलन के लिए अलग-अलग संवाददाता रखे जाते हैं। खोजपूर्ण (इनवेस्टिगेटिव रिपोर्टिंग) का महत्व भी अब तेजी से बढ़ रहा है। समाचार संकलन और प्रेषण के कार्यक्षेत्र का व्यापक विस्तार होता जा रहा है।

    संवाददाता या समाचार लेखक का लेखनी पर अधिकार अनिवार्य है। उसे विविध घटनाओं को लेखनी के माध्यम से चित्रित और अभिव्यक्त करना होता है। दर्शन और श्रवण से उत्पन्न अनुभूतियों के लिपिबद्ध करना, सहज रूप से सबकी समझ में आने वाली भाषा में अभिव्यक्त करना, घटनाओं का सजीव और रोचक, स्पष्ट और सरल, सत्य और सहज ढंग से चित्रण करना तब तक नहीं होगा, जब तक संवाददाता कलम का धनी नहीं होगा।

समाचार वाचन

समाचार का वाचन एक ग्लैमर युक्त करियर के रूप में आज की युवा पीढ़ी को अपनी ओर आकर्षित कर रहा है। समाचार के वाचन के लिए समाचार वाचक में अनेक खूबियों का होना अनिवार्य है। यथा–

टिप्पणी

1. समाचार वाचक का चेहरा आकर्षक होना चाहिए।
2. समाचार वाचक का भाषा पर एकाधिकार होना चाहिए।
3. समाचार वाचक भाषा का शुद्ध उच्चारण करने वाला होना चाहिए।
4. समाचार के वाचन के साथ-साथ वाचक को नवीनतम जानकारी तथा अच्छे व जरूरी ज्ञान का होना भी आवश्यक है।
5. समाचार वाचक को कैमरे की सामान्य जानकारी होना भी आवश्यक है।
6. एक समाचार वाचक को पत्रकारिता के ही एक भाग के रूप में समाचार वाचन का कार्य करने का गुण भी आना चाहिए।
7. समाचार वाचक को बोलने की कला का ज्ञान होना चाहिए।
8. समाचार वाचन के क्षेत्र में आत्मविश्वास से भरपूर व तुरंत निर्णय लेने वाला युवा अपना करियर बना सकते हैं।

समाचार वाचन के क्षेत्र में रोजगार प्राप्त करने के लिए वाचक को अपना स्क्रीन टेस्ट देना होता है, जिसके अंतर्गत बॉडी लैंग्वेज, आवाज उच्चारण, भाषा, जानकारी आदि के संबंध में टेस्ट होता है। स्क्रीन टेस्ट पास करने के उपरांत ही कोई व्यक्ति समाचार वाचक बन सकता है।

समाचार का वाचन करते समय यह ध्यान रखना पड़ता है कि बोलने का प्रवाह बना रहे, किंतु एक शब्द दूसरे शब्द से अलग प्रतिध्वनित हो। वास्तव में किस शब्द को कितना धीमा बोलना है, किस शब्द पर कितना बल देना है यह एक कला है। जो व्यक्ति वार्ताएं, कार्यक्रम का संयोजन, प्लानिंग तथा भाषण करने वाले होते हैं वह समाचार वाचन के क्षेत्र में अधिक सफल होते हैं। रचनात्मक प्रवृत्ति वाला व्यक्ति भी इस क्षेत्र में रोजगार प्राप्त कर सकता है। समाचार वाचन के क्षेत्र में अपने करियर बनाने के लिए उत्सुक युवा अगर प्रशिक्षण प्राप्त हैं तो उन्हें प्राथमिकता दी जाती है।

• आकाशवाणी (रेडियो)

श्रव्य माध्यम के रूप में रेडियो प्रसारण में सबसे अधिक महत्वपूर्ण भाषा होती है। यह भाषा मौखिक है, क्योंकि रेडियो कोई पर्दा नहीं है और यह भाषा केवल श्रव्य होती है प्रयोजनमूलक हिंदी में भाषा का प्रयोग अनेक प्रकार से हो सकता है भाषा तो एक ध्वनि प्रतीकों की व्यवस्था है जिसके दो आधार होते हैं– भौतिक और मानसिक। रेडियो में भी भाषा की मौखिक मूल प्रकृति का ही प्रयोग होता है इसमें ध्वनि के अनुरूप मनोभावों की व्यंजना की जाती है। मौखिक भाषा को प्रकृति को श्रव्य के माध्यम के अंतर्गत रखा जा सकता है।

आकाशवाणी के विविध कार्यक्रम इस प्रकार हैं–

1. **ग्रामीण कार्यक्रम**- रेडियो का प्रचलन दूर-दराज के गांवों में बहुत अधिक है। इसलिए ग्रामीण लोगों के विकास हेतु तथा देश-भर में हो रहे विभिन्न विकास कार्यों से उनकी पहचान कराने हेतु आकाशवाणी से ग्रामीण कार्यक्रमों का प्रसारण

टिप्पणी

किया जाता है। इसमें कृषि-जगत के तकनीकी विकास, कृषक-प्रशिक्षण, साक्षरता-अभियान आदि वैविध्यपूर्ण विषयों पर सहज-सरल रूप में कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं।

2. **विविध भारती एवं विज्ञापन सेवा**- विविध भारती पर कई मनोरंजक कार्यक्रमों का प्रसारण होता है, जिनमें गीत-संगीत, भक्ति संगीत, सुगम संगीत, फिल्मी संगीत, लघुवार्ता आदि प्रमुख हैं। आकाशवाणी पर विज्ञापन सेवा भी आरंभ की गई है।
3. **विदेश सेवा**- स्वाधीनता के बाद आकाशवाणी की विदेश सेवा का मुख्य लक्ष्य भारत के नए स्वरूप के बारे में तथा भारतीय जीवन के विविध पक्षों तथा चिंतन-शैली को दूसरे राष्ट्रों तक पहुंचाना हो गया। हालांकि विदेशी सेवा कार्यक्रम 20वीं शताब्दी के चौथे दशक के अंत में शुरू हो गए थे तथापि इनमें समुचित विकास स्वतंत्रता के बाद आया। वर्तमान में आकाशवाणी ने विश्व की 25 से अधिक भाषाओं के नियमित प्रसारण द्वारा भारत की छवि को चतुर्दिक फैलाया है। आकाशवाणी के इस प्रसारण से विश्व समुदाय भारतीय जीवन-शैली और संस्कृति तथा आर्थिक-सामाजिक क्षेत्र में राष्ट्र द्वारा की गई प्रगति से भी परिचित होता है और अंतर्राष्ट्रीय महत्व के मामलों पर भारतीय रुख को विश्व जनमत के सामने रखा जाता है। इस प्रसारण में मुख्यतः समाचार, वार्ताएं, भारतीय प्रेस की संपादकीय टिप्पणियां, सामयिक घटनाओं आदि पर टिप्पणियां, संगीत आदि के कार्यक्रम होते हैं।
4. **शैक्षिक प्रसारण**- छात्रों के मानसिक स्तर के विस्तार तथा साधन-विहीन विद्यार्थियों के लिए आकाशवाणी नियमित शैक्षिक कार्यक्रमों का प्रसारण करती है। यह प्रसारण जहां छात्रों के मानसिक स्तर के लिए उपयोगी होते हैं। वहीं साधनविहीन विद्यालयों तथा विद्यार्थियों के लिए भी काफी लाभप्रद होते हैं। प्राथमिक कक्षाओं के लिए इस प्रसारण में मनोरंजन तत्त्व को प्राथमिकता दी जाती है।
5. **समाचार-सेवा कार्यक्रम**- इस कार्यक्रम का कार्य समाचारों का संकलन और उनका प्रसारण है। हर घंटे समाचार बुलेटिन के प्रसारण द्वारा आकाशवाणी जन-मानस को संतुष्ट करती है। समाचार सेवा के अंतर्गत **'समाचार-बुलेटिन'**, **'समाचार-दर्शन'**, **'संसद-समीक्षा'**, **'विधान-मंडल'** आदि के प्रसारण मुख्य रूप से प्रसारित किए जाते हैं।
6. **सामयिक समीक्षाएं**- आकाशवाणी के माध्यम से सम-सामयिक विषयों से संबद्ध वार्ताएं, परिचर्चाएं, साक्षात्कार आदि के कार्यक्रम विभिन्न विषयों के विशेषज्ञों एवं बुद्धिजीवियों की सेवा लेकर प्रसारित किए जाते हैं।
7. **युवाओं के कार्यक्रम**- युवा वर्ग को ध्यान में रखते हुए आकाशवाणी ने 31 जुलाई, 1969 को 'युववाणी' कार्यक्रम का प्रसारण आरंभ किया। इस कार्यक्रम का उद्देश्य युवा श्रोताओं की प्रतिभा को पहचान कर उन्हें आत्माभिव्यक्ति के अवसर देना है।

8. **विशिष्ट कार्यक्रम**- विशिष्ट वर्ग के श्रोताओं हेतु आकाशवाणी विशेष कार्यक्रमों का प्रसारण करती है। इसमें 6 से 14 वर्ष के बच्चों के लिए लघु कहानी, नाटक, कविता आदि मनोरंजक कार्यक्रम होते हैं, तो 15 से 30 वर्ष के युवकों के लिए भी **'युवावाणी'** जैसे कार्यक्रम प्रसारित होते हैं। जहां ग्रामीण और शहरी कामकाजी महिलाओं हेतु मनोरंजक वार्ताएं एवं गीत संगीत के कार्यक्रम प्रसारित हाते हैं, वही श्वेत और हरित क्रान्ति हेतु खाद, बीज, भूमिशोधन, वृक्षारोपण, पशुपालन, सहकारिता आदि विषयों के संदर्भ में कृषि एवं गृह इकाइयां सामयिक सूचनाएं और परामर्श देती हैं।

वर्तमान समय में आकाशवाणी ग्रामीण कार्यक्रम, विविध भारती, व्यापारिक सेवा, युवा जगत, संगीत, वार्ता, नाटक, फीचर, खेल, लोकरुचि के समाचारों का प्रसारण करके **'बहुजन-हिताय बहुजन-सुखाय'** के उद्देश्य से संपूर्ण देश के मनोरंजन के अतिरिक्त उन्हें शिक्षित करने तथा सूचनाएं प्रदान करने का महत्वपूर्ण कार्य कर रही है।

मौखिक भाषा की प्रकृति

भाषा मूलरूप में मौखिक ही होती है उसके उपरांत ही उसका लिखित रूप सामने आता है इसीलिए उसका उच्चरित रूप महत्वपूर्ण होता है। संचार माध्यमों में रेडियो ही एक ऐसा माध्यम है जहां भाषा का मौखिक रूप ध्वनि प्रतीकों के माध्यम से अंकित होता है। ये ध्वनि प्रतीक उसका भौतिक आधार हैं। ध्वनियों में अर्थ का समावेश होता है भाषा मनोभावों की अभिव्यंजक होती है। रेडियो में इसके मानक स्वरूप का प्रयोग किया जाता है। इस मौखिक भाषा में वह शक्ति भी होती है जिससे वह सारे हावभावों को, सुरताल को आकाशवाणी में बिना दृश्य के ही व्यक्त करने में समर्थ होती है। रेडियो समय के साथ भाषा का तालमेल बैठाता है यह उसकी मूल प्रकृति है इसमें निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए-

1. प्रसारण के लिए प्राय: सामान्य बोलचाल के शब्दों का प्रयोग करना चाहिए।
2. अस्पष्ट और दुरूह शब्दावली का प्रयोग नहीं करना चाहिए।
3. वाक्य छोटे-छोटे सार्थक, रोचक और सरल होने चाहिए।
4. श्रोताओं हेतु प्रसारणार्थ कार्यक्रमों में यथार्थ अभिव्यक्ति के लिए लेखन होना चाहिए पांडित्य प्रदर्शन करने में श्रोताओं का और अपना समय बरबाद नहीं करना चाहिए।
5. अनावश्यक शब्दाडंबर से यथा संभव बचने का प्रयास करते हुए विविधता का खुलकर प्रयोग करना चाहिए।
6. इस बात का सदैव ध्यान रखना चाहिए कि प्रत्येक वाक्य अपने आप में संपूर्ण और शुद्ध हो। अस्पष्ट और अपूर्ण तथा अशुद्ध वाक्य प्रयोग श्रवणीयता में बाधक होता है।
7. समाचार रचना में सदैव उपर्युक्त छ: प्रकारों का ध्यान रखना चाहिए और समाचार का सार प्रथम वाक्य में देकर बाद में उसको विस्तार देना चाहिए।

8. विचाराभिव्यक्ति श्रोताओं के स्तर तथा विषय की गहनता को ध्यान में रखकर की जानी चाहिए।

टिप्पणी

रेडियो नाटक, उद्घोषणा एवं विज्ञापन लेखन

रेडियो नाटक के स्थापत्य में अनेक नाट्य रूपों का समावेश है आधुनिक युग में लंबे कथानकों के निर्माण के कारण रेडियो में भी धारावाहिक नाटकों का प्रचलन आरंभ हो गया है। वह एक लंबे सीरियल की तरह लगता है जैसा कि टेलीविजन के नाटक होते हैं। रेडियो धारावाहिक नाटक में दृश्यों की संख्या का कोई बंधन नहीं होता, नाटक में एक दृश्य भी हो सकता है और एक सौ दृश्य भी, दृश्य छोटे-छोटे भी हो सकते हैं और बड़े-बड़े भी। दो-चार संवाद भी हो सकते हैं और चालीस-पचास संवाद भी। कोई दृश्य एक मिनट में खत्म हो सकता है और कोई दस मिनट तक चल सकता है। रेडियो एकांकी एक बार में समाप्त हो सकते हैं पर रेडियो नाटक यदि बहुत बड़ा हो तो उसका प्रसारण अनेक बार किया जा सकता है। अत: रेडियो में धारावाहिक नाटक कम संख्या में भले ही हों पर लिखे गए हैं और उनका प्रसारण भी हुआ है। वस्तुत: किसी भी माध्यम में वह श्रव्य हो या दृश्य-श्रव्य अधिक-से-अधिक एक घंटे तक किसी रचना का प्रसारण दर्शकों को बांधकर रख पाता है इससे अधिक लंबा होने पर धारावाहिक रूप में प्रसारित होकर प्रासंगिक बना रहे और श्रोताओं के आकर्षण का केंद्र हो।

धारावाहिक नाटक की विशेषता ही यह है कि वह कई किश्तों में प्रसारित होता है, इसके दो प्रकार हो सकते हैं दोनों में शीर्षक चाहे एक ही हो, और मुख्य पात्र भी चाहे सबमें एक समान हों पर स्थितियां और समस्याएं बदलती रहें, जैसे आइना, दर्पण, घर, बाहर, जनसंख्या, तलाक, अपराध इस तरह के नाटक प्रसारित हो सकते हैं जो धारावाहिक तो हैं पर उनमें एक ही कहानी का विकास न होकर शीर्षक के अंतर्गत एक समस्या पर अलग-अलग कहानियां हैं, तब अलग-अलग पात्र और संवाद भी होंगे जिनका अलग-अलग अस्तित्व होगा उसमें निरंतरता केवल इतनी है कि उसकी समस्या एक ही है।

उद्घोषणा

केंद्र सरकार अथवा कोई राज्य सरकार जब किसी तात्कालिक या ज्वलंत सामाजिक विषय पर केंद्र या राज्य स्तर पर कोई महत्वपूर्ण निर्णय लेती है तो उसे जनहित में सार्वजनिक रूप से प्रकाशित, प्रसारित कर घोषित किया जाता है। इसे उद्घोषणा कहते हैं।

'उद्घोषणा' को अग्रेंजी में 'प्रोक्लेमेशन' (Proclamation) कहते हैं। इसके लिए दूसरा प्रचलित शब्द 'घोषणा' भी है। घोषणा/उद्घोषणा को केवल राष्ट्रपति अथवा संबंधित राज्य के राज्यपाल अपने हस्ताक्षरों से जारी कराते हैं। यह उद्घोषणा/घोषणा सरकारी गजट के 'असाधारण' अंक में प्रकाशित की जाती है।

उद्घोषणा लेखन

रेडियो में उद्घोषणा लेखन भी अत्यंत आवश्यक कार्य है। कई कार्यक्रम ऐसे होते हैं जिनमें उद्घोषणाएं करनी पड़ती हैं। हर कार्यक्रम जिसमें एक उद्घोषणा होती है उसमें घोषणा का प्रयोग किया जाता है।

टिप्पणी

रेडियो में विभिन्न कार्यक्रमों का प्रसारण होता है जिसमें साक्षात्कार, वार्ता, परिचर्चा और श्रोताओं के लिए विशेष कार्यक्रम होते हैं। साक्षात्कार एक विशेष कलात्मक कार्यक्रम होता है और सवालों को सावधानी से पूछना पडता है। साक्षात्कार के समय परिचय देने का कार्य भी करना पड़ता है। इसी प्रकार वार्ता है। वार्ता कार्यक्रम में कोई विषय दे दिया जाता है परिचर्चा अथवा परिसंवाद में एक से अधिक व्यक्ति भाग लेते हैं। उसमें सूत्रधार होता है और उद्घोषणा भी रेडियो में हर समय करनी पड़ती है। कार्यक्रमों की जानकारी देने के लिए भी उद्घोषणा होती है एवं हर कार्यक्रम के बाद में भी उद्घोषणा की जाती है।

उद्घोषणा का लेखन सावधानीपूर्वक करना पड़ता है जिससे कि आवश्यक विस्तार न हो। उद्घोषणा की भाषा सहज और प्रभावशाली हो व कार्यक्रमों की जानकारी संक्षेप में हो, यथार्थपरक ढंग से हो सके इन सब कार्यो के लिए उद्घोषणा लेखन महत्वपूर्ण हो जाता है। फीचर का शाब्दिक अर्थ है रूपरेखा प्रस्तुत करना और इसमें रूपक शब्द का व्यापक प्रयोग होता है जिसमें संगीत, फंतासी, (कल्पना) इतिवृत्त, जैसे सभी प्रकारों का समावेश हो जाता है इसमें सबसे प्रमुख संगीत रूपक होता है जिसका प्रसारण रूपक में भी हो सकता है क्योंकि ध्वनि और संवाद दोनों ही इसकी विशेषताएं बन जाते हैं।

रेडियो से संगीत रूपक प्रसारित किए जाते हैं। इसकी विशेषता यह है कि इसमें संगीत की प्रधानता रहती है। वस्तुत: संगीत रूपक, नाटक या फीचर से भिन्न है और आकाशवाणी पर गीत प्रधान रचनाओं के लिए प्रयोग में लाया जाता है। संगीत रूपक में तो ध्वनि प्रभावों की एक श्रृंखला ही बन जाती है। संगीत रूपक में संगीत एक आंतरिक ध्वन्यात्मक संयोजन है, संगीत संयोजन ध्वनि संयोजन का ही विषय है। संगीत को विलक्षण रूप से प्रयोग में लाया जाता है जब संगीत में ही किसी घटना या विचार का विवरण कर दिया जाता है तो वह संगीत रूपक बन जाता है। नाटक का भाव कथा का प्रतीक संगीत ही है, अंतराल संगीत का भी विशेष प्रयोग किया जाता है जिससे कहानी को जोड़ दिया जाता है। रेडियो नाटक का आधार ही ध्वन्यात्मकता है और ध्वनि को मधुर बनाने का आधार संगीत है। इस प्रकार रेडियो नाटक के अंतर्गत फीचर का व्यापक महत्व है। यह कहना भी उपयुक्त है कि फीचर एक स्वतंत्र विधा है जिसका रूप नाटक के समान होता है। वस्तुत: यह रेखाचित्र होते हुए भी कथानक को विशेष रूप से अपने ढंग से समेटता है।

विज्ञापन लेखन

विज्ञापन का निर्माण एक सृजनात्मक कार्य है। अभूतपूर्व कल्पना-शक्ति, भाषिक चातुर्य, काव्यात्मक विधान जैसी विशिष्टताओं से युक्त विज्ञापनों में लोगों का ध्यान आकर्षित करने की शक्ति विद्यमान होती है। ध्यानाकर्षण के लिए विज्ञापन की पाठ्यसामग्री को कभी नाटकीय तो कभी चमत्कारिक ढंग से प्रस्तुत करना पड़ता है। विज्ञापन में यह कार्य पाठ्यसामग्री में 'विज्ञापन कॉपी' के द्वारा होता है। ऐसी पाठ्यसामग्री के लेखक को 'कॉपी लेखक' कहा जाता है।

टिप्पणी

रेडियो के लिए किया जानेवाला विज्ञापन लेखन कई तरह से महत्वपूर्ण है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में वस्तुतः विज्ञापन को देखा अथवा सुना जाता है। रेडियो के लिए किए जाने वाले विज्ञापन लेखन से पूर्व विज्ञापन की कॉपी तैयार करना विज्ञापन निर्माण का महत्वपूर्ण अंग है क्योंकि विज्ञापन कॉपी के द्वारा ही विज्ञापनकर्ता अपना संदेश जनसमूह तक पहुंचाता है। जेम्स हंटर के अनुसार 'विज्ञापन कॉपी का यही उद्देश्य है कि उसे देखा जाए, पढ़ा जाए, उसका संदेश प्राप्त किया जाए और उस पर काम किया जाए।'

विज्ञापन कॉपी के माध्यम से विज्ञापनकर्ता अपना संदेश, दर्शकों अथवा पाठकों तक पहुंचाते हैं। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और प्रिंट मीडिया द्वारा विज्ञापन के जरिये उपभोक्ताओं को दो प्रकार से प्रोत्साहित किया जाता है। सीधी या प्रत्यक्ष कार्रवाई के लिए अथवा अप्रत्यक्ष कार्रवाई के लिए। अतः विज्ञापन कॉपी भी दो प्रकार की होती है। सीधी कार्रवाई वाली कॉपी ओर अप्रत्यक्ष कार्रवाई वाली।

कॉपी लेखक अपने सृजनात्मक कौशल से विज्ञान में जान फूंक देता है। वह उत्पाद की गुणवत्ता और उत्कृष्टता को अभिव्यंजना शिल्प से शब्द-चित्रों में इस तरह उभारता है कि वह विश्वसनीय लगे और उपभोक्ताओं या लक्षित जनसमूह को सहज ही ग्राह्य हो सके।

विज्ञापन के अंग

विज्ञापन के चार प्रमुख अंग होते हैं–

(क) शीर्षक

(ख) उपशीर्षक

(ग) विस्तार वर्णन (बॉडी)

(घ) उपसंहार

विज्ञापन में शीर्षक का विशेष महत्व होता है, क्योंकि शीर्षक ही विज्ञापन की पाठ्य सामग्री को पूरा पढ़ने की इच्छा या विवशता पैदा करता है। अच्छे शीर्षक का गुण यह है कि उसमें 'वस्तु संकेत' अथवा उत्पाद की मूल विशेषता का संकेत हो। विज्ञापित वस्तु के वैशिष्ट्य को संक्षिप्त और सरल शब्दों में प्रकट करने वाला शीर्षक ही उपयुक्त शीर्षक माना जाता है। विज्ञापन के शीर्षक भी समाचार-प्रधान होते हैं, कभी प्रत्यक्ष लाभ प्रधान, तो कभी भावात्मक अपील से संपन्न शीर्षक गढ़े जाते हैं।

शीर्षक में संक्षिप्तता पर बल दिए जाने के कारण विज्ञापन का उद्देश्य ओर वस्तु की क्षमता का प्रदर्शन पूरी तरह नहीं किया जा सकता। उसमें केवल संकेत ही होता है। लेकिन उपशीर्षक में विज्ञापन के उद्देश्य को थोड़े विस्तार के साथ बताया जा सकता है। उपशीर्षक शीर्षक में उत्पन्न हुई जिज्ञासाओं को शांत करता हुआ पाठक, श्रोता या दर्शक को विज्ञापन की 'बॉडी' की ओर उन्मुख करता है।

विज्ञापन के विषय-विस्तार में विज्ञापन के मूल कथ्य (बॉडी टेक्स्ट) की व्यंजना की जाती है। इसमें उत्पाद या सेवा के विषय में विस्तार से बताया जाता है। उपभोक्ता को प्रेरित करने के लिए उत्पाद के गुणों और विशेषताओं पर प्रकाश डाला जाता है।

उपसंहार के अंतर्गत उत्पाद या सेवा की आवश्यकता, महत्व और गुणों को बताने के बाद उपसंहार के अंतर्गत लक्षित जनसमुदाय में उत्पाद या सेवा के प्रति प्रेरक प्रतिक्रिया जगाने का प्रयास किया जाता है।

कॉपी लेखन में पंच लाइन या निचली पंक्ति (सिग्नेचर लाइन) बहुत महत्वपूर्ण होती है। यह उत्पाद की पहचान बनाती है।

विज्ञापन के अन्य अंग

विज्ञापन की कॉपी के अन्य अंग इस प्रकार हैं–

- दृश्य सामग्री
- नारे
- लोगो
- कंपनी की सील

विज्ञापन के कॉपी लेखन में भाषा के पैनेपन और अभिव्यक्ति कौशल से संप्रेषणीयता का गुण पैदा किया जाता है, ताकि विज्ञापन उपभोक्ता या लक्षित जनसमूह के मन-मस्तिष्क पर अपना पूरा प्रभाव छोड़े। विज्ञापन में विवरणात्मक शैली के द्वारा उत्पाद या सेवा के बारे में उपभोक्ताओं को पूर्ण जानकारी दी जाती है। उत्पादित वस्तु का पूर्ण विवरण इसमें उपलब्ध रहता है।

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के विज्ञापनों में संवाद शैली बहुत प्रचलित है। संवादों के माध्यम से उपभोक्ता में उत्पाद को खरीदने की इच्छा जाग्रत की जाती है। संवाद शैली में विज्ञापनों की कॉपी इतनी सशक्त और जीवंत होती है कि विज्ञापन उपभोक्ताओं के मन में उत्पाद को खरीदने की इच्छा उत्पन्न है। प्रिंट मीडिया के विज्ञापनों में भी कभी-कभी संवाद शैली का आश्रय लेकर विज्ञापनों को आकर्षक बनाया जाता है।

विज्ञापनों की वृत्तांतपरक शैली भी अत्यंत प्रसिद्ध है। इसमें गत्यात्मकता का तत्व सम्मिलित रहता है। प्रिंट मीडिया के विज्ञापनों में भी चित्रकथा के माध्यम से विज्ञापन की शक्ति को बढ़ाया जाता है। आजकल विज्ञापनों में प्रश्नवाचक शैली बहुत प्रचलित है। यह शैली विज्ञापन सुनने और उत्पाद को समझने की जिज्ञासा एवं उत्कंठा पैदा करती है।

जिस प्रकार प्रिंट के लिए लिखे जाने वाले विज्ञापन के लिए विभिन्न बातों पर ध्यान रखा जाता है उसी प्रकार से रेडियो के लिए लिखे जाने वाले विज्ञापन के लिए भी कुछ महत्वपूर्ण बातें निर्धारित हैं और विज्ञापन को लिखते समय उनका ध्यान रखना अनिवार्य है। रेडियो चूंकि श्रव्य माध्यम है और श्रोता विज्ञापन का पूरा संदर्भ केवल सुनकर ही समझता है। इन्हें जिंगल भी कहा जाता है।

रेडियो विज्ञापन 10 सेकंड के भी हो सकते हैं और ज्यादा के भी। पर आमतौर पर वह 60 सेकंड से कम की अवधि के ही होते हैं। इतने कम समय में श्रोता को विज्ञापन द्वारा संपूर्ण उत्पाद की या विषय की जानकारी देना एक कठिन चुनौती है। रेडियो

विज्ञापन का लेखन करते समय यदि कुछ महत्वपूर्ण बिंदुओं पर ध्यान रखा जाए तो एक प्रभावशाली रेडियो विज्ञापन का लेखन किया जा सकता है–

टिप्पणी

(क) **संक्षिप्तता–** रेडियो का विज्ञापन लिखते हुए यह ध्यान रखना होता है कि विज्ञापन संक्षिप्त हो। संक्षिप्तता से तात्पर्य कम शब्दों में ज्यादा अर्थपूर्ण बात को श्रोता तक पहुंचाने से है। ज्यादा लंबा विज्ञापन कई मौकों पर उपयुक्त नहीं जान पड़ता है।

(ख) **रोचकता–** रोचकपूर्ण विज्ञापन श्रोता को अपनी ओर एकदम आकर्षित करता है। किसी विज्ञापन को किसी भी विशेष बात जिसे विज्ञापन की पंचलाइन भी कहा जाता है के द्वारा उसे रुचिपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया जा सकता है। उदाहरण के लिए किसी सौंदर्य उत्पादन के विज्ञापन में इस प्रकार की पंचलाइन दी जा सकती है- "ABC सौंदर्य उत्पादन बनाए आपको जवां"। इस तरह से किसी भी विज्ञापन में रोचकता लाई जा सकती है जिसके फलस्वरूप श्रोता उसके प्रति आकर्षित होता है।

(ग) **चित्रात्मकता–** रेडियो का श्रोता आवाज के द्वारा सुनकर संबंधित विषय-वस्तु की कल्पना करता है या उसके चित्र बनाता है। इसे दुपहिया वाहन अर्थात स्कूटर के बहुप्रचलित उदाहरण से समझा जा सकता है। बजाज स्कूटर के विज्ञापन में केवल 'हमारा बजाज' कह देने भर से ही बजाज स्कूटर का दृश्य सामने आ जाता है। इसी प्रकार एक नमक के विज्ञापन को देखिए- 'नमक हो टाटा का, टाटा नमक'।

इस विज्ञापन को रेडियो पर सुनते ही श्रोता के मन-मस्तिष्क में नमक की झलक आ जाती है। यही चित्रात्मकता है जिसे सुनते ही संबंधित वस्तु उत्पादक का चित्र आंखों के सामने आ जाता है।

(घ) **संगीतात्मकता–** रेडियो विज्ञापन में संगीतात्मकता का तत्व उसकी प्रभावात्मकता को और अधिक बढ़ा देता है। संगीत का पुट पाकर ही कोई विज्ञापन जिंगल बनता है। यह जिंगल आमतौर पर श्रोता को याद हो जाता है। निम्न उदाहरण द्वारा इसे समझा जा सकता है–

दूध सी सफेदी
निरमा से आई,
रंगीन कपड़ा भी खिल-खिल जाए,
सबकी पसंद निरमा.........

यह जिंगल या रेडियो विज्ञापन आमतौर पर रेडियो सुनने वालों को याद ही रहता है। इस प्रकार संगीत के प्रभाव स्वरूप जहां एक ओर विज्ञापन रुचिकर बनता है वहीं उत्पादन को अधिक प्रचार भी मिलता है।

(ङ) **संवाद एवं नाटकीयता–** रेडियो विज्ञापन द्वारा वास्तव में श्रोता को ग्राहक के रूप में परिवर्तित करने के लिए संवाद किया जाता है। रेडियो द्वारा एकतरफा संवाद ही किया जाता है। अत: उस संवाद का परिपूर्ण होना आवश्यक है अर्थात उस संवाद में

अर्थ संपूर्ण होना चाहिए। श्रोता को पूरी बात उस एकतरफा संवाद में समझ आ जानी चाहिए। और संवाद में नाटकीयता का समावेश भी उसे आकर्षक बना देता है। उदाहरण के लिए इस विज्ञापन को देखिए–

"ग्लूकोन-डी, ये जान डाल दे– पीते ही।"

(च) **भाषा–** रेडियो विज्ञापन की भाषा का श्रोताओं तक पहुंचने योग्य होना चाहिए। रेडियो विज्ञापन की भाषा को साहित्यिक नहीं होना चाहिए। उसका सरल और स्पष्ट होना आवश्यक है। भाषा जितनी क्लिष्ट होगी उसकी पहुंच श्रोता तक नहीं होती। रेडियो विज्ञापन में बोलचाल की भाषा का ही प्रयोग किया जाना चाहिए।

रेडियो विज्ञापन में कई विशिष्टताएं हैं। आवाज और ध्वनि/संगीत के संयोजन से उसे आकर्षक बनाया जाता है। रेडियो विज्ञापन व्यावसायिक और गैर-व्यावसायिक दोनों तरह के होते हैं। कई विज्ञापन सरकारी भी होते हैं जो किसी मंत्रालय द्वारा विशिष्ट लक्ष्यों की पूर्ति के लिए बनाए जाते हैं।

• दृश्य–श्रव्य माध्यम : फिल्म, टेलीविजन एवं वीडियो

दृश्य-श्रव्य माध्यम महत्त्वपूर्ण संचार माध्यम है और सभी संचार माध्यमों को इस माध्यम ने बहुत पीछे छोड़ दिया है। फिल्म और टेलीविजन का प्रभाव इतना व्यापक है कि अब हर घर में इसे जीवन से जोड़कर देखा जाने लगा है। वीडियो से ही फिल्म और टेलीविजन के दृश्य सामने आते हैं। यह भी कहा जाता है कि रेडियो लेखन अब पृष्ठभूमि में चला गया है। किसी भी संचार माध्यम में भाषा का अपना महत्व होता है। श्रव्य माध्यम से दृश्य माध्यमों की भाषा की प्रकृति अलग होती है। दृश्य माध्यमों की भाषा के संबंध में अनेक बातों का ध्यान रखने के साथ ही किस प्रकार वह श्रव्य माध्यम से भिन्न है जानना भी आवश्यक है।

चलचित्र ने भारतीय संस्कृति के प्रसार में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। सांस्कृतिक संदर्भ में फिल्म सबसे लोकप्रिय एवं शक्तिशाली संचार माध्यम है। हिंदी में अन्य भाषाओं की अपेक्षा अधिक प्रकार की फिल्में बनती हैं जिसका उल्लेख निम्न प्रकार से है-

1. **फीचर फिल्में**- ये व्यावसायिक फिल्में होती हैं जो कि सिनेमाघरों में प्रदर्शित की जाती हैं।
2. **न्यूज फिल्में**- इसे हम न्यूजरील भी कह देते हैं, किसी अवधि के समाचारों पर इनका निर्माण किया जाता है।
3. **बच्चों की फिल्में**- बाल मनोविज्ञान पर आधारित लघु फीचर फिल्में बच्चों की रुचि के अनुसार शिक्षाप्रद कहानियों पर आधारित होती है।
4. **टेलीविजन फिल्में**- छोटे पर्दे पर प्रदर्शित की जाने वाली फिल्में टेलीविजन फिल्में कहलाती हैं।
5. **डाक्यूमेंटरी फिल्में**- वृत्त चित्रों का उद्देश्य सूचना देना और प्रशिक्षित करना है। ये साहित्य कला, विज्ञान, संस्कृति अथवा संस्था से संबंधित होती हैं।

6. **पब्लिक रिलेशंस फिल्में**- व्यावसायिक प्रतिष्ठानों और सरकारी संस्थाओं द्वारा जनता से संपर्क करने के लिए ऐसी फिल्मों का निर्माण कराया जाता है।
7. **विज्ञापन से संबंधित फिल्में**- व्यावसायिक संस्थाओं द्वारा अपने माल की बिक्री बढ़ाने के लिए 'विज्ञापन-फिल्में' तैयार की जाती हैं।
8. **दिशा-निर्देश**- सामान्य प्रशिक्षण देने तथा तकनीकी जानकारी देकर कार्य-कौशल बढ़ाने के उद्देश्य से ऐसी फिल्में बनायी जाती हैं।

फिल्म से लाभ

फिल्म से आज के समय में निम्नलिखित लाभ हैं–

1. ध्वनि और तरंगों की समन्वयता के कारण दर्शकों को वास्तविकता का बोध होता है।
2. इस यांत्रिक युग में जब लोगों के पास समय की कमी है तो अधिक समय तक चलने वाली क्रियाओं को थोड़े से समय में दिखाना तथा किसी इतिहास से लिए हुए कई शताब्दी के दृश्य को थोड़े समय में प्रस्तुत करना फिल्म द्वारा ही संभव है।
3. शीघ्रता से घटने वाली घटनाओं को धीरे-धीरे (Slow Motion के द्वारा) चलचित्र की सहायता से देखा जा सकता है जैसे-तैरना सीखना हो तो धीमे (Slow Motion) चलचित्र प्रदर्शन के माध्यम से हाथ और पैर की प्रत्येक गति का सूक्ष्म रूप से अध्ययन किया जा सकता है।
4. फिल्मों के द्वारा किसी भी संदेश को सरस एवं रुचिपूर्ण बनाया जा सकता है।
5. पुराण, (प्राचीन) स्मृति तथा इतिहास के अतिरिक्त अन्य कई बातों को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करके संबंधित ज्ञान की पूर्ण जानकारी प्राप्त की जा सकती है।
6. व्यावसायिक क्षेत्र में उत्पादन करने से लेकर बाजार में बेचने तक की सभी प्रक्रियाओं की जानकारी को हम चलचित्र के माध्यम से स्पष्ट कर सकते हैं।
7. सौंदर्यानुभूतिपरक रसात्मक तथ्यों के प्रसार में इसकी अहम् भूमिका है।
8. समाज-सेवा, समाज-कल्याण, आदर्श व्यवहार और नैतिक सदाचरण की बातों को अनुकरण के माध्यम से पूरे राष्ट्र के लोगों तक पहुंचाने के लिए फिल्म अत्यन्त लाभकारी माध्यम है।
9. फिल्म द्वारा निरीक्षण-शक्ति और कल्पना-शक्ति की अभिवृद्धि संभव है।
10. यह सभी वर्गो के लोगों (दर्शकों) के लिए एक उपयोगी साधन है।

टेलीविजन

दूरदर्शन अन्य प्रसार माध्यमों से मुख्यत: तीन अर्थो में अलग होता है-

1. **यथातथ्यता**- टेलीविजन किसी भी घटना को उसके घटने के साथ-साथ ठीक वैसी ही और उसी समय दृश्यों में बांधकर प्रसारित कर सकता है। इस प्रकार सीधे

टिप्पणी

प्रसारण अथवा उन्हीं दृश्यों को बाद में प्रसारित करके दूरदर्शन श्रोतओं/दर्शकों के मन-मस्तिष्क पर सीधा प्रभाव डालता है।

2. **प्रत्येक वर्ग के लिए**- इसके दर्शकों में शिक्षित, अशिक्षित और अल्पशिक्षित आदि सभी प्रकार के लोग हो सकते हैं क्योंकि इसके लिए किसी का शिक्षित होना अनिवार्य शर्त नहीं है।
3. **दृश्य-श्रव्य और गति का सुमेल**- समाचार-पत्र मात्र पढ़े जा सकते हैं, रेडियो समाचार सुने जा सकते हैं जबकि दूरदर्शन पर समाचार देखे, सुने और समझे जा सकते हैं।

इस प्रकार दूरदर्शन सही अर्थों में जानकारी दर्शकों तक पहुंचाने का एक विशिष्ट माध्यम है।

वीडियो

टेलीविजन के सहायक उपकरण वीडियो के प्रचलन के साथ ही पत्रकारिता में नए अध्याय का सूत्रपात हुआ। पत्रकारिता में वस्तुत: बार-बार परिवर्तन परिलक्षित हो रहे हैं, अत: नवीन परिवर्तन से नवीन धारा का सूत्रपात होता है। वीडियो भी इसी परिवर्तन की अगली कड़ी है वीडियो तब तक क्रियाशील नहीं होता जब तक टेलीविजन यंत्र न हो। वीडियो में पहले किसी कार्यक्रम की शूटिंग कर ली जाती हैं। शूटिंग से तैयार कैसेट के प्रदर्शन हेतु जो उपकरण प्रयुक्त होता है, उसे वीडियो कहा जाता है। वीडियो से अभिप्राय दृश्यता एवं श्रव्यता से है। दृश्यता की पूर्ति टेलीविजन के माध्यम से ही हो सकती है। इसलिए वीडियो को टेलीविजन का सहायक माना जाता है। वीडियो पत्रकारिता के लिए टी.वी. सेट, वी. सी. आर./वी.सी.डी. तथा वीडियो कैसेट/डिस्क की आवश्यकता होती है।

हम अपने समाज में जो देखते हैं, सुनते हैं, उसी को अपनाते हैं। उसी के माध्यम से ज्ञान अर्जित करते हैं, उसी भाषा में बातचीत भी करते हैं। उदाहरण के लिए यदि हम राजस्थान में रहते हैं, तो हम राजस्थानी भाषा को आसानी से समझते हैं क्योंकि वहां का माहौल, वातावरण राजस्थानी भाषा के अनुरूप ही होता है। यदि हम असम में रहते हैं तो वहां की असमी भाषा को समझना आसान होता है, क्योंकि हमारी भाषा का माध्यम वहां की स्थानीय भाषा होती है।

हिंदी साहित्य की भाषा हिंदी है और यह भारत देश की राष्ट्रभाषा भी है। देश में बनने वाली अधिकांश फिल्में व टेलीविजन के अधिकतर कार्यक्रम हिंदी भाषा में प्रसारित एवं प्रचारित होते हैं। रेडियो या समाचार-पत्र सभी में हिंदी की ही बहुतायत है, हिंदी को राज्य भाषा, राष्ट्रभाषा, संपर्क भाषा, संचार भाषा, जन-भाषा एवं रचनात्मक भाषा के रूप में जाना जाता है।

दृश्य माध्यमों में भाषा की प्रकृति

भाषा के अनेक प्रयोग होते हैं। संचार माध्यमों में रेडियो और टेलीविजन की भाषा में जो अंतर है उससे स्पष्ट है कि दृश्य माध्यम की भाषा की प्रकृति श्रव्य माध्यम से कुछ भिन्न है। सबसे पहले रेडियो की भाषा के संबंध में विचार करना आवश्यक है। इसमें मुद्रण

माध्यम और श्रव्य-दृश्य माध्यमों से भिन्न प्रकृति होने के कारण इसके प्रयोग की अपनी विशेषता है। तकनीकी दृष्टि से रेडियो ध्वनियों के प्रसारण तक सीमित है किंतु जनसंचार के रूप में ध्वनियों के विविध प्रयोग से उसका विस्तार किया जाता है। रेडियो में भाषा के तीन रूप मिलते हैं। एक वाक् (स्पीच), दूसरा- ध्वनि प्रभाव है जिसमें संगीत भी शामिल है और तीसरा मौन है, जिसमें ध्वनियों के अंतराल से संचार संभव हो जाता है। किंतु दृश्यात्मकता न होने से इसकी भाषा में सरलता का होना आवश्यक है, साथ ही ध्वनियों का उतार-चढ़ाव इसलिए आवश्यक है कि वह श्रोताओं को आकर्षित करने के साथ ही प्रभाव भी उत्पन्न करें। अत: स्वर विविधता रेडियो की भाषा में अत्यन्त आवश्यक होते हैं।

वहीं दृश्य माध्यमों की भाषा पूर्णत: भाषिक नहीं होती अर्थात चूंकि दृश्य माध्यम में संवाद बोलने वाले को देखा जा सकता है अत: भाषिक संवाद के साथ-साथ उसमें भावपूर्ण संवाद भी शामिल होते हैं। रेडियो में जिस प्रकार से स्वर विविधता की आवश्यकता होती है उसी प्रकार से टेलीविजन में भी इसकी आवश्यकता होती है। कलाकार के भाव भी भाषा का ही कार्य करते हैं।

3.5.3 दृश्य एवं श्रव्य सामग्री का सामंजस्य

''टेलीविजन दृश्य-श्रव्य माध्यम ही है और उसमें जो भी सामग्री व्यक्त और अंकित होती है तथा व्यंजित और चित्रित होती है उसका सामंजस्य आवश्यक है। स्क्रीन पर केवल भाषा ही नहीं होती वह ध्वनियों तक ही सीमित नहीं होती बल्कि उसमें अभिनय भी दृश्य पटल पर आता है। हावभाव होते हैं, अनुभवों का संसार होता है, व्यक्ति होता है, स्थितियां और संदर्भ होते हैं। अत: भाषा का इस प्रकार प्रयोग आवश्यक है कि वह दृश्यों के अनुरूप हो। दृश्यों का संयोजन इस प्रकार हो कि उसके अनुसार भाषा हो। भाषा और अभिनय को, ध्वनि और दृश्य को, अलग-अलग करना संभव न हो। वह एक रासायनिक क्रिया की तरह हमारे सामने हो। यदि भाषा का प्रयोग इस प्रकार हो कि वह दृश्य से अलग दिखे तो उसका प्रभाव विपरीत पड़ेगा। वाचिक संकेत दृश्यों के अनुरूप होना चाहिए अत: जो पात्र पर्दे पर आते हैं वे अपनी क्रियाओं के अनुसार सुरताल में भाषा का प्रयोग करें यह अत्यंत आवश्यक है। उक्त विश्लेषण में यह स्पष्ट किया गया है कि ध्वनि और दृश्य एक दूसरे से अलग न हों, यही दृश्य और श्रव्य सामग्री का सामंजस्य है।

पार्श्व वाचन (वॉयस ओवर)

'पार्श्व' का आशय है ''पीछे से या किनारे से'' और 'वाचन' का अर्थ है ''पढ़कर बोलना।'' फिल्मों के समान ही टेलीविजन के अनेक कार्यक्रमों में सबसे पहले दृश्यों को शूट कर लिया जाता है फिर दृश्य के अनुरूप ध्वनि की रिकॉर्डिंग कर ली जाती है इससे कार्यक्रम में गुणवत्ता एवं परिपूर्णता आ जाती है।

पार्श्व वाचन का प्रयोग विशेष रूप से ऐसे कार्यक्रमों में किया जाता है जिनमें किसी एक भाषा के कार्यक्रम को किसी दूसरी भाषा के दर्शकों के लिए प्रसारित किया जाना हो। इस पद्धति में पात्र की भाषा कोई और होती है और टेलीविजन पर बोली जाने वाली

टिप्पणी

भाषा कोई और होती है लेकिन पार्श्व वाचन और पार्श्व वाचक की सफलता इसी पर निर्भर है कि दर्शकों को पता न लगे कि मूल कार्यक्रम किसी और भाषा का है।

अत: हम यह कह सकते हैं कि पार्श्व वाचन किसी दृश्य की मूल आवाज को दूसरी भाषा में भरने की एक तकनीक है। पार्श्व वाचन का उपयोग कथानक की घटनाओं का आधार निर्मित करने में, सूत्र में, संकेत देने में, या भविष्य की घटनाओं का संकेत देने में भी किया जाता है। कभी पार्श्व वाचन सारे धारावाहिक का ही अंग बन जाता है और कभी सीरियल इसके साथ ही शुरू होता है।

आजकल सारे सीरियल एक संगीत से शुरू होते हैं यह भी एक तरह का पार्श्व वाचन ही है। यद्यपि इसका रूप संगीत का है। यह सारे कथानक की आत्मा होता है। टेलीविजन में पार्श्व वचान का व्यापक महत्व हैं क्योंकि यह सारे कथानक को जोड़ता है और दर्शक को उसकी जानकारी देता है। अत: इसमें भाषा का प्रयोग अत्यंत सार्थक, प्रामाणिक और कथानक-केंद्रों को जोड़ते हुए करना पड़ता है।

पटकथा

टेलीविजन कार्यक्रमों का उत्पादन आम तौर पर स्टूडियो सेट में किया जाता है। एक पटकथा लेखक की पटकथा कैमरा शाट्स के साथ मेल खाती है। टेलीविजन का परदा छोटा होने के कारण मिड-शॉट और क्लोज अप की जरूरत होती है। एक पटकथा लेखक उन भावनाओं, अनुभवों और अन्य एक्शनों की कल्पना करता है जिन्हें वह डायलॉग के माध्यम से प्रदर्शित करता है। ज्यादातर धारावाहिकों या सीरियलों की पटकथा लेखकों की एक टीम के द्वारा शूटिंग के दौरान पुन: लिखी जाती है। ऐसी पटकथा में दृश्यों, पात्रों और उनके संवाद, उनके द्वारा किए जाने वाले एक्शन और कभी-कभी कैमरों की स्थिति और शॉट विवरण का वर्णन होता है। शीट के शीर्ष पर प्रत्येक दृश्य के लिए एक Slug लाइन होती है जिसका निर्देशों और मंच निर्देशन द्वारा अनुसरण किया जाता है। इसके बाद चरित्र का नाम आता है जो संवाद के साथ मध्य में लिखा होता है। एक अन्य प्रारूप है प्रत्यक्ष विभाजन जिसमें शीट के बाईं ओर कैमरा निर्देशों सहित दृश्य का विवरण दिया होता है और दाईं ओर संवाद के अनुसार चरित्र और एक्शन के बारे में विवरण दिया गया होता है। इस प्रकार के प्रारूप को दोहरे-कॉलम वाली पटकथा प्रारूप कहा जाता है जहां बाईं ओर के कॉलम में कैमरा शॉट्स, विडियो टेप और दृश्य शामिल होते हैं जिन्हें दर्शक देख सकता है। दाईं ओर के कॉलम में वे सब शामिल होते हैं जिन्हें दर्शक सुन सकता है; जैसे कथन, संगीत, आवाजें और ऑडियो संकेत। पटकथा लेखन को विस्तृत रूप से आगे दिए जा रहे वर्णन द्वारा सरलता से समझा जा सकता है–

(अ) दृश्य के लिए लेखन

एक चित्र अथवा दृश्य एक स्थिर छवि है जिसमें एक निश्चित मूड, एक्शन, कोई अवसर अथवा घटना समायी होती है। यह लोगों का समूह, वस्तुएं, एक व्यक्ति या एक स्थान हो सकता है। दृश्यों के लिए लिखना एक चुनौती भरा काम है। प्रिंट माध्यम में चित्र के नीचे चित्र का परिचय करवाता या व्याख्या करता शीर्षक या कैप्शन हो सकता है। शीर्षक लिखते समय ध्यान रखना चाहिए कि शीर्षक संक्षिप्त और सटीक हो। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि शीर्षक केवल सूचनात्मक होना चाहिए। यह आकर्षक और चित्र को समझाने

टिप्पणी

वाला होना चाहिए। शीर्षक चित्र की मनोदशा को दर्शाने और इसके विषय में जानकारी देने वाला होना चाहिए। कई बार शीर्षक तस्वीर के पीछे की कहानी सुनाते हैं। इस प्रकार यह पाठक का ध्यान खींचते हैं और चित्र के पीछे के मुद्दे को अधिक प्रभावी ढंग से पेश करते हैं। यह सदैव कहा जाता है कि एक चित्र हजारों शब्दों के समान होता है जो आंशिक रूप से सच है। तस्वीर का शीर्षक या इसके नीचे लिखा हुआ इसे अधिक मूल्यवान बना देता है।

टेलीविजन में चित्र के लिए लेखन का पूरी तरह से एक अलग अर्थ है। यहां स्थिर चित्रों का असेंबल आमतौर पर एक समाचार कार्यक्रम या एक प्रोमो प्रस्तुत करने के लिए प्रयोग किया जाता है। इस असेंबल अथवा मोंताज में इन स्थिर चित्रों का कोई चरित्र नहीं होता परंतु वे पटकथा के द्वारा उन्हें एक चरित्र व अर्थ प्रदान किया जाता है। यह पटकथा संक्षिप्त होती है, दृश्यों और कार्यक्रमों की समान रूप से पूर्ति करती है। स्थिर चित्र जीवंत बन जाते हैं क्योंकि शब्दों के द्वारा उन्हें गति प्रदान की जाती है। उदाहरणस्वरूप भारतीय संसद पर होने वाले आतंकवादी हमले को स्थिर चित्रों द्वारा ही बताया गया था।

(ब) वीडियो के लिए लेखन

वीडियो लेखन एक मुश्किल कार्य है। वीडियो के लिए लिखते समय हमें यह पता होना चाहिए कि हम जो लिख रहे हैं उसका प्रारूप क्या है। यदि यह वृत्त है तो इसकी पटकथा शैली, अलग होगी। नाटक लेखन की अलग शैली होगी। नाटक में संवाद महत्वपूर्ण होते हैं। लक्षण वर्णन की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए। बैकग्राउंड संगीत और विराम लेना भी महत्वपूर्ण है। टी.वी. समाचार लेखन के लिए पूरी तरह से एक अलग शैली की आवश्यकता है। वीडियो के लेखन के लिए निम्नलिखित तत्वों की आवश्यकता होगी–

1. **अनुक्रमण (सीक्वेंसिंग)**–वीडियो लेखन की दिशा में पहला कदम है वीडियो फुटेज को एक अनुक्रम में डालना। पटकथा को या तो पहले लिखा जाता है और उसके अनुसार वीडियो को समायोजित किया जाता है अथवा वीडियो को पहले देखा जाता है, उसका मूल्यांकन किया जाता है, उसे एक क्रम में डालकर फिर पटकथा लिखी जाती है।

   वृत्तचित्र और टी.वी. समाचारों के लिए यह बेहतर है कि हमारा एक व्यापक विचार हो कि हमारी पटकथा कैसे आगे चलेगी और इसे अंतिम रूप तभी दिया जाएगा जब हम वीडियो को देख लेंगे और उसे एक क्रम में डाल देंगे। अतः पटकथा को अंतिम रूप देने का कार्य सबसे अंत में किया जाना चाहिए।

2. **परिचय (इंट्रो)**- दृश्य और विषय को प्रस्तुत करना आवश्यक है अन्यथा पूरे वीडियो को गलत समझा जा सकता है। परिचय संक्षिप्त होना चाहिए वीडियो के प्रारूप को ध्यान में रखते हुए परिचय अलग-अलग तरीके से लिखे जाने चाहिए। यह उपलब्ध फुटेज के आधार पर नाटकीय, भावनात्मक, प्रभावी अथवा स्टीक हो सकता है।

3. **लक्षित दर्शकगण**- दर्शकगण बहुत महत्वपूर्ण हैं। जिस भाषा और शैली का चुनाव हम करते हैं वह दर्शकों की मांग और स्तर के अनुरूप होनी चाहिए। यदि

वीडियो का लक्ष्य आम जनता तक पहुंचना है तो हम कठिन शब्दों और साहित्यिक भाषा का उपयोग नहीं कर सकते। यही कारण है कि अधिकांश चैनलों ने 'हिंग्लिश' का उपयोग शुरू कर दिया है क्योंकि उनके लक्षित दर्शकगण नियमित रूप से मध्यमवर्ग की शहरी जनता है। टी.वी. जनता का एक माध्यम है इसलिए जिस भाषा का आम लोग उपयोग करें वही भाषा प्रयुक्त होनी चाहिए। यदि उन्हें भाषा समझने में कठिनाई होगी तो वे बिना समय बर्बाद किए चैनल बदल देंगे। यदि हम वृत्तचित्र के लिए लिख रहे हैं जिसे फिल्म समारोहों में भी दिखाया जाएगा, तो हमारी भाषा तब बदल जाएगी। यह शुद्ध और अधिक परिष्कृत हो जाएगी।

4. **दृश्यों को जोड़ना**- पटकथा का प्रवाह दृश्यों के अनुसार होना चाहिए। वे एक-दूसरे के साथ सही क्रम में जुड़े होने चाहिए। शॉट में किया गया एक बदलाव भी पटकथा में परिलक्षित होता है। वीडियो के मूड और गति में किया गया संक्रमण भी पटकथा में परिलक्षित होता है।
5. **वीडियो में अर्थ और मूल्य जोड़ना**- वीडियो में वहां पहले से ही क्या है, पटकथा अभी यह बताने वाली नहीं होनी चाहिए, यह उस वीडियो के पीछे की कहानी, पृष्ठभूमि और तथ्यों को अधिक व्यक्त करने वाली होनी चाहिए। वास्तव में, कई बार, पटकथा एक वीडियो को काफी दिलचस्प बना सकती है। इसका जीता-जागता उदाहरण है एक वीडियो सीरियल American Furriest Videos. कार्यक्रम में कुछ बहुत ही सामान्य होम वीडियो को बुद्धिमान पटकथा और संपादन के द्वारा हास्यास्पद वीडियो में बदल दिया गया है।
6. **शब्दों, दृश्यों और चुप्पी के बीच एक संतुलन कायम करना**- पटकथा दृश्य पर प्रबल नहीं होनी चाहिए। कई बार बहुत अधिक वॉइस ओवर व संवाद वीडियो के प्रभाव को कम कर देते हैं। एक कॉपी लेखक को दृश्यों की समझ ऐसी होनी चाहिए कि उसे पता हो कि कहां मौन अधिक प्रभावी होगा। उसे पटकथा में अत्यधिक तथ्यों, डेटा या जानकारी की भरमार नहीं करनी चाहिए। अत्यधिक भरमार के फलस्वरूप ये दर्शकों को भ्रमित कर सकते हैं और वीडियो अपनी प्रभावशीलता को खो देगा।
7. लेखक को यह अच्छी तरह समझना चाहिए कि टी.वी. जनसंचार का लगभग एक पूर्ण माध्यम है। यह ऐसा माध्यम है जिसे संचार में सरल और संक्षिप्त किए जाने की आवश्यकता है। वह व्यक्ति जो इस लक्ष्य को हासिल कर सकता है या हासिल करने को तैयार है, वह एक अच्छा टी.वी. लेखक हो सकता है।

शब्दों के लिए संदर्भ दृश्य

दृश्यों और शब्दों के बीच एक जटिल संबंध है। इसकी व्याख्या करना एक पांडित्य पूर्ण बात होगी। पत्रकारिता के क्षेत्र में एक साधारण तथ्य को समझना महत्वपूर्ण है कि एक दृश्य को कई तरह से समझा जा सकता है। हमारे दृश्यमान करने के तरीके एक-दूसरे से जैसे अलग होते हैं, हम अपने दृष्टिकोण के अनुसार दृश्यों को देखें। इसलिए दृश्य को

टिप्पणी

परिभाषित करने और ध्यान केंद्रित करने में शब्द अनिवार्य हैं। एक बच्चे के रोने के साधारण दृश्य को अलग-अलग तरीकों से समझा जा सकता है। जब तक हम कहेंगे कि बच्चा रो रहा है क्योंकि वह भूखा है या उसे छोड़ दिया गया है, दृश्य व्याख्या के लिए खुला रहेगा। इसलिए दृश्य को अर्हता प्राप्त करने के लिए शब्दों की आवश्यकता है। इस प्रकार यदि हमारे पास शब्द हैं तो उन्हें अर्हता प्राप्त करने के लिए दृश्यों को इकट्ठा करते हैं। यह एक कठिन कार्य है। ऐसी स्थिति में, संग्रह फुटेज का पता लगाया जाता है और जरूरत हो तो ताजा दृश्यों को लोकेशन से इकट्ठा किया जाता है। इस प्रकार दृश्यों को शब्दों के साथ सज्जित किया जाता है।

शोध, दृश्य और उत्पादन पटकथा

टी.वी कार्यक्रमों के लिए शोध एक बहुत आवश्यक शर्त है और पूर्व उत्पादन चरण का अभिन्न हिस्सा है। शोध के बिना कोई भी टी.वी. कार्यक्रम अच्छी तरह नहीं बनाया जाता है तो उपयुक्त पात्रों, कहानी, वेशभूषा और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को विकसित करने के लिए एक उचित अनुसंधान किया जाता है। विभिन्न टीवी कार्यक्रम के प्रारूपों के लिए विभिन्न प्रकार के शोध किए जाते हैं। टीवी समाचार के लिए शोध दो स्तरों पर कार्य करता है-आउटडोर शोध यानी Recce और दस्तावेज आधारित शोध। न्यूज स्टोरी के मौके और स्थान की जांच, साउंड बाइट/संक्षिप्त साक्षात्कार के लिए लोगों का चयन, मौके पर ही साक्षात्कार के लिए अधिकारियों का चयन-ये सभी समाचार के लिए शोध का एक अभिन्न हिस्सा हैं। इसमें स्थान पर खबर की तलाश भी शामिल है। एक समाचार कहानी के कोण की पुष्टि करने के लिए दस्तावेज आधारित एक विषय से संबंधित तथ्यों और आंकड़ों को खोजने पर अधिक केंद्रित होता है।

एक वृत्तचित्र के लिए शोध में दस्तावेजों का अध्ययन शामिल होता है। एक विषय की गहरी समझ विकसित करने और एक वृत्तचित्र को एक बेहतर, रचनात्मक और आसानी से प्रदर्शित करने के लिए साक्षात्कार विशेषज्ञों या विश्लेषकों की आवश्यकता हो सकती है। साक्षात्कारों या सेलिब्रिटी आधारित कार्यक्रमों के लिए साक्षात्कार देने वाले सेलिब्रिटी की पृष्ठभूमि उससे संबंधित विवादों, उसके व्यवसाय और निजी जीवन के प्रमुख बिंदुओं के बारे में विस्तृत अध्ययन करने की आवश्यकता होती है। इस प्रकार के कार्यक्रमों में प्रश्नावली की तैयारी करना भी शोध का एक हिस्सा होगा। खेल आधारित कार्यक्रमों में विशेषज्ञों की राय, अनुभव, तथ्यों और आंकड़ों पर आधारित एक शोध की आवश्यकता होती है। लोग खेल आधारित कार्यक्रम केवल इसलिए देखते हैं क्योंकि उन्हें खेल हस्तियों, उनके अनुभवों और उस विशेष खेल की पृष्ठभूमि के बारे में अधिक जानने को मिलता है। इसलिए इन सब बातों की अच्छी तरह से छानबीन करके प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

दृश्यावलोकन (विजुअलाइजेशन) एक टेलीविजन के संबंध में दर्शकों के दृष्टिकोण को संदर्भित करता है। दृश्यावलोकन उस तरीके से निर्धारित किया जाता है जिस प्रकार एक प्रोग्राम को जिसमें तथ्य और समग्र सामग्री शामिल होती है, प्रस्तुत किया जाएगा। उत्पादन पटकथा टीवी कार्यक्रम के उत्पादन मंच का एक बहुत महत्वपूर्ण दस्तावेज है।

टिप्पणी

एक कार्यक्रम उत्पादन के स्तर पर तब पहुंचता है जब सभी कुछ तैयार हो और उत्पादन टीम फ्लोर पर जाने अर्थात कार्यक्रम को शूट करने के लिए तैयार हो। यह वह स्तर है जहां कार्यक्रम आकार लेता है और निर्देशक को स्पष्ट जानकारी मिलती है कि क्या उस अवधारणा पर अमल किया गया है जिसकी उसने सैद्धांतिक रूप से कल्पना की थी। यह सुनिश्चित करने के लिए कि पूर्व उत्पादन के दौरान जो भी अवधारणा है उस पर सही ढंग से अमल किया जाए, हर डिटेल को लिखा और प्रलेखित किया जाना चाहिए।

(स) पटकथा लेखन : फिल्म

फिल्म को एक पूर्ण संप्रेषण माध्यम कहा जाता है क्योंकि इसमें दृश्य-श्रव्य दोनों का प्रयोग होता है। यदि कुछ पठन योग्य है तो उसे भी दिखाया जा सकता है और दर्शक उसे पढ़ सकते हैं। फिल्म लेखन इसलिए चुनौतीपूर्ण है क्योंकि लेखक को इस बात का पूरा ध्यान रखना होता है कि क्या देखा जाएगा, और क्या सुना जाएगा। इस माध्यम के लिए लिखने हेतु इसमें प्रयुक्त तकनीक की समझ की आवश्यकता है। कैमरा, डायलॉग, एडिटिंग इत्यादि की एक वृहद समझ लेखक के लिए आवश्यक है।

जैसा कि टीवी लेखन में स्पष्ट किया गया है, फिल्म पटकथा लेखन मुख्यत: प्री-प्रोडक्शन प्रक्रिया का भाग होता है लेकिन पटकथा प्रोडक्शन और पोस्ट प्रोडक्शन के दौरान भी आकार लेती रहती है। अत: लेखक को इस बात के लिए तैयार रहना चाहिए कि आरंभिक स्क्रिप्ट में प्रोडक्शन एडिटिंग के दौरान महत्वपूर्ण परिवर्तन आ सकते हैं।

फिल्म विभिन्न प्रकार की होती है; शॉर्ट फिल्म, मूक फिल्म, डाक्यूमेंट्री व फीचर फिल्म। आजकल फिल्म के माध्यम में अनेक प्रयोग भी किए जा रहे हैं। सभी प्रकार की फिल्मों के लिए स्क्रिप्ट (पटकथा) की आवश्यकता होती है। प्राय: ये समझा जाता है कि स्क्रिप्ट का अर्थ है-संवाद लेखन। लेकिन यह सत्य नहीं है। एक मूक फिल्म की भी स्क्रिप्ट होती है। पटकथा का अर्थ होता है कि जो भी आप दर्शकों को दिखाना चाहते हैं उसका पूर्ण लेखा-जोखा जिसमें संवाद, चरित्र की वेशभूषा, शॉट्स, सेट्स, चरित्रों की पर्दे की गति, कैमरा मूवमेंट्स इत्यादि सभी कुछ शामिल होता है।

पटकथा लेखन से पहले सर्वाधिक आवश्यकता होती है एक विचार की, जिसे कहानी में तबदील किया जाता है और फिर उस कहानी के लिए आवश्यक शोध किया जाता है। यानी हम कह सकते हैं कि पटकथा लेखन से पहले निम्नलिखित तीन चरण आवश्यक हैं– 1. फिल्म की अवधारणा, 2. कथा, 3. शोध।

तत्पश्चात लेखन की प्रक्रिया आरंभ होती है। कहानी को फिल्म की अवधि के अनुसार विभिन्न भागों में बांटा जाता है और उन भागों को शॉट्स में। कहानी के चरित्रों को शोध के दौरान ही निर्धारित कर लिया जाता है कि कौन-सा चरित्र कैसी वेशभूषा पहनेगा, उसकी सामाजिक सांस्कृतिक व आर्थिक पृष्ठभूमि कैसी लगनी चाहिए तथा उसके संवाद किस शैली के होंगे।

शोध के दौरान ही फिल्म शूट करने के लिए लोकेशन का भी चयन किया जाता है। यदि लोकेशन 'इन्डोर' है तो किस तरह का सैट और प्रॉपर्टीज (अर्थात सैट के लिए

आवश्यक फर्नीचर इत्यादि) होंगे और अगर 'आउटडोर' है तो किस तरह का वातावरण होना चाहिए-शहर का, गांव का, हरियाली या बीहड़ इत्यादि।

पटकथा लेखन से पहले कथा की पृष्ठभूमि और चरित्रों के नाम जैसी मूल बातें संक्षेप में दी जाएं तो श्रेष्ठ है। कुछ लेखक स्क्रिप्ट को ऑडियो व विजुअल दो भागों में बांट लेते हैं तथा ऑडियो में संवाद, संगीत व साउंड इफेक्ट्स लिखते हैं तथा विजुअल के कॉलम में सैट व लोकेशन इत्यादि का वर्णन होता है। लेकिन कुछ लेखक ऑडियो व विजुअल विवरण संवाद के साथ-साथ देते हैं।

साधारण लेखन व पटकथा लेखन में एक महत्वपूर्ण अंतर यह है कि सामान्य लेखन लेखक की निजी प्रक्रिया होती है और वह अपनी शैली में लिख सकता है या प्रयोग कर सकता है। पटकथा लेखन में लेखक अपने किरदारों से बंधा होता है और मुख्यत: संवाद उसी शैली में लिखता है जो उसके किरदार के अनुकूल हों। यदि किरदार का चरित्र विशुद्ध ग्रामीण है या एक निश्चित अंचल का है तो यह निर्देशक पर छोड़ दिया जाता है कि वह संवाद की शैली को किस तरह बदलेगा। इस प्रकार पटकथा लेखन एक व्यक्तिगत प्रक्रिया न होकर सामूहिक प्रक्रिया हो जाती है जिसमें न केवल लेखक बल्कि कैमरा मैन, निर्देशक और चरित्र एक अहम भूमिका का निर्वाह करते हैं।

पटकथा लेखक को 'मौन' की महत्ता की पूर्ण समझ होनी चाहिए। कई बार भावनात्मक स्थितियों, रहस्य या भयावह की अनुभूति देने के लिए 'मौन' का प्रयोग अत्यावश्यक होता है। संवाद या संगीत उसकी प्रभावशीलता को कम कर सकते हैं। वहीं यह मौन इतना लंबा भी नहीं खिचना चाहिए कि दर्शक ऊबने लगें।

सर्वाधिक महत्वपूर्ण यह है कि पटकथा लेखक को जानकारी हो कि उसका 'लक्ष्य दर्शक' कौन है। यदि वह फिल्म एक विशेष वर्ग के दर्शकों को या एक विशेष फिल्म फैस्टिवल में प्रदर्शित होनी है तो उसके लिए संवाद लेखन, चरित्र चित्रण, संगीत व पृष्ठभूमि भिन्न प्रकार की होगी लेकिन यदि वह एक व्यावसायिक फिल्म है तो उसका लेखन व संरचना तदनुकूल होगी।

पटकथा लेखन एक प्रकार से गत्यात्मक लेखन है, जिसमें अनेक प्रकार के प्रयोग किए जाते रहे हैं। वैसे तो प्रत्येक लेखक अपने आसपास के जीवन, समाज व रिश्तों को बहुत गहनता से समझता और महसूस करता है लेकिन पटकथा लेखक के लिए यह भी आवश्यक है कि वह अपने परिवेश में स्वं-बसे चरित्रों, कहानियों और रिश्तों से बाहर निकल कर एक गहरी सामाजिक सांस्कृतिक व भाषायी समझ विकसित करे जो उसके चरित्रों व कहानी को और भी जीवंत बना सके।

• टेलीड्रामा/डॉक्यूड्रामा

नाटक साहित्य की एक विधा है। नाटक चाहे वह मंच का हो, फिल्म का हो, टी.वी. का हो या फिर रेडियो का हो– नाटक ही है। परिभाषा की दृष्टि से नाटक सभी संदर्भों में एक ही है। टेलीविजन का नाटक श्रव्य और दृश्य दोनों होता है। इस कारण टेलीविजन का नाटक दर्शकों में अत्यधिक रोचकता उत्पन्न करता है। रेडियो का नाटक टेलीविजन के नाटक से भिन्न होता है। यह दर्शकों में मानसिक और शारीरिक दोनों स्थितियों में कौतूहलता में वृद्धि करता है। किसी भी नाटक में व्यक्तियों और स्थितियों का परस्पर संघर्ष

नाटक में खेल के तत्व का समावेश ही नहीं करता अपितु नाटक में रोचकता और दृश्य तत्व की संभावनाएं भी पैदा करता है।

टिप्पणी

नाटक में दृश्यात्मकता एक महत्वपूर्ण बिंदु है। टेलीविजन का लेखक स्क्रीन के लिए लेखन करता है। टेलीविजन का लेखक ध्वनि के साथ दृश्य प्रमुख हो जाता है। दृश्य संवादों और ध्वनि की पूरक भाषा होती है। जब अभिनेता का कार्य-व्यापार कैमरे की गति के साथ लयबद्ध होता है तो एक नई भाषा का जन्म होता है। यहां अभिनेता की आंखों का इशारा, मुखाभिनय ओर दैहिक संकेत शाब्दिक संवाद से इतर नए संवाद को जन्म देते हैं। आर्थर बर्गर ने इसे टेलीविजन की सांकेतिक भाषा कहा है, जो इस प्रकार है–

संकेत	माध्यम	अर्थ
1. क्लोज़अप	मुखाकृति	निकटता
2. मीडियम-शॉट	शरीर का अधिकांश भाग	व्यक्तिगत संबंध
3. फुल शॉट	पूरा शरीर	सामाजिक संबंध
4. लांग शॉट	पात्र और परिवेश	प्रसंग
5. पैन-डाउन	कैमरे द्वारा ऊंचाई से लिया गया शॉट	प्रभुत्व
6. पैक-अप	कैमरे द्वारा नीचे से लिया गया शॉट	उत्सुकता उभारना

किसी भी नाटक में समय और स्थान के परिवर्तन के लिए ध्वनि प्रभावों का प्रयोग किया जाता है। नाटक के आरंभ में पात्रों का परिचय, परिवेश, उद्देश्य, समय, स्थान आदि का चित्रण किया जाता है। नाटक का आरंभ सदैव दर्शकों को प्रभावित करने वाला होता है।

नाटक का मध्य भाग नाटक का अत्यंत महत्वपूर्ण बिंदु होता है। इसमें नाटक के महत्वपूर्ण अंश होते हैं। नाटक का अंत प्रभावशाली होना चाहिए जो दर्शकों पर अपनी छाप छोड़ सके, उन्हें प्रभावित कर सके।

नाटक का सबसे महत्वपूर्ण बिंदु संवाद एवं भाषा है। किसी भी नाटक के संवाद कथा को बढ़ाने वाले, चरित्रों को उद्घाटित करने वाले होने चाहिए। भाषा पात्रों के अनुरूप सरल और सहज होनी चाहिए जिसे दर्शक समझ सकें। संवादों की रचना के बाद उसे एक दो बार पढ़ लेना चाहिए जिससे संवादों के प्रवाह, बोलने में शब्दों की सरलता और भावानुसार उसकी टोन का अंदाजा हो जाता है और उसी समय इस बात का भी आभास हो जाता है कि शब्द या वाक्य अपने स्थान पर सही हैं या इनमें सुधार की आवश्यकता है।

टेलीविजन के नाटक में नाटककार के पास 'क्लोज-अप' की सुविधा होती है। वह इसका भरपूर फायदा उठा कर अपने नाटक की लेखन शैली को नाटक के अनुसार घुमा-फिरा लेता है।

टेलीविजन की नाट्य शैली अत्यंत रोचकता से भरपूर होती है। इसमें नाटककार को अपनी प्रतिभा को अत्यंत रोचक तरीके से प्रस्तुत करने का मौका प्राप्त होता है।

(द) संवाद लेखन

टिप्पणी

'संवाद' संस्कृत भाषा का शब्द है। संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान वामन शिवराम आप्टे ने अपने कोशों में इस शब्द के अनेक अर्थ दिए हैं, यथा– मिलकर बोलना, बातचीत, कथोपकथन, चर्चा, वाद-विवाद, समाचार देना, सूचना समाचार स्वीकृति, सहमति, समानुरूपता, मेलजोल, समानता, सादृश्य आदि। शब्दकल्पद्रुम में संवाद का अर्थ 'संवेदशवाक्यम्' के रूप में दिया गया है।

संक्षिप्त रूप में कहा जा सकता है कि जहां भी कथोपकथन अथवा वार्तालाप द्वारा कुछ संप्रेषित किया जाता है, वह संवाद होता है।

सिनेमा के क्षेत्र में संवाद का जो अर्थ लिया जाता है और जिस रूप तथा जिस परिवेश में संवाद का प्रयोग होता है उसे देखने पर पता चलता है कि स्थूल रूप से सिनेमा में जहां भी शब्द का प्रयोग हुआ वह संवाद का रूप ले लेता है। इस संबंधा में सत्यजीत राय का कथन है कि "स्क्रीन प्ले लिखना साहित्य लेखन की तरह नहीं है। साथ ही फिल्म में बढ़िया संवाद वही होगा जहां दर्शक, संवाद-लेखक की उपस्थिति महसूस न करे।"

वास्तव में संवाद वाक्य की शैली है जिसमें बातचीत, प्रश्नोत्तर, संबोधन, भावमूलक अभिव्यक्ति का समावेश रहता है। संवाद भाषा के अभिव्यक्तिपरक कौशल हैं जो वक्ता-श्रोता और अभिनेता से संबद्ध होते हैं। फिल्म के निर्माण में भी संवाद-लेखक का महत्वपूर्ण स्थान होता है। संवाद लेखक फिल्म के कथानक के अनुसार संवाद लिखता है।

संवाद लेखन करते समय हमें निम्नलिखित बातों पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए–

1. संवाद लेखन करते समय प्रसंग, परिस्थिति, स्थिति, आयु, पात्र तथा परिवेश पर ध्यान देना आवश्यक है। उदाहरणार्थ यदि पौराणिक कथा पर आधारित फिल्म है तो उसके संवाद संस्कृतनिष्ठ होंगे। उसमें संस्कृत के श्लोक का उच्चारण होगा। भारत की पौराणिक संस्कृति और मूल्यों का उपयोग भी होगा।
2. संवादों की भाषा सदैव कथानक, परिस्थिति व पात्रों के अनुरूप होनी चाहिए। इसमें हिंदी, उर्दू, फारसी आदि किसी भी भाषा का प्रयोग किया जा सकता है।
3. संवादों में तारतम्यता होनी चाहिए।
4. संवाद कभी भी वर्णनात्मक नहीं होने चाहिए।
5. संवादों में कभी भी अतिशयोक्तिपूर्ण शब्दों का प्रयोग नहीं होना चाहिए।
6. संवाद मौलिक होने चाहिए।
7. संवादों की प्रस्तुति को लेकर ज्यादा निर्देश-अनुदेश देने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए।
8. अधूरे संवादों का प्रयोग नहीं होना चाहिए।
9. संवाद लेखन करते समय बोलियों का अनावश्यक प्रयोग नहीं होना चाहिए।
10. एक जैसी पंक्ति को बार-बार प्रस्तुत नहीं करना चाहिए।

11. ऐसे संवादों से बचना चाहिए जिसमें खुद ही प्रश्न पूछे जाएं और खुद ही उनका उत्तर दिया जाए।

टिप्पणी

इसके अतिरिक्त सिनेमा के क्षेत्र में संवाद लेखन करते समय कुछ तकनीकी सुविधाएं जुड़ी हुई हैं। जैसे- जिस फिल्म पट्टी पर दृश्य फिल्माया जाता है उस पट्टी पर तीन ध्वनि-लीकें (साउंड ट्रैक्स) होती हैं जिनमें एक-एक पर संवाद, संगीत और एक विशेष ध्वनि प्रभावों को रिकॉर्ड किया जाता है। इस स्थिति में निर्देशक अपनी सुविधा के अनुसार संवादों में परिवर्तन कर उन्हें रिकॉर्ड कर सकता है। इस अवस्था में चरित्रों को केवल होंठ हिलाने, हाव-भाव प्रदर्शित करने का कार्य रहता है।

साहित्य की विधाओं का दृश्य–माध्यमों में रूपांतरण

अभिव्यक्ति का मुद्रित रूप 'साहित्य' है। साहित्य के द्वारा लेखक अपने भावों, विचारों, मंतव्यों को अधिक से अधिक लोगों तक पहुंचाना चाहता है। और इस कार्य के लिए वह साहित्य की अनेक विधाओं को अपनाता है। कहानी, उपन्यास, महाकाव्य, खंड काव्य, नाटक, लघुकथा, निबंध, यात्रावृत्तांत, संस्मरण आदि साहित्य की विविधा प्रचलित विधाएं हैं। पाठक वर्ग अपनी रुचियों के अनुरूप इन विधाओं को पढ़ता है। आज जैसे-जैसे जनमाध्यमों का विकास हुआ है ओर रेडियो, टेलीविजन तथा सिनेमा के माध्यम लोकप्रिय हुए हैं वैसे-वैसे ही साहित्य की विविध विधाएं भी लोकप्रियता हासिल करते हुए व्यापक जनसमूह तक पहुंच रही हैं। साहित्य की विधाओं का टेलीविजन और सिनेमा जैसे दृश्य माध्यमों में भी पर्याप्त मात्रा में रूपांतर हो रहा है।

जब तक साहित्य मुद्रित रूप में रहता है तब तक उसकी अपनी विशेषताएं होती हैं परंतु जब साहित्य का रूपांतरण/काव्यांतरण दृश्य माध्यमों में कर दिया जाता है तब उसकी आंतरिक संरचना परिवर्तित हो जाती है। उसकी विशेषताओं में भिन्नता आ जाती है। इसलिए साहित्यिक विधाओं का रूपांतरण करते समय लेखक या रूपांतरकार को यह ध्यान रखना चाहिए कि विधा का ढांचा बेशक परिवर्तित हो जाए परंतु उसकी आत्मा में किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं आना चाहिए। किसी भी विधा के ढांचे में परिवर्तन तो माध्यम की मांग के कारण होता है परंतु रचना की आत्मा सभी रूपों में समान रहनी चाहिए।

साहित्य की विधाओं में रूपांतरण की आवश्यकता इसलिए होती है क्योंकि दृश्य माध्यमों की पहुंच अधिक से अधिक मात्रा में लोगों तक होती है। निरक्षर लोग साहित्य को पढ़कर उसका लाभ नहीं उठा सकते अत: वह दृश्य माध्यमों के द्वारा ही साहित्य से अवगत होते हैं। वहीं दूसरी ओर यह भी आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक पढ़ा-लिखा व्यक्ति साहित्य को पढ़ना पसंद करे अत: इसलिए भी साहित्यिक रूपांतरण की आवश्यकता होती है। रूपांतरण का एक अन्य महत्वपूर्ण कारण यह भी है कि लिखित व मुद्रित माध्यमों की अपेक्षा दृश्य माध्यम दर्शकों को अधिक प्रभावित करते हैं।

दृश्य माध्यमों में रूपांतरित कुछ साहित्यिक रचनाओं के उदाहरण निम्न प्रकार से हैं–

1. **कहानियों का नाट्य रूपांतरण तथा दृश्य माध्यमों पर प्रस्तुति–** प्रेमचंद की कहानी 'ठाकुर का कुआं' ओर 'नमक का दारोगा' दूरदर्शन पर प्रसारित की जा चुकी है। जयशंकर प्रसाद की कहानी 'मधुआ', धर्मवीर भारती की 'बंद गली का आखिरी मकान', मालती जोशी की 'मध्यांतर', श्रवण कुमार की 'खंडहर पर बैठा आदमी' तथा कमलेश्वर की कई कहानियों के सफल रूपांतरण किए जा चुके हैं।
2. **उपन्यासों का नाट्य रूपांतरण तथा दृश्य माध्यमों पर प्रस्तुति–** प्रेमचंद के उपन्यासों 'गोदान', 'निर्मला' और 'गबन' पर फिल्में निर्मित हो गई हैं। जैनेन्द्र कुमार के उपन्यास 'त्यागपत्र' का तथा मन्नू भंडारी के उपन्यास 'महाभोज' का नाट्य रूपांतरण कर टेलीविजन पर उसका प्रसारण किया जा चुका है। देवकीनंदन खत्री के उपन्यास 'चंद्रकांता' के नाट्य रूपांतरण को टेलीविजन पर अत्यंत लोकप्रियता प्राप्त हुई। अमृतलाल नागर के 'बूंद और समुद्र', 'मानस का हंस' तथा 'खंजन नयन' उपन्यास भी टेलीविजन पर प्रसारित हुए हैं।
3. **महाकाव्यों का नाट्य रूपांतरण तथा दृश्य माध्यमों पर प्रस्तुति–** रामायण, रामचरितमानस तथा महाभारत महाकाव्यों पर अनेक नाटक प्रसारित किए जा चुके हैं। पौराणिक कथाओं को लेकर कई फिल्में भी निर्मित की गई हैं, यथा– 'सत्यव्रत हरिश्चंद्र', 'सती अनुसूया' तथा 'भक्त प्रह्लाद' आदि।

साहित्यिक विधाओं के दृश्य माध्यमों में रूपांतरण की विशेषताएं

जब किसी साहित्यिक रचना का दृश्य माध्यमों में रूपांतरण किया जाता है तब उसमें अनेक विशेषताएं समाहित हो जाती हैं। ऐसी प्रमुख विशेषताएं निम्न प्रकार से हैं–

1. मुद्रित साहित्य की रचनाओं का दृश्य माध्यमों में रूपांतरण होकर उन रचनाओं में दृश्यात्मकता की प्रधानता हो जाती है। इन रचनाओं के रूपांतरण से दर्शक उनके दृश्यों को देखकर उन्हें आसानी से ग्रहण कर सकता है।
2. मुद्रित साहित्य के दृश्य तकनीकी उपकरणों, कम्प्यूटर, कैमरे तथा ध्वनि एवं दृश्य (ऑडियो-वीडियो) उपकरणों के कारण बहुत ही आकर्षक एवं प्रभावपूर्ण होते हैं।
3. दृश्य माध्यमों के उपकरणों के द्वारा लेखक की कल्पना में लिखे गए असंभव से असंभव दृश्यों को भी प्रस्तुत किया जा सकता है।
4. इन दृश्यों में विविधता पैदा की जा सकती है।
5. दृश्यों को रंगों और अन्य प्रभावों (इफैक्ट्स) द्वारा आकर्षक बनाया जाता है।
6. दृश्य माध्यमों के द्वारा प्रत्येक साहित्यिक रचना के पात्रों को सामने लाकर उनके चेहरे की प्रत्येक रेखा, हाव-भाव, क्रिया कलाप व गीतिविधियों को जीवंत रूप प्रदान किया जा सकता है।
7. दृश्य रूपांतरण के द्वारा मुद्रित साहित्य की भाषा को और अधिक सरल व रोचक ढंग से प्रस्तुत किया जाता है।

टिप्पणी

8. दृश्य माध्यमों के कार्यक्रमों में ध्वनि, संगीत आदि पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाता है।

साहित्यिक विधाओं के दृश्य माध्यमों में रूपांतरण के संदर्भ में रचनाकार श्री रेवतीसरन शर्मा का कहना है कि "दूरदर्शन-प्रस्तुति सलीके से सजाया गया दस्तरखान है। सौंदर्यबोध अनिवार्य है, कहां से रंग ला सकते हैं यह दायित्व नाटककार का है।... इसके लिए तकनीकी ज्ञान, दृश्य बोध में तकनीक का अनुभव होना चाहिए।"

अपनी प्रगति जांचिए

7. इनमें से क्या हिंदी शिक्षण में शामिल दृश्य सामग्री नहीं है?
   (क) फिल्म (ख) टेलीविजन
   (ग) रेडियो (घ) समाचारपत्र
8. चलचित्र (फिल्में) भाषा अधिगम के कैसे माध्यम हैं?
   (क) दृश्य (ख) श्रव्य
   (ग) दृश्य–श्रव्य (घ) इनमें से कोई नहीं

3.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ख)
2. (ग)
3. (घ)
4. (ख)
5. (क)
6. (ग)
7. (ग)
8. (ग)

3.7 सारांश

हिन्दी भाषा–भाषियों का 81.072 प्रतिशत हिस्सा गावों में निवास करता है, शेष हिन्दीभाषी लोग भारत के शहरों में रहते हैं। शिक्षा का विस्तार देश भर में हो चुका है। सभी विषय शिक्षालयों में पढ़ाये जाते हैं। शहरों मे शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी है, लेकिन हिंदी शिक्षण भी है। ग्रामीण भारत में तो हिन्दी का ही वर्चस्व है। इस प्रकार हिंदी भाषा शिक्षण का विज्ञान, भूगोल इतिहास, राजनीति, संगीत, दर्शन, समाजशास्त्र, पर्यावरण आदि समस्त विषयों से सह संबंध स्वाभाविक है।

जिस–जिस भाषा क्षेत्र में हिंदी को राजकीय भाषा स्वीकार किया है उसकी बोलियां भी हिंदी के अंतर्गत मान ली गई हैं। डॉ. उदयनारायण तिवारी ने सर जॉर्ज

ग्रियर्सन के विचारों की पुष्टि की है कि केवल पश्चिमी हिंदी तथा उसकी बोलियों को ही हिंदी के अंतर्गत लिया जाना चाहिए। उन्होंने पूर्वी हिंदी (कोसली) और पश्चिमी हिंदी में मौलिक अंतर भी बताया है। किंतु 'हिंदी का उद्‌गम और विकास' के छठे अध्याय में हिंदी की बोलियों का विवेचन करते हुए उन्होंने पूर्वी हिंदी और पश्चिमी हिंदी– दोनों की बोलियों का विवेचन किया है। राजस्थानी और बिहारी को छोड़ दिया है। डॉ. श्यामसुंदर दास ने हिंदी भाषा और साहित्य में राजस्थानी को हिंदी की उपभाषा माना है, किंतु बिहारी को नहीं। इसमें संदेह नहीं कि राजस्थानी की जयपुरी बोली का ब्रजभाषा से घनिष्ठ संबंध है।

जिस–जिस भाषा क्षेत्र में हिंदी को राजकीय भाषा स्वीकार किया है उसकी बोलियां भी हिंदी के अंतर्गत मान ली गई हैं। डॉ. उदयनारायण तिवारी ने सर जॉर्ज ग्रियर्सन के विचारों की पुष्टि की है कि केवल पश्चिमी हिंदी तथा उसकी बोलियों को ही हिंदी के अंतर्गत लिया जाना चाहिए। उन्होंने पूर्वी हिंदी (कोसली) और पश्चिमी हिंदी में मौलिक अंतर भी बताया है। किंतु 'हिंदी का उद्‌गम और विकास' के छठे अध्याय में हिंदी की बोलियों का विवेचन करते हुए उन्होंने पूर्वी हिंदी और पश्चिमी हिंदी– दोनों की बोलियों का विवेचन किया है। राजस्थानी और बिहारी को छोड़ दिया है। डॉ. श्यामसुंदर दास ने हिंदी भाषा और साहित्य में राजस्थानी को हिंदी की उपभाषा माना है, किंतु बिहारी को नहीं। इसमें संदेह नहीं कि राजस्थानी की जयपुरी बोली का ब्रजभाषा से घनिष्ठ संबंध है।

जिस तरह से बहुत से रूपों में परब्रह्म प्रकट होकर भक्तों और ज्ञानियों एवं मुमुक्षुओं को आश्चर्यचकित कर देता है उसी तरह रस भी काव्य में आविर्भूत होकर सहृदयों को खुशी देता है। साहित्य में सभी प्रकार के अंगों, वेद, वेदांग, ब्राह्मण उपनिषद्, आयुर्वेदशास्त्र, रामायण और महाभारत आदि में रस अलग-अलग अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। रस को काव्य की आत्मा कहा गया है।

गद्य का नियामक व्याकरण है और पद्य का छन्द शास्त्र। हिंदी साहित्य की पारंपरिक रचनाएं छन्दबद्ध ही हुआ करती थीं, यानी किसी न किसी छन्द में रची जाती थीं। विश्व की अन्य भाषाओं में भी यही दर्शनीय तथ्य है। आज छन्दमुक्त रचनाएं भी की जा रही हैं।

काव्य की शोभा बढ़ाने के लिए अलंकार का उपयोग किया जाता है। यह उपयोगिता तो सिद्ध है ही इसके अतिरिक्त अलंकार काव्य का ऐसा लक्षण है जो इसे वक्रोक्ति और ध्वनि से भी जोड़ता है। रस तो काव्य की आत्मा है ही, औचित्य आत्मा की भी आत्मा है। जहां तक वक्रोक्ति का प्रश्न है वह भी अलंकार है। यह शब्दालंकार तथा अर्थालंकार दोनों में सम्मिलित है। वक्रोक्ति यानी व्यंग्यार्थ व्यंजना जोकि उत्तम ध्वनि है। इससे निर्मित काव्य उत्तम काव्य की श्रेणी में आता है। अतः अलंकार सिद्धांत की उपयोगिता वक्रोक्ति एवं ध्वनि सिद्धांत को जानने के साथ-साथ पूरे काव्यशास्त्र की महिमा को जानने के लिए भी है।

टिप्पणी

साहित्य की विधाओं में रूपांतरण की आवश्यकता इसलिए होती है क्योंकि दृश्य माध्यमों की पहुंच अधिक से अधिक मात्रा में लोगों तक होती है। निरक्षर लोग साहित्य को पढ़कर उसका लाभ नहीं उठा सकते अतः वह दृश्य माध्यमों के द्वारा ही साहित्य से अवगत होते हैं। वहीं दूसरी ओर यह भी आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक पढ़ा-लिखा व्यक्ति साहित्य को पढ़ना पसंद करे अतः इसलिए भी साहित्यिक रूपांतरण की आवश्यकता होती है। रूपांतरण का एक अन्य महत्वपूर्ण कारण यह भी है कि लिखित व मुद्रित माध्यमों की अपेक्षा दृश्य माध्यम दर्शकों को अधिक प्रभावित करते हैं।

3.8 मुख्य शब्दावली

- **परिकल्पना** – कल्पना, संकल्पना
- **अपभ्रंस** – हिंदी का पूर्ण/अपरिष्कृत रूप
- **भाषा दर्शन** – भाषा से संबंधित दृष्टिकोण
- **सर्वनाम** – संज्ञा के स्थान पर प्रयुक्त शब्द
- **मुक्त छंद** – व्याकरणिक नियमों से रहित छंद
- **श्लेष** – चिपकना, एकाधिक अर्थ वाले अलंकारिक शब्द
- **अन्वय** – व्याकरिक विचार से सामान्यरूपता

3.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. बोली से क्या आशय है?
2. क्रिया किसे कहते हैं?
3. उपसर्ग और प्रत्यय में क्या अंतर है?
4. पर्यायवाची तथा विपरीतार्थी शब्द में क्या भेद है?
5. प्रश्नावली से क्या तात्पर्य है?
6. चाट्र्स से क्या आशय है?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. हिंदी शिक्षण से विज्ञान एवं दर्शन का सहसंबंध निरूपित कीजिए।
2. प्रमुख बोलियों का परिचय दीजिए।
3. कारक एवं समास का विश्लेषण कीजिए।
4. अलंकार की क्या महत्ता है; पांच प्रमुख अलंकारों का सोदाहरण उल्लेख कीजिए।

5. प्रश्नावली निर्माण को उदाहरण सहित समझाइए।
6. हिंदी शिक्षण में सहायक दृश्य–श्रव्य सामग्री रेखांकित कीजिए।

टिप्पणी

3.10 सहायक पाठ्य सामग्री

1. डॉ. रामशकल पाण्डेय, 'हिन्दी शिक्षण'।
2. डॉ. भोलानाथ तिवारी : 'हिन्दी भाषा'।
3. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : 'हिन्दी साहित्य का इतिहास'।
4. डॉ. एस. के. मंगल एवं श्रीमती शुभ्रामंगल : 'शिक्षा तकनीकी'।
5. डॉ. एस. एस. माथुर : 'शिक्षण कला एवं तकनीति'।
6. पाठक एवं त्यागी : 'सफल शिक्षण कला'।
7. भाई योगेन्द्र जीत : 'मातृभाषा शिक्षण'।
8. सावत्री सिंह : प्रगत हिन्दी शिक्षण।

इकाई 4 हिंदी भाषा शिक्षण में शिक्षाशास्त्रीय अध्ययन

टिप्पणी

संरचना

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 भाषा शिक्षण के प्रचलित सिद्धांतों का अध्ययन
 4.2.1 भारतीय शिक्षाशास्त्रियों द्वारा प्रदत्त सिद्धांत
 4.2.2 पाश्चात्य शिक्षाशास्त्रियों द्वारा प्रदत्त सिद्धांत
4.3 नवीन शिक्षाशास्त्रीय सिद्धांतों का अध्ययन एवं विश्लेषण
 4.3.1 अवलोकन
 4.3.2 अन्वेषण
 4.3.3 प्रोजेक्ट कार्य
 4.3.4 अवधारणात्मक विकास
 4.3.5 गतिविधि आधारित अधिगम (ABL)
 4.3.6 सक्रिय अधिगम प्रविधि (ALM)
4.4 पाठ योजना : 5E मॉडल एवं हिंदी विधाओं का शिक्षण
 4.4.1 पाठ योजना : 5E मॉडल
 4.4.2 कविता
 4.4.3 कहानी
 4.4.4 नाटक
 4.4.5 पत्र
 4.4.6 आलेख
 4.4.7 व्यंग्य
 4.4.8 चित्र कथा/कॉमिक्स/कार्टून
 4.4.9 जीवनी
 4.4.10 आत्मकथा
 4.4.11 संस्मरण
 4.4.12 यात्रावृत्त
 4.4.13 उपन्यास
4.5 हिंदी भाषा शिक्षण का मूल्यांकन
 4.5.1 शिक्षण और मूल्यांकन के आधारभूत उद्देश्य
 4.5.2 ज्ञानात्मक एवं भावनात्मक या क्रियात्मक पक्ष
 4.5.3 शैक्षिक मूल्यांकनः अवधारणा– मानक एवं कसौटी संदर्भित परीक्षण, निर्माणात्मक और संकलनात्मक मूल्यांकन
4.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.7 सारांश
4.8 मुख्य शब्दावली
4.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.10 सहायक पाठ्य सामग्री

4.0 परिचय

यथार्थता आधारित लौकिक या आध्यात्मिक रूप से, हर कथन एक मूलभूत सच्चाई है। एक सिद्धांत का उदाहरण है और हर कथन नियमों के लिए आधार प्रदान करता है। लेकिन, नियम अल्पकालिक हो सकते हैं और वे सुनिश्चित भी होते हैं। दूसरी ओर,

सिद्धांत व्यापक होते हैं और सर्वदा टिक सकते हैं।उदाहरण के लिए, एक बच्चे को शायद यह नियम दिया जाए, "स्टोव को नहीं छूना।" लेकिन एक वयस्क के लिए इतना कहना ही काफ़ी होगा कि "स्टोव गरम है।" ध्यान दीजिए कि आखिरी कथन ज़्यादा व्यापक है। क्योंकि यह सच्चा कथन हमारे कार्यों पर असर डालेगा। इस मामले में अगर हम पकाएँ, सेकें, या स्टोव बंद करें तो यह एक अर्थ में एक सिद्धांत बन जाता है।उसी प्रकार भाषा शिक्षण के कुछ प्रमुख सिद्धांत होते हैं, जिनसे सही एवं प्रभावी शिक्षण का आधार स्पष्ट होता है।

इस इकाई में हम हिंदी शिक्षण के भारतीय एवं पाश्चात्य शिक्षा शास्त्रियों द्वारा प्रदत्त प्रचलित सिद्धांतों का अध्ययन करते हुए तत्संदर्भित नीवन सिंद्धातों का भी विवेचन करेंगे। हिंन्दी की विविध विधाओं के शिक्षण संबंधी तथ्यों को स्पष्ट करते हुए हिंदी भाषा शिक्षण के मूल्यांकन पर भी इस इकाई में प्रकाश डाला जायेगा।

4.1 उद्देश्य

- भारतीय एवं पाश्चात्य सिंद्धातों द्वारा प्रदत्त भाषा शिक्षण के सिंद्धात समझ पाएंगे;
- भाषा शिक्षण के नवीन शिक्षा शास्त्रीय सिंद्धातों का विश्लेषण कर पाएंगे;
- हिंदी की विविध विधाओं के शिक्षण से अवगत हो पाएंगे;
- हिंदी भाषा शिक्षण की मूल्यांकन प्रक्रिया को समझ पाएंगे।

4.2 भाषा शिक्षण के प्रचलित सिद्धांतों का अध्ययन

शिक्षण हेतु तीन तत्वों का होना अत्यावश्यक है – शिक्षक, शिक्षार्थी एवं पाठ्यक्रम (पठन सामग्री)। इन्ही तत्वों पर शिक्षण के सभी सिद्धांत आधारित हैं। शिक्षक शिक्षार्थी को पाठ्यक्रम कैसे, कब और क्यों पढ़ाए, जिससे प्रभावी शिक्षण हो सकेः यही सब शिक्षण को सही दिशा प्रदान करते हैं।

हिंदी भाषा शिक्षण के विविध सिद्धांतों को निम्नलिखित अनुभागों के तहत समझा जा सकता है।

4.2.1 भारतीय शिक्षाशास्त्रियों द्वारा प्रदत्त सिद्धांत

भारतीय विद्वानों के विचारों–सुझावों के आधार पर निर्मित हिंदी भाषा शिक्षण के कुछ सर्वमान्य सिद्धांत निम्नांकित हैं–

- **रुचि जगाने का सिद्धांत**

छात्र के लिए शिक्षण तब तक सफल नहीं हो पायेगा, जब तक वह उसमे रुचि नहीं लेगा। पहले दंड या अनुशासन के माध्यम से ज्ञानार्जन की प्रेरणा दी जाती थी। किन्तु अब रुचि जाग्रत करने पर अधिक बल दिया जाता है, जिससे छात्र स्वेच्छा से, पूरा ध्यान केंद्रित कर शिक्षा ग्रहण करें। तभी वे पाठ्य वस्तु के सही उद्देश्य और मूल भाव को समझकर शिक्षण सफल बनाएंगे।

- **प्रेरणा का सिद्धांत**

यह भाषा अधिगम हेतु सबसे महत्वपूर्ण सिद्धांत है। रुचि, आवश्यकता और प्रयोजन शिक्षण में प्रमुख प्रेरक होते हैं। उद्देश्यहीन, प्रयोजन–रहित कार्य शिक्षण कार्य में शिथिलता उत्पन्न करते हैं। अतः हर संभव प्रयास द्वारा छात्रों को ज्ञानार्जन हेतु प्रेरित करना शिक्षक के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण होता है।

- **क्रिया द्वारा सिखाने (व्यावहारिक ज्ञान) का सिद्धांत**

यह शिक्षण हेतु सबसे प्रभावी सिद्धांत है, जो छात्रों में रुचि और प्रेरणा भी जाग्रत करता है। इसके अनुसार जो भी बालक को सिखाया जाए, उसे बालक एक निष्क्रिय श्रोता नहीं, अपितु सक्रीय प्रतिभागिता द्वारा पूर्ण ध्यान केंद्रित करते हुए सीखने का प्रयास करता है।

- **अनुबंधन का सिद्धांत**

बच्चों के भाषा विकास हेतु यह बहुत महत्वपूर्ण है कि सीखने में यदि प्रत्यक्ष किसी चीज़ का प्रयोग हो, तो शिक्षण का यह तरीका बहुत सरल और रुचिकर होगा। जैसे – दूध या पंखा को पुस्तकों की बजाय प्रत्यक्ष दिखाकर उसके बारे में सरलता से उसकी जानकारी दी जा सकती है।

- **अनुकरण का सिद्धांत**

बच्चा सामजिक अंतःक्रिया द्वारा भाषा अर्जित करता है और सीखता है। यह प्रक्रिया सरल, सहज व स्वाभाविक रूप से होती है।यदि उसके परिवार, समाज में कोई भाषा सम्बन्धी त्रुटि है, तो वह मातृभाषा के प्रभाव से बच्चे में भी आ जाती है।

- **भाषा अर्जन का सिद्धांत**

यह सिद्धांत मुख्यतः चॉम्स्की का दिया हुआ है। उनके अनुसार बच्चों में भाषा सीखने की जन्मजात क्षमता होती है। उन्होंने सार्वभौमिक व्याकरण का नियम बताते हुए बताया था कि बच्चे एक निश्चित समय में अनुकरण द्वारा भाषा नियम जानकर धीरे–धीरे सही वाक्य बनाना सीख जाते हैं और नए शब्द भी सीख जाते हैं।

- **क्रियाशीलता का सिद्धांत**

यह सिद्धांत भाषा प्रयोगों के अधिकाधिक अवसरों और सृजनात्मकता की ओर ध्यान देता है। इसके अनुसार कक्षा में परिचर्चा करना, प्रश्न पूछना आदि सहगामी क्रियाएं बच्चों को सक्रिय पठन के प्रति सजग, प्रोत्साहित और आनंदित रखती हैं। इससे भाषा शिक्षण बहुत सरल हो जाता है।

- **अभ्यास का सिद्धांत**

किसी भी चीज़ को सीखने के लिए अभ्यास सबसे महत्वपूर्ण होता है क्योंकि उसी से वह हमारे व्यवहार में आती है और निपुणता भी आती है। भाषा प्रयोग के अधिकाधिक लिखित, मौखिक या वैचारिक अवसर मिलने से बच्चों का भाषा विकास सही प्रकार से होना संभव है।

टिप्पणी

- **जीवन समन्वय (ज्ञात से अज्ञात) का सिद्धांत**

यह वैज्ञानिकों द्वारा सर्वमान्य है कि बच्चे उन विषयों में बहुत रुचि लेते हैं, जो उन्हें अपने जीवन से सम्बंधित लगती है। अतः किसी विषय को बच्चों के जीवन से जोड़कर उदाहरण द्वारा सिखाने से बच्चे उसे पूर्ण रुचि और प्रतिभागिता से सीखने का प्रयास करेंगे।

- **उद्देश्यपूर्ण शिक्षण का सिद्धांत**

यह बहुत आवश्यक है कि शिक्षण से पूर्व शिक्षक एक निश्चित उद्देश्य को लेकर आगे बढ़े। इसी से सही पाठ्य सामग्री का चयन कर बच्चों को निश्चित समय में निर्धारित ज्ञान देने का प्रयास सफल हो सकता है। उद्देश्य व्यक्ति केंद्रित और समूह केन्दित कैसे भी हो सकते हैं – जैसे बच्चों की श्रवण क्षमता का ज्ञान, काव्य पठन का कौशल आदि।

- **विविधता का सिद्धांत**

भारत एक बहुभाषिक देश है और शिक्षक को इस बहुभाषिकता को कठिनाई नहीं अपितु संसाधन के रूप में इस्तेमाल करना चाहिए। विविधता प्रतिभा, शारीरिक क्षमता, विचारों के आधार पर भी हो सकती है। शिक्षक का कर्तव्य है कि वह सभी पक्षों को ध्यान में रखते हुए सही पठन सामग्री का चयन कर एक समावेशी कक्षा का आयोजन करने में समर्थ हो, जहाँ हर प्रकार के छात्रों को भाषा सीखने के सामान अवसर मिलें।

- **अनुपात एवं क्रम का सिद्धांत**

भाषा कौशल विशेषतः चार प्रकार के होते हैं – सुनना, बोलना, पढ़ना और लिखना। सही कौशलों का सही से क्रमबद्ध एवं साथ–साथ विकास होना बहुत आवश्यक है। एक कौशल में कमी हो, तो भाषा विकास अधूरा ही माना जाएगा। भाषा शिक्षण का मूल उद्देश्य छात्रों में सभी भाषा कौशलों में निपुणता हासिल करवाना है, जिससे वे भाषा का प्रभावी और संदर्भयुक्त प्रयोग कर सकें।

- **बोलचाल का सिद्धांत**

इसके अनुसार बातचीत के माध्यम से भाषा सरलता और स्थायी रूप से सीखी जाती है, जो लम्बे समय तक याद रहती है। यह भाषा के व्यावहारिक पक्ष पर केंद्रित है। सामजिक अंतःक्रिया द्वारा भाषा प्रयोग के सही सन्दर्भ में अधिकाधिक अवसर मिलते हैं और एक समृद्ध परिवेश की उपलब्धता होती है।

- **चयन का सिद्धांत**

भाषा शिक्षण हेतु यह सिद्धांत अति महत्वपूर्ण है। कक्षा में किस प्रकार के छात्रों को कब, क्या और कैसे पढ़ना है, इसमें सही विधि, समय, पठन सामग्री और विषय का चयन बहुत महत्व रखता है। शिक्षक को हर समय मूल्यांकन करते रहना चाहिए कि कौनसी विधि सही काम कर रही है और बच्चों की आवश्यकताओं के अनुसार सही दृश्य–श्रव्य सामग्री उपलब्ध है या नहीं।

- **बाल केन्द्रितता का सिद्धांत**

शिक्षक को यह समझना होगा कि शिक्षण के केंद्र में छात्र है। उसी के शिक्षण हेतु सभी प्रयास किये जा रहे हैं। इसलिए छात्र वर्ग की रुचि, उसका मानसिक स्तर, उसकी

टिप्पणी

विशेष आवश्यकताओं, स्वभाव, विशेषताओं आदि का ज्ञान होना शिक्षण को सही दिशा प्रदान करता है। पठन सामग्री और विधि का चयन उसी आधार पर होना चाहिए।

- **शिक्षण सूत्रों का सिद्धांत**

भाषा की शिक्षा देने के लिए शिक्षक कई विधियां या सूत्र अपनाता है, जैसे – सरल से जटिल की ओर, विशेष से सामान्य की ओर, ज्ञात से अज्ञात की ओर, अंश से पूर्ण की ओर आदि। छात्रों की विविधता और आवश्यकताओं तथा चयनित विषय की गंभीरता को देखते हुए सही सूत्र का चयन बहुत महत्वपूर्ण रहता है।

- **साहचर्य(संगति) का सिद्धांत**

बच्चे सर्वप्रथम भाषा अपने परिवार और समाज अर्थात अपनी संगति से सीखते हैं। इसलिए यह बहुत आवश्यक है कि बच्चों को भाषा सीखने के लिए एक समृद्ध भाषिक परिवेश मिले, जिससे हर तरह भाषा का प्रयोग होते देख बच्चा सहज रूप से भाषा को अधिक सीखने लगेगा और सही संगति से भाषा के मानक रूप को भी सीखने में सक्षम होगा। यह संगति व्यक्ति, वस्तु (चार्ट, पुस्तक) या पर्यावरण किसी भी प्रकार की हो सकती है।

- **विभाजन का सिद्धांत**

इसके अनुसार शिक्षक को ध्यान रखना चाहिए कि चयनित पाठ को छोटे भागों में विभाजित कर बच्चों को एक–एक करके पढ़ाया जाए, जिससे बच्चे सरलता से उसे समझकर आगे बढ़ सकें। यह सिद्धांत सरल से जटिल के शिक्षण सूत्र को पोषित करता है।

- **पुनरावृत्ति का सिद्धांत**

यह अभ्यास को सबसे महत्वपूर्ण मानते हुए शिक्षक को निर्देश देता है कि पढ़े गए पाठ या विषय की सही अंतरालों पर लिखित–मौखिक परीक्षाओं या कक्षा सहगामी क्रियाओं द्वारा पुनरावृत्ति होते रहने से बच्चे का भाषा अधिगम अधिक सुदृढ़ होता है और उसके विचारों और ज्ञान में परिपक्वता भी आती है।

एक भाषा शिक्षक के रूप में आपका कर्तव्य होता है कि भाषा की शिक्षण प्रक्रिया को अधिक प्रभावी, रुचिकर बनाने हेतु तथा शिक्षार्थियों की अधिकाधिक प्रतिभागिता प्राप्त करने हेतु इन सभी सिद्धांतों को बहुत सही से प्रयोग में लाएं। ये सभी शिक्षण को सही दिशा प्रदान करने के साथ–साथ शिक्षण में आने वाली अपरिचित कठिनाइयों का हल ढूंढ़ने में भी शिक्षक के लिए बहुत सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

4.2.2 पाश्चात्य शिक्षाशास्त्रियों द्वारा प्रदत्त सिद्धांत

सीखने से हमारे व्यवहारों में परिवर्तन या परिमार्जन आता है। अतएव मानव व्यवहार की यह एक केंद्रीय और अत्यंत ही महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। हमारे दैनिक जीवन के संचार की प्रक्रिया, सामाजिक परंपराओं को सीखने, दूसरों के साथ अंतःक्रिया करने, विभिन्न प्रकार की मनोवृत्तियों के निर्माण, विश्वास लक्ष्यों को पहचानने, व्यक्तित्व के शीलगुणों को अर्जित करने और अपने वातावरण की विविधताओं का प्रत्यक्षीकरण करने आदि सभी प्रकार की योग्यताओं के विकास में सीखने की प्रक्रिया निहित रहती है। विविध

प्रकार के शिक्षण की प्रक्रिया में व्यवहार परिमार्जन संबंधी प्रक्रियाओं को समझने के लिए अन्य शिक्षण सिद्वांतों से भी परिचित होना आवश्यक है। साथ ही शिक्षण के विविध पक्षों के बारे में भी जानकारी हासिल करनी चाहिए।

टिप्पणी

पाश्चात्य शिक्षाशात्रियों ने विकास और भाषा के कार्यों की दिशा में कई सिद्धांत प्रतिपादित किए, कुछ महत्वपूर्ण सिद्धांत निम्न प्रकार से हैं–

• थोर्नडाइक के अधिगम (सीखने) के नियम

थोर्नडाइक के सीखने के नियम ने प्रयास एवं भूल के सिद्धांत का प्रतिपादन किया था। उनके इस सिद्धांत को संयोजनवाद के नाम से भी जाना जाता है। थोर्नडाइक ने चूहों और बिल्लियों पर अनेक प्रयोग करके सीखने के सिद्धांत और नियम का प्रतिपादन किया है।

थोर्नडाइक ने एक भूखी बिल्ली को एक उलझन भरे संदूक में बन्द कर दिया। उलझन भरा संदूक इस प्रकार बना था कि उसका एक ही दरवाजा था जो कि एक लीवर के दब जाने से स्वयं खुल सकता था। संदूक से बाहर ही कुछ दूरी पर भोजन सामग्री (मछली) रखी हुई थी। मछली की गन्ध ने अभिप्रेरक का कार्य करते हुए, बिल्ली को अपनी ओर आकर्षित किया। लेकिन संदूक का दरवाजा बन्द था। बिल्ली संदूक में बन्द थी। बिल्ली ने उस मछली को प्राप्त करने के लिए काफी प्रयत्न किए। कभी वह संदूक की सलाखों पर पंजा मारती, कभी मुंह से काटती। बाहर निकलने के लिए वह बार–बार उछलती। इसी उछल–कूद में संयोग से उसका पंजा लीवर पर लगने से दरवाजा खुल गया। वह बिल्ली बाहर निकल आई और उसने अपनी भोजन सामग्री प्राप्त कर ली। यही प्रयोग फिर दोहराया गया। इस बार बिल्ली ने दरवाजा खोलकर बाहर आने में कम भूलें कीं। इस प्रयास और कार्य में समय भी कम लगा। यही प्रयोग बार–बार दोहराने पर भूलें कम होती गयीं। इस प्रयोग से इन तत्वों पर प्रकाश पड़ता है– 1. अभिप्रेरक 2. लक्ष्य 3. बाधा 4. उल्टे–सीधे प्रयत्न 5. संयोगवश सफलता 6. सही प्रयत्न का चुनाव 7. स्थिरता।

उपरोक्त प्रयास और मूल सिद्धांत के आधार पर थोर्नडाइक ने सीखने के निम्नलिखित नियमों को प्रस्तुत किया है–

- **तत्परता का नियम**– इस नियम के अनुसार जब कोई मनुष्य अधिगम या सीखने के लिए तत्पर या तैयार होता है, तब वह उस कार्य को बड़ी तीव्रता से सीखता है। उसकी इस तीव्रता से सीखने से उसे भी संतुष्टि मिलती है। कार्य सीखने की अभिलाषा से बालक कार्य को बहुत आसानी से सीखने में सफल होता है। इसके विपरीत यदि किसी कार्य को बलपूर्वक सिखाया जाए और बालक इसके लिए तैयार न हो तो इससे सीखना प्रभावपूर्ण नहीं हो सकता है। कार्य को सीखने के लिए बालकों की रुचि, अभिरुचि तथा अभिप्रेरणा का होना आवश्यक है।
- **प्रभाव का नियम**– इस नियम के अनुसार जिन कार्यों को करने से व्यक्ति को संतोष मिलता है वह उन्हें बार–बार करता है और जिन कार्यों से उसे असंतोष

होता है उन्हें वह नहीं करना चाहता। थोर्नडाइक ने यह नियम चूहों पर परीक्षण करके ही बनाया। उसने चूहों को भूल–भुलैया में छोड़ दिया और उसमें भोजन रख दिया। भोजन प्राप्त करने के लिए चूहों ने प्रयत्न करना आरंभ कर दिया। ये प्रयत्न तब तक जारी रहे जब तक भोजन मिलता रहा। जब भोजन मिलना बन्द हुआ तो उन्होंने व्यर्थ प्रयत्न करने में अंसतोष का अनुभव किया और प्रयत्न करना बन्द कर दिया। दूसरे शब्दों में थोर्नडाइक का नियम दंड और पुरस्कार के महत्व को स्वीकार करता है। सीखने के बाद यदि बालकों को कोई पुरस्कार नहीं दिया जाए तो बालकों की उस कार्य करते रहने में रुचि नहीं बढ़ती है। यह पुरस्कार किसी भी रूप में हो सकता है, वस्तु रूप में या प्रशंसा रूप में। प्रभाव का नियम कक्षा में अध्यापक के लिए बहुत लाभकारी हो सकता है, विशेषकर छोटे बच्चों के लिए।

- **अभ्यास का नियम**– इस नियम को साधारण शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है। किसी प्रतिक्रिया को बार–बार दोहराने से वह प्रतिक्रिया स्थिर होती चली जाती है।

  इस प्रकार किसी कार्य को दोहराने से उसका सीखना भी स्थाई और ठीक होता है। इसके विपरीत यदि इस क्रिया को बार–बार न दोहराया जाए या उसका अभ्यास न किया जाए तो वह सीखा हुआ कार्य भी भूलना शुरू हो जाता है। इस नियम के अनुसार किसी कार्य को बार–बार करने से उसके चिह्न मस्तिष्क में सुदृढ़ होते रहते हैं। अभ्यास के नियम के निम्नलिखित दो उपनियम होते हैं–

  (अ) उपयोग का नियम– यह नियम इस बात पर बल देता है कि व्यक्ति उसी कार्य को बार–बार करेगा जिसकी वह उपोगिता समझता है। दूसरे शब्दों में जब किसी परिस्थिति तथा उत्तर या प्रतिक्रिया के बीच सुधार के योग्य एक संबंध–सा स्थापित हो जाता है तो अन्य सब बातें समान होने पर उस संबंध में शक्ति बढ़ जाती है।

  (ब) अनुपयोग का नियम– इस नियम के अधीन अन्य सब बातें मान्य रहने पर यदि क्रिया अनुपयोगी होती है, तो संबंधों के निर्धारण में वह दुर्बल हो जाती है। दूसरे शब्दों में जब किसी समय परिस्थिति और प्रतिक्रिया के बीच एक अन्य संबंध स्थापित नहीं होता तो अन्य बातें समान होने पर भी उस संबंध की शक्ति क्षीण हो जाती है।

थोर्नडाइक द्वारा बताए गए कुछ अन्य नियम

उपरोक्त नियमों के अतिरिक्त भी थोर्नडाइक ने कुछ नियम प्रयुक्त किए हैं जिनका विवरण इस प्रकार है–

1. **बहुविधि प्रतिक्रिया का नियम** (Law of Multiple Response) : इस नियम को विविध प्रतिक्रियाओं का नियम भी कहा जाता है। इस नियम के अंतर्गत किसी समस्या को हल करने के लिए कई विचार मन में आते हैं। यही बहुविधि अनुक्रियाएं विविध प्रतिक्रियाएं कहलाती हैं। व्यक्ति इन अनुक्रियाओं या प्रतिक्रियाओं

टिप्पणी

का तब तक प्रयोग करता रहता है जब तक किसी अनुक्रिया या प्रतिक्रिया से उसे पूर्ण सफलता न मिल जाए। ऐसी अनुक्रिया चयन के बाद वह शेष अनुक्रियाओं को छोड़ देता है।

2. **समानता का नियम** (Law of Analogy) : इस नियम के अनुसार मनुष्य किसी नई परिस्थिति में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए पुराने अनुभवों की सहायता लेता है। वह नई–पुरानी परिस्थितियों में समानताएं ढूंढ़ता है और समान परिस्थितियों में अपने अनुभवों को दोहराता है। वह केवल उन्हीं प्रतिक्रियाओं या अनुभवों को दोहराता है जिनमें वह सफलता प्राप्त कर चुका होता है। यदि कक्षा में अध्यापक पढ़ाए गए विषयों का संबंध दैनिक जीवन की क्रियाओं से जोड़ने का प्रयत्न करता है, उस समय यथार्थ में अध्यापक इसी नियम का प्रयोग कर रहा होता है।
3. **साहचर्य परिवर्तन का नियम** (Law of Associative Shifting) : इस नियम को अनुकूल उत्तर का नियम भी कहा जाता है। थोर्नडाइक के अनुसार, कोई भी प्रतिक्रिया किसी भी उद्दीपन से अनुबंधित की जा सकती है। थोर्नडाइक ने बिल्ली को मछली के टुकड़े के साथ साहचर्य पर खड़ा होना सिखाया। इसी प्रकार हम दैनिक जीवन में भी चुटकी या सीटी बजाकर पालतू कुत्ते को निर्देश देते हैं।
4. **रुझान या मनोवृत्ति का नियम** (Law of Mental Set & Attitudes) : इस नियम के अनुसार सीखना मनुष्य की संपूर्ण मनोवृत्ति या रुझानों पर आधारित होता है। व्यक्ति किसी कार्य को तब तक ठीक प्रकार से नहीं सीख पाता जब तक कि उसका उसके कार्य के प्रति एक स्वस्थ दृष्टिकोण अथवा रुझान विकसित न हो। यह नियम तत्परता के नियम का ही एक अंश है। कक्षा में छात्रों को अधिनियम के लिए उन्हें मानसिक और संवेगात्मक रूप से तैयार करना चाहिए।
5. **आंशिक क्रिया का नियम** (Law of Partial Activity) : यह नियम इस बात पर बल देता है कि कोई एक प्रतिक्रिया संपूर्ण स्थिति के प्रति नहीं होती है। यह केवल संपूर्ण स्थिति के कुछ पक्षों अथवा अंशों के प्रति ही होती है। अतः इस नियम के अनुसार किसी कार्य को अंशतः विभाजित करके किया जाता है तो वह शीघ्रता से सीखा जा सकता है।

सिद्धांत का शिक्षा में महत्व– शिक्षा के क्षेत्र में थोर्नडाइक के उद्दीपक अनुक्रिया के सिद्धांत के महत्व को निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है–

1. थोर्नडाइक ने उद्दीपक अनुक्रिया में संबंध स्थापित करके सीखने की प्रक्रिया का वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। उसने बताया कि जो प्राणी जितना जल्दी यह संबंध स्थापित कर लेता है वह उतनी ही जल्दी सीख जाता है।
2. थोर्नडाइक द्वारा प्रतिपादित अधिगम के नियमों तथा उपनियमों का कक्षा शिक्षण में महत्वपूर्ण स्थान है। नवीन ज्ञान प्रदान करने के लिए छात्रों को तत्पर करना, प्रोत्साहन तथा पुरस्कार द्वारा उन्हें अधिकाधिक सीखने के लिए प्रोत्साहित

टिप्पणी

करना, प्रत्येक छात्र को सीखने पर संतोष का अनुभव कराना प्रभाव के नियम पर ही आधारित है।

3. यह सिद्धांत अभ्यास की क्रिया पर आधारित है जिससे सीखा गया कार्य स्थायी होता है। यदि कोई बालक अपने किसी कार्य में असफल हो जाता है तो अध्यापक को चाहिए कि वह तब तक विद्यार्थी को प्रयास करने के लिए प्रोत्साहित करता रहे जब तक कि वह सफलता प्राप्त न कर ले। उनकी मान्यता थी कि शिक्षण प्रक्रिया में अभ्यास कार्य पर अधिक बल देना चाहिए।
4. इस सिद्धांत के अनुसार बालक को अधिगम लक्ष्य तो मालूम होता है लेकिन वहां तक पहुंचने का सही तरीका उसे मालूम नहीं होता। विभिन्न प्रयासों द्वारा वह लक्ष्य की प्राप्ति का सही तरीका ज्ञात करता है जिससे उसमें आत्मनिर्भरता और आत्मविश्वास के गुणों का विकास होता है जो बालक को भावी जीवन की समस्याओं से लड़ने के लिए तैयार करता है।
5. मनुष्य अपनी कुशलताओं का विकास इसी सिद्धांत के आधार पर करता है। यह सिद्धांत कौशल विकास में बहुत उपयोगी है। बालक कला, रेखाचित्र, संगीत, नृत्य, तैरना, घुड़सवारी आदि सीख जाते हैं।
6. यह सिद्धांत प्रयत्न तथा भूल द्वारा सीखने पर बल देता है। गणित, विज्ञान, भाषा आदि अनेक विषयों में प्रयत्न तथा भूल द्वारा छात्र सही प्रयत्नों को सीखता है। अतः अध्यापक को सही उत्तरों को बार–बार दोहराना चाहिए।
7. यह सिद्धांत 'करके सीखने' पर अधिक बल देता है।
8. इस सिद्धांत के अनुसार छात्र की मनोवृत्ति का अधिगम से गहरा संबंध है। इस दृष्टि से छात्रों को कुछ भी सिखाने से पूर्व कार्य के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण उत्पन्न करना नितांत आवश्यक है।
9. बालक समस्याओं का समाधान सुगमतापूर्वक कर सकते हैं। समस्या समाधान में बालक प्रयत्न व भूल विधि का सहारा लेते हैं। समस्या समाधान में बालक सफल प्रयत्नों की आवृत्ति करता है तथा असफल प्रयत्नों को या तो छोड़ देता है अथवा उनमें सुधार कर लेता है।
10. थोर्नडाइक के सिद्धांत के विश्लेषण से स्पष्ट है कि उन्होंने सीखने के लिए पुनर्बलन को आवश्यक माना क्योंकि सीखी गई अनुक्रिया को स्पष्ट रूप से व्यक्त करने के लिए पुनर्बलन आवश्यक होता है।

• पावलव का अनुकूलित अनुक्रिया का सिद्धांत

संबद्ध प्रतिक्रिया का प्रतिपादन रूसी शरीरशास्त्री आई.पी. पावलव ने किया था। इस सिद्धांत को संबंध प्रत्यावर्तन का सिद्धांत भी कहते हैं। इस मत के अनुसार– सीखना एक अनुकूलित अनुक्रिया है। बनार्ड के शब्दों में– 'अनुकूलित अनुक्रिया उत्तेजना की पुनरावृत्ति द्वारा व्यवहार का स्वचालन है जिसमें उत्तेजना पहले किसी विशेष अनुक्रिया

टिप्पणी

के साथ लगी रहती है और अंत में वह किसी व्यवहार का कारण बन जाती है जो पहले मात्र रूप से साथ लगी हुई थी।

यह माना जाता है कि उद्दीपक के प्रति अनुक्रिया करना मानव की प्रवृत्ति है। जब मूल उद्दीपक के साथ एक नवीन उद्दीपक से भी वही अनुक्रिया होती है जो मूल उद्दीपक से होती है तब अनुक्रिया नवीन उद्दीपन के साथ अनुकूलित हो जाती है इस प्रकार अनुक्रिया नए उद्दीपक के साथ अनुकूलित हो जाती है।

अनुकूलित अनुक्रिया सिद्धांत संबद्ध सहज क्रिया पर आधारित होता है। इस पर किसी सीमा तक सीखने की क्रिया निर्भर करती है।

अनुकूलित अनुक्रिया का कक्षा में उपयोग

अनुबंधन सिद्धांत सीखने की विभिन्न प्रक्रियाओं में अध्यापक बालक की हर तरह से सहायता करता है। अध्यापक को भी इस सिद्धांत के ज्ञान से कक्षा अध्यापन में सहायता मिलती है। इस सिद्धांत की शैक्षणिक उपादेयता को निम्नांकित बिंदुओं के माध्यम से व्यक्त कर सकते हैं–

1. **स्वभाव व आदत का निर्माण**– अनुकूलित अनुक्रिया धीरे–धीरे आदत बन जाती है। पॉवलव के अनुसार प्रशिक्षण पर आधारित विभिन्न प्रकार की आदतें शिक्षा तथा अन्य अनुशासन अनुकूलित अनुक्रिया की शृंखला के अतिरिक्त कुछ भी नहीं हैं।
2. **भाषा का विकास**– बालकों में भाषा के विकास के अधिगम हेतु अनुकूलन का सिद्धांत काफी उपयोगी सिद्ध हुआ है। शैशवावस्था में बालकों को शब्दों का विभिन्न वस्तुओं के साथ संबंध स्थापित करके सिखाया जाता है। क्रो एवं क्रो के अनुसार– यह सिद्धांत उन विषयों की शिक्षा के लिए बहुत उपयोगी है जिनमें चिंतन की आवश्यकता नहीं है।
3. **गणित शिक्षण में सहायक**– अभ्यास तथा अनुकूलन द्वारा छात्रों की गणित की समस्याओं का समाधान, गुणा–भाग आदि के शिक्षण द्वारा सरलता से किया जा सकता है।
4. **अभिवृत्ति का विकास**– बालकों के समक्ष उचित एवं आदर्श व्यवहार प्रस्तुत करके अनुकूलित अनुक्रिया द्वारा उनमें उचित अभिवृत्ति का विकास किया जा सकता है।
5. **मानसिक तथा संवेगात्मक अस्थिरता का उपचार**– अनुकूलन तथा अभ्यास द्वारा बालकों में संवेगात्मक स्थिरता विकसित की जा सकती है। मानसिक उपचार में भी इस विधि का प्रयोग किया जाता है।
6. **अनुशासन**– दण्ड एवं पुरस्कार का उचित प्रयोग करके अनुकूलित अनुक्रिया द्वारा छात्रों के व्यवहारों में सुधार किया जा सकता है। क्रो एवं क्रो के अनुसार– इस सिद्धांत के प्रयोग से बालकों में उत्तम व्यवहार एवं अनुशासन की भावना का विकास किया जा सकता है।

7. **भय का निवारण**– बालकों में व्याप्त व्यर्थ चिंता तथा भय का निवारण अनुकूलित अनुक्रिया में अस्वाभाविक उत्तेजकों की संख्या बढ़ाकर अनुकूलन में बाधा उत्पन्न करके बुरी, अनुचित, व्यर्थ की भावनाओं तथा विचारों में बाधा उत्पन्न करके किया जाता है। बालक धीरे–धीरे इन व्यर्थ की भावनाओं, डर तथा चिंता आदि से मुक्ति पा जाता है।
8. **समाजीकरण में सहायक**– इस सिद्धांत द्वारा बालकों में समाजीकरण की प्रक्रिया तथा अनुकूलन कराकर उनका समाजीकरण किया जा सकता है।

• प्रबलन सिद्धांत

'प्रबलन–सिद्धांत' का प्रतिपादन सी.एल. हल नामक अमरीकी मनोवैज्ञानिक ने 1915 में अपनी पुस्तक Principles of Behaviour में किया था। उनका यह सिद्धांत थोर्नडाइक तथा पॉवलक के सिद्धांतों पर आधारित था। यह सिद्धांत इस प्रकार है–

'प्रत्येक मनुष्य अपनी आवश्यकता की पूर्ति करने का प्रयत्न करता है। सीखने का आधार इसी आवश्यकता की पूर्ति की प्रक्रिया है। मनुष्य या पशु उसी कार्य को सीखता है, जिस कार्य के करने से उसकी किसी आवश्यकता की पूर्ति होती है।' हल ने आवश्यकता की कमी शब्द का प्रयोग आवश्यकता की पूर्ति के स्थान पर किया है। हल का कथन है–

'सीखना आवश्यकता की पूर्ति की प्रक्रिया द्वारा होता है।'

प्रबलन सिद्धांत की विशेषताएं

1. प्रबलन का सिद्धांत इस बात पर बल देता है कि कक्षा की विभिन्न क्रियाओं में बालकों की आवश्यकताओं पर भी ध्यान दिया जाए।
2. कक्षा में पढ़ाए जाने वाले तथ्यों के उद्देश्य को स्पष्ट करना, इस दृष्टि से परम आवश्यक है।
3. यह सिद्धांत शिक्षा में प्रेरणा के महत्व पर विशेष बल देता है। जी. लेस्टर एण्डरसन के शब्दों में 'ऐसा ज्ञात होता है कि इसमें (प्रबलन सिद्धांत में) प्रेरणाओं पर मुख्यतः इस कारण अधिक बल दिया जाता है क्योंकि वे प्राणी की अनिवार्य आवश्यकताओं से संबंधित हैं।
4. इस सिद्धांत की प्रमुख विशेषता यह है इसमें बालकों की क्रियाओं और आवश्यकताओं से संबंध की स्थापना पर विशेष बल दिया जाता है। यह सिद्धांत बताता है कि पाठ्यक्रम का निर्माण बालकों की विभिन्न आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर ही किया जाना चाहिए।

• सूझ या अंतर्दृष्टि का सिद्धांत

अंतर्दृष्टि या सूझ के सिद्धांत के प्रमुख समर्थक 'गेस्टाल्ट' हैं। उनके अनुसार व्यक्ति या प्राणी 'संबंध–प्रतिक्रिया तथा प्रयत्न और भूल से न सीखकर 'सूझ' द्वारा सीखते हैं।

टिप्पणी

सर्वप्रथम प्राणी अपने आस–पास की परिस्थिति को समझने का प्रयास करता है, तत्पश्चात् उसके अनुसार अपनी प्रतिक्रिया करता है। अन्य शब्दों में, 'सूझ' द्वारा सीखने का तात्पर्य परिस्थिति को पूर्णतया समझकर सीखाना है। गुड के अनुसार, 'सूझ', यथार्थ स्थिति का आकस्मिक, निश्चित और तत्कालीन ज्ञान है।'

शिक्षा में अंतर्दृष्टि के सिद्धांत का महत्व

अध्यापक को शिक्षा में अंतर्दृष्टि सिद्धांत का प्रयोग करते समय निम्नांकित बातें ध्यान में रखनी चाहिए–

1. **पूर्ण समस्या का प्रस्तुतीकरण**– अध्यापक द्वारा कुछ समस्या छात्रों के समझ समग्र रूप में प्रस्तुत की जानी चाहिए। यदि समस्या को टुकड़ों के रूप में प्रस्तुत किया जाएगा तो छात्र सूझ द्वारा समस्या का हल ढूंढ़ने में सफल नहीं होंगे। किसी भी समस्या में उस समय तक सूझ उत्पन्न नहीं होगी जब तक कि वह समग्र रूप में छात्र के समझ प्रस्तुत न की जाए।
2. **तत्परता का विकास**– छात्रों में अधिगम की प्रक्रिया उस समय तक गतिशील नहीं होगी जब तक कि छात्रों में ज्ञानात्मक एवं संवेगात्मक तत्परता नहीं होगी। बालकों को मानसिक रूप से सीखने के लिए तत्पर बनाने के लिए, अध्यापक को अनुकूल वातावरण बनाना चाहिए। बालकों को पूर्व धारणाओं से मुक्त करना चाहिए।
3. **विषय–संगठन**– विषय–वस्तु की संरचना तथा संगठन का अंतर्दृष्टि द्वारा सीखने पर अधिक प्रभाव पड़ता है। अध्यापक को विषय–वस्तु इस रूप में प्रस्तुत करनी चाहिए कि वह समस्या के समग्र रूप को स्पष्ट करें।
4. **जिज्ञासा का विकास**– बालकों को अवधान समस्या में केंद्रित करने के लिए आवश्यक है कि अध्यापक द्वारा सीखने में बालकों की जिज्ञासा को बनाए रखा जाए, बिना जिज्ञासा के सूझ का विकास संभव नहीं है।
5. **अनुभवों का प्रयोग**– सूझ द्वारा सीखने में अनुभवों का अधिक योगदान रहता है। अध्यापक को छात्रों के पूर्व अनुभवों के संगठन पर ध्यान देना चाहिए।
6. **विषय–वस्तु क्षमतानुसार**– अंतर्दृष्टि के विकास के लिए आवश्यक है कि विद्यालय का कार्य छात्र की सूझ के अनुकूल होना चाहिए। यदि छात्र की क्षमता से उच्च स्तर का विद्यालय का कार्य होगा तो अंतर्दृष्टि का विकास संभव नहीं है। बोर्ड की परीक्षाओं में अधिक संख्या में छात्रों के अनुत्तीर्ण होने का कारण या तो कार्य का अधिक कठिन होना है या पाठ्य–पुस्तकें ऐसी हैं जो सूझ का विकास नहीं करती हैं।
7. **प्रेरणा**– अंतर्दृष्टि द्वारा सीखने में भी प्रेरणा का अधिक योगदान रहता है। अंतर्दृष्टि का विकास तभी संभव है जबकि उद्देश्य छात्रों को स्पष्ट होंगे तथा छात्रों के लिए उपयोगी होंगे। उद्देश्यों का स्पष्टीकरण करके अध्यापक बालकों को प्रेरित कर सकता है।

अंतर्दृष्टि के सिद्धांत की आलोचनाएं

पूर्णाकारवाद (गैस्टालट) ने मनोविज्ञान के क्षेत्र में नवीन मान्यताओं को जन्म दिया है, परंतु फिर भी इसकी आलोचना की जाती है। इस 'वाद' की प्रमुख आलोचनाएं इस प्रकार हैं–

1. यह मनोविज्ञान तथा शिक्षा–दर्शन का सम्मिलित रूप है।
2. इसके नियमों के अनुसार प्रत्येक प्रकार के कार्य को सीखना संभव नहीं है।
3. कुछ विद्वानों का विश्वास है कि सूझ पशुओं और बालकों पर लागू नहीं होती, उनमें चिंतन का अभाव रहता है। परंतु हम इस मत से सहमत नहीं हैं, छोटे–छोटे बालक भी सूझ का प्रयोग करते हैं।
4. इसमें प्रयास और त्रुटि किसी–न–किसी मात्रा में अवश्य विद्यमान रहती है।
5. हिलगार्ड कहते हैं, 'इस 'वाद' की रोचक एवं महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह उपयोगी व्यवहार की व्याख्या करता है और जो पूर्णरूप से मानसिक अवस्थाओं एवं यांत्रिकता की अपेक्षा करता है।'

• कार्यात्मक प्रतिबद्धता का सिद्धांत

स्किनर द्वारा प्रतिपादित अधिगम के सिद्धांत को कार्यात्मक अनुबंधन कहते हैं। प्रोफेसर स्किनर हावर्ड विश्वविद्यालय में मनोविज्ञान के प्रोफेसर थे। उन्होंने व्यवहार का व्यवस्थित एवं वस्तुनिष्ठ अध्ययन करने के लिए एक यंत्र विकसित किया तथा अवलोकन की विधि का चयन किया। स्किनर एक व्यावहारिक मनोवैज्ञानिक थे जिन्होंने चूहे तथा कबूतरों की विभिन्न सहज क्रियाओं पर अनेक प्रयोग किए। अंत में उन्होंने खाने की क्रिया को अध्ययन का विषय माना क्योंकि यही सबसे अधिक साधारण क्रिया थी और थोड़े समय में इसके संबंध में अधिक तथ्य एकत्रित किए जा सकते थे। व्यवहार के अध्ययन की यह विधि बाद में इतनी लोकप्रिय हो गई कि अनेक अमेरिकन मनोवैज्ञानिक उसका प्रयोग करने लगे।

स्किनर ने पुनर्बलन के आधार पर भाषा के विकास को समझाया है। स्किनर का विचार है कि अन्य व्यवहार प्रकार्यों की भांति भाषा का विकास भी 'ऑपरेन्ट अनुबंधन' पर निर्भर रहता है। इस सिद्धांत के अनुसार बालक द्वारा भाषा को अर्जित करना ध्वनि और ध्वनि संयोजन के चयनीकृत सुदृढ़ीकरण (selective reinforcement) पर निर्भर करता है। स्किनर का विचार है कि बच्चे स्वतः अनायाम या अनुकरण के आधार पर बोलते हैं। बालक के चारों ओर के वातावरण में उपस्थिति उसके निकट संबंधी व्यक्ति बालक द्वारा बोली गई कुछ ध्वनियों का पुनर्बलन (पुरस्कृत) करते हैं। उदाहरणार्थ–बच्चा जब कुछ ध्वनियां 'बाबा', मामा, 'पापा' या 'दादा' आदि बोलना प्रारंभ करता है, तो बालक के परिवार के व्यक्ति बालक द्वारा बोली गई इन ध्वनियों को अपने अधिक ध्यान या प्रंशसा के द्वारा पुरस्कृत या पुनर्बलन करते हैं। फलस्वरूप बालक इन ध्वनियों को जल्दी सीख लेता है।

उद्दीपन अनुक्रिया के बीच स्थापित साहचर्य के आधार पर भी बालक शब्दों का अधिगम करता है। उदाहरणार्थ– यदि बच्चे के सामने 'बल्ला' रखकर या दिखाकर

बार–बार 'बल्ला' शब्द बोला जाए तो वह 'बल्ला' वस्तु (उद्दीपक) और उसके अर्थ दोनों से इतना परिचित हो सकता है कि जब बच्चे के सामने 'बल्ला' शब्द बोला जाएगा तो उसके मस्तिष्क पर 'बल्ले' की प्रतिमा अंकित हो जा जाएगी। बच्चा 'बल्ला' शब्द के अर्थ को समझ जाएगा। उद्दीपक ('बल्ला' वस्तु) और अनुक्रिया ('बल्ला' शब्द) के बीच स्थापित साहचर्य की यह प्रणाली अनुबंधन कहलाती है।

- **चोमस्की की यूनिवर्सल ग्रामर थ्योरी (1959)**

यह एक मानसिक दृष्टिकोण है जो सहजवाद और संज्ञानात्मक सिद्धांत से संबन्धित है। साथ ही चोमस्की का विचार है कि सभी बच्चे भाषा अधिग्रहण युक्ति (Language Acquisition Device - LAD) के साथ पैदा होते है। भाषा सीखना बच्चों के जैविक तंत्र पर निर्भर करता है। चोमस्की के अनुसार बालक का शब्दों या भाषा का सीखना अनुकरण और पुनर्बलन पर आधारित अवश्य है, परंतु अनुकरण और पुनर्बलन दोनों ही बालक द्वारा शब्दों को सीखने की प्रक्रिया को भली–भांति स्पष्ट नहीं करते हैं। चोमस्की ने अपने सिद्धांत को निम्न मॉडल चित्र के द्वारा समझाया है–

बच्चे सहज रूप से भाषा सीखने के लिए जन्म से तैयार रहते हैं। चोमस्की के अनुसार हर बालक में एक Built- in-system होता है जिसे हम LAD (Language Acquision Device) कहते है। इसकी संरचना इस प्रकार होती है कि बालक भाषा की प्रोसेसिंग कर सकता है तथा वह वाणी को समझ सकता है और उसका पुनरोत्पादन कर सकता है। यह सिद्धांत प्रथम भाषा के लिए तो उपयुक्त है परंतु देसी भाषा के लिए यह लागू नहीं किया जा सकता है। बच्चों और वयस्कों में सीखने के तरीके भिन्न हैं। यह सिद्धांत सामाजिक कारक और व्यक्तिगत भिन्नताओं पर विचार नहीं करता जो भाषा अधिगम को प्रभावित करते हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

1. इनमें से क्या शिक्षण हेतु अत्यावश्यक तत्व नहीं है?
   (क) शिक्षक (ख) पर्यटक
   (ग) शिक्षार्थी (घ) पठन सामग्री
2. तत्परता, प्रभाव एवं अभ्यास संबंधी अधिगम नियम किसके सिद्धांत के अंतर्गत आते हैं?
   (क) थोर्नडाइक (ख) पावलव
   (ग) गेस्टाल्ट (घ) स्किनर

4.3 नवीन शिक्षाशास्त्रीय सिद्धांतों का अध्ययन एवं विश्लेषण

टिप्पणी

प्राचीन युग में भारतीय शिक्षण–पद्धति में मनोरंजकता और रोचकता की ओर पर्याप्त ध्यान दिया जाता था जैसा कि अथर्ववेद के अधोलिखित कथन से स्पष्ट हो जाएगा–

'वसोष्पते नि रमय मघ्येवास्तु मयि श्रुतम'

इसकी व्याख्या इस प्रकार की गई है–

सातवलेकर– गुरु शिष्य को (नि रमय) रमण करें, अर्थात ऐसा पढ़ाए कि वह विषय आनंद के साथ पढ़ता जाए। इस शब्द के द्वारा वेद ने पढ़ाई की 'मनोरंजक पद्धति' प्रकट की है'

विदेह–वाचस्पति की शिक्षा–पद्धति तथा उपदेश शैली सुरमणीय और सुरोचक होनी चाहिए। प्रत्येक विषय हास्यप्रियता और विनोद के साथ पढ़ाया, समझाया और लिखाया जाए। रमणीयता के साथ सीखने–सिखाने में पूर्ण मनोयोग होता है। आचार्य प्रत्येक विषय को जितने रमणीय, रोचक ढंग से प्रस्तुत करेगा, विद्यार्थी तथा श्रोता उतनी ही तन्मयता के साथ श्रवण, मनन और अभ्यास करेंगे।

वर्तमान युग को शिक्षा की क्रांति का युग कहा जा सकता है। आज शिक्षण से संबंधित प्रायः प्रचलित पुरानी धारणाओं मे निरंतर बदलाव आ रहा है। भारतीय विद्यालयों में वैज्ञानिक तथा मनोवैज्ञानिक खोजों के परिणामस्वरूप शिक्षा के क्षेत्र में अनेक उथल–पुथल देखने को मिल रही है। आज शिक्षा को सुधारने हेतु शिक्षा की पद्धतियों में अनेक नवीन परिवर्तन किए जा रहे हैं। यद्यपि शिक्षण में प्रयुक्त होने वाली ये विभिन्न पद्धतियां एक–दूसरे से भिन्न हैं परंतु इन सबका शिक्षण में सुधारात्मक प्रयोग किया जा रहा है।

इन पद्धतियों के आधार पर शिक्षा को एक नवीन रूप देने का प्रयास किया जा रहा है ताकि भारतीय शिक्षा का स्तर ऊंचा उठाया जा सके। आज प्रायः देश के सभी विद्यालयों में इन शिक्षण पद्धतियों का प्रयोग किया जा रहा है।

ये पद्धतियां शिक्षा के ऐसे नवीन प्रतिमानों को विद्यार्थियों के सम्मुख उपस्थित करती हैं जिनके द्वारा विद्यार्थियों को शिक्षा में रुचि जाग्रत होती है। इन पद्धतियों का यह उद्देश्य होता है कि बालकों को अधिक–से–अधिक नवीन प्रमाणों पर शिक्षा प्रदान की जाए, जिससे कि वे शिक्षा को बोझ न समझें। प्राचीन काल में प्रचलित शिक्षा से संबंधित अनेक रूढ़ियों को इन पद्धतियों के द्वारा नष्ट किया गया है। इस प्रकार इन नवीन पद्धतियों के परिणामस्वरूप हमारी शिक्षा को एक नवीन स्वरूप मिला है।

आधुनिक युग में रूसो, पेस्तालॉजी, फ्रोबेल, रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने इस बात का अनुमोदन किया है कि– शिक्षा बालकों की रुचि के अनुसार दी जाए।

4.3.1 अवलोकन

अवलोकन पद्धति का प्रयोग अति प्राचीन काल से होने के कारण मोजर ने इसे वैज्ञानिक शोध की शास्त्रीय पद्धति कहा है। जहोडा एवं कुक ने लिखा है– "अवलोकन केवल दैनिक जीवन की ही अत्यधिक व्यापक क्रिया मात्र नहीं है, यह वैज्ञानिक जाँच का भी एक प्राथमिक यंत्र है।"

अवलोकन से आशय है–आँखों से देखना। इस प्रकार अवलोकन वह प्रणाली है जहाँ अवलोकनकर्ता स्वंय घटना स्थल पर जाकर अपनी आँखों से उन घटनाओं को देखता है और जानकारी प्राप्त करता हैं।

सी.ए.मोसर के शब्दों में, "अवलोकन को स्पष्ट रूप से वैज्ञानिक अन्वेषण की एक शास्त्रीय विधि कह कहते हैं।"

मोजर के शब्दों में, "अवलोकन को सुन्दर ढंग के वैज्ञानिक जाँच–पड़ताल की पद्धति कहा जा सकता है। ठोस अर्थों में अवलोकन में कानों तथा वाणी की अपेक्षा आँखों का प्रयोग स्वतंत्र है।"

कुर्ट लेविस के अनुसार, "सभी प्रकार के अवलोकन, अन्ततः विशेष घटनाओं के विशेष समूहों में वर्गीकृत होते हैं। वैज्ञानिक विश्वसनीयता सही प्रत्यक्षीकरण और वर्गीकरण पर आधारित है।"

अमूमन कक्षा–शिक्षण में छात्रों का सुनने, बोलने तथा कुछ लिखने की क्रियाओं का अवसर मिलता परंतु छात्रों को स्वयं पढ़ने का अवसर बहुत कम मिलता है। जबकि छात्रों को अपने ढंग से बोध करने के लिए स्वतः पढ़ने या अध्ययन का अवसर मिलना चाहिए। शिक्षण की व्यवस्था को प्रभावशाली बनाने के लिए छात्रों की व्यक्तिगत विभिन्नताओं तथा पठन कौशलों के विकास का ध्यान रखना नितान्त आवश्यक है। इस दिशा में अवलोकन पद्धति सहायक सिद्ध होती है।

शिक्षण–व्यवस्था में हर्बाट के उपागम का प्रयोग अधिक किया जाता है जिसमें शिक्षण स्मृति स्तर तक ही हो पाता है। इसलिये मौरीसन ने बौधगम्य स्तर की शिक्षण–व्यवस्था के प्रारूप का प्रतिपादन किया। मौरीसन ने शिक्षा को विचार केन्द्रित माना तथा पाठ्य–वस्तु के स्वामित्व को महत्व दिया। इन्होंने अपने शिक्षण प्रतिमान में परिपाक (Assimilation) तथा व्यवस्था को भी महत्व दिया है। इसके लिए इन्होंने अवलोकन अध्ययन प्रविधि का प्रयोग किया।

अतः पाठ्य–वस्तु के स्वामित्व के लिये अवलोकन प्रविधि का विकास किया गया। मौरीसन के अवलोकन सिद्धांत का समर्थन डेजी मारविल जॉन ने भी किया तथा छात्रों के अध्ययन की आदतों के विकास के लिए इसे आवश्यक बताया। इन्होंने इस प्रकार के अध्ययन में छात्रों की आवश्यकताओं, विविध प्रकार की शिक्षण सामग्री के प्रयोग तथा पाठ्य पुस्तक के प्रयोग का सुझाव दिए।

मौरीसन ने स्थायी परिवर्तन तथा वास्तविक अधिगम को महत्व दिया है।

अवलोकन सिद्धांत की मुख्य बातें–

- यह छात्रों की व्यक्तिगत भिन्नता के मनोवैज्ञानिक सिद्धांत पर आधारित है।
- छात्र अपनी स्वतः कियाओं तथा अध्ययन से अधिक सीखते है क्योंकि उन्हें प्रत्यक्षीकरण का अवसर मिलता है।
- शिक्षण में छात्रों की आवश्यकताओं तथा स्तर को ध्यान में रखकर अध्ययन–व्यवस्था की जाती है।
- शिक्षण में विविध प्रकार की सहायक सामग्री तथा पाठ्य–वस्तु के अध्ययन को महत्व दिया जाता है।
- बोध स्तर के शिक्षण में अवलोकन सिद्धांत से बौद्धिक व्यवहारों के विकास के अधिक अवसर प्रदान किये जाते है। यह छात्रों के सामान्यीकरण तथा समस्याओं के समाधान के लिये क्षमताओं का विकास करता है।
- इसमें बौद्धिक, व्यवहारों को प्रोत्साहित किया जाता है। छात्र एवं शिक्षक दोनों ही कियाशील रहते है।

अवलोकन आधारित अध्ययन के प्रतिमान

इसको मौरीसन का शिक्षण प्रतिमान कहा जाता है क्योंकि इस प्रतिमान के जनक मौरीसन हैं।

इस प्रतिमान के प्रारूप को मूलतः निम्नांकित पक्षों में बांटा गया है–

उद्देश्य

इस प्रतिमान का उद्देश्य प्रत्यय का स्वामित्व प्राप्त करना है। इसमें शिक्षण की क्रियाओं द्वारा तथ्यों के रहने पर ही बल नहीं दिया जाता है अपितु पाठ्य–वस्तु के स्वामित्व पर अधिक बल दिया जाता है। अर्थात् पाठ्य–वस्तु को रटने से अधिक समझने पर बल दिया जाता है। छात्रों के व्यक्तित्व के विकास को भी ध्यान में रखा जाता है।

संरचना

मौरीसन ने शिक्षण अवस्था को पाँच सोपानों में विभाजित किया है, जो अवलोकन आधारित शिक्षण प्रतिमान की संरचना से संबन्धित हैं। इन सोपानों का अनुसरण करके बोध–स्तर के लिए शिक्षण तथा अधिगम की परिस्थितियाँ उत्पन्न की जा सकती हैं।

संरचना के पाँच सोपान हैं– अन्वेषण, प्रस्तुतीकरण, परिपाक, व्यवस्था और वर्णन।

अन्वेषण में तीन क्रियाएं होती हैं–

1. पूर्व ज्ञान का पता लगाने के लिए परीक्षण किया जाता है या प्रश्न पूछे जाते है।
2. शिक्षक पाठ्य–वस्तु का विश्लेषण करके उसके अवयवों को कमबद्ध रूप में तर्क–पूर्ण ढंग से व्यवस्थित करता है। यह ध्यान रखा जाता है कि पाठ्य–वस्तु मनोवैज्ञानिक दृष्टि से वैध होनी चाहिये।
3. शिक्षक द्वारा यह निश्चित किया जाता है कि नवीन पाठ्य–वस्तु की इकाइयों को किस प्रकार प्रस्तुत किया जाए।

टिप्पणी

पाठ्य–वस्तु के प्रस्तुतीकरण में शिक्षक अधिक क्रियाशील रहता है और उसे निम्नलिखित क्रियाएँ करनी पड़ती हैं–

- शिक्षक को नवीन पाठ्य–वस्तु को छोटी–छोटी इकाइयों में प्रस्तुत करना पड़ता है। शिक्षक यह प्रयास करता है कि पाठ्य–वस्तु की इकाइयों में क्रम बना रहे और उसका कक्षा के छात्रों से संबंध हो सके।
- प्रस्तुतीकरण के साथ–साथ शिक्षक छात्रों की समस्याओं का निदान भी करते रहते हैं कि नवीन पाठ्य–वस्तु का उन्हें बोध हुआ है अथवा नहीं, कक्षा में कितने छात्र पाठ्य–वस्तु को नहीं समझ पाए।
- निदान के आधार पर शिक्षक तत्काल यह निर्णय लेता है कि पाठ्य–वस्तु की पुनरावृत्ति तब तक की जानी चाहिए जब तक अधिकांश छात्र नवीन–पाठ्य वस्तु को पूर्णरूप से समझ न लें। नीवन पाठ्य–वस्तु की पुनरावृत्ति कक्षा में तीन बार तक की जा सकती है।
- परिपाक में जब छात्र प्रस्तुतीकरण की परीक्षा पास कर ले तब उन्हें अवलोकन की ओर अग्रसर किया जाता है।

इसकी विशेषताएँ इस प्रकार हैं–

- अवलोकन का लक्ष्य पाठ्यवस्तु की गहनता पर बल देना है। इसके लिये अवलोकन अध्ययन सिद्धांत प्रयुक्त किया जाता है।
- अवलोकन के समय छात्रों की व्यक्तिगत कियाओं को अधिक अवसर दिया जाता है। प्रत्येक छात्र अपनी आवश्यकता अनुसार अध्ययन करता है। शिक्षक उनका अवलोकन करता है।
- परिपाक के समय छात्रों को पुस्तकालय या भाषा प्रयोगशाला आदि में स्वयं अधिक कार्य करना होता है। परिपाक के लिए गृहकार्य दिए जाते हैं। शिक्षक इन कार्यों में निर्देशन देता है।
- परिपाक का कालांश प्रमुख रूप से अवलोक–अध्ययन का होता है। छात्र और शिक्षक दोनों ही अधिक क्रियाशील रहते हैं। शिक्षक का मुख्य कार्य छात्रों को निर्देशन देना और उनकी कियाओं का अवलोकन करना है।
- परिपाक का मौलिक उद्देश्य छात्रों को सामान्यीकरण के लिये अवसर देना है जिससे वे विषय पर अधिकार प्राप्त कर सकें।

अवलोकन सिद्धांत का स्वरूप

इस सिद्धांत में निम्नलिखित स्वरूपगत बातों को ध्यान में रखा जाता है–

1. इसमें छात्रों की व्यक्तिगत आवश्यकताओं को ध्यान में रखा जाता है।
2. इसमें विविध प्रकार की अध्ययन सामग्री जैसे मानचित्र, चार्ट, माडल आदि के प्रयोग को ध्यान में रखा जाता है।
3. अध्ययन सामग्री के विविध स्तरों पर प्रयोग को ध्यान में रखते है।
4. पाठ्य–वस्तु को प्रभावशाली ढंग से प्रयुक्त करने का ध्यान रखा जाता है।

5. अवलोकन में छात्रों को उनकी योग्यताओं के अनुसार उन्हें तीन समूह उच्च, सामान्य, निम्न स्तरों में बाँट लिया जाता है। उनकी योग्यताओं के अनुसार अध्ययन की सामग्री के उपयोग का सुझाव दिया जाता है तथा उसी अनुसार उन्हें गृहकार्य या पुस्तकालय कार्य दिया जाता है।
6. अवलोकन अध्ययन के लिए अध्ययन की सामग्री की व्यवस्था समुचित रूप से की जाती है।
7. छात्रों की पूर्व योग्यताओं को भी ध्यान में रखा जाता है।
8. अवलोकन सिद्धांत के अंतर्गत अध्ययन में कालांश को निर्धारित कर लिया जाता है।

अवलोकन सिद्धांत की विशेषताएं

1. अवलोकन अध्ययन छात्रों की पाठ्य–वस्तु गहनता का विकास करता है।
2. अवलोकन अध्ययन के समय छात्रों की व्यक्तिगत कियाओं को अधिक प्रधानता दी जाती है। इस प्रकार अध्ययन व्यवस्था में प्रत्येक छात्र को उसकी आवश्यकताओं के अनुसार अवसर दिया जाता है।
3. इस अध्ययन कालांश में छात्रों को पुस्तकालय, प्रयोगशाला तथा क्षेत्र में अधिक कार्य करने का अवसर दिया जाता है। इसमें छात्रों को गृह–कार्य भी दिये जाते हैं।
4. अवलोकन अध्ययन में शिक्षक तथा छात्रों को अधिक क्रियाशील रहना होता है। शिक्षण की मुख्य भूमिका छात्रों की सहायता करना तथा उन्हें अध्ययन के लिये निर्देशन देना होता है। शिक्षक छात्रों की क्रियाओं का अवलोकन करता है कि वे अपनी–अपनी कियायें समुचित ढंग से कर रहे है।
5. अवलोकन सिद्धांत का मूल उद्देश्य अनेक सम्बन्धों के आधार पर सामान्यीकरण कराना होता है ताकि छात्र पाठ्य–वस्तु को गहनता से समझ सके।
6. अवलोकन सिद्धांत का अंतिम लक्ष्य पाठ्य–वस्तु का स्वामित्व करना होता है। अर्थात् छात्र में इतनी क्षमता उत्पन्न हो जानी चाहिए कि वह पाठ्य–वस्तु को अपने शब्दों में प्रस्तुत कर सके। लिखित तथा मौखिक रूप से यानी पाठय–वस्तु पर छात्र का पूर्ण अधिकार हो इसे ही स्वामित्व कहा गया है। अगर छात्र इस परीक्षा में पास नहीं हो पाते या इस स्तर तक नहीं पहुंच पाते तो शिक्षक उन्हें पुनः अध्ययन का अवसर देते हैं और इस बार शिक्षक अधिक सतर्कता बरतते हैं।

अवलोकन की सीमाएं

1. अवलोकन सिद्धांत में छात्रों के मानवी व्यवहारों के विकास पर ध्यान नहीं दिया जाता। पाठ्य–वस्तु पर अधिकार को ही विशेष महत्व दिया जाता है।
2. इस प्रकार की शिक्षण व्यवस्था में भावात्मक तथा क्रियात्मक पक्षों के विकास को कम महत्व दिया जाता है। छात्रों के ज्ञानात्मक पक्ष का ही विकास किया जाता है। भावात्मक पक्ष का विकास भी महत्वपूर्ण होता है।

टिप्पणी

3. इस प्रकार की अध्ययन व्यवस्था का प्रयोग उच्च कक्षाओं के लिये अधिक उपयोगी है परंतु प्राथमिक और माध्यमिक कक्षाओं के छात्रों के अध्ययन में उपयोगी नहीं है।
4. इस शिक्षण व्यवस्था में अधिकांश छात्र शिक्षक के निर्देशन पर ही आश्रित रहते हैं। प्रत्येक समस्या का समाधान शिक्षक से पूछते हैं। स्वयं निर्णय नहीं लेते हैं।
5. इस प्रकार की अध्ययन व्यवस्था में शिक्षक को अधिक क्रियाशील रहना पड़ता है और अधिक समय का अपव्यय होता है। शिक्षक को अधिक परिश्रम करना पड़ता है।
6. विद्यालयों में पाठ्य–वस्तु संबंधी सामग्री पुस्तकें तथा प्रयोगशालाओं में इतनी सुविधाएं उपलब्ध नहीं होतीं कि सभी छात्रों को व्यक्तिगत ढंग से कार्य करने की सुविधाएं तथा अवसर प्रदान किये जा सकें।

अवलोकन सिद्धांत संदर्भित सुझाव एवं व्यावहारिक परामर्श

इस स्तर के शिक्षण को प्रभावशाली बनाने हेतु निम्नलिखित सुझाव एवं व्यावहारिक परामर्श दिए जा सकते हैं–

1. स्मृति स्तर शिक्षण की परीक्षा में छात्र के सफल होने पर ही अवलोकन स्तर के शिक्षण में प्रवेश दिया जाए।
2. अवलोकन स्तर के सोपानों का अनुसरण समुचित ढंग से किया जाए।
3. अवलोकन (बोध स्तर) के विभिन्न सोपानों की परीक्षाओं में सफल होने पर अगले सोपान में प्रविष्ट किया जाए। उदाहरण के लिये प्रस्तुतीकरण की परीक्षा में सफल होने पर परिपाक कालांश में प्रवेश कराने की अनुमति दी जाए।
4. शिक्षक को पाठ्य–वस्तु में तल्लीन होने के साथ–साथ छात्रों को मनोवैज्ञानिक ढंग से अभिप्रेरणा भी देनी चाहिये। शिक्षक को कक्षा के आकांक्षा स्तर को उठाने का प्रयास करना चाहिए अर्थात् छात्रों में पाठ्य–वस्तु को सीखने की चाह उत्पन्न करनी चाहिए।
5. शिक्षक को शिक्षण व्यवस्था की समस्याओं को ध्यान में रखकर उनके लिये समाधान भी ज्ञात करने चाहिये।

व्यावहारिक परामर्श

1. अवलोकन अध्ययन की व्यवस्था करने के पूर्व यह देख लेना चाहिये कि छात्रों के लिए प्रकरण अलग–अलग उपलब्ध हो सकें।
2. अवलोकन अध्ययन के लिये शिक्षक को ऐसे प्रकरण को देना चाहिये जिसके लिये पुस्तकालय में पर्याप्त साहित्य उपलब्ध हो।
3. अवलोकन अध्ययन को प्रभावशाली ढंग से प्रयुक्त करने के लिए प्रकरण की रूपरेखा अथवा समीक्षा तथा सम्बन्धित पाठ्य–पुस्तकों की सूची भी देनी चाहिये।

टिप्पणी

4. शिक्षक को उन्हीं प्रकरणों की समीक्षा करनी चाहिए जिनके संबंध में छात्रों का पूर्वज्ञान हो। समीक्षा का समय निश्चित होना चाहिए। समीक्षा के समय छात्रों की क्रियाओं का निरीक्षण करना भी आवश्यक होता है।
5. अवलोकन अध्ययन के समय शिक्षक को कम से कम निर्देश देने चाहिये तथा छात्रों को स्वयं समस्या का समाधान करने का अवसर देना चाहिये जिससे उनमें स्वयं निर्णय लेने की क्षमता उत्पन्न हो सके तथा उनकी रचनात्मक शक्ति बढ़ सके।
6. अवलोकन का कालांश निश्चित होना चाहिये। छात्रों से अपने अध्ययन की समीक्षा तथा आलेख तैयार करने के लिये कहना चाहिये।

4.3.2 अन्वेषण

अन्वेषण को खोज़ (उर्दू), रिसर्च (अंग्रेजी), और अनुसंधान (हिंदी) आदि भी कहा जाता है।

व्यापक अर्थ में अनुसन्धान किसी भी क्षेत्र में 'ज्ञान की खोज करना' या 'विधिवत गवेषणा' करना होता है।

वैज्ञानिक अनुसन्धान में वैज्ञानिक विधि का सहारा लेते हुए जिज्ञासा का समाधान करने की कोशिश की जाती है। नवीन वस्तुओं की खोज और पुरानी वस्तुओं एवं सिद्धान्तों का पुनः परीक्षण करना, जिससे कि नए तथ्य प्राप्त हो सकें, उसे अन्वेषण (शोध) कहते हैं।

इस उपागम के जनक जे.एस.ब्रूनर है। इस के संबंध में अभी भी यह भ्रम है कि यह शिक्षण की विधि है या अधिगम की एक विधि है अथवा अधिगम का एक स्वरूप है। कुछ लोगों का मत है कि यह समस्या समाधान की एक प्रविधि है परंतु अधोलिखित अर्थ से अधिकांश व्यक्ति सहमत हैं–

"अन्वेषण उपागम से तात्पर्य उन शिक्षण–परिस्थितियों से होता है जिनकी सहायता से अनुदेशन के तथ्यात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति की जाती है तथा शिक्षक इसमें कोई निर्देश नहीं देता।"

अन्वेषण की विशेषताएँ :

1 शिक्षक उच्च अधिनियम तथा समस्या समाधान के लिए परिस्थिति उत्पन्न करता है। इसे व्याख्यात्मक शिक्षण कहते है।

2. शिक्षक समुचित उच्च अधिनियम को बताता है परंतु समस्या का समाधान नहीं प्रस्तुत करता है। छात्रों को समाधान स्वयं ढूंढ़ना पड़ता है।

3 किन्हीं परिस्थितियों में अथवा अवस्थाओं पर शिक्षक समस्या का समाधान प्रस्तुत कर भी देता है परंतु अधिनियमों का उल्लेख नहीं करता है। छात्रों को उन अधिनियमों की पहचान करनी पड़ती है।

4. शिक्षक न तो समस्या का समाधान ही देता है और न ही उपयोगी नियमों का उल्लेख करता है अपितु छात्रों को स्वयं ही समस्या का समाधान ढूंढ़ना पड़ता

है और निहित अधिनियमों को भी ज्ञात करना पड़ता है। इसे बिना शिक्षक निर्देशन की खोज कहते हैं।

5. खोज के लिए बिना निर्देशन की परिस्थिति उत्पन्न की जाती है। इसके लिए पूछताछ प्रशिक्षण प्रविधि का उपयोग भी किया जाता है।

सकमन तथा तबा ने इस विधि के स्वरूप तथा विशेषताओं का वर्णन इस प्रकार किया है–

1. छात्रों को शैक्षिक पर्यटन में ऐतिहासिक अवलोकन के बाद उनसे वर्णन कराया जाता है।

2. किसी युग के वर्णन अथवा शासन का वर्णन करके छात्रों से उसकी सफलता अथवा असफलता के कारणों को ज्ञात कराया जाता है। भाषा शिक्षण में समालोचना या आलोचना या समीक्षा लेखन इसी प्रकार से होता है।

अन्वेषण प्रविधि के तीन पक्ष

1. प्रथम समस्या का प्रस्तुतीकरण किया जाता है।

2. द्वितीय अवस्था में इसका अभ्यास कराया जाता है।

3. तृतीय अवस्था पर प्रशिक्षण दिया जाता है। इस स्तर पर शिक्षक छात्रों के कार्यों की आलोचना करता है और पुनर्बलन भी देता है।

खोज का उपयोग शिक्षण तथा अनुदेशन के अतिरिक्त शोधकार्यों में भी किया जाता है। जिसमें व्याख्यात्मक विधि अधिक उपयोगी तथा प्रभावशाली होती है। इस विधि में शिक्षक समस्या समाधान तथा निहित उच्च अधिनियमों की व्यवस्था करता है।

इस विधि में छात्रों को पर्याप्त अथवा पूर्ण निर्देशन दिया जाता है। उच्च स्तरीय खोज उपागम अधिगम के लिये निर्देशन रहित शिक्षण परिस्थिति अनुदेशन परिस्थिति से अधिक प्रभावशाली होती है।

अनुदेशात्मक निर्देशन का 'खोज अधिगम' के विभिन्न स्वरूपों पर अधिक गहन प्रभाव पड़ता है।

4.3.3 प्रोजेक्ट कार्य

परियोजना–पद्धति का मूलाधार डीवी की विचारधारा है। पद्धति के रूप में इसके निर्माण तथा विकास का श्रेय श्री किलपैट्रिक को दिया जा सकता है। भिन्न–भिन्न विद्वानों ने इस पद्धति की परिभाषा भिन्न–भिन्न प्रकार से की है–

1. किलपैट्रिक के अनुसार– 'प्रोजेक्ट, एक सोद्देश्य क्रिया है, जिसे मन लगाकर सामाजिक वातावरण में किया जाए।'
2. स्टीवेंसन के मतानुसार– 'प्रोजेक्ट, एक समस्यामूलक कार्य है, जिसे स्वाभाविक परिस्थितियों में पूरा किया जाता है।

3. वैलर्ड के विचारानुसार– 'प्रोजेक्ट यथार्थ जीवन का ही एक भाग है, जो विद्यालय को प्रदान किया गया है।'

परियोजना–पद्धति में नीचे लिखे पांच सोपान पाए जाते हैं–

टिप्पणी

1. परिस्थिति का निर्माण करना अथवा समस्या की उत्पत्ति।
2. समस्या के संबंध में विचार–विमर्श तथा समस्या का चुनाव।
3. समस्या को पूरा करने की योजना बनाना।
4. समस्या–पूर्ति तथा तद्जनित ज्ञान की प्राप्ति।
5. समस्या–समाधान के पश्चात् मूल्यांकन अथवा निर्णयात्मक निरीक्षण।

परियोजना–पद्धति में किसी प्रकार के विधिवत् शिक्षण का आयोजन नहीं किया जाता है।

भाषा की शिक्षा– भाषा की शिक्षा देते समय भी अध्यापक पहले ऐसी परिस्थितियों का निर्माण करेगा, जिनके आधार पर बालक कोई समस्या चुनेंगे। समस्या का चुनाव हो चुकने पर विद्यार्थियों को कार्य–भार बांट दिया जाएगा और फिर छात्र समस्या–पूर्ति में संलग्न हो जाएंगे। यह बात एक उदाहरण से स्पष्ट हो जाएगी।

मान लीजिए, विद्यार्थियों ने यह निश्चय किया कि पाठशाला में 'विजयादशमी' का उत्सव मनाना है। समारोह को मनाने के लिए सबसे पहले छात्र संबद्ध साहित्य–पुस्तक, पत्रिका आदि का अध्ययन करेंगे। इस अध्ययन से उन्हें विदित हो जाएगा कि समारोह के आयोजन में उन्हें क्या करना चाहिए। कौन–कौन से कार्यक्रम रखे जाएं, सभापति के लिए किससे मिला जाए और बाहर से कौन–कौन से गणमान्य व्यक्ति बुलाए जाएं। इस समस्या के द्वारा भाषा की शिक्षा इस प्रकार होगी–

लिखित कार्य– निमंत्रण–पत्र लिखना, उत्सव में पढ़ने के लिए भाषण तैयार करना, विजयादशमी पर निबंध लिखना।

मौखिक कार्य– सभा में भाषण पढ़ना, रामायण, रामचरितमानस तथा साकेत पाठ, भगवान राम के संबंध में कविता पढ़ना। भगवान राम से संबंधित भजन गाना। धन्यवाद ज्ञापन के शब्दों और धन्यवाद देने का उचित प्रशिक्षण।

इस प्रकार हम देखते हैं कि परियोजना–पद्धति के द्वारा भी बालकों को भाषा की शिक्षा दी जा सकती है। विद्यार्थियों की संख्या, उनकी योग्यता तथा उनकी क्षमता के अनुसार योजना छोटी और बड़ी हो सकती है।

प्रोजेक्ट या परियोजना पद्धति के आधारभूत सिद्धांत

प्रोजेक्ट विधि के आधारभूत सिद्धांत निम्नलिखित हैं–

क. **व्यक्तिगत भिन्नता**– प्रत्येक छात्र में अपनी अलग विशिष्टता होती है। यह व्यक्तिगत भिन्नता ही उसे शेष लोगों से अलग बनाती है। इसलिए इस पद्धति

टिप्पणी

में यह व्यवस्था है कि बालक अपनी रुचियों एवं योग्यताओं के आधार पर काम करते हैं।

ख. **स्वतंत्रता**– यदि विद्यार्थियों को ऐसा प्रतीत होता है कि शिक्षा उन्हें अपने बंधन में जकड़ रही है, तो वह उसमें अपनी रुचि नहीं रखते हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि विद्यार्थियों को उनकी योग्यता तथा रुचियों के अनुरूप ही स्वतंत्रतापूर्वक पढ़ाई करने दी जाए। जैसा कि इस पद्धति में होता है।

ग. **उपयोगिता**– जिन विषयों को छात्र अधिक उपयोगी समझते है वे उनमें ही अपनी रुचि दिखाते हैं। मनौवैज्ञानिक रूप से यदि देखा जाए तो परियोजना पद्धति में रुचि को शीर्ष स्थान दिया गया है। इसलिए छात्र प्रोजेक्ट से स्वयं करना सीखता है और अनुभव प्राप्त करता है। सामाजिक उपयोगिता का सबसे बड़ा आधार ही यह व्यावहारिकता माना जाता है। ड्यूव ने भी इसी व्यावहारिकता का समर्थन किया है।

घ. **सामाजिकता**– समाज में ही बालक जन्म लेता है और यह समाज का ही एक अभिन्न अंग होता है। उसे समय–समय पर समाज की सहायता लेनी पड़ती है। प्रोजेक्ट पद्धति के द्वारा छात्रों को सामाजिकता से जुड़ने के ऐसे ही अनेक अवसर दिए जाते हैं। इन अवसरों के कारण ही उनमें आपसी सद्भावना, प्रेम और सहकारिता का विकास होता है।

ड़ **यथार्थता अथवा वास्तविकता**– वर्तमान में विद्यार्थियों का बौद्धिक स्तर बहुत विकसित हो चुका है। वे अब हर विषय को सत्य की कसौटी पर रखकर देखने लगे हैं। इसलिए प्रोजेक्ट के द्वारा उन्हें जो भी कार्य कराया जाता है वह वास्तविकता पर आधारित होता है।

च. **क्रियाशीलता**– विद्यार्थियों में क्रियाशीलता का बड़ा व्यापक भंडार होता है। वे विद्यालय में क्रियाशील रहते हैं। विद्यार्थियों में आपसी विचार–विमर्श के द्वारा विभिन्न तथ्यों के संबंध में तर्क–वितर्क इकट्ठे किए जाते हैं। चिंतन करने की उनकी प्रवृत्ति का विकास होता रहता है। अतः प्रोजेक्ट विधि क्रियाशीलता जैसे आधारभूत तत्व पर निर्भर करती है। इसमें क्रियाशीलता को उच्च स्थान दिया गया है।

छ. **रोचकता**– विद्यार्थी जिन कार्यों को स्वयं करते हैं उन्हें उनमें रोचकता का अनुभव होता है। यदि उस कार्य में कोई बाधा न हो तो रोचकता और भी बढ़ जाती है। प्रोजेक्ट विधि भी इन्हीं सिद्धांतों पर आधारित है जिसमें बालक रुचि रखते हैं।

परियोजना पद्धति का महत्व

परियोजना पद्धति का महत्व निम्नलिखित रूप से व्यक्त किया जा सकता है–

- **अधिगम में सरलता**– परियोजना पद्धति में सम्मिलित विषयों का अधिगम सरल होता है ताकि छात्र उनमें अधिकाधिक भाग लें।

- **स्वाध्याय की प्रवृत्ति**– यह स्पष्ट है कि परियोजना पद्धति में आलकों को स्वाध्याय करने की विशेष स्वतंत्रता दी जाती है, ताकि उनके बौद्धिक स्तर का विकास किया जा सके। इस प्रकार इस पद्धति के द्वारा विद्यार्थियों में स्वाध्याय की प्रवृत्ति का विकास होता है।
- **उपयोगिता या व्यावहारिकता**– परियोजना पद्धति में सीखे गए अनुभवों को बालक अपने दैनिक जीवन में उत्पन्न होने वाली समस्याओं का समाधान करने के लिए प्रयोग कर सकते हैं यह पद्धति व्यावहारिकता पर आधारित होती है। इसके अंतर्गत विद्यार्थियों के द्वारा विभिन्न समस्याओं का समाधान करने हेतु कार्य किए जाते हैं।
- **मनोवैज्ञानिकता**– परियोजना पद्धति मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विद्यार्थियों के बौद्धिक स्तर का विकास करती है। इसमें बालकों को स्वाध्याय की स्वतंत्रता दी जाती है जिससे कि बालकों के बौद्धिक स्तर में बढ़ोत्तरी होती है।
- **करके सीखना**– परियोजना विधि सीखना के सिद्धांत पर आधारित है। इसमें विद्यार्थियों को समस्या के संबंध में स्वयं स्वाध्याय करने के समाधान निकालने की स्वतंत्रता दी जाती है अर्थात् यहां सिद्धांत सीखने पर आधारित माना जाता है।
- **प्रत्यक्ष अनुभव होना**– यदि अध्ययन में किसी विषय, स्थान विशेष के संबंध में अध्यापक मात्र अप्रत्यक्ष जानकारी देता है तो विद्यार्थी के मस्तिष्क में वह उदाहरण अधिक दिनों तक स्थाई नहीं रह सकेगा परंतु यदि अध्यापक द्वारा दी गई समस्या का समाधान विद्यार्थी स्वयं करेगा तो उसके द्वारा प्राप्त किया जाने वाला ज्ञान अधिक दिनों तक स्थाई रहेगा।

भारतीय पाठशालाओं में परियोजना–पद्धति का प्रारंभ करनें में कई कठिनाइयां है। सर्वप्रथम प्रशिक्षित अध्यापकों का अभाव, दूसरे धन की कमी। बुनियादी शिक्षा की वर्धा–योजना में इस पद्धति की विशेषताओं को ग्रहण कर लिया गया है।

वर्धा–योजना

वर्धा–योजना में प्रारंभ से ही किसी न किसी स्थानीय उद्योग को शिक्षा का माध्यम बनाया जाता है। अन्य सभी विषय, जैसे–भाषा, इतिहास, भूगोल, सामान्य विज्ञान, गणित, नागरिक शास्त्र इत्यादि जिन्हें उद्योग के माध्यम से पढ़ाना हो 'समवाय' कहलाता है। समवाय में एक केंद्रीय विषय होता है और अन्य विषय उसी के आधार पर पढ़ाए जाते है। हरबार्ट ने इतिहास को केंद्रीय विषय बनाया। कर्नल पार्कर ने प्राकृत विज्ञान को केंद्रीय विषय बनाया, परंतु वर्धा–योजना में उद्योग ही केंद्रीय विषय है। भाषा की शिक्षा भी उद्योग के आधार पर ही दी जाती है।

4.3.4 अवधारणात्मक विकास

अवधारणात्मक विकास एक निश्चित, पूर्व–स्थापित संकल्पनात्मक शिक्षण पर आधारित होता है। अवधारणात्मक शिक्षण को अनुभव के एक उत्पाद के रूप में धारणा में बदलाव,

और तथ्यों की समीक्षा के रूप में परिभाषित किया गया है। अवधारणात्मक विकास जनित अनुभव हमारी धारणाओं के साथ–साथ पहचान के बारे में भी विशेष ज्ञान प्रदान करता है।

अवधारणात्मक शिक्षण अनुभव और धारणा के बीच अधिक गहरा संबंध है। अलग–अलग अनुभव या प्रशिक्षण वाले व्यक्तियों में एक ही संवेदी इनपुट की विभिन्न धारणाएं उत्पन्न हो सकती हैं।

अवधारणात्मक विकास शब्द के शब्दकोषों में अनेक अर्थ दिए गए है परंतु प्लेटो ने विचारों के एक सुंदर आदान–प्रदान को अवधारणा (Symposion) से सम्बोधित किया था, जिसमें ईश्वर के प्रति विचार प्रस्तुत किये गये थे।

इस शब्द का आधुनिक अर्थ यह है कि वह विषय जिसमें एक प्रकरण पर वक्तागण अपने विचार प्रस्तुत करते हैं। इसके अंतर्गत एक क्रम में प्रकरण संबंधी विचारों को प्रस्तुत करने का आयोजन किया जाता है। किसी विशिष्ट प्रकरण पर कोई भी व्यक्ति अपने विचारों को प्रस्तुत करता है।

अवधारणा की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है–

"इसके अंतर्गत विचारों का ऐसा समूह होता है जिसमें श्रोताओं को उत्तम प्रकार के विचारों से अवगत कराया जाता है। श्रोतागण प्रकरण संबंधी सामान्य तैयारी के अपने मंजे हुए विचारों को सम्मिलित करते हैं और नीति, मूल्यों, बोधगम्यता के संबंध में निर्णय लेते हैं।"

अवधाराणात्मक विकास की प्रक्रिया का लक्ष्य किसी समस्या के विभिन्न पक्षों को समझना होता है। अवधारणा किसी निर्णय पर नहीं पहुंचती है। श्रोतागण अपने निर्णय ले सकने में स्वतंत्र होते हैं। अवधारणा के अंत में भी प्रकरण संबंधी वाद–विवाद खुला रहता है। वक्ताओं एवं श्रोताओं में विचारगोष्ठी की भांति प्रत्यक्ष रूप में अतः क्रिया नहीं होती। इसमें अप्रत्यक्ष रूप से अंतः प्रक्रिया होती है।

अवधारणात्मक विकास के उद्देश्य

1. किसी तात्कालिक समस्या के विभिन्न पक्षों की जानकारी तथा उन्हें पहचानने की क्षमताओं का विकास करना।
2. किसी प्रकरण के विभिन्न पहलुओं को पहचानना और उन्हें बोधगम्य करना।
3. प्रकरण एवं समस्या संबंधी निर्णय लेने की क्षमताओं का विकास करना।
4 भागीदारों में व्यापक दृष्टिकोण का विकास करना।
5. छात्रों को प्रकरण एवं समस्या संबंधी शंकाओं एवं कठिनाइयों के समाधान एवं स्पष्टीकरण का अवसर देना।

अवधारणात्मक विकास का मुख्य उद्देश्य ज्ञानात्मक पक्ष के उच्च पक्षों का विकास करना होता है।

अवधारणात्मक विकास की प्रकिया

- अवधारणात्मक विकास हेतु आयोजनों की व्यवस्था शैक्षिक संस्थानों, विभागों या संगठनों द्वारा किया जाता है। जिसके अंतर्गत अनुदेशक या व्यवस्थापक प्रकरण

या समस्या का निर्धारण करता है तथा वक्ताओं (छात्र एवं शिक्षक) को आमन्त्रित करता है।

टिप्पणी

- प्रत्येक वक्ता के लिए समय निश्चित कर दिया जाता है। वक्ताओं के भाषणों को एक क्रम में व्यवस्थित किया जाता है। भाषण के अंत में श्रोताओं को प्रश्न करने या वाद–विवाद करने या अपना विचार प्रस्तुत करने का अवसर नहीं दिया जाता है।
- वक्तागण अपने कथन से पूर्व विचारों की पुष्टि या आलोचना कर सकते हैं। उनके विचारों की पुनरावृत्ति नहीं की जाती है। वक्तागण अपने प्रवचन में सुधार तथा परिवर्तन कर लेते हैं। इस प्रकार वक्ताओं में अप्रत्यक्ष रूप से अंतः प्रकिया होती है।
- अध्यक्ष वक्ताओं के प्रवचनों को इस प्रकार व्यवस्थित करता है जिससे समस्या के प्रकरण के व्यापक स्वरूप का श्रोताओं को बोध हो सके। प्रस्तुतीकरण में क्रमिक संबंध स्थापित करता है। एक–एक करके सभी वक्ता अपने–अपने विचार को निर्धारित समय में प्रस्तुत करते हैं।
- प्रत्येक वक्ता के प्रवचन के अंत में अध्यक्ष उसकी समीक्षा करता है। तदोपरांत अन्य वक्ता से प्रवचन देने के लिए आग्रह करता है तथा उनके प्रस्तुतीकरण से

संबंध स्थापित करता है। अपने विचारों को भी सम्मिलित करता है।

सभी वक्ताओं के प्रस्तुतीकरण के बाद अध्यक्ष एक समीक्षा प्रस्तुत करता है। समस्त प्रस्तुतीकरण का आलेख भी तैयार किया जाता है।

सावधानियाँ

1. इस प्रक्रिया में प्रथम सावधानी अनुदेशक या व्यवस्थापक को रखनी चाहिए कि वक्ताओं ने अपने प्रवचनों को अच्छी प्रकार तैयार कर लिया है, वे अवधारणा की प्रक्रिया व प्रस्तुतीकरण के निमयों से भी भली–भांति परिचित हैं। अन्य वक्ताओं के विचारों की उन्हें पुनरावृत्ति नहीं करनी चाहिए।

2. अध्यक्ष या अनुदेशक को कार्य की एक रूपरेखा तैयार कर लेनी चाहिए। वक्ताओं के कथनों को एक क्रम में व्यवस्थित करना होता है। प्रकरण संबंधी किसी महत्वपूर्ण विरोधी विचार को छेड़ना नहीं चाहिए।

3. अध्यक्ष को प्रश्नों की परिस्थितियों की अवस्था का सावधानी से आयोजन करना चाहिए। साधारणतः सभी वक्ताओं को अंत में प्रश्नों एवं स्पष्टीकरण के लिए अवसर देना चाहिए। कभी–कभी वातावरण में परिवर्तन लाने के लिए भी प्रश्नों के लिए अवसर देना चाहिए।

आवधारणात्मक विकास के उपयोग का क्षेत्र :

इसका उपयोग शिक्षा के क्षेत्र में उच्च कक्षा के शिक्षण तथा अनुदेशन के लिये किया जा सकता है।

कुछ प्रमुख प्रकरण इस प्रकार हैं–

टिप्पणी

1. परीक्षा में वस्तुनिष्ठ एवं निबन्धात्मक प्रश्नों का उपयोग।

2. शिक्षा में सत्र प्रणाली एवं वार्षिक प्रणाली।

3. छात्रों में अनुदेशनहीनता के कारण।

4. शोध कार्यों में गुणात्मक विकास।

5.अध्यापक शिक्षा में छात्र शिक्षण की उपादेयता।

6. कक्षा शिक्षण एवं अनुदेशन में शैक्षिक तकनीक का प्रयोग

7. छात्रों के लिए कम्प्यूटर की उपादेयता।

8. कक्षा–शिक्षण में कियात्मक अनुसंधान का उपयोग।

अवधारणा हेतु प्रकरण ऐसा होना चाहिए जिसमें श्रोतागणों को अधिक रुचि हो और उनसे प्रत्यक्ष संबंध हो।

विशेषताएं

1 किसी प्रकरण एवं समस्या के विभिन्न पक्षों का व्यापक रूप में बोध होता है।

2. श्रोतागणों को निर्णय लेने की स्वतंत्रता होती है तथा वक्ताओं को प्रकरण संबंधी अपने विचारों को प्रस्तुत करने की स्वतंत्रता दी जाती है।

3. उच्च कक्षाओं में विशिष्ट प्रकरणों तथा समस्याओं के संबंध में व्यापक जानकारी दी जाती है।

4 समायोजन तथा सहयोग की भावनाओं का विकास किया जाता है।

5. मूल्यांकन एवं संशलेषण की क्षमताओं का विकास किया जाता है।

6. प्रकरण या समस्या संबंधी दोनों प्रकार के विरोधी तथा पक्षीय विचारों को सुनने तथा जानने का अवसर मिलता है।

सीमाएं

1. जो वक्तागण प्रवचन के लिए आमन्त्रित किये जाते हैं उन्हें प्रस्तुतीकरण की स्वतंत्रता दी जाती है उन पर अध्यक्ष का नियन्त्रण नहीं रहता। वे किसी भी पक्ष पर अपने विचार को प्रस्तुत कर सकते हैं।

2. वक्तागण के प्रवचनों में कभी–कभी पाठ्य वस्तु की पुनरावृत्ति होती है क्योंकि वे प्रकरण सम्बन्धी सम्पूर्ण विचार प्रस्तुत करते हैं। प्रकरणों के विभिन्न पक्षों को क्रमशः तैयार नहीं कर पाते हैं।

3. इसके अंतर्गत प्रश्नों एवं स्पष्टीकरण को अवसर नहीं दिया जाता है। अतः श्रोतागण अधिक सक्रिय रूप में भाग नहीं लेते हैं, वे केवल सुनते हैं।

4. इसमें कोई अंतिम निर्णय नहीं लिया जाता है। श्रोतागण अपने–अपने ढंग से निर्णय लेते हैं, जिनमें छात्र शामिल हो जाते हैं।

5. इसमें ज्ञानात्मक उद्देश्यों को ही महत्व दिया जाता है, भावात्मक व क्रियात्मक उद्देश्यों को महत्व नहीं दिया जाता है।

4.3.5 गतिविधि आधारित अधिगम (ABL)

पेस्टालॉजी, फ्रॉबेल, मॉन्टेसरी आदि सभी शिक्षाशास्त्रियों तथा आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने भी अपने अनेक प्रयोगों के आधार पर कहा है कि बालक एक क्रियाशील प्राणी है। वह सदा कुछ न कुछ करना चाहता है। इसलिए बालक की शिक्षा में किसी न किसी 'क्रिया' को अवश्य देना चाहिए। वर्धा योजना में 'क्रिया द्वारा सीखना' के इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को स्वीकार कर लिया गया है। इसलिए प्रत्येक बालक को कोई न कोई उपाय सिखाया जाता है।

किसी भी उद्योग को करते समय विद्यार्थियों को कई क्रियाएं करनी पड़ती हैं। उन्हें कभी खोलकर कुछ पूछना पड़ता है। कभी पढ़कर समझाना पड़ता है। तथा कभी–कभी हिसाब भी रखना पड़ता है। बालकों तथा बालिकाओं की इन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए, उन्हें अन्य विषय भी पढ़ाए जाते हैं। अन्य विषय तो मातृभाषा के माध्यम के द्वारा पढ़ाए जा सकते हैं, परंतु भाषा की शिक्षा उद्योग के द्वारा कैसे दी जा सकती है, अब इसकी कुछ चर्चा की जाएगी।

जहां कहीं कोई विषय, उद्योग द्वारा न पढ़ाया जा सके, वहां सामाजिक और प्राकृतिक वातावरण से भी सहायता ली जाती है। इस दृष्टि से देखा जाए तो भाषा का ज्ञान–उद्योग, सामाजिक वातावरण तथा प्राकृतिक वातावरण– दोनों के द्वारा ही दिया जा सकता है।

उद्योग द्वारा भाषा की शिक्षा

बालक जब पाठशाला में आता है तो उसे अपनी मातृभाषा का कुछ ज्ञान होता है। वह अपनी मातृभाषा में बातचीत कर सकता है। पाठशाला में आकर जब वह कोई उत्पादक उद्योग करता है तो उस उद्योग के द्वारा उसका भाषा–ज्ञान और विकसित होता है। मान लीजिए, 'पाठशाला में कृषि' उद्योग है। अब इस उद्योग की पूर्ति के लिए अनेक कार्य करने पड़ते हैं, जैसे– भूमि तैयार करना, हल जोतना, बीज बोना, सोहागा चलाना आदि। इसी प्रकार सिंचाई, गुड़ाई इत्यादि कार्य भी करने पड़ते हैं। फसल के शत्रुओं से बचाव करना, तैयार अन्न को संभालना, उसका ठीक–ठीक वितरण करना, पशुओं को पालना आदि अनेक कार्य भी 'कृषि' उद्योग में आ जाते हैं।

बालक स्वाभाविक तौर पर बोलना चाहता है, वह जो कुछ भी करता है, उसका विवरण बोलकर प्रकट करता है। भाषा सिखाते समय बालक की इस मूल प्रवृत्ति से लाभ उठाया जाता है और स्वाभाविक ढंग से उसे भाषा का ज्ञान कराया जाता है। वही शब्द बालक को सिखाए जाते हैं, जिनकी उसे आवश्यकता पड़ती है और उसी समय सिखाए जाते हैं, जब वह ठीक उन्हीं शब्दों की आवश्यकता अनुभव करता है।

मौखिक तथा लिखित कार्य

मौखिक कार्य के द्वारा बालक को नए शब्दों का ज्ञान कराया जाता है। बालक जिन वस्तुओं को काम में लाता है, उनके नामों को वह वार्तालाप द्वारा बड़ी सरलता से सीख जाता है। इस प्रकार शब्द और अर्थ के बीच सीधा संबंध स्थापित हो जाता है, उदाहरणस्वरूप, अध्यापक बालक से कहता है कि–

'अनिल वह फावड़ा उठाकर लाओ। आओ, हम मूली उगाने के लिए भूमि तैयार करें।'

टिप्पणी

बालक फावड़े को देखता है, फावड़ा उठाता है, उसे हाथ से चलाता है। साथ ही साथ, वह अध्यापक से बातचीत भी करता रहता है। इस प्रकार वह शब्द और अर्थ में भी सीधा संबंध स्थापित कर लेता है। अब इस अर्थ को वह कभी भी नहीं भूल सकता। अनावश्यक शब्दों के सीखने के बोझ से भी वह बच जाता है।

ऐसे ही बालक, अनेक वस्तुओं, जैसे– पौधों, पेड़ों, फलों आदि को देखता है। इन वस्तुओं को देखकर बालक के मन में अनेक भाव उठते हैं। वह फूलों को देखकर प्रसन्न होता है, फलों को देखकर खाना चाहता है। इन वस्तुओं के संबंध में वह बातचीत करता है। इस प्रकार मौखिक भाषा का अभ्यास होता है।

मौखिक कार्य द्वारा बालक जिन शब्दों को सीखता है, उन शब्दों के अक्षर उसे सिखाए तथा लिखाए जाते हैं। धीरे–धीरे वह शब्द और वाक्य लिखने लगता है। चित्रों की सहायता से इस कार्य को और भी रोचक बनाया जाता है। जैसे–जैसे बालक कृषि का और काम सीखता जाता है उसका शब्द–भंडार बढ़ता जाता है। श्रेणी–क्रम तथा अपने अनुभवों के आधार पर बालक–कविता, नाटक, कहानियां निबंध आदि पढ़ता है तथा उन्हें लिखने का अभ्यास करता है। उनको साप्ताहिक सभाओं में पढ़कर सुनाता है। उसमें से कई लेख हस्तलिखित पत्रिकाओं में दिए जाते हैं। इस प्रकार बालक बड़े रोचक ढंग से भाषा का बोलना, पढ़ना तथा लिखना सीखता है। कृषि के समान अन्य उद्योगों, जैसे– कताई, बुनाई, गन्ने, लकड़ी, धातु आदि के द्वारा भी भाषा सिखाई जाती है।

सामाजिक वातावरण के द्वारा भाषा की शिक्षा

भाषा सिखाने का दूसरा साधन है– सामाजिक वातावरण। सामाजिक वातावरण में त्योहारों का मनाना, रोगी की सेवा, सफाई, भोजनालय, ग्राम–सुधार आदि कार्य आ जाते हैं। इनको केंद्रीय मानकर भाषा की शिक्षा दी जाती है। विद्यालय में दशहरे का त्योहार मनाया जाता है। बालक रामचन्द्र जी के जीवन के संबंध में पढ़ता है। रामायण का पाठ किया जाता है। राम के संबंध में लेख आदि लिखाए जाते हैं। इस ढंग से सामाजिक वातावरण द्वारा भाषा की शिक्षा दी जाती है।

प्राकृतिक वातावरण द्वारा भाषा की शिक्षा

प्राकृतिक वातावरण– तीसरा साधन है, जिसकी सहायता से भाषा की शिक्षा दी जाती है। बालक तथा बालिकाएं प्रतिदिन प्रकृति के संपर्क में आते रहते हैं। वे नदियों, नालों, झीलों, समुद्र, पर्वतों, पौधों, वृक्षों, सूर्य, चंद्रमा तथा नक्षत्रों इत्यादि को देखते हैं। इन वस्तुओं के संबंध में उनसे लिखाया जाता है। इस प्रकार विद्यार्थी प्राकृतिक वातावरण के द्वारा भी भाषा का ज्ञान प्राप्त करते हैं।

4.3.6 सक्रिय अधिगम प्रविधि (ALM)

सक्रिय अधिगम प्रविधि से कक्षा कक्ष को सक्रिय बनाने के लिये एक्टिव लर्निंग मैथड का प्रयोग किया जाए तो कक्षा में अध्यापन क्रिया सहजता से सफल होती है। परम्परागत विधि की अपेक्षा शिक्षण अधिगम में यदि एक्टिव लर्निंग मैथड का प्रयोग किया जाए तो बी. एड. के छात्रों में अध्यापन अभ्यास में रोचकता उत्पन्न होगी। सक्रिय अधिगम प्रविधि (एक्टिव लर्निंग मैथड) अध्यापक / अध्यापिका द्वारा अध्यापन अभ्यास में प्रयोग किये जाने पर सम्पूर्ण अधिगम के समय छात्र एवं शिक्षक सक्रिय बने रहते हैं।

एक्टिव लर्निंग मैथड अध्यापन अभ्यास को परम्परागत विधि से घटाकर नवीनतम शिक्षण गये पाठ को बच्चों को समझ में आता है और छात्र आनंदित होने के साथ छात्र केन्द्रिय कक्षा होती है जिसके परिणाम स्वरूप कक्षा का वातावरण संतुष्टिपरक बन जाता है। सक्रिय अधिगम प्रविधि के अंतर्गत मॉडल, चार्ट, माइन्ड मैप, वेब थीम, अभिनय, श्लाक सूत्र, किम, क्रोनोलॉग, वाय टेम्पलेट एवं क्लोज टेस्ट इत्यादि प्रविधि का प्रयोग किया जाता है। इससे कक्षा कक्ष में विद्यार्थियों के चेहरों पर चमक, उल्लास और रुचि दिखाई देती है। यदि बी. एड. के प्रशिक्षणार्थी शिक्षण अभ्यास पाठ योजना में एक्टिव लर्निंग मैथड का प्रयोग करते हैं तो उनकी कक्षा में उपस्थित छात्र भी सक्रिय रहते हैं। इस विधि का प्रयोग करने से छात्रों में पढ़ाई करने की जिज्ञासा उत्पन्न होती है। परम्परागत प्रविधियों से पढ़ाये गये पाठ में छात्र सहभागिता नहीं होती है लेकिन एक्टिव लर्निंग मैथड में छात्र सहभागिता मौजूद होती है।

सक्रिय अधिगम प्रविधियों के तहत अभिक्रमित अनुदेशन, शिक्षण मशीन एवं भाषा प्रयोगशाला को भाषा शिक्षण के लिए उपयोगी पाया गया है।

अभिक्रमित अनुदेशन के अनेक रूप हैं। स्किनर का अभिक्रमित अनुदेशन प्रभुत्ववादी व्यूह रचना मानी जाती है, क्योंकि इस व्यूह रचना में छात्रों को अनुक्रियाओं का नियंत्रण अभिक्रमक द्वारा किया जाता है। छात्रों को अनुक्रियाओं के लिये स्वतंत्रता नहीं दी जाती है। इसका प्रयोग स्वतः अध्ययन के लिये किया जाता है। इसमें व्यक्तिगत भिन्नता का पूर्णरूप से ध्यान रखा जाता है।

छात्र को पाठ्य–वस्तुओं को छोटे–छोटे पदों में पढ़ना होता है। पढ़ने के साथ प्रत्येक पद की अनुक्रिया लिखनी पड़ती है। अनुक्रिया से वह नया ज्ञान सीखता है।

छात्र को पढ़ने के साथ ही साथ अनुक्रिया की शुद्धता की जांच करनी होती है। सही पाने पर उससे पुनर्बलन मिलता है।

स्किनर ने अभिक्रमित अनुदेशन के पाँच मौलिक सिद्धांत दिये हैं जिनका प्रतिपादन मनोविज्ञान की प्रयोगशाला के शोध कार्यों के निष्कर्षों के आधार पर किया गया है। ये सिद्धांत हैं– छोटे पदों का सिद्धांत, तत्पर अनुक्रिया का सिद्धांत, तत्कालीन पुष्टि का सिद्धांत, स्वयं गति का सिद्धांत और छात्र परीक्षा का सिद्धांत।

विशेषताएं

1. छात्र को अधिक क्रियाशील (तत्पर) रहना पड़ता है।
2. छात्रों की सही अनुक्रिया को पुनर्बलन दिया जाता है।

टिप्पणी

3. छात्र सीखने में अपनी गति का अनुसरण करता है तथा अपनी आवश्यकतानुसार अनुदेशन का अध्ययन करता है।
4. छात्रों के व्यवहार–परिवर्तन को अधिक महत्व दिया जाता है।
5. छात्र स्वयं सीखता है। शिक्षक की आवश्यकता नहीं होती है।
6. अनुदेशन की प्रभावशीलता का निर्धारण प्रयोग द्वारा उपलब्ध प्रदत्तों के आधार पर किया जाता है।
7. छात्र सीखते समय बहुत कम गलतियां करता है।

उपयोग

सक्रिय अधिगम का उपयोग प्रमुख रूप से ज्ञानात्मक पक्ष के विकास के लिये किया जाता है।

इस व्यूह रचना द्वारा प्राथमिक तथ्यों, नियमों तथा सिद्धांतों का बोध सफलतापूर्वक किया जाता है।

इसके द्वारा भावात्मक पक्ष का विकास नहीं किया जा सकता है। यह अनुदेशन विधि पूर्ण रूप से व्यक्तिगत होती है।

छात्रों की व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये अवसर दिये जाते हैं।

सीमाएं

1. इस अनुदेशन का उपयोग सभी विषयों के लिए नहीं किया जा सकता है, जैसे इतिहास शिक्षण आदि के लिए।
2. इसकी रचना करना कठिन है। इसके लिए प्रशिक्षण तथा अनुभव की आवश्यकता होती।
3. इसकी रचना करना कठिन है। इसके लिए प्रशिक्षण तथा अनुभव की आवश्यकता होती है।
4. इसका प्रयोग ज्ञानात्मक पक्ष के निम्न स्तर के उद्देश्यों के लिये किया जा सकता है। भावात्मक तथा कियात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए इसका प्रयोग नहीं किया जा सकता है।
5. इसके द्वारा पढ़ने में छात्रों को सदैव अनुक्रियाओं को लिखने तथा उनकी शुद्धता की जांच करनी पड़ती है।

सुझाव

1. इस अधिगम का प्रयोग ज्ञान उद्देश्य की प्राप्ति के लिये किया जाना चाहिए।
2. जिस पाठ्य–वस्तु में तथ्यों की अधिकता हो उसके लिये प्रयुक्त नहीं करना चाहिये।
3. प्रत्यय, सिद्धांत तथा अधिनियमों के शिक्षण के लिये इसका प्रयोग करना चाहिये।
4. यह माध्यमिक स्तर के छात्रों के लिए अधिक उपयोगी है।
5. यह पत्राचार पाठ्यक्रम में अधिक उपयोगी होता है।

टिप्पणी

भाषा शिक्षण में इस विधा का प्रयोग हिन्दी भाषा विदेशियों को पढ़ाने में आसानी से किया जा सकता है। विषेशकर रचना की शिक्षा देने में। वाक्य–रचना में जहां शब्दों का प्रयोग होता है और विकल्पों की बहुलता होती है, उसमें इस विद्या का सरल प्रयोग संभव है।

कहानी शिक्षण में रेखीय अभिक्रमित विद्या उत्तम कही जा सकती है।

आज आवश्यकता इस बात की है कि प्रशिक्षण विभागों एवं महाविद्यालयों के अध्यापकों को यह विधा बताई जाये और इसके प्रयोग का अभ्यास छात्र–ध्यापक करें।

अपनी प्रगति जांचिए

3. स्थाई परिवर्तन तथा वास्तविक महत्ता किसने प्रदान की?
   (क) कुर्ट लेविस (ख) सी.ए. मोसट
   (ग) हबार्ट (घ) मौरिसन
4. खोज, रिसर्च अनुसंधान जैसे शब्द किस शिक्षा–शास्त्रीय सिद्धांत के लिए प्रयुक्त होते हैं?
   (क) अवलोकन (ख) परियोजना पद्धति
   (ग) अन्वेषण (घ) अवधरणात्मक विकास

4.4 पाठ योजना : 5E मॉडल एवं हिंदी विधाओं का शिक्षण

पाठ योजना के अभिनव प्रारूप (5E मॉडल) एवं पाठ्यक्रम निर्धारित विधाओं के शिक्षण से संबंधित तथ्यों को क्रमशः इस प्रकार विवेचित किया जा सकता है–

4.4.1 पाठ योजना : 5E मॉडल

अध्यापन का एक निर्देशात्मक प्रारूप चुनते समय, शिक्षक ऐसी रणनीतियों की तलाश करते हैं जो छात्रों को नई अवधारणाओं की पूरी समझ हासिल करने में मदद करें। उनका उद्देश्य छात्रों को एतदर्थ तैयार करना, उन्हें सीखने के लिए प्रेरित करना और कौशल विकास की दिशा में उनका मार्गदर्शन करना होता है। ऐसा करने का एक तरीका 5E मॉडल सरीखे अन्वेषण–आधारित दृष्टिकोण को अपनाना है, जो सक्रिय अधिगम पर आधारित है।

शोध से पता चलता है कि घटनाओं का एक निश्चित क्रम अधिगम की सुविधा प्रदान करता है, जिसे अधिगम के चक्र के रूप में जाना जाता है। वर्ष 1962 में शिक्षक जे. मायरोन एटकिन और रॉबर्ट कारप्लस ने तर्क दिया कि प्रभावी अधिगम के चक्रों में तीन प्रमुख तत्व शामिल हैंः अन्वेषण, पारिभाषिक शब्द परिचय और अवधारणा अनुप्रयोग। उनकी योजना में, अन्वेषण ने शिक्षार्थियों को विषय में दिलचस्पी लेने, प्रश्न पूछने और अपनी वर्तमान समझ के प्रति असंतोष के बिंदुओं की पहचान करने में सहायता दी। अवधारणा अनुप्रयोग ने शिक्षार्थियों को अपने नए विचारों को लागू करने, नवीन संदर्भों

टिप्पणी

में अपनी नई समझ को आजमाने और अपनी समझ की पूर्णता का मूल्यांकन करने के अवसर प्रदान किए।

सैद्धांतिक संस्थापना का स्वरूप

एटकिन और कारप्लस के निष्कर्षों ने 5E मॉडल पाठ योजना पर ही बल दिया, जो छात्रों को स्थापित चरणों, या चरणों की एक श्रृंखला के माध्यम से समय के साथ एक अवधारणा को समझ पाने पर केंद्रित है। 5E के चरणों में संलग्न करना (Engage), अन्वेषण करना (Explore), समझाना (Explain), विस्तार से कहना (Elaborate) और मूल्यांकन (Evaluation) शामिल हैं।

जैविक विज्ञान पाठ्यचर्या अध्ययन द्वारा 1987 में विकसित 5E मॉडल, सहयोगी, सक्रिय शिक्षण को बढ़ावा देता है। इसमें छात्र समस्याओं को हल करने के लिए एक साथ काम करते हैं और प्रश्न पूछकर, अवलोकन, विश्लेषण और निष्कर्ष निकालकर नई अवधारणाओं की जांच करते हैं।

5E मॉडल अधिगम के रचनावादी सिद्धांत पर आधारित है, जो बताता है कि लोग अनुभवों से ज्ञान और अर्थ का निर्माण करते हैं। गतिविधियों को समझने और उन पर चिंतन करने से, छात्र नए ज्ञान को पिछले विचारों के साथ जोड़कर समझने में सक्षम होते हैं। विषय–वस्तु विशेषज्ञ बेवरली जॉब्रेक के अनुसार, "शैक्षिक गतिविधियां जैसे अन्वेषण–आधारित अधिगम, सक्रिय अधिगम, अनुभवात्मक अधिगम, अन्वेषण अधिगम और ज्ञान निर्माण, रचनावाद के रूपांतर हैं।"

कक्षा में, रचनावाद के लिए शिक्षकों को अपने निर्देशात्मक दृष्टिकोण में जाँच–पड़ताल, अन्वेषण और मूल्यांकन का निर्माण करने की आवश्यकता होती है। कई मायनों में, इसका मतलब है कि शिक्षक नई अवधारणाओं को सीखते समय छात्रों का मार्गदर्शन करते हुए एक सूत्रधार की भूमिका निभाता है।

5E मॉडल के पांच चरण :

5E मॉडल के पांच चरणों का सिंहावलोकन निम्नांकित है–

1. **संलग्न करना** (Engage) – अधिगम चक्र के पहले चरण में, शिक्षक छात्रों के पूर्व ज्ञान की समझ हासिल करने और किसी भी ज्ञान अंतराल की पहचान करने के लिए काम करता है। आगामी अवधारणाओं में रुचि को बढ़ावा देना भी महत्वपूर्ण है ताकि छात्र सीखने के लिए तैयार हों। शिक्षक छात्रों को शुरुआती प्रश्न पूछने या विषय के बारे में जो वे पहले से जानते हैं उसे लिखने का काम दे सकते हैं। ऐसा तब भी किया जा सकता है जब अवधारणा पहली बार छात्रों के सम्मुख प्रस्तुत की जाती है।
2. **अन्वेषण करना** (Explore) – अन्वेषण चरण के दौरान, छात्र मूर्त अधिगम के अनुभवों के माध्यम से सक्रिय रूप से नई अवधारणा का अन्वेषण करते हैं। उन्हें वैज्ञानिक पद्धति अपनाने और अवलोकन करने के लिए अपने साथियों के साथ संवाद करने के लिए कहा जा सकता है। यह चरण छात्रों को व्यावहारिक व क्रियाशील तरीके से सीखने का अवसर देता है।
3. **समझाना** (Explain) – यह एक शिक्षक के नेतृत्व वाला चरण है जो छात्रों को नए ज्ञान को संश्लेषित करने और प्रश्न पूछने में मदद करता है (यदि उन्हें और

टिप्पणी

स्पष्टीकरण की आवश्यकता है)। व्याख्या चरण के प्रभावी होने के लिए, शिक्षकों को "द 5E इंस्ट्रक्शनल मॉडलः ए लर्निंग साइकल अप्रोच फॉर इंक्वायरी–बेस्ड साइंस टीचिंग" के अनुसार, तकनीकी जानकारी को और अधिक प्रत्यक्ष तरीके से पेश करने से पहले अन्वेषण चरण के दौरान उन्होंने जो कुछ सीखा, उसे साझा करने के लिए कहें। ऐसा तब भी किया जा सकता है जब शिक्षक छात्रों की समझ बढ़ाने के लिए वीडियो, कंप्यूटर सॉफ़्टवेयर या अन्य सहायक सामग्री का उपयोग करते हैं।

4. **विस्तार से कहना** (Elaborate) – 5E मॉडल का विस्तार चरण छात्रों को उनके द्वारा सीखी गई बातों को लागू करने के लिए अवसर देने पर केंद्रित है। इससे उन्हें गहरी समझ विकसित करने में मदद मिलती है। शिक्षक नए कौशल को सुदृढ़ करने के लिए छात्रों को प्रस्तुतियाँ बनाने या अतिरिक्त जाँच करने के लिए कह सकते हैं। यह चरण छात्रों को मूल्यांकन से पहले अपने ज्ञान को मजबूत करने का अवसर देता है।
5. **मूल्यांकन करना** (Evaluation) – 5E मॉडल औपचारिक और अनौपचारिक दोनों तरह के मूल्यांकन की अनुमति देता है। इस चरण के दौरान, शिक्षक अपने छात्रों का निरीक्षण कर सकते हैं और देख सकते हैं कि उन्हें मूल अवधारणाओं की पूरी समझ है या नहीं। यह नोट करना भी सहायक होता है कि क्या विद्यार्थी अपने द्वारा सीखी गई समस्याओं के आधार पर समस्याओं को अलग तरीके से देखते हैं। मूल्यांकन चरण के अन्य सहायक तत्वों में स्व–मूल्यांकन, सहकर्मी–मूल्यांकन, लेखन कार्य और परीक्षा शामिल हैं।

अनुप्रयोग और प्रभावशीलता :

5E मॉडल सबसे प्रभावी तब होता है जब छात्र पहली बार नई अवधारणाओं का सामना कर रहे होते हैं क्योंकि यह एक संपूर्ण सीखने के चक्र का अवसर होता है। सह–निर्माता रॉजर डब्ल्यू बायबी के अनुसार, 5E मॉडल का उपयोग दो से तीन सप्ताह की इकाई में सबसे अच्छा संभव होता है जिसमें प्रत्येक चरण एक या अधिक विशिष्ट पाठों का आधार होता है।

बायबी कहते हैं कि "5E मॉडल का उपयोग एकल पाठ के आधार के रूप में करने से सीखने के लिए अवधारणाओं और क्षमताओं के चुनौतीपूर्ण और पुनर्गठन के लिए समय और अवसरों को कम करने के कारण व्यक्तिगत चरणों की प्रभावशीलता कम हो जाती है और यदि प्रत्येक चरण में बहुत अधिक समय बिताया जाता है, तो संरचना उतनी प्रभावी नहीं होती है और छात्र भूल सकते हैं कि उन्होंने क्या सीखा है।"

शिक्षक अपनी कक्षाओं में 5E मॉडल जैसे निर्देशात्मक मॉडल शामिल करके सक्रिय भागीदारी के माध्यम से छात्रों को ज्ञान की एक मजबूत नींव बनाने में मदद कर सकते हैं।

4.4.2 कविता

कविता का शाब्दिक अर्थ है काव्यात्मक रचना या कवि की कृति, जो छन्दों की श्रृंखलाओं में विधिवत बांधी जाती है।

काव्य वह वाक्य रचना है जिससे चित्त किसी रस या मनोवेग से पूर्ण हो अर्थात् वह जिसमें चुने हुए शब्दों के द्वारा कल्पना और मनोवेगों का प्रभाव डाला जाता है।

रसगंगाधर ने 'रमणीय' अर्थ के प्रतिपादक शब्द को 'काव्य' कहा है।

गद्य एवं पद्य को साहित्य का अभिन्न अंग माना जाता है। पद्य के माध्यम से कवि अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति सरलता से करता है। पद्य के अंतर्गत भावना, कल्पना तथा बुद्धि तीनों पक्षों का समावेश होता है।

काव्य का आरंभ वीरगाथा काल से ही माना जाता है। इस काल में ऐतिहासिकता होते हुए भी कल्पना का बाहुल्य है। भक्ति काल को हिंदी साहित्य का स्वर्ण युग माना जाता है। इस काल में हिंदी साहित्य की अत्यंत सुंदर रचना हुई है। भक्ति काल में तत्कालीन राजनीतिक पृष्ठभूमियों का भी विशेष महत्व है। हिंदी काव्य का इतिहास बहुत ही बृहत् है किंतु हमारा उद्देश्य काव्य के अर्थ को जानना एवं शिक्षण उद्देश्य को ज्ञात करना है।

श्यामसुंदर दास के अनुसार – "कलात्मक रीति से सजी हुई भाषा जिसमें भाव की अभिव्यंजना हो कविता कहलाती है।"

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार – "कविता वह साधन है जिसके द्वारा सृष्टि के साथ रागात्मक संबंध की रक्षा होती है।"

कविता शिक्षण में कविता की विशेषताएं, विधाएं, कविता तत्व, काव्य प्रयोजन आदि को अध्ययन का विषय बनाया जाता है। भाव पक्ष, छन्द, रस, गुण आदि भी कविता शिक्षण के पहलू हैं।

कविता शिक्षण की अधोलिखित विशिष्टताओं के आलोक में हिन्दी शिक्षक को अपने शिक्षण में इन बातों का ध्यान रखना चाहिए–

अनुभूति प्रधानता

पद्य अनुभूति में हृदय से उमड़कर कवि की लेखनी से लिखी जाती है। कवि के रचनाबद्ध भाव को ही पद्य कहते हैं । पद्य रागात्मक संबंध की रक्षा तथा निर्वाह है। हमारा हृदय काव्य के समय इस भौतिक संसार से ऊपर उठकर कार्य के अलौकिक आलोक में विचरण करता है । इसमें कल्पना तथा अनुभूति की प्रधानता होती है ।

सत्यम् शिवम सुन्दरम् की भावना

"सत्यम् शिवम् सुन्दरम्" कविता के मुख्य उद्देश्य हैं किन्तु कवि के सत्य विधान के सत्य के समान सत्य नहीं होता अपितु उसमें कल्पना का भी मिश्रण होता है, जो कविता को मुग्धकारी तथा सुन्दर बनाता है।

भाषा

कविता की भाषा सरल, सरस, मधुर तथा गाने योग्य होनी चाहिए।

संगीतात्मक

संगीत काव्य की हृदय–गति होती है । लय, ताल तथा स्वरों के आरोह–अवरोह के कारण ही कविता के भाव उभरकर आते हैं।

रसानुभूति

रस तथा काव्य परस्पर आधारित है । एक के बिना दूसरा पक्ष कमजोर हो जाता है । इसी कारण इसको काव्य की आत्मा कहा गया है ।

स्थायित्व

कविता में अमूल्य तत्व स्थायित्व होता है । उत्कृष्ट काव्य–कृति सदैव स्थायी होती है।

काव्य सौन्दर्य तत्वों का बोध

(अ) नाद–सौन्दर्य का बोध जैसे– वर्णों, शब्दों या पदों की आवृत्ति (अनुप्रास, यमक आदि)।

मध्यवर्ती तुकांत पद, छन्द की गति, यति, मात्रा आदि ।

स्वरों का आरोह–अवरोह कोमल तथा कठोर वर्ण, ओज, प्रसाद, माधुर्य गुण।

(ब) भावानुरूप वर्ण–विन्यास, मधुर, द्वित्व, संयुक्त आदि।

भाव–सौन्दर्य, प्रेम, करुणा, क्रोध, उत्साह आदि विविध भावों की अनुभूति।

विचार–सौन्दर्य, कविता में वर्णित नैतिक गुणों, धार्मिक विचारों, मानवीय मूल्यों एवं आदर्शों को समझना। कबीर, तुलसी, रहीम, वृन्द आदि कवियों के नीतिपरक दोहों में विचार–सौन्दर्य की ही प्रधानता है।

शब्द–योजना के आधार पर दृश्य–चित्रों की कल्पना।

प्रस्तुत एवं अप्रस्तुत की व्याख्या, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का ज्ञान और उनके चमत्कार एवं सौन्दर्य की सराहना।

समालोचन संबंधी विविध अंगों का सामान्य ज्ञान

विविध काव्यात्मक शैलियों का परिचय ।

भाव एवं विचार–सौन्दर्य संबंधी गुण–दोष विवेचन और उनकी सम्यक् अभिव्यक्ति।

वस्तु चरित्र चित्रण वर्णन या संवाद, भाषा एवं शैली–शब्द चयन, छन्द विधान, भाव–प्रवाह आदि।

कवि की जीवनवृत्त उनकी रचनाएँ उसके काव्य के विषय और साहित्यिक विचार आदि का परिचय ।

वाक्यों का तुलनात्मक विवेचन।

स्वतंत्र साहित्यिक विचार, दृष्टिकोण एवं शैली का निर्माण।

कविता का पाठ्यक्रम में स्थान

"काव्य" अनुभूति का विषय है । प्रश्न उठता है कि अनुभूति को सजग कैसे किया जाए? रस की उत्पत्ति के विषय में भट्ट लोलट्ट, श्री शंकुक, भट्टनायक तथा अभिनव गुप्त आचार्यों ने अपने विभिन्न मत प्रचलित किये । अभिनव गुप्त के अभिव्यक्तिवाद के अनुसार भाव तथा रस संस्कार रूप में श्रोता के हृदय में विद्यमान रहते हैं । काव्य में लिखे हुए विभाव, अनुभाव और संचारीभाव इन्हीं सोई हुई भावनाओं को जगा देते हैं और

निश्चय ही श्रोता के हृदय में पूर्ण आनन्द हिलोरें लेने लगता है । भाव व्यक्तिगत होते हुए भी काव्यानन्द व्यापक और विशाल रूप धारण कर लेता है ।

टिप्पणी

बाल्यकाल के आरंभ में छोटे–छोटे संगीत में, कविता में बच्चों को अपरिमित आनन्द प्राप्त होता है, किन्तु धीरे–धीरे उन्हें कविता से अरुचि होने लगती है । इसका मूल कारण कविताओं के अर्थ से बोझिल बना देना है।

कविता शिक्षण के उद्देश्य को तीन स्तरों पर बांटा गया है–

1. प्राथमिक स्तर पर

- कविता के द्वारा आनंद का वातावरण उत्पन्न करना।
- कविता गाकर अभिनय भी करना।
- कविता के प्रति रुचि उत्पन्न करना।
- गति, लय एवं स्वर का ज्ञान उत्पन्न करना। समूह गीत के द्वारा एकता का परिचय देना। कविता के आधार पर अन्य वस्तुओं की जानकारी देना।

2. उच्च प्राथमिक व माध्यमिक स्तर पर

- भाव को समझने की क्षमता उत्पन्न करना।
- कविता के स्वर में गति, लय भाव एवं आरोह–अवरोह के अनुसार कविता वाचन का ज्ञान देना।
- कविता को रंगमंच के रूप से भी प्रस्तुत करना।

3. उच्चतर माध्यमिक स्तर पर

- कवि की अनुभूति का ज्ञान कराना।
- सौंदर्य अनुभूति का ज्ञान कराना।
- कविता का आलोचनात्मक अध्ययन कराना
- छात्रों की कल्पना शक्ति को विकसित कराना।
- कविता की विभिन्न विधाओं का ज्ञान प्रदान कराना।
- छात्रों को भी कविता लिखने की प्रेरणा देना।

कविता शिक्षण के सोपान/ प्रविधियां

कविता शिक्षण के सोपान का अर्थ है शिक्षक द्वारा विषय–वस्तु को बताने के लिए अपनाई गई प्रक्रिया की रूपरेखा।

शिक्षक कविता पाठ पढ़ाते समय किस–किस प्रक्रिया को किस क्रम में अपनाता है यही शिक्षण प्रक्रिया, सोपान अथवा प्रविधि कहलाती है।

कविता पाठ शिक्षण के निम्नलिखित सोपान हैं–

1. प्रस्तावना/भूमिका/परिचय
2. उद्देश्य कथन तथा प्रस्तुतीकरण
3. अध्यापक द्वारा सस्वर वाचन/छात्रों द्वारा अनुकरण वाचन।

4. केंद्रीय भाव ग्रहण के प्रश्न।
5. स्पष्टीकरण एवं सौंदर्य अनुभूति।
6. अध्यापक द्वारा द्वितीय आदर्श वाचन या सस्वर वाचन।
7. अर्थ ग्रहण एवं सौंदर्य बोध परीक्षण।
8. रचनात्मक कार्य।

कविता शिक्षण की विधियां

1. गीत विधि।
2. अभिनय विधि।
3. समीक्षा विधि या प्रश्नोत्तर विधि/मूल्यांकन विधि।
4. अर्थबोध विधि।
5. व्याख्या या व्याख्यात्मक विधि।
6. व्यास प्रणाली (केवल उच्च कक्षाओं के लिए)।
7. तुलनात्मक विधि (दो कवियों की कविताओं)।
8. खण्डान्वय विधि।

4.4.3 कहानी

कहानियाँ सुनना – सुनाना प्राथमिक कक्षाओं में बच्चों को भाषा सिखाने में बहुत मदद करता है। कहानी सुनना बच्चों के लिए रुचिकर होने के साथ–साथ उनकी सृजनात्मकता को भी बढ़ाने वाला होता है। कई बार बच्चे सुनी हुई कहानी में मनचाहा बदलाव करके अपने मित्रों को सुनाते हैं। इसके द्वारा बच्चे न केवल शब्दों के अर्थ बल्कि विभिन्न घटनाओं को भी समझने लगते हैं और साथ ही यह बच्चों की कल्पनाशीलता को भी बढ़ाती है। कहानी इस मायने में भी महत्त्वपूर्ण है कि यह बच्चों में अनुमान लगाने की क्षमता बढ़ाती है जैसे– जब कभी बच्चे कहानी सुन रहे होते हैं तो उनकी जिज्ञासा लगातार बनी रहती है कि आगे क्या होगा? वे अपने स्तर पर अनुमान लगाते रहते हैं और अगर कहानी उनकी सोच के अनुरूप आगे बढ़ती है तो वे ज्यादा आत्मविश्वासी होने लगते हैं और समय के साथ–साथ उनके अनुमान ज्यादा सटीक होते जाते हैं।

मानव जीवन की किसी घटना, भाव आदि पर आधारित कथा को कहानी की संज्ञा दी जाती है। कहानी संक्षिप्त होती है तथा आधुनिक व्यस्त जीवन के लिए उत्कृष्ट साहित्य है। गद्य साहित्य की अनेक विधाओं में कहानी सबसे अधिक लोकप्रिय विधा है।

कहानी के तत्व

कहानी के निम्नलिखित तत्व होते हैं–

कथावस्तु

प्रत्येक कहानी में एक कथानक होता है। जो जीवन के किसी अंश, घटना अथवा मनोभाव पर आधारित होता है।

चरित्र–चित्रण

कहानी में एक या अधिक पात्र होते हैं। पात्रों की विभिन्न चारित्रिक विशेषताओं का ज्ञान प्राप्त करके उनका उल्लेख करने की प्रक्रिया को चरित्र–चित्रण कहते हैं।

टिप्पणी

कथोपकथन

कहानी में एकांकी की भांति किन्हीं दो पात्रों के मध्य विचारों का आदान–प्रदान हो तो उसे कथोपकथन की संज्ञा दी जाती है।

भाषा–शैली

कहानी की भाषा–शैली पात्रों के व्यक्तित्व के अनुसार ऐसी हो जो उनकी मनःस्थिति का सजीव चित्रण प्रस्तुत कर सके। किसी भी पात्र की भाषा विभिन्न परिस्थितियों में परिवर्तनीय होती है।

देशकाल और वातावरण

यह कहानी में व्यक्त समय और समाज का उल्लेख करता है।

उद्देश्य

किसी कहानी में एक निहित उद्देश्य का होना अनिवार्य है। लेखक किसी एक या अनेक जीवन मूल्यों को दृष्टि में रखकर कहानी की रचना करता है।

कहानी शिक्षण के उद्देश्य

- साहित्य के प्रति रुचि विकसित करना।

कहानी में निहित भावों, विचारों, नैतिक मूल्यों को ग्रहण करने की क्षमता विकसित करना।

- सृजनात्मक शक्ति का विकास करना।
- शब्द, सूक्ति, मुहावरे आदि के भंडार को समृद्ध करना।
- अंदाजा लगाने की क्षमता का विकास करना ।
- एकाग्रता को विकसित करना।
- कहानी की रचनाशीलता का विकास करना ।
- कल्पना और स्मरण शक्ति का विकास करना।

कहानी शिक्षण विधि तथा सोपान

प्रस्तावना

सबसे पहले कक्षा में उचित वातावरण बनाकर कहानी कहने का माहौल बनाया जाता है, जिससे कहानी की पढ़ाई को मनोरंजक और प्रेरणादाई बनाया जा सके ।

कहानी कथन/प्रस्तुतीकरण

प्रस्तावना के बाद इस सोपान में कहानी को मजेदार ढंग से सुनाया जाता है। इस सोपान में कहानी को ऐसे सुनाया जाता है कि कहानी सुनने वाले और कहानी सुनाने

वाले आपस में विचारों को बाँट सकें। उचित उतार–चढाव और जिज्ञासा के साथ कहानी को सुना और सुनाया जाता है ।

कहानी सुनना/पुनरावृत्ति

इस सोपान में कहानी सुनाने वाला कहानी सुनने वाले से कहानी सुनता है। इस प्रकार कक्षा में एक–एक करके विद्यार्थी कहानी सुनाते हैं। इस प्रकार कहानी पर चर्चा होती है और बोध प्रश्न भी करवाए जाते हैं । कहानी में नैतिक शिक्षा, भाव, कहानी के चरित्रों, पात्रों पर चर्चा की जाती है।

गृहकार्य

इस सोपान में कहानी से संबन्धित प्रश्नों के आधार पर गृह कार्य करने के लिए दे दिया जाता है।

कहानियों की उपादेयता और उनका उपयोग करना

कहानी सुनाना, हजारों वर्षों से भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग रहा है। कई कहानियाँ तो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को दी जाती रही हैं। लोक कथाओं के साथ–साथ भारतीय समकालीन लेखकों द्वारा लिखित कहानियां और कविताएं प्रारम्भिक कक्षा के लिए एक समृद्ध शिक्षण अधिगम साधन के रूप में प्रयोग कर सकते हैं।

कहानियों को सुनना, पढ़ना विद्यार्थियों को स्वंय अपनी समझ बनाने में समर्थ बनाता है। कथाएँ और कविताएं नये विषयों और शब्दावली का परिचय, अमूर्त विचारों तथा वर्तमान वैज्ञानिक समस्याओं को समझाने में प्रयुक्त होती हैं। इस प्रकार ये अर्थपूर्ण वैज्ञानिक पूछताछ के लिये उत्कृष्ट आधार प्रदान करते हैं।

विद्यार्थियों के स्व–अनुभवों से शुरुआत करना महत्वपूर्ण है खासतौर से छोटे विद्यार्थियों के साथ क्योंकि उन्हें बाहरी दुनिया में जीवन का अधिक अनुभव नहीं होता है। जिससे आपके विद्यार्थी तुरन्त अपने आपको पर्यावरण से जोड़ नहीं पाते जिससे जानकारी को अर्थ प्रदान करना कठिन होता है फ़िर भी यदि आप किसी वस्तु का प्रयोग करते हैं जो स्थानीय हो और उनके लिये समसामयिक हो तो आपको बेहतर सफ़लता प्राप्त होगी।

स्थानीय संसाधनों का उपयोग उन तरीकों का सुझाव देता है कि आप स्थानीय संसाधनों का प्रयोग कर सकते हैं। आपको कुछ मुद्दों पर विचार करने की आवश्यकता होगी जिससे आप विद्यार्थियों में विज्ञान के किसी शीर्षक पर विभिन्न अनुभव बाँट सकें। अधिकांश विद्यार्थी अपने अनुभवों को बांटने के लिये तैयार हैं जो न केवल उन्हें आत्म विश्वास देगा बल्कि आपको यह बतायेगा कि वह पहले से क्या जानते हैं? ताकि आप उनके विचारों को विकसित करने के लिये योजना बनाएं न कि उन्हें वह जानकारी सिखाएं जो वे पहले से जानते हैं।

अपने पाठ में प्रेरक तत्वों की विविधताओं के प्रयोग का कौशल सीधे–सीधे आपकी प्रवृत्ति, व्यक्तित्व, तथा उत्साह से संबन्धित है और आपके विद्यार्थियों को अच्छी तरह से सीखने में सहायता करने के उत्तरदायित्व से सम्बंधित है।

आपके विद्यार्थियों के प्रति आपकी समझ उन्हें अपेक्षित अधिगम लक्ष्यों के प्रति ध्यान केन्द्रित करने में सहायता प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करेगी।

यह क्षमताओं को आपके लिये और अधिक उपयोगी, कार्यकुशल और रोचक बनाता है, क्योंकि आप विभिन्न रुचियों, सक्षमताओं और प्रत्येक विद्यार्थी के लिये सीखने के तरीके में महत्व रखते हैं।

टिप्पणी

4.4.4 नाटक

पारम्परिक सन्दर्भ में, नाटक, काव्य का एक रूप है (दृश्यकाव्य)। जो रचना श्रवण द्वारा ही नहीं अपितु दृष्टि द्वारा भी दर्शकों के हृदय में रसानुभूति कराती है उसे नाटक या दृश्य–काव्य कहते हैं। नाटक में श्रव्य काव्य से अधिक रमणीयता होती है।

श्रव्य काव्य होने के कारण यह लोक चेतना से अपेक्षाकृत अधिक घनिष्ठ रूप से संबद्ध है। नाट्यशास्त्र में लोक चेतना को नाटक के लेखन और मंचन की मूल प्रेरणा माना गया है।

नाटक के तत्व

1. कथावस्तु

अंग्रेजी में इसे 'प्लॉट' की संज्ञा दी जाती है, जिसका अर्थ 'आधार' या 'भूमि' है। नाटक की कथावस्तु पौराणिक, ऐतिहासिक, काल्पनिक या सामाजिक हो सकती है। कथा तो सभी प्रबंधात्मक रचनाओं की रीढ़ होती है। नाटक भी प्रबंधात्मक रचना है।

प्रख्यात कथा इतिहास, पुराण से प्राप्त होता है। जब उत्पाद्य कथा कल्पना पराश्रित होती है, मिश्र कथा कहलाती है। इतिहास और कथा दोनों का योग रहता है। इन कथा आधारों के बाद नाटक कथा को मुख्य तथा गौण अथवा प्रासंगिक भेदों में बांटा जाता है, इनमें से प्रासंगिक के भी आगे पताका और प्रकरी हैं।

पताका प्रासंगिक कथावस्तु मुख्य कथा के साथ अंत तक चलती है जबकि प्रकरी बीच में ही समाप्त हो जाती है। इसके अतिरिक्त नाटक की कथा के विकास हेतु कार्य व्यापार की पांच अवस्थाएं– प्रारंभ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम होती हैं।

इसके अतिरिक्त नाटक में पांच संधियों का प्रयोग भी किया जाता है। वास्तव में नाटक को अपनी कथावस्तु की योजना में पात्रों और घटनाओं में इस रूप में संगति बैठानी होती है कि पात्र कार्य व्यापार को अच्छे ढंग से अभिव्यक्त कर सकें। नाटककार को ऐसे प्रसंग कथा में नहीं रखने चाहिए जो मंच पर संभव न हों। यदि कुछ प्रसंग बहुत आवश्यक हैं तो नाटककार को उसकी सूचना कथा में दे देनी चाहिए। नाटक की कथावस्तु पौराणिक, ऐतिहासिक, काल्पनिक या सामाजिक हो सकती है।

2. पात्र एवं चरित्र–चित्रण

नाटक में नाटक का अपने विचारों, भावों आदि का प्रतिपादन पात्रों के माध्यम से ही करना होता है। अतः नाटक में पात्रों का विशेष स्थान होता है। प्रमुख पात्र अथवा नायक कला का अधिकारी होता है तथा समाज को उचित दशा तक ले जाने वाला होता है। भारतीय परंपरा के अनुसार वह विनयी, सुंदर, शालीन, त्यागी, उच्च कुलीन होना चाहिए। किंतु आज नाटकों में किसान, मजदूर आदि कोई भी पात्र हो सकता है।

पात्रों के संदर्भ में नाटककार को केवल उन्हीं पात्रों की सृष्टि करनी चाहिए जो घटनाओं को गतिशील बनाने में तथा नाटक के चरित्र पर प्रकाश डालने में सहायक होते हैं।

पात्रों का सजीव और प्रभावशाली चरित्र ही नाटक की जान होता है। कथावस्तु के अनुरूप नायक धीरोदात्त, धीर ललित, धीर शांत या धीरोद्धत हो सकता है।

टिप्पणी

3. भाषा शैली

नाटक सर्वसाधारण की वस्तु है अतः उसकी भाषा शैली सरल, स्पष्ट और सुबोध होनी चाहिए, जिससे नाटक में प्रभाविकता का समावेश हो सके तथा दर्शक को क्लिष्ट भाषा के कारण बौद्धिक श्रम न करना पड़े अन्यथा रस की अनुभूति में बाधा पहुंचेगी। अतः नाटक की भाषा सरल व स्पष्ट रूप में प्रवाहित होनी चाहिए।

4. देशकाल वातावरण

देशकाल वातावरण के चित्रण में नाटककार को युग के प्रति विशेष सतर्क रहना आवश्यक होता है। पश्चिमी नाटक में देशकाल के अंतर्गत समय, स्थान और कार्य की कुशलता का वर्णन किया जाता है। वस्तुतः ये तीनों तत्त्व' यूनानी रंगमंच 'के अनुकूल थे। जहां रात भर चलने वाले लंबे नाटक होते थे और दृश्य परिवर्तन की योजना नहीं होती थी। परंतु आज रंगमंच के विकास के कारण संकलन का महत्त्व समाप्त हो गया है। भारतीय नाट्यशास्त्र में इसका उल्लेख न होते हुए भी नाटक में स्वाभाविकता, औचित्य तथा सजीवता की प्रतिष्ठा के लिए देशकाल वातावरण का उचित ध्यान रखा जाता है। इसके अंतर्गत पात्रों की वेशभूषा तत्कालिक धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक परिस्थितियों में युग का विशेष स्थान है। अतः नाटक के तत्वों में देशकाल वातावरण का अपना महत्त्व है।

4. संवाद

नाटक में नाटकार के पास अपनी ओर से कहने का अवकाश नहीं रहता। वह संवादों द्वारा ही वस्तु का उद्घाटन तथा पात्रों के चरित्र का विकास करता है। अतः इसके संवाद सरल , सुबोध , स्वभाविक तथा पात्रअनुकूल होने चाहिए। गंभीर दार्शनिक विषयों से इसकी अनुभूति में बाधा होती है। इसलिए इनका प्रयोग नहीं करना चाहिए। नीर सत्ता के निरावरण तथा पात्रों की मनोभावों की मनोकामना के लिए कभी–कभी स्वागत कथन तथा गीतों की योजना भी आवश्यक समझी गई है।

5. रस

नाटक में नवरसों में से आठ का ही परिपाक होता है। शांत रस नाटक के लिए निषिद्ध माना गया है। वीर या श्रृंगार में से कोई एक नाटक का प्रधान रस होता है।

6. अभिनय

अभिनय नामक तत्व कविता, कहानी, उपन्यास आदि में नहीं होता, यह नाटक का अद्वितीय तत्व है। यह नाटक की प्रमुख विशेषता है। नाटक को नाटक के तत्त्व प्रदान करने का श्रेय इसी को है। यही नाट्यतत्व का वह गुण है जो दर्शक को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। इस संबंध में नाटककार को नाटकों के रूप, आकार , दृश्यों की सजावट और उसके उचित संतुलन, परिधान, व्यवस्था, प्रकाश व्यवस्था आदि का पूरा ध्यान रखना चाहिए। दूसरे शब्दों में लेखक की दृष्टि रंगशाला के विधि–विधानों की ओर विशेष रूप से होनी चाहिए इसी में नाटक की सफलता निहित है।

टिप्पणी

अभिनय भी नाटक का प्रमुख तत्त्व है। इसकी श्रेष्ठता पात्रों के वाक्चातुर्य और अभिनय कला पर निर्भर है।

मुख्य रूप से अभिनय चार प्रकार का होता है–

1. आंगिक अभिनय (शरीर से किया जाने वाला अभिनय)।
2. वाचिक अभिनय (संवाद का अभिनय, रेडियो नाटक)।
3. आहार्य अभिनय (वेशभूषा, मेकअप, स्टेज विन्यास्, प्रकाश व्यवस्था आदि)।
4. सात्विक अभिनय (अंतरात्मा से किया गया अभिनय, रस आदि)।

7. उद्देश्य

समाज के हृदय में रक्त का संचार करना ही नाटक का उद्देश्य होता है। नाटक के अन्य तत्त्व इस उद्देश्य के साधन मात्र होते हैं। भारतीय दृष्टिकोण सदा आशावादी रहा है इसलिए संस्कृत के प्रायः सभी नाटक सुखांत रहे हैं। पश्चिम नाटककारों ने या साहित्यकारों ने साहित्य को जीवन की व्याख्या मानते हुए उसके प्रति यथार्थ दृष्टिकोण अपनाया है। उसके प्रभाव से हमारे यहां भी कई नाटक दुखांत में लिखे गए हैं , किंतु सत्य है कि उदास पात्रों के दुखांत अंत से मन खिन्न हो जाता है। अतः दुखांत नाटकों का प्रचार कम होना चाहिए।

शिक्षण में नाटक का महत्व

सभी कलाओं की तरह, नाटक छात्रों को नए तरीकों से संवाद करने और समझने की अनुमति देता है। नाटक एक ऐसी दुनिया में रहने और काम करने के लिए छात्रों को तैयार करने के लिए एक महत्वपूर्ण उपकरण है जो पदानुक्रम के बजाय तेजी से टीम–ओरिएंटेड है।

नाटकीय कला शिक्षा समस्या समाधान में रचना को उत्तेजित करने का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। यह छात्रों को अपने विश्व के बारे में और खुद के बारे में बता सकता है। नाटकीय अन्वेषण छात्रों को भावनाओं, विचारों और सपनों के लिए एक आउटलेट प्रदान कर सकता है, जिनके पास अन्यथा व्यक्त करने का साधन नहीं हो सकता है।

नाटक समाज में मानव की एक कला है, जिससे मानव अपना सर्वांगीण विकास करता है, जैसे– सामाजिक विकास, सृजनात्मक विकास, पारंपरिक धरोहर, कलात्मक विकास, शारीरिक विकास, मानसिक विकास इत्यादि।

4.4.5 पत्र

(नोट– पत्र, आलेख, व्यंग्य आदि का विस्तृत अध्ययन आप इस इकाई से पहले कर चुके हैं। यहां सारभूत तत्व स्पष्ट किए जा रहे हैं।) पत्र लेखन हिंदी भाषा शिक्षण का एक आवश्यक बिंदु है। इसके लिए आवश्यक है कि छात्रों को हिन्दी भाषा की शुद्ध वर्तनी सिखाई जाए जिससे वे हिन्दी भाषा को स्पष्ट रूप से व्यक्त कर सकें।

छात्रों में मौखिक अभिव्यक्ति के साथ–साथ लिखित अभिव्यक्ति का भी विकास किया जाए जिससे छात्र सभी प्रकार के अधिगम को सीख सकें। छात्र जो बातें मौखिक

रूप से नहीं व्यक्त कर सकते हैं वह वे लिखित रूप से प्रस्तुत करने में सक्षम हो जाते हैं।

अपने विचारों एवं भावों को लिखित अभिव्यक्ति प्रदान करना जिससे उनको पूर्ण रूप से समझाया जा सके। विषय में विद्यमान अनेकता के भावों को एकता के रूप में प्रस्तुत करने की कला का विकास भी इसके द्वारा किया जा सकता है।

पत्रलेखन शिक्षण की आवश्यक बातें

पत्र लेखन के माध्यम से छात्रों को पाठ्यक्रम में सुगमता होती है। निश्चय ही पत्र लेखन–शिक्षण का यह सर्वप्रथम आवश्यक बिन्दु है कि छात्रों के अधिगम को सुगम एवं स्पष्ट रूप से उनके समक्ष उपस्थित किया जाए ताकि अधिगम को किसी प्रकार की कठिनाइयों से रहित होकर वह पूर्ण रूप से सीख सकें।

छात्रों में भाषा–शिक्षण में आने वाली सभी प्रकार की रुकावटों को दूर करना आवश्यक है ताकि छात्र भाषा के संबंध में कोई कठिनाई अनुभव न करें।

विराम चिन्हों का कहाँ पर और किस प्रकार प्रयोग करना है; इसके बारे में बताना भी छात्रों के पत्र लेखन शिक्षण के अंतर्गत एक आवश्यक बिन्दु है।

4.4.6 आलेख

आलेख से तात्पर्य उस लेख से है जिसमें किसी घटना, किसी विषय (आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक) को संक्षिप्त शब्दावली के माध्यम से लिखित रूप में प्रस्तुत किया जाता है। दूसरे शब्दों में किसी भी प्रयुक्त विषय शीर्षक पर अपने भाव अभिव्यक्ति की लेखन शैली आलेख का रूप धारण करती है।

आलेख शिक्षण की आवश्यक बातें

1. आलेख लिखना एक कला है इस कला से छात्रों के मन के भावों को अभिव्यक्त करने हेतु प्रेरित किया जाता है।
2. आलेख शिक्षण के माध्यम से छात्रों को विभिन्न क्षेत्रों से संबंधित विषय शीर्षक के ज्ञान से अवगत कराया जा सकता है।
3. आलेख शिक्षण लेखन का सशक्त माध्यम है जो भावी विधार्थियों के मानसिक विकास हेतु आवश्यक है।
4. आलेख शिक्षण लेखन की प्रक्रिया में जाग्रति लाने हेतु सबल माध्यम है।
5. आलेख शिक्षण से छात्रों के मन में छुपे विभिन्न क्षेत्रों के विषय शीर्षक के मनोभावों को निःसंकोच प्रकट किया जा सकता है।

4.4.7 व्यंग्य

व्यंग्य से तात्पर्य उस अनुभव या भाव से है जो मन को प्रसन्नचित करता है। किसी प्रकार की कोई घटना, काव्य प्रसंग, गद्य की विधाओं का रूप जैसे– कहानी, नाटक, एकांकी; जिसमें हास्य रस का पुट हो व्यंग्य कहलाता है। ऐसी रचनाएँ भी व्यंग्य कहलती हैं जिनके अंतर्गत चुटकुलों को सर्वसम्मति से स्थान दिया गया है।

टिप्पणी

व्यंग्य शिक्षण की आवश्यक बातें

1. इसमें छात्रों को हास्य रस का ज्ञान अति आवश्यक रूप से कराना अनिवार्य है।
2. विभिन्न प्रकार की रचनाओं के माध्यम से हास्य की प्रधानता को समझाना आवश्यक है।
3. चित्रों व कलाकृतियों के माध्यम से हास्य/व्यंग्य का रूप दर्शाकर भी व्यंग्य को समझाया जा सकता है।
4. प्रसिद्ध व्यंग्यकारों की कृतियों को व्याख्या स्वरूप समझा कर व्यंग्य रूप प्रदर्शित कर सकते हैं।

4.4.8 चित्र कथा/कॉमिक्स/कार्टून

ये गद्य की आधुनिक विधाओं के रूप हैं। ये विधाएँ बाल साहित्य के अंतर्गत अत्यधिक प्रचलित हैं। चित्र कथा या कॉमिक्स या कार्टून में चित्रों और चित्रों के चरित्रों के नाम से विभिन्न प्रकार की कहानियों का संचालन होता है।

कार्टून इसका आधुनिक रूप है। इसके माध्यम से वर्तमान समय की संगतियों और कुसंगतियों का प्रत्यक्ष विवरण कार्टून चरित्र के द्वारा किया जाता है, जोकि एक प्रेरणादायक स्त्रोत बनते हैं।

चित्रकथा/कॉमिक्स/कार्टून के शिक्षण की आवश्यक बातें

1. कॉमिक्स/कार्टून के शिक्षण में शिक्षक के द्वारा विद्यार्थियों को कार्टून के चरित्र के सकारात्मक व नकारात्मक दोनों पहलुओं का ज्ञान कराया जाता है।
2. कॉमिक्स/कार्टून शिक्षण में कार्टून की विभिन्न शैलियों को रोचक बनाने के लिए शिक्षक विविध क्रियाकलापों को संचालित करते हैं।
3. चित्रकथा/कॉमिक्स/कार्टून गघ की ऐसी रोचक विधा है जिसके शिक्षण में शिक्षक भाव भंगिमाओं व हास्य रस से परिपूर्ण होकर गंभीर सामाजिक समस्या को भी उजागर कर विद्यार्थियों को जाग्रत कर सकता है।

4.4.9 जीवनी

जीवनी साहित्य में प्रमुखता एक व्यक्ति को मिलती है जिसके जीवन की मार्मिक और सारपूर्ण घटनाओं का अंकन नहीं चित्र होता है। इस दृष्टि से वह इतिहास और उपन्यास के बीच स्थित होती है।

जीवनी में लेखक की नायक या नायिका के प्रति संवेदना तथा उससे संबंधित सूचनाएँ और उसकी प्रतिभा–दोनों महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं क्योंकि उसकी रचनात्मक कल्पना को मनमानी छूट नहीं होती। उसके लेखन में सर्वज्ञता की अपेक्षा संवेदना और निष्पक्षता अधिक आवश्यक है। जीवनी में नायक की कमियां व विशेषताएँ बताया जाना आवश्यक है।

जीवनी शिक्षण की आवश्यक बातें

1. जीवनी शिक्षण में नायक/नायिका के जीवन की रोचक घटनाओं को चुनकर विधार्थियों का ध्यान आकर्षित किया जा सकता है।

2. जीवनी शिक्षण में शिक्षक विद्यार्थियों को अनुचित या गलत घटनाक्रम की सूचना देकर गुमराह नहीं करता बल्कि वास्तविकता के पहलू को ही सर्वश्रेष्ठ मानकर नायक–नायिका का वाचन करता है।
3. जीवनी शिक्षण में शिक्षक का विद्यार्थियों को नायक व नायिका का विवेचन स्पष्ट और सरल समझने योग्य होना अति आवश्यक है।

4.4.10 आत्मकथा

इस विधा में रचनाकार दृष्टा एवं भोक्ता दोनों बने रहता है। मानव जीवन में अटूट आस्था का प्रकट होना, आत्मकथा का प्रमुख तत्व है।

देशकाल का तथा वातावरण का सही ज्ञान आत्मकथा में आवश्यक है। साथ ही मूल घटना का कोई पक्ष अस्पष्ट नहीं रहे क्योंकि घटना सूत्र कहीं तो प्रधान रूप धारण करता है और कहीं गौण रहता है। इस विधा में लेखक के कई अज्ञात पहलू प्रकट होते हैं। इसमें घटनाओं के बदले व्यक्तित्व प्रकाशन एवं आत्मोद्घाटन पर बल दिया जाता है।

आत्मकथा शिक्षण की आवश्यक बातें

1. आत्मकथा शिक्षण में शिक्षक विभिन्न प्रकार के चर्चित महापुरुषों, लेखकों, साहित्यकारों का विस्तृत वर्णन करता है जिससे विद्यार्थियों को स्मरण रहे।
2. आत्मकथा में नायक/नायिका के रोचक पहलू का ही वर्णन किया जाता है। कभी–कभी कोई सूक्ष्म घटना भी बड़ी सामाजिक समस्याओं का निदान करते हुए प्रेरणा स्रोत बन जाती है।

4.4.11 संस्मरण

संस्मरण का तात्पर्य है सम्यक अर्थात जब लेखक स्वंय की अनुभूत की गई घटनाओं का मार्मिक वर्णन अपनी स्मृति के आधार पर करता है, तो वह संस्मरण कहलाता है। संस्मरण कथा न होकर कथाभास है। संस्मरण में अतीत का परिवेश अनिवार्य होता है। यह आत्मकथा तथा निबंध के बीच की विधा है। इसमें लेखक के दृष्टिकोण की प्रधानता रहती है। वर्तमान काल में संस्मरण ने गध की विधाओं में विशेष स्थान बनाया है।

संस्मरण शिक्षण की आवश्यक बातें

1. संस्मरण में लेखक के स्वंय के अनुभवों का वृतांत शिक्षक को स्वंय के अनुभव आभास करके विद्यार्थियों को अद्भूत कराना होता है।
2. संस्मरण शिक्षण में शिक्षक के द्वारा बताई गई शब्दावली से विद्यार्थियों को शिक्षित किया जाता है।
3. संस्मरण यथार्थ का पहलू है इसमें मनगढंत या अनुचित कथा वृतांत नहीं किया जा सकता है।

4.4.12 यात्रावृत्त

'यात्रा' शब्द का अर्थ है जाना, गति, सफर। एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने की क्रिया।

टिप्पणी

डॉ हरदेव बाहरी हिंदी शब्द कोश में इसका अर्थ बताते हैं– 'एक स्थान से दूसरे स्थान को जाना, प्रस्थान या प्रयाण, यात्रा व्यवहार (जैसे जीवन यात्रा)।

यात्रा वृत्त में व्यक्तियों या समस्याओं के अंकन के स्थान पर प्रदेश–विशेष का आंचलिक इतिवृत्त होता है। यात्रा साहित्य के लेखक को यात्रा स्थल के प्रति सजग सहानुभूतिपूर्ण वहाँ के सांस्कृतिक रीति–रिवाजों तथा इतिहास का ज्ञाता भी होना चाहिए। कुछ यात्राओं द्वारा मनोरंजन के साथ–साथ युगीन समस्याओं को भी उठाया गया है।

कहीं–कहीं इनमें साहित्यिकता कम तथा भौगोलिकता एवं धर्म प्रधानता अधिक है। यात्रा साहित्य में लेखक को तटस्थ रहना आवश्यक है।

यात्रावृत्त लेखन के शिक्षण संदर्भित मुख्य बातें

यात्रावृत्त लेखन का शिक्षण करते समय शिक्षक को इस विधा से संबन्धित निम्नलिखित अहम बातों का ध्यान रखना चाहिए–

- यात्रावृत्त अकाल्पनिक गद्य विधा है । इसमें यात्राकार सामना की गई परिस्थितियों के यथार्थ अंकन का प्रयास करता है।
- कलात्मक अभिव्यक्ति होने के कारण कल्पना को नकारा नहीं जा सकता परन्तु यात्रावृत्त में चित्रित प्रत्येक दशा यात्रकार की निजी अनुभूति होती है, अनुभूतियों को वह यथातथ्य सिद्ध कर सकता है। कल्पना का संयोग उसे रोचक बना देता है।
- लेखक की भावनाएँ उस परिवेश और वहाँ के मनुष्य की जीवनगत संवेदना को आत्मसात करती हैं, वह यात्रावृत्त मानों वहाँ का मानवीय इतिहास हो, जिसमें घटनाओं के साथ–साथ व्यक्तिचेतना, संस्कार, सांस्कृतिक जीवन, सामाजिक और आर्थिक क्रियाएँ, राजनीतिक और भौगोलिक स्थितियाँ, विचार तथा धारणाएं समाहित होती हैं।
- यात्रा साहित्य मनुष्य के उड़न–छू मन द्वारा की गई सैर की निजगत अनुभूतियों से आप्लावित ऐसी अभिव्यक्ति है जो पाठक को उस परिवेश और समय के साथ यात्रा कराती है ...अनुभव कराती है...उस जीवन की संवेदनाएँ तथा जीवन को उल्लास व उमंग से भर देती है।
- यात्रा में पड़ने वाले कुछ क्षण के मेहमान मार्ग, जंगल, पर्वत, व्यक्ति और सामाजिक जीवन–यात्री इनमें डूबता उतराता चलता जाता है। इन सब को वह अपने नजरिये से देखता है। यहाँ यात्रा व्यक्ति द्वारा होती है। यात्रा वृत्तान्त में वर्णन नितांत व्यक्तिगत दृष्टि से होता है। "यात्रा के समय उसका व्यक्तित्व और भी हावी हो जाता है क्योंकि व्यक्ति को अपनी अभिरुचि यथा–खानपान, वेशभूषा, पारिवारिक सुख सुविधा आदि का जितना तीव्र बोध प्रवास के क्षणों में होता है उतना परिजनों और आत्मीय बंधुओं के साथ रहते नहीं होता !"
- वर्णन की रोचकता यात्रावृतान्त का मूल तत्व है। पढ़ते समय जो चीज मन में रोमांच पैदा कर दे तथा पाठक की जिज्ञासा शब्द–दर–शब्द बढ़ती ही जाये। रोचकता ही ऐसा तत्व है जो यात्रा साहित्य की पुस्तक को पर्यटन पुस्तिकाओं से अलगाता है।

टिप्पणी

- यात्री का उद्देश्य समय निकालने के लिये घूमना–फिरना नहीं होता। वह सैर किए गए क्षणों को अनुभव करता है, उनसे आत्मीयता स्थापित करता है। यात्राकार का जुड़ाव इस कदर गहरा होता है कि वहाँ का प्राकृतिक सौन्दर्य जनजीवन, समस्याएँ आदि से वह संवेदना के गहरे स्तर पर तादात्म्य तो स्थापित करता ही है साथ ही साथ एक कलाकार की भेदक दृष्टि द्वारा कलात्मक वर्णन से वहाँ के दृश्यों को प्रत्यक्ष कर देता है।
- संवेदना के गहरे स्तर पर जुड़कर सौन्दर्य दृष्टि वृत्तान्त को साहित्यिक रूप देती है। लेखक का ज्ञान और अनुभव यात्रा में पड़ने वाली प्रत्येक चीज को समझने में सहायक होता है। वह अपने अनुभवों के आधार पर निष्कर्ष निकालता है, तुलना करता है और कारणों की खोज करता है। भाषा और शैली का प्रयोग ही वर्णन की रुक्षता से बचाता है। लेखक प्रायः लौटकर स्मृति के आधार पर या यात्रा में लिखी गई डायरी के माध्यम से ही बाद में संपादित करके यात्रावृत्त की रचना करते हैं। वे यात्रा के समय अपने परिजनों या परिचितों को लिखे गये पत्रों को यात्रानुभवों के रूप में काम में लेते हैं। इससे शैली में आत्मीयता या रोचकता आ जाती है।

4.4.13 उपन्यास

उपन्यास में पात्रों व परिस्थितियों की प्रधानता होती है। इसलिए उपन्यास–शिक्षण में चरित्र चित्रण के माध्यम से विद्यार्थियों को पात्रों के मनोभावों, परिस्थितियों तथा भावनाओं से क्रमबद्धतापूर्ण जोड़ने का प्रयास किया जाता है। जिसके द्वारा विद्यार्थियों की कल्पना–शक्ति तथा चिंतन–मनन शक्ति, ग्राह्यात्मकता आदि में वृद्धि होती है।

उप + न्यास = उपन्यास। अर्थात समय पर रखी हुई वस्तु जिसे पढ़कर ऐसा प्रतीत हो कि यह हमारी ही कहानी हो हमारे ही शब्दों में लिखी गई हो।

इस विधा में मनुष्य के आसपास के वातावरण, दृश्य और नायक आदि सभी मौजूद होते हैं। इस में मानव चित्र का बिंब निकट रखा गया होता है और जीवन का चित्र एक कागज पर उतरता है।

उपन्यास का स्वरूप

उपन्यास शब्द उप तथा न्यास शब्दों के मेल से बना है , जिसका अर्थ है निकट रखी हुई वस्तु–साहित्य के अनुसार उपन्यास वह कृति है जिसे पढ़कर ऐसा लगे कि यह हमारी ही है इसमें हमारे ही जीवन का प्रतिबिम्ब हमारी ही भाषा में प्रयुक्त किया जाता है। उपन्यास आधुनिक युग की देन है। हमारे बाहय अन्तः व बाह्य जगत की जितनी यथार्थ एवं सुन्दर अभिव्यक्ति उपन्यास में दिखाई पड़ती है उतनी किसी अन्य विधा में नहीं।

इसमें युग विशेष के सामाजिक जीवन और जगत की झंकिया संजोई जाती हैं। मनोवैज्ञानिक व सबसे मार्मिक अभिव्यक्ति भी उपन्यास साहित्य में मिलती है। उपन्यास के द्वारा लेखक पाठक के सामने अपने ह्रदय की कोई विशेष बात का कोई नवीन मत या विचार प्रस्तुत करना चाहता है,साहित्य के जितने रूप विधान होते हैं उनमें उपन्यास का रूप विधान सर्वाधिक लचीला है। वह परिस्थिति के अनुसार कोई भी रूप धारण कर

लेता है, इसलिए इसमें एक दिन, एक वर्ष या एक युग की की कथा भी रह /हो सकती है। इसमें घटनाएं कैसी भी हों परन्तु उनमें तारतम्य /सम्बन्ध अवश्य होता है। प्रेमचंद ने उपन्यास को "मानव चरित्र का चित्र कहा है।"

टिप्पणी

उपन्यास के तत्त्व

1. कथावस्तु

कथावस्तु उपन्यास का प्राण होता है। इस की कथावस्तु जीवन से सम्बन्धित होते हुये भी अधिकतर काल्पनिक होती है , किन्तु काल्पनिक कथानक स्वाभाविक एवं यथार्थ प्रतीत हो अन्यथा पाठक उसके साथ तादात्म्य (ताल –मेल) नहीं कर सकता /पायेगा। उपन्यासकार को यथार्थ जीवन से सम्बन्धित केवल विश्वसनीय और सम्भव घटनाओं को ही अपनी रचनाओं में स्थान देना चाहिए ,तथा तथ्यों की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। यही गुण उपन्यास को कहानी से अलग करता है। इसमें एक कथा मुख्य होती है तथा अन्य कथाएँ गौण हैं जो कि मुख्य कथा को गति देती रहती हैं, किन्तु गौण कथा मुख्य कथा की सहायक तथा विकास करने वाली होनी चाहिए। उपन्यास की सफलता इसी में है कि सभी घटनाएं एक सूत्र में पिरोई हुई हों।

2. पात्र एवं चरित्र–चित्रण

उपन्यास का मुख्य विषय मानव और उसका चरित्र है। उपन्यास में पात्रों का चरित्र–चित्रण क्रियाकलापों के द्वारा होना चाहिए इसी में उपन्यास की सफलता है। वैसे उपन्यासकार अपनी ओर से भी चरित्र–चित्रण करने में स्वतंत्र होता है। उपन्यास में पात्र दो प्रकार के होते हैं–

(क) प्रधान पात्र

ये शुरू से लेकर अंत तक उपन्यास के कथानक को गति देते हैं तथा लक्ष्य की ओर अग्रसर करते हैं।

ये पात्र कथा के नायक होते हैं इन्हीं के इर्द–गिर्द संपूर्ण कथा चलती रहती है।

(ख) गौण पात्र

ये प्रधान पात्रों के सहायक बनकर आते हैं। इनका कार्य कथानक को गति देना, वातावरण की गंभीरता को कम करना, वातावरण की सृष्टि करना तथा अन्य पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालना भी होता है।

बीच–बीच में उपस्थित होकर ये पात्र प्रधान पात्र अथवा कथावस्तु को गति देते रहते हैं।

कभी ये हंसाने का कार्य करते हैं तो कभी दर्शकों का मनोरंजन करने के लिए उपस्थित होते हैं।

3. संवाद

संवादों का प्रयोग कथानक को गति देना, नाटकीयता लाना, पात्रों के चरित्र का उद्‌घाटन करना, वातावरण की सृष्टि करना आदि कई उद्देश्यों से होता है। कथोपकथन (संवाद) पात्रों के भावों, विचारों, संवेदनाओं, मनोवृत्तिओं आदि को व्यक्त करने में

सहायक होते हैं। कथोपकथन की कथा और विषय पात्रों के अनुकूल होना चाहिए। एक सफल उपन्यास के सफल कथोपकथन कौतूहलवर्द्धक, नाटकीयता से पूर्ण व स्वाभाविक होते हैं। उनमें मुश्किल नहीं होती है।

टिप्पणी

4. वातावरण

देशकाल वातावरण का निर्माण प्रत्येक उपन्यास में आवश्यक है। पाठक उपन्यास के युग और उसकी परिस्थिति से बहुत दूर होता है। उसे पूरी तरह समझने के लिए उसे उपन्यासकार के वर्णन का सहारा लेना पड़ता है इसीलिए पाठक के प्रति उपन्यासकार का दायित्व बढ़ जाता है। इसके अतिरिक्त लेखक को पात्रों की मानसिकता स्थिति, परिस्थितियों आदि का भी चित्रण करना पड़ता है। पात्रों के बाह्य–आंतरिक वातावरण का सफल चित्रण लेखक तभी कर सकता है जब वह अपने देश काल वेश –भूषा आदि के बारे में पूरी जानकारी रखता है।

5. भाषा शैली

उपन्यास में अभिव्यक्ति कला का विशेष महत्व होता है। भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम है और शैली उसके कथन का ढंग। भाषा के द्वारा उपन्यासकार पाठक तक सम्प्रेषण करता है। अतः उसका सुबोध होना आवश्यक है। उपन्यास में अलंकार, मुहावरे, लोकोक्ति आदि का यथा स्थान प्रयोग होना चाहिए। कथावस्तु की अभिव्यक्ति की अनेक शैलियां हो सकती हैं। ऐतिहासिक उपन्यास अधिकतर कथ्यात्मक शैली में लिखे जाते हैं।

6. जीवन दर्शन व उद्देश्य

गद्य साहित्य सृष्टि के पीछे कोई न कोई भारतीय मान्यता या उद्देश्य आदि अवश्य रहता है। एक अनुभवी उपन्यासकार का जीवन और जगत के प्रति उसकी प्रत्येक समस्या के प्रति एक विशेष दृष्टिकोण होता है जो किसी न किसी रूप में उपन्यास के पात्रों व घटनाओं के माध्यम से अभिव्यक्ति पाते हैं।

उपन्यास शिक्षण का उद्देश्य

उपन्यास गद्य साहित्य की एक विद्या है जो मुख्य रूप से सरल भाषा में समाज तथा जीवन से जुड़े प्रसंगों की निकट व्याख्या करती है।

उपन्यास शिक्षण के निम्नलिखित उद्देश्य हैं–

- छात्रों के शब्द भंडार में वृद्धि करना।
- छात्रों को स्वस्थ मनोरंजन की ओर उन्मुख करना।
- छात्रों को द्रुत गति से मौन वाचन का अभ्यास कराना।
- छात्रों को भाषा एवं शैली के विभिन्न रूपों से परिचित कराना।
- छात्रों की कल्पनाशक्ति और अंतर्दृष्टि को विभिन्न मामलों में बढ़ाना।
- छात्रों को व्यक्तिगत दृष्टिकोण, प्रतिक्रिया, विचार आदि व्यक्त करने योग्य बनाना।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

5. कविता को 'भाव भिव्यंजना युक्त कलात्मक रूप से सज्जित भाषा' के रूप में किसने परिभाषित किया?

   (क) आचार्य रामचंद्र शुक्ल (ख) श्यामसुंदर दास

   (ग) रसगंगाधर (घ) प्रेम

6. अभिनय किस विधा का अद्वितीय तत्व है?

   (क) उपन्यास (ख) कहानी

   (ग) कविता (घ) नाटक

4.5 हिंदी भाषा शिक्षण का मूल्यांकन

शिक्षण एक सोद्देश्य प्रक्रिया है, जिसका सीखने से घनिष्ठ संबंध होता है। अतः वर्तमान युग में शिक्षण–अधिगम को एक प्रत्यय के रूप में स्वीकार किया जा रहा है क्योंकि पाठ्यवस्तु का अपना स्वरूप होता है, जिससे शिक्षण के विभिन्न उद्देश्यों को प्राप्त करके अधिगम के विभिन्न स्तरों को प्रभावित किया जाता है।

शिक्षा में मूल्यांकन एक नवीन अवधारणा है। प्राचीनकाल में शैक्षिक मूल्यांकन छात्र–निष्पत्तियों की जांच से किया जाता था परन्तु मूल्यांकन की नवीन धारणा परम्परागत परीक्षा की धारणा से भिन्न है। इस नवीन धारणा के अनुसार केवल छात्र निष्पत्तियों का मापन करना ही पर्याप्त नहीं होता है, अपितु शिक्षण प्रक्रिया, शिक्षण विधियों, प्रविधियों, पाठ्यवस्तु सहायक सामग्री, शिक्षण उद्देश्यों की प्राप्ति एवं शिक्षक प्रभावशीलता आदि सभी तत्वों की उपयुक्तता एवं सार्थकता का मूल्यांकन करना आवश्यक होता है।

4.5.1 शिक्षण और मूल्यांकन के आधारभूत उद्देश्य

शिक्षण को अधिगम से पृथक नहीं किया जा सकता क्योंकि शिक्षण के साथ दूसरा तत्व जुड़ा है, वह है उद्देश्य। इस प्रकार से उद्देश्य की पूर्ति हेतु कतिपय विषय बनाए गए हैं। इन विषय वस्तुओं का आधार शिक्षण के विभिन्न स्तर (प्राथमिक, माध्यमिक, एवं उच्च स्तर) बना दिए गए हैं। उन्हीं को ध्यान में रखकर इन परिस्थितियों का निर्माण किया गया है जिसे हम शिक्षण के प्रकार के रूप में जानते हैं। ये शिक्षण विचारहीन से विचार पूर्ण तक चलता है। इसीलिए विद्यालयी स्तर पर उद्देश्य अलग–अलग रखा जाता है। जो 'रटर्न' (Memorisation) से मूल्यांकन तक पहुंचता है, किंतु हर स्तर पर उद्देश्य अलग–अलग रखा जाता है और अंत में समस्या समाधान तक पहुंचता है।

बिग्स ने इसे निम्न प्रकार परिभाषित किया है–"शिक्षण अधिगम परिस्थिति को विचारहीनता से विचारपूर्णता तक ले जाने वाली संक्रिया है जिसे उसकी श्रेणी के अनुसार विभेदीकृत किया जा सकता है।"

आधारभूत शैक्षिक उद्देश्यों का स्वरूप

शिक्षा एक उद्देश्यपूर्ण प्रक्रिया है तथा इसके उद्देश्य समय–समय पर समाज की आवश्यकतानुसार बदलते रहते हैं। शिक्षा के उद्देश्य ही शिक्षा प्रक्रिया में संलग्न व्यक्तियों को क्रियाशील बनाते हैं। उद्देश्यों के निर्धारण के अभाव में शिक्षा की कोई भी योजना न तो तैयार की जा सकती है और न ही उसका क्रियान्वयन किया जा सकता है। उद्देश्यों के अभाव में शिक्षक उस नाविक के समान है, जिसे अपने गंतव्य स्थल का ज्ञान नहीं है तथा उसके छात्र उस पतवारविहीन नौका के सदृश हैं, जो समुद्र की लहरों के थपेड़े खाती हुई तट की ओर बढ़ती जा रही है।

कुछ लोग शैक्षिक उद्देश्यों को अत्यन्त संकीर्ण रूप में लेते हैं। उनके अनुसार मात्र निर्धारित पाठ्यक्रम को समय से पूरा कर देना ही शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति समझ लिया जाता है जो कि नितान्त भ्रामक है। शिक्षा का एक मात्र प्रमुख कार्य व्यापक एवं विस्तृत उद्देश्यों को प्राप्त करते हुये समाज द्वारा वांछित व्यवहारों का विकास करना है। इस दृष्टिकोण के अनुसार शैक्षिक उद्देश्यों से हमारा तात्पर्य छात्रों के व्यवहार में पूर्व निर्धारित परिवर्तनों से है।

कुछ दशक पूर्व तक शिक्षा के क्षेत्र में कुछ ऐसे उद्देश्य प्रचलित थे, जो अत्यधिक व्यापक तथा सामान्य होते थे तथा जिनकी प्राप्ति के संबंध में कोई स्पष्ट निष्कर्ष निकालना अत्यधिक दुरूह कार्य था। जैसे छात्रों में सनातन मूल्यों का विकास करना, छात्रों को विश्व के विषय में ज्ञान प्रदान करना आदि–आदि। इस प्रकार के उद्देश्यों की प्राप्ति एक लम्बे समय के उपरान्त तथा शिक्षा प्रक्रिया से जुड़े समस्त व्यक्तियों के सतत् सहयोग से ही संभव हो सकती है। कभी–कभी तो इस प्रकार के उद्देश्यों की प्राप्ति व्यक्ति अपने सम्पूर्ण जीवनकाल के दौरान सतत् प्रयास के बावजूद भी नहीं कर पाता है जबकि उसके औपचारिक विद्याध्ययन की अवधि कुछ वर्षों तक ही सीमित रहती है। ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक प्रश्न है कि किसी शैक्षिक कार्यक्रम के द्वारा किन उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकता है। जिन उद्देश्यों को शैक्षिक कार्यक्रम के द्वारा तात्कालिक रूप से प्राप्त किया जा सकता है, उन्हें प्राप्त उद्देश्य (Objectives) के नाम से पुकारा जाता है।

ये प्राप्त उद्देश्य शिक्षा के व्यापक उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक होते हैं परन्तु ये अपेक्षाकृत संकुचित प्रकृति के होते हैं। प्राप्त उद्देश्यों की प्राप्ति शैक्षिक कार्यक्रम अथवा कक्षा शिक्षण के द्वारा तत्काल संभव है। प्राप्त उद्देश्य वास्तव में छात्रों के व्यवहार में होने वाले वे परिवर्तन हैं जिन्हें अधिगम क्रियाओं के द्वारा छात्रों में लाने की अपेक्षा की जाती है। शैक्षिक उद्देश्यों को व्यवहार परिवर्तन के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास बीसवीं शताब्दी के छठवें दशक में किया गया था।

टिप्पणी

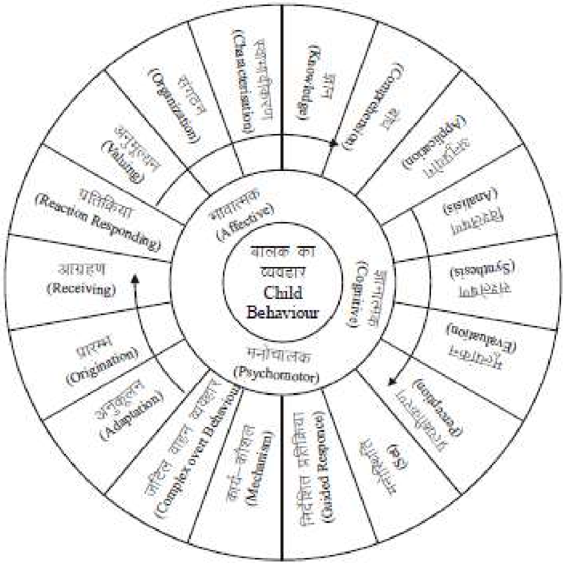

चित्र: विविध स्तरों पर शिक्षण उद्देश्य

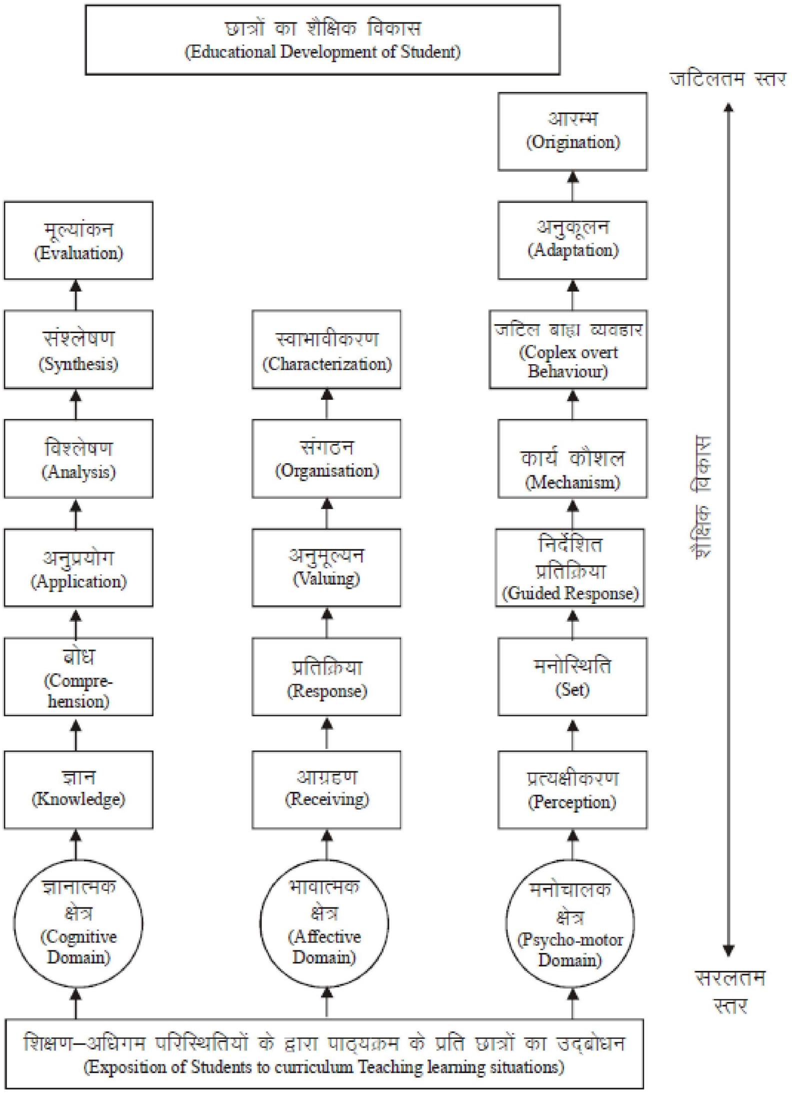

चित्र: शैक्षिक उद्देश्यों का प्रवाह

टिप्पणी

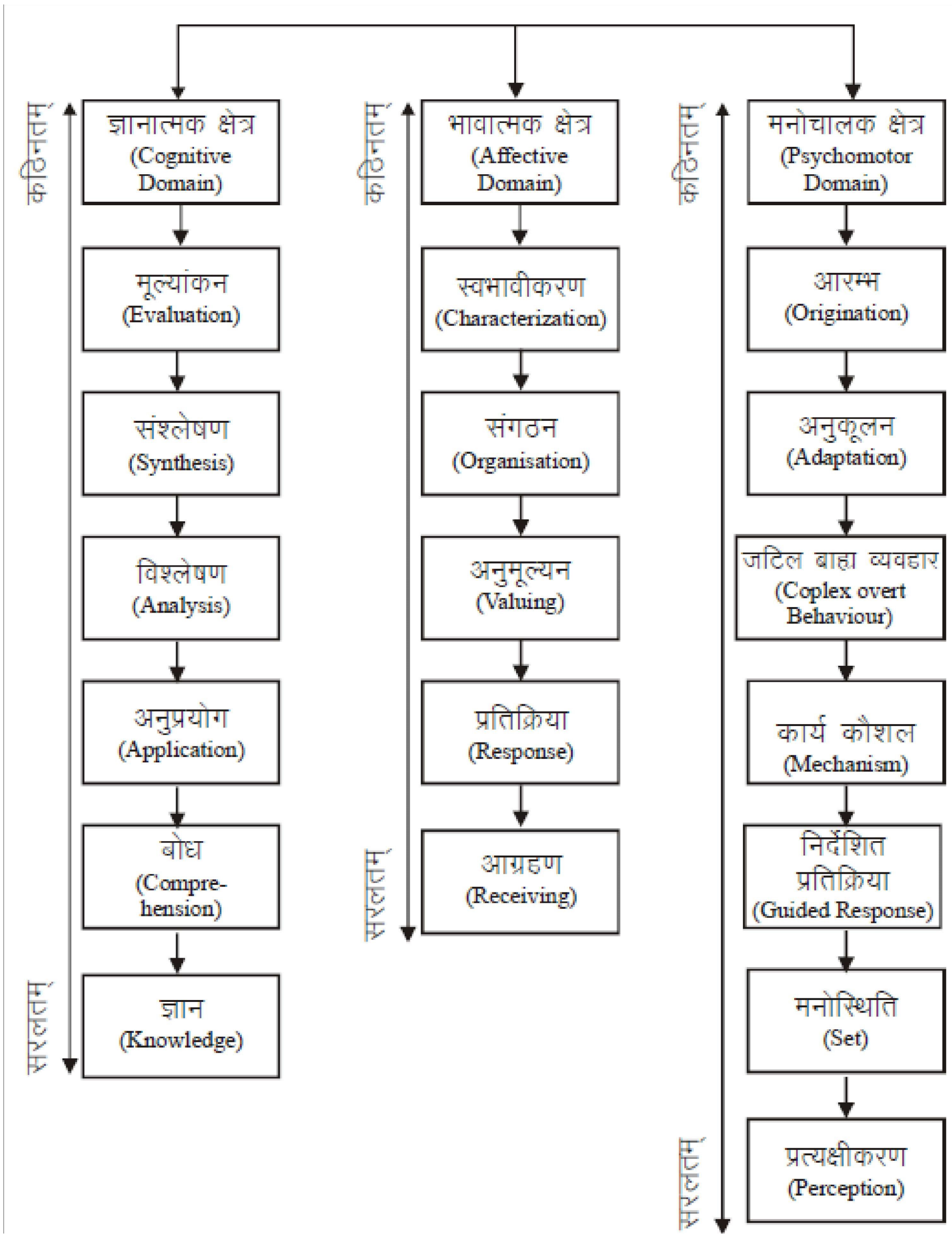

चित्र: शैक्षिक उद्देश्यों का क्रमिक विभाजन

सन् 1956 में बेंजामिन एस. ब्लूम (Benjamin S. Bloom) तथा उसके सहयोगियों ने शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण प्रस्तुत किया। इसके पश्चात सन् 2000 में क्रथवाल (Krathwal) ने इसमें संशोधन किया। यद्यपि ब्लूम के द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण शैक्षिक उद्देश्यों के वर्गीकरण को दिशा में पहला प्रयास नहीं था परन्तु फिर भी ब्लूम ने शैक्षिक उद्देश्यों को तीन भागों में विभाजित करने का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य किया। ब्लूम तथा उसके सहयोगियों के द्वारा प्रस्तुत शिक्षण उद्देश्यों के वर्गीकरण का यह त्रिआयामी विभाजन शिक्षा के क्षेत्र में आज भी बहुतायात से प्रयोग में लाया जाता है।

छात्रों के व्यवहार में होने वाले परिवर्तन तीन क्षेत्रों में हो सकते हैं। व्यवहार परिवर्तन के तीन क्षेत्र हैं–ज्ञानात्मक क्षेत्र (cognitive domain), भावात्मक क्षेत्र (Affective

Domain) तथा क्रियात्मक क्षेत्र (Psychomoter Domain)। छात्रों के व्यवहार में होने वाले इन तीन प्रकार के परिवर्तनों के आधार पर ही बेंजामिन एस. ब्लूम ने शिक्षण उद्देश्यों को तीन भागों में विभाजित किया था। शैक्षिक उद्देश्यों के ये तीन प्रमुख भाग हैं–

(i) ज्ञानात्मक क्षेत्र के उद्देश्य (Objectives in cogntive domain)

(ii) भावात्मक क्षेत्र के उद्देश्य (Objectives in affective domain)

(iii) क्रियात्मक क्षेत्र के उद्देश्य (Objectives in Psychomoter domain)

ज्ञानात्मक क्षेत्र के उद्देश्यों के अन्तर्गत वे उद्देश्य आते हैं, जो छात्रों की बौद्धिक योग्यताओं, क्षमताओं, कौशल आदि के विकास से संबंधित होते हैं। भावात्मक क्षेत्र के उद्देश्य के अन्तर्गत वे उद्देश्य आते हैं, जो छात्रों की अबौद्धिक विशेषताओं जैसे रुचि, अभिरुचि मूल्य दृष्टिकोण। सहानुभूति आदि के विकास से संबंधित होते हैं। क्रियात्मक क्षेत्र के उद्देश्य छात्रों की भौतिक योग्यताओं के विकास से संबंधित होते हैं परन्तु शायद ही कोई उद्देश्य ऐसा हो जो पूर्ण रूपेण किसी एक श्रेणी के अन्तर्गत आता हो तथा उसका अन्य प्रकार के उद्देश्यों से लेशमात्र भी संबध न हो, फिर भी उद्देश्यों के किसी एक वर्ग पर अधिक जोर दिये जाने के आधार पर उनको ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा क्रियात्मक उद्देश्यों के रूप मे ंवर्गीकृत किया जा सकता है। उद्देश्यों को इस प्रकार से वर्गीकृत करना शैक्षिक दृष्टि से अत्यन्त लाभकारी है।

ज्ञानात्मक क्षेत्र, भावात्मक क्षेत्र तथा मनोचालक क्षेत्र के उद्देश्यों को भी पुनः कुछ उपभागों में बांटा जा सकता है। उद्देश्यों के इस प्रकार के विभाजन को शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण (Taxonomics of Educational objectives) कहा जाता है–ज्ञानात्मक क्षेत्र के उद्देश्यों का वर्गीकरण ब्लूम (Bloom) तथा उसके सहयोगियों ने सन् 1956 में किया था। भावात्मक क्षेत्र के उद्देश्यों का वर्गीकरण क्रथवाल (Krathwal) तथा उसके सहयोगियों ने सन् 1964 में प्रस्तुत किया था जबकि क्रियात्मक क्षेत्र के उद्देश्यों का वर्गीकरण सिम्पसन (Sympson) ने सन् 1966 में प्रस्तुत किया। मानव व्यवहार के इन तीनों पक्षों में परस्पर समन्वय व सामंजस्य रहना स्वाभाविक ही है। अर्थात ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा क्रियात्मक पक्ष अलग–अलग न होकर परस्पर एक–दूसरे से संबंधित रहते हैं तथा किसी एक व्यवहार में तीनों पक्ष एक साथ सक्रिय हो सकते हैं। कभी–कभी इसी आधार पर ब्लूम के द्वारा शैक्षिक उद्देश्यों के वर्गीकरण की इस योजना की आलोचना की जाती है कि व्यवहार में विभिन्न पक्षों का परस्पर एक–दूसरे से संबंधित होने के कारण उनके द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण योजना स्वाभाविक (Natural) न होकर काल्पनिक (Artificial) अधिक प्रतीत होती है। निःसंदेह ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा मनोचालक क्षेत्रों में व्यवहारों को एक–दूसरे से पूर्णतया अलग–अलग (isolation) करना कदापि संभव नहीं है। ये तीनों पक्ष एक सुसंगठित इकाई के रूप में भी साथ–साथ विकसित होते हैं तथा इनका वर्गीकरण व्यवहार को समझने की दिशा में एक सार्थक प्रयास मात्र है। शिक्षा के द्वारा बालकों के व्यवहार के इन तीनों पक्षों का परिशोधन तथा विकास करने का प्रयास किया जाता है।

4.5.2 ज्ञानात्मक एवं भावनात्मक या क्रियात्मक पक्ष

(अ) ज्ञानात्मक पक्ष (Cognitive Domain)

ज्ञानात्मक क्षेत्र में वे उद्देश्य आते हैं जो व्यक्ति के ज्ञान, चिंतन तथा समस्या समाधान आदि से संबंधित होते हैं। ब्लूम तथा उसके सहयोगियों ने अपनी पुस्तक (Taxonomy of educational objectives : Hnad book 1 : Cognitive Domain) (1956) में लिखा है कि ज्ञानात्मक क्षेत्र में वे उद्देश्य होते हैं जो ज्ञान के पुनः स्मरण या पहचान तथा बौद्धिक योग्यताओं व कौशलों के विकास से संबंधित होते हैं।

शिक्षण में ज्ञान उद्देश्य (Knowledge objectives) इस बात पर बल देता है कि बालक को नवीन तथ्यों, सूचनाओं एवं सत्यों से परिचित कराया जाए।

ब्लूम तथा उनके सहयोगियों के अनुसार ज्ञानात्मक पक्ष में निम्न बातों को समाहित किया जा सकता है–

(i) विशिष्ट तथ्यों का ज्ञान।

(ii) विशिष्ट तथ्यों को उपयोग में लाने की विधियों का ज्ञान।

(iii) परम्पराओं तथा मान्यताओं का ज्ञान।

(iv) प्रवृत्तियों तथा प्रक्रियाओं का ज्ञान।

(v) वर्गीकरण तथा विभाजनों का ज्ञान।

(vi) मानदण्डों का ज्ञान।

(vii) विधियों तथा प्रविधियों का ज्ञान।

(viii) सिद्धान्तों तथा सामान्यीकरण का ज्ञान।

ब्लूम के अनुसार उपरोक्त वर्णित ज्ञान प्रारम्भ में स्मृति के दोनों स्तरों–प्रत्यास्मरण (Recell) तथा पहचान (Recognition) पर प्राप्त होता है। इसके पश्चात बोध, अनुप्रयोग, विश्लेषण, संश्लेषण तथा मूल्यांकन स्तरों पर उपरोक्त ज्ञान की प्राप्ति होती है। ज्ञान के ये स्तर उत्तरोत्तर कठिन व जटिल परन्तु महत्वपूर्ण होते जाते हैं। ब्लूम तथा उसके सहयोगियों के द्वारा सुझाये गये इस वर्गीकरण के अनुसार ज्ञानात्मक क्षेत्र के उद्देश्यों को 6 भागों में विभक्त किया जा सकता है। उद्देश्यों के ये 6 भाग व्यवहार की सरलता–जटिलता तथा स्थूलता–अमूर्तता के आधार पर एक स्पष्ट क्रम में व्यवस्थित किये गये हैं– (i) ज्ञान (Knowledge or remembering), (ii) बोध (Comprehension), (iii) अनुप्रयोग (Application), (iv) विश्लेषण (Analysis), (v) संश्लेषण (synthesis) तथा मूल्यांकन (evaluation)। इसमें ज्ञान सर्वाधिक सरल व स्थूल व्यवहार परिवर्तन है, जबकि मूल्यांकन सर्वाधिक जटिल व अमूर्त व्यवहार परिवर्तन है। इन सभी भागों को पुनः अनेक उपभागों में विभाजित किया जा सकता है।

टिप्पणी

सारणी

ज्ञानात्मक क्षेत्र के उद्देश्यों का वर्गीकरण
1. ज्ञान ● विशिष्टों का ज्ञान रखना ● शब्दावली का ज्ञान ● तथ्यों का ज्ञान **(क) विशिष्टों के साथ काम करने की विधियों व प्रविधियों का ज्ञान रखना** ● परम्पराओं का ज्ञान रखना ● प्रवृत्तियों तथा क्रमों का ज्ञान ● वर्गीकरण तथा विभाजनों का ज्ञान रखना ● निकषों का ज्ञान रखना ● विधियों का ज्ञान रखना **(ख) किसी क्षेत्र के सम्प्रत्यों व सामान्यीकरणों का ज्ञान रखन** ● नियमों तथा सामान्यीकरणों का ज्ञान रखना ● सिद्धान्तों तथा संरचनाओं का ज्ञान रखना
2. बोध ● सूचनाओं का अनुवाद करना ● सूचनाओं की व्याख्या करना
3. अनुप्रयोग ● ज्ञान व बोध को विशिष्ट व स्थूल परिस्थितियों में प्रयोग में लाना
4. विश्लेषण ● तत्वों का विश्लेषण करना ● संबंधों का विश्लेषण करना ● संयोजक सिद्धान्तों का विश्लेषण करना
5. संश्लेषण ● मौलिक अभिव्यक्ति का प्रस्तुतीकरण ● मौलिक योजना को तैयार करना ● अमूर्त संबंधों का प्रतिपादन करना
6. मूल्यांकन ● आन्तरिक प्रमाण के संदर्भ में निर्णय लेना ● बाह्य कसौटी के सन्दर्भ में निर्णय लेना।

- **ज्ञान (Knowledge or remembering)**– इस उद्देश्य की मुख्य विशेषता पुनः स्मरण है अर्थात 'ज्ञान' उद्देश्य सीखने वाले व्यक्ति की उन क्रियाओं का वर्णन करना है जो मुख्य रूप से स्मृति से संबंधित होती है। अतः ज्ञान उद्देश्य के अन्तर्गत विभिन्न पदों (Terms), प्रत्ययों (Concepts), संकेतों (Symbols), परिभाषाओं (Definition), सिद्धान्तों (Principles), सूत्रों (Formulas), प्रक्रियाओं (Processes), विधियों (Methods), संरचनाओं (Structures) आदि का पुनः स्मरण (Recall) तथा पहचान (Recognition) करने से संबंधित व्यवहार समाहित रहते हैं। उदाहरण के लिये सेब खाने से स्वास्थ्य को क्या लाभ होता इस प्रकार के तथ्य या प्रश्न याद रहते हैं।

टिप्पणी

- **बोध (Comprehension or understanding)**– ज्ञान के पश्चात् बोध का क्रम आता है। इस स्तर पर छात्र विभिन्न सूचनाओं के ज्ञान के साथ–साथ सूचनाओं से संबंधित अच्छी समझ भी रखता है। स्पष्ट है कि बोध स्तर पर ज्ञान के पुनः स्मरण तथा पहचान के साथ–साथ उस ज्ञान की अच्छी समझ भी अन्तर्निहित होती है। इसमें विभिन्न तथ्यों की व्यवस्था भी सम्मिलित होती है तथा विभिन्न तथ्यों की तुलना करना आ जाता है जैसे सेब और संतरे को खाने का स्वास्थ्य पर क्या तुलनात्मक प्रभाव पड़ता है।
- **अनुप्रयोग (Application or Applying)**– अनुप्रयोग उद्देश्य स्तर पर छात्र विभिन्न स्थूल अथवा विशिष्ट परिस्थितियों में अपने ज्ञान व बोध के आधार पर किये गये अमूर्तकरण का उपयोग करते हैं। इन अमूर्तकरणों में सामान्य विचार (general ideal), नियम (procedural rules) या सामान्यीकृत विधि (Generalized methods) सम्मिलित होते हैं। ये अमूर्तकरण उन तकनीकी सिद्धान्तों के भी हो सकते हैं जिनमें पुनः स्मरण करना व प्रयोग करना होता है। प्राप्त ज्ञान से नई परिस्थितियों में समस्या समाधान करना सीखा जाता है। उदाहरण के लिये क्या सेब खाने से स्कर्णी रोग से बचा जा सकता है? विटामिन सी की कमी से कौन सी बीमारी हो सकती है?
- **विश्लेषण (Analysis)**– विश्लेषण उद्देश्यों के अन्तर्गत वे व्यवहार आते हैं जो प्राप्त सूचना को उसके विभिन्न भागों में विभक्त करने से संबंधित होते हैं। किसी सूचना को उसके भागों में विभक्त करने का उद्देश्य सूचना को स्पष्ट करना अथवा सूचना में सम्मिलित विभिन्न विचारों को क्रमबद्ध करना होता है। इस प्रकार का विश्लेषण सूचना के संगठन तथा उसके सम्प्रेषण के तरीके को स्पष्ट करता है। विश्लेषण के उद्देश्य को पुनः तीन भागों–तथ्यों (Elements), संबंधों (relationships), तथा संगठनात्मक सिद्धान्तों (organizational principles) के विश्लेषण के रूप में बांटा जा सकता है। जैसे सेब से तैयार किये गये चार प्रकार के खानों की सूची तैयार करना आदि और उसकी व्याख्या करना कि कौन स्वास्थ्य के लिये सबसे अच्छा है।
- **संश्लेषण (Synthesis or creating)**– संश्लेषण में विभिन्न तत्वों तथा भागों को क्रमबद्ध करके समग्र की रचना करना सम्मिलित होता है। स्पष्ट है कि संश्लेषण में छात्र विभिन्न भागों, अंशों तथा तत्वों के साथ कार्य करके उन्हें इस तरह से व्यवस्थित करते हैं कि कोई ऐसी रचना तैयार हो सके जो पहले उनके सम्मुख प्रस्तुत नहीं थी। संश्लेषण उद्देश्य को पुनः तीन भागों–किसी नवीन संप्रेषण या अभिव्यक्ति प्रस्तुत करना (Production of unique communication), किसी योजना को तैयार करना (Production of a plan) तथा अमूर्त संबंधों का प्रतिपादन (Derivation of set of abstract relation) में विभक्त किया जा सकता है। उदाहरण के लिये किसी व्यंजन की गुणवत्ता बढ़ाने के लिये उसमें कुछ मसाले बदल देना और उस मसाले को बदलने से स्वास्थ्य के लाभ के लिये व्याख्या करना आदि।

- **मूल्यांकन (Evaluation)**– मूल्यांकन ज्ञानात्मक उद्देश्य का सर्वाधिक उच्च स्तर है। किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये आवश्यक सामग्री तथा विधियों के मूल्य के निर्धारण से संबंधित निर्णय लेना मूल्यांकन उद्देश्य के अन्तर्गत आता है। विभिन्न परिस्थितियां किस सीमा तक दी गई आवश्यकताओं को पूर्ति कर रही हैं, इस संबंध में गुणात्मक तथा मात्रात्मक निर्णय लिये जाते हैं। आवश्यकताओं का निर्णय सीखने वाला स्वयं भी कर सकता है अथवा किसी अन्य के द्वारा भी आवश्यकताओं को इंगित किया जा सकता है। निर्णय आंतरिक प्रमाण (internal evidence) के आधार पर भी लिये जा सकते हैं तथा बाह्य कसौटी (External criteria) के आधार पर भी लिये जा सकते हैं। उदाहरण के लिये सिरका अथवा मुरब्बा बनाने के लिये कौन–सा सेब सबसे अच्छा रहेगा और क्यों?

(ब) भावात्मक पक्ष

भावात्मक पक्ष का वर्गीकरण ब्लूम (Bloom), क्रथवाल (Krathwal) तथा बी.बी. मसीआ (B.B. Masia) ने 1964 में किया। इस पक्ष के अंतर्गत वे उद्देश्य आते हैं जिनका संबंध बालक की रुचियों (interests), सवेंगों (emotions) तथा मनोवृत्तियों (Attitude) से होता है।

जब बच्चा किसी कार्य को रुचि के साथ करता है अथवा परिस्थिति विशेष में प्रिय अथवा अप्रिय अनुभूति करता है तो उसका यह व्यावाहारिक परिवर्तन भावात्मक पक्ष के अन्तर्गत माना जाता है। इस पक्ष का आधार भी मनोवैज्ञानिक ही होता है। शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में बालक की रुचियों, संवेगों, मनोवृत्तियों आदि का विशेष महत्व होता है तथा ये बालक के व्यक्तित्व की कसौटी समझी जाती है। बालक के इस पक्ष को विकसित करना शिक्षक के लिये चुनौतीपूर्ण कार्य समझा जाता है क्योंकि व्यक्तित्व की ये विशेषताएं व्यक्तिगत (Subjective) दशाएं होती हैं तथा इनका संबंध व्यक्ति विशेष से पहले होता है तथा दूसरे व्यक्तियों से बाद में। साथ ही इनकी प्रकृति एवं निर्धारण तत्वों (determining factors) को समझना भी कठिन कार्य होता है। भावात्मक पक्ष के उद्देश्यों को भावात्मक परिवर्तनों के प्रति जागरूकता के स्तर के आधार पर एक क्रम में व्यवस्थित किया गया है। ये उद्देश्य क्रम निम्न हैं–

- **आग्रहण (Receiving)**– आग्रहण भावात्मक वर्गीकरण का सर्वाधिक सरल तथा निम्न स्तर का उद्देश्य है। यह प्रारम्भिक स्तर विभिन्न उद्दीपनों की उपस्थिति के प्रति छात्र की संवेदनशीलता तथा उस उद्दीपन को आग्रहण करने की चाह से संबंधित होता है। इस स्तर के बिना छात्र में किसी प्रकार का अधिगम संभव नहीं है। इस उद्देश्य को पुनः जागरूकता (Awareness), आग्रहण की इच्छा (Willingness to receive) तथा नियंत्रित आकर्षण (Controlled attention) में विभाजित किया जा सकता है।
- **प्रतिक्रिया (Responding)**–भावात्मक वर्गीकरण के द्वितीय स्तर का संबंध उन अनुक्रियाओं से होता है। जो किसी उद्दीपन को आग्रहण के कारण होती है। प्रतिक्रिया के इस उद्दीपन को अनुक्रिया के प्रति सहमति (Acquiescence in responding), अनुक्रिया की इच्छा (willingness ot respond) तथा अनुक्रिया से संतोष (Satisfaction in response) में बांटा जा सकता है। इसके छात्र अधिगम प्रक्रिया में सक्रिय भाग लेते हैं। छात्र इस स्तर पर उद्दीपन के प्रति प्रतिक्रिया भी करने लगता है।

टिप्पणी

- **अनुमूल्यन (Valuing)**– इस स्तर पर विभिन्न वस्तुओं, कार्यों या व्यवहारों के उपयोग (worth) के मूल्य को स्वीकार करने तथा उसके प्रति एक निश्चित धारणा बनाने से संबंधित है। मूल्य निर्धारण का यह उद्देश्य पुनः मूल्य स्वीकृति (Acceptance of value), मूल्य वरीयता (preference for a value) तथा किसी दृष्टिकोण के प्रति वचनबद्धता अथवा रुझान (Commitment to a point of view) में विभाजित किया जा सकता है। इस स्तर पर छात्र प्राप्त ज्ञान में कोई एक मूल्य व मूल्यों को जोड़ना भी सीख जाते हैं।
- **संगठन (Organization)**– मूल्यों का आत्मीयकरण तथा अवधारणा के पश्चात् छात्रों के सम्मुख ऐसी परिस्थितियां आती हैं जिनमें एक से अधिक मूल्य होते हैं। ऐसी परिस्थिति में छात्रों को उन मूल्यों को एक क्रम में व्यवस्थित करना होता है। मूल्यों का व्यवस्थित क्रम बन जाने के पश्चात यह आवश्यक हो जाता है कि इन मूल्यों को आत्मसात् किया जाए तथा मूल्यों के पारस्परिक संबंधों को स्थापित किया जाए। इस स्तर पर छात्र विभिन्न मूल्यों, सूचनाओं तथा विचारों को स्थापित करने में सक्षम होता है। वह अपने सीखे ज्ञान की तुलना, संबंध खोजना तथा विस्तार करना सीख जाता है।
- **स्वभावीकरण (Characterization)**– स्वभावीकरण अथवा चरित्र निर्माण सर्वाधिक जटिल तथा उच्च स्तर का भावात्मक उद्देश्य है। यह स्पष्ट है कि व्यक्ति स्वीकार किये गये मूल्यों के अनुरूप (Consistently) कार्य करता है। इन मूल्यों का व्यक्ति के ऊपर प्रभाव इतना स्पष्ट होता है कि व्यक्तित्व के स्वभाव को इन मूल्यों से जोड़ा जा सकता है। अतः इस स्तर पर मूल्य के चरित्र के स्थायी अंग बन जाते हैं। इस स्तर पर छात्र अमूर्त ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास करने लगता है।

सारणी

भावात्मक क्षेत्र के उद्देश्यों का वर्गीकरण
1. **आग्रहण (Recalling)** • उद्दीपन के प्रति जागरूकता (Awareness about a stimulus) • उद्दीपन को स्वीकार करने की इच्छा (Willingness to receive a stimulus) • उद्दीपन के प्रति नियंत्रित आकर्षण (Controlled Attention towards a stimulus)
2. **प्रतिक्रिया (Responding)** • प्रतिक्रिया के प्रति सहमति (Acquircence in responding) • प्रतिक्रिया की इच्छा (Willingness to respond) • प्रतिक्रिया से संतोष (Satisfaction in Response)
3. **अनुमूल्यन (Valuing)** • मूल्य की स्वीकृति (Acceptance of a value) • मूल्य की वरीयता देना (Preference for a value) • मूल्य वचनबद्धता (Value commitment)
4. **संगठन (Organization)** • मूल्य आत्मीयकरण (Conceptualization of a value) • मूल्य प्रणाली का व्यवस्थापन (Organization of a value system)
5. **स्वभावीकरण (Characterization)** • सामान्यीकृत स्थिति (Generalization) • चारित्रीकरण (Characterization)

(स) क्रियात्मक पक्ष

क्रियात्मक पक्ष का वर्गीकरण सिम्पसन (Simpson) ने 1963 में किया। इस पक्ष के अन्तर्गत वे उद्देश्य आते हैं जिनका संबंध गतिवाही कौशल (Motor skill) तथा ऐसी क्रियाओं से होता है जिनके लिये हमारी मांसपेशी (Muscular) एवं आंगिक गतियों की आवश्यकता होती है।

क्रियात्मक क्षेत्र का संबंध मांसपेशियों के विकास तथा प्रयोग एवं शारीरिक क्रियाओं के समन्वय की योग्यता से है। शारीरिक शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा, तकनीकी शिक्षा, हस्त लेखन (Hand writing) टाइपिंग (Type writing) नाट्यकला, संगीत उपकरण बजाना (Playing a musical instruments) विज्ञान में उपकरण प्रयोग (using equipments in science), भूगोल में नक्शा खींचना (To draw map in geography) आदि में मांसपेशीय व आंगिक गतियों का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान होता है इसीलिये इनकी शिक्षा में मनोचालक पक्ष के विकास पर विशेष ध्यान दिया जाता है। सिम्पसन ने अपनी पुस्तक (The classification of educational objectives psycho motor domain) (1966) में लिखा है कि मनोचालक क्षेत्र में उन उद्देश्यों को सम्मिलित किया जाता है, जो शारीरिक तथा गामक कौशल से संबंधित होते हैं।

सिम्पसन (Sympson) के द्वारा किये गये वर्गीकरण के अनुसार मनोचालक क्षेत्र के उद्देश्य निम्नांकित हैं–

- **प्रत्यक्षीकरण**– किसी भी गामक क्रिया को करने का पहला पद इन्द्रियों की सहायता से वस्तुओं व गुणों तथा संबंधों के प्रति जागरूक होने की प्रक्रिया है। गामक क्रियाओं को करने के लिए वस्तुओं का प्रत्यक्षीकरण करना अत्यन्त आवश्यक है। जैसे बॉल फेंकने से पहले ये अनुमान लगा लेना कि बॉल कितनी दूरी पर, कहां गिरेगी और फिर बॉल को पकड़ने के लिये सही दिशा में जाना या फिर एक अन्य उदाहरण में खाना बनाते समय, खाने के स्वाद और गंध के अनुसार आग का तापमान निश्चित करना आदि।
- **मनोस्थिति**– किसी विशेष प्रकार के कार्य अथवा अनुभव को करने का पूर्व समायोजन है। मनोस्थिति के तीन विभिन्न पक्ष मानसिक, भौतिक तथा संवेगात्मक बताये गये हैं। ये तीनों पक्ष किसी व्यक्ति की विभिन्न परिस्थितियों में मनोस्थिति के बारे में बताते हैं। उदाहरण के लिये किसी वस्तु का निर्माण करते समय उसके क्रम को समझते हुये कार्य करना। यह पक्ष भावात्मक पक्ष के प्रतिक्रिया पक्ष से मिलता जुलता है।
- **निर्देशित प्रतिक्रिया (Guided Response)**– किसी गामक कौशल को विकसित करने का यह पूर्व पद (Pre step) है। इसमें उन शारीरिक योग्यताओं पर ध्यान दिया जाता है, जो किसी जटिल कौशल को करने के लिये आवश्यक होती हैं। इस पक्ष में किसी जटिल कौशल को सीखने से पूर्व की स्थिति है, जिसमें भूल एवं प्रयास तथा अनुकरण भी सम्मिलित हैं। अभ्यास द्वारा कार्य सीखा जाता है जैसे प्रदर्शित गणित समीकरण को हल करना, किसी मॉडल को तैयार करने के लिये निर्देशों का प्रयोग करना आदि।

- **कार्य कौशल (Mechanism)**– इस स्तर पर व्यक्ति कार्य को करने के लिये आवश्यक आत्मविश्वास तथा कौशल प्राप्त करने का प्रयास करता है। उदाहरण के लिये कम्प्यूटर चलाना, नल के लीक होने की मरम्मत करना, कार चलाना आदि।
- **जटिल बाह्य व्यवहार (Complex overt Behaviour)**– इस स्तर पर व्यक्ति ऐसे गामक कार्य कर सकता है जिन्हें अत्यधिक जटिल माना जाता है इस स्तर को प्राप्त करने के उपरान्त व्यक्ति ये कार्य सरलता व सहजता से कर लेता है अर्थात व्यक्ति इन कार्यों को कम समय में तथा कम शक्ति व्यय करके कर लेता है। उदारहण के लिये कम्प्यूटर शीघ्रता से बिना गलती किये चलाना, पियानो बजाने में समर्थता प्रदर्शित करना आदि।
- **अनुकूलन (Adaptation)**– इस स्तर पर छात्र में कौशलों का विकास भली प्रकार हो जाता है और किसी कार्य विशेष की आवश्यकतानुसार कार्य पद्धति बदलने में सक्षम भी होता है। उदाहरण के लिये किसी अनभिज्ञ नई परिस्थिति में प्रभावपूर्ण ढंग से समस्या को सुलझा लेना। सीखने वाले की आवश्यकतानुसार निर्देशों में आवश्यक परिवर्तन कर लेना। किसी मशीन द्वारा कोई कार्य कर लेना जिसके लिये वह मशीन नहीं बनी है।
- **प्रारम्भ (Origination)**– इस स्तर पर छात्र पूर्णतया उच्च स्तर पर पहुंच जाता है और किसी विशेष परिस्थिति या विशेष समस्या के लिये कुछ नयी पद्धति का निर्माण करने में सक्षम हो जाता है। उदाहरण के लिये किसी प्रशिक्षण कार्यक्रम के लिये कोई नई बौद्धिक पद्धति का विकास करना। व्यायाम के नये तरीके उत्पन्न करना आदि।

ज्ञानात्मक क्षेत्र के लिये ब्लूम द्वारा, भावात्मक क्षेत्र के लिये क्रथवॉल द्वारा तथा मनोचालक क्षेत्र के लिये सिम्पसन द्वारा प्रस्तुत किये गये शैक्षिक उद्देश्यों के उपरोक्त वर्णित वर्गीकरणों के अतिरिक्त अन्य कई शिक्षाशास्त्रियों ने शैक्षिक उद्देश्यों के वर्गीकरण प्रस्तुत किये हैं। भारत में भी इस संबंध में अनेक प्रयास किये गये हैं। उदाहरण के लिये क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय, मैसूर (R.C.E.M) ने ज्ञानात्मक क्षेत्र के उद्देश्यों को चार भागों के विभाजित किया है; ये चार भाग क्रमशः– 1. ज्ञान 2. बोध 3. अनुप्रयोग तथा 4. सृजनशीलता हैं। वस्तुतः R.C.E.M ने विश्लेषण, संश्लेषण व मूल्यांकन को एक साथ मिलाकर सृजनशीलता (Creativity) का नाम दिया है। इसी प्रकार से आर.एच. दवे ने क्रियात्मक अथवा मनोचालक क्षेत्र के उद्देश्यों को पांच श्रेणियों में बांटा हैं। ये भाग क्रमशः– 1. अनुकरण (imitation) 2. क्रिया (Manipulation) 3. परिमार्जिता (precision) 4. समन्वय (Articulation) तथा 5. स्वभावीकरण (Naturalization) हैं। परन्तु शिक्षा जगत में ब्लूम, क्रथवाल तथा सिम्पसन के द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरणों को ही अधिक मान्यता प्राप्त है तथा ये तीनों वर्गीकरण ही अधिक प्रचलित हैं।

टिप्पणी

सारणी

क्रियात्मक क्षेत्र के उद्देश्यों का वर्गीकरण
1. **प्रत्यक्षीकरण (Perception)** • इन्द्रियों के द्वारा वस्तुओं के प्रति जागरूकता (Awareness about the objects) • इन्द्रियों के द्वारा गुणों के प्रति जागरूकता (Awareness about the qualities) • इन्द्रियों के द्वारा संबंधों के प्रति जागरूकता (Awareness about the relations)
2. **मनोस्थिति (Set)** • कार्य के लिए मानसिक मनोस्थिति का होना (Preparatory mental adjustment) • कार्य के लिये शारीरिक मनोस्थिति का होना (Preparatory physical adjustment) • कार्य के लिये संवेगात्मक मनोस्थिति का होना (Preparatory emotional adjustment)
3. **निर्देशित प्रतिक्रिया (Guided Response)** • किसी व्यक्ति के निर्देशन में विभिन्न बाह्य व्यवहार करना (Overt behavioural act or under the guidance of another individual)
4. **कार्य कौशल (Mechanism)** • किसी कार्य को करने के लिये कौशल प्राप्त करना (Achievement of certain degree of skills in performance of an act) • किसी कार्य को करने के लिये आत्म विश्वास का होना (Achievement of certain confidence in the performance of an act)
5. **जटिल बाह्य व्यवहार (Complex overt Behaviour)** • जटिल क्रियाओं को प्रभावशाली बनाना (Carryingout complx motor act efficiently) • जटिल क्रियाओं को सुचारु रूप से करना (Carring out complex motor act smoothly)
6. **अनुकूलन (Adaptation)** • किसी नई परिस्थिति में निर्देशों को आवश्यकतानुसार बदल लेना (To modify instruction in new situation accordingly)
7. **प्रारम्भ (Origination)** • किसी विशेष समस्या या परिस्थिति के लिये किसी नई पद्धति का निर्माण करना (Creating new movement patterns to sit a particulat situation or specific problem)

4.5.3 शैक्षिक मूल्यांकनः अवधारणा– मानक एवं कसौटी संदर्भित परीक्षण, निर्माणात्मक और संकलनात्मक मूल्यांकन

शैक्षिक प्रक्रिया में मूल्यांकन का विशेष महत्व है क्योंकि किसी योजना या कार्य प्रणाली की प्रभावशीलता को जानने का प्रमुख साधन मूल्यांकन ही होता है। मूल्यांकन में योजना के उद्देश्यों और लक्ष्यों को ध्यान में रखा जाता है। शिक्षा को मानवीय संसाधनों, कौशलों, प्रेरणा एवं ज्ञान सरीखे अन्य अनेक विकासों के रूप में मानव हित में किया गया निवेश माना जाता है। अतः शिक्षा के अपने उद्देश्य एवं लक्ष्य होते हैं। इसलिए शैक्षिक मूल्यांकन में इसके उद्देश्यों एवं लक्ष्यों को ध्यान में रखना होता है। इस प्रकार शैक्षिक प्रक्रिया एवं उत्पाद दोनों का मूल्यांकन आवश्यक होता है जिससे यह पता

लगाया जा सकता है कि शैक्षिक प्रक्रिया कितने प्रभावशाली ढंग से आगे बढ़ रही है, तथा शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति किस सीमा तक हो सकती है। अतः कहा जा सकता है कि मूल्यांकन शैक्षिक कार्यक्रमों के निर्माण में सहायक होता है। इसकी उपलब्धियों का आकलन करता है तथा इसकी प्रभावशीलता में सुधार लाने के प्रयास में सहायक होता है। इसके साथ–साथ मूल्यांकन द्वारा बीच–बीच में कार्यक्रम की समीक्षा करने तथा अधिगम की प्रगति जानने में भी सहायता करता है एवं यह कार्यक्रम के प्रारूपण एवं क्रियान्वयन हेतु भी प्रयोग में लाया जाता है।

दूरवर्ती शिक्षा भी शिक्षा की महत्वपूर्ण प्रणाली है। अतः दूसरी शिक्षा प्रणालियों की भांति दूरवर्ती शिक्षा में भी मूल्यांकन प्रक्रिया का बहुत महत्व है। यही नहीं मूल्यांकन दूरवर्ती शिक्षण का मूल–तत्व भी है। इसलिए दूरवर्ती शिक्षा में मूल्यांकन का और भी अधिक महत्व है। दूरवर्ती शिक्षा के शिक्षकों के लिए मूल्यांकन की सम्प्रत्यय, विधियों एवं प्रयोगों का ज्ञान होना परम्परागत शिक्षकों की तुलना में कहीं अधिक आवश्यक इसलिए भी है क्योंकि दूरवर्ती शिक्षक विभिन्न अनुशासनों, विधाओं एवं विशिष्ट क्षेत्रों से आते हैं। अतः इनके लिए मूल्यांकन की अवधारणा एवं शिक्षा क्षेत्र में मूल्यांकन प्रक्रिया का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है।

शैक्षिक मूल्यांकन का सम्प्रत्यय (Concept of Educational Evaluation)

शैक्षिक मूल्यांकन एक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा अधिगम परिस्थितियों तथा सीखने के अनुभवों के लिए प्रयुक्त की जाने वाली सभी विधियों एवं प्रविधियों की उपादेयता की जांच की जाती है तथा छात्र निष्पत्तियों के आधार पर यह पता लगाया जाता है कि शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति किस सीमा तक हो सकी है। शिक्षा एवं मनोविज्ञान में 'मूल्यांकन' शब्द को निम्न रूप से परिभाषित किया जा सकता है–

रेमर्स एवं गेज के अनुसार, ''मूल्यांकन के अन्दर व्यक्ति या समाज अथवा दोनों की दृष्टि में जो उत्तम है अथवा वांछनीय है, उसको मानकर चला जाता है।''

डांडेकर के अनुसार, ''शिक्षक मूल्यांकन हमें यह बताता है कि बालक ने किस सीमा तक किन उद्देश्यों को प्राप्त किया है।''

टॉरगेर्सन तथा एडम्स के अनुसार, ''मूल्यांकन का अर्थ है किसी वस्तु या प्रक्रिया का मूल्य निश्चित करना। इस प्रकार, शैक्षिक मूल्यांकन से तात्पर्य है शिक्षण प्रक्रिया तथा सीखने की क्रियाओं से उत्पन्न अनुभवों की उपयोगिता के बारे में निर्णय देना।''

क्विलेन तथा हन्ना के अनुसार, ''विद्यालय द्वारा हुए बालक के व्यवहार परिवर्तन के विषय में साक्षियों के संकलन तथा उनकी व्याख्या करने की प्रक्रिया ही मूल्यांकन है।''

क्लयाजमेयर एवं गुडविन के अनुसार, ''शिक्षा में मूल्यांकन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा यह निर्णय किया जाता है कि किसी चीज की मापित सीमा और परिणाम किसी मापदण्ड में स्वीकार्य अथवा वांछनीय हैं अथवा नहीं।''

कोठारी कमीशन के अनुसार, ''अब यह माना जाने लगा है कि मूल्यांकन एक अनवरत प्रक्रिया है, यह सम्पूर्ण शिक्षा–प्रणाली का एक विभिन्न अंग है और यह शिक्षण लक्ष्यों से घनिष्ठ रूप से संबंधित है।''

टिप्पणी

जेम्स एम.ली. के शब्दों में–''मूल्यांकन विद्यालय, कक्षा तथा स्वयं के द्वारा निर्धारित शैक्षिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के सम्बन्ध में छात्रों की प्रगति की जांच है। मूल्यांकन का प्रमुख प्रयोजन छात्रों की सीखने की प्रक्रिया को अग्रसर एवं निर्देशित करना है। इस प्रकार मूल्यांकन नकारात्मक नहीं अपितु एक सकारात्मक प्रक्रिया है।''

क्वालेन तथा हन्ना के शब्दों में–"विद्यालय में हुए छात्रों के व्यवहार परिवर्तन के सम्बन्ध में प्रदत्तों के संकलन तथा उनकी व्याख्या करने की प्रक्रिया को मूल्यांकन कहते हैं।

मूल्यांकन प्रक्रिया की प्रमुख मान्यताएं (Main Assumptions of Evaluation Process)

मूल्यांकन प्रक्रिया की प्रमुख मान्यताएं निम्नवत् हैं–

(1) मूल्यांकन का ध्येय बालक के व्यवहार में अपेक्षित व्यवहारीय परिवर्तन लाना होता है।

(2) मूल्यांकन उद्देश्यों के निर्धारण के पश्चात उपयुक्त मूल्यांकन उपकरण का चयन करना चाहिए।

(3) मूल्यांकन प्रक्रिया वह सीमा निर्धारित करती है जहां तक शैक्षिक उद्देश्य प्राप्त किये जा सकते हैं।

(4) मूल्यांकन हेतु व्यक्तित्व के विभिन्न आयामों का मापन करना अत्यन्त आवश्यक है।

(5) मूल्यांकनकर्ता को मूल्यांकन विधा की प्रत्येक प्रविधि एवं विभिन्न उपकरणों का ज्ञान होना चाहिये।

(6) मूल्यांकन अपने आप में एक अन्त नहीं है वरन् दूसरी चीजों की प्राप्ति में एक साधन के रूप में प्रयुक्त किया जाना चाहिये।

(7) मूल्यांकन अत्यन्त सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिये। यथासम्भव दोषों के जाल से बचाना चाहिये।

(8) मापन एवं मूल्यांकन दोनों ही छात्र के सीखने को प्रभावित करती हैं।

(9) मूल्यांकन का दायित्व विद्यालय, व्यक्ति एवं अभिभावक सभी पर होता है।

(10) मूल्यांकन के सिद्धांन्तों एवं नैतिक मूल्यों का यथासम्भव पालन करना चाहिये।

मूल्यांकन का उद्देश्य (Aims of Evaluation)

मूल्यांकन के प्रमुख उद्देश्य निम्न हैं–

(1) छात्रों का वर्गीकरण करना।

(2) छात्रों को उचित शैक्षिक एवं व्यावसायिक मार्ग निर्देशन प्रदान करना।

(3) पाठ्यक्रम में उचित संशोधन करना।

(4) छात्रों में अधिगम (Learning) की मात्रा ज्ञात करना।

(5) शिक्षकों की कुशलता एवं सफलता का मापन।

(6) छात्रों की दुर्बलताओं एवं योग्यताओं की जानकारी प्राप्त करना।

(7) शिक्षण विधियों की उपयुक्तता की जांच।

(8) अनुदेशन (Instruction) की प्रभावशीलता ज्ञात करनी एवं उसके अनुरूप अपनी क्रियाओं (Activities) का नियोजन (Planning) करना।

(9) छात्रों को अपनी समस्याएं समझने एवं उनकी प्रगति के सम्बन्ध में जानकारी प्रदान करना।

(10) इस बात की जानकारी प्रदान करना कि छात्रों की विभिन्न व्यक्तिगत एवं सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति किस प्रकार की जा सकती है।

इस प्रकार मूल्यांकन एक शैक्षिक प्रक्रिया है। इसके अन्तर्गत शिक्षक यह निश्चित करता हैं कि उसकी शिक्षण व्यवस्था एवं शिक्षक अधिगम को आगे बढ़ाने की क्रियाएं कितनी सफल रही हैं। यह सफलता शिक्षण उद्देश्यों की प्राप्ति में पृष्ठपोषण का कार्य करती है। यदि उद्देश्यों की प्राप्ति में कमी होती है तब शिक्षक शिक्षण परिस्थितियों का मूल्यांकन करके उनमें आवश्यक सुधार एवं परिवर्तन करता है। शैक्षिक प्रक्रिया में मूल्यांकन के तीन प्रमुख कार्य हैं–

1. **शैक्षिक प्रणाली का मूल्यांकन करना**– रॉबर्ट मेयर के अनुसार अधिगम प्रणाली का शैक्षिक कार्यक्रम के मूल्यांकन के अन्तर्गत शिक्षण को नियोजन, शिक्षण विधियों, प्रविधियों अनुदेशन तथा अन्य शिक्षण सामग्री की उपयोगिता का मूल्यांकन करना होता है जिससे उनमें सुधार तथा विकास के लिए शिक्षक को प्रोत्साहन मिलता है। इसके आधार पर शिक्षक प्रभावशाली अधिगम के लिए उत्तम साधनों एवं स्रोतों का प्रयोग करता है जिससे उसके शिक्षण कौशल का विकास होता है इसके लिए शिक्षक को मानदण्ड परीक्षा की रचना करनी होती है।
2. **अधिगम या निष्पत्ति का मापन करना**– शिक्षा के क्षेत्र में अधिगम प्रणाली के मूल्यांकन की अपेक्षा अधिगम (छात्र निष्पत्ति) के मापन पर अधिक बल दिया जाता है। मापन में किसी वस्तु या व्यक्ति विशेष का मापन न होकर गुणों का मापन होता है। मापन के द्वारा चरों (Variate) को परिमाण में बदल दिया जाता है। अतः मापन मूल्यांकन की अपेक्षा अधिक शुद्ध एवं वस्तुनिष्ठ होता है। ज्ञापन की उपादेयता शिक्षण के सुधार एवं विकास के लिए अधिक उपयोगी है। यह निदान, चयन श्रेणीकरण आदि में अधिक उपयुक्त होता है।
3. **अधिगम उद्देश्यों की व्यवस्था**– शिक्षा के क्षेत्र में पीटर डिरोकर ने (MBO) उद्देश्यों की व्यवस्था का एक नया सम्प्रत्यय प्रस्तुत किया है। उद्देश्यों द्वारा व्यवस्था एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा प्रबन्धक अपनी विभिन्न क्रियाओं का मूल्यांकन उद्देश्यों के संदर्भ में करता है जिससे उसे नवीन व्यवस्था हेतु आवश्यक दिशा निर्देश प्राप्त होते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण व्यवस्था का नियन्त्रण उद्देश्यों के आधार पर किया जाता है। उद्देश्यों द्वारा व्यवस्था का मूल्यांकन मानदण्ड परीक्षा द्वारा किया जाता है। इस परीक्षा में समिश्रित प्रत्येक प्रश्न अधिगम के उद्देश्य का मापन करने हेतु परिस्थिति उत्पन्न करने वाला होना चाहिए व उद्देश्य केंद्रित परीक्षणों के निर्माण में शिक्षक को निपुण होना चाहिए।

टिप्पणी

मूल्यांकन प्रक्रिया के कार्य

मूल्यांकन प्रक्रिया के निम्न कार्य इस प्रकार हैं–

1. **निदान** (Diagnosis)– मूल्यांकन का प्रमुख उद्देश्य छात्र की कमजोरी तथा उसके कारणों का पता लगाना होता है। इससे शिक्षक को कमजोर छात्रों हेतु उपयुक्त तदुपचारात्मक पाठ्यक्रम एवं पाठ्य वस्तु के निर्माण में सहायता मिलती है। यह परीक्षण प्रारम्भ में ही प्रदान किये जाते हैं।
2. **भविष्यवाणी** (Prediction)– मूल्यांकन का एक उद्देश्य छात्रों की उन क्षमताओं एवं अभियोग्यताओं का पता लगाना भी है जो कुछ विशिष्ट क्षेत्रों में उन्हें विशेष योग्यता प्राप्त करने में सहायक हो सकती हैं। इसके आधार पर छात्रों के भावी जीवन के बारे में भविष्यवाणी की जा सकती है।
3. **चयन** (Seletion)– किसी पाठ्यक्रम विशेष अथवा कैरियर हेतु उपयुक्त व्यक्तियों का विषय भी मूल्यांकन का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य या कार्य होता है। विभिन्न पाठ्यक्रमों में प्रवेश हेतु परीक्षाओं का विकास इसी उद्देश्यपूर्ति के लिए किया जाता है।
4. **श्रेणी या ग्रेड प्रदान करना** (Grading)– यह समूह के शिक्षार्थियों का क्रम निश्चित करने अथवा उन्हें श्रेणी प्रदान करने में मूल्यांकन सहायता प्रदान करता है। इस उद्देश्य को अन्तिम परीक्षाओं के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।
5. **निर्देशन** (Guidance)– किसी विषय अथवा व्यवसाय के चुनाव करने में शिक्षक को निर्देशन प्रदान करना पड़ता है और उपयुक्त निर्देशन तभी दिया जा सकता है जब छात्र की योग्यता, क्षमता, अभियोग्यता, अभिरुचि, सीखने की गति आदि की जानकारी शिक्षक को होती है। इस कार्य में मूल्यांकन शिक्षक को सहायता प्रदान करता है। दूरवर्ती शिक्षा में स्वतः मूल्यांकन हेतु अभ्यास प्रश्न भी इन्हीं उद्देश्यों को पूरा करते हैं।
6. **कार्यक्रम मूल्यांकन** (Programme Evaluation)– मूल्यांकन का एक महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पूर्ण कार्यक्रम का मूल्यांकन होता है।

मूल्यांकन की प्रविधियां

मूल्यांकन प्रक्रिया ज्ञानात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक तीनों प्रकार के उद्देश्यों की प्राप्ति के सम्बन्ध में प्रदत्तों का संकलन करती है। इस कार्य के लिए विभिन्न प्रविधियों को प्रयुक्त किया जाता है–

(क) परिणामात्मक प्रविधि (Quantitative Technique)

(ख) गुणात्मक प्रविधियां (Qualitative Technique)

(क) परिणामात्मक प्रविधि– इन परीक्षणों के तीन रूप हो सकते हैं–

(i) मौखिक परीक्षण (Oral Test)

(ii) लिखित परीक्षण (Written Test)

(iii) प्रायोगिक परीक्षण (Practical)

(i) **मौखिक परीक्षण**– मौखिक परीक्षण के अन्तर्गत मौखिक प्रश्न, वाद–विवाद प्रतियोगिता, नाटक आदि को प्रयुक्त किया जाता है।

(ii) **लिखित परीक्षण**– लिखित परीक्षा के अन्तर्गत दो प्रकार की परीक्षाएं आती हैं–

1. निबन्धात्मक परीक्षा
2. वस्तुनिष्ठ परीक्षा

(iii) **प्रायोगिक परीक्षण**– प्रायोगिक परीक्षाओं के अन्तर्गत कोई निर्धारित कार्य पूरा करना होता है।

(ख) गुणात्मक प्रविधियां (Qualitave Technique)– मूल्यांकन प्रक्रिया की व्यापकता की दृष्टि से गुणात्मक प्रविधियां अधिक उपयोगी होती हैं। जहां मूल्यांकन प्रक्रिया में परिमाणात्मक प्रविधियां काम नहीं करती हैं वहां पर गुणात्मक प्रविधियों की सहायता लेनी पड़ती है। ये प्रविधियां पांच प्रकार की होती हैं–

1. संचयी आलेख (Cumulative Records)
2. एनेकडोटल आलेख (Anecdotal Records)
3. निरीक्षण व साक्षात्कार (Observation and Interview)
4. जांच सूची (Check list)
5. रेटिंग स्केल (Rating Scale)

1. **संचयी आलेख**– संचयी आलेख के अन्तर्गत छात्रों की आयु, अभिभावकों की स्थिति, शैक्षिक प्रगति, परीक्षा फल, उपस्थिति, पाठ्य सहगामी क्रियाओं में भागीदारी, विशिष्ट योग्यताएं एवं कमजोरियां आदि आते हैं।
2. **एनेकडोटल आलेख**– एनेकडोटल रिकार्ड में बालकों के व्यवहार से सम्बन्धित महत्वपूर्ण घटनाओं एवं कार्यों का विवरण प्रस्तुत किया जाता है। इसमें छात्रों की रुचियों, अभियोग्यताओं का भी उल्लेख किया जाता है। संचयी आलेख एवं एनेकडोटल आलेख के आधार पर विद्यार्थी के सम्बन्ध में सामान्यीकरण किया जा सकता है।
3. **निरीक्षण व साक्षात्कार**– जिन बालकों के लिए हम दूसरे परीक्षणों का प्रयोग नहीं करवाते उनके मूल्यांकन हेतु निरीक्षण विधि का प्रयोग किया जाता है। यह प्रविधि छोटे बालकों का मूल्यांकन करने के लिए अधिक उपयोगी है। उच्च कक्षाओं के लिए भी इसका प्रयोग किया जा सकता है।
4. **जांच सूची**– जांच सूची का प्रयोग अभिरुचियों, अनिवृत्तियों तथा भावात्मक पक्ष के अन्य पहलुओं के मूल्यांकन हेतु किया जाता है। इस सूची में सामान्यतया कुछ कथन दिये होते हैं, जिन्हें पढ़कर छात्रों से उन कथनों के बारे में उनकी राय पूछी जाती है तथा उनका उत्तर उन्हें हां/ना में देना होता है। ये कथन एक विशिष्ट उद्देश्य से सम्बन्धित होते हैं। जांच सूची की प्रश्नावली लिखित व मौखिक दोनों रूपों में प्रयुक्त की जा सकती है।
5. **रेटिंग स्केल**– ये प्रविधियां उच्च कक्षाओं के लिए उपयुक्त होती हैं। रेटिंग स्केल में भी कुछ कथन दिये हुए होते हैं जिनके उत्तर कुछ निर्धारित बिन्दुओं (तीन, पांच, सात) पर देने होते हैं। उदाहरणार्थ–पांच बिन्दुओं की मापनी के

निर्णय स्तर इस प्रकार के हो सकते हैं—पूर्ण सहमत, सहमत, कुछ नहीं, असहमत, व पूर्ण असहमत। इसका उद्देश्य कथनों पर निर्णय देना होता है ताकि इस कथन के विषय में वे उचित निर्णय ले सके।

टिप्पणी

परीक्षणों के प्रकार

परीक्षण मापन के उपकरण या साधन होते हैं तथा विभिन्न प्रकार की मापें मूल्यांकन में हमारा मार्गदर्शन करती हैं। इनकी सामान्य विशेषताओं के आधार पर एवं शिक्षा के विभिन्न उद्देश्यों की प्राप्ति एवं अप्राप्ति का पता लगाने हेतु इन्हें निम्न तीन तरह से वर्गीकृत किया जा सकता है—

(1) **परीक्षण प्रकारों का उद्देश्य आधारित वर्गीकरण**— इस वर्ग में वे सभी परीक्षण आते हैं जो मूल्यांकन के किसी विशिष्ट उद्देश्य की प्राप्ति हेतु निर्मित किये जाते हैं। इस वर्ग में निम्न चार परीक्षणों को शामिल किया गया है—

(क) निष्पत्ति परीक्षण (Achievement Test)

(ख) अभियोग्यता परीक्षण (Aptitude Test)

(ग) निदानात्मक परीक्षण (Diagnostic Test)

(घ) दक्षता परीक्षण (Proficiency Test)

(क) निष्पत्ति परीक्षण— इस टेस्ट द्वारा छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि का पता लगाया जाता है कि छात्रों ने कितना सीखा। अतः इस परीक्षण द्वारा शैक्षिक उपलब्धि का मापन किया जाता है जिसके आधार पर शैक्षिक उद्देश्यों की पुष्टि की जाती है। इनका निर्माण उद्देश्यों को ध्यान में रखकर किया जाता है। ये परीक्षण मौखिक, लिखित एवं प्रायोगिक प्रकार के हो सकते हैं।

(ख) अभियोग्यता परीक्षण— अभियोग्यता परीक्षण के माध्यम से व्यक्ति की उन विशेषताओं या गुणों की पहचान की जाती है जो भविष्य में उसको प्रदान किये जाने वाले किसी कार्य को सम्पादित करने के लिए आवश्यक हैं। अभियोग्यता व्यक्ति की वर्तमान दशा को इंगित करती है जो उसके भविष्य की क्षमताओं की ओर संकेत करती है। इस परीक्षण में जिस प्रकार की अभियोग्यता की जांच होनी होती है, उसी कार्य या व्यवसाय के कौशलों से सम्बन्धित पदों (प्रश्नों) का निर्माण किया जाता है। कार्य व उद्देश्य के आधार पर तीन प्रकार के परीक्षण निर्मित किये जाते हैं—

(i) सामान्य अभियोग्यता परीक्षण।

(ii) विशिष्ट अभियोग्यता परीक्षण।

(iii) विभिन्नीकृत अभियोग्यता परीक्षण।

इन परीक्षणों/परीक्षाओं का प्रयोग किसी पाठ्यक्रम या व्यवसाय में व्यक्तियों के चयन हेतु किया जाता है।

टिप्पणी

(ग) निदानात्मक परीक्षण– निष्पत्ति परीक्षणों के द्वारा यह पता लगाया जाता है कि बालक ने कितना सीखा परन्तु यह ज्ञात नहीं किया जा सकता है कि बालक के कुछ न सीखने के पीछे क्या कारण है इसका पता लगाने के लिए निदानात्मक परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है निदानात्मक परीक्षणों से हमें निम्न प्रश्नों का उत्तर मिलता है–

(i) छात्र कितना जानता है।

(ii) छात्र कितना नहीं समझ पाया।

(iii) छात्र के न समझने के पीछे क्या कारण है।

इस प्रकार निदानात्मक परीक्षा हमें उन अधिगम क्षेत्रों की पहचान करने में सहायता करती है जिनमें छात्र को उपचारात्मक शिक्षण की आवश्यकता होती है। अतः कह सकते हैं निदानात्मक परीक्षण निष्पत्ति परीक्षण के पूरक होते हैं।

(घ) दक्षता परीक्षण– इन परीक्षणों का उद्देश्य किसी एक समय पर व्यक्ति की सामान्य योग्यता का आकलन करना है। दक्षता परीक्षण की अवधारणा यह है कि किसी एक निश्चित स्तर के छात्र से जिस प्रकार की एवं जितनी योग्यताओं की अपेक्षा की जाती है, उतनी योग्यताएं उसमें होनी चाहिए जैसे–एक कॉमर्स स्नातक चाहे वह किसी भी विश्वविद्यालय से उत्तीर्ण हो उसमें कॉमर्स स्नातक की सामान्य योग्यताएं होनी चाहिए। इस प्रकार दक्षता परीक्षण किसी एक पाठ्यक्रम विशेष से पूर्णतः आच्छादित नहीं होता अपितु उस पाठ्यक्रम तथा उससे मिलते जुलते पाठ्यक्रमों की सामान्य विशेषताओं को समाहित करने का प्रयास करता है। जिससे अधिक से अधिक व्यक्तियों की जांच करने में सुविधा हो। यह परीक्षण भी एक प्रकार से निष्पत्ति परीक्षण ही है। परन्तु निष्पत्ति परीक्षण से दक्षता परीक्षण का क्षेत्र अधिक विस्तृत है। कॉलेज या विश्वविद्यालय स्तर पर आयोजित की जाने वाली वार्षिक परीक्षाओं को हम निष्पत्ति परीक्षण कह सकते हैं किन्तु राष्ट्रीय स्तर पर किसी चयन या प्रवेश हेतु आयोजित की जाने वाली परीक्षाओं को दक्षता परीक्षण कहा जायेगा।

(2) प्रयोग के ढंग पर आधारित परीक्षणों के प्रकार– प्रयोग के ढंग पर आधारित वर्गीकरण में आयोगों से सम्बन्धित परीक्षण प्रकारों के छः जोड़े सम्मिलित किये जा सकते हैं–

(क) औपचारिक बनाम अनौपचारिक परीक्षण (Formal Assessment vs. Informal Assessment)– जब कोई मान्यता प्राप्त संस्था किसी चयन अथवा प्रमाण पत्र प्रदान करने हेतु किसी परीक्षा का अध्ययन एवं संचालन करती है तो वह औपचारिक परीक्षण की श्रेणी में आता है। इस प्रकार के परीक्षणों में अपनी वस्तुनिष्ठता, विश्वसनीयता एवं सार्थकता सुनिश्चित करनी होती है अतः इन परीक्षणों के निर्माण की प्रक्रिया, प्रशासन एवं व्याख्या हेतु निर्धारित मानकों का अनुसरण करना होता है। इसके अन्तर्गत जब कोई भिन्न व्यक्ति अथवा स्वैच्छिक संस्था अपनी निजी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु कुछ सूचनाओं को प्राप्त करने के उद्देश्य से किसी परीक्षा का आयोजन करती है तब उसे औपचारिक परीक्षण कहा जाता है।

अनौपचारिक परीक्षण में मूल्यांकनकर्त्ता को जन सामान्य को सन्तुष्ट करने की बाध्यता नहीं होती है अतः इस परीक्षण में मूल्यांकन प्रक्रिया में निर्धारित मानकों का अनुसरण बहुत कड़ाई के साथ नहीं किया जाता है।

टिप्पणी

(ख) रूपदेय परीक्षण बनाम योगदेय परीक्षण (Formation Tests vs. Summative Test)– रूपदेय परीक्षण छात्रों की कमजोरियों को जानने से सम्बन्धित हैं तथा इनके प्रयोग से छात्रों एवं शिक्षकों को उन्हें दूर करने में सहायता मिलती है। इस प्रकार के परीक्षण थोड़े–थोड़े अन्तराल पर नियमित रूप से प्रदान किये जाते हैं। किन्तु इनके आधार पर कोई श्रेणी या प्रमाण पत्र प्रदान नहीं किये जा सकते हैं। ये परीक्षण पाठ्यक्रम के किसी छोटे अंश पर तथा अति सीमित उद्देश्य की पूर्ति हेतु प्रदान किये जाते हैं।

योगदेय परीक्षण पूरे पाठ्यक्रम या पाठ्यक्रम के एक बड़े भाग से सम्बन्धित होते हैं तथा ये परीक्षण पाठ्यक्रम के अन्त में या छः महीने अथवा तीन महीने के अंत में प्रदान किए जाते हैं। इन परीक्षणों के प्राप्तांकों के आधार पर श्रेणी व प्रमाण पत्र प्रदान किये जाते हैं। योगदेय परीक्षण के प्रश्न भी रूपदेय परीक्षणों से व्यापक होते हैं। परन्तु दोनों में परीक्षणों का सम्बन्ध विद्यार्थी की प्रगति या अधिगम उपलब्धि से ही होता है।

(ग) सतत् परीक्षण बनाम अन्तिम या वार्षिक परीक्षण (Continuous Assessment vs. Terminal Assesment)– सतत परीक्षण का उद्देश्य छात्र की प्रगति या अधिगम उपलब्धि को श्रेणी या ग्रेड प्रदान करना होता है। सतत् परीक्षण में भी रूपदेय परीक्षणों की तरह थोड़े–थोड़े समय में उनको अंक या ग्रेड देने होते हैं ताकि अधिक परीक्षणों के अन्तर्गत अधिकतम अधिगम बिन्दुओं को सम्मिलित किया जा सके क्योंकि अन्तिम परीक्षा में सभी अधिगम बिन्दुओं को समाहित कर पाना सम्भव नहीं होता है। इस प्रकार सभी सतत परीक्षणों के प्राप्तांकों को मिलाने से योगदेय परीक्षण का उद्देश्य पूर्ण हो सकता है। इसी प्रकार अन्तिम परीक्षण भी आगे के पाठ्यक्रम के लिए योगदेय परीक्षण के रूप में प्रयुक्त किये जा सकते हैं।

(घ) पाठ्यक्रम कार्य बनाम परीक्षा (Course Work Vs. Examination)– इस परीक्षा में विद्यार्थी का मूल्यांकन पाठ्यक्रम के दौरान अथवा उस कार्य के समापन पर उसके द्वारा सम्पादित कार्यों के आधार पर किया जा सकता है। इसके अलावा पाठ्यक्रम के दौरान या समापन पर परीक्षा के माध्यम से भी उसका मूल्यांकन किया जा सकता है। इस प्रकार भिन्न–भिन्न समय पर सम्पादित पाठ्यक्रम कार्यों के मूल्यांकन अथवा परीक्षाओं के प्राप्तांकों को पाठ्यक्रम के अन्त में समेकित करके योगदेय मूल्यांकन के उद्देश्य को पूरा किया जा सकता है।

(ङ) प्रक्रिया बनाम परिणाम (उत्पाद) परीक्षण (Process Vs. Product Assessment)– मूल्यांकन का आधार या तो अन्तिम परिणाम (उत्पाद) होता है या किसी प्रदत्त कार्य का परिणाम होता है या कार्य की पूर्णता की ओर अग्रसर विभिन्न स्तरों की उपलब्धियां होती हैं। अतः किसी विद्यार्थी का मूल्यांकन करने के लिए या तो उसके प्रदत्त कार्य या समस्या का सही हल देख सकते हैं या हल करने हेतु अपनाई गई विधि के विभिन्न क्रमागत स्तरों की शुद्धता पर ध्यान

दिया जाता है। इस प्रकार यदि हम समस्या के सही हल को मूल्यांकन का आधार मानते हैं तब उसे परिणाम या उत्पाद परीक्षण कहते हैं परन्तु यदि हम समस्या के समाधान के विभिन्न स्तरों की उपयुक्तता एवं शुद्वता को आधार मानते हैं, तब प्रक्रिया परीक्षण कहते हैं।

टिप्पणी

(च) आन्तरिक मूल्यांकन बनाम बाह्य मूल्यांकन (Internal Assessment Vs. External Assessment)– जब शिक्षार्थी का मूल्यांकन किसी ऐसे बाहरी मूल्यांकनकर्त्ता द्वारा किया जाता है जिसका उसकी अधिगम प्रक्रिया से सीधा सम्बन्ध नहीं होता तब उसे बाह्य मूल्यांकन कहा जाता है। इसी तरह जब शिक्षण अधिगम प्रक्रिया की प्रभावशीलता के लिए उत्तरदायी व्यक्ति द्वारा विद्यार्थी का मूल्यांकन किया जाता है तब उसे आन्तरिक मूल्यांकन कहा जाता है। बाह्य परीक्षण से केवल योगदेय मूल्यांकन ही सम्भव होता है व रूपदेय मूल्यांकन हेतु आन्तरिक परीक्षण अधिक उपयुक्त होते हैं। इनमें से दो या दो से अधिक दृष्टिकोणों को एक साथ मिलाकर भी मूल्यांकन प्रक्रिया सम्पन्न की जा सकती है। जैसे मूल्यांकन को अधिक विश्वसनीय एवं वैध बनाने हेतु आन्तरिक एवं बाह्य मूल्यांकन को एक साथ सम्मिलित किया जा सकता है।

(3) प्रक्रिया आधारित परीक्षणों के प्रकार– परीक्षणों का एक वर्गीकरण उनके निर्माण या रचना की प्रक्रिया के आधार पर भी किया जा सकता है–

(क) शिक्षक–निर्मित परीक्षण बनाम प्रमाणीकृत परीक्षण

(ख) मानक सन्दर्भित परीक्षण बनाम मानदण्ड संदर्भित परीक्षण

(क) शिक्षक निर्मित परीक्षण बनाम प्रमाणीकृत परीक्षण (Teacher Made Test vs. Standardarized Test)– शिक्षक निर्मित परीक्षण वे परीक्षण होते हैं जो शिक्षक द्वारा किसी कक्षा विशेष एवं पाठ्यक्रम विशेष हेतु निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु बनाये जाते हैं। इस परीक्षण के निर्माण में कुछ सोपानों का अनुसरण करना पड़ता है परन्तु इसकी प्रक्रिया पूर्णतः सुनिश्चित एवं दृढ़ नहीं होती। इन परीक्षणों की विश्वसनीयता एवं वैधता भी कम होती है।

प्रमाणीकृत परीक्षण एक निश्चित प्रक्रिया के अन्तर्गत वस्तुनिष्ठता एवं शुद्धता को महत्व देते हुए व्यापक स्तर पर निर्मित किये जाते हैं। इनकी रचना में परीक्षण निर्माण के निश्चित सोपानों के नियोजन, पदों की तैयारी, पदों की जांच एवं मूल्यांकन का दृढ़ता से अनुसरण किया जाता है। इन सोपानों के अन्तर्गत उद्देश्यों का निर्धारण, उद्देश्यों को व्यावहारिक रूप में लिखना, पदों की संख्या एवं प्रकार निश्चित करना, परीक्षण का ब्लू प्रिन्ट तैयार करना, पदों की रचना करना पदों का विश्लेषण करना एवं उनका चयन करना, पदों को संशोधित करना तथा परीक्षण का मूल्यांकन करना आदि क्रियाएं की जाती हैं। इन परीक्षणों के प्रशासन, अंकन एवं अर्थापन की प्रक्रिया भी पूर्व निर्धारित होती है तथा इसके लिए उपयुक्त निर्देश दिये जाते हैं। इसमें निम्न गुण होते हैं–

(i) इनका क्षेत्र व्यापक होता है।

(ii) इनकी विश्वसनीय वैधता भी प्रमाणिक होती है।

टिप्पणी

(iii) प्रमाणिकृत परीक्षण विभिन्न स्थानों एवं विभिन्न समयों पर प्रदान किये जा सकते हैं।

(iv) इनका निर्माण व्यावसायिक स्तर पर किया जाता है।

(ख) मानक सन्दर्भित परीक्षण बनाम मानदण्ड सन्दर्भित परीक्षण (Norm-Referenced Test vs. Criterion Referenced Test)– मानक सन्दर्भित परीक्षण का उद्देश्य अधिक निष्पत्ति एवं कम निष्पत्ति वाले विद्यार्थियों में विभेद करना होता है अर्थात उनकी सापेक्षित स्थिति का पता लगाना होता है अतः यह परीक्षण इस बात पर बल नहीं देता है कि शिक्षार्थी ने क्या और कितना सीखा है बल्कि इनका उद्देश्य इस तथ्य का पता लगाना है कि विद्यार्थी की योग्यता एवं क्षमता अपने दूसरे सार्थियों की तुलना में किस प्रकार की है। मानक सन्दर्भित परीक्षण किसी विद्यार्थी की योग्यता का मूल्यांकन उसी समूह के दूसरे विद्यार्थियों की उपलब्धि के किसी निर्धारित मानक के आधार पर करता है। अतः यह परीक्षण छात्रों के वर्गीकरण एवं चयन में सहायता करता है।

मानदण्ड सन्दर्भित परीक्षण विद्यार्थी की योग्यता का मूल्यांकन पूर्व निर्धारित योग्यता के एक मान्य स्तर अर्थात मानदण्ड के आधार पर करता है। यह परीक्षण विद्यार्थी के कार्य निष्पादन की क्षमता की तुलना पहले से निर्धारित एक कार्य क्षमता के मानदण्ड के साथ करता है। अतः मानक संदर्भित परीक्षण निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति अथवा अप्राप्ति का पता लगाते हैं। इनका प्रयोग विद्यार्थी की कमजोरी का पता लगाने के लिए किया जाता है।

कसौटी एवं मानक संबंधी परीक्षण

मापन के क्षेत्र में 1960 ई. से नई शब्दावली का विकास हुआ जिसे 'मानदण्ड सम्बन्धित परीक्षण' (Criterian Reference Test) कहते हैं। शैक्षिक मापन के नवीन प्रकार के परीक्षणों का विकास हुआ जो परम्परागत निष्पत्ति परीक्षण से भिन्न माने जाते हैं जिन्हें मानदण्ड सम्बन्धित परीक्षण के नाम से जाना जाता है। इन परीक्षणों की रचना एवं उपयोग वैज्ञानिक तथा मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित है तो ये परीक्षण कहीं अधिक उपयोगी एवं विशिष्टताओं से पूर्ण होते हैं, जिनका उपयोग विशिष्ट एवं जटिल परिस्थितियों में कहीं अधिक सफलतापूर्वक किया जा सकता है। 1960 ई. के ही आसपास मापन के क्षेत्र में एक क्रान्ति सी आई तथा इसी के परिणामस्वरूप एक नवीन शब्दावली का विकास हुआ जिसके अन्तर्गत कसौटी सम्बन्धित परीक्षण (Criterian Referenced Test) तथा ''मानक सम्बन्धित परीक्षण'' का विकास प्रमुख है। विद्वानों ने इन परीक्षणों को भिन्न–भिन्न नामों से पुकारा जैसे– उद्देश्य केन्द्रित परीक्षण (Objective Centred test) तथा ज्ञान सम्बन्धी परीक्षण (Domain Referenced Test) लेकिन वर्तमान मूल्यांकन प्रक्रिया के संदर्भ में इन परीक्षणों को Domain Referenced Test का कहना अधिक व्यावहारिक प्रतीत होता है।

प्रमाणित निष्पत्ति परीक्षा का अर्थ (Meaning of Standardized Achievement Test)– परम्परागत ढंग से जो ''प्रमाणित निष्पत्ति परीक्षण (Referenced Test) तथा शिक्षक द्वारा निर्मित परीक्षण हैं उन्हें मानक सम्बन्धित परीक्षा (Norm Referenced Test) की संज्ञा दी जाने लगी है। इसका लक्ष्य पाठ्यक्रम सम्बन्धित उपलब्धियों का मापन

करने का है और छात्रों की उपलब्धि स्तर का मूल्यांकन समूह में स्तरीकरण (मानक) के रूप में किया जाता है। शिक्षण अधिगम के उद्देश्यों की प्राप्ति को महत्व नहीं दिया जाता है। इन परीक्षणों की वैधता (Content Validity) होती है। परीक्षण में सम्पूर्ण पाठ्यक्रम पर प्रश्न सम्मिलित किये जाते हैं।

यद्यपि नवीन परीक्षण परम्परागत परीक्षणों पर एक सुधार के रूप में अपनाये जा रहे हैं लेकिन परम्परागत परीक्षणों को हम पूरी तरह अलग नहीं कर सकते। इसीलिए कहा भी गया है कि– Though traditional type tests are defective even then we can't ignore them totally.

मानदण्ड सम्बन्धित परीक्षण (Criteria Referenced Test)– मानदण्ड परीक्षण अधिक उपयोगी होते हैं। इनसे अधिगम शिक्षण के उद्दश्यों की प्राप्ति के सम्बन्ध में विशिष्ट जानकारी मिलती है। स्ट्रॉन्ग ने (1960) में नवीन प्रकार की शैक्षिक परीक्षाओं का विकास किया जो परम्परागत परीक्षणों से भिन्न है। स्ट्रॉन्ग ने उन्हें मानदण्ड सम्बन्धित परीक्षण की संज्ञा दी थी जिनकी रचना मनोवैज्ञानिक तथा वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित है। इन दोनों परीक्षणों की विशेषताओं में समानता भी है तथा एक–दूसरे से विशिष्ट रूप में भिन्न भी हैं। दोनों प्रकार के परीक्षणों की विशेषताओं की तुलना में मानदण्ड परीक्षण तथा मानक परीक्षणों को व्यापक रूप में बोधगम्य किया जा सकता है। दोनों परीक्षणों का रूप समान होता है। वस्तुनिष्ठ परीक्षणों के प्रारूप को दोनों प्रकार के परीक्षणों में प्रयुक्त किया जा सकता है। पाठ्यवस्तु दोनों परीक्षणों में एक सी होती है तथा अंकन प्रक्रिया भी समान होती है। इन समानताओं के अतिरिक्त दोनों परीक्षण एक–दूसरे से भिन्न हैं।

मानदण्ड तथा मानक संदर्भित परीक्षणों में विभिन्नताएं

मानदण्ड तथा मानक संदर्भित परीक्षणों में विभिन्नताएं निम्न हैं–

(1) मानदण्ड परीक्षण के प्रयोग से यह ज्ञात होता है कि अनुदेशन तथा शिक्षण के उद्देश्यों की प्राप्ति कहां तक हो सकी है जबकि मानक परीक्षण के प्रयोग से ज्ञात होता है कि छात्रों ने पाठ्यवस्तु कहां तक सीखी है।

(2) मानदण्ड परीक्षण से उद्देश्यों की प्राप्ति का उल्लेख होता है जबकि मानक परीक्षणों में छात्र ने कितने प्रश्नों के सही उत्तर दिये हैं, उसके स्तर का बोध होता है।

(3) मानदण्ड परीक्षण अनुदेशनात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति को बताते हैं तथा साथ ही यह भी बताते हैं कि छात्र के सीखने में कहां तक कमजोरी रही है। मापन उद्देश्यों के रूप में किया जाता है। मानक परीक्षणों के परिणामों का अर्थापन कक्षा समूह के स्तर के रूप में किया जाता है जिसे शतांशमान भी कहते हैं। इसमें छात्र की कमजोरियों तथा उपलब्धियों का अर्थापन समूह में उसके स्थान से किया जाता है।

(4) मानदण्ड परीक्षण के निर्माण में अनुदेशन तथा शिक्षण के सभी उद्देश्यों पर प्रश्नों की रचना की जाती है, जिससे उद्देश्यों की दृष्टि से वैध बनाया जा सके। मानक परीक्षण की रचना में शिक्षण की समस्त पाठ्यवस्तु की दृष्टि से कई

उद्‌देश्यों की प्राप्ति की जा सकती है अर्थात एक ही पाठ्‌यवस्तु का शिक्षण विभिन्न स्तरों पर किया जाता है जिससे विभिन्न उद्‌देश्यों की प्राप्ति की जा सकती है।

(5) मानदण्ड परीक्षण पर छात्रों के स्तरों के अंकन से यह पता चलता है कि छात्रों में उद्‌देश्यों की प्राप्ति में कितनी सफलता रही है, जबकि मानक परीक्षण पर छात्रों के उत्तरों के अंकन से यह पता चलता है कि छात्रों ने कितनी पाठ्‌यवस्तु सीखी है।

(6) मानदण्ड परीक्षण के परिणाम छात्र की अपेक्षा शिक्षक के लिए अधिक उपयोगी होते हैं, जिनसे वह अपने अनुदेशन की प्रक्रिया में सुधार एवं विकास कर सके। यह पुनर्वलन का कार्य करता है जबकि मानक परीक्षण से शिक्षक को अपने विकास के लिए कोई दिशा नहीं मिलती है।

(7) मानदण्ड परीक्षण के निर्माण में शिक्षक अधिगम उद्‌देश्यों को प्राथमिकता दी जाती है इसके विश्लेषण में पद कठिनाई तथा भिन्नता मान के अतिरिक्त उद्‌देश्य को महत्त्व दिया जाता है। मानकों का विकास नहीं किया जाता है, उद्‌देश्यों का वर्गीकरण किया जाता है जबकि मानक परीक्षण का निर्माण परम्परागत प्रक्रिया से किया जाता है। इन्हें प्रमाणिक बनाने के लिए मानकों को विकसित करना आवश्यक होता है।

मानदण्ड एवं मानक संदर्भित परीक्षणों में समानताएं

दोनों ही परीक्षणों में कुछ बातें समान हैं—

(1) **साफल्यता का बोध**— दोनों ही परिक्षणों का एक ही कार्य है, इन दोनों से छात्रों को साफल्यता (Progress) का बोध होता है।

(2) **तत्वों की विशेषताएं**— दोनों ही परीक्षणों में तत्वों की विशेषताएं समान होती हैं।

(3) **पद रूप**— दोनों ही परीक्षणों के पदों के रूप भी समान होते हैं।

(4) **परीक्षणों की रचना में पाठ्‌यवस्तु का आधार**— दोनों ही परीक्षणों की रचना में पाठ्‌यवस्तु को आधार माना जाता है।

(5) **पदों का अंकन**— दोनों ही परीक्षणों में पदों का अंकन समान रूप से होता है। सही पद को एक अंक तथा गलत अंक को शून्य दिया जाता है और सही अंकों का योग कर लिया जाता है।

(6) **परीक्षणों का उपयोग**— दोनों ही परीक्षणों का उपयोग शैक्षिक मापन में ही किया जाता है।

मूल्यांकन के प्रकार

मूल्यांकन के प्रकार निम्नलिखित हैं—

1. स्थापन मूल्यांकन (Placement Evaluation)

स्थापन मूल्यांकन की सहायता से यह ज्ञात करने की चेष्टा की जाती है कि बालकों में यह उपेक्षित गुण तथा व्यवहार उपस्थित है अथवा नहीं, जो पढ़ाए जाने वाले पाठ

अथवा अन्य प्रकार के अधिगम के लिए आवश्यक है। पारस्परिक शिक्षण पद्धति में यह पूर्व ज्ञान के नाम से जाना जाता है। आधुनिक शिक्षण में मापन–मूल्यांकन हेतु विभिन्न प्रकार की प्रविधियों का उपयोग किया जाता है। यथाः तत्परता परीक्षण अभिवृति परीक्षण, पाठ्यक्रम उद्देश्यों पर आधारित पूर्व–परीक्षण इत्यादि।

2. निर्माणात्मक मूल्यांकन (Formative Evaluation)

निर्माणात्मक मूल्यांकन की सहायता से शिक्षण के दौरान छात्रों की अधिगम से संबंधित उन्नति को नियन्त्रित किया जाता है। इसके द्वारा छात्र तथा अध्यापक दोनों को ही पृष्ठपोषण के माध्यम से अधिगम से संबंधित सफलताओं तथा असफलताओं का बोध होता रहता है। सफलता की सूचना छात्र को उत्साहित करती है जिससे उसका व्यवहार सही दिशा में और अधिक दृढ़ हो जाता है, असफलता से उसे ज्ञात होता है कि उसने कहां गलती की है अथवा कहां उसे अपने व्यवहार में सुधार करना है। शिक्षक पृष्ठ–पोषण के द्वारा यह ज्ञात कर लेता है कि कहां उसे अपनी शिक्षण पद्धति में सुधार करना है तथा कब छात्रों को उपचारात्मक शिक्षण प्रदान करना है। इस प्रकार के मूल्यांकन के लिए प्रायः शिक्षक द्वारा निर्मित परीक्षणों को ही प्रयोग में लाया जाता है। शिक्षक द्वारा पढ़ाए गए प्रत्येक छोटे–भाग पर प्रवीणता परीक्षण तैयार करता है तथा इससे यह ज्ञात करने का प्रयत्न करता है कि छात्रों ने पढाई गई सामग्री को आत्मसात् किया है अथवा नहीं। छात्रों की अधिगम से संबंधित उन्नति तथा अधिगम दोषों को ज्ञात करने हेतु कभी–कभी प्रेक्षण प्रविधि का भी प्रयोग किया जाता है।

3. निदानात्मक मूल्यांकन (Diagnostic Evaluation)

निदानात्मक मूल्यांकन का प्रयोग छात्रों की उन अधिगम से संबंधित कठिनाइयों को ज्ञात करने के लिए किया जाता है, जिनका निदान शिक्षण के दौरान सम्भव नहीं होता है। यदि कोई छात्र किसी एक विषय में बार–बार असफल रहता है तो निदानात्मक मूल्यांकन के द्वारा उसकी असफलता का कारण पता लगाने में सहायता प्राप्त होती है। इस प्रकार के मूल्यांकन के लिए विभिन्न विषयों में निदानात्मक परीक्षणों का निर्माण किया जाता है तथा आवश्यकतानुसार कमजोर छात्रों की इनके द्वारा जांच की जाती है। इस प्रकार प्राप्त परिणाम उपचारात्मक शिक्षण के आधार पर कार्य करते हैं।

4. संकलनात्मक मूल्यांकन (Summative Evaluation)

संकलनात्मक मूल्यांकन का प्रयोग यह ज्ञात करने के लिए किया जाता है कि किस सीमा तक शिक्षक के उद्देश्यों की प्राप्ति में सफलता प्राप्त हुई है। इसका प्रमुख कार्य छात्रों को श्रेणीबद्ध करना अथवा डिवीजन देने का है परन्तु इसके माध्यम से परोक्ष रूप से यह भी ज्ञात हो जाता है कि पाठ्यक्रम के उद्देश्य किस सीमा तक सही हैं तथा किस सीमा तक शिक्षण–प्रविधि प्रभावशाली सिद्ध हुई है। संकलनात्मक मूल्यांकन के लिए प्रायः शिक्षक द्वारा निर्मित परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है। इन परीक्षणों की प्रकृति शिक्षण–उद्देश्यों पर निर्भर होती है। उपलब्धि परीक्षण, निर्धारण–मापनी आदि का प्रयोग मुख्यतः संकलनात्मक मूल्यांकन हेतु किया जाता है।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

7. इनमें से क्या शैक्षिक उद्देश्यों के तीन प्रमुख भागों का हिस्सा नहीं है?
   (क) ज्ञानात्मक क्षेत्र (ख) भावनात्मक क्षेत्र
   (ग) आर्थिक क्षेत्र (घ) क्रियात्मक क्षेत्र
8. ''शैक्षिक मूल्यांकन हमें यह बताता है कि बालक ने किस सीमा तक किन उद्देश्यों को प्राप्त किया है।'' यह परिभाषा किसकी है?
   (क) रेमर्स एवं गेज (ख) डांडेकर
   (ग) जेम्स एम.सी. (घ) कोठारी कमीशन

4.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ख)
2. (क)
3. (घ)
4. (ग)
5. (ख)
6. (घ)
7. (ग)
8. (ख)

4.7 सारांश

भारत एक बहुभाषिक देश है और शिक्षक को इस बहुभाषिकता को कठिनाई नहीं अपितु संसाधन के रूप में इस्तेमाल करना चाहिए। विविधता प्रतिभा, शारीरिक क्षमता, विचारों के आधार पर भी हो सकती है। शिक्षक का कर्तव्य है कि वह सभी पक्षों को ध्यान में रखते हुए सही पठन सामग्री का चयन कर एक समावेशी कक्षा का आयोजन करने में समर्थ हो, जहाँ हर प्रकार के छात्रों को भाषा सीखने के सामान अवसर मिलें।

एक भाषा शिक्षक के रूप में आपका कर्तव्य होता है कि भाषा की शिक्षण प्रक्रिया को अधिक प्रभावी, रुचिकर बनाने हेतु तथा शिक्षार्थियों की अधिकाधिक प्रतिभागिता प्राप्त करने हेतु इन सभी सिद्धांतों को बहुत सही से प्रयोग में लाना चाहिए। ये सभी शिक्षण को सही दिशा प्रदान करने के साथ –साथ शिक्षण में आने वाली अपरिचित कठिनाइयों का हल ढूंढ़ने में भी शिक्षक के लिए बहुत सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

थोर्नडाईक का नियम दंड और पुरस्कार के महत्व को स्वीकार करता है। सीखने के बाद यदि बालकों को कोई पुरस्कार नहीं दिया जाए तो बालकों की उस कार्य करते रहने में रुचि नहीं बढ़ती है। यह पुरस्कार किसी भी रूप में हो सकता है, वस्तु रूप

टिप्पणी

में या प्रशंसा रूप में। प्रभाव का नियम कक्षा में अध्यापक के लिए बहुत लाभकारी हो सकता है, विशेषकर छोटे बच्चों के लिए।

स्किनर का विचार है कि अन्य व्यवहार प्रकार्यों की भांति भाषा का विकास भी 'ऑपरेन्ट अनुबंधन' पर निर्भर रहता है। इस सिद्धांत के अनुसार बालक द्वारा भाषा को अर्जित करना ध्वनि और ध्वनि संयोजन के चयनीकृत सुदृढ़ीकरण (selective reinforcement) पर निर्भर करता है। स्किनर का विचार है कि बच्चे स्वतः अनुकरण के आधार पर बोलते हैं। बालक के चारों ओर के वातावरण में उपस्थित उसके निकट संबंधी व्यक्ति बालक द्वारा बोली गई कुछ ध्वनियों का पुनर्बलन (पुरस्कृत) करते हैं। उदाहरणार्थ–बच्चा जब कुछ ध्वनियों को 'बाबा', मामा, 'पापा' या 'दादा' आदि बोलना प्रारंभ करता है, तो बालक के परिवार के व्यक्ति बालक द्वारा बोली गई इन ध्वनियों को अपने अधिक ध्यान या प्रशंसा के द्वारा पुरस्कृत या पुनर्बलन करते हैं। फलस्वरूप बालक इन ध्वनियों को जल्दी सीख लेता है।

पाठ्य–वस्तु के स्वामित्व के लिये अवलोकन प्रविधि का विकास किया गया। मौरीसन के अवलोकन सिद्धांत का समर्थन डेजी मारविल जॉन ने भी किया तथा छात्रों के अध्ययन की आदतों के विकास के लिए इसे आवश्यक बताया। इन्होंने इस प्रकार के अध्ययन में छात्रों की आवश्यकताओं हेतु विविध प्रकार की शिक्षण सामग्री के प्रयोग तथा पाठ्य पुस्तक के प्रयोग का सुझाव दिया।

अवधाराणात्मक विकास की प्रक्रिया का लक्ष्य किसी समस्या के विभिन्न पक्षों को समझना होता है। अवधारणा किसी निर्णय पर नहीं पहुंचती है। श्रोतागण अपने निर्णय ले सकने में स्वतंत्र होते हैं। अवधारणा के अंत में भी प्रकरण संबंधी वाद–विवाद खुला रहता है। वक्ताओं एवं श्रोताओं में विचारगोष्ठी की भांति प्रत्यक्ष रूप में अतः क्रिया नहीं होती। इसमें अप्रत्यक्ष रूप से अंतः प्रक्रिया होती है।

कहानियों को सुनना, पढ़ना विद्यार्थियों को स्वंय अपनी समझ बनाने में समर्थ बनाता है। कथाएँ और कविताएं नये विषयों और शब्दावली का परिचय, अमूर्त विचारों तथा वर्तमान वैज्ञानिक समस्याओं को समझाने में प्रयुक्त होती हैं। इस प्रकार ये अर्थपूर्ण वैज्ञानिक पूछताछ के लिये उत्कृष्ट आधार प्रदान करते हैं।

शिक्षा को मानवीय संसाधनों, कौशलों, प्रेरणा एवं ज्ञान सरीखे अन्य अनेक विकासों के रूप में मानव हित में किया गया निवेश माना जाता है। अतः शिक्षा के अपने उद्देश्य एवं लक्ष्य होते हैं। इसलिए शैक्षिक मूल्यांकन में इसके उद्देश्यों एवं लक्ष्यों को ध्यान में रखना होता है। इस प्रकार शैक्षिक प्रक्रिया एवं उत्पाद दोनों का मूल्यांकन आवश्यक होता है जिससे यह पता लगाया जा सकता है कि शैक्षिक प्रक्रिया कितने प्रभावशाली ढंग से आगे बढ़ रही है, तथा शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति किस सीमा तक हो सकती है। अतः कहा जा सकता है कि मूल्यांकन शैक्षिक कार्यक्रमों के निर्माण में सहायक होता है।

4.8 मुख्य शब्दावली

- **बहुभाषिका** : अनेक भाषा–प्रयोग की स्थिति

- **संयोजनवाद** : थोर्मडाइक का शिक्षण सिंद्धांत
- **अंतदृष्टि** : सूझबूझ युक्त विवेकशीलता
- **प्रतिक्रिया** : क्रिया के प्रयुत्तर में हुई क्रिया
- **अवधारणात्मक** : वैचारिकता से संवंधित
- **सर्वसम्मति** : सभी की सहमति पर आधारित
- **भावनात्मक** : भावनाओं से संबंधित
- **अनुकूल** : समझौता सामंजस्य की स्थिति

4.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. भाषा–अर्जन के सिंद्धात से क्या आशय है?
2. कार्यात्मक प्रतिबद्धता का सिंद्धांत किसने प्रतिपादित किया?
3. अन्वेषण का अर्थ स्पष्ट कीजिए।
4. अवधारणातमक विकास से क्या तात्पर्य है?
5. आलेख शिक्षण की मुख्य बातें क्या हैं?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. भारतीय शिक्षा शास्त्रियों के द्वारा प्रदत्त भाषा शिक्षण के प्रमुख सिंद्धांतों का उल्लेख कीजिए।
2. भाषा शिक्षण से संबंधित पाश्चात्य शिक्षा शास्त्रियों के दो सिंद्धांतों की विवेचना कीजिए।
3. नवीन शिक्षा शास्त्रीय सिद्धांत अवलोकन एवं अन्वेषण का विश्लेषण कीजिए।
4. कतिवा एवं कहानी शिक्षण पर प्रकाश डालिए।
5. हिंदी भाषा शिक्षण के मूल्यांकन पर सारगर्भित टिप्पणी लिखिए।

4.10 सहायक पाठ्य सामग्री

1. डॉ. रामशकल पाण्डेय, 'हिन्दी शिक्षण'।
2. डॉ. भोलानाथ तिवारी : 'हिन्दी भाषा'।
3. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : 'हिन्दी साहित्य का इतिहास'।
4. डॉ. एस. के. मंगल एवं श्रीमती शुभ्रामंगल : 'शिक्षा तकनीकी'।
5. डॉ. एस. एस. माथुर : 'शिक्षण कला एवं तकनीति'।
6. पाठक एवं त्यागी : 'सफल शिक्षण कला'।
7. भाई योगेन्द्र जीत : 'मातृभाषा शिक्षण'।
8. सावत्री सिंह : प्रगत हिन्दी शिक्षण।